वर्ष : १८
अंक १

- शिक्षा मे क्रान्ति
- देश की सर्वश्रेष्ठ शक्ति
- तरुण सामाजिक क्रान्ति की शक्ति बनें
- राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है ?

अगस्त १९६९

गांधी-शताब्दी वर्ष और बुनियादी शिक्षा

वर्ष : १८
अंक : १

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस देश ने गाधी-मार्ग का परित्याग कर दिया उससे हमे यह शिकायत नही है कि उसने गाधीजी की बुनियादी शिक्षा को क्यो छोड दिया। जिस देश ने सुनियोजित ढग से 'केन्द्रीकृत औद्योगीकरण' की नीति अपनायी है, उससे यह सवाल पूछने का कोई अर्थ नही है कि उसने 'ग्रामोद्योग मूलक' बेसिक शिक्षा को क्यो छोड दिया। जिस राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था मे 'खादी और ग्रामोद्योग' स्वावलम्बन, समानता, अशोषण और करुणा के पर्याय न रहकर 'पिछडी अर्थ-व्यवस्था' के द्योतक रह गये हैं, उससे हम यह शिकायत नही करते कि उसने उस शिक्षा-पद्धति को क्यो छोड दिया, जिसमें दस्तकारी अथवा शिल्प के माध्यम से ही छात्र को सभी विषयो की शिक्षा देने और व्यक्तित्व के समग्र सस्कार की बात कही गयी है। जो सरकार गरीब देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति का १५ प्रतिशत अपनी शान शौकत पर खर्च करती है उससे हम क्यो पूछें कि उसने उस शिक्षा प्रणाली को क्यो छोड दिया जिसमे अपने श्रम की कमाई खाने और सादी जिन्दगी के आदर्श की बात है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद लोक-तन्त्र की कामना करते हुए और समाजवाद की कसम खाने के बावजूद जिस राज्य ने अग्रेजो के चलाये हुए 'ब्यूरोक्रैटिक तन्त्र' को ज्यो का त्यो रखा है, और जिसका सारा प्रयास 'यथास्थितिवाद' को बनाये रखने का है, उससे हम यह शिकायत क्यो करें कि उसने उस क्रान्तिकारी शिक्षा-प्रणाली को क्यो

छोड़ दिया जिसकी आकांक्षा जीवन-पद्धति मे ही आमूल परिवर्तन की है।

हमे शिकायत है तो इस बात की है कि गाधी-मार्ग का पूर्णतः परित्याग करते हुए भी जब इस देश ने गांधी-शताब्दी मनाने का निश्चय किया, और व्यापक ढग से जोर शोर के साथ मनाने का निश्चय किया तो 'अमर' गाधी को छोड़कर 'मृत' गाधी के तर्पण की योजना बनायी और इस तर्पण के लिए उनके रचनात्मक कार्यों का 'तिल-तदुल' एकत्र किया तो उनके उस क्रिया-कलाप को क्यों नजरअदाज कर दिया जिसके लिए उन्होंने स्वयं 'सर्वोत्तम' शब्द का प्रयोग किया था। मेरा मतलब बुनियादी शिक्षा से है जिसे गाधी-जी ने अपनी सर्वोत्तम देन कही थी। मेरे सामने २८ अगस्त १९६५ को स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री की अध्यक्षता मे आयोजित पहली गाधी शताब्दी समिति का विवरण है जिसमें शताब्दी-अवधि मे काम करने के मुद्दे तय किये गये हैं। वे मुद्दे निम्नांकित हैं —

१—गाधी दर्शन नाम से दिल्ली मे एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन।

२—अन्तर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठियों का भारत मे और भारत के बाहर के देशों मे आयोजन।

३—संसार के अन्य देशों मे गाधी शताब्दी का आयोजन।

४—गाधीजी पर ससार की समस्त भाषाओं में लिखी गयी सामग्री की सदर्भ ग्रन्थ-सूची तैयार करना।

५—जन-सम्पर्क—गाधीजी के सदेश को प्रत्येक परिवार तक पहुँचाने के लिए बिल्ले-चित्र, फोल्डर्स, पुस्तिका, पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र आदि सभी माध्यमोका प्रयोग।

६—प्रमुख नगरो मे गाधीजी की स्मृति मे उपयुक्त स्मारक।

७—सामाजिक कार्यक्रम—जैसे, अस्पृश्यता-निवारण, भगी-मुक्ति, शराबबदी।

८—मानव जीवन की मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करना जैसे :— प्रत्येक गाँव मे पीने के पानी और भोजन सम्बन्धी आत्मनिर्भरता।

९—रचनात्मक कार्य—खादी और ग्रामोद्योग, ग्रामदान और शान्तिसेना का त्रिविध कार्यक्रम।

१०—राष्ट्रीय एकता।

११—बाल-महिला-कल्याण सम्बन्धी क्रियाकलाप।

क्रियाकलापो की इस सूची मे बुनियादी शिक्षा की कही भी चर्चा नही है। द्रविड प्राणायाम करके 'ग्रामदान' अथवा शान्तिसेना के साथ अप्रत्यक्ष ढग से नयी तालीम को शामिल समझा जाय तो दूसरी बात है। वैसे तो गाधीजी ने स्वय कहा था कि मेरे सभी रचनात्मक कार्यक्रमों के बीच नयी तालीम झाँकती है और विनोबा कहते हैं कि शान्तिसेना और नयी तालीम की प्रक्रिया एक ही है। परन्तु मेरी शिकायत यह है कि जब गाधी-शताब्दी-अवधि मे गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों को नवजीवन देने की चर्चा चली तो बुनियादी शिक्षा को भी रखना चाहिए था।

राष्ट्रीय गाधी-शताब्दी की इस बैठक मे डा० सुशीला नैयर ने सीधा नयी तालीम को भी क्रियाकलापो मे रखने के बजाय सेवाग्राम विश्वविद्यालय के विषय मे एक सुझाव दिया था, जिसे यह कहकर टाल दिया गया कि यद्यपि एक ग्रामीण विश्वविद्यालय ही सेवाग्राम-भावना के अनुरूप हो सकता है फिर भी ग्रामीण विश्वविद्यालय के सम्बन्ध मे एक ठोस प्रस्ताव तैयार करने के लिए अधिक विचार-विनिमय की आवश्यकता है।

मेरे सामने विभिन्न राज्यो के गाधी-शताब्दी सम्बन्धित आयोजनो के विवरण भी है। गुजरात राज्य के अतिरिक्त किसी भी दूसरे राज्य ने बुनियादी शिक्षा को 'गाधी-शताब्दी' की प्रवृत्तियो मे शामिल नही किया है। जिस शिक्षा-पद्धति के विषय मे अमेरिका के विश्व-विख्यात शिक्षा-शास्त्री जान ड्यूई ने कहा कि "गाधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार बहुत मौलिक है और प्रोजेक्ट पद्धति से कई कदम आगे हैं, उसे भुला क्यों दिया गया। प्रो० गुनार मिरडाल नाम के विख्यात विद्वान ने 'एशियन ड्रामा' नामक ग्रन्थ मे जिस बुनियादी शिक्षा की स्पष्ट शब्दो मे सराहना की और सिफारिश की उसका विकासशील देश मे तेजी से प्रचार हो, उसे छोड क्यो दिया गया।

ऐसा क्यों हुआ? विशेषत तब जब शताब्दी मनाने का काम उन लोगो ने अपने जिम्मे लिया जिन्हे हम गाधीजी के रचनात्मक कार्यकर्ताओ का अगुवा मानते है। काम तो उठाया, लेकिन विश्वास नहीं हुआ कि अपने भरोसे उसे पूरा कर पायेंगे। अत सरकार की शरण गये। इस कल्याणकारी राज्य का सर्वाधिक दुखद पहलू यही है कि वह स्वयसेवी सगठनो को निष्क्रिय कर देता है, उनका वर्चस्व

समाप्त कर देता है। शासन-रथ की धुरी मे तेल देकर कृतार्थ होना ही पुरुषार्थ बन जाता है। वही यहाँ भी हुआ। राष्ट्रीय शताब्दी समिति बनी तो राष्ट्रपति प्रधान बने, उपराष्ट्रपति उप-प्रधान बने। कार्यकारिणी समिति बनी तो प्रधान-मत्री उसकी अध्यक्ष बनी। राज्यो मे शताब्दी समिति का गठन हुआ तो गवर्नर अध्यक्ष बने। उत्तरप्रदेश मे तो जनपद स्तर पर जिलाधीश समिति के पदेन अध्यक्ष हुए। उसका परिणाम यह हुआ कि शताब्दी समितियों म उन लोगो का प्राधान्य हो गया जिनकी निष्ठा गाधीजी के कामो म नही, सरकारी व्यवस्था और तत्र मे है। बुनियादी शिक्षा सरकारी व्यवस्था (नौकरशाही) मे अमान्य है। अत वह शताब्दी वर्ष म भी मान्य नही हुई। उसकी चर्चा ही नही हुई। मैं यह नही कहता कि ग्रामदान, शराबबदी, अस्पृश्यता आदि जो रचनात्मक कार्यक्रम उठाये गये हैं उनको लेकर शताब्दी समिति के कार्यकर्ताओ द्वारा बहुत कुछ हुआ है। परन्तु समिति की बैठको मे चर्चा तो हो जाती है और इन क्रियाकलापो मे लगे हुए दूसरी सस्थाओ और व्यक्तियो के काम का श्रेय लेकर धन्य तो हो ही लिया जाता है। परन्तु बुनियादी शिक्षा का तो नाम भी नही लिया जाता। गाधीजी का कोई सम्बन्ध भी इस काम से था ऐसी एक आवाज भी सुनने मे नही आती।

बुनियादी शिक्षा की ओर से अथवा दूसरे भी ठोस कामो की ओर से ध्यान बँट जाने का एक कारण है शताब्दी समितियो का 'गाधी-साहित्य, चित्र, बेज, बिल्ला' की दुकानदारी मे फँस जाना। एक मित्र ने व्यग किया—"बनिये की शताब्दी मे दुकानदारी नही की जायगी, तो क्या तपस्या की जायगी? (और हम जानते है कि उस बनिये का पूरा जीवन एक तप था जिसकी आँच से इन्द्र का आसन भी डोल गया था।) समिति के कार्यकर्ता 'छापने बेचने' मे ही इतना लग गये है कि ठोस रचनात्मक कार्यो की ओर उनका ध्यान ही नही जाता। इस शताब्दी वर्ष मे अगर शिक्षा सस्थाएँ कुछ भी नयी तालीम के मार्ग की ओर मुडती और उनमे तरुण शान्तिसेना की स्थापना होती, आचार्यकुल का सगठन होता तो एक ठोस काम होता और हमारा गाधी शताब्दी मनाना सफल होता, परन्तु यह नही हो रहा है और एक व्यग्य-चित्रकार के शब्दो मे हम मात्र गाधीजी की भस्मी बेच रहे हैं!

—यशोधर श्रीवास्तव

देश की सर्वश्रेष्ठ शक्ति

विनोबा

मेरे मन मे शिक्षक या अध्यापक या प्राध्यापक या आचार्य या प्राचार्य, जो भी नाम दिया जाय उस समाज के लिए बडा आदर है। मेरा मानना है कि समाज को बचानेवाली तीन ताकतें हैं—एक ग्रामीणो की संयुक्त ताकत और दूसरी विद्वद्जनो की, और तीसरी है *विज्ञान की। वास्तव मे मैं कहना चाहता हूँ भगवान की* शक्ति, लेकिन मैंने जानबूझकर विज्ञान की शक्ति कहा। तो यह जो शक्ति है, खासकर विद्वद्जनो की, वह भारत म अत्यन्त क्षीण हो गयी है। आज शिक्षक नौकर की हैसियत मे आ गय हैं। आप लोग जानते हैं कि भगवान कृष्ण को वसुदेव ने गुरु के पास अध्ययन के लिए भेजा था। और उस क्या सिखाना चाहिए, इस सम्बन्ध मे वसुदेव की कुछ नही चलती थी। वह गुरु को यह डायरेक्शन नहीं दे सकता था, कि मेरे बेटे को फलानी पुस्तक पढायी जाय, गुरु ही तय करता था कि क्या और *किस तरह शिक्षा दी जाय। तो यह भारत की अपनी,* बडी भारी चीज थी कि आचार्यों पर सरकार की सत्ता नही चलती थी। शिक्षक सरकारी सत्ता से मुक्त थे।

शिक्षा की इस शक्ति को ब्राह्मण-शक्ति नाम दिया था। जो सत्तावाली शक्ति *थी उसको क्षात्र-शक्ति नाम दिया था। क्षात्र-शक्ति का ब्राह्मण-शक्ति पर अकुश* भारत म कभी मान्य नहीं हुआ। आज तक यह घटना अद्‌भुत और अपूर्व मानी *जायेगी। कृष्ण की मिसाल मैंने अभी दी। रामचन्द्र को भी जो तालीम मिली वह* विश्वामित्र के पास मिली। विश्वामित्र पर दशरथ का कोई अकुश नही था। ऐसी *प्राचीन सभ्यता की कई मिसालें दी जा सकती हैं। लेकिन रामचन्द्र की और कृष्ण* की ये दो मिसालें पर्याप्त हैं।

ब्राह्मण वर्ण : शूद्र वर्ण

इस देश की सबसे श्रेष्ठ शक्ति ज्ञान-शक्ति मानी गयी है। नम्बर दो मे जिसको शस्त्र का अधिकार था वह शक्ति मानी गयी। नम्बर तीन मे जिसको धन कहते हैं वह मानी गयी। लेकिन आज ऐसी स्थिति हो गयी है कि ज्ञान-शक्ति नौकर की हैसियत मे आ गयी है। नौकर याने शूद्र। तो आज ब्राह्मण वर्ण शूद्र वर्ण है। अब यह चीज अगर आचार्यों के और शिक्षको के ध्यान म आ जाय कि उनकी अपनी एक हैसियत है, और उस हैसियत मे यह शोभा नही देता कि वे केवल नौकर बने रहे, यहाँ तक कि कौनसी किताबें और कितने घंटे पढाना, यह ऊपर से लिखित आये।

अब इसके कारणों मे हम जाते है। ब्राह्मण वर्ग का अपना व्रत होना चाहिए। वालन्टरी पावर्टी का—ऐच्छिक दारिद्र्य का। यह ब्राह्मणो का व्रत है और "भिक्षाकन वैदिक ब्राह्मणाः"—ऐसा ब्राह्मण का वर्णन आया है। उसके पास संग्रह नही होना चाहिए। यह तब चलता था जब ब्राह्मणो की इज्जत थी, उनकी अपनी प्रतिष्ठा थी। आज यह हालत है कि बेचारे शिक्षक लाचार हैं। उनको ज्यादा पैसा मिलता नही। उनका ऐच्छिक दारिद्र्य नही, कम्पल्सरी है। प्राध्यापकों की गणना अत्यन्त श्रीमान वर्ग मे तो नही की जायेगी, लेकिन हायर मिडिल क्लास में की जायेगी। वे पैसे का स्टैण्डर्ड रखना चाहते हैं। यह उनकी हैसियत को गिराता है।

तीसरी बात यह है कि उन लोगो मे पोलिटिकल पार्टी की घुसपैठ हो गयी है। एक कालेज मे कुछ प्राध्यापक एक पार्टी के हैं और कुछ दूसरी पार्टी के, इस तरह चलता है। यहाँ तक हो गया है कि फलाना कालेज फलानी पार्टी का, यह भी चलता है। विश्वविद्यालयो मे भी पार्टियाँ घुस गयी हैं।

ये जो पालिटिशियन्स हैं, उनकी हस्ती ज्यादा-से-ज्यादा पाँच साल की रहती है। अब बिहार मे तो पाँच साल की भी नही है। ये मत्री तो जनता के नौकर पाँच साल के लिए रखे हुए हैं। पाँच साल के बाद उनकी नौकरी खतम होगी, दूसरे नोकर चुने जायेंगे। बिहार मे हम देख रहे हैं कि वे पाँच साल भी नही टिक सके। एक मत्रिमडल कुछ दिन चला, फिर दूसरा आया तो १५ दिन चला! फिर दूसरा आया, एकाध हफ्ते के बाद चला गया! यह सत्ता इतनी चंचल है। उस सत्ता की घुसपैठ ज्ञानियो मे हो गयी। आपकी हैसियत तो कम-से-कम ३० साल की है। अगर आप रिटायर होने के बाद भी सिखाने का पेशा जारी रखें तो सिखा सकते है, यानी आपकी हैसियत, आजीवन कायम रहेगी। यानी आपका यह जीवन-कार्य है और उनका तो पाँच साल का। अब आप उनके काबू मे आते-जाते हैं तो आप कुछ लोभवश ही गये है, ऐसा लगता है। यानी सत्ता का लोभ आपके पीछे पड़ा है। और भी दूसरे कारण हैं, लेकिन अभी उसमें नही जायेंगे। यह ज्ञान-शक्ति, ब्राह्मण-शक्ति, आपकी शक्ति, कैसे क्षीण हो गयी, यह बताने के लिए दिग्दर्शन मात्र कुछ शब्द मैंने कहे।

प्रथम आवश्यकता

अब आप अगर आपकी हैसियत फिर से प्राप्त कर सके तो आपकी ताकत बनेगी। मैं उसके लिए यह सुझाऊँगा कि प्रथम आप पक्षमुक्त हो जायें। उसका मतलब यह नही कि राजनीति पर आप सोचें ही नही। लेकिन प्रातीय दृष्टि से ही नही, भारतीय दृष्टि से भी नही, जागतिक दृष्टि से सोचेंगे। क्योंकि आज विज्ञान के कारण सारा जगत् नजदीक आ गया है। परन्तु पार्टी पालिटिक्स, पावर पालिटिक्स,

पैरोकियल पालिटिक्स, प्राविन्सियल पालिटिक्स, सेक्शनल पालिटिक्स के विषय मे सोचना नही चाहिए और उसमे आपको पडना नही चाहिए। गौतम बुद्ध ने कहा है कि जो पर्वत के शिखर पर चढा हुआ है वह सोचता है कि नीचे जो लोग हैं वे कैसे छोटे-छोटे हैं और घूम रहे हैं। वह जो ऊपर चढा है। ऐसा एकदम तटस्थ, उदासीन और अलिप्त होकर देखता है। 'उत् आसीन.' याने उदासीन। आपको ऊपर जाने का है, प्रथम आपको सूझना चाहिए कि हमको खोयी हुई हैसियत पाना है तो उसके लिए पार्टी मे मुक्त होना प्रथम आवश्यकता है। मुझे पार्टी मे लडने का अधिकार है, लेकिन अधिकार होन पर भी मैं उसमे नही पडता, यह जब होगा तब ताकत बढेगी। मैं अपनी मिसाल देता हूँ। मैं अपने को शिक्षक मानता हूँ।

जेल मे मुझसे मेरा धंधा पूछा गया तब मैंने बताया था कि मै शिक्षक हूँ। गांधीजी ने अपना धन्धा कातना-बुनना बताया था। वे खादी को उत्तेजन देना चाहते थे और कातते भी थे। बाबा ने अपना धन्धा शिक्षक का बताया था। बाबा बचपन से अध्यापन करता आया है। अध्यापन सामूहिक तौर पर भी करता था और व्यक्तिगत तौर पर भी। १४ साल की उम्र से ही सिखाता रहा और आज ७४ साल की उम्र मे भी। ६० साल मैंने अध्यापन-कार्य किया है। और अध्ययन-कार्य कब से शुरू किया ? ५ साल मे यानी ६६ साल से अध्ययन-कार्य चल रहा है। आज भी बाबा ने अध्ययन और अध्यापन किया है। अध्ययन-अध्यापन का बाबा का निरन्तर सिलसिला चला आ रहा है। तो मैं अपनी और आपकी जमात एक मानता हूँ। लेकिन बाबा की आज जो हैसियत है वह इसलिए प्राप्त हुई है कि पालिटिक्स स वह अपने को अलग रखता है। इसलिए बाबा के पास सब पार्टी के लोग आते हैं और अपनी-अपनी बाजू खोलकर रखते हैं। बाबा के स्वागत के लिए कुल पार्टी के लोग आयेंगे। लेकिन किसी पार्टी का नेता गाँव म आया तो उसी पार्टी के लोग उसके स्वागत मे आते हैं। इसलिए मै कई साल स कह रहा हूँ कि बाबा की जो हैसियत है वह आपकी होनी चाहिए। यानी जिस हैसियत मे बाबा है उसमे आपको आना चाहिए। उसके लिए एक ही उपाय है कि आपको पक्षमुक्त होना चाहिए।

सम्मिलित राय की शक्ति

दूसरी बात मैंने कही कि आपकी आवाज उठनी चाहिए।

प्रमुख प्रश्नो के बारे मे चिंतन करके आपको अपनी सम्मिलित राय जाहिर करने की शक्ति होनी चाहिए। उस सवाल के बारे म पूरा अध्ययन करके यह जाहिर करना चाहिए कि अमुक सवाल पेश है, उसके बारे मे अध्यापको की सम्मि-

लित राय अमुक है। ऐसी राय तटस्थ बुद्धि में आप जाहिर करें, यह शक्ति आपकी होनी चाहिए। अर्थात् यह प्रथम बात है कि छोटे दायरे से अपने को मुक्त करना चाहिए। आपको माँग करनी चाहिए कि शिक्षा वैसे ही स्वतंत्र हो जैसे कि जुडीशियरी स्वतन्त्र है। सुप्रीम कोर्ट के जज को तनख्वाह सरकार से मिलती है। लेकिन वह सरकारी आज्ञा के खिलाफ भी फैसला दे सकता है। वह जो फैसला देगा उसे सरकार को मान्य करना होगा। ऐसी सत्ता आपकी होनी चाहिए। यह माँग होनी चाहिए साथ-साथ आपको अपनी सम्मिलित राय जाहिर करनी चाहिए।

तीसरी बात मैंने कही ऐच्छिक दारिद्रय की। आज मैं आपसे यह अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि आज पैसे का जो मूल्य घट गया है उस हालत में मैं यह सलाह नहीं दे सकता कि कम-से-कम पैसा में आप रहिए।

मेरा एक मित्र था। मैंने जब घर छोड़ा तो उसने कहा कि मैं कुछ देर से निकलूँगा। जब एक लाख रुपया इकट्ठा हो जायगा, तब फिर मैं आपके काम में लग सकूँगा। पाँच-छः साल निकल गये। फिर उनसे मिलने का मौका आया। मैंने पूछा, कितनी देर है? उन्होंने जवाब दिया कि लाख तो हो गया, लेकिन उसकी कीमत गिरी है। फिर मैंने उनकी आशा नहीं रखी। जबतक आपकी बात पक्की थी विश्वास था कि आ जायेंगे। लेकिन लाख की कीमत गिरी, यह सवाल निकला, तब फिर आपका उससे छुटकारा नहीं है। पैसा ही आपको मिलता है, और तो कुछ नहीं। यह होता कि आपको तनख्वाह में जरूरी अनाज मिल रहा है और अन्य चीजों के लिए पैसे मिल रहे हैं तो अलग बात थी। सरकारी नौकरों के लिए भी सरकार को मेरा सुझाव है कि कम-से-कम एक पौंड अनाज मान लें, तो १२० पौंड अनाज उनको दिया जाय, इसके अलावा पैसा, तो कुछ दारिद्रय में रहकर भी और बातों में कमी कर सकते हैं।

पहले देखता था कि प्रिंसिपल साहब उस समय की पोशाक में ऐंठ में आते हैं। उस समय उनका असर पोशाक के कारण होता था। लेकिन आज वाइस चांसलर भी रास्ते से जाते हैं तो एक सामान्य मानव के जैसे दिखते हैं। सामान्य नागरिक मानकर लोग धक्का भी दे सकते हैं। आज इतनी सादगी दिखती है। मैं ऐसा नहीं कहता कि आप कम-से-कम पैसों में रहें। मैं वर्धा, महाराष्ट्र में सन् १९२१ में रहने गया। इस वक्त पदयात्रा में फिर से सन् १९६५ में २४ साल बाद गया। तो देखा कि जो मजदूर काम करते थे उनको निश्चित ज्वारी मिलती थी। उस वक्त खेत पर काम करनेवालों को छः कुडो (वहाँ का एक माप) ज्वारी और उसके अलावा ३०-४० रु० साल। जब मैं सन् '६५ में गया तो मैंने देखा कि आज भी उनको ६ कुडो ज्वारी मिलती है और इसके अलावा तीन-चार सौ

रुपये हर साल। उस समय जो उधारी मिलती थी वह कायम रही और ३०-४० रुपय जो मिलने थ वह बढ़ते-बढ़ते अब ३-४ सौ हो गय। अगर वह कायम नहीं रहता तो उसको तनख्वाह आज ५०० रु० के लगभग होती तो भी वह मजदूर सुरक्षित नहीं रहता। क्योंकि भाव समझाने के लिए आपको पैसा ही मिलता उस हालत में कम पैसों में आप काम चलायें, ऐसा नहीं कह सकता। लेकिन इतना कहूँगा कि दरिद्रों के साथ हम हैं ऐसा महसूस कर कुछ दान कर सकते हैं तो करें। आपकी सारी जिन्दगी गरीबी के ढंग से बिताने और तनख्वाह कम करने के लिए मैं नहीं कहूँगा।

मैं एक बात और कहूँगा। शिक्षक लोग हड़ताल करते हैं तनख्वाह बढ़ाने के लिए। उसमें कालेज के शिक्षकों को शामिल नहीं होना चाहिए। उनको कहना चाहिए कि इस हड़ताल के साथ हमारी सहानुभूति है, क्योंकि हम चाहते हैं कि नीचे के जो शिक्षक हैं उनकी तनख्वाह जरूर बढ़नी चाहिए। आज तो अपनी भी तनख्वाह बढ़े, ऐसी आवाज करते हैं। यह गलत है। यह अगर शिक्षक करते हैं तो उनकी एक शक्ति बनती है और जो समस्याएँ मैंने पेश की हैं उनका उत्तर इसमें से मिल सकता है। अब मैं आपके कुछ सवालों को लूँगा।

भारतीय छात्र-असतोष के मूल कारण

'स्टूडेंट अनरेस्ट' कुल दुनिया में है तो भारत में भी है। लेकिन भारत की यह कोई खास समस्या नहीं है। आपको समझना चाहिए कि दुनिया में जो 'अनरेस्ट' है उसका कारण क्या है और भारत में जो 'अनरेस्ट' है उसका कारण क्या है? दुनिया में जो 'अनरेस्ट' है वह एक 'स्ट्रगल' है, लेकिन यहाँ मुख्य है दारिद्र्य, नौकरी का अभाव। जितने छात्रों को तालीम मिलती है उतने लोगों को नौकरी नहीं मिलती है। सरकार के पास ५५ लाख नौकर और मान लें ५ लाख मिलिटरी, तो कुल ६० लाख नौकर हैं। सरकारी नौकर की नौकरी में ३० साल रहने हैं। इसका मतलब हुआ कि हर साल २ लाख लोग 'रिटायर' होंगे और इतने लोगों को नौकरी मिलेगी। भारत में ५० करोड़ लोग हैं। उनमें से करीब १० करोड़ लोग पढ़े-लिखे हैं। १० करोड़ में से कम-से-कम २ करोड़ लोग मैट्रीकुलेशन के ऊपर के हैं। अब नौकरी है २ लाख के लिए और पढ़े-लिखे हैं २ करोड़। इसका मतलब हुआ कि २ करोड़ में से मुश्किल से २ लाख लोगों को नौकरी मिलेगी, बाकी को नहीं मिलेगी। जिनको नौकरी नहीं मिलेगी वे काम करेंगे नहीं, क्योंकि काम करना सिखाया नहीं गया। इस वास्ते वे ऊधम मचाते हैं। मनु की परिभाषा थी 'असंतुष्टा द्विजा नष्टा'। लेकिन उसका मैंने इस जमाने के अनुरूप परिवर्तन किया है—'असंतुष्टा द्विजा' कम्यूनिस्टा'। जो पढ़े-लिखे हैं उनको

नौकरी नहीं है, दूसरा कोई धंधा नही है तो फिर कम्यूनिस्ट बनेंगे और उत्पात शुरू करेंगे। उनको नौकरी के अलावा और कोई धंधा करने की तालीम नहीं है। यहाँ जो 'अनरेस्ट' है, उसका मुख्य कारण नौकरी का अभाव है और योग्य तालीम का अभाव है। उनको जो तालीम मिलती है उसमें कोई माद्दा नहीं। भारत में पुलिस और विद्यार्थियों में झगड़ा होता है, उसका कारण यह नहीं कि उनको खाने को कम मिलता है। उनके ऊपर कुछ पाबंदियाँ हैं उनको वह तोड़ना चाहते है। वहाँ स्वतन्त्रता की माँग है। बंधनों से, नियमों से मुक्त होने की प्रवृत्ति कई कारणों से दुनिया में है। लेकिन यहाँ तो उल्टे मुझे आश्चर्य है कि आज की जो खराब तालीम उनको दी जाती है, जिसमें उनको भविष्य के बारे में कोई भरोसा नहीं है उस हालत में कैसे वे शान्त रहते हैं। यहाँ ज्यादा-से-ज्यादा तीन चार परसेंट विद्यार्थी ऊधम में शामिल होते हैं और बाकी विद्यार्थी शान्त ही रहते हैं इसका ही मुझे आश्चर्य है। इसका उत्तर एक ही मिलता है कि अभी तक भारतीय सभ्यता और संस्कृति हमारे यहाँ कायम है इसलिए विद्यार्थियों की स्वाभाविकतया शान्ति की तरफ वृत्ति होती है।

सार रूप धर्म बनाम धर्म-निरपेक्षता

धर्म के विषय में विचार करते समय धर्म और पंथ का फर्क समझना चाहिए। पंथ का मैं निषेध करता हूँ पंथों से मुक्ति मिलनी चाहिए। शिया और सुन्नी का झगड़ा अभी लखनऊ में चला। दोनों इस्लाम को मानते हैं, झगड़ा किस बात का? कुछ खलीफा हो गये हैं, जिनकी निन्दा और स्तुति वे करते हैं। एक ही दिन एक ही समय एक वर्ग उनकी निन्दा करेगा, और दूसरा वर्ग उनकी स्तुति करेगा और ऐसा करते हुए जुलूस निकालेंगे। यह हमारे देश में चलता है। इसका नाम है पंथ। इनके दिन अब लद गये। साइंस के जमाने में स्पिरिच्युएलिटी टिक सकती है रिलीजन टिक सकता है धर्म टिक सकता है, पंथ नहीं। धर्म यानी जिससे आपका धारण होता है वह धर्म है। इस प्रकार का जो धर्म-विचार है, गीता है, उपनिषद है, कुरान है बाइबिल है। उन किताबों में कुछ अंश हैं, जो पुराने हो गये है, जो आज के जमाने के लिए लिखा नहीं गया था लेकिन कुछ अंश है जो सनातन है। जो पुराने हो गये उस अंश को निकाल देना चाहिए और सनातन अंश का रखना चाहिए। बाबा ने यह धंधा किया। बाबा ने बाइबिल का अध्ययन कर उसका सार निकाला, कुरान शरीफ का अध्ययन कर उसका सार निकाला और सिक्खों के धर्मग्रंथ जपुजी का भी और गीता पर बाबा के प्रवचन भी हैं। यह सब बाबा ने इसलिए किया कि सब धर्मों का सार-रूप

विद्यार्थियों को सिखाया जाय। लेकिन आज 'सेक्युलर' के नाम पर इन ग्रंथों को समाप्त कर दिया गया तो 'कैरेक्टर बिल्डिंग' कैसे होगा ? 'कैरेक्टर बिल्डिंग' के लिए आधार तुलसीदास के रामायण से मिलता है, लेकिन आज विद्यार्थियों के कोर्स में केवल उसमें से साहित्य के तौर पर कुछ अंश रख देते हैं। सूरदास का कुछ ले लिया, मीरा का ले लिया, कबीर का ले लिया, इससे 'कैरेक्टर बिल्डिंग' नहीं होगी। अगर उन ग्रन्थों का सार-रूप मिले और वह विद्यार्थियों को सिखाया जाय तो ये ग्रंथ 'कैरेक्टर बिल्डिंग' का काम करेंगे। कुरान का सार रूप सब विद्यार्थियों को सिखाया जाय—चाहे वह हिन्दू हो, या मुसलमान हो या और कोई हो तो बहुत अच्छा होगा। इसी तरह से दूसरे भी ग्रन्थ हैं। ऐसा अगर होगा तो 'कैरेक्टर बिल्डिंग' होगा। नहीं तो लोग समझते हैं कि धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक हमारे मित्र हैदराबाद स्टेट की कहानी कह रहे थे कि उन्होंने एक मन्दिर बनाया तो देखा कि उसमें केवल हिन्दू ही आते हैं, मुसलमान नहीं आते। तो उनको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उसको तुड़वाकर मस्जिद बनायी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं ने आना छोड़ दिया, मुसलमान आने लगे। उन्होंने देखा कि दोनों कैसे आयें तो उसको तुड़वाकर पाखाना-घर बना दिया। फिर सब आने लगे। यह बात बादशाह के पास पहुँची। वह चिढ़ गया। उसने उनको बुलाया। उन्होंने जवाब दिया कि साहब हम चाहते थे कि हमारे इस स्थान का दोनों कौमें इस्तेमाल करें, दोनों साथ आयें, लेकिन मन्दिर या मस्जिद बनाने से ऐसा नहीं हुआ तो हमने पाखाना घर बना दिया। अब दोनों आते हैं। इसका नाम है 'सेक्युलरिज्म'। अगर 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ पाखाना-घर हो जाय तो उसका अर्थ गलत है। 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ है सब धर्मों के प्रति समान भाव समान अभाव नहीं। स्टेट कहता है कि धर्म के लिए पक्षपात नहीं होगा। लेकिन हम समझते हैं कि 'सेक्युलरिज्म' का मतलब धर्म से कोई सरोकार नहीं।

साक्षरता : विद्वत्ता

आपने प्रश्न पूछा है कि 'व्हाट इज आइडियल एजूकेशन ?' फिर पूछा है—'हाऊ कैन इंडिया इम्प्रूव इटस लिटरेसी ?' इन दोनों प्रश्नों में विरोध है। 'लिटरेसी' एक छोटा 'क्वालिफिकेशन' है। इस जमाने का जो सबसे बड़ा ज्ञानी हो गया वह लगभग 'इल्लिटरेट' था—रामकृष्ण परमहंस। उनके पास बड़े-बड़े विद्वान आते-जाते थे। एक दिन उनकी इच्छा हुई कि थोड़ी विद्या मिल जाय। उनकी शक्ति-देवी पर भक्ति थी। उन्होंने प्रार्थना की कि 'हे माता, मुझे विद्या दीजिए।' तो रात में सपने में माता आ गयी। बोली—तू विद्या चाहता है। बोले—हाँ। तो माता

धोबी—वह कचरे का ढेर देखता है न उसमें विद्या पड़ी है, उसमें से ले ले। तो परमहंस ने कहा—मुझे वह कचरेवाली विद्या नहीं चाहिए। इसलिए 'लिटरेसी' होना एक बहुत बड़ी चीज है ऐसी बात नहीं। लेकिन 'क्वालीफिकेशन' जरूरी है। लोग लिटरेट हो गये तो बहुत बड़ी बात हो गयी, ऐसी बात नहीं है। ज्यादा-से-ज्यादा लोग भारत में जो ऊधम मचाते हैं, लोभी हैं तो वे लिटररी लोग ही हैं। मैंने एक मिसाल परमहंस की दी दूसरी मिसाल मुहम्मद पैगम्बर की है। वे 'अनलेटर्ड प्राफेट' थे। मुहम्मद निरक्षर थे। एक बार अल्लाह ने उनके सामने एक परचा डाला। मुहम्मद बोले हे अल्लाह मैं पढ़ नहीं सकता। तब अल्लाह खुद आये और दर्शन दिया। अगर मुहम्मद पढ़ होते तो उन्हें उस परचे पर से ही समाधान मानना पड़ता।

'एजूकेशन' का मतलब है काया-वाचा-मन का विकास। शरीर आरोग्यवान हो, ताकि उसके द्वारा सेवा का काम किया जा सके। इस प्रकार शरीर की तालीम से, सत्यपरायण वाणी से शुद्ध, प्रेमयुक्त शब्द निकलें इसका ज्ञान दें। चित्त में मलिनता न हो। राग-द्वेष न हो। इस तरह तीन प्रकार की तालीम होनी चाहिए। इसके लिए चित्त वाणी, हाथ की तालीम के लिए आपको क्या-क्या करना पड़ेगा? चित्त में से राग द्वेष जाय, चिन्तन-शक्ति बढ़े और 'कान्सन्ट्रेशन आफ माइंड' बढ़े। यह सब आप प्रोग्राम बना सकते हैं।

भारत की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति अद्वितीय है। वर्णन किया है। ब्रह्म कैसा है? एकमेव अद्वितीय। उसकी तुलना कोई नहीं हो सकती। वैसी हिंदुस्तान की आर्थिक और राजनैतिक स्थिति है। हमारा ५० ५५ करोड़ का देश है, फिर भी खाने के लिए हमको बाहर से मँगाना पड़ता है। यह कितने शर्म की बात है! अपना देश एग्रीकल्चरल माना जाता है। कृषिप्रधान यानी क्या? दूसरे उद्योग हैं नहीं, यदि हैं भी तो बहुत कम इसलिए 'एग्रीकल्चरल' देश कहलाता है। लेकिन हम तो अनाज पैदा ही नहीं करते। २० साल पहले जितना मिलता था उतना भी आज नहीं मिलता है। यह है अपने देश की आर्थिक परिस्थिति। राजनैतिक परिस्थिति यह है कि जिनको आप नेता मानते हैं वह जनता के नेता नहीं, बल्कि विशिष्ट पक्षों के नेता हैं। पक्षों के नेता जो होते हैं वे अपने अनुयायियों के अनुयायी होते हैं। उनको देखना पड़ता है कि मेरे पीछे कितने लोग हैं। देखेंगे कि उनके पीछे ज्यादा लोग नहीं हैं तो खुद पीछे चले जायेंगे। तो वास्तव में वह भारत में है नहीं। वह तबतक नहीं बनेगा जबतक कि राजनीति से बाहर नेतृत्व नहीं होगा। राजनीति अनुयायी होते हैं। इस नाते वे मार्गदर्शन नहीं दे सकते। मान लीजिए, कल हिन्दुस्तान तय करे कि उत्तम-से-उत्तम

बीड़ी सप्लाई करो तो सरकार के लोग यह नहीं कह सकते कि बीड़ी पीना ठीक नहीं।

तो यह मार्गदर्शन कौन देगा? जो सरकार मे नही होगा। मिसाल के तौर पर जयप्रकाश नारायण हैं, जो सत्ता मे नही हैं। वे इस प्रकार का मार्गदर्शन दे सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि विद्वज्जन सत्ता से बाहर रहकर समाज का नेतृत्व करें, तब उनके हाथ म नेतृत्व आयेगा तब भारत की राजनीतिक स्थिति सुधरेगी। आज की हालत म भारत मे नेतृत्व नहीं है।

अध्यात्म और विज्ञान की सार्थकता

मैं साइन्स का बहुत भक्त हूँ और चाहता हूँ कि साइन्स बढ़ती जाय। एक तो मेरी भक्ति है अध्यात्म पर और दूसरी है विज्ञान पर। विज्ञान बाहर की सृष्टि का ज्ञान देता है और अध्यात्म अन्तर की सृष्टि का। सृष्टि मे क्या तत्त्व है, क्या गुण है, इसका ज्ञान साइन्स कराता है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए साइन्स बढ़े ऐसा मैं चाहता हूँ। लेकिन साइन्स और 'टेकनालाजी' म अंतर है। टेकनालाजी याने साइन्स का 'अप्लीकेशन'। 'अप्लीकेशन' का मार्गदर्शन अध्यात्म देगा, नहीं तो साइन्स तारक नहीं, मारक होगा। आणविक शक्ति का उपयोग स्थिति सुधारने के लिए किया जा सकता है। इसका उपयोग कैसे किया जाय यह ज्ञान अध्यात्म देता है। अग्नि म जलाने की शक्ति है। उसका उपयोग आप रसोई पकाने के लिए भी कर सकते हैं और घर जलाने के लिए भी। इसमे विवेक रखने का काम अध्यात्म बतायेगा।

साइन्स का उपयोग क्या करना, यह हम लोगों को तय करना चाहिए। जिस देश म करोड़ो लोग बेकार हैं, काम कम है, वहाँ आप बड़े औजार क्या चलायेंगे? वहाँ छोटे-छोटे उद्योग देने होंगे। काम के कौन-से औजार होने चाहिए, इसका उत्तर अमेरिका म जो होगा वह हिन्दुस्तान म नहीं होगा और अमेरिका मे जो आज है वह २०० साल बाद नहीं होगा। इस वास्ते यह समझने की बात है कि 'टेकनालाजी' को 'गाइडेन्स' मिलना चाहिए। आज कम दूरी के लिए भी लोग मोटर का इस्तेमाल करते हैं। मैं तो 'शो काज नोटिस' दूँगा कि इतनी कम दूरी के लिए बिना विशेष जरूरत के मोटर क्यों इस्तेमाल की गयी। आज ऐसी हालत हो गयी है कि मशीन से बिल्कुल सामान्य कार्य लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हम बेकार रहते हैं। साइन्स जितना बढ़ सकता है बढ़े, लेकिन उसका क्या उपयोग किया जाय यह सोचने की बात है।

रांची (बिहार), ६-७-'६६

तरुण सामाजिक क्रान्ति और निर्माण की शक्ति बनें

जयप्रकाश नारायण

तरुण शान्तिसेना आज एक छोटी-सी संस्था है, लेकिन हम आशा जरूर करते हैं कि जल्द ही यह संस्था देश के हर महाविद्यालय और विद्यालय में स्थापित हो जायगी और उसमें हजारों नहीं, लाखों सैनिक हो जायेंगे। इस संस्था के लिए जो बड़े और मोटे उद्देश्य हैं, वे चार हैं ऐसा मानिए —१. राष्ट्र की एकता, २. सर्व-धर्म समादर और समानता, ३. लोकतंत्र की पुष्टि ४. विश्वशान्ति।

चरित्र की शक्ति

इसके लिए पहला कार्यक्रम है तरुणों में चरित्र का विकास करना, उनमें नेतृत्व की शक्ति पैदा करना, उनमें यह क्षमता पैदा करना कि सम्मिलित रूप से वे काम कर सकें। तरुण शान्तिसेना के संचालक, उसके प्रशिक्षक इस योग्यता के हों, इस चरित्र के हों, स्वयं उनमें यह गुण हो चरित्र का, लोगों को इकट्ठा करके साथ मिल-कर काम करने का, तो मैं मानता हूँ कि जिन तरुणों को हम इस सेना में इकट्ठा करेंगे, उन सबमें इस प्रकार के गुण हम पैदा कर सकते हैं।

मेरा ख्याल है कि चरित्र के निर्माण में जो सबसे प्रभावशाली तत्त्व है, वह यही है कि जो तरुण समाज का नेता होगा, उसका स्वयं किस प्रकार का चरित्र है, कैसा वह आदर्श पेश करता है। छोटे बच्चों को भी आप जानते हैं कि उदाहरण का ज्यादा गहरा असर होता है। छोटा बच्चा भी बहुत गहराई में समझ लेता है कि माता-पिता-अभिभावक जो उसे समझाते हैं, उस पर स्वयं आचरण करते हैं कि नहीं। अगर वह देखता है कि वे केवल बात ही करते हैं, काम उसके अनुकूल नहीं है, तो उस उपदेश का कोई असर उस पर नहीं होता। तो आप इस बात को स्वीकार करेंगे कि अगर तरुणों को हम एकत्रित करते हैं, तो पहला उद्देश्य यही होना चाहिए इसके संगठन का कि स्वयं उनका विकास हो और एक-दूसरे से उनका सम्बन्ध, सौहार्द, सहकार बढ़े और उनके अन्दर नेतृत्व की शक्ति पैदा हो। उनमें विकसित होनी चाहिए भाईचारे की, एकता की भावना। ऐसा नहीं है कि चरित्र के लिए अलग से कोई वर्ग नहीं लिया जायेगा। नीति-शास्त्र की चर्चा हो सकती है, आधुनिक समाज में क्या परिस्थिति है, और उन परिस्थितियों में मौजूदा रीति-नीति में क्या परिवर्तन करने की आवश्यकता है, बौद्धिक स्तर पर इनकी चर्चाएँ हो सकती हैं।

अपने देश में अनेक धर्म हैं। यह सम्भव है कि जो जिसका धर्म है, उसे यह माने कि हमारा धर्म सबसे अच्छा है। परन्तु साथ-साथ दूसरे धर्मों के प्रति वह आदर रखे, यह तो अवश्य ही होना चाहिए। यह एक सत्य है मानवीय जीवन के लिए। सभी धर्मों में कुछ-न-कुछ तत्त्व हैं। कोई धर्म ऐसा नहीं है जो दावा कर सकता है कि सारा तत्त्व हमारे ही पास है। इस प्रकार से हम अपने धर्म का पालन करें और हमें लगे कि किसी धर्म में कोई अच्छाई है, कोई सत्य है, तो हम उसे ग्रहण भी करें। इससे हम कोई विधर्मी बन जाते हैं, ऐसा नहीं है। हमारे धर्म में जो प्राण था, जो शक्ति थी, जो तेज था, वह आज नहीं है, बाहर का ऊपरी रूप है, कर्मकाण्ड है, दिखावा है। नहीं तो हमारे ये हरिजन भाई किस प्रकार से रह रहे हैं? आज आठ करोड़ की संख्या है उनकी। समाज में उनकी क्या दशा है?

आज हिन्दू धर्म के नाम से जो धर्म प्रचलित है उसके अन्दर उनका स्थान नहीं है। आदिवासी हैं, ये भी दूर हैं हमसे। ईसाई मिशनवाले किस प्रकार से इनका धर्मान्तर कर रहे हैं? वह कोई धर्म समझाकर कर रहे हैं ऐसी बात नहीं है। हिन्दू धर्म अपनी संकीर्णता के कारण अपना ही नुकसान कर रहा है। वे सब पूछते हैं कि हिन्दू बनेंगे तो कहाँ रखिएगा आप? हम बौद्ध होते हैं, ईसाई होते हैं, मुसल्मान होते हैं तब तो बराबरी के दर्जे पर आते हैं। यह थोड़ा विषयान्तर हुआ। लेकिन जानबूझकर यह विषयान्तर इसलिए किया कि जो दुर्बलता हमारे अन्दर आयी है, उसका परिणाम होता है कि हम अपने को दूसरों से बचाने के लिए जाति-प्रथा के नाम पर, छुआछूत के नाम पर, खानपान के नाम पर एक दीवार खड़ी कर लेते हैं और उसके अन्दर हम घेर लेते हैं अपने को।

लोकतान्त्रिक आस्था

जहाँ तक लोकतन्त्र की बात है, उसके एक-एक मुद्दे को लेकर के सोचना होगा हमें कि लोकतन्त्र को पुष्ट करने के लिए तरुण क्या कर सकते हैं। तरुणों की कोई पार्टी होगी चुनाव लड़ने के लिए, उनकी कोई अलग हुकूमत होगी, कोई शासन खड़ा किया जायेगा, तब लोकतंत्र पुष्ट होगा या तरुणों को अमुक पार्टी में भरती होना होगा, क्या करना होगा? यह समझने की जरूरत है। आज तो वर्तमान जो परिस्थिति है अपने देश की, और खासकर बिहार की, यह समस्या बहुत महत्त्व की हो गयी है। सन् '६७ के बाद से अपने देश में जो लोकतंत्र है उसकी नौका बिल्कुल डाँवाडोल है। कब डूब जायेगी, कहना मुश्किल है। इस हालत में अगर यह सन्देह पैदा हो कि इसका भविष्य और भी धूमिल है, खतरे

म है तो यह कोई मदद देने वाली बुनियाद तो नहीं होगा । बहुत से पढ़े लिखे लोग, आर ना शिक्षक कालेज क, स्कूल के तथा दूसरे लोग कहते हैं, 'साहब, अब राजनीति पर हमारा विश्वास नहीं रहा, इस चुनाव पर हमारा विश्वास नहीं रहा, लोकतंत्र की पद्धति पर विश्वास नहीं रहा ।' तो किस पर विश्वास है ? भगवान ने बुद्धि दी है तो सोचना चाहिए न कि इसका कोई विकल्प है, कैसा विकल्प है, क्या है ? और तरुण नहीं सोचेंगे तो कौन सोचेगा ? अगर तरुण नहीं सोचेगा तो क्या होगा ? डिक्टेटरशिप (तानाशाही) होगी । आपने देखा, तानाशाह अपने बगल मे था, उसका क्या परिणाम हुआ ? जनता का विद्रोह हुआ तो गद्दी छोडनी पडी । बहुत से लोग कहते हैं कि लोकतंत्र म भ्रष्टाचार होता है अब अयूब खाँ साहब के जाने के बाद उनकी पार्टी के लोगों ने उन पर आरोप लगाया है कि दो करोड रुपय का हिसाब देना है आपको । दो करोड रुपया किधर गया मालूम नहीं है । दुनिया के किस देश म तानाशाह है जिसने कि बहुत कुछ कर दिया ? सुकर्णो था, क्या उसका हुआ ? अनक्रूमा था, उसका क्या हस्र हुआ ? ईराक म कितने आये और गये । नासिर की स्थिति भी डाँवाडोल है, न जाने क्या होगा । इस्तीफा नहीं दिया होता, तो शायद और भी ज्यादा विरोध उनका हुआ होता । तो इस पर हमे बहुत गम्भीरता से विचार करना पडेगा ।

विश्वशान्ति

विश्वशान्ति एक ऐसा लक्ष्य है, जिसके बारे म आज विवाद नहीं है । अभी अखिल भारतीय तरुण-शान्तिसेना का सम्मेलन हुआ । उस सम्मेलन का उद्घाटन किया गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने । उन्होंने कहा कि आइन्स्टीन न ऐसा कहा है कि मुझे नहीं मालूम तीसरा विश्व-युद्ध किस प्रकार का होगा, (शायद ऐसा होगा जिसमे मनुष्य चूहों की तरह मरेंगे) लेकिन हम मालूम है कि चौथा विश्वयुद्ध किस प्रकार का होगा । इस बारे मे हम कोई संशय नहीं है । और कहा उन्होंने कि चौथा विश्वयुद्ध होगा ऐसा जिसम लोग लडेंगे मुक्कों से और लाठियों से, यानी अगर तृतीय विश्वयुद्ध हुआ तो इस सारी सभ्यता का और मानव सृष्टि का सर्वनाश हो जायगा, मानव समाज हजारों वर्ष पीछे चला जायगा । इसलिए विश्वशान्ति कोई ऐसी एक वस्तु है या कोई ऐसा एक उद्देश्य है जिसे कुछ पागल लोग जो अहिंसा को मानते है उन्हीका ध्येय है ऐसा नहीं । दुनिया का आज कोई राष्ट्र ऐसा नहीं जिसका राष्ट्राध्यक्ष या प्रधानमंत्री यह नहीं कह रहा है कि हम विश्वशान्ति चाहते हैं । संयुक्त राष्ट्र-संघ बना ही इसलिए कि दुनिया मे कहीं भी आग लगती है तो सबको यह भय है कि अब युद्ध को एक क्षेत्र मे सीमित करना कठिन है ।

पश्चिमी तरुणों का विद्रोह

सारा जो विद्रोह हुआ है अमेरिका मे, तरुणो और तरुण शिक्षको का, उसके पीछे जो सबसे बडी प्रेरणा थी, वह वियतनाम-युद्ध की थी। राष्ट्रपति जानसन को गद्दी छोडनी पडी। उन्हे एलान करना पडा कि मैं खडा नहीं होऊँगा अगले चुनाव में। आप देख रहे हैं कि श्री निक्सन ने घोषणा की है कि वियतनाम से धीरे-धीरे अपने सैनिको को वापस बुलायेंगे। अबतक ३० हजार वापिस करने का तय किया है और हाल मे ही कहा है कि जो समय निर्धारित था, उससे पहले ही हम हटा लेंगे। तो युद्ध अब वैसा नही रहा जैसा पहले था। इसलिए आज लोग गाधीजी के भक्त हो गये हैं, ईसामसीह के भक्त हो गये हैं, ऐसी बात नही है। बौद्ध भी हैं, और हिन्दू या भारतीय भी हैं जो गाधीजी को माननेवाले हैं, और ईसाई भी हैं, जिनके हृदय मे अभी वे सब बातें मौजूद हैं जिनसे युद्ध पैदा होता है, हृदय मे भी, मानस मे भी। युद्ध तो हमारे दिमाग मे घुसा हुआ है, जो बराबर प्रकट होता रहता है। वह जो पशु हमारे अन्दर बैठा है, काफी प्रबल है। सबको खतरा है कि इस पशु के हाथ मे जो हथियार है *वह पुराना हथियार नहीं है, सर्वनाशक* हथियार है। तो विश्वशान्ति अब सबको मान्य है, चीन को भी मान्य है। इसलिए विश्वशान्ति अब सर्वमान्य है।

ऐसी बात नही है कि चीन विश्वशान्ति नही मानता है, विश्वयुद्ध की तैयारी कर रहा है। वह जानता है कि इसका परिणाम क्या होगा। इसलिए एक हद तक वह लडाई ठानता है, लेकिन उसके आगे वह नही जाता। रावण की तरह एक हद तक वह आगे बढता है। विश्वशान्ति के बारे मे इतना उछल-कूद उसने की, लेकिन कम-से-कम मदद की है वियतनाम की। रूस से भी झगडा है, अमेरिका से झगडा है। बातो मे तो वह झगडता है, बहुत गालियाँ बकता है, लेकिन वास्तव मे *काम मे भयभीत है। लेकिन दुनिया मे उसका जो स्थान है* वह 'पावर' ही नही, 'सुपर पावर' के रूप मे हैं, इस बात को वह स्थापित करना चाहता है, और लगभग वह बात स्थापित हो चुकी है। तो सब यह मानते हैं कि विश्वशान्ति होनी चाहिए। इधर-उधर आग लगे तो उसको बुझाना चाहिए। अब तरुण शान्तिसेना इस विश्वशान्ति को नजदीक लाने म, व्यावहारिक करने मे क्या मदद कर सकती है? तरुण हमसे पूछते हैं कि यह शान्ति-शान्ति क्या है? हमे रस्सियो मे बाँधना चाहते हैं क्या? हम सारे समाज को पलट देना चाहते हैं तो शान्ति के नाम मे क्या आप यथास्थितिवाद को प्रश्रय देते हैं?

समग्र सामाजिक क्रान्ति

ऐसी बात नहीं है। मुझे केवल सामाजिक न्याय से सतोष नही है। मैं सम्पूर्ण

और समग्र सामाजिक शान्ति चाहता हूं। आज समाज में जितनी बुरीतियां हैं उनमें आमूल परिवर्तन करना है। लेकिन जाति प्रथा है तरुणों में, शिक्षकों में, राजनैतिक नेताओं में और लगभग सभी लोगों में। भयंकर जातिवाद है। तरुणों के स्वयम् में है क्या जातिवाद ? बैठता है तरुणों के स्वयम् में ? इस तरह के छोटे-से घरौंदे में घिरे रहेंगे क्या हमारे तरुण ? और हर जाति के तरुण अलग अलग रहेंगे क्या ? जो जाति की कल्पना आज के समाज में है भावी समाज हम बनाना है उस समाज की कल्पना में भी उस जातिवाद का, जाति की संस्था का स्थान है क्या ? आज कोई कहता है कि विवाह की प्रथा में सुधार करना चाहिए ? माता पिता अगर सकोच भी करते हों कि कितना हम पैसा मांगे कितना हम दहेज मांगे अपने बेटे की शादी के लिए तो बेटा खुद आगे आकर बोलता है। यह तरुणाई का लक्षण है क्या ? ऐसे ही तरुण नया भारत बनायेंगे क्या ? और वह भारत कैसा होगा जिस भारत के तरुणों ने शादी के लिए अपनी कीमत रुपयों में तय की हो और उसकी बीवी के माँ-बाप ने उनको खरीदा हो। वह कैसा समाज बनेगा ? वह कोई सुसंस्कृत समाज होगा ? भारतीय समाज होगा ? तो तरुणों में अगर शान्त भावना हो और वे समाज की शान्ति के लिए साधन बनें तो फिर उनका आचरण कैसा होना चाहिए दूसरे के साथ उनका बरताव कैसा होना चाहिए ? आजकल के तरुणों में बहुत अहम् है। उनका व्यवहार जो उनके नीचे के लोग हैं उनके साथ बराबरी का नहीं होता सौहार्द्र का नहीं होता। तो तरुण सामाजिक शान्ति में कैसे सहायक हों यह सोचना होगा। केवल जुलूस निकालना, नारे लगाना गालियाँ देना उपकुलपति का घेराव करना तोड़फोड़ करना, बेचारे गरीब बस के कण्डक्टर को मारना-पीटना परीक्षा भवन में चोरी कर रहे हों और निरीक्षक ने पकड़ लिया परीक्षा हाल से निकाल दिया तो दूसरे दिन कहीं मिलकर उसकी ठोकाई कर देना। क्या यह तरुणाई है ? क्या यही शान्ति है ? क्या इससे कोई नया भारत बननेवाला है ? अगर शान्ति की भूख है और उसका साधन बनना है तो उसके योग्य बनना होगा।

आखिरी उद्देश्य तरुण शान्तिसेना का है कि शिक्षा प्रणाली में और शिक्षा के तंत्र में परिवर्तन होना चाहिए। तरुण शांतिसेना के लोग गम्भीरता से उस पर विचार करें और जो तरुण हैं विद्यार्थी की हैसियत से उनकी समस्याएं क्या हैं, उन समस्याओं को समझने की कोशिश करें और उनको हम दूर करने की चेष्टा करें। अगर ये चार उद्देश्य हम सामने रखते हैं तो देश के नवनिर्माण में तरुणों का सर्वांगीण रूप से योगदान हो सकता है ऐसा मैं मानता हूं।

(तरुण शांतिसेना शिविर, पूसारोड के २२ जून '६९ के भाषण से।)

शिक्षा में क्रान्ति

धीरेन्द्र मजूमदार

मुझसे कहा गया है कि मेरा विषय 'शिक्षा मे क्रान्ति' है। यह विषय ही मेरी समझ मे नही आया। वस्तुत समाज-जीवन के हिस्सों मे क्रान्ति नहीं होती है, अत शिक्षा–जो समाज-जीवन का एक हिस्सा भर है–में क्रान्ति न होती है और न हो ही सकती है। यह पहली बात समझ लेनी चाहिए। *क्रान्ति समाज के विभिन्न विभागों* मे नही होती है, गहराई से सोचें तो यह समझ म आयेगा कि समाज मे भी क्रान्ति नहीं होती है। अगर किसीमें क्रान्ति होती है तो वह दिमाग मे होती है। दिमाग मे *क्रान्ति होती है तब, जब परिस्थिति की आवश्यकता क्रान्ति की होती है।* वैसे कुछ विचारक होते हैं जो बहुत आगे की परिस्थिति को देख लेते हैं और क्रान्ति का उद्घोष करते हैं। लगता है कि यह क्रान्ति का उद्घोष परिस्थिति-निरपेक्ष है। उसके लिए एक शब्द है–'*यूटोपिया*'। *लोग 'यूटोपिया' उसको कहते हैं जो भविष्य की* परिस्थिति के लिए सम्भावित क्रान्ति की परिकल्पना होती है। वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ मे जिस क्रान्ति का उद्घोष होता है, उसको वैज्ञानिक क्रान्ति कहते हैं। अब *आजकल 'क्रांति' शब्द बौद्धिक फैशन मे आ गया है। कृषि मे क्रान्ति, सड़क बनाने* मे क्रान्ति हो जाती है, और न मालूम किस किस चीज मे क्रान्ति होती है। यानी यह मानना होगा कि 'क्रान्ति' इस युग की आवाज है।

क्रान्ति का क्रमिक विकास

दिमाग मे क्रान्ति, समाज मे क्रान्ति की आवश्यकता किस-किस चीज से होती है? इन्सान की क्रांति की प्रेरणा दो चीजो से होती है· एक, जिन्दा रहने की आवश्यकता और दूसरी, विकास की आकाक्षा। शायद उस दिन एक क्रान्ति हुई थी, जिस दिन मनु आया था और उसने एक अनुशासित समाज बनाने की बात की थी। तब हम स्वच्छन्द समाज से अनुशासित समाज पर आ गये थे। एक बडी क्रान्ति हुई थी। इन्सान ने देखा कि मत्स्य-न्याय हो रहा है, एक-दूसरे को मारकर खा रहे हैं। तो जिन्दा रहने की आवश्यकता मनुष्य को प्रजापति के पास ले गया था, बचने का उपाय बताने के लिए। और तब 'राज्य', सत्ता', 'राजा' इत्यादि एक सामाजिक शक्ति का अधिष्ठान हुआ था समाज के सन्तुलन की रक्षा के लिए, अमन और चैन रखने के लिए, ताकि इन्सान एक-दूसरे को खाकर न मरे। समाज मे शान्ति रहे और विकास की साधना मे मनुष्य जुट सके। विकास की आकांक्षा और जिन्दा रहने की आवश्यकता ने मिलकर राज्य-शक्ति, सैनिक-शक्ति इत्यादि व आधार के रूप

में शस्त्र-शक्ति का आविष्कार किया और उसे एक सामाजिक शक्ति के रूप में संगठित किया। मैं मानता हूँ कि मनुष्य के दिमाग में यह एक क्रान्ति हुई थी। भय से सबको ठीक रखना शायद उस समय की जरूरत थी। लोग एक-दूसरे को खाते थे। उससे आगे का एक कदम बढ़ा।

लेकिन यह जो क्रान्ति हुई वह किस दिशा में हुई? मनुष्य अनुशासित रहे। समाज में शान्ति रहे। यह शुरू हुआ। फिर राजा आया। उसके पेट में से बहुत कुछ निकला। राजा ने सैनिक बनाया, लोगों को डराकर रखने के लिए। अमलदार बना, लोगों को चलाने के लिए। इस तरह से एक राजनैतिक-क्रान्ति हुई। दूसरी चीज आर्थिक है। उस समय पत्थर-युग था, या ताम्र-युग था। जिन्दा रहने के जरूरी सामान पैदा करने के लिए बड़ा कष्टकर तथा समय-सापेक्ष पद्धति थी, बहुत तकलीफ से पसीना बहाकर अन्न-वस्त्र पैदा करना पड़ता था तो लोगों ने सोचा होगा, कि दिनभर इतना काम करने के बाद सोचने का, समाज-शिक्षण को आगे बढ़ाने तथा इस तरह के अन्य कामों के लिए समय नहीं बचता है। सो कुछ लोगों को खाली करो, जो अक्ल रखनेवाले हों और उनसे कहा कि तुम यह सब किया करो—चिन्तन, मनन, अध्ययन, अध्यापन, सेवा। एक सेवक बनाया और उससे कहा कि तुम्हें 'ट्रेजरी' में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। तुम यही सब किया करो। हम अपने पैदावार से कुछ हिस्सा तुम्हें दिया करेंगे।

समाज में वर्गों का विकास

अब यह एक सेवक हुआ बिना खेती किये हुए खलिहान खानेवाला। उसके चार बेटे हुए। अब एक तो सेवक हुआ, लेकिन उसके साथ चारों बेटे उसी प्रकार का जीवनक्रम चलायेंगे न? 'खलिहान' खाकर पेट चलायेंगे न? वह 'खलिहान' खाकर जवान हुआ और उसको जब जीवन में प्रवेश करना हुआ तो और चार आदमी को खलिहान खाकर जीविका चलाने की आवश्यकता पड़ी। इस तरह होते-होते एक नया वर्ग बना—सेवक वर्ग। सेवक चाहिए, नेता चाहिए, गुरु चाहिए, पुरोहित चाहिए। यह राज्य-संस्था और सेवा-संस्था का क्रम इस तरह से अबतक चल रहा है। रक्षण, पोषण, और शिक्षण के नाम से, और अनेक प्रकार की अन्य सेवाओं के नाम से, इस वर्ग की एक विशाल फौज जनता की छाती पर बैठ गयी और उसका शोषण होने लगा। अब बीच में क्रान्तियाँ हुईं—फ्रांस में, रूस में। परन्तु मूल रूप से सामाजिक शक्ति और समाज की पद्धति वही रही, जो बनी और विकसित हुई थी। मनु के आने के बाद से सामाजिक शक्ति शस्त्र और दण्ड की रही और सामाजिक यंत्र सेवक-आधारित पद्धति; यानी सेवक की एक जमात सोचेगी जनता के लिए। जनता की भी मान्यता यह रही कि यही लोग सब कुछ करें, और हमें इनको शक्ति

देती है, भक्ति देती है, चन्दा देता है, टैक्स देता है, अर्थात् इनको जो पास है उसे दे देता है। यह पहली चरण। कोई कहता है १ लाख वर्ष चली कोई कहता है २० हजार वर्ष चली १०-१२ हजार वर्ष तक तो कहता ही है।

परिस्थिति में परिवर्तन

अब दुनिया की परिस्थिति और मन स्थिति बदल गयी है। परिस्थिति क्या बदली है? पुराने जमाने में जो शस्त्र को सामाजिक शान्ति के रूप में मान्य किया गया था अब वह नहीं रही। अबतक समाज में शान्ति कायम रखने के लिए पुलिस के हाथ में शस्त्र चाहिए, समाज की रक्षा के लिए सैनिक के हाथ में शस्त्र चाहिए, समाज-परिवर्तन के लिए क्रान्तिकारी के हाथ में शस्त्र चाहिए, यहाँ तक कि धर्म संस्थापन के लिए अवतार को भी शस्त्र चाहिए, यह मान्यता रही। अब ऐसे भयावह आणविक शस्त्रों का आविष्कार हुआ है कि अगर उनका प्रयोग हुआ तो सर्वनाश हो जायगा। इस परिस्थिति के कारण निःशस्त्रीकरण की माँग हो गयी है। उधर विज्ञान और लोकतंत्र ने मनुष्य की मन:स्थिति को भी बदल दिया है। पुराने जमाने में आम जनता अन्धविश्वास पर चलती थी, विज्ञान ने अन्धविश्वास को खत्म कर दिया। देवता का अभिशाप होगा, इसलिए करो अब चन्द्रमा देवता नहीं रहा, उसकी छाती पर मनुष्य चढ़ बैठा है। वरुण देवता नहीं है हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलाकर वरुण बन जाता है। मनुष्य में ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि के कारण चेतना आ गयी है। इसीलिए न किसी देवता पर, न किसी गुरु या मनुष्य पर अन्धविश्वास रह गया है। लोकतंत्र ने साम्य, मैत्री, समानता का पाठ पढ़ाया, चार सौ वर्षों तक—हर मनुष्य समान है, आपस में मित्र है और हर मनुष्य स्वतंत्र है। तब नेता, और नेता में मंत्र आ जाते हैं—गुरु, महात्मा इत्यादि के निर्देश पर चलने की मन स्थिति नहीं है। अब स्वतंत्रता दिमाग में घुस गयी है। दूसरी तरफ एक परिस्थिति बनी है, वह भी लोकतंत्र के दिशाभ्रम के कारण बनी है। लोकतंत्र का आविष्कार हुआ था दबाव-शक्ति की जगह पर मनाव-शक्ति के अधिष्ठान के लिए। 'कोएर्शन' से 'कनसेण्ट' पर जाने के लिए। लोकतंत्र ने कहा कि अब सिर फोड़कर मामला तय नहीं करना है, सिर गिनकर मामला तय करना है। यह लोकतंत्र का विचार है। यानी लोकतंत्र ने देखा और सब देखा, जब जेम्स वाट ने वाष्प-शक्ति का अविष्कार किया था यानी विज्ञान को जब द्रुत गति मिली थी, तब मनुष्य के मन में विचार आया कि अब यह दण्ड-शक्ति, श्रम-शक्ति, शस्त्र-शक्ति नहीं चलेगी। उसी समय समाजशास्त्री के दिमाग में लोकतंत्र का विचार घुसा था।

नयी लोकतान्त्रिक क्रान्ति में भ्रामक मान्यता

फिर सामाजिक शक्ति बदलने की बात सोची गयी लोकतंत्र में। बहुत बड़ी

क्रान्ति का विचार लोकतंत्र ने दिया। यानी पहले जमाने में सामाजिक शक्ति का अधिष्ठान हुआ था दण्डशक्ति के रूप में। उसकी जगह दूसरी सामाजिक शक्ति के अधिष्ठान की जो बात की गयी वह एक क्रान्ति की बात हुई। भारत में क्रान्ति हुई। उन क्रान्तिकारी नेताओं ने इस विचार के लिए बहुत बड़ा त्याग किया, तपस्या की संघर्ष किया। लेकिन जैसा कि गांधीजी कहते हैं कि लक्ष्य के अनुसार साधन नहीं हुआ तो लक्ष्य ही साधन के अनुसार डीफ्ट कर जायेगा, वैसा ही हुआ। आपने शस्त्र-शक्ति की जगह पर सम्मति-शक्ति का अधिष्ठान करना चाहा लेकिन उसकी प्राप्ति में शस्त्र और दबाव की शक्ति का ही इस्तेमाल किया, तो क्रान्ति की निष्पत्ति दूसरी तरफ चली गयी। उसमें से नेपोलियन बोनापार्ट निकला घोर दबाववाला, सम्मतिवाला नहीं। तो एक पहलू है लक्ष्य और साधन। दूसरा पहलू है विचार और पद्धति। किसी चीज के चलने के लिए दो चीजें चाहिए—शक्ति और यन्त्र, यानी इंजिन। अगर कोयले की शक्ति से इंजिन चलायेंगे तो इंजिन की एक डिजाइन होगी। लेकिन अगर डिजल से चलाने की बात हुई तो इंजन की डिजाइन भी बदलेगी। अगर कोयले के इंजिन में कोयले की जगह डिजल भर दीजिए तो इंजिन चलेगा? लोकतान्त्रिक क्रान्ति के नेताओं ने इस बात को नहीं समझा। राजतन्त्र में राजा ने जिस डिजाइन का तन्त्र बनाया था उसी तन्त्र से लोकतन्त्र को चलाने का प्रयास हुआ। मैं विनोद में कहता हूँ कि कोयले के इंजिन पर ही डिजल इंजिन का नाम लिख दिया और नाम लिखकर कोयले के इंजिन के ड्राइवर को ही डिजल के इंजिन को चलाने के लिए बैठा दिया।

राजतंत्र में समाज के लिए सारा सिरदर्द राजा का माना गया है। इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए उसे प्रतिभावान व्यक्तियों की सलाह चाहिए थी यानी उसे एक मंत्रि-मंडल चाहिए था। एक अमलातन्त्र जुटाना पड़ा था। लेकिन जब आप लोकतंत्र कहते हैं तो उसकी जिम्मेदारी लोक की होगी। लोक का सिरदर्द होगा तो उसके लिए क्या तरीका होगा? इसके बारे में सोचा नहीं गया। इसके लिए संघर्ष नहीं किया। इसके लिए परेशानी उठाने की तैयारी नहीं थी। जो 'रेडीमेड' बनी बनायी पद्धति थी, उसीको लोकतन्त्र में इस्तेमाल करने लग गये। उससे क्या हुआ? घूम-फिरकर वही पुरानी बात हो गयी। वही शस्त्र-शक्ति वही अधिकारवाद वही दबाव का सहारा। सामूहिक शक्ति में कोई बदल नहीं हुआ। लोग कहते हैं, हुआ क्यों नहीं साहब, सम्मति से लोग व्यक्तिगत सम्पत्ति का विसर्जन कर रहे हैं ग्रामदान हो रहा है, प्रदेशदान की तैयारी है। अरे भाई चार सौ साल हो गये इस क्रान्ति का उद्घोष हुए। आप ग्रामदान-ग्रामदान कर रहे हैं! क्या हुआ उससे? ग्रामदान में यही न कर रहे हैं कि सम्मति से सम्पत्ति विसर्जन हो? आप दूसरा क्या कर

रहे हैं ? सम्मति-शक्ति का अधिष्ठान कर रहे हैं, जिसका उद्घोष चार सौ साल पहले हो चुका है। विनोबा आज वही कह रहे हैं, गांधी ने वही कहा, जो लोकतंत्र के क्रान्तिकारियों ने कहा था। फरक इतना ही है कि गांधी-विनोबा मंत्र के अनुसार तंत्र की खोज कर रहे हैं, जिसके अभाव में लोकतंत्र आज सैनिक-तंत्र के हाथों पराजित हो रहा है। मैं इतना विस्तार में इसलिए कह रहा हूँ कि आज आप लोग वही गल्ती नहीं करें। यह जो गल्ती हुई कि 'रेडीमेड इन्स्टिट्यूशन,' 'रेडीमेड पद्धति', 'रेडीमेड यंत्र' से समाज चलाने का प्रयास किया गया, तो उल्ट गया मामला। क्यों उल्ट गया ? हमारे देश में पुराने लोग कहते हैं—'स्वधर्मच्युत ब्राह्मण स्वधर्मस्थित शूद्र से निकृष्ट' होता है। तो यह स्वधर्मच्युत लोकतंत्र स्वधर्मस्थित राजतंत्र से निकृष्ट हो गया।

इस विरोधाभास का कारण ?

कैसे हुआ, आपको बताना चाहता हूँ। पहला दोष क्या आया ? वही केन्द्र द्वारा *सर्वाधिक नौकरशाही से चलेगा, वही सैनिक-शक्ति से चलेगा,* तो पहली चीज क्या हुई ? औद्योगिक क्रान्ति के साथ जो अति केन्द्रित पूंजीवाद का संगठन हुआ, उसने *लोकतंत्र के तंत्र पर कब्जा कर लिया। राजा मरा, लेकिन लोकतंत्र का लोक पूंजीवाद की मुट्ठी में चला गया, औद्योगिक क्रान्ति के कारण। "जिसके हाथ में डोई, उसके सब कोई।" तो डोई था पूंजीवाद के हाथ में। यह जो लोकतंत्र का* चुनाव-तंत्र था, वह पूंजीवादी मुट्ठी में चला गया। यह एक पहला संकट हुआ। लोक-मूलक तंत्र न बनकर केन्द्र-मूलक तंत्र बना। जैसे पहले राजा सब काम कर देता था, वैसे ही अब लोकतंत्र का ठीकेदार हमारा काम कर देगा। पहले हमको चन्दा, दक्षिणा, टैक्स वगैरह देना पड़ता था अब लोकतंत्र में एक चीज बढ़ी कि वोट देना होगा, यानी एक आइटम बढ़ा दक्षिणा का, बाकी वही रहा। तो फल-स्वरूप आज दुनिया में जितना लोकतंत्र चल रहा है उसका लोक पूंजीवादी शोषण से पिस रहा है। पहली बात यह हुई। दूसरी बात क्या हुई ? मैं सब जगह यही बात कहता हूँ, थोड़ा विनोद भी है। कहते हैं—"सैंया भये कोतवाल, फिर डर काहे का" यानी जनता का सैंया कोतवाली पर चढ़ गया। राजा हो गया। तब वह और क्या सोचती है ? जेवर चाहे जहाँ फेंक दो, उस पर सोचो मत, अब सैंया करेगा ही कोई-न-कोई इन्तजाम। तो जनता का सैंया आ गया, वही कुल करेगा। जनता का ध्यान वही करेगा, क्योंकि सैंया जो वहाँ पहुँचा है।

हर चीज की 'करोलरी' होती है, इसकी क्या 'करोलरी' हुई ? अगर जनता की समस्त समस्याओं पर ध्यान देने की राज्य की जिम्मेदारी है तो जिम्मेदारी निभाने के लिए सारे साधन का अधिकार भी राज्य को देना पड़ेगा। इसीको सर्वाधिकारी

राज्यवाद कहते है। यानी एक कल्याणकारी राज्यवाद का जन्म हुआ लोकतंत्र म। उसम स सर्वाधिकारवाद निकला। फलस्वरूप राजतंत्र का राजा जितना ज्यादा जनता के अग-प्रत्यग पर कब्जा कर रखा था, उसस अधिक लोकतंत्र का तत्र कर रहा है हजार गुना ज्यादा। यह दूसरा सकट हुआ। तीसरा सकट साम्य मैत्री, स्वतंत्र्य का नारा और अधिकारवाद की प्रगति है। एक तरफ आम जनता की मन स्थिति का निर्माण हो रहा है स्वतंत्रतावादी दूसरी तरफ समाज की परिस्थिति ज्यादा स ज्यादा अधिकारवादी बन रही है। एक तरफ है घोर स्वातंत्र्यवाद और दूसरी तरफ है उत्कट अधिकारवाद। इस तरह एक भयकर विसंगति का निमाण हो रहा है।

स्वतंत्रता का स्वधम

अब स्वतंत्रता का स्वधम है अधिकार को अस्वीकार करने का और अधिकार का स्वधम है स्वतत्रता को बदाश्त न करने का। यह कशमकश दुनिया म चल रही है। आज की तरुण पीढ़ी को दुनिया का कोई अधिकारी नियंत्रित नहीं कर पा रहा है यद्यपि पहले से आज इन राज्यो के हाथ मे हजारगुना अधिक दबाने की शक्ति इकट्ठी हुई है। अर्थात् परिस्थिति और मन स्थिति म घोर विसगति का निमाण हो गया है। फलस्वरूप ससार म कहीं शान्ति नहीं है। चारो ओर निराशा फैली हुई है।

चौथा सकट नेतृत्व विमोचन का है। नेता शासक हो गय। पहले राजा शासक था नेता नेतृत्व करता था। जनता म ज्ञान-विज्ञान बढा जनता म नेताओ ने गुण दोष समझने की शक्ति बनी और नेता मे आपस मे दोष-कथन करने की वृत्ति बढ़ी क्योकि वे शासक हुए सत्ता मे गये तो सत्ता-सघष हुआ। लोकगति के अनुसार जनमत को आगे बढाना नेता का काम है। प्रतिनिधि का काम क्या है? जनमत के अनुसार चलना। तो जो नेता था, जो जनमत से आगे चलनेवाला था जनमत को मार्गदर्शन करनेवाला था उसको आप लोकतंत्र म जनमत के पीछे घसीट ले गये, कहा कि जनमत का अनुसरण करो। नेता प्रतिनिधि हो गया, जनमत का अग्रगामी कोई नहीं रहा। आज प्रतिनिधि को नेता कहा जाता है। जो प्रधानमंत्री है वह मुल्क का नेता कहा जाता है। पर ऐसा है नहीं प्रतिनिधि वह विधानसभा का सदस्य हो अथवा प्रधानमंत्री वह तो जनमत के पीछे चलता है। आगे का रास्ता नहीं दिखाता। अर्थात् आज समाज से नेतृत्व ही समाप्त हो गया है।

पाँचवी बात हुई कि पहले संघष राजा राजा के लड़को भतीजो म हुआ करता था। उसे कहते थ पलेस रेवोल्यूशन (राजमहल की क्रान्ति)। अब जो सघष प्रासाद के अदर था अब वह सड़क पर आ गया सड़को गलियो और

देहात म आ गया । हर बालिग राजा हो सकता है तो हरेक के दिल म राजा होने की आकाक्षा का निर्माण स्वाभाविक है । आकाक्षा है तो उसकी पूर्ति के लिए पार्टी-बन्दी है, झगडा है, व्यर्थ का बतंगड है। इन तमाम कारणो से यह लोकतत्र राज-तंत्र से निकृष्ट हो गया है । कही भी लोकतत्र नही चल रहा है—पूजीवादी देशो म भी नही और अधिनायकवादी देशो म भी नही। वह तो धराशायी हो रहा है। लोकतत्र का नाम सबन तो है, परन्तु किसी-न-किसी रूप म एक तानाशाही, एक गुटशाही, गुप्ततन्त्र चलने लग गया है। इस कारण आज दुनिया परेशान है। विचार की क्रान्ति आज से ४०० वर्ष पहले, जिस दिन लोकतत्र आया था, उस दिन हुई थी । लेकिन स्टेटस्को', अर्थात् यथास्थितिवाद से उस विचार को चलाने की कोशिश हुई थी इसलिए आज सारा मानव-समाज दूसरी दिशा मे चल रहा है। यानी एक असफलता, पराजय, सारी दुनिया म एक निराशा व्याप्त है । चाय की दुकान पर जाकर आप सुनिए । जो कुछ वहाँ सुनने को मिलता है, अगर उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेपण करें, तो आप कहेंगे कि पराजित मनोवृत्ति का इजहार हो रहा है वहाँ। पूरी दुनिया म निराशा है।

इस युग की क्रान्ति की आवश्यकता

क्या हुआ ऐसा ? क्योकि विचार की क्रान्ति के साथ-साथ पद्धति की क्रांति की खोज नही हुई। दिमाग म यथास्थिति थी उसीम क्रान्ति को घुसाने की कोशिश की गयी। इसीलिए मने कहा कि समाज यथास्थित रहे और आप शिक्षा म क्रान्ति करना चाहेंगे, तो नही होगी । आपको विचार के अनुसार समाज के सारे ढाँचे को बदलना होगा। अब वह नया कौनसा ढाँचा हो, कि सम्मति-शक्ति स चल । भय शक्ति स नही, शस्त्र शक्ति स नही, सम्मति-शक्ति से चले, ऐसा कौन-सा इजिन होगा ? उसकी कौनसी डिजाइन होगी ? यह निकालना, आज के जमाने की क्रांति की आवश्यकता है । इसलिए गाधी ने कहा था कि मैं कोई नयी बात नही कर रहा हूँ, मैं नया मार्ग खोज रहा हूँ। गाधी वाद' नही है, गाधी 'मार्ग' है। वाद तो हो चुका शस्त्रवाद के स्थान पर सम्मतिवाद । गाधी ने सम्मतिवाद की बात कही, विनोबा सम्मतिवाद की बात कह रहा है कोई नयी बात नही । उस समय सम्मति की क्रान्ति की जो सूझ हुई थी, उस सूझ के साथ-साथ मार्ग खोजने की तकलीफ नही उठायी गयी या सूझा नही । सहूलियत के मोह से बनी-बनायी पद्धति को अपना लिया गया । आज पूरे समाज के जो यत्र हैं, समाज का जो तत्र है, विकास की साधना की जो प्रक्रिया है, उसकी सारी डिजाइन बदलनी है, और उसके लिए *शिक्षा का तरीका क्या होगा*, सोचना है । *लोग* कहते हैं, बेसिक एजुकेशन फेल हुआ । क्यो नही होगा ? पुराने समाज मे आप बेसिक एजुकेशन को घुसाना चाहते

है लड़की को कुदाल देकर कहते हैं कि खेत म काम करो। लड़का देखता है कि माँ अगर निकौनी करने जायगी तो उसकी नाक कट जायगी, बाप हल पकड़ेगा, तो उसकी नाक कट जायेगी, तो वह सोचता है— हमारी नाक काई पान्तू है क्या ?' अजीब तमाशा है कि रूढ़ समाज म क्रान्तिकारी शिक्षा घुसाने की कोशिश कर रहे हैं पागल हो गये है लोग।

सोचना और करना क्या है ?

मैंने आपसे आज कहा कि समाज की धृति शक्ति और चालन-शक्ति शस्त्र नहीं, सम्मति है। जिसके लिए हमारे ऋषियों ने स्वप्न देखा था, और क्रान्तिकारी साधकों ने जिसके लिए जानें दी जिस क्रान्ति की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया, उस क्रान्ति ने मार्ग नहीं मिलने के कारण समाज को प्रतिगामी बनाया। पीछे धकेल दिया। यह मैंने आपके सामने रखा। इसलिए आज जो हमको सोचना है वह यह कि रूढ़ समाज की रूढ़ पद्धति रूढ़ परम्परा, परिपाटी, प्रथा क बदले म कौनसी क्रान्तिकारी प्रथा, पद्धति को अपनायें। इसम राज्य व्यवस्था शामिल है इसम शिक्षा व्यवस्था शामिल है, समाज-व्यवस्था शामिल है इसमे आर्थिक व्यवस्था शामिल है। इन सारी व्यवस्थाओ मे नये पुर्जे कैसे फिट करेंगे, नये इंजिन की डिजाइन कैसे बनायेंगे—यह आपको सोचना होगा। उसे चाहे आप ग्राम स्वराज्य कहिए शान्तिसेना कहिए, तरुण शान्तिसेना कहिए यह सब तो एक ही विचार की अभिव्यक्ति का विभिन्न रूप है।

मानव-समाज को जिसकी आवश्यकता है उसे बनाना है। यह वास्कोडिगामा की यात्रा है। आपको खोजना होगा, सारे समाज को खोजना होगा। आप लोग मार्ग खोजिए। विनोबा ने एक दिशा बता दी है। नक्शा नहीं बनाया है। जैसे वास्कोडिगामा को दिशा मालूम थी कि इधर जाओगे तो मिलेगा हिन्दुस्तान। विनोबा ने बताया कि शस्त्रमूलक पद्धति नहीं, लोकमूलक पद्धति बनाइए। जो भी आप करना चाहते है प्रथम से ही सम्मति पर अड़े रहिए गिरेंगे, पड़ेंगे, उठेंगे। यह जो सहूलियत की दृष्टि से सम्मति पद्धति का अधिष्ठान बन्दूक से करने का प्रयास किया उसका क्या नतीजा हुआ वह मने आपको बताया। इस पद्धति के अधिष्ठान का अर्थ क्या ? भय-शक्ति का साधन क्या ? शस्त्र। सम्मति-शक्ति का साधन क्या ? शिक्षण। अब सम्मति को हासिल करने के लिए सम्मति को अधिष्ठित करने के लिए सम्मति स समाज चले उसकी प्रक्रिया के लिए, सिलेबस क्या होगा ? पहले क्या हो ? समाज के अन्दर जाकर वह सोचना होगा। क्योंकि जिस तरह से बन्दूकधारी फौज के सगठन के बिना भय-शक्ति का अधिष्ठान ही नहीं हो सकता है, उसी तरह शिक्षण शक्ति के सगठन के बिना सम्मति-शक्ति का अधिष्ठान हो नहीं सकता। इसीलिए विनोबा आचार्यकुल की बात कह रहे हैं। •

प्राथमिक शालाओं में विज्ञान का शिक्षण

डा० धर्मवीर गौड

आज का युग वैज्ञानिक युग है। आज का जीवन एक शताब्दी-पूर्व के जीवन से पूर्णत. परिवर्तित है। पिछली एक शताब्दी के आविष्कारों ने मानव को प्रकृति का स्वामित्व प्रदान किया है। जो चन्द्रमा अभी तक सभी के लिए एक रहस्य की वस्तु बना रहा, आज उसी पर मानव पहुँच चुका। जीवन की भी प्रत्येक आवश्यकता के लिए सुविधाप्रद सामग्री वैज्ञानिक विकास ने हमें प्रदान कर दी है। विज्ञान ने वातावरण को मानव के अनुकूल बना दिया है। आज का जीवन सुदर, सुखमय और सुविधा-सम्पन्न है।

यह कहना असगत न होगा कि हमारे देश की वैज्ञानिक प्रगति ससार के अन्य प्रगतिशील देशों स पीछे ही है। यदि हमें अपने देश को आत्म-निर्भर और समृद्धिशाली बनाना है तो नि सन्देह हमे वैज्ञानिक प्रगति के लिए जी-तोड प्रयास करना होगा। हमे अपने देश को रूढिवाद से निकालकर आधुनिकवाद म तेजी से लाना होगा। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए हमें प्राथमिक स्तर से ही विज्ञान की शिक्षा को अनिवार्य बनाना होगा। साथ ही असामयिक साधनहीन तथा कम प्रभावी वर्तमान विज्ञान-शिक्षण म क्रान्ति लानी होगी।

विज्ञान की शिक्षा के स्तर मे सुधार

इस विषय की शिक्षा के स्तर मे सुधार नीचे दिये तीन तथ्यो पर निर्भर करता है, जिनको स्कूल-स्तर पर लागू करना उपयोगी होगा।

(१) पाठ्यक्रम का विकास, जिसमे विभिन्न विषय-क्षेत्रो के विचार, ज्ञान और आधारिक नियमो का विषद अध्ययन सम्मिलित है।

(२) नये पाठ्यक्रम—अध्यापको के लिए निर्देशिकाओ तथा शैक्षिक सामग्री पर आधारित पाठ्य-पुस्तको का निर्माण तथा प्रायोगिक उपकरणो के आलेखन का निर्माण।

(३) अध्यापको का प्रशिक्षण और उनको कक्षा मे पाठ्यक्रम के पढाने के लिए तैयार करना।

प्रारम्भिक कक्षाओ मे विज्ञान की शिक्षा का उद्देश्य

(१) विज्ञान मे विशेष रुचि पैदा करना, ताकि प्राकृतिक नियमो को समझाया जा सके।

(२) आधुनिक जीवन म विज्ञान क प्रभाव का परिचय कराना और इस बात की धारणा पक्का करना कि विज्ञान एक ऐसा विषय है कि जिसका उचित प्रयोग हमारे जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने म सहायक हो सकता है।

(३) विज्ञान के सिद्धान्तों तथा तथ्यों को भली भाँति जानने के लिए पृष्ठभूमि तयार कराना।

(४) अन्धविश्वास निवारण।

(५) दैनिक समस्याओ को वैज्ञानिक रीति से हल करने की क्षमता पैदा करना।

विज्ञान शिक्षण की आधुनिक स्थिति

विद्यालय-शिक्षा की अवधि देश क विभिन्न राज्यो म भिन्न-भिन्न है। कुछ राज्यो मे २० वर्षो य हाईस्कूल तथा अन्य राज्यो म ११ वर्षो य हायर सेकण्डरी शिक्षाक्रम है। शिक्षिक अवधि की भिन्नता के कारण विज्ञान-विषय की स्थिति प्रत्यक राज्यो मे अलग-अलग है।

(अ) प्राइमरी कक्षाओं मे भारत के सभी राज्यो म विज्ञान कक्षा १ स ही किसी-न किसी रूप मे अवश्य पढ़ाया जाता है। कक्षा १ से ५ तक यह विषय विभिन्न नामो से पढ़ाया जाता है जसे—प्रकृति-अध्ययन सामान्य विज्ञान तथा स्वास्थ्य रक्षा आदि। विज्ञान का स्तर अधिकांशत सन्तोषजनक नही है। वस्तुत अध्यापको ने जो इस विषय को पढ़ाते हैं स्वयं इस किसी भी स्तर पर नही पढ़ा है जिसका फल यह होता है कि विज्ञान-शिक्षण सृजनात्मक काय न होकर कवल इतिहास या भाषा की भांति पाठ्य-पुस्तक-वाचन तक ही सीमित रहता है। विज्ञान कक्षो का प्राय अभाव है और भौतिक सुविधाओ तथा साज-सामग्री की बहुत कमी रहती है। अध्यापक विज्ञान के प्रयोगो को कराने और विज्ञान-शिक्षण के सुधार के लिए प्रशिक्षित नही हैं। अध्यापको तथा छात्रो की सहायता-हेतु निर्दशिकाओ और शिक्षण-सम्बन्धी सहायक सामग्री का अभाव है पाठ्य-पुस्तकें आकर्षक नहीं हैं और उनमे लिखी सामग्री असामयिक है।

(ब) माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण कक्षा ६ स ८ तक विज्ञान सामान्य विज्ञान या दैनिक विज्ञान के रूप म पढ़ाया जाता है। कुछ अपवादो को छोड़कर यह विषय माध्यमिक स्तर के अत तक कमोबेश एव अनिवाय विषय के रूप म पढ़ाया जाता है। जहाँ पर विज्ञान-शिक्षक या विज्ञान सामग्री का अभाव है वहा विज्ञान क स्थान पर कोई अन्य वकल्पिक विषय पढ़ाया जाता है। कई स्थानो पर छात्राओ को विज्ञान के स्थान पर गृह-विज्ञान पढ़ाया जाता है। माध्यमिक कक्षाओ के लिए अलग विज्ञान-कक्ष की सुविधा प्राय नहीं है। विज्ञान-सामग्री की स्थिति असंतोषजनक है। अध्यापक के प्रयोग म आनेवाली प्रदर्शन सामग्री और

उपकरण तथा छात्रों के व्यक्तिगत, प्रयोगात्मक कार्य की सामग्री की सुविधा, जिससे विज्ञान-अध्ययन सजीव और सार्थक बनता, कदाचित् किसी भी राज्य में उपलब्ध नहीं है। स्कूल-शिक्षा की ऐसी स्थिति में, विज्ञान-अध्यापन अधिकतर योग्यताहीन अध्यापकों द्वारा किया जाता है और प्राइमरी कक्षाओं की भाँति पाठ्य-पुस्तक के वाचन तक ही सीमित रहता है। हाईस्कूल से संयुक्त माध्यमिक कक्षाओं में अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं और विज्ञान का प्रदर्शन-कार्य अध्यापक द्वारा किया जाता है। किन्तु ऐसे स्थानों पर भी छात्रों द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रयोगात्मक कार्य करने की सुविधा प्राप्त नहीं है। पाठ्यक्रम सामान्यतः परम्परागत ढंग के हैं और उनमें आधुनिक वैज्ञानिक विचारों और तथ्यों का समावेश नहीं है।

माध्यमिक कक्षाओं के विज्ञान-शिक्षकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सुविधाएँ, जिससे उनकी प्रदर्शन-योग्यता तथा छात्रों के व्यक्तिगत प्रयोगात्मक कार्य के निर्देशन की क्षमता का विकास हो, प्रायः नहीं है।

यूनेस्को-योजना मिशन की संस्तुतियाँ

सन् १९६४ में यूनेस्को-योजना मिशन इस देश में आया और विज्ञान तथा गणित के शिक्षण के अध्ययन के उपरान्त उसने स्कूल-स्तर पर इन विषयों के अध्ययन के लिए कुछ संस्तुतियाँ दीं, जो इस प्रकार हैं —

(१) प्राइमरी-स्तर पर विज्ञान का अध्यापन सामान्य विज्ञान के रूप में कराया जाय और बच्चों को वातावरण के अनुभव से ही पढ़ाया जाय। माध्यमिक स्तर से ऊपर विज्ञान के विभिन्न अंगों—भौतिक, रसायन तथा जीव-विज्ञान और गणित—का विशिष्ट अध्यापन कराया जाय।

(२) सम्पूर्ण स्कूल-स्तर पर बच्चों को विज्ञान-अध्ययन अनिवार्य विषय के रूप में कराया जाय।

(३) विज्ञान का अध्यापन क्रिया, निरीक्षण तथा निष्कर्ष द्वारा किया जाय, मौखिक वार्ता द्वारा नहीं।

(४) स्थान, सज्जा, प्राकृतिक स्थल, विज्ञान-अध्ययन कक्ष और विज्ञान की प्रयोगशालाओं की सुविधाएँ प्राइमरी, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर उपलब्ध करायी जायँ।

(५) विज्ञान शिक्षकों के लिए घनीभूत प्रशिक्षण-कार्यक्रम विकसित हों, जिनमें विज्ञान के उत्तम शिक्षण पर बल दिया जाय।

प्राथमिक कक्षाओं के विज्ञान-शिक्षण तथा पाठ्यक्रम पर कोठारी-आयोग की संस्तुतियाँ : आयोग ने इस सम्बन्ध में अपने आमुख में इस प्रकार कहा है, "हम विद्यालय-पाठ्यक्रम में विज्ञान को शिक्षा का एक आवश्यक अंग बनाने पर अत्यधिक

बल देते हैं, अत हम संस्तुति करते हैं कि सभी छात्रों को स्कूल-शिक्षा के प्रथम दस वर्षों तक विज्ञान और गणित सामान्य शिक्षा के आवश्यक अंग के रूप में अनिवार्यतः पढ़ाये जायें। साथ ही औसत से ऊपर की योग्यतावाले छात्रों के लिए माध्यमिक स्तर पर इन विषयों में विशेष पाठ्यक्रमों का प्राविधान होना चाहिए। यह कार्यक्रम उपयोगी तथा अर्थपूर्ण बन सकता है जब विज्ञान का पाठ्यक्रम पुनर्गठित होकर आधुनिकतम बना लिया जाय तथा शिक्षण-विधियाँ पुनर्जीवित हो जायें और इन विषयों के शिक्षण की उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान कर दी जायें।

प्राइमरी-कक्षाओं के पाठ्यक्रम-गठन के सम्बन्ध में शिक्षा-आयोग ने यह संस्तुति की है कि विज्ञान की शिक्षा बच्चों के भौतिक सामाजिक तथा जैविक वातावरण पर ही आधारित हो।

कक्षा १ और २ में स्वच्छता स्वस्थ आदतों का निर्माण तथा निरिक्षण-शक्ति के विकास पर बल दिया जाय। कक्षा ३ से ५ में भी इन पर ही जोर दिया जाय, साथ ही व्यक्तिगत स्वास्थ्य रक्षा और स्वच्छता पर भी ध्यान दिया जाय। आयोग ने यह भी कहा कि इन्हीं कक्षाओं में बालक को औपचारिक रूप से विज्ञान के क्षेत्रों का ज्ञान भी कराया जाय—जैसे, बालकों के वातावरण में पाये जानेवाले पशुओं और पौधों का ज्ञान जल और वायु, मौसम जो दैनिक जीवन पर प्रभाव डालता है, भूमण्डल जिस पर वह रहता है, वातावरण में चलनेवाली साधारण मशीनों, आकाश के पिंडों तथा अपने शरीर का ज्ञान कराया जाय। विद्यालय-उद्यान एक ऐसा स्थान है जिस पर बालक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट कराया जाय, क्योंकि इससे बालक को सीधे प्राकृतिक क्रियाओं का ज्ञान होता है।

कक्षा ६ से ऊपर बालक के ज्ञानार्जन के साथ-साथ तर्कपूर्ण विचार-शक्ति का विकास कराया जाय। उसको निष्कर्ष निकालने तथा निर्णय लेने के सक्षम बनाया जाय।

इस स्तर पर विज्ञान को भौतिक रसायन, जीव तथा खगोल विज्ञान के रूप में पढ़ाया जाय। इन विषयों का निम्न तीन वर्गों में विभाजन प्रस्तावित है किन्तु इन तीन वर्गों के अतिरिक्त बालकों के बौद्धिक स्तर तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अन्य वर्ग भी बनाये जा सकते हैं।

कक्षा—५ भौतिक भूगर्भ तथा जीव-विज्ञान। कक्षा—६ भौतिक रसायन तथा जीव-विज्ञान। कक्षा—७ भौतिक जीव रसायन तथा खगोल विज्ञान।

प्राइमरी-कक्षाओं के लिए अभिस्वीकृत १० वर्षों से प्रचलित विज्ञान-शिक्षण सफल सिद्ध नहीं हुआ है क्योंकि इसका ढंग रीति विरुद्ध तथा आकारहीन प्रतीत होता है। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि विज्ञान-अध्ययन की अनुशासनात्मक

पहुँच अनिव प्रभावी होगी और नयी पीढ़ी के लिए आवश्यक वैज्ञानिक आधार प्रदान करेगी। *खगोल विज्ञान के पाठ्यक्रम में समावेशन की विशेष संस्तुति की जाती है*, क्योंकि यह अच्छी विज्ञान-शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। कक्षा ५ से आगे रात्रि के आकाश को देखकर भारतीय पंचाग का अध्ययन कराना चाहिए।

प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में एक विज्ञान-कक्ष या ऐसा स्थल हो जहाँ पर माडल, नमूने और चार्ट आदि के रख-रखाव की सुविधा हो, प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में प्रयोगशाला से सयुक्त एक विज्ञान-व्याख्यान-कक्ष होना चाहिए।

विज्ञान का अध्ययन ऐसी क्रियाओं पर केन्द्रित हो, जिनसे बच्चे अपने अनुभवों को संगठित कर सकें और अग्रिम अध्ययन के लिए उनकी पृष्ठभूमि तैयार हो सके।

अध्ययन के अंत में बच्चे अपने अनुभव को शब्दों में प्रकट करें तथा चित्रों में *अंकित करें। इन क्रियाओं से बच्चों के ज्ञान को निश्चित और स्थायी बनाने में सहायता* मिलती है और वे वस्तुओं की बनावट तथा उनके आकार आसानी से समझ जाते हैं।•

समवाय

जीवन के जो बुनियादी विचार हैं जिनसे हमारा जीवन विकसित होता है, उन सबका ज्ञान समवाय के लिए जरूरी है।

जिस शिक्षा-पद्धति में ज्ञान और उद्योग का समवाय होगा और हम बता नहीं सकेंगे कि इस समय ज्ञान या उद्योग, वही समवाय-पद्धति होगी। ज्ञान और उद्योग की अलग-अलग पढ़ाई नहीं होनी चाहिए। —विनोबा

अध्यापक के सम्मान का प्रश्न

सुधाकर शर्मा

आज सभी नौकरीपेशा कर्मचारियों को अपने नौकरी-दाताओं से कोई-न-कोई शिकायत है—कम पैसा मिलने की शिकायत है, कड़े सेवा-नियमों की शिकायत है, 'पोस्टिंग', स्थानान्तरण पर शिकायत है, और भी बहुत-सी शिकायतें हैं। अध्यापकों को भी ये सब शिकायतें हैं, और वैसा होना किसी सीमा तक स्वाभाविक भी है। किन्तु इन आम शिकायतों के अलावा, अध्यापक-वर्ग को एक और भी बड़ी शिकायत है, और वह यह है कि समाज उसे उचित सम्मान नहीं देता। इस शिकायत को इस दृष्टि से यथार्थ ही कहा जायगा कि आज नगर के जीवन में तो दूर, गाँव-गवई में भी पहले की तरह अध्यापक को सामान्यतः अपने समुदाय का अग्रणी नेता नहीं माना जाता, मोहल्ले-टोले के लोग उससे महत्त्वपूर्ण पारिवारिक या सामाजिक विषयों पर सलाह-मशविरा नहीं करते, उसीके स्कूल या कालेज के विद्यार्थी उसके सामने बीड़ी-सिगरेट पीने में या अशिष्ट हास-परिहास करने में सकोच नहीं करते, नगर या कस्बे के किसी भी समारोह या उत्सव में, उसकी उपस्थिति-अनुपस्थिति को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, इत्यादि-इत्यादि। देर-सबेर यह बात शासन की दृष्टि में भी आयी और शासन की ओर से आदेश हुआ कि अध्यापक को समाज में उसका सम्मान्य स्थान दिलाने के लिए 'अध्यापक-दिवस' मनाया जाय। शासनादेश से 'अध्यापक-दिवस' भी मनाना शुरू हो गया, मगर बात बनी नहीं। पहले वर्ष जनता ने कुछ उत्साह दिखाया, मगर बाद में यह एक सरकारी या अर्द्ध-सरकारी उत्सव मात्र बनकर रह गया। स्वयं अध्यापकों ने ही इसका मजाक बनाया और 'मार-मारकर हकीम बनाने' की इस योजना की उपादेयता पर सन्देह प्रकट किया।

बात ठीक भी है। शासनादेश से सरकारी खजाने से निकलनेवाले रुपये-पैसे की सुविधा दी जा सकती है, मिट्टी-गारे से बननेवाले सशुल्क या निःशुल्क आवास की व्यवस्था की जा सकती है, सभा-समारोह में सम्मिलित करने के लिए मुद्रणालय में छपे आकर्षक आमंत्रण-पत्र भी भिजवाये जा सकते हैं और बहुत हुआ तो पुलिस के बल पर लोगों को जबरदस्ती सामने खड़ा भी करवाया जा सकता है, मगर यह सब सम्मान तो नहीं कहलायेगा—वह सम्मान जो केवल हृदय की गहराइयों से ही स्वतः निकलता है, जिसका सम्बन्ध केवल अंतःप्रेरणा से है, किसी भी प्रकार के बाह्य प्रभाव से नहीं।

तो फिर ऐसा सम्मान कैसे मिलेगा हमारे अध्यापकों को ? इसके लिए अध्यापक बन्धुओं को सिक्के का दूसरा पहलू भी देखना होगा। उन्हें यह महसूस करना होगा कि स्नेह की तरह सम्मान भी दुतरफा आदान-प्रदान की अपेक्षा रखता है। दूसरे शब्दों में, बिना पहले सम्मान दिये, औरों से आदर पाने की बात सोचना असम्भव होगा।

मगर अध्यापक सम्मान किसे दें ? क्या अपने विद्यार्थियों को ? क्या छात्रों के अभिभावकों को ? इस प्रश्न का उत्तर अध्यापकों की ओर से ही आये तो उचित होगा। स्वयं उत्तर देने से पूर्व उन्हें सोचना यह होगा कि क्या उनके विद्यालय में आनेवाले बालक-बालिकाओं की आशाएँ-अभिलाषाएँ (भले ही वह उन्हें भाषा का जामा न पहना सकते हों) सम्मान की वस्तु ही नहीं है ? क्या अपने बच्चों की शिक्षा के लिए घर के जेवर-बर्तन तक गिरवी रखनेवाले अभिभावकों की आकांक्षाएँ और बच्चे के भविष्य को लेकर सजोये गये सुनहरे स्वप्न आदर की चीज नहीं हैं ? उन्हें (अध्यापकों को) अपने आपसे यह भी पूछना होगा कि क्या उन्होंने अपने छात्रों की भावनाओं का उनके अभिभावकों की आकांक्षाओं का समुचित सम्मान किया है और क्या उन्होंने इन भावनाओं और आकांक्षाओं के प्रति अपनी जिम्मेदारी निबाहते हुए अपने कर्तव्य की पूर्ति की है ? निश्चय ही, आज भी ऐसे अध्यापक हैं, जो इन प्रश्नों का उत्तर अपने आपको 'हाँ' में देंगे और ऐसे अध्यापक यह भी महसूस करते होंगे कि जमाना कितना ही क्यों न बदल गया हो, सम्मान दिखाने के ऊपरी तौर-तरीके में भी अन्तर भले ही आ गया हो, मगर छात्रों में गुरुजनों के लिए सम्मान-भावना एकदम समाप्त हो गयी हो या कि समाज में सचाई और ईमानदारी से काम करनेवालों के प्रति कोई आदर-भावना शेष न बची हो, ऐसी बात नहीं है। ऐसे अध्यापक मन-ही-मन यह भी अनुभव करते होंगे कि अब से ३०-४० वर्ष पूर्व, अध्यापक को अपेक्षाकृत अपढ़ समाज में जो सम्मान मिलता था, वह 'अन्धों में काने राजा' वाला सम्मान था। उस समय अध्यापक अपने समुदाय में—विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में—गिने-चुने पढ़े-लिखे व्यक्तियों में से एक होता था और अक्सर वह अपने समुदाय का धर्मगुरु भी होता था। मगर इधर ३०-४० वर्षों में परिस्थितियाँ बदली हैं, इसे सुबुद्ध अध्यापक भली-भाँति जानते हैं।

अब जब कि छोटे-से-छोटे गाँव में हाईस्कूल, इण्टर पास व्यक्ति मिल सकते हैं, एवं धार्मिक और सामाजिक मूल्यों में क्रान्तिकारी उथल-पुथल हो चुकी है, ग्रामवासियों से उस सहज रूप में सम्मान की आशा करना दुराशा मात्र होगा। इस तथ्य से भी जागरूक अध्यापक निश्चय ही अवगत होंगे। और फिर अनुभवी और विचारशील अध्यापक यह भी जानते हैं कि अपनी और अपने व्यवसाय की प्रतिष्ठा

अपने ही हाथों होती है। नाम ऊँचा तब होता है, जब काम भी ऊँचा हो। और अध्यापक का काम ऊँचा तभी होगा, जब विद्यालयों में अच्छा इन्सान' बनने की भावना से भेजे जानेवाले अबोध बालकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह से समझी जाय, उन्हें प्रकाश देने के लिए पहले अपने मनो-मस्तिष्क को ज्ञान-आलोक से आपूरित किया जाय, और उन नन्हे, भोले-भाले बालकों की आकांक्षाओं और क्षमताओं के प्रति पूर्ण न्याय किया जाय। यह एक निर्विवाद सत्य है कि राष्ट्र के भावी नागरिकों की आकांक्षाओं और उनकी क्षमताओं का सम्मान करनेवाले अध्यापकों को उचित सम्मान न मिलने की शिकायत न कभी रही है, न आगे ही कभी रहेगी। कर्तव्यनिष्ठ अध्यापकों की अभ्यर्थना में राजसत्ता पहले भी झुकती रही है, और आगे भी झुकती रहेगी।•

बालशिक्षा : एक प्रश्न

ब्र० ना० कौशिक

जिस दिन आपका पहला बच्चा, चाहे वह लडका हो या लडकी, शाला मे पढने के लिए जायेगा उस दिन आप कितने प्रसन्न होंगे? आप उसके लिए हर प्रकार की तैयारी करेंगे। बहुधा यह तैयारी घर की आर्थिक स्थिति और शाला पर ही निर्भर करती है। आपके पास सामान्यत अर्थाभाव नही है तो, आप अपने बच्चे को बालमन्दिर, कॉनवेण्ट, सेंट जेवियर या माण्टेसरी पद्धति पर शिक्षा देनेवाली शाला के अनुसार तैयार करेंगे। प्राय ऐसे विद्यालयों की अपनी वेश-भूषा होती है। आपका परिवार सामान्य आर्थिक स्थिति का है तो, आप वस्त्रो का रंग तो वही रखेंगे, परन्तु कपडा जरा सस्ता क्रय करेंगे। जैसा आपका आर्थिक स्तर होगा, उसीके अनुसार आपकी क्रय-शक्ति होगी और फिर जो वस्तु लेंगे वह कीमती होगी। अब आप एक क्षण के लिए कल्पना करिए—"कल ही वह दिन है, जब आपका बच्चा शाला जायेगा। आपने उसके लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ—बस्ता, कलम, अक्षरबोर, टिफीन का डिब्बा ले लिया, नये कपडे बनवा दिये, सारी रात खुशी मे व्यतीत हो गयी—कल बच्चा पढने जायेगा। प्रात होते ही मोहल्ले मे बताशे बाँटे, रिक्शा लिया और शाला पहुँच गये। कैसा सुन्दर विद्यालय है, बच्चे-बच्चियाँ खेल रहे हैं, कोई झूले पर झूल रहा है, तो कोई फिसल रहा है। आपका बच्चा इस सारे वातावरण को लल्चाई दृष्टि से देख रहा है।"

बच्चे की झिझक

परन्तु यह क्या?

आप उसे झूलने को कहते हैं, वह झिझकता है, फिसलनेवाले स्थान पर ले जाते हैं, वह डरता है। मुख्य बहिनजी ने उसके प्रवेश की सभी आवश्यक कार्यवाही पूरी कर दी। अब आप बच्चे को शाला म बैठने के लिए कहते हैं—वह रोना आरम्भ कर देता है। आपके घर के साथ ही वह दौडकर आपके साथ हो लेता है। अब आप एक विकट परिस्थिति मे पड गये हैं। घर आकर आपका मन खिन्न है। बच्चा खिन्न है। पूरे घर का वातारण उदास हो गया है। जो उत्साह और प्रसन्नता कल तक थी, अचानक वह कहाँ लोप हो गयी? अधिकांश परिवारों के साथ यह हो रहा है।

आप सोच रहे हैं, सभी कुछ तो ला दिया था मुन्ने के लिए, लगता है, इसके भाग्य मे पढना-लिखना है ही नही। धीरे-धीरे आप अपने बच्चे की तरफ से

का परिणाम है, सही दिशा में लोक-शिक्षण होगा तो क्रांति होगी ही।

इस वर्ग-निराकरण के लिए सीधे वर्ग-परिवर्तन की प्रक्रिया की तरफ मुड़ना होगा। किसी प्रकार के भी वर्ग भेद की परिस्थिति बनी रहे और शांति हो जाये, यह सम्भव नहीं है।

चीन का वर्ग विलीनीकरण का कार्यक्रम इसी दिशा की ओर एक इशारा है। हमें आज यह मानकर चलना होगा कि वर्ग विलीनीकरण आवश्यक है, वरना वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है। जनता में पूरा विचार पहुँचना चाहिए। लोक चेतना आवश्यक है। फिर यदि इस लोक चेतना का परिणाम हिंसा भी हो तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि यह हिंसा कोई स्वतंत्र चीज नहीं है, वह पुरानी हिंसा की प्रतिक्रिया मात्र है, उसे संगठित करके वर्ग-संघर्ष से वर्ग-परिवर्तन की दिशा में मोड़ना होगा।

अहिंसावादियों को यदि हिंसा से बचना है तो वर्ग-संघर्ष का एक ही विकल्प है—वर्ग-परिवर्तन या वर्ग-विलीनीकरण।

वर्ग-विलीनीकरण की यही क्रान्ति चीन में शुरू हो गयी है। वर्ग-विलीनीकरण के लिए 'श्रम-संस्कार-प्रशिक्षण' से बुद्धिवादी अनुत्पादकों और व्यवस्थापकों, मालिकों और मैनेजरों को बुद्धिशाली उत्पादक बनाकर किसान-मजदूर के साथ एकरूप होने का विचार जितनी तेजी से समाज में फैलेगा, क्रान्ति उतनी ही शीघ्र गति से होगी।•

राष्ट्रपति-चुनाव कैसे होता है

रामर्मूति

१. संविधान की धारा ५४ के अनुसार राष्ट्रपति एक निर्वाचन-मंडल (इलेक्टरल कालेज) द्वारा चुना जायगा, जिसमे (क) ससद के दोनो सदनो के निर्वाचित सदस्य और (ख) राज्यो की विधान-सभाओ के निर्वाचित सदस्य वोटर होगे। यह भी है कि जहाँ तक सम्भव होगा राष्ट्रपति के चुनाव मे विभिन्न राज्यो का प्रतिनिधित्व समान होगा।

२ विधान-सभाओ और ससद का हर 'वोटर' कितने वोट दे सकेगा उसका निर्णय इस प्रकार होता है :

राज्य की कुल जन-सख्या मे उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यो की टोटल सख्या से भाग दीजिए। जो भागफल आये उसमे १००० का भाग दीजिए। जितनी बार १ हजार जाय उतने वोट एक 'वोटर' के होगे।

यही बात इस तरह कही जा सकती है

मान लीजिए, राज्य की जन-संख्या ५ करोड है, और उस राज्य की विधान-सभा के चुने हुए (कुछ नामजद सदस्य भी होते हैं) सदस्यो की सख्या ३ सौ है, तो ५ करोड मे ३०० से भाग दीजिए। भागफल आया १६६६६६। अब इसमे १००० से भाग दीजिए। आया १६६। तो एक सदस्य के १६६ वोट हुए।

३. ससद के दोनो सदनो के हर निर्वाचित सदस्य के कितने वोट होंगे ? सब राज्यों की विधान-सभाओ के सब निर्वाचित सदस्यो के कुल जितने वोट होंगे उनके टोटल मे ससद के निर्वाचित सदस्यों की सख्या के टोटल से भाग दीजिए। जो आये वही ससद के एक सदस्य के वोट की सख्या होगी।

४. विभिन्न राज्यो के एम० एल० ए० लोगों के वोटो का मूल्य भिन्न-भिन्न होता है। नीचे की तालिका स यह स्पष्ट होगा :

राज्य	एम० एल० ए० की सख्या	एक वोट का मूल्य
आन्ध्र प्रदेश	२८७	१२५
असम	१२६	९४
बिहार	३१८	१४६
गुजरात	१६८	१२३
हरियाणा	८१	९४
जम्मू और कश्मीर	७५	५९

श्रम-संस्कार-प्रशिक्षण से वर्ग-परिवर्तन

नरेन्द्र भाई

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के हांगकांग-स्थित संवाददाता ने चीन के सम्बन्ध में सूचना देते हुए एक घटना का वर्णन किया है। चीन में एक लड़की ने संगीत में विशेष योग्यता हासिल की। सितार की तरह के एक बाजे पर अभ्यास करने में उसने बहुत समय बिताया। लेकिन उस संगीत विद्यालय में भेजने के बजाय 'लिबरेशन आर्मी कैम्प' में भेज दिया गया, जहाँ उसको किसान और मजदूरों के जीवन के साथ एकरस होने का शिक्षण दिया जाने लगा। उस लड़की को धान के पौधे और घास का फर्क मालूम नहीं था। जो चावल खाते हैं उनके लिए आवश्यक है कि उसके पौधे को भी पहचानें। जीवन की आवश्यकता की चीजें पैदा करनेवाले किसान-मजदूरों के जीवन का अभ्यास हरेक नागरिक के लिए आवश्यक है। इस भावना से चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति ने अब जो कदम उठाये हैं उसको उन्होंने 'बुद्धिवादियों को पुनः शिक्षित करना' कहा है।

चीन की राष्ट्रीय एकता-प्रशिक्षण-प्रक्रिया

आजकल चीन देश में राष्ट्रीय एकता कार्यक्रम के अन्तर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम यह है कि बुद्धिवादी अपने को किसान और मजदूर के जीवन के साथ एकरूप करें। वर्ग-परिवर्तन का यह कार्यक्रम विचार समझाकर ही किया जा रहा है। जहाँ विचार समझाने से काम नहीं होता वहाँ मजबूरी में कुछ कानून का और दबाव का सहारा भी लिया जा रहा है। पिछले एक वर्ष में करीब बीस करोड़ अनुत्पादक बुद्धिवादियों को बुद्धिशाली उत्पादक बनने का शिक्षण देने के लिए मुक्ति-सेना छावनियों में किसान-मजदूरों के साथ एकरूप होने के लिए भेजा जा चुका है।

वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त से आगे बढ़कर चीन किस प्रकार वर्ग-परिवर्तन की दिशा में तेजी से बढ़ रहा है, यह गहराई से अध्ययन करने की बात है। वर्ग-परिवर्तन के विचार को समझाने के लिए बड़ी संख्या में जवान लड़के-लड़कियाँ, स्कूल-कालेज, कारखाने, अस्पताल तथा अन्य सामाजिक स्थानों में जा रहे हैं। स्वेच्छा से बड़ी संख्या में किसान मजदूर के जीवन को अपनाने का कार्यक्रम तेजी से बढ़ रहा है।

सचेतन प्रशिक्षण उपहार

शंघाई यूनिवर्सिटी में यह कार्यक्रम सघन रूप से लिया गया। इसके परिणाम बहुत ही अच्छे आये। जिन विद्यार्थियों के माँ-बाप सांस्कृतिक क्रान्ति के इस कार्य-

क्रम के विरुद्ध थे, उन्होंने बच्चों ने अपने माँ-बाप की इच्छा के विरुद्ध वर्ग-परिवर्तन के इस कार्यक्रम को अपनाकर बड़ी तादाद में खेती और उद्योगों में श्रमिक के जीवन के साथ एकरूप होना शुरू कर दिया है। वहाँ इस कार्यक्रम को 'सचेतन प्रशिक्षण उपहार' कार्यक्रम का नाम दिया गया है।

चीन की ७५ करोड़ जनता को एक सूत्र में बाँधने के लिए वर्ग-परिवर्तन का यह 'सचेतन प्रशिक्षण उपहार' अत्यन्त आवश्यक है, यह चीन के नागरिक अच्छी तरह से समझते जा रहे हैं। निकट भविष्य में शायद चीन के इस प्रयोग से यह सिद्ध हो सकेगा कि सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए सामाजिक क्रान्ति के मार्ग में वर्ग-परिवर्तन का स्वरूप क्या होगा और वह किस प्रकार अमल में लाया जाय।

समाज की अव्यवस्था के कारण यदि समाज में सम्पन्न और विपन्न, गरीब और अमीर, समृद्धशाली और दुःखी, तथा सुविधाप्राप्त और असुविधाओं में पले लोग रहेंगे तो समाज में सुख-शान्ति नहीं रहेगी। जितना ही इन वर्गों, या इन वर्गों के निर्माण करनेवाली परम्पराओं, भावनाओं तथा विचारों को पोषण दिया जायगा, समाज में हमेशा वर्ग-संघर्ष की परिस्थिति उतनी ही तीव्र बनी रहेगी। वर्ग-संघर्ष के कारण यदि हिंसा होती है तो यह किसी तत्त्वज्ञान के प्रचार के कारण नहीं होती। वह तो सदियों से दबाये गये मानव के जागृत होने का परिणाम है। जिस हिंसा के कारण मानव अनेक रूपों में दबा रहा है, उसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक है।

साम्यवाद का तत्त्वज्ञान हिंसा पर आधारित है, ऐसा कहनेवाले उस विचार को समझने में बहुत बड़ी भूल करते हैं। महात्मा मार्क्स, एंजेल्स आदि ने इतना ही कहा है कि जनजागरण होने पर सदियों से होती चली आयी हिंसा की प्रतिक्रिया आवश्यक है। जब यह प्रतिक्रिया आवश्यक है तो वह संगठित होनी चाहिए, वरना प्रतिक्रिया की यह हिंसा समाज को ध्वस्त कर देगी। इसका स्वरूप विनाशकारी होगा, रचनात्मक नहीं। अतः हिंसा उनका कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, वह तो पूर्व हिंसात्मक कार्यवाहियों का परिणाम मात्र है। इसलिए आज दुनिया में साम्यवादी विरोधी मोर्चा है, और इन क्रान्ति-विरोधी शक्तियों ने हिंसा के नाम पर साम्यवादी विचार को बदनाम किया है। अहिंसावादी शक्तियों को इन क्रान्ति-विरोधी शक्तियों ने अपने साथ मिलाने का पूरा षड्यन्त्र रच डाला है। दुनिया की अहिंसावादी शक्तियाँ इनके चंगुल में बुरी तरह से फँस चुकी हैं। इसीके परिणामस्वरूप 'स्टेटस्को' बनाये रखने में इन अहिंसावादी शक्तियों का पूरा सहकार जाने-अनजाने क्रान्ति-विरोधी शक्तियों को मिल रहा है।

क्रान्ति : लोक-शिक्षण का परिणाम

वास्तव में क्रान्ति हिंसक या अहिंसक कुछ भी नहीं होती। वह तो जन-जागृति

केरल	१८३	१२७
मध्यप्रदेश	२६६	१०६
महाराष्ट्र	२७०	१४६
मैसूर	२१६	१०६
नगालैंड	५२	७
उडीसा	१४०	१२५
पंजाब	१०४	१०७
राजस्थान	१८४	११०
तमिलनाडु	२३४	१४४
उत्तरप्रदेश	४२५	१७५
पश्चिम बंगाल	२८०	१२५

५ इस चुनाव मे कुल १७ राज्यो के एम० एल० ए० लोगों के वोटों की सख्या ४ लाख ३० हजार ८ सौ ४७ थी। यही ससद के निर्वाचित सदस्यो के कुल वोटों का टोटल मूल्य भी है। राज्यो और केन्द्र के वोटों मे समानता हो, इसलिए ४,३०,८४७ वोट ससद के ७४८ निर्वाचित सदस्यो (लोकसभा ५२० + राज्यसभा २२८) मे बराबर-बराबर बांट दिये गये। इस तरह हर एम० पी० के एक वोट का मूल्य ५७६ हुआ।

६. सविधान के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव 'एकल सक्रमणीय सानुपातिक प्रतिनिधित्व मत-प्रणाली' (सिस्टम आफ प्रपोरशनल रीप्रेजेन्टेशन बाई मीन्स आफ दी सिंगिल ट्रान्सफरेबुल वोट) से होता है।

इस सानुपातिक प्रणाली का अर्थ क्या है? इसे आमतौर पर वैकल्पिक वोट (आल्टरनेटिव वोट) कहते हैं। उदाहरण के लिए :

मान लीजिए कि वैलिड वोटों की सख्या १५ हजार है, और क, ख ग घ चार उम्मीदवार हैं जिन्हे ये वोट मिले हैं—

क ५२५०	ख ४८००
ग २७००	घ २२५०

सामान्य रूप से बहुमत के आधार पर क को निर्वाचित मानना चाहिए, लेकिन वैकल्पिक वोट की पद्धति मे ऐसा नही होता। 'सेकेंड प्रेफरेंस' का उम्मीदवार 'फर्स्ट प्रेफरेंस' या बहुमत प्राप्त करनेवाले उम्मीदवार के मुकाबिले विजयी हो सकता है। विजय इस नियम के अनुसार तय की जाती है :

$$\frac{१५,०००}{१+१} + १ = ७५०१$$

सानुपातिक पद्धति (प्रपोरशनल प्रेजेन्टेशन) में ७५०१ वोटों से कम पानेवाला विजयी नहीं माना जायगा। इसका अर्थ यह है कि विजय के लिए ७५०१ या उससे अधिक फर्स्ट प्रेफरेंस वोट मिलने चाहिए। लेकिन ऊपर के उदाहरण में क, ख, ग, घ में से किसीको इतने वोट नहीं मिले हैं इसलिए दूसरे तीसरे, चौथे प्रेफरेंस को गिना जायगा—उस वक्त तक जबतक कि ७५०१ का कोटा पूरा न हो जाय।

७ प्रेफरेंस के वोट कैसे गिने जाते हैं ?

जिस उम्मीदवार के सबसे कम वोट होते हैं वह छांट दिया जाता है, और उसके बैलट पेपर (मतदाता-पत्र) देखे जाते हैं। उनमें अगर दूसरे उम्मीदवारों के लिए कुछ वोट होते हैं तो वे वोट उन उम्मीदवारों के वोटों में जोड़ दिये जाते हैं। इस तरह अगर किसी उम्मीदवार का कोटा पूरा हो जाता है तो वह विजयी माना जाता है।

यह छँटनी उस वक्त तक होती रहेगी जबतक कि कोटा पूरा न हो जाय, या छांटते-छांटते एक अन्तिम उम्मीदवार न बच जाय।

ऊपर लिखे उदाहरण में सबसे पहले 'घ' छंटेगा। उसके २२१० मत-पत्रों में जितने सेकेंड प्रेफरेंस वोट हैं वे 'क', 'ख', 'ग' को दे दिये जायँगे—जिसको जितने मिले होंगे। मान लीजिए, इन मत-पत्रों में सेकेण्ड प्रेफरेंस वोट इस प्रकार हैं

क ३००, ख १०५०, ग ६००। ये इस प्रकार जोड़े जायँगे।

क ५२५० + ३०० = ५५५०
ख ४८०० + १०५० = ५८५०
ग २७०० + ९०० = ३६००

जाहिर है कि इस बार भी कोटा पूरा नहीं हुआ, इसलिए ग छंटेगा, और उसके ३६०० वोट क और ख में थर्ड प्रेफरेंस वोटों के आधार पर बँटेंगे।

मान लीजिए कि ३६०० मत-पत्रों में क और ख के पक्ष में वोट क्रम से १७०० और १९०० हैं, जोड़ने पर ये वोट आते हैं

क ५५५० + १७०० ७२५०
ख ५८५० + १९०० – ७७५०

इस तरह ख विजयी घोषित हो जायगा, क्योंकि उसने ७५०१ का कोटा पूरा कर लिया। अब फोर्थ प्रेफरेंस वोट गिनने की जरूरत नहीं है।

यद्यपि ख को क से फर्स्ट प्रेफरेंस वोट कम मिले थे फिर भी ख विजयी हुआ क्योंकि उसे सेकेण्ड प्रेफरेंस वोट अधिक मिले। इस विजय-गणना का तर्क यह है कि ख को क की अपेक्षा ज्यादा मतदाताओं ने पसन्द किया है इसलिए उसे चुना जाना चाहिए। •

हमारे नये राष्ट्रपति

[श्री गिरि हमारे नये राष्ट्रपति। उनका हृदय से स्वागत ! हम उनके शतायु होने की कामना करते हैं। अब यह सोचने का समय नहीं है कि कौन हारा, कौन जीता, क्यों हारा, क्यों जीता। इतना जानना काफी है कि नये राष्ट्रपति चुन लिये गये। इस नाते वह हम सबके, हर भारतीय नागरिक के, आदर और सम्मान के अधिकारी हैं। जो पद हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक है, वह इस तरह दलबन्दी के दलदल में घसीटा जाय, यह न शोभनीय है, और न भविष्य के लिए शुभ। उनका चुनाव तो राष्ट्र की आम सम्मति (कन्सन्सस) से ही होना चाहिए था। अगर राष्ट्रपति भी राजनीतिक खींचतान का शिकार बनाया जायगा तो वह राष्ट्रपति न रहकर दलपति की कोटि में आ जायगा। तब उसम पक्षों के बीच रहते हुए भी पक्ष-मुक्ति की जो अपेक्षा है वह कभी पूरी नहीं होगी, और स्वय सविधान का सही ढग से चलना सभव नहीं रह जायगा। सविधान को बदलना एक बात है, किन्तु उसे रखना और दलगत सघर्ष का साधन बनाना देश का घोर अहित करने-जैसा होगा।

राष्ट्रपति के अधिकारों और कर्तव्यों के बारे मे मतभेद है, और होने की गुजाइश है। सविधान की बात सविधानिक ढंग से हल होनी चाहिए। लेकिन एक बात स्पष्ट है। प्रधानमंत्री देश का होते हुए भी दल का रह जाता है, किन्तु राष्ट्रपति को राष्ट्र का ही रहना पड़ेगा। इस बारे म श्री गिरि ने राष्ट्र को आश्वासन दिया है। आशा है वह पूरे तौर पर पूरा होगा।—सम्पादक]

श्री वराहगिरि वेंकट गिरि का जन्म १० अगस्त, १८९४ को गजाम जिले के बरहामपुर स्थान में हुआ। उनका परिवार पहले आन्ध्र प्रदेश म पूर्वी गोदावरी जिले मे रहता था। उनके पिता जोगैया एक वकील तथा सुविख्यात काग्रेसी थे। उन्होंने १९४० म अपनी मृत्यु के समय तक राजनीति मे सक्रिय रूप से भाग लिया। उनके पिता स्वराज्य पार्टी के प्रमुख सदस्य थे जिसकी टिकट पर वे केन्द्रीय असम्बली के सदस्य चुने गये। वे मद्रास विधान-परिषद के सदस्य भी रहे, जब कि श्री गिरि राज्य विधानसभा के सदस्य और मत्री थे।

बारह वर्ष की आयु मे श्री गिरि ने युवक आन्दोलन मे भाग लिया और एक पुस्तकालय बनवाने मे सहायता पहुँचायी जो अब एक बड़ा पुस्तकालय है।

सीनियर कैंब्रिज पास करने के बाद श्री गिरि १९१३ मे ब्रिटेन गये और वहाँ कानून का अध्ययन किया। वे दो कारणों से आयरलैंड गये। आन्ध्र के अनेक

नवयुवक डबलिन में पढ़ रहे थे। दूसरा और महत्वपूर्ण कारण यह था कि भारत की तरह आयरलैंड भी ब्रिटिश आधिपत्य में था, जिसके कारण दोनों देशों के लोगों के लिए कार्य करने का समान आधार था।

डबलिन में उन्होंने भारतीय छात्र संघ की स्थापना की, जिसके वे सचिव बने। उस समय दक्षिण अफ्रीका में गांधी का आन्दोलन चल रहा था। श्री गिरि ने एक पर्चा तैयार कराया, जिसकी हजारों प्रतियाँ भारत के स्कूलों में भेजी गयीं। भारत सरकार ने इसको जब्त कर लिया। यह विदेशी हुकूमत के विरुद्ध श्री गिरि का पहला खुला विद्रोह था।

श्री गिरि सितम्बर १९१६ में भारत लौटे और उस समय तक वे श्रमिक नेता बन चुके थे। वे टी० प्रकाशम् के साथ हो गये, जो स्वयं स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद चुके थे। श्री गिरि ने गांधीजी की सलाह पर वकालत छोड़कर सत्याग्रह में भाग लिया। तब से वे स्वतंत्रता-संग्राम में आगे रहे। मार्च १९२२ में अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उन्होंने बरहामपुर में ताड़ी की दूकानों पर धरना दिया और गिरफ्तार हुए।

श्री गिरि १९३५ में केन्द्रीय विधान-मंडल में आये और श्रमिकों के मामले में कांग्रेस के प्रवक्ता रहे।

श्री गिरि राजाजी के नेतृत्व में मद्रास में बनी सरकार में मंत्री बने। जब भी हड़तालें या तालाबंदी होती थी, श्रमिक नेता मंत्री श्री गिरि गलती कर रहे पक्ष की खबर लेने में अपने अधिकारों का प्रयोग करते थे, चाहे वे कर्मचारी हों, चाहे मालिक। श्री जवाहरलाल नेहरू के साथ श्री गिरि आयोजन में हाथ बँटाते रहे। १९३८ में ही उन्होंने कांग्रेस से देश की भलाई के लिए एक आर्थिक कार्यक्रम बनाने की अपील की। उनकी अपील पर राष्ट्रीय आयोजन समिति की स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष श्री जवाहरलाल बने और संयोजक श्री गिरि।

श्री गिरि ने अन्य कांग्रेसी मन्त्रियों के साथ १९४० में त्याग-पत्र दे दिया। उन्होंने युद्ध में अंग्रेजों का साथ देने से इन्कार किया। उनको १९४० में गिरफ्तार किया गया और १५ साल की कैद हुई। मार्च १९४१ में वे रिहा हुए, लेकिन फिर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय गिरफ्तार हो गये। तीन वर्ष जेल में रहे।

१९४६-४७ में वे फिर मद्रास में मंत्री बने, लेकिन जब प्रकाशम-मन्त्रिमण्डल का पतन हुआ, उन्होंने इस्तीफा दे दिया। १९४७ में उन्हें श्रीलंका में प्रथम भारतीय उच्चायुक्त नियुक्त किया गया।

१९५२ के आम चुनाव में श्री गिरि लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए,

औद्योगिक विवाद कानून के अन्तर्गत कर्मचारियों को मुआवजा देने के लिए उन्होंने व्यवस्था करायी।

श्रमिकों के प्रति उनकी भक्ति की परीक्षा का एक समय उस समय आया जब उनको अपनी अंतरात्मा व श्रममंत्री-पद के बीच चुनाव करना पड़ा। जब बैंक विवाद पर ट्रिब्युनल के अवार्ड को बदला गया तो उन्होंने सरकार छोड़ दी। उनके वैकल्पिक प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुए और उन्होंने २५ अगस्त १९५४ को इस्तीफा दे दिया।

श्री गिरि जून, १९५७ में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल नियुक्त हुए। इसके बाद केरल व मैसूर के राज्यपाल रहे। चौथे आम चुनाव के बाद वे उपराष्ट्रपति बने। डा० जाकिर हुसैन की मृत्यु के बाद वे कार्यवाहक राष्ट्रपति बने।

राष्ट्रपति के पद के लिए चुनाव लड़ने के उद्देश्य से उनको त्याग-पत्र देने की जरूरत नहीं थी। लेकिन उन्होंने एक स्वस्थ परम्परा बनाने के लिए अपने पद से त्यागपत्र दिया।•

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशोधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : १
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

अगस्त, '६९

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित; श्रमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : अगस्त '६९

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

विवेकरहित विरोध
बनाम
बुनियादी परिवर्तन-प्रक्रिया

"शासन के खिलाफ विवेकरहित विरोध चलाया जाय तो उससे अराजकता की, अनियन्त्रित स्वच्छंदता की स्थिति पैदा होगी और समाज अपने हाथों अपना नाश कर डालेगा।"

—गांधीजी

आज देश में आये दिन घेराव, धरना, लूटपाट, आगजनी, कथित सत्याग्रह की कार्रवाइयाँ लोकतन्त्र में सामूहिक विरोध के हक के नाम पर होती हैं।

सर्वोदय-आन्दोलन भी वर्तमान समाज, अर्थ और शासन-व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह है। किन्तु, वह इसका एक नियन्त्रित, रचनात्मक एवं अहिंसक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

इसके लिए पढ़िए, मनन कीजिए :—

(१) हिन्द स्वराज्य —गांधीजी

(२) ग्रामदान —विनोबाजी

फिर एक जिम्मेदार नागरिक के नाते समाज परिवर्तन की इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया में योग भी दीजिए।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति) दुकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर ३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर वाराणसी

वर्ष : १८

अंक : २

- विद्यालय-सकुल
- शिक्षा खेतों तक पहुँचे
- अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-वर्ष
- विनोबा सीनियर मोस्ट
- रूसी शिक्षा-पद्धति तथा बुनियादी शिक्षा

१९६९

अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-वर्ष

वर्ष : १८
अंक : २

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने १९७० ई० में अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-वर्ष मनाने का निश्चय किया है। निश्चय में कुछ बुरा नहीं है। इस 'लोकतंत्र और साम्यवाद के युग में 'शिक्षा पाना' प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। साम्यवादी रूस में ऐसी योजना है कि प्रत्येक नागरिक को शिक्षा भी मिले और काम भी मिले। दूसरे ऐसा नहीं कर पाये हैं, परन्तु यह स्वीकार करते हैं कि 'शिक्षा' प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। द्वितीय महायुद्ध के राष्ट्रसंघ बनने के बाद से विकसित और विकासशील दोनों ही तरह के देशों में नागरिक को शिक्षित करने के इस कर्तव्य पर विशेष ध्यान दिया गया है, परन्तु फिर भी आज विश्व में ७५ करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं—यानी अपना हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते। १९४६ में निरक्षरों की यह संख्या ७० करोड़ की थी। परन्तु तब विश्व की जनसंख्या कम थी और यह ७० करोड़ पूरी जनसंख्या का ४४ प्रतिशत था। वह प्रतिशत अब घटकर ३३ रह गया। परन्तु यह भी कोई संतोष की बात नहीं।

दूसरी एक बात और हुई है। जो शिक्षा दी भी जा रही है वह गुणात्मक दृष्टि से पहले से अच्छी नहीं है। 'गुण' में तो कमी ही आयी है। यह दूसरी बात है कि आज ज्ञान का 'विस्फोट' (एक्सप्लोजन आफ नालेज) हुआ है और केवल

विज्ञान के क्षेत्र में जो नये विचार और नये सिद्धान्त आये हैं यदि उन्ही को जानकारी दी जाय तो पाठ्य-सामग्री मे प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ नये पृष्ठ बढ जाते हैं। परन्तु यह 'विस्फोट' शिक्षा के गुणात्मक तत्व को यदि कम करता है तो हानिकर है। एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों मे तो, और इसमे भारत वर्ष भी शामिल है, शिक्षा-प्रणाली में कोई 'गुणात्मक' परिवर्तन नही हुआ है। बुनियादी शिक्षा मे अवश्य वे तत्व थे जो शिक्षा मे गुणात्मक परिवर्तन करते, परन्तु बुनियादी शिक्षा स्वतंत्र भारत में नही चली। भारत मे ही नही विकासशील एशिया और अफ्रीका के लगभग सभी देशो की शिक्षा-प्रणाली पुरानी और पिछडी हुई है, अतः इन देशों में 'शिक्षा' 'विकास' का साधन नही बन पायी है। इसका प्रधान कारण यह है कि इन देशो ने, विशेषत भारत ने जब अपनी विकास-योजनाएँ बनायी तो उसने शिक्षा को बहुत 'लो प्रायर्टी' दी। राष्ट्रीय खर्च के मद मे शिक्षा को बहुत नीचे रखा गया। फलतः देश को साक्षर और शिक्षित बनाने के लिए शिक्षा सबके लिए सुलभ नही बनायी जा सकी। पर्याप्त शिक्षकों को प्रशिक्षण भी नही दिया जा सका, जिससे शिक्षा का गुणात्मक पहलू भी अवहेलित हो गया और शिक्षा 'विकास' अथवा 'प्रगति' का साधन नही बन सकी।

फिर क्षति और अवरोध की समस्या भी कम नही हुई है। अफ्रीका के विकासशील देशो मे दस में से सात छात्र कक्षा छः के बाद पढाई छोड देते हैं। भारत के स्वराज्य के बीस वर्ष बाद भी अभी हम भारतीय सविधान के आश्वासन के बावजूद ६ से १४ वर्ष के सारे बच्चों को स्कूलो मे नहीं ला पाये हैं।

इन्ही कारणो से सयुक्त राष्ट्र संघ १९७० मे अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-दिवस मनाकर विश्व का ध्यान 'शिक्षा' और शिक्षा की समस्याओ की ओर आकर्षित करना चाहता है। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी जो सुझाव दिये गये हैं, उनमें प्रमुखतः तीन बातो की ओर ध्यान रखने के लिए कहा गया है:

१–शिक्षा का रूप व्यापक बनाया जाय जिससे शिक्षा स्कूलो और कालेजो की शिक्षा के बाद ही समाप्त न हो बल्कि जीवन-पर्यन्त चलती रहे। 'यावद्जीवेत धीते विप्र.' विप्र जब तक जीवित रहे

अध्ययन करे--गाधीजी ने बुनियादी शिक्षा को जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यापक बताया था।

२--शिक्षा-कार्यक्रम ऐसा बने जिससे सरकारी एव राष्ट्रीय सगठना द्वारा किये जानेवाले कार्यों को बल प्राप्त हो। शिक्षा विकास का साधन बन सके और उन सारे कार्यो का माध्यम बन सके जिसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठन मानव के कल्याण और प्रगति के लिए कर रहे हैं।

३—शिक्षा के कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर ही आयोजित और कार्यान्वित किये जायँगे, पर उनका आयोजन और कार्यान्वयन इस ढग से किया जायेगा जिससे उनका समन्वय सयुक्त राष्ट्र सघ की उस सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था से हो जो वह विश्व के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए लागू कर रहा है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-वर्ष मे प्रौढ व्यक्तियो को उद्योगपरक शिक्षा दी जाय। केवल साक्षरता के स्थान पर उन्हे 'फन्क्शनल साक्षरता' दी जाय। देहाती क्षेत्रो मे आधुनिक जगत की आवश्यकताओ के अनुरूप शिक्षा दी जाय जिसमे 'ग्राम और नगर' का अन्तर दूर हो और मानव-सस्कृति की एकता का भान हो। शिक्षा का आयोजन 'विकास' को ध्यान मे रखकर किया जाय और जो कर्मचारी विकास-कार्य मे लगें उनके प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध हो। अध्यापकों के लिए सेवा के पहले और सेवाकाल मे प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाय जिससे नये ज्ञान-विज्ञान और नयी पद्धति से उनका सम्पर्क बना रहे। अनुसन्धान और तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाय। —वशीधर श्रीवास्तव

विनोबा : 'सीनियर मोस्ट'

काका कालेलकर

बहुत कम लोग जानते होंगे कि विनोबा भावे का मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है। इतना पुराना कि उन दिनों न मैंने गाधीजी का नाम सुना था, न विनोबा ने। मैं बडौदा को राष्ट्रीय शाला गगनाथ भारतीय सर्व विद्यालय का आचार्य था। और विनोबा भावे बडोदा कालेज में एक विद्यार्थी थे। वहाँ उनकी द्वितीय भाषा सस्कृत नही किन्तु फ्रेंच थी। उनका और मेरा सम्बन्ध स्थापित होने का कोई कारण भी नही था। लेकिन आकाश के तारे क्या नही कर सकते? उन दिनो दक्षिण कर्नाटक से एक सस्कारी युवान् गगनाथ के सस्थापक बैरिस्टर देशपाडे से मिलने आये थे। उनका नाम था मजेदवर गोविन्द पै। उन्होंने मुझे आकाश के तारो के देशी नाम बताये। इतना ही नहीं, उनका प्रत्यक्ष काफी परिचय भी कराया। पश्चिम का खगोल-ज्योतिष मैं जानता ही था। भारतीय ज्योतिष-शास्त्र की किताबें मैंने मँगवायी और दोनो की मदद से आकाश के ग्रह-नक्षत्र-तारो' को मैं पहचानने लगा और उनकी गति के बारे मे गणित भी करने लगा।

मेरा स्वभाव रहा प्रचारक का। मैंने आकाश के तारो के काव्य के बारे मे प्रचार शुरू किया। उसकी बातें कालेज तक पहुँची। वह सुनकर कालेज के लडके सूर्यास्त के बाद मेरे पास आने लगे। उनकी सख्या बढते बढते श्री विनायक नरहर भावे उनमे खीच आये। रात शुरू होते ही जितने नक्षत्र और ग्रह दीख पडते हैं उनका परिचय उन्होने मुझसे देखते-देखते पा लिया। उनके एक मित्र ने गीता के बारे मे दिलचस्पी बतायी तब मैंने स्वामी स्वरूपानन्द का गीता का अग्रेजी अनुवाद उनको दे दिया। पता नही, विनोबा ने बाद मे अपने एक सहपाठी से सस्कृत कब सीखी और उनमे गीता का आकर्षण कब पैदा हुआ। बहुत वर्षों बाद मैंने विनोबा के पास मरी स्वरूपानन्दवाली गीता पायी तब मुझे पुराने दिन याद आये।

जब मैं बिहार गया था, विनोबाजी से मिला। उनके शिष्य भी वहाँ बैठे थे। तब गणिती विनोबा ने आसपास के लोगो को कहा—"मैं काका साहब से दस वर्ष छोटा हूँ। लेकिन महीने के हिसाब से पौने तीन महीने उनसे बडा हूँ। तब से विनोबाजी की जन्म-तारीख ११ सितम्बर मुझे याद रह गयी है।

उस समय पता नही था कि विनोबा-जयन्ती के दिन उनके बारे मे कुछ कहने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त होगा।

हम दोना गाधीजी के आश्रम म दाखिल हुए, इसमे भी सीनियर कौन और जूनियर कौन इसका विचित्र सवाल है।
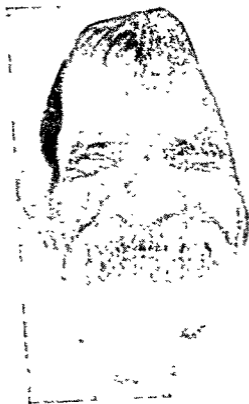
विनोबा

मै गाधीजी स सन् १९१५ की फरवरी म ही शायद मिला था। वे दक्षिण अफ्रीका से विलायत जाकर भारत लौटे थे। और 'फिनिक्स आश्रम' के अपने साथियो को मिलने के लिए शान्तिनिकेतन पहुँचे थे। उन दिनो मैं शान्तिनिकेतन मे था। और गाधीजी के स्वागत के समारोह मे मैंने उत्साहपूर्वक हिस्सा भी लिया था। उन्ही दिनो म गाधीजी ने मुझे अपने आश्रम म आने का आमत्रण

दिया था। काफी समय के बाद, जरूरी समझकर उन्होंने अपने दोस्त बैरिस्टर देशपाडे को मेरे बारे में खत भी लिखा था। देशपाडे साहब मुझे अहमदाबाद के सत्याग्रहाश्रम में ले गये, उसके पहले विनोबाजी आश्रम के सदस्य बन चुके थे, लेकिन नाममात्र। विनोबा ने आश्रम म प्रवेश पाते ही गाधीजी से कहा कि सस्कृत विद्या मे अच्छा प्रवेश पाने का सकल्प है। उसे पूरा करने के लिए एक साल मैं वाई की प्राज्ञ पाठशाला म नारायण शास्त्री मराठे के पास जाना चाहता हूँ। इस तरह विनोबा वाई चले गय। और मुझे आश्रम मे दाखिल होते ही विद्यार्थियो को सस्कृत सिखाने का काम सिर पर लेना पडा। विनोबा का एक साल जिस दिन पूरा हुआ उसी दिन आश्रम पहुँचकर उन्होंने अपना काम शुरू किया। नये-नये लोग मानने लगे कि काका साहब आश्रमवासियो मे सीनियर हैं, विनोबा जूनियर हैं। मैंने कहा, गणित के हिसाब से देखा जाय तो वे सीनियर हैं और सकल्प की दृष्टि से और प्रत्यक्ष काम की दृष्टि से मैं सीनियर हूँ।

आज गाधीजी के देहान्त को जब इक्कीस वर्ष हो गये, मैं कह सकता हूँ कि गाधी-कार्य के प्रचार मे और विस्तार मे विनोबा हम सबसे 'सीनियर मोस्ट' हैं।•

हम अनेक में एक

बाबा जनता का सामान्य सेवक है और थोडा-सा आध्यात्मिक ग्रन्थो का ज्ञान रखता है और उसकी ईश्वर पर श्रद्धा है। हम सारे सामान्य सेवक हैं। मैंने कहा था कि पडित नेहरू के जाने के बाद जो नेता होगे वे जनता मे एक होकर रहेगे। इनके आगे नेता नही, 'गण सेवक' होगे। नेताओ का जमाना अब समाप्त हो गया। प० नेहरू आखिरी नता थे। इनके आगे वह खाता खतम है। मैंने कहा था कि इसके आगे उनसे भी बढकर नेता होगे, लेकिन वे अनेक मे से एक होगे। उसके लिए बहुत बार मैं एक कहानी सुनाया करता हूँ। वर्ड्सवर्थ अग्रेजी के एक बडे कवि हो गये। जहाँ वह रहते थे वहाँ एक पहाड था। वह घूमने के लिए वहाँ जाया करते थे। किसीने पूछा कि आपका स्मारक कैसे बनाया जाय ? तो उन्होंने बताया कि वह जो पहाड है, उसमे कई पत्थर अच्छे अच्छे थे उनको सारे लोग कारीगरी के लिए ले गये। फिर भी एक पत्थर ऐसा पडा है, जिसका आकर्षण किसीको कारीगरी के लिए नहीं हुआ। वह मैंने देखा है। उसका स्मारक के लिए उपयोग किया जाय। उस पर मेरे जन्म और मृत्यु की तारीख हो और यह लिखा हो— 'वन आफ द मैनी" (अनेक मे से एक)। वैसे ही हम भी सारे अनेक मे से एक हैं, यह हमको समझ लेना चाहिए। इस कविता को कहते हुए मैं कभी अघाता नही। —विनोबा

ब्रह्मविद्या का विनियोग

विनोबा

एक भाई ने मुझसे कहा कि विद्यार्थियों को ब्रह्मविद्या का अध्ययन जवानी में होना चाहिए। तब मैंने विनोद में उनको प्रो० निमाई की कहानी सुनायी।

बंगाल में प्रो० निमाई हो गये। उन्होंने एक विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। उसमें वे न्याय व्याकरण आदि विषय सिखाते थे। विश्वविद्यालय के लिए उन्होंने पैसे भी इकट्ठा किया था। उसका संचालन भी वे करते थे। काफी विद्यार्थी सीखने के लिए आते थे। फिर एक बार उनको मथुरा जाने की प्रेरणा हुई मथुरा-वृन्दावन होकर आये। अनेक सन्तों से परिचय हुआ भगवान का साक्षात्कार हुआ। उसके बाद उन्होंने विश्वविद्यालय में न्याय-व्याकरण आदि विषयों के बजाय हरिनाम-चर्चा और जिसको ब्रह्मविद्या कहते हैं वह शुरू किया तो एक-एक विद्यार्थी विश्वविद्यालय छोड़कर जाने लगा। पाँच सौ साल पहले की यह घटना है। प्रो० निमाई यानी चैतन्य महाप्रभु। उनका मूल नाम निमाई था। और व विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे।

अगर कालेज में ब्रह्मविद्या और नाम महिमा सिखायी जायेगी तो एक एक विद्यार्थी कालेज छोड़कर चला जायेगा। ब्रह्मविद्या के नाम से कालेज खोला तो उसमें कोई आयेगा नहीं। व्याकरण भाषा के नाम से कालेज खोला और उन विषयों के साथ ब्रह्मविद्या सिखायी तो शायद बनेगा। फिर अगर नौकरी के लिए ऐसी शर्त रखें कि जैसे डिग्री आवश्यक है वैसे उसके साथ ही गुरु बोध पढ़ना आवश्यक है तो विद्यार्थी गुरुबोध पढ़ेंगे लेकिन परीक्षा के बाद सब भूल जायेंगे। जैसे रेचक लेने के बाद खाया हुआ निकल जाता है। यह आज की ही स्थिति नहीं प्रो० निमाई के समय भी यही स्थिति थी। इसलिए आज की शिक्षा को दोष देने की जरूरत नहीं।

चैतन्य महाप्रभु सामान्य व्यक्ति नहीं। बंगाल में अनेक बड़े-बड़े राजा हो गये। लेकिन बंगाल में आज चैतन्य के बराबर दूसरा कोई नाम नहीं चलता। इतिहास में उनको जो स्थान हासिल है वह दूसरे किसी को नहीं। ऐसे व्यक्ति को भी यही अनुभव आया। तो यह आज के ही शिक्षकों का या विद्यार्थियों का दोष है ऐसा नहीं कह सकते।

ब्रह्मविद्या अपरिहार्य

चैतन्य महाप्रभु के जमाने में ब्रह्मविद्या के लिए जो अनुकूलता थी उससे

बहुत ज्यादा अनुकूलता आज विज्ञान ने पैदा की है। अणु-युग ने ब्रह्मविद्या को ऐहिक जीवन के लिए अपरिहार्य कर दिया है। इसलिए आज की परिभाषा में नये ढंग से वह लोगों के सामने रखी जाय तो उसका बहुत आकर्षण होगा।

मिसाल के तौर पर आज की एक समस्या लें। आज दुनिया के सामने जो मसले पेश हैं उनमें एक मसला है—अनियमित सन्तान-वृद्धि। उसके लिए संयम के अतिरिक्त दूसरे-तीसरे उपाय लोग ढूंढते हैं जिससे दुनिया का अत्यन्त पतन होगा। मेरे पास एक अमरिकन वैज्ञानिक का लेख आया है। संतति नियमन के बारे में मेरे विचार अमेरिका में पहुँच गये हैं। भारत सेवक समाज के सामने मेरा जो व्याख्यान हुआ था उसका जिक्र वहाँ की कांग्रेस के एक सदस्य ने कांग्रेस में दिये हुए व्याख्यान में किया। एक अमरिकन बहन ने मुझे पत्र लिखा है और उस व्याख्यान की एक प्रति और वैज्ञानिक का वह लेख उस पत्र के साथ भेजा है। उस बहन ने लिखा है कि क्रिश्चियन लोग हजारों की तादाद में आपके विचारों को पूर्ण पुष्टि देते हैं। मेरा वचन—अगर मैं संतति नियमन का यह तरीका मान्य करता हूँ तो वह आध्यात्मिक मूल्यों की हार है और हिन्दू होने से मैं हारता हूँ उन्होंने पत्र में उद्धृत किया है।

अब यह एक समस्या दुनिया के सामने पेश है। उसका सर्वोत्तम उपाय संयम है। लोगों को वह समझाया जा सकता है।

परलोक में गति मुक्ति इत्यादि बात अलग है। उसका आकर्षण पुराने जमाने में था। आज भी है थोड़े लोगों को। लेकिन आज समाज का आकर्षण होने के कारण इह लोक के लिए ऐहिक जीवन के लिए अपरिहार्य है संयम और वह विज्ञान युग में सिखाया जा सकता है। इस ढंग से संयम और ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा सामने रखी जायगी तो उसका सोशल वैल्यू (सामाजिक मूल्य) ध्यान में आयेगा।

दूसरी मिसाल आज साम्य की सब ओर भूख है। मनुस्मृति का जो चुनाव मैंने किया है उसके अन्तिम श्लोक में ब्राह्मणक्षत्रियादि की व्याख्या की है और उसका परिणाम बताया कि—स सर्व समता मत्य। यह अप्लायड (विनियुक्त) ब्रह्मविद्या होगी। विज्ञान में दो प्रकार हैं—एक शुद्ध विज्ञान और एक विनियुक्त विज्ञान। जैसे विनियुक्त विज्ञान मनुष्य के काम में आयेगा वैसे विनियुक्त ब्रह्मविद्या काम में आयेगी। उसमें आर्थिक समस्या हल करने की शक्ति है। यह जो विचार है ब्रह्मविद्या का—निर्दोषक्षमता का वह सामने रखा जाय और उसके बिना दुनिया का नाश है यह बात ध्यान में लायी जाय तो वह ब्रह्मविद्या रोचक होगी शक्तिशाली होगी।

शुद्ध और विनियुक्त ब्रह्मविद्या

शुद्ध विज्ञान और विनियुक्त विज्ञान में क्या फरक है ? इस कमरे में बिजली है लेकिन बटन दबायेंगे नहीं तबतक बिजली अव्यक्त रूप में ही रहेगी। बटन दबाने से व्यक्त होगी। अव्यक्तरूपेण बिजली और व्यक्तरूपेण बिजली, इनमें फरक है। अव्यक्तरूपेण बिजली में अन्धेरा है और व्यक्तरूपेण बिजली में प्रकाश। ब्रह्मविद्या जबतक अव्यक्त में ही रहेगी व्यावहारिक विनियुक्त रूप में नहीं आयेगी तबतक उसका प्रकाश मिलेगा नहीं। जिनको बटन दबाना मालूम नहीं उनको प्रकाश मिलेगा नहीं और वे दूसरे तीसरे उपाय करते रहेंगे। मालूम हुआ कि बटन है तो एकदम प्रकाश होगा।

दुनिया में अनेक मसले हैं। उन सबमें साम्य की आकांक्षा है। लेकिन साम्य कैसे लाया जाय ? गौतम बुद्ध और शंकराचार्य की प्रक्रिया से लाया जा सकता है। शंकराचार्य ने कहा—दानं संविभाग। अखण्ड दान प्रक्रिया भोग प्रक्रिया रोज चलती है। रोज खाते हैं। वह नियमित निरन्तर चलता है वैसे ही निरन्तर नियमित दान प्रक्रिया होनी चाहिए। दान यानी क्या ? उसकी व्याख्या पहले गौतम बुद्ध ने दी। गौतम बुद्ध के बारह सौ साल बाद शंकराचार्य हो गये। २४०० वर्षों में इन दो महापुरुषों ने एक ही व्याख्या की। आज दान की जो प्रक्रिया चल रही है वह टैक्स के रूप में है। टैक्स अपनी इच्छा से नहीं दिया जाता जबरदस्ती से लिया जाता है। इसलिए कितना भी करो वह टालने की कोशिश होती है। रोज दिये बिना खाना नहीं यह जो किया है वह दान क्रिया है। यह दान प्रक्रिया समझायी जायगी तो टाली नहीं जायेगी।

विज्ञान और आत्मज्ञान

और एक मिसाल। दुनिया में आज विज्ञान बढ़ रहा है। उसमें जानकारी बढ़ी और बुद्धि विकसित हुई। दिन-ब-दिन जानकारी बढ़ती ही जा रही है। हमारे पूर्वजों को इतनी व्यापक जानकारी नहीं थी। विज्ञान के कारण आज वह हमें उपलब्ध है। दुनिया के इस कोने की खबर उस कोने में चन्द मिनटों में पहुँचती है। इसमें दुनिया छोटी बनी है—सब नजदीक आ रहे हैं।

जब कि दुनिया एक होना चाहती है तब राष्ट्र की मर्यादा बनाना अस्मिता बनाना छोटे छोटे टुकड़े बनाना टिकेगा नहीं। दुनिया यह पसन्द नहीं करेगी। दीवारें तोड़ी जायेंगी। बर्लिन की दीवार टिकेगी नहीं। कोरिया के दो टुकड़े जर्मनी के दो टुकड़े, टिकेंगे नहीं। विज्ञान में वे टिक नहीं सकते। इसके स्वागत के लिए ब्रह्मविद्या तैयार होगी। वह नहीं होगी तो सहार के द्वारा आक्रमण होगा। उसके फिर चाहे जो नाम दें। लेकिन आक्रमण टलेगा नहीं। इसलिए

सब एक हैं—विश्व मानव है ऐसा महसूस होना चाहिए। वेद में है—विश्व मानुष वेद में कहीं भी भारत की स्तुति नहीं है पृथ्वी की स्तुति है। नाना धर्माणा पृथ्वी विवाचसम—जिस पृथ्वी में नाना धर्म हैं नाना भाषाएँ हैं उसको नमस्कार। उस वेद ने शब्द दिया—विश्वमानुष। हम सब एक हैं।

सारी दुनिया एक हो रही है। यह सारा विज्ञान का प्रयोग हो रहा है। आज सारा सन्दर्भ बदल गया है। व्यापक हो गया है। वहाँ छोटे-छोटे सन्दर्भ क्या काम करेंगे? इसलिए कहा—वसुधैव कुटुम्बकम। बड़ा मार्मिक शब्द है। यह सारी वसुधा छोटा कुटुम्ब है। सुना यह रहे हैं कि वसुधा अनेक है एक नहीं। इतनी सारी तारिकाएँ हैं असंख्य ग्रह हैं। इसलिए यह कुल वसुधा एक करें तो बहुत बड़ा काम कर लिया ऐसा नहीं। वेदान्त कह रहा है कि वसुधा एक करेंगे तो वह तो एक छोटा कुटुम्ब होगा। इसलिए कहा कुटुम्बकम्, कुटुम्ब नहीं कहा। इसमें खूबी है।

सार यह कि संकुचित राष्ट्रवाद के जो दुष्परिणाम आ रहे हैं उनको टालने के लिए वेदान्त है ऐसा समझायें तो उसका स्वीकार लोग सहज करेंगे। वेदान्त एक दर्शन दे रहा है, ऐसा भास होगा, तो लोगों को वह जँचेगा, रोचक लगेगा नहीं तो लगता है कि हवा में चीज है। लेकिन हवा का भी आज कितना महत्त्व है। हवा में आदमी उड़ रहे हैं मिट्टी में दौड़ते हैं, पानी में तैरते हैं पक्षियों की तरह हवा में उड़ रहे हैं। विज्ञान आपको व्यापक दृष्टि दे रहा है। उसके लिए कोई विद्या है तो वह ब्रह्मविद्या है। इसलिए मैंने कहा कि आज दुनिया में विज्ञान और आत्मज्ञान चलेगा। राजनीति टिकेगी नहीं। छोटे छोटे धर्मपंथ टिकेंगे नहीं।

इस विचार का पंडित नेहरू ने पूर्णतया समर्थन किया था। और इस सम्बन्ध में कई बार मेरे नाम का उन्होंने जिक्र किया था। मेरा नाम लेने की जरूरत नहीं थी। वह विचार कोई मेरी बपौती नहीं। लेकिन जो व्यक्ति धर्मनिष्ठ माना जाता है वह कुछ कहता है तो उसे लोग उठाते हैं। एक व्याख्यान में पंडित नेहरू ने कहा था कि यद्यपि मैं राजनीति में हूँ फिर भी विनोबाजी का विचार मान्य करने के लिए मेरा मन कबूल हो रहा है—आई एम इन्क्लाइण्ड टु एक्सेप्ट इट।

आज ब्रह्मविद्या दुनिया के लिए तारक होगी। उसके बिना दुनिया टिकेगी नहीं। यह विद्या आज की दुनिया की अनुकूल परिभाषा में रखी जाय तो उसे लोग सुनेंगे और स्वीकार करेंगे।

ब्रह्मविद्या मन्दिर, पवनार
वर्धा, ७ ४ ६४

शिक्षक अपनी हैसियत बदलें

विनोबा

उत्तम साहित्य वह होता है, जो बड़ों के भी काम आता है और छोटों के भी काम आता है, जो बच्चों को भी अच्छा लगेगा, बड़े को भी अच्छा लगेगा, पुरुष और स्त्री को भी अच्छा लगेगा, जवान और बूढ़े को भी अच्छा लगेगा, गरीब और अमीर को भी अच्छा लगेगा और सबके काम में आयेगा। उसी तरह उत्तम शिक्षक वह है जो ऐसी शिक्षा देता है, जो बड़ों के भी काम आती है और छोटों के भी काम आती है, जवान-बूढ़, स्त्री-पुरुष, नगर के और देहात के लोग, गरीब अमीर सभी के काम आती है।

शिक्षक-जमात जड़

हमको बहुत आश्चर्य लगता है कि आज शिक्षक-जमात इतनी जड़ हो गयी है कि उससे अधिक जड़-बुद्धि की जमात भारत में हमने नहीं देखी। गाँव के ग्रामीण लोग या शहर के मजदूर लोग इतने जड़ नहीं देखे। वे अपने जीवन के बारे में सोचनेवाले होते हैं। उनके सामने कोई बात रख तो वे पचासों सवाल पूछेंगे। वे इतना सोचते हैं। लेकिन शिक्षक लोग बहुत ही जड़-बुद्धि के दिखाई पड़ते हैं और एकांगी होते हैं।

एक कालेज के प्राध्यापक की कहानी है। वे रास्ते से जा रहे थे तो किसीने उनसे पूछा कि भाई स्टेशन का रास्ता किधर है? तो प्राध्यापक-महाशय ने जवाब दिया कि मुझे स्टेशन का रास्ता मालूम नहीं, मैं भूगोल का प्राध्यापक नहीं हूँ, गणित का प्राध्यापक हूँ। वे इतने एकांगी होते हैं। अपना जो विषय है, उससे बाहर देखने की उन्हें आवश्यकता नहीं। पहले ऊँचे स्तर के शिक्षक होते थे। अब विषयों के शिक्षक होते हैं। पहले एक-एक क्लास के लिए एक शिक्षक रहता था। अब तो एक क्लास के लिए ही चार-चार, पाँच-पाँच शिक्षक होते हैं। पहला क्लास गणित का, एक शिक्षक सिखाकर चला गया। दूसरा क्लास भूगोल का, शुरू हुआ तो दूसरा शिक्षक आया, पढ़ाकर चला गया। फिर और किसीका तीसरा क्लास और तीसरा शिक्षक, इसी तरह चलता है। बच्चे जैसे तास के पत्ते पीसते हैं वैसे घंटे-घंटे के बाद शिक्षक को पीसते हैं।

आजकल शिक्षक विद्यार्थियों के शिक्षक नहीं होते, विषयों के शिक्षक होते हैं। 'विद्यार्थियों के शिक्षक', यह हैसियत अब खतम हुई है। विद्यार्थी और शिक्षक, इनके बीच प्रेम है, प्रेम का कोई नाता है यह अब रहा नहीं। अब विषयों के

शिक्षक होते हैं। परिणाम यह हुआ कि गुरु शिष्य सम्बन्ध शून्य हुआ। आप किसी शिक्षक से पूछिए कि आपके हाथ से कितने विद्यार्थी निकले, तो वह जवाब देगा कि हर साल लगभग २०० विद्यार्थी निकलते हैं और, मैं ३२ साल नौकरी कर चुका हूँ। इस तरह से ३२ साल में कुल १६०० विद्यार्थी हाथ से निकले होंगे।

एक शिक्षक पर कितने विद्यार्थी ?

मुझसे पूछा गया था कि एक शिक्षक के कितने विद्यार्थी हो सकते हैं? मैंने कहा था कि एक पिता के कितने बच्चे हो सकते हैं? एक दो-तीन, ज्यादा-से-ज्यादा एक दर्जन। एक पिता या माता के जितने लड़के हो सकते हैं, उससे ज्यादा एक शिक्षक के विद्यार्थी नहीं हो सकते। माँ को क्या काम करना होता है? बच्चों को पोषण देना और प्रेम देना। शिक्षक को क्या करना है? शिक्षक को प्रेम और ज्ञान, दोनों देना है।

माँ से उसका काम बढ़कर है। प्रेम तो माँ जितना देती है उतना ही देना होगा लेकिन ज्ञान अधिक देना होगा। उसका दूना कार्य हो जाता है। माता से उसका काम कठिन है। इसलिए एक शिक्षक के पास अधिक विद्यार्थी नहीं हो सकते।

'भगवान उपवर्ष', । प्राचीन काल में एक बहुत बड़े शिक्षक उपवर्ष हो गये। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में 'भगवान' शब्द उनके लिए आदरसूचक इस्तेमाल किया। उस भगवान उपवर्ष के चार शिष्य थे। उनमें एक थे पाणिनि, जिन्होंने व्याकरण-शास्त्र लिखा। एक थे पातंजलि, जिन्होंने योग-शास्त्र लिखा। एक थे, जैमनी, जिन्होंने पूर्व मीमांसा लिखा। और चौथे भी एक शिष्य थे जिनका नाम अभी मुझे स्मरण नहीं। तो भगवान उपवर्ष के चार शिष्य महाज्ञानी हो गये और इधर तो एक एक शिक्षक के १६०० विद्यार्थी। 'एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपति निर्भया।' सिंहनी होती है उसको एक पुत्र होता है और उसके आधार पर वह निर्भयता से सोती है। कुत्ती के १०-५ बच्चे होते हैं, लेकिन उनके आधार से वह निर्भय नहीं सो सकती। ऐसी स्थिति आज तालीम की है।

शिक्षक की हैसियत कुली की

मुझे पूछा गया कि आजकल विद्यार्थी इतना दंगा कर रहे हैं, उनमें अनुशासनहीनता दीख रही है, तो क्या किया जाय? मैंने कहा, आज जो तालीम दी जा रही है, उस हिसाब से विद्यार्थी बहुत ही अनुशासन पालन कर रहे हैं और मुझे इसका आश्चर्य होता है कि वे इतना अनुशासन कैसे पालते हैं! लेकिन यह जो तालीम है, उसमें फर्क करने का अधिकार शिक्षकों के हाथ में नहीं है। शिक्षक,

प्राथमिक तो नौकर की हैसियत में आ गये हैं। ऊपर से सारा टाइम-टेबल और किताबें लिखकर आती हैं और उसके अनुसार इन लोगों को सिखाना पड़ता है तयशुदा किताबें और तयशुदा समय में विद्यार्थियों को सिखाना, यह इनका काम है। ये करीब हमाल (कुली) हैं। हमाल को केवल कहना पड़ता है कि 'ट्रंक उठाओ' और वह उठाता है। वह नहीं कह सकता कि मैं कपड़ेवाली ट्रंक उठाऊँगा, जूतेवाली नहीं। उसको तो केवल ट्रंक उठाना है। वैसे शिक्षक, विषय सिखानेवाले हमाल हैं, नौकर हैं।

अब इस हैसियत से उनको मुक्त होना हो तो इन डेढ़ सालों में बाबा ने जो बताया है कि शिक्षक को राजनीति से मुक्त होना चाहिए उस पर अमल करना होगा। डेढ़ साल पहले बाबा ने यह बात बतायी और आचार्यकुल की बात कही। उसी समय इधर बाबा ग्रामदान का आन्दोलन भी चला रहा था। अब इन डेढ़ सालों में ग्रामदान के काम में परिणाम यह आया है कि बिहार में उस समय केवल एक जिलादान हुआ था, अब १२ जिले ग्रामदान में आ गये हैं और इधर आचार्यकुल के विषय में कोई भी प्रगति नहीं हुई है। ग्रामीणों का आन्दोलन इतना आगे बढ़ गया और शिक्षकों का आन्दोलन जहाँ का वहीं है। शिक्षक अपनी जगह छोड़ता नहीं।

वास्तव में शिक्षकों की हैसियत बहुत बड़ी है। उनके हाथ में विद्यार्थी ३० साल तक रहेंगे। राजनीतिक दलों के नेताओं के हाथ में तो केवल पाँच साल रहते हैं और बिहार की हालत में तो पाँच साल भी नहीं। और वे तीस साल के बाद भी, यानी रिटायर होने के बाद शिक्षक का काम कर सकते हैं। उनके हाथ से जो विद्यार्थी तैयार होंगे वे भी आगे शिक्षक बन सकते हैं। उसका मतलब उनकी परम्परा चलेगी। राजनीतिक नेताओं की परम्परा नहीं चलेगी। इतनी सारी हैसियत शिक्षकों की हो सकती है। लेकिन ...बस। 'लेकिन' के साथ मामला रुक जाता है।

अब यहाँ लोहरदगा में इस काम का छोटा-सा आरम्भ हो जाय तो जिसको हल्चल आन्दोलन कहते हैं वह शुरू हो जायगा।

लोहरदगा, राँची
१६-७-६६

प्रधानाध्यापक :

विद्यालय के विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी

सुधाकर शर्मा

पिछले दिनो प्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी अचल के दो प्राइमरी विद्यालयो को, प्रसार-सेवा-केन्द्रो के कतिपय अन्य अधिकारियो के साथ देखने का अवसर मिला। दोनो विद्यालय अपने जिले के अच्छे विद्यालयो म गिने जाते है। दोनो विकासमान और गतिशील है, दोनो जनपदीय प्रसार-सेवा केन्द्र की सेवाओ से भी लाभ उठा रहे है और दोनो ही अध्यापक-वर्ग, सज्जा, भवन तथा शिक्षण-सामग्री की दृष्टि स सामान्यतया विपन्न नही है, फिर भी दोनो विद्यालयो को देखकर एक स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर हुआ—भवन, परिवेश और व्यक्तियो का भौतिक-मात्र अन्तर नही, बल्कि एक गहरा आन्तरिक अन्तर जिसका सम्बन्ध कदाचित् विद्यालय की आत्मा से होता है। हम लोगो के लिए मुख्य आकर्षण का विषय यही अन्तर था।

पहले विद्यालय पर हम पहुँचे तो वहाँ "यूनिफार्म मे सज्जित बालको द्वारा" 'गार्ड आव आनर' का भी प्रबन्ध था और फूल-मालाओ का भी। फूल-मालाओ को देखकर, नजर स्वत ही विद्यालय के छोटे से प्रागण पर दौड गयी कि शायद वहाँ फूलो के पौधे हो और मालाओ क लिए फूल उन्हींसे लिये गये हो, मगर दृष्टि को निराश ही होना पडा। बहरहाल फूल-मालाओ के लिए धन्यवाद देकर, प्रधानाध्यापक की अनुमति से हम एक कक्षा म पहुँचे, कि देखें 'बालवाडी' के फूलो मे कितनी उत्फुल्लता है और कैसी सुगन्ध है। मगर उस कक्षा मे ही नहीं, बल्कि और कक्षाओ मे भी, न तो फूलो की खिलखिलाहट ही मिली और न वह माली ही मिले, जिनकी कुशल एव सहानुभूतिपूर्ण देख-रेख मुरझाये हुए फूलो मे भी प्राण-सचार कर देती है। पहली कक्षा म क्रियाशीलता और सजगता अगर कही थी तो वह अध्यापक के मुख म थी। वह लगातार बोल रहे थे। प्रश्न भी कर रहे थ और स्वय ही उत्तर भी द रहे थे। शकाएँ भी (यदि कोई थी तो) उनकी अपनी ही थी और उन शकाओ का समाधान भी वह स्वय, कदाचित् स्वान्त सुखाय ही कर रहे थे। ज्ञान निर्झर अबाध रूप म बह रहा था, मगर मानो जड पाषाण बैठे बालको के सिरो के ऊपर से ही निरन्तरता बना जा रहा था। बच्चे ज्यो-के-त्यो गूँगे-के-गूँगे बैठे थे। यही स्थिति

हर कक्षा में हो, ऐसी बात नहीं थी, मगर ऐसा भी कहीं नहीं पाया कि बालक जी भरके ज्ञान-गंगा में डुबकी लगा रहे हों और उनके तन-मन का मैल दूर करने में अध्यापक अभीष्ट रूप में सहायक हो रहे हों। साधनों के मामले में विद्यालय अगर समृद्ध नहीं तो गरीब भी नहीं दीखा। मगर उनका वांछित उपयोग हुआ हो, या नियमित रूप में होता हो, ऐसा नहीं लगा। विद्यालय को ग्राम-समुदाय का भी सहयोग प्राप्त है, अन्यथा ग्राम-प्रधान महोदय, हम लोगों के तनिक अनुरोध पर ही, विद्यालय के दो अधूरे कमरों को आगामी वर्ष तक पूरा कराने का आश्वासन कैसे दे देते। अतीत में भी, ग्राम-समुदाय का सहयोग भरपूर मात्रा में प्राप्त करने का प्रयास किया गया होता, तो कदाचित् विद्यालय-भवन और उसकी सज्जा का कुछ और ही रूप होता। मगर यह विद्यालय का एक पहलू था। दूसरा पहलू विद्यालय से लगे हुए छोटे से क्रीडा-मैदान में देखने को मिला। इस मैदान पर छोटे-छोटे बालकों ने एक-सी पोशाक में सामूहिक शारीरिक व्यायाम, राइफिल-ड्रिल, लेजिम, गायन, अभिनय आदि के द्वारा जिस स्फूर्ति, जिस मानसिक एवं शारीरिक जागरूकता तथा नयी बातों को सीखने की जिस अपार क्षमता का परिचय दिया, उसे देखकर विस्मित होकर सोचना पड़ा कि क्या ये वही बालक हैं जो अभी कुछ देर पहले कक्षाओं में मूक और स्पदन-हीन बने बैठे थे। अध्यापक-बन्धु भी बिलकुल बदले हुए दीखे। तभी साथियों में से एक ने कदाचित् मेरी इस चिन्तन-प्रक्रिया को ही मूर्त रूप देते हुए, प्रधानाध्यापक महोदय से सीधे प्रश्न कर डाला।

"यह बताइए हेडमास्टर साहब, कि जो खूबी इन बच्चों में इस खेल के मैदान पर पैदा की गयी है, वह कक्षा-कार्य में देखने में क्यों नहीं आयी?"

उत्तर के लिए हेडमास्टर साहब को असमंजस में देखकर, दूसरे साथी ने कहा—कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस स्थिति के लिए हम लोग ही, अर्थात् निरीक्षक-वर्ग ही उत्तरदायी हों, याने कि अगर निरीक्षक-वर्ग अपने निरीक्षण के दौरान, इन्हीं पाठ्येतर क्रिया-कलापों पर बल देता हो और ऐसे ही प्रदर्शनों को देखकर तथा कुछ अन्य औपचारिकताओं से सन्तुष्ट हो जाता हो, तो फिर अध्यापक-वर्ग भी अगर इसीमें अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ले, तो इसमें उसका क्या दोष?

बात बहुत अंशों में सही थी। प्रधानाध्यापक महोदय ने भी, मानो मूक रहकर बात की सच्चाई का समर्थन किया। मगर फिर भी उसमें कहीं कुछ कसर थी। कसर क्या थी? इसका पता दूसरे विद्यालय पर जाकर लगा।

× × ×

कुछ ही मील की दूरी पर स्थित और कदाचित् एक ही प्रति-उपविद्यालय-निरीक्षक के क्षेत्र में अवस्थित दूसरे विद्यालय पर हम जब पहुँचे तो वहाँ भी कुछ औपचारिकताएँ तो मिली ही (वह संभवत आज निरीक्षण-कार्य का एक अनिवार्य अंग बन गयी हैं) मगर उन्हींके साथ-साथ विद्यालय के छोटे-से खूबसूरत प्रांगण में महकते हुए फूल भी मिले और सुरुचिपूर्ण रंग-योजना से आकर्षक बने भवन के अन्दर उत्साह-प्रदीप्त चेहरे भी मिले शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी मिला तथा समवेत स्वर में राष्ट्रीय गान भी सुनने को मिला अच्छे स्तर का शारीरिक-व्यायाम-प्रदर्शन और कक्षाओं में मन को सन्तोष देनेवाला शिक्षण भी देखने को मिला। फिर देखा कि कक्षा-कक्षों में टँगे हुए मानचित्र चित्र चार्टस आदि बालकों के लिए अजीबो-गरीब चीजें नहीं हैं, बल्कि बालकों का उनसे अच्छा खासा परिचय है। फिर इसका भी प्रमाण मिला कि अध्यापकों ने केवल पढ़ाया ही नहीं है स्वयं पढ़ा भी है, विद्यार्थियों को ज्ञानदान करनेवालों ने बाहर से ज्ञान लिया भी है। नये उपकरणों का प्रयोग और नये प्रयोगों के प्रति उनका उत्साह इसी तथ्य का परिचायक था। सब कुछ देख सुनकर लगा कि इस विद्यालय से बालकों के ऊपर सचेष्ट शिक्षकों का सहानुभूतिपूर्ण साया है और शिक्षकों के ऊपर एक सशक्त नेतृत्व है।

× × ×

पहले विद्यालय पर जो बात कही गयी थी उसमें क्या कसर रह गयी थी, वह दूसरे विद्यालय पर स्पष्ट हो गयी थी इसलिए वापसी यात्रा में, जब इसी विषय पर चर्चा चली तो पूर्वोक्त मित्र अपने अभिमत में स्वयं संशोधन करते हुए वह पड़े निश्चय ही विद्यालय के समुचित विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी 'प्रधानाध्यापक' ही है। अगर उसमें कल्पना क्रियाशीलता और नयी बातों को सीखने और करने की इच्छा तथा क्षमता है तो तीन-चौथाई मंजिल पूरी हुई समझिए। ऐसे व्यक्ति को ऊपर के अधिकारियों से भी निरन्तर उचित मार्ग-दर्शन मिलता रहे और उनके माध्यम से उसका सम्पर्क नवीनतम विचार-पहलुओं और शिक्षण-विधाओं से होता रहे तो सोने में सुहागा समझिये।

श्री सुधाकर शर्मा, निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश

विद्यालय-संकुल (स्कूल काम्प्लेक्स)

डाक्टर रामसेवक पाठक

[विद्यालय-संकुल की संकल्पना में सीमित साधनों के उपयोग से अधिकाधिक लाभ की कल्पना अन्तर्निहित है। भारत जैसे सीमित साधनोंवाले राष्ट्र के लिए यह योजना अत्यन्त उपयोगी है। इसका कार्यान्वयन होना चाहिए।—सं०]

कोठारी शिक्षा-आयोग की आस्था हमारे देश के शैक्षिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। शिक्षा में मौन क्रान्ति लाने के लिए इसमें जो अनेक विचार प्रेरक सुझाव दिये गये हैं, उनमें से एक सुझाव 'विद्यालय-संकुल' के बारे में है। विद्यालय-संकुल की चर्चा करते हुए आयोग ने कहा है—

" इस कार्यक्रम के अन्तर्गत माध्यमिक तथा प्राथमिक विद्यालयों का शृङ्खलन दो चरणों में होगा। प्रथम चरण में प्रत्येक उच्चतर प्राथमिक विद्यालय निकटस्थ १० अवर प्राथमिक विद्यालयों से संश्लिष्ट रहेगा जिससे वे सब मिलकर एक शैक्षिक सुविधाओं का संकुल बना सकें। उच्चतर प्राथमिक विद्यालय के मुख्याध्यापक को अपने अधिकार-क्षेत्र के अवर (जूनियर) प्राथमिक विद्यालयों के निमित्त विस्तार-सेवा की व्यवस्था करनी चाहिए और यह उसका उत्तरदायित्व होगा कि वे सुचारु रूप से कार्य करें। इस उद्देश्य के लिए उसकी अध्यक्षता में एक समिति होनी चाहिए, जो समस्त विद्यालयों के एक संकुलवत् विकास और योजना-कार्य के लिए उत्तरदायी होगी। द्वितीय चरण में माध्यमिक विद्यालय के मुख्याध्यापक की अध्यक्षता में एक समिति रहेगी, जिसके क्षेत्रगत समस्त उच्चतर और जूनियर प्राथमिक विद्यालयों के मुख्याध्यापक सदस्य होंगे। समिति कार्य की योजना बनायेगी और क्षेत्रगत समस्त विद्यालयों का पथ प्रदर्शन करेगी, जिसके सहारे प्रत्येक उच्चतर प्राथमिक विद्यालय संकुल (अपने सहचरी अवर प्राथमिक विद्यालयों के सहित) अपने कार्य का संचालन करेगा। विद्यालयों और अध्यापकों के इस समुदाय को अपने कार्यक्रमों को बनाने की पर्याप्त स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए किन्तु वह निरीक्षक अधिकारी वर्ग के मार्ग प्रदर्शन के अनुसार ही कार्य करेंगे। इनसे यह भी अनुरोध किया जाय कि वे स्थानीय समाजों

के साथ अपने कार्य का समन्वय करें और इस साधन से भी यथासम्भव सहायता लें। *

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि इस प्रकार के संगठन से किसी भी क्षेत्र विशेष में अवस्थित निकटवर्ती समस्त स्कूलों के समुदाय को शैक्षिक उन्नयन के लिए सहकारी प्रयत्न करना सुगम हो सकेगा। विद्यालय-संकुल को शिक्षा विभाग द्वारा अधिकार दिये जाने में उनके दुरुपयोग की सम्भावना भी अपेक्षाकृत कम होगी। विद्यालय-संकुल को दिये गये अधिकारों का उपयोग करने के लिए कार्यकारी स्तर पर अपेक्षित प्रतिभापुंज का संगठन एवं विकास हो सकेगा।

आयोग ने इस सम्बन्ध में आगे लिखा है —

"हम जिस स्थिति की कल्पना कर रहे हैं उसमें जिला शिक्षा-अधिकारी का प्रत्येक विद्यालय-संकुल से विशेष सम्पर्क होगा और यथासंभव वह इसे इकाई मान कार्रवाई करेगा। विद्यालय-संकुल स्वयं कुछ ऐसे सौंपे गये कार्य करेगा जो शिक्षा विभाग के निरीक्षण अधिकारियों द्वारा किये जाते और अपनी परिधि में आनेवाले स्कूलों के सम्बन्ध में वह आवश्यक कार्रवाई करेगा। इस कार्यक्रम में स्कूलों की शक्ति बढ़ेगी वे अधिक स्वतंत्रता से कार्य कर सकेंगे और पद्धति को लचीला तथा गतिशील बनाने में वे सहायक होंगे। इससे विभाग को भी लाभ होगा। वह अपना ध्यान बड़ी आधारभूत समस्याओं पर केन्द्रित रख सकेगा और थोड़े-से अधिकारियों से जो अधिक योग्य होंगे अपना कार्य चला सकेगा।"

आयोग के अनुसार विद्यालय-संकुल के निम्नांकित कार्य होंगे —
(१०-३९)

(१) मूल्यांकन की अच्छी पद्धतियां आरम्भ करना।

(२) ऐसी सुविधाएं और साज-सामान, जो प्रत्येक स्कूल को नहीं दिये जा सकते संकुल के सभी स्कूलों के लिए सामूहिक रूप से दिये जायेंगे, जैसे—(१) एक प्रोजेक्टर और सुवाह्य जनित्र (२) अच्छी प्रयोगशाला, (३) चल पुस्तकालय।

(३) विशेष विषयों के अध्यापकों द्वारा प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों का मार्गदर्शन, जैसे—व्यायाम शिक्षक या कला शिक्षक।

(४) अध्यापकों की अन्तर्सेवा शिक्षा और विशेषकर कम योग्यतावाले अध्यापकों का स्तर-उन्नयन।

---

* कोठारी शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट—हिन्दी संस्करण—१९६८, पृष्ठ-४८-४९, २९५-२९७ (२-५१)

(५) प्राथमिक स्कूलों म छुट्टी पर जानेवाले अध्यापकों के स्थान पर छुट्टी-रिजर्व-अध्यापक भेजना।

(६) नवीन पाठ्य-पुस्तकों, अध्यापक सदर्शिकाओं और अध्यापन-सामग्री का मूल्यांकन।

(७) पाठ्यचर्या एव पाठ्यक्रम मे परिवर्तन का प्रयोग।

विद्यालय-सकुल की सकल्पना को कार्य-रूप देने क पूर्व इस सम्बन्ध मे अध्यापकों का अभिनवीकरण तथा साहित्य की रचना आवश्यक होगी। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि विद्यालय-सकुल को सभी अधिकार क्रमश सौंपे जायें।

आयोग ने एक स्थान पर कहा गया है —

"हमारी सिफारिश है कि यह योजना पहले प्रत्येक राज्य के कुछ चुने हुए जिलों मे प्रायोगिक परियोजना के रूप मे शुरू की जाय। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पहली कार्रवाई यह की जाय कि जिले का चुनाव करते ही योजना-सम्बन्धी आवश्यक साहित्य प्रादेशिक भाषाओं मे तैयार कर लिया जाय और जिले के सभी स्कूलों और अध्यापकों म बाट दिया जाय। इसके बाद जिले के सभी *अध्यापक और प्रधानाध्यापक टोलियों म बँटकर इस योजना पर विचार विमर्श* करें। प्रत्येक निरीक्षण-अधिकारी अपने क्षेत्र मे दौरा करते समय ऐसी बैठकों का आयोजन आसानी से कर सकता है। विचार-विमर्श कर लेने के बाद योजना मे *आवश्यक सशोधन किया जाय और तब इसे अन्तिम रूप दिया जाय।'*

आयोग ने यह भी सकेत किया है कि जिले के प्रत्येक विद्यालय-सकुल को एकसाथ सब अधिकार न सौंप दिये जायें। आरम्भ मे कम-से-कम अधिकार दिये जायें। जब कार्य अच्छा हो तब और अधिकार क्रमश दिये जायें। दूसरी ओर यदि कोई विद्यालय-सकुल नियमानुसार कार्य न करे तो उससे अधिकार ले लेना भी आवश्यक होगा।

विद्यालय-सकुल के कार्य के लिए अतिरिक्त व्यय भी करना पडेगा, जैसे— समिति मे भाग लेने के लिए अध्यापकों को मार्ग-व्यय, अन्तर्सेवा शिक्षा के लिए आवश्यक व्यय, छुट्टियों मे प्राथमिक स्कूलों के छात्रों को केन्द्रीय स्कूल की *प्रयोगशाला मे विज्ञान पढाने के लिए सम्बन्धित अध्यापकों को पारिश्रमिक इत्यादि।*

उत्तर प्रदेश के कतिपय अचलों मे विद्यालय-सकुल सगठित करने के लिए उत्साह परिलक्षित होता है। अत अध्यापकों तथा प्रशासकों के विचारार्थ इस राज्य की *विशेष परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए विद्यालय-सकुल की सक्षिप्त*

रूपरेखा दी जाती है। विद्यालय-संकुल के संगठन के लिए इस प्रदेश की विशेष कठिनाइयाँ हैं, जिन पर ध्यान रखना होगा।

(१) उत्तर प्रदेश में भारतवर्ष के सभी राज्यों की अपेक्षा सबसे अधिक जनसंख्या है और इसका क्षेत्रफल, केवल मध्यप्रदेश के बाद, भारत के सभी राज्यों से अधिक है। इस प्रदेश में पर्वतीय तथा पिछड़े हुए क्षेत्र हैं, जहाँ यातायात के साधन सुलभ नहीं है। इस कारण विद्यालय-संकुल के विद्यालयों में निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना कष्टसाध्य होगा, यद्यपि इन पिछड़े क्षेत्रों में विद्यालय-संकुल की उपादेयता सर्वाधिक होगी।

(२) यद्यपि मध्यप्रदेश क्षेत्रफल में सबसे बड़ा प्रदेश है तथापि वहाँ के स्कूल प्रान्तीय सरकार के नियंत्रण में चलते हैं। इसलिए मध्यप्रदेश में विद्यालय-संकुल संगठित करने में विशेष कठिनाई नहीं होगी। इसके विपरीत इस प्रदेश में विद्यालय जिला-परिषद्, नगरपालिका, व्यक्तिगत प्रबन्धकारिणी-समितियों तथा केन्द्रीय एवं राज्य सरकार के नियंत्रण में चलते हैं। अतः इनमें समायोजन एवं सहयोग कठिन होगा।

(३) चतुर्थ योजना-काल में अर्थ-संकट के कारण उत्तर प्रदेश में विद्यालय-संकुल के सभी उपकरणों तथा कर्मचारियों की व्यवस्था सम्प्रति सम्भव नहीं हो सकती। अतः हम वर्तमान समय में शैक्षिक उन्नयन के उन्हीं कार्यों को प्रारम्भ कर सकते हैं जो व्यय-साध्य नहीं हैं अथवा जिनके लिए अपेक्षाकृत कम धन की आवश्यकता पड़ेगी।

(४) उत्तर प्रदेश के विद्यालय-संकुल में अभी कन्या जूनियर हाईस्कूलों को सम्मिलित करने से प्रशासकीय एवं अन्य कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। इस कारण प्रारम्भ में ग्रामीण क्षेत्र के कन्या विद्यालयों को विद्यालय-संकुल में सम्मिलित न करना ही सुविधाजनक होगा, परन्तु नगर-क्षेत्र में केवल कन्या विद्यालयों का विद्यालय-संकुल सरलतापूर्वक संगठित किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में विद्यालय-संकुल की रूपरेखा

१—संगठन

एक सघन क्षेत्र के प्रायः दस जूनियर बेसिक प्राइमरी स्कूल तथा तीन सीनियर बेसिक स्कूल (जूनियर हाईस्कूल) पास के एक हाईस्कूल या इण्टर कालेज से सम्बद्ध किये जा सकते हैं।

इन जूनियर स्कूलों तथा सीनियर बेसिक स्कूलों के प्रधानाध्यापकों की एक समिति संगठित की जायगी, जिसके अध्यक्ष केन्द्रीय हाईस्कूल अथवा इण्टर

कालेज के प्राचार्य होंगे। यह समिति विद्यालय-संकुल के सदस्य विद्यालयों के विकास तथा विविध कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का दायित्व वहन करेगी।

२—क्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र के स्कूल परस्पर दूर स्थित होते हैं और नगर के स्कूल एक-दूसरे के निकट रहते हैं। इसलिए किसी विशेष विद्यालय-संकुल का क्षेत्र तथा स्कूलों की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। विद्यालय-संकुल में उतने ही स्कूल सम्मिलित किये जायें, जिनमें आपस में सम्पर्क आसानी से स्थापित किया जा सके। इस विचार से एक विद्यालय-संकुल में प्रायः १० प्राइमरी स्कूल तथा ३ जूनियर हाईस्कूल सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन स्कूलों की संख्या सीमित रखना आवश्यक है, जिसमें निकट सम्पर्क रह सके तथा स्कूलों के उन्नयन हेतु उपाय कार्य में लाये जा सकें।

३—प्रशासन

उत्तर प्रदेश के प्रारम्भिक स्कूल जिला परिषदों, नगरपालिकाओं, व्यक्तिगत प्रबन्ध, केन्द्रीय सरकार तथा राज्य-सरकार के नियंत्रण में चलते हैं। अतः विद्यालय-संकुल के सदस्य स्कूलों में सहयोग, अनुशासन तथा समायोजन के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक का विशेष दायित्व होगा। विद्यालय-संकुल के विभिन्न कार्यक्रमों के समन्वय तथा स्कूलों के पारस्परिक मतभेदों का निराकरण जिला विद्यालय निरीक्षक का प्रमुख कर्तव्य होगा।

विद्यालय-संकुल के प्रत्येक स्कूल की आवश्यकताओं का अध्ययन करके इनके लिए पर्याप्त अनुदान की संस्तुति जिला विद्यालय निरीक्षक करेंगे।

४—विद्यालय संकुल के कार्य कलाप

(१) विद्यालय संकुल के वर्ष भर के कार्यक्रम का नियोजन समिति द्वारा किया जायगा।

(२) परस्पर विचार विमर्श से प्रत्येक स्कूल का टाइम-टेबुल बनाया जायेगा।

(३) सदस्य-स्कूलों का स्तर ऊँचा उठाने के लिए बौद्धिक तथा खेल प्रतियोगिताएं विद्यालय-संकुल द्वारा आयोजित की जायगी।

(४) मूल्यांकन तथा परीक्षा प्रणाली के नियमों में सुधार विद्यालय संकुल का कार्य होगा।

(५) विद्यालय संकुल के अध्यापकों का अन्तर्सेवा प्रशिक्षण, उनकी वृत्तिक दक्षता का उन्नयन, निदर्शन पाठों का आयोजन, ग्रीष्मावकाश में विशेष पाठ्य-

कर्मों का संचालन तथा व्यावसायिक परामर्श देकर प्रतिभाशाली अध्यापकों की योग्यता बढ़ाने का कार्य केन्द्रीय स्कूल द्वारा किया जायगा।

(६) केन्द्रीय स्कूल में दो मोचक (रिलीविंग) अध्यापक रहेंगे, जो विद्यालय-संकुल के विद्यालयों में अवकाश पर जानेवाले अध्यापकों का कार्यभार सम्भालने के लिए जायँगे। यह प्रबन्ध विशेषत एक अध्यापकवाले स्कूलों के लिए आवश्यक होगा, क्योंकि इन विद्यालयों के अध्यापक जब अवकाश पर जाते हैं तो समय पर कार्यवाहक अध्यापक के न आने के कारण स्कूल प्राय बन्द हो जाते है।

(७) विद्यालय-संकुल में नवीन पाठ्य-पुस्तकों, अध्यापक-संदर्शिका तथा नवीन सहायक सामग्री का मूल्यांकन किया जायगा।

(८) स्थानीय डाक्टरों, जिला परिषद् तथा राज्य-सरकार के स्वास्थ्य अधिकारियों की सहायता से विद्यालय-संकुल के छात्रों और छात्राओं की स्वास्थ्य-परीक्षा तीन मास में एक बार ली जायगी। रोगी छात्रों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया जायगा तथा समय पर सुयोग्य डाक्टर का परामर्श प्राप्त करने के लिए अभिभावकों की सहायता भी की जायगी।

(९) अध्यापक अभिभावक संघ और पाठशाला प्रबन्धक समिति को सक्रिय बनाने के लिए विद्यालय-संकुल में प्रयास किया जायगा।

(१०) छात्रवृद्धि-अभियान, स्कूल-भवन और अध्यापक-भवन का निर्माण, शौचालय तथा जीर्णोद्धार की व्यवस्था विद्यालय-संकुल द्वारा की जायगी।

(११) सहायक सेवाओं तथा मध्याह्न उपाहार, विद्यालय-परिवेश, पुस्तक-बैंक तथा छात्रों की स्वास्थ्य-परीक्षा का प्रबन्ध विद्यालय-संकुल में किया जायगा।

५—वित्त

	रुपये
केन्द्रीय विद्यालय के लिए लेखन-सामग्री	१००
प्रकाश	१००
पुस्तकें	५,०००
पत्रिकाएँ	६००
मार्ग-व्यय	१,०००
प्रयोगशाला के उपकरण	१,०००
एल० टी० वेतनक्रम के चार अध्यापक, जो संकुल के सभी स्कूलों में प्रसार का कार्य करेंगे	१२,०००

पुस्तकालय के लिए कुर्सी मेज आलमारी / ०००
छात्रों और अध्यापकों के लिए पुरस्कार
प्रमाणपत्र १ ०००

अर्थाभाव की स्थिति का ध्यान रखते हुए केन्द्रीय स्कूल की न्यूनतम आवश्यकताओं के लिए ऊपर लिखित वित्त की आवश्यकता होगी। देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने पर प्रोजेक्टर जनरेटर चार्ट तथा एक चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी की व्यवस्था की जा सकती।

६—केन्द्रीय माध्यमिक विद्यालय के आवश्यक उपकरण

(१) सुसज्जित प्रयोगशाला-विद्यालय सकुल के छात्र और अध्यापक अवकाश के दिन अथवा ग्रीष्मावकाश म इनका उपयोग करेंगे।

(२) उत्तम पुस्तकालय जिसम सन्दर्भ पुस्तकों पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्र की व्यवस्था रहेगी।

(३) चार एल० टी० वेतनक्रम के अध्यापक एक विज्ञान एक शिल्प एक गणित और एक भाषा शिक्षक राज्य-सरकार द्वारा केन्द्रीय स्कूल म नियुक्त किये जायेंगे। इनका काय अन्तर्सेवा प्रशिक्षण अभिनवीकरण कोर्स तथा विचार-गोष्ठी का आयोजन तथा एक अध्यापकवाले स्कूलों म अवकाश पर जानेवाले अध्यापकों का कार्यभार सम्भालना होगा। यदाकदा एक अध्यापकवाले स्कूलों म काम करने से ये अध्यापक उन स्कूलों की समस्याओं तथा प्रगति का अध्ययन भी कर सकेंगे।

७—केन्द्रीय स्कूल के प्रधानाचार्य को विद्यालय-सकुल के कार्य-सपादन के लिए निम्नलिखित अधिकार दिये जायेंगे :—

(१) विद्यालय-सकुल के अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों के आकस्मिक अवकाश स्वीकार करना तथा मोबाइल अध्यापक भेजना।

(२) विद्यालय सकुल के प्रधानाध्यापकों तथा अध्यापकों की समिति की बैठक म सम्बन्धित अध्यापकों को बुलाना तथा उनके टी० ए० बिल को जिला विद्यालय निरीक्षक-कार्यालय म अग्रसारित करना।

(३) अध्यापकों का अभिनवीकरण-कोर्स आयोजित करना तथा विद्यालय सकुल के अध्यापकों को उसमें बुलाने का अधिकार।

(४) अभिनवीकरण कार्य म सफल अध्यापकों को प्रमाण-पत्र देना

(५) अनुभवी एव वयोवृद्ध अध्यापकों को प्रशिक्षण से मुक्त करने के लिए संस्तुति करना।

(६) राष्ट्रीय पुरस्कार के लिए अध्यापकों के नाम अग्रसारित करना।

(७) पुस्तकालय की पुस्तकों प्रयोगशाला के लिए उपभोग्य वस्तुओं तथा विचार-गोष्ठियों और अध्यापक-समिति की बैठक के लिए आवश्यक सामान खरीदना।

(८) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त चार एल० टी० वेतनक्रम के अध्यापकों, पुस्तकालय लिपिक और प्रयोगशाला के इन्चार्ज का आकस्मिक अवकाश स्वीकार करना, उनकी प्रस्तावित वार्षिक प्रविष्टि जिला विद्यालय निरीक्षक के पास अग्रसारित करना तथा उनका नियन्त्रण।

८—कार्य-विधि

(१) केन्द्रीय माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाचार्य की अध्यक्षता में ही विद्यालय-संकुल के प्राइमरी तथा जूनियर हाईस्कूलों के प्रधानाध्यापकों की मासिक बैठक होगी।

(२) जहाँ तक सम्भव होगा, जिला विद्यालय-निरीक्षक इस बैठक में भाग लेंगे। उपविद्यालय निरीक्षक अथवा क्षेत्रीय प्रति उपविद्यालय-निरीक्षक अथवा क्षेत्रीय सहायक बालिका विद्यालय-निरीक्षिका की इस बैठक में उपस्थिति अनिवार्य होगी।

(३) केन्द्रीय स्कूल के चार अध्यापक, जब अन्तर्सेवा-प्रशिक्षण और विचार-गोष्ठी के कार्यों से मुक्त रहेंगे विद्यालय-संकुल के प्राइमरी तथा जूनियर हाई-स्कूलों में जाकर उनके उन्नयन हेतु रचनात्मक सुझाव देंगे, निदर्शन पाठ का आयोजन करेंगे तथा स्कूल की समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

(४) मासिक बैठक में भाग लेने तथा विद्यालय-संकुल के स्कूलों का अन्वीक्षण करने के लिए केवल मार्गव्यय दिया जायगा।

(५) विद्यालय-संकुल के केन्द्रीय स्कूल में एक रजिस्टर रखा जायगा, जिसमें अध्यापकों की यात्रा का विवरण रहेगा। जिला विद्यालय-निरीक्षक अथवा उपविद्यालय निरीक्षक समय-समय पर इस रजिस्टर का निरीक्षण करेंगे।

(६) विद्यालय-संकुल का संगठन करने के बाद ही केन्द्रीय माध्यमिक स्कूल के प्रधानाचार्यों को कार्यगोष्ठी (वर्कशाप) में राज्य शिक्षा संस्थान के कर्तव्यों तथा अधिकारों से अवगत किया जायगा। 'विद्यालय-संकुल' की विशेष कठिनाइयों का समाधान भी कार्यगोष्ठी में करने का प्रयत्न किया जायगा।

(७) इस दिशा में अनुभव के लिए सर्वप्रथम जिले में एक या दो 'विद्यालय-संकुल' संगठित किये जायें। शनैः शनैः इनकी संख्या बढ़ायी जाय।

(८) *विद्यालय-सकुल' के कार्य-सम्पादन म प्रगति के साथ केन्द्रीय माध्य* मिक स्कूल का कार्यक्रम बढाया जाय। एक ही बार सभी अधिकार न दे दिये जायँ। जहाँ आवश्यक समझा जाय, उनका कार्यक्षेत्र सीमित भी किया जा सकता है। 'विद्यालय-सकुल' की सफलता केन्द्रीय स्कूल के प्रधानाचार्य की कार्यकुशलता एव सहयोग तथा जिला विद्यालय निरीक्षक की देखरेख पर निर्भर होगी। जिला विद्यालय निरीक्षक के सक्रिय प्रयास से ही यह सम्भव हो सकता है।

निष्कर्ष

'विद्यालय-सकुल' के माध्यम से विद्यालयो का शैक्षिक उन्नयन शीघ्र एव व्यवस्थित ढग से हो सकता है। शिक्षा विभाग को भी विद्यालय-सकुल के माध्यम से अपने कार्य सम्पादन म सुविधाएँ होगी। नवीन पाठ्यपुस्तको अध्यापको के लिए निर्देशिकाओं की रचना तथा उनके मूल्याकन म विद्यालय सकुल से सहायता मिलेगी। इसके द्वारा अध्यापको के अन्तर्सेवा प्रशिक्षण का व्यय और समय आयोजित किया जा सकता है। अध्यापकों की व्यावसायिक योग्यता का विकास करने म विद्यालय सकुल से यथेष्ट अभिप्रेरणा मिलेगी। केन्द्रीय स्कूलो मे प्रयोगशाला, पुस्तकालय तथा सहायक सामग्री का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकेगा। इस दृष्टि से विद्यालय-सकुल के सम्बन्ध म कोठारी शिक्षा आयोग की सस्तुति शैक्षिक उन्नयन के लिए नि सन्देह उपयोगी सिद्ध होगी।•

डाक्टर रामसेवक पाठक, राज्य शिक्षा-सस्थान, उत्तर प्रदेश

रूसी शिक्षा-पद्धति तथा बुनियादी शिक्षा

केशव प्रसाद

क्रान्ति के पूर्व रूस एक अविकसित असंस्कृत तथा पंगु देश था। उसके पास भारत जैसी संस्कृति की अक्षय निधि एवं साधन नहीं थे। वही रूस आज भारत क्या, विश्व के अनेक देशों से वैज्ञानिक प्रगति तथा अन्य क्षेत्रों में बहुत आगे बढ चुका है। जिस देश के विलक्षण यन्त्रों ने सर्वप्रथम अदृश्य जगत् का सफल चित्र खींचा, जिस देश की बर्फीली भूमि में भी शस्यश्यामलयुक्त बसन्त लहराता है, जहाँ वीरान में उद्यान विहँस रहा है, आखिर उसकी प्रगति का कारण क्या है? इस प्रगति पथ पर अग्रसारित करके विलक्षण क्षमता तथा सफलता का श्रेय प्राप्त करना, वहाँ की प्रक्रियात्मक, उत्पादक एवं ज्ञानदायक शिक्षा को है।

किसी भी देश की प्रगति का श्रेय वहाँ की शिक्षा को है। सोवियत अर्थ-मंत्री डा० ए० जी० ज्वेरेव ने अपने देश की शिक्षा पद्धति पर नाज प्रकट करते हुए कहा है

'सोवियत उच्च विद्यालयों में छात्रों की संख्या, ब्रिटेन, फ्रान्स, पश्चिमी जर्मनी और इटली के छात्रों के जोड से लगभग चारगुनी अधिक है। उच्च विद्यालयों से अब अमेरिका की अपेक्षा लगभग तीन गुने से अधिक इन्जीनियर स्नातक होते है।"

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि वहाँ शिक्षा में संख्यात्मक वृद्धि ही नहीं हुई है, वरन् उसमें अधिक गुणात्मक वृद्धि हुई है। 'रटाई, पिटाई, घुटाई' की मर्मान्तक चोट से वहाँ की शिक्षा आक्रान्त नहीं है।

मुझे रूसी शिक्षा के नये विधान (१९५८) में बुनियादी शिक्षा के तत्त्वों एवं विशेषताओं के दर्शन होने हैं। अन्तर मात्र देश, काल एवं परिस्थिति के कारण ही है। किसी भी देश का पतन उस समय होता है, जब कि श्रम के प्रति उस देश में अनादर हो। महात्माजी इसीलिए विद्यालयों में शिक्षा का प्रारम्भ एक हस्तकला या उत्पादक क्रिया के द्वारा करना चाहते थे, ताकि बालक तथा देश आत्मनिर्भर हो। रूसी शिक्षा के मूल में भी यही सिद्धान्त है। मार्क्स कहा करते थे कि शिक्षा से तात्पर्य बौद्धिक, शारीरिक तथा विविध शिल्प-विकास में है। रूस की नयी शिक्षा-पद्धति की विशेषता बताते हुए रूसी गणराज्य के एक उपशिक्षा मंत्री मिस्टर जीमीन ने कहा है, "हम लोग शारीरिक एवं बौद्धिक

दोनों ही विकासों को समान महत्ता देते हैं।" महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा इससे भी एक कदम आगे है। वह तीन 'एच' (हेड, हैण्ड, हार्ट) के विकास पर जोर देती है।

सर्वांगीण विकास एवं आत्मनिर्भरता

३१ जुलाई १९३७ के 'हरिजन' में महात्मा गांधी ने लिखा था कि शिक्षा से मेरा तात्पर्य है बालक और मनुष्य की समस्त शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास।" इसी सर्वांगीण विकास को वे शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। *सर्वांगीण विकास रूसी शिक्षा का भी उद्देश्य है।* एक रूसी प्रोफेसर श्री कैरोव ने रूसी शिक्षा के उद्देश्यों को बतलाते हुए लिखा है कि "इस प्रकार शिक्षानुसार हम साम्यवादी समाज के सर्वतोमुखी विकसित मानव की शिक्षा चाहते हैं।"

आज का छात्र विश्वविद्यालय से निकलने के बाद नौकरी की तलाश करता है। नौकरी कभी-कभी नहीं भी मिलती है, इसलिए कभी-कभी छात्र आत्महत्या तक कर लेता है। परन्तु वह ग्रामीण समाज में रहकर अपने को खपा नहीं पाता है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, परन्तु हमारी वर्तमान भारतीय शिक्षा बिलगाव सिखलाती है। भारत गाँवों का देश है और भारत के पढ़े-लिखे वर्ग को गाँव पसन्द ही नहीं। बुनियादी शिक्षा में इस समस्या का खूबसूरत समाधान है। नौकरी के लिए दर-दर भटकने की अपेक्षा ये छात्र बुनियादी विद्यालय में सीखे हुए हुनर से कहीं भी अपनी जीविका चला सकते हैं। वे समाज के भार नहीं होंगे और न वे समाज को घृणा की दृष्टि से ही देखेंगे।

सामान्यतया कहा जाता है कि शिक्षा-क्षेत्र में हाथ और श्रम के प्रवेश के कारण ज्ञान का स्तर गिर जायेगा। *यह शंका व्यर्थ है। रूसी डिग्री गहन ज्ञान, गहन क्रियात्मक ज्ञान एवं श्रम की प्रतीक है। ज्ञान तभी सार्थक है जब वह* क्रियात्मक है। तभी बुद्धि का सम्यक् विकास होता है। हमारी परम्परागत शिक्षा बुद्धि-विकास नहीं, बुद्धि-विलास है। रूस के मास्को विश्वविद्यालय में विज्ञान के विशेषज्ञों के कई सौ स्थान आज तक इसलिए रिक्त हैं कि उस स्तर तक ज्ञान का गहन अध्ययन विशेषज्ञ नहीं कर पाये। इधर अमेरिका और भारत में पी०एच० डी० पानेवालों की संख्या में अन्धाधुन्ध वृद्धि हो रही है। ऐसे पी० एच० डी० वालों की कमी नहीं, जो अपने क्षेत्र का सामान्य ज्ञान तक नहीं रखते। कृषि के पी० एच० डी० अगर साधारण पौधे तक को नहीं पहचानते तो भारत के लिए कोई आश्चर्य नहीं, पर रूस के लिए तो घोर आश्चर्य होगा।

बहुधा कहा जाता है कि बुनियादी विद्यालय कारखाने है व बालकों से श्रम कराना जानते हैं खेल कूद कराते है पढ़ाते नहीं। परम्परागत अध्यापकों को भी यह पद्धति रुचिकर नहीं लगी। डण्ड और कलम से पढ़ानेवाला अध्यापक शिल्प और समवाय मे पढ़ाने म असमर्थ हो गया। परन्तु सत्य ठीक इसके विपरीत है। बालक क्रिया प्रधान है बालक खेल चाहता है बालक क्रमबद्ध ज्ञान चाहता है बालक क्षमता के अनुसार सीखना चाहता है बुनियादी विद्यालय इन तथ्यों को आधार मानकर चलते हैं।

बुनियादी विद्यालयों म दो तिहाई से कुछ ही कम समय क्रिया, हस्तकार्य आदि पहलुओं पर रखा गया है इसकी शिकायत की जाती है। परन्तु रूसी शिक्षा मे क्रिया एव श्रम आदि का प्रतिशत बुनियादी शिक्षा से कम नहीं है। रूस में इन पक्षों पर ३९% समय खर्च किया जाता है। देहाती माध्यमिक विद्यालयों के ११४ घंटों मे ३६ घंटे मात्र उत्पादक तथा तकनीकी श्रम पर खर्च होते हैं। शहरी क्षेत्रों में भी उत्पादन तथा शारीरिक संस्कृति पर २६ घंटे खर्च होते हैं। प्राथमिक स्तर पर प्रति सप्ताह ४६ घंटों में से २० घंटे क्रियात्मक पहलू पर खर्च किये जाते हैं। रूस के नये शिक्षा विधान मे श्रम तथा क्रिया को या उत्पादक क्रिया को शिक्षा का अभिन्न अंग माना गया है। नये पाठ्यक्रम का प्रारूप निम्न है।

	दसवर्षीय शिक्षा १९५७ का पाठ्यक्रम		ग्यारह वर्षीय शिक्षा १९६३ का पाठ्यक्रम	
	अध्यापन के घंटे	प्रतिशत	अध्यापन के घंटे	प्रतिशत
सामान्य शिक्षा (तथा) साहित्य आदि—	४९९२	४४	४८८४	३८
वैज्ञानिक विषय	३३२०	३१	३७२७	२८
व्यावसायिक शिक्षा तथा अन्य योग्यता वाले काम	२८६३	२५	४२१७	३३

महात्मा गांधी बालक को ज्ञानवान, श्रमनिष्ठ, लगनशील एवं भविष्य की चिन्ता से मुक्त रखना चाहते थे। इसीलिए हाथ के काम एवं उत्पादक क्रियाओं के प्राथमिक आधारों को उन्होंने अपनाया। रूसी शिक्षा में श्रम की सच्ची शिक्षा मिलती है। अप्रैल १९५८ में १३ वीं कोमसोमोल कांग्रेस में शिक्षा-नीति पर भाषण देते हुए ख्रुश्चेव ने कहा था, 'बालकों को माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करके कारखाना या फार्म पर जाना होगा, जहाँ कार्यकुशलता एवं पशा-सम्बन्धी समस्या हल हो जाय।" इसीलिए रूस में बालक कक्षा-कार्य के अतिरिक्त क्रियात्मक कार्य के लिए फार्म या कारखाना में जाते हैं वहाँ उन्हें वेतनादि सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। परन्तु भारतीय विद्वानों को तो मात्र चरखे से ही जलन हो गयी, दुर्भाग्यवश उनके ग्राम्यान्तर में शिक्षा का तात्पर्य है मस्तिष्क को व्यर्थ के अनर्गल एवं अनुपयोगी ज्ञान से भरना। परन्तु शिक्षा से अगर व्यावहारिक प्रयोजन की पूर्ति न हो तो किसी भी देश का भविष्य चिन्तनीय हो जायगा।

शिक्षा का आधार जीवन और समाज

बुनियादी शिक्षा का आधार जीवन और समाज है जब कि परम्परागत शिक्षा इससे दूर, बहुत दूर जा चुकी है। रूसी शिक्षा का आधार भी जीवन और समाज है। सितम्बर १९५८ में प्रधान मंत्री श्री ख्रुश्चेव ने केन्द्रीय साम्यवादी दल के समक्ष एक मेमोरेण्डम रखा था और कहा था कि हम नये शिक्षा-विधान से विद्यालय और जीवन के सम्बन्ध को जोड़ने जा रहे हैं। ख्रुश्चेव ने शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि जीवन के लिए नयी पीढ़ी को तैयार करना है समाजवादी समाज के लिए समाजवादी सिद्धान्तों से प्यार करना तथा श्रम को पवित्र समझना सिखाना है। बुनियादी शिक्षा में भी यही बातें हैं, परन्तु परम्परागत शिक्षा में पले लोगों ने इसकी अवहेलना की।

महात्मा गांधी भी यह महसूस करते थे कि शिक्षा का सम्बन्ध जीवन और समाज से दूर हो गया है। ऐसे ही ख्रुश्चेव ने भी बताया है कि 'माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम जीवन से दूर है तथा बालकों को उत्पादन का किंचित् ज्ञान भी नहीं देता।'

समाज को सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिए शिल्प के द्वारा शिक्षा, उत्पादन की सामान्य बातों की शिक्षा एवं क्रिया गांधीजी को अभीष्ट था। रूसी विद्वान गालकिन ने भी लिखा है, "इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उत्पादक श्रम और शिक्षा में गठबन्धन किया जाय।' इससे समाज की समस्याएँ हल हो जायेंगी, मानव-जीवन सुखी होगा। अस्तु।

शिक्षा की औपचारिकता के कारण विद्यालय का सम्बन्ध समाज से टूट गया है। दोनों के बीच गहरी खाई पड़ गयी है। बुनियादी शिक्षा में इसीलिए महात्माजी को अभीष्ट था कि विद्यालय समाज-केन्द्रित बनें। रूस के नये विधान में भी यही सिद्धान्त अपनाया गया है।

विश्व के सर्वाधिक प्रगतिशील देश की सर्वाधिक प्रगतिशील शिक्षा से बुनियादी शिक्षा की तुलना मैंने इसलिए की कि बुनियादी शिक्षा विश्व की किसी भी प्रगतिशील शिक्षा से अधिक प्रगतिशील है। परम्परावादिता और हठधर्मिता को तिलांजलि देकर हम इसे अपनाना चाहिए। देश की सभी समस्याओं को हल करने की इसमें क्षमता है। हां आवश्यकतानुसार इसमें सुधार किये जा सकते हैं।•

शिशु-शिक्षा के पहले सात वर्ष

सुरेश भटनागर

एक नवयुवती माँ ने सर विलियम ग्रोसलर से पूछा, 'मैं अपने बच्चे को पढ़ाना कबसे आरम्भ करूँ ?'

सर ग्रोसलर ने उस नवयुवती माँ की परेशानी को समझते हुए उससे प्रश्न किया, 'आपका बच्चा कितना बड़ा है ?'

उत्तर मिला, "दो वर्ष का है।"

ग्रोसलर बोले "तब तो आपको पहले ही देर हो चुकी है।

प्रश्न उठता है कि शैशव खेलने-खाने की उम्र होती है। उसमें शिशु-जीवन का स्वर्णिम सुख भोगते हैं, फिर शिक्षा का बोझ उनके कोमलतम मन-तन्तुओं पर क्यों लादा जाय ? यह भूल है। आज के बालक की पृष्ठभूमि में हजारों वर्षों की सांस्कृतिक, सामाजिक विकास की प्रक्रिया कार्य कर रही है। शिक्षा उस विकास की प्रक्रिया की एक कड़ी-मात्र है, बोझ नहीं।

शिशु-शिक्षा एक सवाल, एक जवाब

हम आज इस बात को जानते हैं कि व्यक्ति की शारीरिक मानसिक और सामाजिक उन्नति का एक क्रम होता है। विकास के इस क्रम को शैशव कैशोर्य, युवावस्था तथा वृद्धावस्था कहते हैं। इसमें शैशवावस्था मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह वह समय होता है जब शरीर और मन का विकास बड़ी तीव्र गति से होता है। विकास की इस तेज रफ्तार के साथ यदि शिशु को उसके अनुरूप उचित शिक्षा नहीं दी जाती तो वह अपने व्यक्तित्व में कहीं पिछड़ापन अनुभव करने लगता है। सर जान न्यूमैन एडलर तथा सिगमंड फ्रायड जैसे अनेक मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन शैशवावस्था के महत्त्व को प्रकट करते हैं। इनके अनुसार पाँच वर्ष तक की अवस्था बहुत ग्रहणशील होती है। शैशव जीवन का पूर्ण क्रम तैयार कर देता है। चार या पाँच वर्ष के अन्दर ही मनुष्य जो कुछ भी बनना होता है, बन जाता है।

मनोवैज्ञानिकों की यह उक्ति 'पूत के पाँव पालने में दीख जाते हैं' कहावत को चरितार्थ करती है। परीक्षणों से पता चला है कि स्वस्थ शिशु की तौल प्रथम वर्ष में जन्म के समय से तिगुनी होती है। नाड़ी मण्डल की भी यही स्थिति रहती है। इसी प्रकार मस्तिष्क का भी विकास तीव्र गति से होता है। प्रथम

नौ मास मे मस्तिष्क सम्पूर्ण तौल का एक तिहाई, ढाई वर्ष तक दो तिहाई और सात वर्ष तक अपनी तौल पूर्णत पूरी कर लेता है।

सात वर्ष तक की अवस्था मे बालक मे सीखने की शक्ति अदम्य होती है। बालक छ वर्षों मे बाद के बारह वर्षों से दुगना सीखने की शक्ति रखता है। इस अवस्था म मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करनेवाली मूल प्रवृत्तियो मे भूख, प्यास शौच आदि हैं, जिनका उचित पोषण तथा नियमन एक नम मे होना आवश्यक है। इस अवस्था मे बालक को पुस्तक-पाटी की नही, माता-पिता के प्यार तथा सहानुभूति की आवश्यकता है। आपको उसकी इच्छाओ की पूर्ति करनी है। आप उसकी इच्छाओ के अनुसार कार्य नही करेंगे तो भी वह खुद वही काम कर लेगा। क्यो ? इसलिए कि उसके पास एक अमोघ अस्त्र है—रोना। वह रोयेगा तो आपका वे सभी काम करने होंगे, जिनकी कल्पना भी आप न कर सके होंगे। इसलिए ध्यान रखिए कि बालक को रोने का अवसर न दिया जाय। बालक रोता है तो उसे चुप मत कराइए, अपितु उसके रोने के कारण की खोज कीजिए और उसका निराकरण कीजिए। मूलत एक बात जान लनी चाहिए—बालक कभी गलती नही करता। जिसे हम गलती कहते है, वह हमारा अपना ही प्रतिबिम्ब होता है, अर्थात् गलती हमने की तभी तो बालक ने उसका प्रतिबिम्ब ग्रहण किया। उसके मन मे कोई मनोविकार नहीं होता, तभी तो उसका चेहरा चमकता है, कांति झलकती है। इस अवस्था म ही बालक म कई प्रकार के सवेग उठते हैं, जो कालान्तर मे ज्ञान, सकल्प और त्रिया मे स्थायी रूप धारण कर लेते हैं। उसम कल्पना-शक्ति का विकास होने लगता है। उसमे अपने को दिखाने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है। नकारात्मक तथा स्वीकारात्मक तथ्यो को वह अपने अनुभव के आधार पर जान लेता है। उसके अनुकरण की शक्ति उसके सभी प्रकार के सामाजिक तथा दैहिक विकास म कार्य करती है, धीरे-धीरे उसम विनय आने लगती है और वह मूल प्रवृत्तियो म सहज प्रक्रिया की ओर आने लगता।

विकास के इस स्वाभाविक क्रम म, जहां सभी चीजें स्वत प्रवाहमग्न है, शिशु को उचित शिक्षा देना आवश्यक है। यह वह अवस्था है, जिसे बीज तथा खाद के रूप में बोया जा सकता है। इस अवस्था म, यानी प्रथम सात वर्ष तक, यदि बालक को मनोवैज्ञानिक आधार से पोषित किया जाता है, तो निश्चय ही उसका भविष्य उज्ज्वल होकर उसके माता पिता के सामने झलकने लगता है।

शिशुओ की शिक्षा का रूप कैसा होना चाहिए, इस तथ्य पर विचार करते समय हमे सात वर्ष तक की आयु मे पहले ढाई साल का उत्तरदायित्व माता-

पिता का ढाई से पाँच वर्ष तक ७५ प्रतिशत माता पिता का तथा २५ प्रतिशत स्कूल का तथा पाँच से सात वष तक की अवस्था म माता पिता तथा स्कूल का बराबर का होना चाहिए।

अब हम इन तीन अवस्थाओं की व्यावहारिक शिक्षा क पहलुओं पर विचार करसे।

पहले ढाई वर्ष

बालक पहले वष म केवल शारीरिक हलचल करना सीखता है। आँखें घुमाना मुस्कराना रोना हाथ-पाँव फेंकना इधर-उधर लुढकना घुटनो के बल चलना खड होना वस्तुओं को पकडना और कुछ निरर्थक शब्दो का उच्चारण करना पहले साल की क्रियाएँ है। दूसर साल क अन्त तक बालक सरलता से चल सकता है दौड सकता है और खिलौने तथा दूसरी छोटी-छोटी वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे पर ले जा सकता है। ढाई साल तक वह बोलना भी सीख जाता है। इस समय वह केवल शब्दो का उच्चारण कर लेता है। अपनी वस्तुओं के लिए हठ भी करने लगता है। सचय की प्रवृत्ति भी उसम जाग्रत होने लगती है। वह सगीत की ओर भी आकृष्ट होने लगता है। प्रश्न उठता है कि इस उम्र म बच्चे को क्या सिखाया जाय ? एक बात को स्पष्ट कर देना अधिक उचित होगा कि माता पिता बालक को वह बनाना चाहते हैं जो वे स्वय न बन सके। इसी चक्कर म वे बालक की मान सिक स्थिति को बिलकुल भूल जाते है। परिणामत बालक वह नही बन पाता जो उसे बनना चाहिए था।

पहले ढाई वष शिक्षा की नाव का काय करते हैं। इस समय जो व्याव हारिक ज्ञान आदतो के रूप म दिया जाना चाहिए वह इस प्रकार है —

(क) बालक के स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। स्वास्थ्य का यह ध्यान तो माता पिता को उसी समय से रखना चाहिए जब से बच्चा गभ म स्थित हो जाता है। यही तैयारी का समय है। इस समय माता को अपने समस्त कार्य नियमित रूप से करने चाहिए।

(ख) शिक्षा का दूसरा पग तब आरम्भ होता है जब बच्चा पहली बार आँख खोलता है। ऐसे समय प्राय महिलाएँ बच्चो को झटकती-पटकती रहती हैं। प्राय मार भी देती हैं। क्यो ? इसलिए कि वह रोता है पशाब कर देता है शौच कर देता है। पर वे भूल जाती हैं कि य सभी काय वास्तविक है। इसमे बाधा पहुँचाने का अर्थ है बालक को रोगी हठीला तथा चिडचिडा बनाना।

(ग) बच्चों की परिचर्या शान्त वातावरण में होनी चाहिए। पहले तीन महीनों में निद्रा सोना बहुत है अतः उसे कर्कश शब्दों से दूर रखना चाहिए।

(घ) जब बच्चा बठने लगे तो उसे पूरी स्वतन्त्रता दे देनी चाहिए। ऐसे समय खिलौनों का चुनाव करना भी आवश्यक हो जाता है। खिलौने ऐसे हों जिनके माध्यम से बालक इधर उधर घूम सके। बालक को उस सीमा तक स्वतन्त्रता दीजिए जहाँ तक वह अपने अनुभव से सीख सके। खिलौना के टूटने की चिन्ता न करें। बालक की चीज बालक को दें, इससे उसे खेलने की आदत पड़ेगी।

(च) बालक को डाँटिए मत। इससे वह दब्बू बनेगा या हठी। इसका परिणाम बुरा होगा और उसका विकास गलत दिशा में होने लगेगा।

ढाई से पाँच वर्ष

स्थूल रूप में जिसे हम शिक्षा कहते हैं वह ढाई से पाँच वर्ष की उम्र से आरम्भ होती है। इस उम्र में बालक चलना बोलना और सन्तुलन करना सीख जाता है। हर नयी वस्तु के प्रति उसकी जिज्ञासा आरम्भ हो जाती है। तर्क, निर्माण तथा कौशल से बालक अपनी जिज्ञासा शान्त करना चाहता है। इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता यह होती है कि बालक को नर्सरी या किंडरगार्टन तथा बेसिक शिक्षा देनेवाली किसी संस्था में भेजा जाय। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संस्थाएं नाम की न हों अपितु सही अर्थों में सिद्धान्तों का अनुकरण भी करती हों। रह जाती है घर की बात सो बालकों के लिए घर पर इस प्रकार के उपकरण जुटाना आवश्यक है।

(क) बालकों में आत्माभिव्यक्ति और स्वतः क्रिया की प्रबल इच्छा होती है अतः पाठ्यपुस्तक में स्वतन्त्र संगीत गति तथा रचना का ध्यान रखते हुए उन्हें कुछ गीत सिखाइए।

(ख) दूसरी बात रचना की है। इस अवस्था में बालक स्वतन्त्र भाव प्रकाशन की ओर अधिक ध्यान देते हैं। यहीं से आप उन्हें चित्रकार भी बना सकते हैं और कवि भी मूर्तिकार भी बना सकते हैं और नता भी। प्लास्टिक मिट्टी से अनेक प्रकार की दैनिक उपयोग की चीजें बनाइए। उसमें उन्हें आनन्द भी आयेगा और सहज भाव से वे गिनना भी सीख लेंगे। कागज लकड़ी तथा मिट्टी का प्रयोग इस रचनात्मक कार्य के लिए किया जा सकता है। खेल-खेल में गानों से बालक को बहुत-सी बातें बतायी जा सकती हैं। लुहार बढ़ई नाव तारे चन्दामामा आदि अनेक विषयों पर गीत याद करने तथा गति से अभि

व्यक्त करने से उस व्यवसाय का पूर्ण नहीं तो सूचनात्मक ज्ञान तो बालक को हो ही जाता है।

(ग) साधारण अक्षर ज्ञान भी इस अवस्था में कराना चाहिए। इसके लिए कार्डबोर्ड के अक्षरों या रंग बिरंगे चित्र-सज्जित सेट आते हैं। साथ ही अक्षर-सम्बन्धी अनेक खेलों का उपयोग इस क्रिया के लिए किया जाता है।

पाँच से सात वर्ष

पाँच से सात वर्ष की अवस्था तक बालक के मस्तिष्क का विकास लगभग पूरा हो जाता है, अतः बालक की जिज्ञासा की प्रवृत्ति भी तीव्रतर होने लगती है। यहीं से उसका तर्क-ज्ञान भी विशद् रूप ले लेता है। पहले वह समाज का सदस्य होता था, पर अब वह मित्रता करता है, प्यार करता है सहानुभूति भी उसमें पैदा हो जाती है। अनुकरण की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि छोटी-छोटी लड़कियाँ गुड़िया को ठीक वैसे ही दूध पिलाती हैं, जैसे–माँ। गुड्डे-गुड़ियों के खेल भी उन्हें अच्छे लगते हैं। अतः सभी प्रकार के खेल जिनके पीछे बालकों की मनोवृत्तियों का सद्विकास होता है खेलने का मौका उसे देना चाहिए। इस अवस्था में बालकों को लेखन, पाठन तथा गणित का अभ्यास कराना आवश्यक है।

(क) लेखन तथा पाठन का अभ्यास सरस व सुन्दर पुस्तकों से कराना चाहिए।

(ख) कल्पना का विकास इस अवस्था में तीव्र गति से होता है। अतः कहानियाँ भी बालक की रुचि का एक अभिन्न अंग हो जाती हैं। कहानियाँ सुनाते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि कहानियों के पात्र भयंकर न हों। कोमल, किन्तु दृढ़ संकल्पवाले हों। महापुरुषों की कहानियाँ तथा उसके बचपन की रोचक घटनाओं को भी सुनाया जा सकता है।

(ग) बालकों को रंग, आकार, सामग्री, गति, दिशा तथा अंग-संचालन की क्रिया का ज्ञान कराना आवश्यक है। रंगों का ज्ञान विभिन्न प्रकार के गेंदों से कराया जा सकता है। आकार के ज्ञान के लिए अनेक प्रकार की लकड़ी की आयताकार, त्रिकोण, समानान्तर छड़ियों, गोलों तथा घनों का प्रयोग किया जा सकता है। लकड़ी के टुकड़ों से भवन बनाने का बाक्स भी बाजार में मिलता है। इसमें बालकों को आकार का ज्ञान भी होता है और निर्माण की रुचि भी उत्पन्न होती है। गोले से गति का ज्ञान कराया जा सकता है। पहियों,

छडियां तथा छल्लों से समतल रेखा बिन्दु तथा परिधि का ज्ञान दिया जा सकता है।

(घ) इस अवस्था में आवश्यक कार्य है बालकों में बोलने की संस्कृति उत्पन्न करना। नमस्कार अभिवादन तो साधारण दिनचर्या का विषय है ही साथ ही सामाजिक व्यवहारों में शालीनता लाने के लिए बालकों से उनके साथियों के जन्मदिवस पर बधाई-कार्ड भिजवायें उपहार दिलवायें स्कूल जाते समय अध्यापक अध्यापिकाओं के लिए फूल ले जाने की आदत डालें तो बालकों के संस्कार कोमल और सुगंधियुक्त होंगे।

(ङ) हस्तकला तथा रचनात्मक शिक्षा इस उम्र में आवश्यक है। व्यवहारिक कुशलता इन्हीं के माध्यम से प्राप्त होती है। इस समय तो सबसे अधिक बल निर्माण शक्ति तथा कल्पना पर दिया जाना आवश्यक है। •

सुरेश भटनागर—प्राध्यापक राजकीय बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय, सरदारशहर, राजस्थान।

सर्वोदय समाज सम्मेलन, राजगीर

१—सर्वोदय समाज का वार्षिक सम्मेलन राजगीर (बिहार) में तारीख २५ से २८ अक्तूबर तक होना तय हुआ है। राजगीर के इस सर्वोदय सम्मेलन में कई राष्ट्रों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। सम्मेलन के अवसर पर भगवान बुद्ध की पुण्य स्मृति में एक स्तूप का भी उदघाटन होगा जिसका निर्माण जापानी बौद्ध संघ के तत्वावधान में हो रहा है।

२—जो लोग ५ रु० प्रतिनिधि शुल्क १० अक्तूबर तक जमा करेंगे उनके लिए ही सम्मेलन में निवास का प्रबन्ध हो सकेगा।

३—१६० किलोमीटर से अधिक दूरीवाले प्रतिनिधियों को रेलवे का कन्सेशन सर्टिफिकेट मिलेगा। सम्मेलन सम्बन्धी अन्य विवरण के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें।

सम्मेलन मन्त्री, सर्व सेवा संघ
पो० गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र)

आचार्यकुल के संयोजक के नाम पत्र

[दवरिया म प्राचार्यों की मीटिंग मे श्री शालिग्राम पथिक आये थे। आचार्यकुल पर उनमे बातचीत हुई। पत्र मे उनकी प्रतिक्रिया है। पाठक इस सम्बन्ध मे अपनी राय दें।—स०]

प्रिय

भगवान भाई रामबचन सिंह का भला करें फिर मिला दिया हम आप फिर से एक ही मार्ग पर—आप विनोबा के आचार्यकुल पर जुट पडे है, मैं आचार्यकुल को सम्पुष्ट करने के लिए निर्माण करने का एक नया 'मेथड' लेकर आना चाहता हूँ।

भाई वंशीधरजी देवरिया मे आपसे आचार्यकुल के विषय मे बातचीत हुई। मै ऐसा मानता हूँ कि विश्वविद्यालयो मे और उपकुलपतियो से शुरू होकर आचार्यकुल खडा नही होगा। ये मेकाले महाराज और राजा राममोहन राय के ब्रह्मसमाज के 'प्राडक्ट' है।

'डिसकवरी आव इडिया' म (पृष्ठ २५) प० नेहरू लिखते है—'मध्यम वर्ग तो उसी ढाँचा के 'प्राडक्ट' थे, जिसे वे समाप्त करना चाहते थे। परन्तु गाँवो की नयी शक्ति का उदय हुआ और हमने पहली बार एक नय भारत का *आविष्कार किया।*'

एशियन ड्रामा मे गुनार मिर्डाल स्पष्ट करते है 'स्वराज्योत्तर काल की राह एकदम गलत राह है । इस काल मे मध्यम वर्ग का ही तो उदय हुआ है, अगर उसे उदय कहा जाय। जैसे नेहरू-गाधी को गाँवों से नयी शक्ति का उदय दिखाई दिया, वैसे ही प्राइमरी और मिडिल स्कूलो के अध्यापको के अभ्युदय मे से ही आचार्यकुल का उदय होगा। बापू का सिद्धान्त रहा है—'अन्तिम व्यक्ति'—पहले उसके उदय का तरीका होगा। तो आचार्यकुल भी नीचे से शुरू करना होगा।

आचार्य को उत्पादक नागरिक बनाना होगा। आचार्य उत्पादक नागरिक होगा तो एक नया समाज बन सकेगा। आप आचार्य से करुणा की अपेक्षा रखते हैं। करुणा घर पर प्रारम्भ होती है। उसमे भी कोई चमत्कार दिखाना होगा, मेरी अपनी एक सनक है। एक परिवार के ५ पशुओ के गोबर से पहले ही साल चार हजार रुपया कमवा देना, पूरे इलाके के शिक्षक-समाज का ध्यान

आज 'ट्रेड यूनियनिज्म' से आचार्यकुल की ओर मोड़ने में यह प्रयोग सफल होगा। शिक्षक में आत्मविश्वास आया तो वह आचार्यकुल की ओर मुड़ेगा।

"मन के हारे हार है,
मन के जीते जीत।"

हरेक जिले में २० लाख पशुओं में २०० करोड़ साल की नयी सम्पत्ति। शिक्षक इस काम में अगुआ बनें। समाज को मार्ग दिखलायें तो यह काम जल्दी होगा। शिक्षक खुद अपने घर में आरंभ करके पूरे गांव समाज का ध्यान आकर्षित करेगा। तब वह जो चाहेगा, वह समाज करेगा, और आचार्यकुल की नींव समाज में दृढ़ होगी।

किसी भी जिले में १०१ शिक्षक चुनकर कार्य आरंभ किया जाय। वैसे अगर दो-तीन एकड़ भूमि मिले—पाँच पशुओं के गोबर की सुविधा हो—तो १०-१२ शिक्षक में भी काम आरंभ किया जा सकता है। फिर अधिक व्यापक स्तर पर अधिक शिक्षकों को लेकर उन्हें सिखाया जाय।

हम गोबर गैस प्लाण्ट लगायेंगे–१२०० रु० खर्च होगा। एक-दो एकड़ पर शिक्षक काम करेंगे, पद्धति सीखेंगे प्रत्यक्ष में। बाद में पत्राचार-पाठ्यक्रम (करसपौण्डेन्स-कोर्स) से ज्ञान की परिधि बढ़ायेंगे। इस प्रकार काम बढ़ायें। आचार्यकुल का सदस्य इस काम का अगुवा बने—ऐसी मेरी कल्पना है।

—शालिग्राम पथिक

शिक्षा खेतों तक पहुँचे

टॉमस वॅलो

[यह लेख 'ग्रामोदय' में छपा है। लेखक की शिक्षा का गांधीजी की बुनियादी शिक्षा से बडा साम्य है। बुनियादी शिक्षा ने पहली बार शिक्षा के क्षेत्र में आर्थिक पहलू को दाखिल किया था। परम्परावादी इसमे इतना चौंके थे कि गाधीजी को समाधान करना पडा था कि बेसिक शिक्षा शिक्षा की योजना है—अर्थशास्त्र की नही। बुनियादी शिक्षा मे उन सभी तत्वो पर बल है, जिनकी चर्चा इस लेख में हुई है और आज के परिवेश मे यदि बेसिक शिक्षा को अपनाया जाय तो उससे विकासशील कृषिप्रधान भारत की समस्याओ का हल होगा। इस साम्य के कारण ही हम इस लेख को साभार 'ग्रामोदय' स उद्धृत कर रहे हैं।—सम्पादक]

आर्थिक एव सामाजिक विकास को बहुपक्षीय एजेन्सियों की जो सबसे महत्त्वपूर्ण देन है, उनमे एक है डा० सेन की, जिन्होने सामान्य विकास के मुख्य आधार के रूप मे कृषि को प्राथमिकता दी। जब वे खाद्य एव कृषि-सगठन के प्रमुख पदाधिकारी बने, उस समय कृषि, न केवल सबसे दुर्बल अवस्था मे थी, बल्कि अल्प विकसित दुनिया का सर्वाधिक उपेक्षित क्षेत्र भी थी।

अनिवार्यत अब भी उसका स्थान प्रथम है द्वितीय नही। वस्तुत इसके सकेत मिल रहे है कि पेन्डुलम एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचेगा और एक प्रकार का कृषि-विकास, बिना इसका समुचित ख्याल किये कि उसकी विशेष सफलता के लिए बुनियादी स्थिति मौजूद है या नही सब पर थोप दिया जायगा।

सिद्धान्तो और नीतियो के विद्यार्थी के लिए यह आश्चर्य की बात नही होगी कि उपेक्षा की स्थिति से अत्यधिक महत्त्व देने की दिशा मे यह अजीबो-गरीब मोड क्यो दिया जा रहा है? गरीब देशों मे आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा—अफीका मे ८५ से ९० प्रतिशत तक और एशिया मे ७५ से ८० प्रतिशत तक—कृषि पर रोजी-रोटी के लिए निर्भर करता है। इस प्रकार गरीबी की समस्याओ को हल करने के लिए तीव्र औद्योगीकरण पर ही निर्भर करनेवाली योजनाओ की विफलता अनिवार्य है। जबतक कि विकास की बुनियादी पद्धति शीघ्र नही बदलती है तबतक ग्रामीण क्षेत्र की मुसीबत बढती

रहगी। इसके अलावा सामन्तवादी कृषि व्यवस्था म जो घोर शिथिलता है, उसके कारण, ज्यो-ज्यो आय बढती है, त्यो त्यो देश मे पैदा होनेवाली खाद्य सामग्री का तीव्र गति से क्षय होता है और इस प्रकार मुद्रास्फिति होती है, अथवा भुगतान सन्तुलन के सकट पैदा होते हैं और दोनो मिलकर जीवनमान को उन्नत करने के प्रयास को व्यर्थ बना देते है।

सामाजिक तकनीकी हल

विकास के लिए आवश्यकतानुसार साधनो का विनियोग और नये तकनीकी ज्ञान तभी प्रभावकारी हो सकते है जब वे विस्तृत पैमाने पर लागू किये जायें। उस स्थिति मे अपेक्षाकृत एक छोटा-सा सुधार भी निर्णायक महत्त्व का हो सकता है जब कि ज्ञान या शिक्षण का उच्चतम स्तर भी, अगर वह केवल एक छोटे-से क्षेत्र म उपलब्ध है, जागतिक सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त सिद्ध होगा और वह सम्भवत अलग विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गों की सृष्टि करेगा। इसके अलावा ऐसे ज्ञान या प्रशिक्षण का जो मूल्य होगा, वह इतना अधिक होगा कि गरीब इलाको की शैक्षिक सस्थाओ मे व्यापक पैमाने पर उसको लागू नही कराया जा सकेगा। इस प्रकार विकास के लिए कृषि के क्षेत्र मे और शिक्षा के क्षेत्र मे भी नया सामाजिक तकनीकी हल आवश्यक है।

बडे नागरिक क्षेत्र मे जो शिक्षा का विचार प्रभावशाली ढग से प्रचलित है उससे बहुत कम मदद मिली है और अन्तर्राष्ट्रीय ऐजेन्सियो की नीतियो म अक्सर वही प्रतिबिम्बित दिखाई देता रहा है।

ग्रामीण सामाजिक आर्थिक समृद्धि एव प्रगति के लिए सार्थक साधन के रूप म शिक्षा को प्राविधिक एव लोकतात्रिक होना होगा। पाश्चात्य यूरोपीय सस्कृति एव शिक्षा की महान एतिहासिक परम्पराएं सिद्धान्तनिष्ठ, मानवनिष्ठ तथा उच्चवर्गीय और लोक शिक्षा के बजाय वैयक्तिक श्रेष्ठता तथा मौलिक चिन्तन के पक्ष म हैं।

दो प्रवृत्तियां

यूरोपीय साम्राज्यवादी सत्ता जो दुनिया के अधिकाश हिस्सों (जिसम लैटिन अमेरिका पोर्तुगाल और स्पेन की सत्ता शामिल है) पर छा गयी थी, अपने साथ यह परम्परा ले गयी। परन्तु यह दिलचस्प बात है कि सयुक्त राज्य अमेरिका (और कुछ हद तक आस्ट्रेलिया) ही ऐसा देश था, जो इस परम्परा मे अलग हो गये और (लैटिन अमरिका की तरह नही) औपनिवेशिक कुलीन वर्ग के सामन्तवादी प्रभु व को भी तोड दिया। उन्होंने

प्राथमिक कक्षा मे लैण्डग्राण्ट कालेज-स्तर तक की कृषि-शिक्षा को इस प्रकार सघन और व्यावहारिक रूप मे सगठित किया कि उसम मे बुनियादी कृषि की श्रेष्ठता पैदा हुई और उनका विस्फोटक औद्योगिक विकास सम्भव हुआ।

कृषि-क्षेत्र के पिछडेपन को तभी मिटाया जा सकता है, जब प्राविधिक ज्ञान के वितरण तथा व्यावहारिक प्रयोग की सुविधाएँ प्रदान करनेवाली परिस्थितियाँ पैदा की जायं। अत शैक्षिक प्रगति के नियोजन मे यह सर्वाधिक महत्त्व की बात है कि अभी जो औपचारिक एव शास्त्रीय शिक्षा के लिए अत्यन्त आग्रह है, उसको समाप्त किया जाय जिससे कि शिक्षा आज की आवश्यकताओं के अनुरूप दी जा सके। हम अब इस समस्या की ओर मुखातिब होना है।

बचाव का मार्ग

एक समप्राकृतिक शक्ति-तत्त्व' होने के बदले शिक्षा उन अनेक परस्परावलम्वी और पूरक साधनो (या सस्था-सुधार के माध्यम से साधनागत परिवर्तनो) मे से एक है, जो विकास की रूपरेखा को इस प्रकार सुधार सकता है कि वह प्रभावकारी एव स्वनिर्भर विकास के अनुकूल हो जाय। लेकिन इसके आधार पर सहज ही सामान्य सिद्धात निरूपण सभव नही है।

कुछ ऐसी ठोस योजनाएँ तफसील मे किये गय अध्ययनो के आधार पर होनी ही चाहिए जो शिक्षा के रूप और कम का निर्धारण करें और आवश्यक पूरक साधनो की ओर भी सकेत कर सकें। इन योजनाओ मे केवल कृषि मे पूजी के विनियोग की बात नही होनी चाहिए, बल्कि नीचे से एक सगठन खडा करने की भी जरूरत है। इसके लिए औद्योगीकरण की एक ऐसी योजना बनाने की जरूरत होगी जिसका पहला आधार यह होगा कि निर्यातो का प्रतिस्थापन हो और बाद मे ऐसे उद्योगो की स्थापना हो जो ग्रामीण तथा नागरिक आय की वृद्धि के साथ बढनेवाली आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। शिक्षा-योजना का एक अन्तिम लक्ष्य, जिसके पूरक के तौर पर सामान्य सुधार आवश्यक हैं, यह होना चाहिए कि अधिकाश आबादी के अन्दर योग्यतापूर्वक काम करने की सामर्थ्य और उस सामर्थ्य का इस्तेमाल करने की इच्छा पैदा हो सके।

यह मान्य किया जाना चाहिए कि गलत किस्म की शिक्षा, जिसके साथ-साथ आवश्यक पूरक कार्य नही होते हो, विकास की प्रक्रिया को अवरुद्ध कर सकती है या उसे विपरीत दिशा मे मोड दे सकती है।

ऐसा 'शिक्षित वर्ग' जिसको किसी काम पर नहीं लगाया जा सके, आर्थिक क्रिया-कलाप में बाधक होता है; और ऐसे नौजवान, जो शरीर-श्रम से घृणा करने की परम्परा में पले हैं, विकास-विरोधी प्रक्रिया को और भी मजबूत बना दे सकते हैं। तकनीकी ज्ञान तथा किसी उद्यम-उद्योग के प्रशिक्षण के विरुद्ध तीव्र पूर्वाग्रह रखनेवाला शिक्षित वर्ग तथा उत्पादक-श्रम के विरुद्ध धार्मिक पूर्वाग्रह को मजबूत बनानेवाली शिक्षा-व्यवस्था, दोनों घातक हैं। वही शैक्षिक 'शक्ति-तत्त्व', जिसके फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका-जैसे देश में समृद्धि आयी, खेतों पर काम करने से इनकार, शहरी बेरोजगारी में वृद्धि और इसीलिए तोड़-फोड़ और पतन का कारण हो सकता है। गलत किस्म की शिक्षा के परिणाम-स्वरूप गलत किस्म की जानकारी दी जा सकती है और विकास के मार्ग में बाधा डालनेवाले आदर्श खड़े हो जा सकते हैं।

इस बात में सन्देह की गुंजाइश कम है। आज के 'शिक्षा-शास्त्रियों' द्वारा प्रचारित की जा रही 'शिक्षा' से उस प्रकार की कृषि-क्रान्ति या औद्योगिक क्रांति शायद ही हो सकेगी, जो १८ वीं शताब्दी या १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटेन के अन्दर हुई थी। संयुक्त राज्य (अमेरिका) के अन्दर विगत शताब्दी के अन्त में जो विराट औद्योगिक विस्तार हुआ, वह यूरोप से आकर बसनेवाले निरक्षर लोगों के आधार पर हुआ। दूसरी तरफ, फ्रांस और जर्मनी में आर्थिक विस्तार स्पष्टतः शैक्षिक विस्तार के बाद हुआ। फिर भी इन देशों में व्यापक जन-शिक्षण का कार्य सीधे सैनिक-तैयारी के परिणामस्वरूप हुआ, न कि योजनापूर्वक आर्थिक विस्तार के फलस्वरूप। आज भी दुनिया में जर्मनी और जापान में तीव्र आर्थिक गतिशीलता हम पाते हैं। इन देशों में उच्च शिक्षा पर—तकनीकी शिक्षा पर भी—कोई खास ज्यादा खर्च नहीं हुआ। बल्कि इन्हीं देशों में जब 'शिक्षा' में सातत्य रहा, तो उस समय विकास की गति में तीव्र उतार-चढ़ाव नजर आये, और फिर जब ब्रिटेन जैसे देश में 'शिक्षा' के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई, तो विकास की गति में ह्रास देखा गया। इस बात से आर्थिक-छन्दशास्त्रियों के उन काले जादूगरों को चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए थी, जो सरल—और इसलिए गणित की दृष्टि से आकर्षक—मान्यताओं के आधार पर अपने प्रयोग करते हैं।

शिक्षा के प्रति यह पारंपरिक दृष्टिकोण विकासशील दुनिया पर, इसकी छान-बीन किये बिना, लागू कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप न केवल सामान्य सिद्धांतनिष्ठ नवसिखुए 'कला'-स्नातक की, जो स्वतः एक प्रगति-विरोधी विचार-तत्त्व है, सहज अहंभावना की पुष्टि होगी; बल्कि ऐसे देशों में

तकनीकी शिक्षा और खासकर कृषि-शिक्षा की उपेक्षा भी होगी, जहाँ की आबादी का ५/६ भाग जमीन पर जीवन बसर करता है।

नये दृष्टिकोण का आयोजन

तब फिर प्रश्न उठता है कि शिक्षा के प्रति कौनसा दृष्टिकोण अर्ध विकसित देशों में अपनाया जाय ?

प्रथमतः पुराने कृषि-क्षेत्र का रूप-परिवर्तन किया जाय।

द्वितीयतः सामुदायिक जीवन में उसको समाविष्ट किया जाय, जिससे विदेशी जीवन-पद्धति की नकल करनेवाले एक कृत्रिम और सत्तापिपासु शिक्षित वर्ग के पैदा होने का गंभीर खतरा टले।

तृतीयतः और परिणामतः, शिक्षा ऐसी हो, जो देश के विकास के लिए आवश्यक तकनीकी और प्रशासनिक कार्यकर्ता-वर्ग पैदा करे। इस सन्दर्भ में मैं ग्रामीण शिक्षा की समस्या तक अपने को सीमित रखूँगा, कुछ तो इसलिए कि कृषि का महत्त्व आबादी के हित के लिए है, और कुछ इसलिए कि इस समस्या को लोग कम-से-कम समझते हैं।

शिक्षा को अवश्य ही ग्रामीण क्षेत्र के नवजागरण-हेतु व्यापक अभियान का अंग बनाया जाय। सामाजिक एवं शैक्षिक व्यवस्थाओं में तकनीक विरोधी वर्तमान पूर्वाग्रहों से पैदा होनेवाली समस्या का एक सजीव चित्र उन अफ्रीकी विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थाओं के अनुभव से मिलता है, जिनका संबन्ध महानागरिक संस्थाओं से है, जहाँ शोधकर्ताओं और शिक्षकों की महत्त्वाकांक्षा, जिसे हम समझ सकते हैं, यह है कि उन्हें घर ही पर रोजगार मिल जाय। इस आकांक्षा से वे शुद्ध वैज्ञानिक रूप में अपना विकास करना चाहते हैं, और उसके परिणामस्वरूप अफ्रीका की खास समस्याओं के आधार पर होनेवाले वास्तविक कार्यों को क्षति पहुँचती है। उनके शोध के जो वास्तविक परिणाम निकले हैं, उन्हें अविलम्ब जनता को उपलब्ध नहीं कराया जाता, बल्कि वे स्वयमेव वैज्ञानिक प्रयास के परिणाम माने जाते हैं। फलतः बहुत सारा ज्ञान इकट्ठा हो गया है, जिसको तीव्रता से लागू करने की जरूरत है।

एक सन्तुलित कार्यक्रम में ग्रामीण प्रगति के लिए व्यापक शिक्षण और प्रशिक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए और यथासंभव, कम-से-कम मूल्य पर होनेवाले सामान्य विकास के कार्यक्रम के साथ उसे जोड़ दिया जाना चाहिए।

एक नये प्रशासनिक, प्राविधिक एवं शैक्षणिक कार्यकर्ता-वर्ग की तैयारी तथा ग्रामीण शिक्षा के पुनर्गठन की योजनाओं का लक्ष्य ऐसी रूपरेखा निर्माण करने

का होना चाहिए, जो सामुदायिक कार्य तथा परिवर्द्धित उत्पादन के अनुकूल हो। इसके लिए शैक्षिक नीति में बुनियादी परिवर्तन की जरूरत है, और इस बात की भी जरूरत है कि शैक्षिक प्रगति का गहरा सम्बन्ध ग्रामीण परिवर्तनों में तथा कृषि-विस्तार, बाजार-व्यवस्था एवं ऋण-सेवाओं के निकटतर सहयोग के द्वारा कृषि-उत्पादन के आधुनिकीकरण के साथ जुड़े। ऐसे दृष्टिकोण के फलस्वरूप बदले में प्रशासनिक संस्था का पुनर्गठन करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में काम करनेवाले तकनीकी विशेषज्ञों के अनुकूल वेतनमान में सुधार करने की आवश्यकता होगी।

प्राथमिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो ग्रामीण युवकों को अत्यन्त व्यावहारिक ढंग से तकनीकी ज्ञान उपलब्ध करा सके और उनमें उत्पादन बढ़ाने की क्षमता पैदा कर सके। बिलकुल साधारण कृषि-सुधारों से पाँच वर्षों के अन्दर विस्तृत क्षेत्रों में उत्पादन को दुगुना किया जा सकता है, और उन्नत तरीकों से जिनकी केवल काल्पनिक चर्चा होने के बजाय विश्वासकारी प्रदर्शन हो चुका है, उत्पादन बढ़ाने तथा जीवनमान उन्नत करने के लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा मिल सकती है।

लक्ष्य यही होना चाहिए कि कृषि-कार्य की प्रतिष्ठा बढ़े और छात्रों का अपने चारों ओर के वातावरण से दुराव समाप्त हो। प्राथमिक विद्यालय ऐसा हो, जो ग्रामीण पुनर्जागरण की अगुआई कर सके तथा कृषि-विस्तार सेवाओं एवं नमूने की खेती के साथ जोड़ा जा सके। ग्रामीण विज्ञान और प्राथमिक कृषि-सम्बन्धी जानकारी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। जिन स्कूलों के पास जमीन है, वे न केवल प्रभावकारी शिक्षण दे सकेंगे, बल्कि स्वावलम्बी होकर, देश के पास जो सामान्य साधन हैं, उनके खर्च में भी कमी कर सकेंगे।

अधिकांश अर्धविकसित देशों के अन्दर सिद्धान्ततः छः या सात साल की उम्र से बच्चों को चार या पाँच साल तक की शिक्षा दी जाती है, और यह १९ वीं शताब्दी के यूरोप की पद्धति है, जो पुरानी पड़ चुकी है। शिक्षा उस समय शुरू होनी चाहिए, जब किशोर सर्वाधिक ग्रहणशील अवस्था में हो, और वह स्कूल के नमूने की खेती के काम में कुछ ठोस देन दे सकता हो। प्रतिभाशाली बच्चों को अपनी औपचारिक शिक्षा जारी रखने हेतु छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

स्कूल-भवन और शिक्षा-आवास का निर्माण गाँव की जनता थोड़ी-सी सरकारी सहायता लेकर करे। इससे स्थानीय लोगों की निगाह में उनका

मूल्य बढ़ेगा और हमारे पास जो थोड़े राष्ट्रीय साधन है, उनकी बचत होगी। लेकिन उन्हें स्वातन्त्र्य-पूर्व काल की शैक्षिक व्यवस्था के महानागरिक स्तरों के विपरीत शिक्षण-सेवा के नये राष्ट्रीय स्वरूप के अनुकूल होना चाहिए। और अगर शिक्षकों के वेतनमान को बहुमस्थर योग्य एवं महत्वाकांक्षी युवकों की नजर में आकर्षक बनाना हो तो उन्हें नियमित नागरिक सेवा में तरक्की की प्रेरणा दी जानी चाहिए।

शिक्षकों को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ ही वयस्कों को खास तौर से स्कूली उम्र से ऊपर के युवक कार्यकर्ताओं को आधुनिक सहयोगी दृष्टिकोण का प्रशिक्षण दिया ही जाना चाहिए क्योंकि वह पुराने कृषिप्रधान देशों में उत्पादन और आमदनी की वृद्धि के लिए आवश्यक है। सहयोगी प्रयास विस्तृत पारिवारिक स्वामित्व की पुरानी रूपरेखा के अन्दर (जैसा कि अफ्रीका में है) या कम-से-कम पूंजीवाले देशों में (जैसे भारत या लैटिन अमेरिका में) नये ढंग के प्रोत्साहन दिये बिना सफल नहीं होगा। इसलिए ग्रामीण विद्यालय और विस्तार-केन्द्र उन्नत उत्पादन-कार्य का तथा वयस्क शिक्षण और कृषि-विस्तार काय का केन्द्र होना चाहिए।

कृषि-विस्तार

कृषि-विस्तार-सेवाओं को पुनर्गठित किया जाना चाहिए और उनके कर्मचारियों के रूप में हाथ से काम करने से हिचकनेवाले तकनीकी विशेषज्ञों की नहीं बल्कि किसानों के साथ-साथ काम करनेवाले शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए। विस्तार-कार्यकर्ताओं को पहले विस्तार-कृषि क्षेत्र पर तथा सर्वाधिक उत्साही किसानों के खेतों पर शक्ति केंद्रित करनी चाहिए। एक बार जब किसान आमदनी में वृद्धि होती देख लेंगे तो उसके बाद उनमें जो सहज अविश्वास की भावना है वह कम होती जायगी।

वयस्क-शिक्षा की तकनीक ऐसी होनी चाहिए जो सामान्य ग्रामीण कल्याण को बढ़ाने में सहायक हो। इसके लिए बेहतर यह होगा कि उन्नत सामुदायिक योजनाओं का जैसे सार्वजनिक कार्य-योजनाओं का सहारा लिया जाय, जिनमें श्रमिक की आंशिक क्षति-पूर्ति मजदूरी से हो सके और उनको लगनेवाले ग्रामीण उन्नति-कर की नक्द अदायगी आंशिक रूप में हो सके। समुदायों की व्यक्तिगत अभिरुचि जगाने के लिए उच्चतर और यथासंभव अधिक वेतनवाले पदों के प्रशिक्षण का अवसर देकर उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

प्रत्येक ग्रामीण-समुदाय से स्थानीय सुधार योजनाओं के बारे में राय ली जानी चाहिए, और वह शीघ्र परिणाम देनेवाली योजनाओं के पक्ष में—जैसे

प्रवेश-मार्गों, छोटे-छोटे बाँधों आदि के निर्माण की योजनाएँ, न कि केवल सुख-सुविधाओं के साधनों के निर्माण की योजनाएँ हों—होनी चाहिए। एक बार जब स्थानीय निर्माण हो जाता है, तो उसकी कार्यान्विति कर-निर्धारण की राजकीय व्यवस्था या स्थानीय सत्ता के मार्फत निश्चित हो जाती है। समुदाय के सभी सदस्यों के लिए नकद या श्रम के रूप में दान देना लाजिमी होना चाहिए। श्रम का मूल्य काफी ऊँचा रहना चाहिए, जिससे इस तरह के दान को प्रोत्साहन मिले और शरीर-श्रम के विरुद्ध जो पूर्वाग्रह है वह कम हो सके।

दुर्भाग्यवश, अनिवार्य-श्रम के मार्ग में गंभीर मनोवैज्ञानिक रुकावटें हैं। औपनिवेशिक किस्म के बलात् कराये जानेवाले श्रम से इसकी तुलना न की जाय, इसके लिए आवश्यक है कि ऐसे श्रम में सभी वर्गों को भाग लेना चाहिए। उदाहरण के तौर पर, माध्यमिक विद्यालय से निकलनेवाले छात्रों तथा विश्व-विद्यालय के स्नातकों के लिए एक-डेढ साल तक गाँव में शिक्षा देना तथा सार्वजनिक कार्य में भाग लेना लाजिमी होना चाहिए, और इसके लिए योजनाओं का सावधानी से चुनाव किया जाना चाहिए, जिससे इन योजनाओं से केवल चन्द विशिष्ट हितों को लाभ न हो। इस बात पर खास तौर से ध्यान रखना चाहिए कि ग्रामीण जीवन में जो लोग पारपरिक या नवनिर्मित सत्ता का इस्तेमाल करनेवाले हैं, वे अपने कामों के लिए जिम्मेवार ठहराये जा सकें, ऐसी कोई प्रक्रिया खोज निकाली जाय, जिससे सत्ता का दुरुपयोग न हो।

तकनीकी कार्यकर्ता-वर्ग

इस दिशा में नेतृत्व करने के लिए मनुष्य-शक्ति का बहुत अभाव है, लेकिन समस्या असाध्य नहीं है। यह केवल सगठनात्मक सुविधा का प्रश्न है कि ग्रामस्तर के नायक या विस्तार-पदाधिकारी शिक्षकों में रूप के प्रशिक्षित किये जायँ अथवा शिक्षक ही उस रूप में प्रशिक्षित हों। विस्तार-कार्यकर्ताओं के लिए लम्बी-चौडी प्रशिक्षण योजनाओं की आवश्यकता भी नहीं है और न इस स्थिति में ऊँची तकनीकी योग्यताओं की आवश्यकता है। महत्त्व का प्रश्न उत्साह और नेतृत्व का है।

प्रति हजार परिवारों के लिए कम-से-कम एक या दो नायक आवश्यक होंगे, यानी हर गाँव के लिए एक नायक शिक्षक। इस प्रकार के कर्मचारी-वर्ग को प्रशिक्षित करने के लिए हर जिले में एक बड़ा शिविर-सस्थान होना चाहिए, जो अधिकाशतः स्वावलम्बी आधार पर चल सके। ज्यों-ज्यों विशिष्ट शिक्षण उपलब्ध होगा, त्यों-त्यों उच्चतर-स्तरों पर विस्तार-कार्य एवं प्राथमिक शिक्षण एक-दूसरे से अलग हो जायेगा, लेकिन क्षेत्र में उनके बीच जो निकट का सम्बन्ध है, वह कम नहीं होगा।

ग्रामीण-शिक्षा के इस बुनियादी पुनर्गठन के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा में और भी अधिक तकनीकी दृष्टिकोण दाखिल होगा, जिससे कि प्रशासकों तथा वैज्ञानिक शोध-कर्ताओं में, जो भावी ग्रामविकास की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे, व्यावहारिक दर्शन की भावना भरी जायेगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दो दशाब्दियों के अन्तर्गत विकास के लिए काफी चिन्तन करने और साधन लगाने के बावजूद परिणाम अपेक्षा से बहुत कम आये हैं, और विकसित तथा विकासशील देशों में समान रूप से निराशा बढ़ रही है।

समाधान की कुंजी

इस प्रक्रिया की अगर सबसे महत्वपूर्ण नहीं तो एक महत्वपूर्ण कुंजी शिक्षा है। फिर भी जैसा मैंने बताने की कोशिश की है विकासशील देशों में शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण ऐसे भ्रम पर आधारित रहा है, जो न केवल उनके भावी विकास के सम्पूर्ण ढाँचे को विकृत कर देगा बल्कि उनके द्वारा चलायी जा रही विकास-योजनाओं और कार्यक्रमों को भी विफल कर देगा। ग्रामीण शिक्षा के प्रति एक ऐसे नवीन और व्यावहारिक दृष्टिकोण की तीव्र आवश्यकता है, जो उसे स्थानीय कृषि-समस्याओं और सम्भावनाओं से पूर्वोक्त आधार पर जोड़ दे। इस प्रकार की शिक्षा के बारे में और अधिक क्या कहा जा सकता है? यद्यपि इस परिवर्तन के लिए बहुत देर नहीं हो चुकी है लेकिन समय अपने पास नहीं है। अगर हम ऐसा करने में असमर्थ रहते हैं, तो ग्रामीण पुनर्जागरण की प्रक्रिया अवरुद्ध होगी और ग्रामीण आबादी में वृद्धि होने के साथ-साथ स्वाभाविक साधनों में जो कमी हो रही है, उसके कारण और अधिक विलंब असह्य हो जायेगा।

यही ग्राम-विकास एवं शिक्षण से सम्बन्ध रखनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के नेतृत्व की आवश्यकता है। अभी तक उप-क्षेत्रीय और देशीय आधार पर उनके कामों में जो सम्बन्ध रहा है, उससे अधिक गहरे सम्बन्ध की स्थापना कर वे इस महत्वपूर्ण समस्या के हल में व्यावहारिक रूप से सहायक हो सकते हैं। इससे न केवल विकास-प्रक्रिया को रूपान्तरित करने में वे सहायक होंगे, बल्कि एक नवीन आर्थिक विचार-शास्त्र के विकास का आधार भी वे प्रस्तुत कर सकेंगे, जिसमें शिक्षा अपनी गतिशील भूमिका अदा कर सकेगी। जबतक शुद्ध आर्थिक तथा आर्थिक-गणितशास्त्रीय तरीकों का मेल समाज-शास्त्रीय अन्तरदृष्टि से नहीं होगा, तबतक साधनों की बर्बादी होती रहेगी।

श्री टॉमस बॅलो--ब्रिटिश सरकार के आर्थिक सलाहकार।

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : २
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

सितम्बर, '६९

•

निवेदन

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
* रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित; अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : सितम्बर '६९

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

विवेकरहित विरोध
बनाम
बुनियादी परिवर्तन-प्रक्रिया

'शासन के खिलाफ विवेकरहित विरोध चलाया जाय तो उससे अराजकता की, अनियन्त्रित स्वच्छंदता की स्थिति पैदा होगी और समाज अपने हाथों अपना नाश कर डालेगा।''

—गांधीजी

आज देश में आये दिन घेराव, धरना, लूटपाट, आगजनी, कथित सत्याग्रह की कार्रवाइयाँ लोकतंत्र में सामूहिक विरोध के हक के नाम पर होती हैं।

सर्वोदय-आन्दोलन भी वर्तमान समाज, अर्थ और शासन-व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह है। किन्तु वह इसका एक नियन्त्रित, रचनात्मक एवं अहिंसक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

इसके लिए पढ़िए, मनन कीजिए —

(१) हिन्द स्वराज्य —गांधीजी

(२) ग्रामदान —विनोबाजी

फिर एक जिम्मेदार नागरिक के नाते समाज-परिवर्तन की इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया में योग भी दीजिए।

गांधी स्मारक कार्यक्रम उपसमिति (राज्य गांधी जन्म शताब्दी समिति)
ठोलिया भवन, इन्दिरा बाजार के पास, जयपुर - राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आवरण मुद्रक : [illegible] प्रेस मानमन्दिर वाराणसी

गांधी जन्म-शताब्दी-अंक
अक्टूबर १९६९
वर्ष : १८ ● अंक : ३

"नयी तालीम मेरी सर्वोत्तम देन है।"

वर्ष : १८
अंक : ३

नयी तालीम क्यों ?

बुनियादी शिक्षा' का गाधीजी ने 'नयी तालीम कहा क्योकि पुरानी तालीम की परम्परित प्रणाली के विरुद्ध यह शिक्षा की एक नयी प्रणाली थी। ससार के चितको और शिक्षाविदो ने इसे शिक्षण की एक उत्तम पद्धति कहा। परन्तु स्वतत्रता प्राप्ति के वाईस वर्ष वाद भी राष्ट्र की शिक्षा का स्वरूप, प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक, मूलत. वही है जो अग्रजो के जमाने मे था। तो स्वभावत प्रश्न उठता है, ऐसा क्यो ?

वात साफ है। गाधीजी ने नयी तालीम की कल्पना केवल एक पद्धति के रूप मे नही की थी और न वह केवल दस्तकारी के माध्यम से पाठयक्रम के दूसरे विषया को पढाने का ढग मात्र थी। नयी तालीम तो एक नये प्रकार के जीवन की शिक्षा थी, जिसमे समाज के ढाचे मे आमूल परिवर्तन की कल्पना अन्तर्निहित थी। वह एक नयी जीवन-पद्धति की वाहन थी। उसमे वगभेद और वर्णभेद से मुक्त होकर, अमीर और गरीब, सवके वच्चा के लिए एकसाथ बैठकर हाथ से कोई समाजोपयोगी काम करने और उसी काम के द्वारा व्यक्तित्व के सस्कार की बात कही गयी थी। जाहिर है कि किसी भी ऐसी योजना का 'यथास्थिति' के चाहनेवाले विरोध करेंगे। और केवल इसी कारण स्पष्ट अथवा प्रच्छन्न रूप से बेसिक शिक्षा का विरोध हुआ। दूसरे कारण गौण हैं·

बेसिक शिक्षा एक सामाजिक क्रान्ति की वाहन थी। यह क्रान्ति उन लोगो के स्वार्थों से टकराती थी, जिन्हे हम समाज मे गणमान्य कहते हैं, 'एलिट' कहते हैं, जो पंजीपति थे अथवा सम्भ्रान्त बुद्धिजीवी थे। इसीलिए नयी तालीम का विरोध हुआ। नयी तालीम जिस वर्ण-वर्ग-भेद और शोषणमुक्त अहिंसक क्रान्ति के मार्ग की अग्रदूत बनकर आना चाहती थी, जब देश को वह मार्ग ही नही मान्य हुआ तो फिर यदि नयी तालीम चलती और फलती-फूलती तो आश्चर्य ही होता!

नयी तालीम 'शिल्पमूलक' है। उसका आधार हाथ का काम है, विकेन्द्रित कुटीर उद्योग है, परन्तु देश ने जब केन्द्रित औद्योगीकरण की नीति अपनायी तो नयी तालीम का पौधा कुम्हला गया। यह स्वाभाविक था। परन्तु अब एक प्रतिक्रिया हो रही है। लोग अब यह महसूस करने लगे हैं कि भारत के लिए अन्ततोगत्वा केन्द्रित औद्योगीकरण की नीति को छोडना पडगा और विकेन्द्रित औद्योगीकरण नीति को अपनाना पडेगा। गाधीजी से किसीने कहा कि आपका देश पूंजी के लिए भूखा है। गाधीजी ने प्रत्युत्तर दिया—मेरा देश श्रम मे धनी है। यह श्रम भारत के साढे पांच लाख गांवो मे बिखरा पडा है। इसका उपयोग विकेन्द्रित औद्योगीकरण की नीति अपनाने से ही होगा। जब ऐसा होगा तब फिर नयी तालीम फूले-फलेगी। अथवा यह भी सच है कि जब नयी तालीम फूले-फलेगी तभी ऐसा होगा।

एक दूसरी महत्त्व की बात यह है कि शिक्षण की योजना कभी असफल नही होती। उसकी प्रकट असफलता, प्रच्छन्न सफलता का एक कदम भर है। नयी तालीम मे वे सभी सम्भावनाएँ हैं, जो अच्छी-से-अच्छी शिक्षा-पद्धति मे पायी जाती है। अमेरिका के जॉन ड्यूई, जो इस शताब्दी के सबसे बडे शिक्षा-शास्त्री माने जाते हैं और जिनके शैक्षिक विचारो पर आधारित प्रोजेक्ट पद्धति इस शताब्दी की सर्वाधिक प्रगतिपूर्ण शिक्षण-पद्धति मानी जाती है, बेसिक शिक्षा के विषय मे कहते है—"गाधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार बहुत मौलिक हैं और प्रोजेक्ट-पद्धति से कई कदम आगे है।" इससे बडा सर्टिफिकेट नयी तालीम को नही चाहिए।

आधुनिक शिक्षा-जगत् का एक दूसरा सत्य है शिक्षण को लोक-जीवन से जोडना। जो शिक्षण लोकजीवन से विच्छिन्न है, वह एक मृत प्रक्रिया है, उससे जीवन्त व्यक्तित्व विकसित नही हो सकता।

नयी तालीम शिक्षा की इस दृष्टि को भी आगे बढाती है। इसलिए भी वाछनीय है। नयी तालीम शिक्षण की समग्र प्रक्रिया है, क्योकि उसमे बाल-शिक्षण के अतिरिक्त समाज-शिक्षण और लोक शिक्षण पर भी बल है। बाल शिक्षण से समाज बनता है, परन्तु समाज बदलता है लोक-शिक्षण से। लोक जिन मूल्यो को स्वीकार लेता है, जब व मूल्य बाल-शिक्षण मे दाखिल होते है तभी समाज को भी स्वीकार होते हैं। नयी तालीम मे जिस श्रम-प्रतिष्ठा के मूल्य पर इतना जोर है, लोक-मानस को उसके अनुकूल बनाये बिना ही जो नयी तालीम को चलाने की बात हुई, वह भी नयी तालीम के न चलने का एक कारण है। इसीलिए गाधीजी ने, नयी तालीम के लोक-शिक्षण के पहलू पर भी जोर दिया है। नयी तलीम समाज को बनाने और बदलने की समन्वित प्रक्रिया है। अत उसका निष्ठापूर्वक कार्यान्वियन होना चाहिए।

भारत को गाँवो का देश कहा जाता है इसलिए कि देश की अस्सी प्रतिशत से ऊपर आबादी गाँवो मे रहती है। इसीलिए कोई भी शिक्षण-पद्धति यदि इन गाँवो के जीवन और उद्योगो से अलग रहती है, तो वह भारत के लिए हितकर नही होगी। बुनियादी तालीम ग्रामोद्योग-मूलक है, गाँव का जीवन-शिक्षण का माध्यम है अत वह देश हित के अनुकूल पद्धति है और ईमानदारी मे उसका कार्यान्वियन होना चाहिए। यह अबतक नही हुआ है। गाधीजी के २९ जनवरी १९४८ के महत्त्वपूर्ण मसविदे म, जो उनकी आखिरी वसीयत के नाम से मशहूर हुआ, कहा था—"भारत को अपने चन्द शहरा और नगरो से भिन्न सात लाख गाँवो के सदर्भ मे सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी अभी हासिल करनी है।" इसी आजादी के हासिल करन को साधन नयी तालीम है। अपन सपनो के समाज के निर्माण के लिए ही उन्होन नयी तालीम की कल्पना की थी, उनकी कल्पना के साकार होने मे ही गाँवो को सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी प्राप्त होगी। यही देश के सच्चे हित मे होगा। गाधी शताब्दी के कार्यक्रम द्वारा हम देश मे गाधी की जिस आत्मा का दर्शन करना चाहते हैं उसका सबसे सुलभ दर्शन नयी तालीम के सफल कार्यान्वियन से होगा। —वशीधर श्रीवास्तव

नयी तालीम की मूल कल्पना

मो० क० गांधी

मैं इस ख्याल का हूँ कि प्राथमिक माध्यमिक दोनों शिक्षाओं को मिला दिया जाय। प्राथमिक शिक्षा की जो शक्ल आज है उसे मैंने गांवों में देखा है और इधर तो मैं एक गांव में ही रहने लगा हूँ। और जब मैं सेगांव के इन लडकों की पढाई को देखता हूँ तो फौरन समझ लेता हूँ कि वह क्या चीज है। क्योंकि उसका न कोई ढंग है न ध्येय है। इसलिए मैं समझता हू अगर हम देहातों को कुछ देना चाहते हैं तो जरूरी है कि सेकेण्डरी तालीम को प्राइमरी के साथ मिला दिया जाय। इसलिए अब हमने जो कुछ बनाया है या बनाने जा रहे है वह शहरों के लिए नही बल्कि पूरे गांवों के लिए है।

मेरा ख्याल है कि आजकल देहाती मदरसों में लडकों को जो कुछ पढाया जाता है उससे देहातवालों को नुकसान ही होता है। लडके कुछ समय के लिए मदरसे जाते है मगर वहाँ जाकर भी उन्हें असन्तोष रहता है। उनमें से अधिकतर या तो शहरी बन जाते हैं या गांव के प्रति अपना कर्तव्य भूल जाते हैं और कुछ तो बदमाशी वगैरह भी सीख जाते है। इसलिए अपने अबतक के अनुभव से मैं कह सकता हू कि हमारी मौजूदा प्राइमरी तालीम से गांववालों को फायदा नही पहुंचता।

प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप

तो सवाल होता है कि इस प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप क्या हो? मेरा तो जवाब यह है कि किसी उद्योग या दस्तकारी को बीच में रखकर उनके जरिये ही यह सारी शिक्षा दी जानी चाहिए।

लडकों को जो कुछ भी सिखाया जाय सब किसी-न किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिये ही सिखाया जाय। आप कह सकते है कि मध्य युग मे हमारे यहा लडकों को सिर्फ धन्धे ही सिखाये जाते थे। मैं मानता हू। लेकिन उन दिनों धन्धों के जरिये सारी तालीम देने की बात लोगों के सामने न थी। धन्धा सिर्फ धन्धे के ख्याल से सिखाया जाता था। हम धन्धे या दस्तकारी की मदद से दिमाग को भी आला बनाना चाहते है। इसलिए मेरी दरख्वास्त है कि हम सिर्फ उद्योग या दस्तकारी ही न सिखायें बल्कि इन्हीके जरिये बच्चों को सारी तालीम दें। मसलन् तकली ही को ले लीजिए। इस तकली का सबक हमारे

विद्यार्थी का पहला सबक होगा जिसके जरिये वह कपास की तकलीफों का और अपनी सन्तान का बहुत कुछ इतिहास सीख सकेगा।

अब आप देखिए कि मैं क्यों इस चीज पर इतना जोर देता हूँ। सिर्फ तकली की बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने उनकी ताकत और उसके रोमांस का अनुभव किया है। और आज तो इस तकली के जरिये ही हम करोड़ों बालकों को शिक्षा दे सकते हैं। मगर इसके पहले जरूरी है कि हम लोग आपस में इस पर दिल खोलकर बहस कर लें। जहाँ तक मेरा तजुरबा कहता है मैं तो प्राथमिक शिक्षा के लिए तकली ही को बीच में रखना चाहता हूँ। लेकिन अगर आप लोगों के ख्याल में और कोई धन्धा आता हो तो आप निस्संकोच उसे सुझाइये ताकि हम उस पर भी विचार कर सकें। तकली सुझे सबसे ज्यादा इसलिए जंचता है कि इसे छोड़कर और धन्धों के लिए हमारे पास कोई सामान मौजूद नहीं है। तकली की न ज्यादा खर्च की गरज न सरंजाम की। मैं जानता हूँ कि इस तरह आप कामयाबी तक पहुंच सकेंगे। और इसमें तो मैं भी आपकी मदद कर सकता हूं। लेकिन इसे छोड़कर दूसरा कोई धन्धा ऐसा नहीं है मुल्क की मौजूदा गिरी हुई हालत में जिसे हम यहां से वहां तक जारी कर सकें।

मैंने सोचा है कि यह पाठ्यक्रम सात साल का रखा जाय। इसमें जहाँ तक तकली का सम्बन्ध है विद्यार्थी बनाई तक के व्यावहारिक ज्ञान में जिसमें रंगाई और डिजाइनिंग आदि भी शामिल होंगे निपुण हो जायेंगे। कपड़ा जितना हम बना पायेंगे उसके लिए ग्राहक तो तयार हैं ही।

मैं इस बात के लिए बहुत ही उत्सुक हूँ कि दस्तकारी के जरिये विद्यार्थी जो कुछ पैदा करें उसकी कीमत से शिक्षक का खर्च निकल आय क्योंकि मुझे यकीन है कि देश के करोड़ों बच्चों को तालीम देने के लिए सिवा इसके कोई रास्ता नहीं है। और न यही मुमकिन है कि हम उस वक्त तक ठहरें रहें जबतक कि सरकार अपने खजाने से हम आवश्यक रुपया दे या इसी तरह का कोई और कारगर जरिया निकल आय। आप लोग यह भी समझ लीजिए कि प्राथमिक शिक्षा की इस योजना में सफाई आरोग्य और आहारशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का समावेश भी हो जाता है। इसमें बच्चों की वह शिक्षा भी शामिल समझिए जिससे वे अपना काम खुद करना सीखेंगे और घर पर अपने माँ बाप के काम में भी मदद पहुँचायेंगे। आजकल न हमारे बच्चों को सफाई का ख्याल रहता है न साफ-सुथरेपन का। वे न अपने पैरों पर खड़ा होना जानते हैं और न उनकी तन्दुरुस्ती ही ठीक रहती है। मैं चाहूँगा कि उनके लिए संगीत के

साथ लाजमी तौर पर ऐसी कवायद और कसरत वगैरह का इन्तजाम हो जाय, जिससे उनकी तन्दुरुस्ती सुधरे और जीवन तालबद्ध बने।

सर्वनाश से बचाने का मार्ग

मुझ पर यह इलजाम लगाया जा रहा है कि मैं साहित्यिक या अदबी शिक्षा के खिलाफ हूँ, मगर बात ऐसी नहीं है। मैं तो सिर्फ वह तरीका बता रहा हूँ, जिससे ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए। मेरे स्वावलम्बन के पहलू पर भी हमला किया गया है। कहा यह गया है कि जहाँ प्राथमिक शिक्षा पर हम लाखों रुपया खर्च करना चाहिए, वहाँ हम उल्टे बच्चों ही से वसूल करने जा रहे हैं। साथ ही अन्देशा भी बतलाया जाता है कि इसमें मुल्क की बहुत कुछ ताकत नाहक खर्च होगी। लेकिन अनुभव इस अन्देशे को गलत साबित कर चुका है और जहाँ तक बच्चों पर बोझ डालने या उनका शोषण करने का सवाल है, मैं जानना चाहता हूँ कि क्या यह बोझ उन्हें उनके सर्वनाश से बचाने के लिए नहीं है?

मंत्रियों से मैं यह कहूँगा कि खैराती तालीम देकर वे मुल्क के बच्चों को असहाय या अपाहिज ही बनायेंगे, जब कि उनकी शिक्षा के लिए उनमें खुद मेहनत कराकर वे उन्हें बहादुर और आत्मविश्वासी बना सकेंगे। तालीम का यह तरीका हिन्दू, मुसलमान, पारसी, इसाई सभी के लिए एक सा होगा। मुझसे पूछा जाता है कि मैं धार्मिक शिक्षा पर कोई जोर क्यों नहीं देता? वजह यह है कि मैं उन्हें स्वावलम्बन का धर्म तो सिखा ही रहा हूँ, जो मेरे ख्याल में सब धर्मों का असली रूप है।

हाँ, जो लोग इस तरह की तालीम लेकर तैयार होंगे, उन्हें रोजी देना राज का फर्ज होगा। और जहाँ तक शिक्षकों और अध्यापकों का सवाल है, प्रोफेसर शाह ने लाजिमी सेवा का तरीका सुझाया ही है। इटली का और दूसरे देशों का उदाहरण देकर उन्होंने इसका महत्त्व भी बता दिया है।

स्वावलम्बन की शर्त क्यों?

एक राष्ट्र के नाते शिक्षा में हम इतने पिछड़े हुए हैं, कि अगर शिक्षा-प्रचार के कार्यक्रम का आधार पैसा रहे तो इस विषय में जनता के प्रति अपने कर्तव्य पालन की आशा हम कभी नहीं रख सकते। इसलिए रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी अपनी सारी प्रतिष्ठा को खो बैठने की जोखिम उठाकर भी मैंने यह कहने का साहस किया है कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। सच्ची शिक्षा वही है, जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के उत्तम गुणों का सर्वांगीण

विकास कर सके, और उन्हें प्रकाश में ला सके। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्तिम ध्येय है, न उससे शिक्षा का आरम्भ ही होता है। वह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित बनाने के अनेक साधनों में एक साधन मात्र है। अपने आप में साक्षरता कोई शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात् जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है उसी क्षण से उसे कुछ-न-कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूंगा।

प्राथमिक शिक्षा को मैं सबसे ज्यादा महत्त्व देता हूँ। मेरे विचार में यह शिक्षा अंग्रेजी को छोड़कर और विषयों में आजकल की मैट्रिक तक होनी चाहिए, अगर कालेज के सब ग्रेजुएट अपना पढ़ा लिखा एकाएक भूल जायें और इन कुछ लाख ग्रेजुएटों की याददाश्त के यों एकाएक बेकार हो जाने से देश का जो नुकसान हो उसे एक पलड़े पर रखिए। दूसरी ओर उस नुकसान को रखिए जो पैंतीस करोड़ स्त्री-पुरुषों के अज्ञानान्धकार में घिरे रहने से आज भी हो रहा है, तो साफ मालूम होगा कि दूसरे नुकसान के सामने पहला कोई चीज नहीं है।

अगर मेरा बस चले तो कालेज की शिक्षा को जड़ मूल से बदल दूं और देश की आवश्यकताओं के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दूं। मैं चाहता हूँ कि मेकेनिकल और सिविल इंजीनियरों के लिए उपाधि-परीक्षाएं रखी जायें, और भिन्न भिन्न कल-कारखानों के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। इन कारखानों को जितने ग्रेजुएटों की जरूरत हो उतनों को ये अपने ही खर्च से तालीम दिलाकर तैयार कर लें। उदाहरण के लिए टाटा कंपनी से यह आशा की जाय कि जितने इंजीनियरों की उसे जरूरत हो उतनों को तैयार करने के लिए वह राज्य की निगरानी में एक कालेज का संचालन करे। इसी तरह मिल मालिकों के मण्डल भी आपस में मिलकर अपनी जरूरत के ग्रेजुएटों को तैयार करने के लिए एक कालेज का संचालन करें। दूसरे अनेक उद्योग-धन्धों के लिए भी यही किया जाय। व्यापार के लिए भी एक कालेज हो। कृषि कालेज तो अपने नाम को तभी सार्थक कर सकते हैं, जब वे स्वावलम्बी हों।

बाद में शिक्षकों का प्रश्न रह जाता है। इसके लिए विद्वान स्त्री-पुरुषों से अनिवार्य सेवा लेने का उपाय प्रोफेसर शाह ने सुझाया है वह मुझे अच्छा लगा है। ऐसे लोगों के लिए यह अनिवार्य है कि वे कुछ वर्षों तक (सम्भवतः पाँच बरस तक) जनता को उन विषयों की शिक्षा दें, जिनमें उन्होंने योग्यता प्राप्त की है। इस बीच जीविका निर्वाह के लिए उन्हें जो वेतन दिया जाय, वह देश की आर्थिक स्थिति के अनुरूप हो। उच्च शिक्षा की संस्थाओं में आज शिक्षक और अध्यापक बहुत अधिक वेतन की अपेक्षा रखते हैं। यह प्रथा मिटनी चाहिए।●

नयी तालीम एक जीवन-दर्शन है

विनोबा

१९३७ में याने स्वराज्य प्राप्ति के दस साल पहले बापू ने नयी तालीम की कल्पना देश के सामने रखी। स्वराज्य के माने विदेशी सत्ता यहाँ से हट जाय, इतना ही बापू नहीं कहते थे, बल्कि एक नया समाज बने, जिसमें शोषण न हो, जिसमें केन्द्रित शासन कम-से कम हो, जिसमें हरएक के विकास के लिए पूरी सहूलियत हो—ऐसी समाज व्यवस्था को वे स्वराज्य नाम देते थे। स्वराज्य यानी ऐसा राज्य, जिसमें हरएक को महसूस हो कि यह राज्य मेरा है। इसी को 'राम राज्य' भी कहते थे।

"नयी तालीम उसी समाज की स्थापना करना चाहती है।"

नयी तालीम और पुरानी तालीम में क्या भेद है? नयी तालीम याने नये मूल्यों की स्थापना। पुरानी तालीम चोरी करने को पाप समझती थी। नयी तालीम न सिर्फ चोरी को बल्कि अधिक संग्रह को भी पाप समझती है। पुरानी तालीम शारीरिक और मानसिक परिश्रमों के मूल्यों का फर्क करती थी। नयी तालीम दोनों का मूल्य समान समझती है। इतना ही नहीं, दोनों का समन्वय करती है, दोनों का समवाय साधती है। पुरानी तालीम क्षमता की इज्जत करती थी। नयी तालीम क्षमता को समता की दासी समझती है। पुरानी तालीम लक्ष्मी, शक्ति, सरस्वती को स्वतंत्र देवता रूप में पूजती थी। नयी तालीम मानवता को पूजती है और इन तीनों को उसकी सेवा का साधन समझती है।

शिक्षण-विधि

नयी तालीम का विश्वास है कि ज्ञान और कर्म दोनों एक ही वस्तु के दो स्वरूप हैं। इसलिए मालूम ही नहीं होता है कि यह ज्ञान-कार्य चल रहा है या कर्मयोग। एक दृष्टि से देखो तो ज्ञान-कार्य चल रहा है ऐसा दीखता है, दूसरी दृष्टि से कर्मयोग चल रहा है ऐसा दीखता है, इस तरह का आभास जिन प्रयोगों में आयेगा उसका नाम होगा शिक्षण प्रयोग। जब यह आभास होगा कि यहाँ केवल ज्ञानकार्य चल रहा है तो वह समवाय ही नहीं है। जहाँ यह दीख रहा है कि यह कर्मयोग चल रहा है तो भी वह शिक्षण का कार्यक्रम नहीं है। दोनों में से कौनसी चीज चल रही है, उसका पता ही न चले, उसका नाम है समवाय।

आजकल बुनियादी तालीम म एक बडा तमाशा चलता ह । कहते हैं कि ज्ञान और कम का योग होना चाहिए इसलिए तकली चलाते हैं और इसके साथ तकली के गाने गाते हैं । तकली क साथ तकली क गाने स एकता नहीं हाती यह बडा सूक्ष्म विचार ह । ज्ञान और कम म कहीं तक विरोध भेद और ऐक्य है और इसी विश्वास पर नयी तालीम खडी है कि ज्ञान और कम म अभेद है कम म ज्ञान प्राप्त हाता है ज्ञान स कम का प्रेरणा मिलती है और दाना स जीवन सार्थक होता है । इस प्रकार की भावना नयी तालीम म है । मैं कहना चाहता हूँ कि नया तालीम का आर्थिक पहलू यह है कि शारीरिक परिश्रम और मानसिक परिश्रम इस तरह के दर्जे टूटने चाहिए और नयी तालीम का आध्यात्मिक पहलू जैसा कि मैंने पहले कहा यह है कि ज्ञान और कम दो चीज नहीं बल्कि एक चीज है । ज्ञान से कम श्रेष्ठ या कम स ज्ञान श्रेष्ठ कहना गलत है । ज्ञान और कम एक हैं इस बुनियाद पर जो तालीम दी जायगी वह नयी तालीम होगा । उसम पता ही नहीं चलता कि कोई परिश्रम हो रहा हैं। काम होता है शिक्षण मिलता है और साथ साथ स्वच्छ सुन्दर हवा भी मिलती है । आजकल कारखानो म मजदूरा को बन्द जगह म आठ घण्टे काम करना पडता है जहां उन्ह न खुली हवा मिलती है न आनन्द । उस काम का ज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नहीं । नयी तालीम म इस तरह काम का एक घटा और आनन्द का एक घटा नहीं रहेगा । नयी तालीम म तो सत्‌चित्‌-आनन्द होगा कम ज्ञान और आनन्द एकरूप होगा ।

ज्ञान प्राप्ति का एक स्वाभाविक तरीका यह ह कि हम जो भी काय करते हैं उसक साथ साथ ज्ञान भी शामिल होना रहे । हम बीमार का सेवा करेंगे तो साथ साथ प्रयोग भी करेंगे । यानी सेवा और अध्ययन दोनो करग । कोई डाक्टर शोध करना चाहता है परन्तु रोगी की सवा नहीं करना चाहता तो कैसे चलेगा ? जसे शोध से आप काम को अलग नहीं कर सकते वसे आनन्द स भी काम को अलग नहीं कर सकते । काम और आनन्द को अलग अलग किया जायगा तो आनन्द सन्तोष होगा और काम रूखा-सूखा बनेगा ।

नयी तालीम का सामाजिक पहलू

नयी तालीम का सामाजिक रूप यह है कि मनुष्य मात्र समान है । इसलिए भिन्न भिन्न सामाजिक भेद वग भेद आदि सब मिथ्या है । इस बात को हम बढ़ाते रहेंगे तो प्रान्त राष्ट्रीयवाद आदि सब भेद मिट जायग । नयी तालीम म हम इन्सान म कोई सामाजिक फर्क नहीं करत हैं । आज का समाज का ढाँचा अनेक प्रकार के भेदो पर खडा है । इसलिए नयी तालीम से हिन्दुस्तान

के सामाजिक क्षेत्र म बड़ी भारी उथल-पुथल होनेवाली है। यहा पर सब बच्चे एक साथ खायेंगे, खेलेंगे और पढेंगे। हम भिन्न भिन्न धर्मों की खराबिया छोड़ेंगे और खूबियाँ लेंगे। कुछ लोग गलत समझते हैं कि सव धम समन्वय के मानी है सब धर्मों की सब चीजों को अच्छा कहना। सेक्यूलर एटिटयूड याने भौतिक वृत्ति के मानी यह समझ जाते हैं कि धम के बारे म कुछ नहीं बोलना चाहिए। लेकिन धम के नाम पर जो गलत चीज चलती है उन सबके खिलाफ नयी तालीम खडी है। हम तो समझते है कि नयी तालीम का डटकर विरोध करना सनातनियों का कर्तव्य है और अगर वे विरोध नही करते है तो या उन्होंने नयी तालीम को समझे नही है या आज की नयी तालीम वास्तव म नयी तालीम नहीं है। उसी तरह स्टेटसको (यथास्थिति) रखनेवालो को भी नयी तालीम का विरोध करना चाहिए।

नयी तालीम के विद्यालय से हम हमेशा यह आशा करते है कि उसम विचारो का खूब अध्ययन चले और उसका आचरण भी हो। उस चिंतन मनन, या सहचिंतन और सह आचरण से जो गुरु और शिष्य दोनो मिलकर करते है दुनिया को अनुभवयुक्त ज्ञान मिलता है। जहा विचार मथन और प्रयोग दोनो एक हो जाते घुल मिल जाते है उसे ही नयी तालीम कहते हैं।

जहाँ कुछ विचार मन्थन चलता है परन्तु उसे आचरण का आधार नही मिलता वहा पर पुरानी तालीम चलती है जो आज सवत्र चल रही है। जहाँ पर प्रत्यक्ष आचरण चलता है आचरण के प्रयोग चलते है परन्तु विचार मथन चर्चा आदि नही चलती वह है कमयोग जो आज असख्य किसान सचाई से कर रहे हैं। इस तरह इधर से यह किसान और उधर से व तत्वज्ञानी दोनो मिल कर जो चीज बनती है वह है नयी तालीम का शिक्षक और विद्यार्थी।

शिक्षक सारे गाँव का सेवक भी होना चाहिए। गाँव की शाला सेवा का केन्द्र होगी। गाँव को औषधि देनी है तो वह स्कूल की मार्फत दी जायगी और लडके उसम मदद दगे। गाव म सफाई करनी है तो शाला उसका केन्द्र बनेगी और स्कूल के लडके तथा शिक्षक गाँववाले की मदद करेंगे। गाँव म अगर कोई झगडे होते हैं तो उनका निर्णय करने के लिए भी लोग गाँव के शिक्षक के पास पहुचेंगे। गाँव म कोई उत्सव करना है तो उसकी योजना भी शाला करेगी। इस तरह गाँव का केन्द्र स्थान विद्यालय रहेगा और जो चीज गाँव म नहीं है उसकी स्थापना करेगा।●

नयी तालीम का असली मकसद

धीरेन्द्र मजूमदार

किसी भी शिक्षा प्रणाली के दो पहलू होते है एक, उसका सामाजिक उद्देश्य और दूसरा, शिक्षण पद्धति। बुनियादी शिक्षा के भी दो पहलू हैं १—सामाजिक उद्देश्य और २—शिक्षण-पद्धति। वस्तुत देश और दुनिया के शिक्षण शास्त्रियो ने बुनियादी तालीम की जो तारीफ की है वह इसके शिक्षण-कला के पहलू को देखकर ही। लेकिन शिक्षण-कला ही शिक्षा का उद्देश्य नही होता है वह तो एक तरीका मात्र है। शिक्षा का असली मकसद तो सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति ही है। मनुष्य शिक्षा द्वारा ऐसा व्यक्ति पैदा करना चाहता है जो समाज का सही नागरिक बन सके। यही कारण है कि युग युग म सामाजिक ढाचो के अनुसार ही शिक्षा की कल्पना की गयी है।

गाधीजी ने भी समाज की एक नयी कल्पना की थी। वे ससार म एक अहिंसक समाज बनाना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि समाज के जिन प्रतिष्ठानो के कारण मानव हृदय म निरतर हिंसा का उद्भव हुआ करता है, उनका तिरोधान हो। अब इस बात को समझाने की आवश्यकता नही है कि जबतक समाज मे शासन और शोषण का अस्तित्व रहेगा, तबतक दुनिया हिंसा से मुक्त नही हो सकता है। शासन की शक्ति दड शक्ति है। उसे मनुष्य द्वारा चाहे जितनी मान्यता प्राप्त हुई हो वह हिंसा शक्ति ही है और जिस हद तक मनुष्य पर उसका सचालन चलता है उस हद तक मानव हृदय पर उसकी प्रतिक्रिया होती रहती है। हिंसा की प्रतिक्रिया प्रतिहिंसा है। अत शासन के अस्तित्व के कारण अवश्य रूप मे ही सही, मनुष्य के अन्दर निरतर हिंसा प्रतिहिंसा का घात प्रतिघात चलता रहता है। फलस्वरूप मानव-सस्कार म हिंसा बद्ध मूल हो जाती है। फिर यह देखा जाता है कि बुद्धि और सस्कार म प्राय सस्कार की ही जीत होती है। अत मनुष्य बुद्धि द्वारा चाहे जितना हिंसा मुक्ति चाहता रहे अगर सस्कार मे हिंसा भरी रहेगी तो सस्कार बुद्धि पर विजय पाता रहेगा, और आज दुनिया म जो परिस्थिति चल रही है--यानी शांति की खोज म युद्ध की तैयारी —वह अनन्त काल तक चलती रहेगी।

मनुष्य की मुख्य आवश्यकता

अतएव अहिंसक समाज म अहिंसा की प्राप्ति के लिए एक शासन मुक्त तथा श्रेणीहीन समाज कायम करने की आवश्यकता है। अब प्रश्न यह है कि

यह सब हो कैसे ? ऐसा तो हो नही सकता कि दुनिया मे शासन की आवश्यकता रह जाय और ससार शासन मुक्त हो जाय। आज दुनिया मे शासन का दायरा दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि मनुष्य शासन की आवश्यकताओ की नयी नयी सृष्टि करता जा रहा है। आखिर इन्सान को किस बात की जरूरत पडती है ? अगर इसकी सूची का गहराई से विश्लेषण किया जाय तो मालूम होगा कि उसके लिए मुख्य आवश्यकता जिन्दा रहने के साधना की है अर्थात् आर्थिक आवश्यकता ही मनुष्य की प्रधान आवश्यकता है। यही कारण है कि मानव समाज का सामाजिक तथा राजनीतिक ढाचा आर्थिक ढाँचे पर निभर रहता है। आज तो शासन क्रमश सर्वाधिकारी होता जा रहा है। उसका खास कारण यह है कि मनुष्य ने अपनी आर्थिक जिन्दगी को पूजी के कब्जे मे डालकर अपने को शासन द्वारा गिरफ्तार करा लिया है। पूजी जैसे जैसे केन्द्रित होती जाती है, वैसे-वैसे उस पर राज्य का कब्जा बढाना पडता ही है।

अत हम अहिंसक समाज की स्थापना के लिए अगर सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्ति द्वारा शासन मुक्त तथा श्रेणीहीन समाज कायम करना है तो उसकी शुरुआत एक आर्थिक क्रान्ति कर मनुष्य की जिन्दगी को पूजी निरपेक्ष बनाने मे होगी। सौभाग्य से सन्त विनोबा भावे ने ग्रामदान आन्दोलन द्वारा हमारे सामने इसका एक महान और सक्रिय अवसर उपस्थित किया है। आज हम सबको इस क्रान्ति को आगे बढाना होगा।

अत जहाँ हमको एक प्रचड जनक्रान्ति द्वारा मौजूदा राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे मे आमूल परिवर्तन करना है वहाँ उस बदले हुए ढाचे को चलाने के लिए नये मानव का भी निर्माण करना होगा। जनक्रान्ति के गगा अवतरण के साथ-साथ उसे धारण करने के लिए अगर नव मानवरूपी शिव की प्रतिष्ठा नही होती है तो क्रान्ति का अवतरण तो होगा लेकिन प्रतिक्रान्ति के पाश मे उसका तिरोधान हो जायगा। गाधीजी की सूक्ष्म दृष्टि ने इस तथ्य को समझ लिया था। यही कारण है कि उन्होने क्रान्ति के साथ साथ नयी तालीम का सदेश सुनाया।

अत स्पष्ट है कि नयी तालीम कोई स्वतन्त्र कार्यक्रम नही है और न वह केवल शिक्षण-कला है। वह तो नयी क्रान्ति का वाहन है। देव वाहन अपने देवता की पीठ पर रखकर ही समाज के आदर के साथ आगे बढ सकता है। शिव के वाहन के रूप मे नदी का पूजा मिल जाती है लेकिन वही नदी शिव के बिना साँड के रूप मे लोगो के खेतो मे भटकता रहता है और जनता द्वारा उसे

निरतर दुत्कार मिलना है। वही उल्लू, जो हय माना जाता है लक्ष्मी के वाहन के रूप म देवमदिर म स्थान प्राप्त करके पूजा लेता है। अत आज अगर समाज म नयी तालीम का आदर क्षीण हो रहा है तो इसका स्पष्ट कारण यही है कि वह देवता का पीठ पर लिये बिना ही चलने की चेष्टा म है।

अतएव अगर वास्तव म नयी तालीम की सवा करनी है तो हम एक बार गहराइ से आत्म निरीक्षण करना है कि हम कहाँ हैं? *क्या हमारी नयी तालीम* आज के युग शान्ति के वाहन के रूप म चल रही है? क्या हमारे कायक्रम के सहज नतीज म शान्ति प्रज्वलित हो रही है? इन प्रश्नो पर गौर करना होगा।

शान्तिहीन तथा वास्तविकता के विपरीत होने के कारण बुनियादी तालीम की सरकारी चेष्टा निष्फल हो रही है। अगर हम जो गैर-सरकारी तौर पर काम कर रह हैं, वह काम भी जनता को आकृष्ट नही कर पा रहा है, इसका भी यही कारण है कि इस हम यथवत् स्वतन्त्र कायक्रम के रूप म चलाना चाहते हैं। हम शान्ति देवी का पीठ पर लेकर चल नही रह है। हम गभीरता पूवक इस बात का विचार नही करते हैं कि नयी तालीम के जरिय हमे शोषण हीन अर्थात श्रेणीहीन समाज की स्थापना करनी है। यदि समाज म कुछ लोग उपदेश देकर खायें कुछ व्यवस्था चलाकर गुजारा करें कुछ लोग कच्चा माल वितरण करते रह और कुछ के जिम्म शरीरश्रम के द्वारा उत्पादन करना मात्र ही रह, तो क्या समाज श्रेणीहीन हो जायेगा?•

बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्त

स्व० ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम

गांधीजी ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा की संपूर्ण योजना की मुख्य बात 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' नामक पुस्तक की भूमिका में स्वयं बतला दी है। वे कहते हैं 'बुनियादी शिक्षा का अधिक यथार्थ, परन्तु बहुत कम आकर्षक, वर्णन होगा—देहाती दस्तकारी के जरिये देहाती राष्ट्रीय शिक्षा। देहाती शिक्षा में नाममात्र की ऊँची या अंग्रेजी शिक्षा का समावेश नहीं होता। राष्ट्रीय का मतलब अभी सत्य और अहिंसा है और देहाती दस्तकारी के जरिये का अर्थ यह है कि योजना तैयार करनेवाले लोग शिक्षकों से आशा करते हैं कि वे अपने गाँव के देहाती बालकों को इस ढंग से तालीम दें कि जिससे उनकी तमाम छिपी हुई शक्तियों का विकास, किसी बाहरी दबाव या दस्तन्दाजी से अछूते वातावरण में किसी चुनी हुई देहाती दस्तकारी के द्वारा हो सके। इस तरह से विचार करने पर यह योजना तालीम के क्षेत्र में क्रान्तिकारी साबित होगी। वह किसी भी अर्थ में पश्चिम से लायी हुई चीज नहीं है।

नगर सम्बन्धी या शहराती की तुलना में देहाती पर जोर दिया गया है। भारतीय राष्ट्र गाँवों में रहता है इसलिए राष्ट्र के बालकों के लिए निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा का रूप देहाती होना जरूरी है। ध्यान देने लायक एक खास बात यह भी है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध बुनियाद में ही गाँवों में है, इसलिए भी हमारी शिक्षा का रूप देहाती होना ही चाहिए।

यहाँ इस बात को समझ लेने की जरूरत है कि बुनियाद में दस्तकारी या उद्योग-प्रधान की तालीम से गांधीजी का मतलब क्या है? इस पद्धति की शिक्षा के लिए आवश्यक है कि जो उद्योग धंधे आज केवल यन्त्रवत् सिखाये जाते हैं, वे वैज्ञानिक ढंग से सिखाये जायँ यानी बच्चों को यह समझाया जाय कि कौनसी क्रिया किसलिए की जाती है। तभी सफलता मिल सकेगी।

वास्तविक शिक्षा की परख

दस्तकारी या उद्योग धंधों के जरिये शिक्षा देना तालीम के इतिहास में कोई नयी बात नहीं है। पेस्टालाजी के समय से शुरू होकर शिक्षा विशारदों ने दुनिया के हरएक हिस्से में बार-बार ऐलान किया है कि वास्तविक और पूरी शिक्षा सिर्फ दस्तकारी के जरिये ही दी जाय और कुछ लोगों ने इस उसूल पर किसी हद तक अमल भी किया है। लेकिन दूसरों से गांधीजी के विचार में

यह अन्तर है कि वे इस शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्त को उसके आखिरी नतीजे तक ले गये हैं। क्योंकि उन्होने सिर्फ यही नही कहा कि बच्चो की सारी शिक्षा किसी उद्योग धधे के जरिये दी जाय, बल्कि यह भी कहा है कि यह शिक्षा स्वावलम्बी भी हो। नयी तालीम के किसी दूसरे पहलू की उतनी नुक्ता चीनी नही हुई है, जितनी उसके स्वावलम्बी कहे जानेवाले पहलू की हुई है। इसलिए यह समझना जरूरी है कि 'स्वावलम्बी' शब्द का क्या अर्थ है और वह हमारी शिक्षा-योजना का मुख्य अग क्यो है।

इस तरह की तालीम के पूरे हिस्से पर गौर किया जाय तो वह स्वावलम्बी जरूर हो सकती है और जरूर होना भी चाहिए, दरअसल उसका स्वावलम्बीपन उसकी वास्तविकता की बडी कसौटी है। उसके स्वावलम्बीपन का तालीमी और नैतिक मूल्य, उसकी अधिक से अधिक आर्थिक पैदावार की अपेक्षा कही ज्यादा महत्वपूर्ण है।

अत मे हम यह देखना होगा कि गाधीजी के मनुष्य जीवन के समूचे तत्त्व-ज्ञान और अहिंसा के साथ इस शिक्षा-योजना का ताल्लुक किस तरह है। स्वावलम्बी शिक्षा की भावना अहिंसा की मनोभूमि से अलग नही की जा सकती जबतक हम यह याद नही रखते कि इस नयी योजना का उद्देश्य एक ऐसा जमाना पैदा करना है जिसमे जातिद्वेष और फिरकाबन्दी का झगडा बिलकुल न रहने पाये और गरीबो और अमीरो का भेद न हो तबतक हम इस योजना को सफल नही बना सकते। गरज यह है कि हम अहिंसा मे विश्वास रखकर इस काम मे लगना चाहिए और यह यकीन रखना चाहिए कि इस योजना की रचना एक ऐसे दिमाग ने की है जो अहिंसा को तमाम बुराइयो की अचूक दवा समझता है।•

नयी तालीम के तीन बुनियादी पहलू

राममूर्ति

जिसे बापू जनता का सच्चा स्वराज्य कहते थे उसकी प्राप्ति की भूमिका म उन्होंने नयी तालीम की कल्पना की थी। उस भूमिका को स्वीकार कर लेने पर नयी तालीम के तीन बुनियादी पहलू स्पष्ट होते है —(क) ज्ञान-प्राप्ति (समवाय), (ख) जीवन पद्धति (स्वावलम्बन), (ग) समाज-परिवर्तन (अहिंसा)। इस भूमिका म नयी तालीम केवल शाला और शिक्षार्थी तक सीमित नही रह जाती। उसम बाल शिक्षण और लोक शिक्षण एक समग्र प्रक्रिया के परस्पर-पूरक पहलू हो जाते है।

तालीम कितनी भी नयी हो, अगर आज की तजी से बदलती हुई जीवन-परिस्थिति म वह नित्य नयी नही है तो वह अपना नयापन कायम नही रख सकती। इसलिए नित्य नयी तालीम को ही नयी तालीम मानना चाहिए।

विज्ञान और लोकतन्त्र के इस युग मे ज्ञान प्राप्ति, जीवन-कला और समाज-परिवर्तन, इनम से किसी भी क्षेत्र म पुरानी पद्धति काम नही देती दिखाई देती क्योकि जीवन की सारी पुरानी भूमिका ही बदल गयी है। विज्ञान ने दो मूल प्रश्न उपस्थित किये हैं—एक यह कि अब सघर्ष किसी क्षेत्र म शुरू होकर उसी क्षेत्र तक सीमित नही रह सकता। वह तुरन्त व्यापक सहार का रूप ले लेगा, इसलिए सघर्ष से किसी ऊँचे मूल्य की सिद्धि नही हो सकती। दूसरा यह कि विज्ञान के कारण ज्ञान का भण्डार इतना बडा हो गया है, और इस तेज गति से रोज बढ़ता जा रहा है कि मनुष्य की पकड से बाहर हो गया है। ऐसे असीम भण्डार से अगर अपने काम की चीज लेनी हो तो ज्ञान प्राप्ति के लिए समवाय (कोरिलेशन) की पद्धति के सिवाय दूसरा चारा नहीं है, नही तो मनुष्य जान-कारी का बोझ भले ही ढो ल, उसका बौद्धिक विकास नही होगा। इसके अलावा विज्ञान के कारण यह भी स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य अबतक विचारो, भावनाओ और सामाजिक सम्बन्धो की जिन परिचित परिधियो मे रहता आया है उनम रहते हुए उसका विकास तो असम्भव है ही, अस्तित्व भी अनिश्चित है।

विज्ञान और लोकतंत्र की चुनौती

विज्ञान और लोकतन्त्र की यह चुनौती है कि विज्ञान की सुविधा और लोक-तन्त्र का समान अवसर, ये दोनो सबको प्राप्त हों। अबतक की जीवन-पद्धति विषमता और विशेषाधिकार की रही है। ऐसी पद्धति का विज्ञान और लोकतन्त्र

से मेल नहीं बैठता। विषमता, विशेषाधिकार या प्रतिद्वन्द्विता में संघर्ष अनिवार्य है, और जब संघर्ष होगा तो संहार हुए बिना रह नहीं सकता। ऐसी स्थिति में ऐसी कोई जीवन-पद्धति विकसित करनी चाहिए जिसमें व्यक्ति अपने पड़ोसी का पूरक बन सके और संघर्ष उसकी जीविका और जीवन, दोनों से बहिष्कृत हो जाये। यह स्थिति स्वावलम्बन और परस्परावलम्बन से ही सधती दिखाई देती है। आज के युग में मनुष्य को साथ रहने की कला के शिक्षण Training to live together की सबसे अधिक आवश्यकता है, ताकि प्रतिद्वन्द्विता और संघर्ष के स्थान पर स्नेह और सहकार की स्थापना हो सके। अभी तक मनुष्य ने समाज की सुरक्षा, तथा उसके संचालन और परिवर्तन, तीनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शस्त्र की शक्ति का उपयोग किया है। लेकिन अगर हम शस्त्र को छोड़ना चाहते हैं तो उसका कोई स्थायी विकल्प सोचना चाहिए।

अगर ऊपर के तत्व मान्य हों तो ये बातें निकलती हैं

(१) हमें एकसाथ नयी तालीम के तीनों पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए, यानी ज्ञान प्राप्ति के लिए समवाय, सहकारी जीवन के लिए स्वावलम्बन, और शान्ति के लिए हृदय परिवर्तन की शैक्षणिक प्रक्रिया इन सबकी एकसाथ खोज करनी चाहिए।

(२) अतः हम शिक्षण को कुछ वर्षों या कुछ वर्गों में नहीं बाँध सकते, बल्कि हमें शिक्षण का गर्भ से मृत्यु तक एक अखंड अभ्यासक्रम बनाना पड़ेगा। इसका यह अर्थ है कि मनुष्य जहाँ, जिस स्थान पर और जिस समुदाय में रहता है वहाँ ही उसकी शाला है, वहाँ रहनेवाले शिशु, बच्चे युवक, बूढ़े पुरुष और स्त्री सब उस शाला के विद्यार्थी हैं और वे अपनी जीविका, सुविधा, आनंद या सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए जो भी काम करते हैं वे सब उनके शिक्षण के माध्यम है। यह क्रम बच्चे के लिए 'अपरेंटिसशिप' (Apprenticeship for life) का हो जाता है। केवल विश्राम के समय में अनिश्चित शिक्षण देने से, जैसा कि डेनमार्क में होता है, इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं होगी, वह होगी जीवन की हर क्रिया में शिक्षण की दृष्टि से और पद्धति लागू करने से। इसलिए खेती, उद्योग आदि द्वारा आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार और शिक्षण ये अलग चीजें नहीं हैं, सब एक ही प्रक्रिया के अंतर्गत हैं और अंग है। यह होगा तो प्रकृति, उत्पादन और समाज अपने आप समन्वित हो जायेंगे और शिक्षार्थी को आज की तरह शिक्षण के लिए जीवन की सामान्य भूमिका से हटकर अलग नहीं होना पड़ेगा। बच्चा जिस भूमिका में पैदा हुआ है उसी में पलेगा, पढ़ेगा, और अपने साथ-साथ अपनी ही दिशा में प्रौढ़ों को भी बढ़ना देखेगा।•

भारत की उच्च शिक्षा का स्वरूप

आर्थर मार्गन

अगर भारत को एक प्रजातन्त्र राष्ट्र के रूप में विकास करना है तो प्राथमिक शालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक ऐसी एक शिक्षा व्यवस्था कायम करनी होगी जो देहात में रहनेवाली बहुसंख्यक जनता की जरूरतों के अनुसार हो। इसके दो कारण हैं। पहला एक शिक्षित और गुन जनता के द्वारा ही सच्चा प्रजातन्त्र कायम हो सकता है। दूसरा जब सारी जनता देश की शासन-व्यवस्था में भाग लेने लगेगी तो स्वाभाविक ही वह सब तरहकी प्रगति के मौकों की ज्यादा ज्यादा मांग करेगी और उसमें शिक्षा की सहूलियतें प्रधान होंगी।

आज भारत को अपनी नीति तय करनी है। क्या उसकी आबादी छोटे ग्राम-समाजों में फैल कर रहेगी? क्या इन गावों को ऐसे समृद्धिशाली और संस्कार-सम्पन्न स्थान बनाना है जिससे इस देश के नवयुवक आकृष्ट होंगे जहां उनकी शक्तियों और सामर्थ्यों के विकास का मौका मिलेगा? या हम केंद्रित उद्योगों को खडा करना चाहते हैं—चाहे वे निजी हों या राज्य के द्वारा सचालित—जहाँ पर कर्मियों को बडी संख्या में जमा होकर रहना पडेगा? करीब सभी चिन्तनशील लोग पहला रास्ता पसन्द करते है, लेकिन सरकार की और उद्योगपतियों की नीति हमें दूसरी ओर ले जा रही है। विश्वविद्यालय भी यही कर रहे हैं। उनकी आँखें शहरों की तरफ है गावों की तरफ नहीं और उनका काम ऐसा है कि उनमें से निकलनेवाले सभी विद्यार्थी गाँवों से मुह मोड लेते हैं।

ग्रामीण विश्वविद्यालय कैसे हो?

ग्रामीण विश्वविद्यालयों का स्वरूप यह हो सकता है कि कुछ कालेजों का एक समूह हो और उनके केन्द्रस्थान पर विशेष अध्ययन और अनुसन्धानों के लिए उपयुक्त इमारतें और उपकरण इत्यादि हो। इन कालेजों में विद्यार्थियों की संख्या मर्यादित रखना अच्छा होगा। तीन सौ की संख्या शायद ठीक होगी।

विश्वविद्यालय का विद्यार्थी जो यन्त्रविद्या का विषय लेता है यन्त्रों मे सुधार नए यन्त्रों को बनाना और उसकी सारी प्रक्रियाएँ सीखेगा। छोटे छोटे उद्योग माल खरीदने बेचने में अनुसन्धान के काम में आर्थिक व्यवस्था में और संचालन के काम में एक दूसरे का सहयोग कैसे कर सकते है और ऐसे सहयोग से उनको क्या लाभ होगा इसका वह अध्ययन करेगा। खेती का विद्यार्थी उत्पादन वितरण, माल का आयात व निर्यात सहकारी खेती इत्यादि विषयों का विशेष अध्ययन करेगा। खेती पर आधारित ग्रामनिवासों की योजना और पुन

निर्माण का विषय वह सीखेगा। ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित और भी कई बातें उसके अध्ययन के विषय होंगे।

अगर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की एक टोली देहातों में पानी की व्यवस्था की योजना और काम कर रही हो तो वह जल-सम्बन्धी इंजीनियरिंग सीखेगी। ऐसे कामों में मानवीय सम्बन्धों के जो सवाल उठते हैं उनका भी उन्हें समाधान करना होगा। कर्मियों को इकट्ठा करने का, अधिकृतों की सम्मति पाने का, खर्च का अन्दाजपत्रक बनाने का, साधन-सामग्री खरीदने का और इस तरह के कितने ही काम इनके जिम्मे आयेंगे। उन्हें गहरे कुएँ खोदने होंगे, बाँध बनाने होंगे। ये सब अनुभव व्यावहारिक काम में ही मिलेंगे, केवल औपचारिक शिक्षाक्रम पूरा करने से नहीं।

लेकिन महज काम शिक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है। अगर ऐसा होता तो काम करनेवाला कोई भी आदमी—जिसमें साधारण बुद्धि है—शिक्षित होता। शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी को मानवजाति के संचित ज्ञान और अनुभव का फायदा पहुँचाना है। क्रमबद्ध तात्त्विक शिक्षा से बहुत समय और शक्ति का बचाव होता है। उससे विद्यार्थी सामान्य सिद्धान्तों के बारे में जानकार होता है, जिससे वह ज्यादा अच्छी तरह से सोच सकता है। उसे एक पृष्ठभूमि और विशाल दृष्टि मिलती है।

प्रचलित शिक्षा प्रणाली का एकांगीपन

तात्त्विक अध्ययन करना है या प्रत्यक्ष काम—यह सवाल नहीं, सवाल यह है कि शिक्षा के कार्यक्रम में इन दोनों का समन्वय सबसे अच्छी तरह से कैसे हो। दोनों जरूरी हैं, और सच्ची शिक्षा के लिए दोनों एक-दूसरे के ऊपर निर्भर करते हैं। अकेले एक से शिक्षा नहीं होती। कैंची के दोनों बाजू हों तभी वह काट सकती है। प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में एक ही बाजू है, तात्त्विक शिक्षावाली।

बुनियादी तालीम एक ऐसा शिक्षा-विचार है, जिसका पूरा विकास श्रद्धापूर्ण सतत प्रयत्न से ही हो सकता है। श्रद्धा का मतलब यह नहीं कि पहले तय किये कार्यक्रम में कोई अदल-बदल ही नहीं हो सकता है। इसमें प्रत्यक्ष अनुभव, सोच-विचार और विकास की बहुत जरूरत है। नये अनुसन्धान और शोध, नयी कुशलताओं का विकास, इनमें बहुत शक्ति लगेगी। एक चीज ठीक तरह से करना सीखने से पहले हम कई गलतियाँ कर बैठेंगे। इसलिए परिचित तरीकों को ही पकड़कर रखने की वृत्ति होती है। इस शिक्षा-पद्धति पर आधारित विश्वविद्यालय छोटे पैमाने पर शुरू हो और काम और पद्धतियों के विकास के साथ-साथ वे बढ़ें, यह अच्छा होगा।•

बुनियादी तालीम के सामाजिक मूल्य

वंशीधर श्रीवास्तव

बुनियादी तालीम एक मूक अहिंसक क्रांति का अग्रदूत होगी ऐसी आशा गांधीजी ने व्यक्त की थी। 'तालीम तो एक सामाजिक प्रक्रिया है ही और अगर वह बुनियादी भी हो तो समाज की बुनियाद को भी प्रभावित करेगी, ऐसी आशा करना ठीक ही था। बुनियादी तालीम द्वारा गांधीजी समाज की बुनियाद को ही बदलना चाहते थे। अंग्रेजों ने जो शिक्षा-पद्धति चलायी थी वह केवल नौकरी के लिए थी अत उस शिक्षा को पाकर लोग नौकरी करने के लिए गांवों को छोड़कर नगरों म चले जा रहे थे। इससे भारत के गांवों का विघटन हो रहा था। कहावत हो गयी थी—थोड़ा पढ़ा तो घर से गया और ज्यादा पढ़ा तो गांव से गया। गांव पढ़े लिखे लोगों से खाली हो रहे थे। गांव टूट जायेंगे तो देश की संस्कृति नष्ट हो जायेगी और भारतीय संस्कृति में जो श्रेष्ठ और वरेण्य है वह नष्ट हो जायेगा—ऐसा गांधीजी मानते थे। अत वे एक ऐसी शिक्षा-पद्धति चलाना चाहते थे, जो इस विघटन को रोक दे। इसीलिए उन्होंने बुनियादी तालीम की कल्पना की।

बुनियादी तालीम

तो कैसी होगी यह तालीम ? ऐसी कि जिसे पाकर गांव के लोगों को गांव म रहने की ही इच्छा हो। इसलिए उन्होंने कहा कि इस तालीम के मूल म गांव के धंधे हों, जैसे—खेती बागवानी कताई-बुनाई, बढ़ईगीरी, लोहारी और चमकारी इत्यादि। ऐसा होगा तो लोगों को इन धंधों से प्रेम होगा और वे अपने गांवों म ही रहेंगे। इसीलिए गांधीजी ने कहा कि बुनियादी शिक्षा के मूल म उत्पादक उद्योग रहेंगे, जिनके माध्यम से बालक के व्यक्तित्व का विकास होगा और इस विकास के लिए जिन शास्त्रीय विषयों के पढ़ाने की आवश्यकता होगी उन्हें इन्हीं उद्योगों के इर्दगिर्द पढ़ाया जायगा।

इस प्रकार की शिक्षा होगी तो हाथ और मस्तिष्क का समन्वय होगा, जो आज की शिक्षा म नहीं है और जिसके कारण हाथ से काम करनेवालों और दिमाग से काम करनेवालों के बीच एक खाई-सी पड़ गयी है, जो बढ़ती जा रही है। यह खाई यदि बढ़ती गयी तो, यह एक ऐसे वर्ग-संघर्ष को जन्म देगी जिसकी विभीषिका में देश ही भस्म हो जायगा। अत अगर इसकी जगह बुनियादी तालीम चली तो इससे जहां एक ओर ग्राम-प्रधान भारतीय समाज का विघटन

रुकेगा वहाँ दूसरी ओर हाथ से काम करनेवालों और दिमाग से काम करनेवालों, श्रमजीवियों और बुद्धिजीवियों के बीच की खाई भी पटेगी। ये ही दोनों इस पद्धति की सर्वश्रेष्ठ सामाजिक उपलब्धियाँ होंगी, जिसकी राष्ट्र को सबसे बड़ी आवश्यकता है।

शोषण की प्रवृत्ति कैसे मिटे

इस पद्धति की तीसरी सामाजिक उपलब्धि होगी समाज से शोषण को समाप्त करना। शोषण विहीन समाज ही हिंसा-विहीन समाज हो सकता है और ऐसे ही समाज में प्रत्येक मनुष्य के लिए न्याय और समान सुख-सुविधा के उपभोग की कल्पना साकार हो सकती है। इसीलिए पूना के दूसरे बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन में यह कहा गया कि बुनियादी तालीम सभी प्राणियों के लिए न्याय और समान अधिकारों की घोषणा करके विश्व में शान्ति स्थापित करने का सबसे बड़ा साधन होगी। शिक्षा की प्रक्रिया अहिंसक प्रक्रिया है इसलिए विनोबा बार-बार बुनियादी तालीम को अहिंसक सामाजिक शान्ति का वाहन कहते हैं। हिंसा के मूल में शोषण है। अतः हिंसा को दूर करके शोषण की प्रवृत्ति को ही मिटाना होगा। शोषण की प्रवृत्ति तब मिटेगी जब मनुष्य में स्वयं अपने हाथ से काम करके जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन करने की क्षमता का विकास होगा। जीवन के लिए जो आवश्यक है जब हम उसे स्वयं नहीं पैदा कर सकते अथवा खुद उसका निर्माण नहीं कर सकते तब बाहुबल से अथवा बुद्धिबल से उसे दूसरों से लेने की चेष्टा करते हैं। यही चेष्टा शोषण है। अतः हिंसा को समाप्त करने के लिए शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त करना होगा। जब प्रत्येक मनुष्य में यह क्षमता उत्पन्न हो जायेगी कि जीवन के लिए उसे जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है उन्हें वह स्वयं पैदा कर ले तो उसमें दूसरों के शोषण की प्रवृत्ति रुकेगी। इसीलिए गांधीजी ने एक ऐसी शिक्षा-पद्धति का प्रवर्तन किया, जिसमें प्रत्येक बालक प्रारम्भ से ही उत्पादक उद्योगों को करने का अभ्यास करे। सात-आठ वर्ष तक निरन्तर अभ्यास करने से जब *उसमें समाजोपयोगी उत्पादक-उद्योगों* को करने की क्षमता आयेगी तो दूसरों के उत्पादन पर फलने फूलने की प्रवृत्ति मिटेगी और इस प्रकार एक शोषणविहीन समाज की नींव पड़ेगी—ऐसा समाज जिसकी नींव न्याय, समता और प्रेम पर रहेगी। इस प्रकार का अहिंसक शोषणविहीन समाज बुनियादी तालीम की तीसरी सामाजिक उपलब्धि होगी।

बुनियादी तालीम चलेगी तो एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण होगा, जिसमें शोषण की प्रवृत्ति नहीं रहेगी। निष्ठापूर्वक जीवन पहले सात आठ वर्षों तक

उत्पादक उद्योगों का अभ्यास करते करते छात्र में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति का विकास हो जायेगा। यही प्रवृत्ति शोषण की प्रवृत्ति को रोकती है। इसीलिए गांधीजी ने स्वावलम्बन को बुनियादी तालीम की तेजाबी जांच कहा था। बुनियादी तालीम का अर्थ है समाजोपयोगी उत्पादक उद्योगों का निरन्तर सात आठ दस वर्षों तक निष्ठापूर्वक वैज्ञानिक ढंग से अभ्यास। इससे शोषण की प्रवृत्ति का उन्मूलन और स्वावलम्बन की प्रवृत्ति का विकास होगा। इसके परिणाम स्वरूप शोषण हीन नये समाज की स्थापना होगी और अन्ततोगत्वा इससे विश्व शान्ति और विश्व प्रेम का प्रादुर्भाव होगा यही बुनियादी शिक्षा की सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि होगी।

विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया का वाहन

बुनियादी तालीम का एक और सामाजिक मूल्य है—समाज में विकेन्द्रित सत्ता की स्थापना। बुनियादी तालीम की परिभाषा के सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा था—लोग नयी तालीम की कुछ भी परिभाषा दें मैं तो उसे ग्रामोद्योग मूलक शिक्षा पद्धति कहूंगा। ग्रामोद्योग बुनियादी तालीम के मूल में हैं—इसे भूलना नहीं चाहिए।

ग्रामोद्योग यानी पिछड़ी हुई अवैज्ञानिक पद्धति से चलनेवाले उद्योग नहीं ग्रामोद्योग यानी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वैज्ञानिक पद्धति से चलनेवाले और वे शक्ति चालित (पावर ड्रिवेन) भी हो सकते हैं। ऐसा होगा तो पूंजी का यानी अर्थ का विकेन्द्रीकरण होगा और अर्थ का विकेन्द्रीकरण होगा तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी होगा। यही विकेन्द्रीकरण बुनियादी तालीम की चौथी सामाजिक उपलब्धि होगी।

स्वतन्त्र भारत में केन्द्रित उद्योगों की जो चलन बढ़ी उसका ही एक परिणाम हुआ कि बुनियादी तालीम की अवहेलना हुई। इन दोनों का साथ नहीं निभ सकता। यह चीज अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अगर आज की केन्द्रित औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना है तो बुनियादी तालीम नहीं चलेगी। आज का भारत केन्द्रीकरण की ओर जा रहा है—वह ग्रामोद्योग का छोड़कर भारी केन्द्रित उद्योगों की ओर जा रहा है। आधुनिक टक्नोलाजी के प्रयोग द्वारा भौतिक प्रगति की दुहाई देता हुआ भारत अपने साढ़े पांच लाख गांवों को भूल गया है। इसी कारण स्वराज्य के २० वर्ष बाद भी देश की गरीबी और विषमता में कोई कमी नहीं आयी है और आज भी हम मुट्ठी भर अन्न के लिए दूसरे देशों के सामने झोली फैलाये खड़े है।

वास्तविकता यह है कि केन्द्रित उद्योगों के द्वारा हम भारत की जन शक्ति का उपयोग नहीं कर सकते। कोई भी योजना जो भारत के गाँवों म बिखरी हुई जन-शक्ति की अवहेलना करेगी, जनहित म नहीं होगी इसीलिए भारत की जन शक्ति के उपयोग के लिए गाधीजी ने विकेन्द्रीकरण की वकालत की थी और इस विकेन्द्रीकरण क प्रचार के लिए, और उसे शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व के सस्कार के मूल म रखने के लिए बुनियादी शिक्षा का प्रचलन किया था। बुनियादी शिक्षा चलेगी तो हम विकेन्द्रित समाज बना सकेंगे—सत्ता विकेन्द्रित, प्रभुता विकेन्द्रित शासन विकेन्द्रित। यही होगी बुनियादी शिक्षा की अन्तिम सामाजिक उपलब्धि।

बुनियादी शिक्षा की एक और उपलब्धि है—समाजसेवी व्यक्तित्व का निर्माण। समाजसेवा और सामुदायिक काय बुनियादी शिक्षा के अभिन्न अग हैं। इन कायक्रमो मे भाग लेते हुये विद्यार्थी दूसरों की सेवा करना और समुदाय के साथ अपने स्वार्थों को एक करके देखना सीखता है। समाजवाद को अगर सफल होना है तो व्यक्ति को समाज के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग करना सीखना होगा। व्यक्ति और समाज का सघष मिटे और सामाजिक व्यक्तित्व का निमाण हो यह समाजवादी राष्ट्र की सबसे बडी आवश्यकता है और यही बुनियादी शिक्षा की सबसे बडी उपलब्धि है।•

बुनियादी तालीमकी बुनियादी समस्या

मार्जरी साइक्स

दुनिया के सभी भागो मे बार-बार यह तथ्य प्रदर्शित हो चुका है कि किसी समुदाय (ग्रुप) की शिक्षा-प्रणाली उस समुदाय की संस्कृति का ही एक अभिन्न और अविछिन्न अंग होती है, जो उस समुदाय के सामाजिक दृष्टिकोण और सामाजिक मूल्यो से अपना स्वरूप पाती है। अत समाज के प्रचलित दृष्टिकोण और मूल्यो मे कोई दूरगामी परिवर्तन आये बिना उसकी विद्यालयीन शिक्षा-प्रणाली मे कोई मूलगामी परिवर्तन आने की सम्भावना नहीं होती।

शिक्षा के क्षेत्र मे नयी तालीम एक क्रान्तिकारी समाज-परिवर्तन की घोषणा है। गाधीजी ने इसे एक प्रशान्त सामाजिक क्रान्ति की बर्छी कहा था। लेकिन बर्छी मे नोक की आवश्यकता होती है। जबतक नयी तालीम विद्यालय के पीछे किसी क्रान्तिकारी सामाजिक समुदाय का बल न हो तबतक उसे अपने को खडा रखने का कोई मजबूत आधार नही मिलता।

बुनियादी प्रवृत्तियो की शिक्षा

बुनियादी शिक्षा के नाम पर आज देश मे जिन शैक्षिक रीति-नीतियो का प्रतिपादन किया जा रहा है वे वस्तुत अच्छी प्रणाली और शिक्षण विधि से सम्बन्ध रखती हैं और किसी भी अच्छे कहे जानेवाले विद्यालय के लिए अनिवार्य हैं। काम करने की क्षमता और कारीगरी की योग्यता का विकास, बागवानी तथा अन्य बाहरी काम समवाद-पद्धति, सामुदायिकता एव सहकारिता का विकास, आत्मनिर्भरता, सेवा की भावना और मनपसन्द चीजो को इकट्ठा करने का शौक (हॉबीज) आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हे स्पष्ट शब्दो मे "बुनियादी" कहा जा सकता है। ये प्रवृत्तियाँ समाज के अच्छे कहे जानेवाले मामूली स्कूलो मे अपनायी जाती रही है और अपनायी जाती हैं।

अच्छी शिक्षा के ये आवश्यक गुण भारतीय विद्यालयो मे और अधिक व्यापक रूप मे फैलने चाहिए। भारत की प्रचलित शिक्षा-पद्धति मे इन सुधारो को दाखिल करने की बडी सख्त जरूरत है। ये ऐसे सुधार हैं जो आज के प्रचलित समाज मे भी लागू किये जा सकते है, और होने चाहिए। इन सुधारो का प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण मे समावेश होना चाहिए। इन सुधारो को कार्यान्वित करने में हमसे जो कुछ हो सके सहायता देनी चाहिए। लेकिन इसके साथ-साथ हमारे सामने यह स्पष्ट रहना चाहिए कि

यह सुधार का काम है, क्रान्ति का नहीं। यह अच्छी शिक्षा की पद्धति तो होगी, लेकिन नयी तालीम नहीं।

शैक्षिक नीतियों का पुनर्नवीनीकरण आवश्यक

आजादी के बाद से भारत की शैक्षिक नीति का रुख प्रत्येक स्तर पर एक-रूपता (यूनिफार्मिटी) लाने और केन्द्रीकरण को बढ़ाने की ओर रहा है। पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें और परीक्षाएँ, सबमें इस रुख की झलक दिखाई देती है। प्रधानाध्यापक और शिक्षक नियमों और कानूनों में बंध जा रहे हैं। स्वयं-प्रेरणा से कार्य करने, प्रयोग करने, और छात्रों की रुचि और अनुभव के अनु-बन्ध में ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को सुलभ बनाने की सृजनशील समस्या को हल करने की कतई सम्भावना नहीं रह गयी है।

भारत को आज ऐसे स्वतन्त्र-बुद्धिवाले नागरिकों की सबसे बड़ी आवश्यकता है, जो स्वयं सोच विचार करके अपना कार्य सम्पन्न कर सकें। हमारे विद्यालय ऐसे नागरिक कैसे तैयार करेंगे, जब कि उसके अध्यापक एक जकड़-बन्द पद्धति के गुलाम बने हुए हैं, जिन्हें अपने क्षेत्र में मुक्त कार्य करने की न तो स्वतन्त्रता है, न उत्तरदायित्व?

मैं मानती हूँ कि इस शैक्षिक नीति में उलट-फेर होना ही चाहिए और सरकार को जानबूझकर शिक्षा में विविधता और पहल लेने की वृत्ति को प्रोत्सा-हित करना चाहिए। शिक्षा के पेशे में जो लोग लगे हैं उनकी प्रतिष्ठा बढ़ानी होगी और यह उद्देश्य तभी पूरा होगा जब शिक्षक को उत्तरदायित्व और स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना काम करने का अधिकार मिलेगा। ऐसा अधिकार मिलने पर ही सही किस्म के लोग इस पेशे में आयेंगे। सिर्फ आर्थिक सुविधाएँ ऐसे लोगों को नहीं आकर्षित करेंगी।

इस प्रकार के नीति-परिवर्तन के निम्नलिखित नतीजे होंगे—(१) सभी प्रकार के निर्धारित पाठ्यक्रमों और पाठ्य-पुस्तकों की समाप्ति करके स्थानीय शिक्षण-संस्थाओं और विद्यालय के अध्यापकों पर शिक्षण की पूरी जिम्मेदारी डालना।

(२) परीक्षा पद्धति में अत्यन्त दूरगामी सुधार करना, जिसके अनुसार अमुक कक्षा की "अन्तिम परीक्षा" तथा अमुक कोर्स की परीक्षा के बदले प्रवेश और योग्यता की एक *नयी परीक्षा प्रणाली शुरू करानी होगी,* जो ऊँची शिक्षा देनेवाली प्रत्येक शिक्षण-संस्था अपनी विशेषता के अनुसार चलायेगी। ऊँची शिक्षा की प्रवेश-परीक्षा में शरीक होने की सुविधा हरेक व्यक्ति को प्राप्त रहेगी। यदि वह

उसके योग्य रहा तो उसे आगे अध्ययन करने का सुअवसर मिलेगा, चाहे उसने जहाँ भी और जैसे भी शिक्षा पायी हो।

भारत के शैक्षिक प्रशासकों में से अधिकांश को ये सुझाव घनघोर क्रान्तिकारी और अराजकतावादी दीख पड़ेंगे। लेकिन बात ऐसी है नहीं। इस सम्बन्ध में जिन सुझावों की चर्चा की गयी है वे उन कई देशों में सफलतापूर्वक अमल में लाये जा रहे हैं, जिनके शैक्षिक स्तर के हम गहरे प्रशंसक हैं।

नयी तालीम का स्थान

मैंने ऊपर शैक्षिक नीति के जिस रद्दोबदल की रूपरेखा दी है, उसके अन्तर्गत विद्यालय समुदाय को सर्वोदय के क्रान्तिकारी सामाजिक मूल्यों के अनुसार अपना शैक्षिक ढाँचा बनाने का वास्तविक सुअवसर प्राप्त होगा।

योग्यता के बनावटी प्रमाण-पत्रों और एकरूपता को दर्शानेवाली पद्धतियों के प्रभाव से मुक्त हो जाने पर विद्यालय को अपनी क्षेत्रीय परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार शिक्षण देने की पूरी स्वतन्त्रता मिल जायेगी। उससे निकले हुए जो विद्यार्थी शिक्षण, डाक्टरी या इंजीनियरिंग की ऊँची शिक्षा पाना चाहेंगे वे अपनी निजी योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश पाने के लिए सक्षम होंगे। उच्च शिक्षा की संस्थाएँ प्रवेशार्थियों का चुनाव निजी योग्यता के आधार पर ही करेंगी। इसलिए वे किसीको भी स्वीकार या अस्वीकार कर सकेंगी। इस प्रकार के परस्पर-सम्बद्ध (इन्टीग्रेटेड) तरीकों के अपनाने से भारत की शिक्षा-सम्बन्धी उलझनों और नयी तालीम की विशेष समस्याओं को हल करने का स्थायी और वास्तविक समाधान प्राप्त होगा और इसके परिणामस्वरूप हमारी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में जो विषैला प्रभाव घुस गया है वह दूर हो सकेगा।

आजादी के प्रति बढ़ता हुआ भय इस ओर बढ़ने के रास्ते की सबसे बड़ी बाधा है।•

बुनियादी शिक्षा के बाद की तालीम

राधाकृष्ण

सेवाग्राम आनन्द निकेतन से और बिहार की बुनियादी शालाओं से जब विद्यार्थियों की पहली टोलियाँ आठ साल का बुनियादी शिक्षाक्रम पूरा करके निकलीं तब हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के सामने स्वाभाविक ही यह सवाल उठा था कि इनकी आगे की तालीम का स्वरूप क्या हो। आगे का काम *अज्ञात समुद्र में यात्रा करने के जैसा था।* बुनियादी तालीम में उद्योग, सामाजिक जीवन तथा प्राकृतिक वातावरण को माध्यम बनाकर शिक्षाक्रम तैयार किया गया था, उत्तर बुनियादी तालीम में भी ये ही माध्यम केवल उपयुक्त ही नहीं आवश्यक भी प्रतीत हुए।

आम तौर पर ७०-८० प्रतिशत लड़के माध्यमिक शिक्षा से ही अपना *विद्यार्थी-जीवन समाप्त करते हैं। इसके बाद ज्यादातर अपने जीवन के काम में* लग जाते हैं। कुछ थोड़े-से अपने काम में ही उच्च शिक्षा पाते हैं और एक बहुत छोटी संख्या विश्वविद्यालयों में प्रवेश करके उच्च प्राविधिक तथा अन्य शिक्षा ग्रहण करती है। इस वस्तुस्थिति को ख्याल में रखकर माध्यमिक शिक्षा की योजना ऐसी बनानी चाहिए कि जिससे ज्यादातर विद्यार्थियों की औपचारिक शिक्षा की परिसमाप्ति नहीं हो सके, कुछ के लिए वह उच्च शिक्षा की तैयारी के रूप में हो और सबके लिए ऐसा स्थान हो जहाँ वह अपने परिवार, धंधे और समाज के साथ सामंजस्य साध सके और उसमें अपना पूरा-पूरा हिस्सा बँटा सके।

बुनियादी शिक्षा की आधार-शिला

गांधीजी ने कहा था, उच्च शिक्षा का संयोजन करते हुए हम नयी तालीम के उद्देश्यों को पूरा तभी कर सकेंगे जब कि उसे एक सहयोगी स्वावलम्बी समाज के आधार पर गढ़ने की कोशिश करेंगे। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए इस शैक्षणिक परिवार में बालकों और शिक्षकों की संख्या कम से कम एक सौ होगी। जब इस प्रकार के सहयोगी स्वावलम्बी समाज में एकसाथ काम करेंगे, तभी जीवन के सभी पहलुओं की समुचित शिक्षा सम्भव होगी और तभी समाज की आवश्यकताएँ भी पूरी होंगी।

तालीमी संघ ने उत्तर बुनियादी शाला को इसी प्रकार के सहकारी समाज के रूप में कल्पित किया था। उसमें जीवन में काम आनेवाले उद्योगों और

धन्धो का उचित स्थान था। शिक्षक और विद्यार्थी एकसाथ रहते थे और उनके दैनिक कार्यक्रम का सगठन ऐसा था कि जिससे लडके-लडकियाँ सामाजिक कामो को जिम्मेवारी के साथ उठाना सीखें। समाज के सास्कृतिक जीवन के द्वारा उनके सास्कृतिक और मनोरजन के पहलुओं का विकास हो, उसका उन्हे मौका मिलता था। इस समाज का आर्थिक ढाँचा पैसो पर केन्द्रित नही था। उसका आधार अपनी सभी आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन के कार्यक्रम पर था। उसमे विद्यार्थियो का समग्र और सतुलित विकास होता था। यह समाज आसपास की जनता के जीवन की समस्याओ के समाधान के लिए उनके साथ मिलकर काम करता था और विशेष सेवाओं के द्वारा अपने पडोसी समाज के साथ गहरा सम्बन्ध स्थापित कर सका था। सहशिक्षा और विद्यार्थियो के लिए छात्रावास जीवन था और यह सहकारी समाज अपने परिश्रम के द्वारा अपने पूरे आवर्तक व्यय का भार स्वय उठाता था। इसके बगैर हम किशोर अवस्था के सब लडके-लडकियो की शिक्षा की अपेक्षा नही कर सकते थे। वह माता पिता या राज्य के ऊपर बोझ नही था, बल्कि राष्ट्र के अन्न, वस्त्र, स्वास्थ्य और सस्कृति तथा शिक्षा की मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक होता था।

सहयोगी, स्वावलम्बी समाज विद्यालय

उत्तर बुनियादी क्रियाशील, सुप्रसन्न लडके-लडकियो और शिक्षको का एक समुदाय था। हर दिन कुछ समय के लिए वे सब खेत मे होते थे—वैज्ञानिक खेती मे प्रयोगो मे तल्लीन। इसमे उन्हे मात्र उत्पादन का लाभ नही होता था। प्रकृति के साथ तन्मयता, सूर्योदय का उज्ज्वल दृश्य, पौधो का निरीक्षण और अध्ययन, मवेशियों की देखभाल और उनके साथ प्रेम-सम्बन्ध, बछडों की परिचर्या, ये सब जीवन को समृद्ध और सुन्दर बनाते थे। एक विद्यार्थी दूध की वैज्ञानिक जाँच कर रहा है तो और एक बीमार गाय की सेवा मे लगा है। कुछ लोग सारे कूडे-कचरे और गोबर को अति मूल्यवान खाद के रूप मे परिणत कर रहे हैं। और कोई कर्मशाला मे काम कर रहे हैं, नये-नये औजार बना रहे हैं, ज्यादा अच्छे साधनो की शोध कर रहे है। यह कर्मशाला एक बिलकुल जरूरी स्थान है। नयी पाढी को यत्रो का ज्ञान और उनके ठीक इस्तेमाल की कला हासिल होनी है। ग्रामोद्योग विभाग एक बृहत्तर समाज की आवश्यकताओ के सामान बना रहा है। स्थानीय साधनो का उपयोग करके यहाँ विद्यार्थी उद्योगो मे प्रवीणता पा रहे है और उनके उत्पादन का उपभोग ज्यादातर उसी क्षेत्र मे हो रहा है। अच्छी से-अच्छी खादी बुनी जा रही है।

केवल सफेद खादी नहीं, रगाई छपाई आदि सब काम होते हैं और सुन्दर सुरुचिपूर्ण वस्त्र तैयार होता है। सामूहिक रसोईघर अन्नशास्त्र की प्रयोगशाला है, वहाँ वैज्ञानिक ढग से स्वादिष्ट और सतुलित भोजन तैयार किया जाता है। पाकशास्त्र म नयी खोजें होती है। इधर लडके-लडकियाँ विज्ञान की प्रयोगशाला म तन्मयता के साथ अनेक ऐसे प्रयोगो मे लगे हैं, जो उनके जीवन मे आनेवाली अनेक बातो के वैज्ञानिक रहस्यो और सिद्धान्तो का ज्ञान उन्हे देंगे। भौतिक, रासायनिक, वनस्पति शास्त्र आदि के प्रत्यक्ष प्रयोग करने का इन्हे मौका मिल रहा है। इस समाज के लडके-लडकियो और शिक्षको को अपने कलात्मक आत्म प्रकटन का मौका कलाभवन की प्रवृत्तियो के द्वारा मिलता है। चित्रकला, मूर्तिकला, उत्सव-त्योहारो का सयोजन और सजावट का काम कुम्हार काम, वस्तुकला आदि क अनुभव विद्यार्थी अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार पाते हैं। पुस्तकालय के द्वारा उन्ह स्वाध्याय में और साहित्यिक अनुभवो को पाने म पूरी पूरी मदद मिलती है। शिक्षक उनके अध्ययन की योजना बनाने मे मदद करते हैं।

हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की एक उप-समिति ने उत्तर बुनियादी शिक्षा के ध्येयो का नीचे लिखा विवरण दिया था—

•बुनियादी शिक्षा की तरह उत्तर बुनियादी शिक्षा भी एक उद्योग के माध्यम व जरिये होनी चाहिए।

•यह शिक्षाक्रम अपने म एक समग्र इकाई हो।

•एक व्यक्ति की हैसियत से भी विद्यार्थी का सर्वतोमुखी विकास उत्तर बुनियादी शिक्षा का ध्येय है।

•शिक्षाक्रम म विविधता होनी चाहिए जिसमे कि विद्यार्थियो की विभिन्न वृत्तिया और योग्यताओ के विकास को मौका हो।

•शिक्षा क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से होनी चाहिए।

•शिक्षा की अवधि विषयविशेष के अनुसार कम ज्यादा हो सकती है, सामान्यत तीन से चार साल तक की होगी।

•उत्तर बुनियादी स्तर की शिक्षा का सगठन ऐसा हो जिससे कि शिक्षा की अवधि मे विद्यार्थी अपने परिश्रम से अपनी जरूरत का खर्च निकाल सके।

•हमारा अन्तिम ध्येय यह है कि देश के हर एक लडके-लडकी को उत्तर बुनियादी शिक्षा पूरी करने का मौका मिले।•

गांधीजी के सपनों की शिक्षा

[गाधीजी ने स्वतत्र भारत का एक सपना देखा था—एक ऐसे समाज का सपना जो वग भद और वण भद से मुक्त होगा जिसमे किसी प्रकार का शोषण नहीं होगा और जो अहिंसा की प्रक्रिया पर आधारित होगा। राज नीतिक आजादी उनके लिए काफी नहीं थी और उनके लिए तो अभी सात लाख गांवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना बाकी था। वह कहते थ कि मैं ऐसा भारत चाहता हूँ जिसमे गरीब से-गरीब लोग भी यह महसूस करें कि यह उनका देश है। आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हरएक गांव मे लोगों की हुकूमत हो। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत हो। हरएक गांव को अपने पांव पर खडा होना होगा, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके यहां तक कि वह अपनी रक्षा भी खुद कर सके। (प० नेहरू को लिख गये पत्र से) वह कहते थ— मेरी दृढ मान्यता है कि अगर भारत को सच्ची आजादी हासिल करना है और भारत के जरिये ससार को भी तो आज या पीछे लोगों को यह समझना है कि लोगों को गांवों मे ही रहना है शहरों मे नहीं।

अपने सपने के भारत को मूत रूप देने के लिए गाधीजी ने बुनियादी तालीम की कल्पना की। शिक्षा समाज के निर्माण की विधायक शक्ति है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। बेसिक शिक्षा गाधीजी के सपनों के शोषण विहीन अहिंसक समाज रचना का अग्रदूत है, ऐसा उन्होंने साफ साफ कहा है। कोरी शास्त्रीय साहित्यिक शिक्षा से अहिंसक समाज की रचना नहीं होगी, इसीलिए उन्होंने बुनियादी तालीम मे हाथ के उत्पादक काम के माध्यम से शास्त्रीय शिक्षा देने की बात कही और उद्योग (दस्तकारी) को शिक्षा के केन्द्रबिन्दु मे रखा। इसको व्याख्या करते हुए गाधीजी ने कहा था 'बुनियादी शिक्षा के विषय मे लोग देश मे, विदेश मे–अनेक अच्छी बातें कह रहे हैं— मैं तो उसे दस्तकारी (ग्रामोद्योगों) के माध्यम मे दी जानेवाली एक शिक्षा पद्धति कहूँगा– अन्य देशों के बारे मे कुछ भी सही हो, कम से कम भारत मे तो –जहां अस्सी फीसदी आबादी खती करनेवाली है और दूसरी दस फीसदी उद्योगों मे काम करनेवाली है—शिक्षा को निरी साहित्यिक बना देना तथा लडकों और लडकियों को उत्तर जीवन मे हाथ के काम के लिए अयोग्य बना देना गुनाह है। चूंकि हमारा अधिकाश समय अपनी रोजी कमाने मे लगता है, इसलिए हमारे बच्चों को बचपन से ही इस प्रकार परिश्रम का गौरव

सिखाना चाहिए। हमारे बालकों की पढाई ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिसमे वे मेहनत का तिरस्कार करने लगें। कोई कारण नहीं कि क्यों एक किसान का बेटा किसी स्कूल मे जाने के बाद खेती के मजदूर के रूप मे आजकल की तरह निकम्मा बन जाय। यह अफसोस की बात है कि हमारी पाठशालाओं के लडके शारीरिक श्रम को तिरस्कार की दृष्टि से चाहे न देखते हो, पर नापसन्दगी की नजर से तो जरूर देखते हैं।" पाठकों के लिए आगे गांधीजी के शिक्षण विचार का कुछ और नवनीत प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक]

•मैं भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्त म दृढतापूर्वक मानता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि इस लक्ष्य को पाने का सिर्फ यही एक रास्ता है कि हम बच्चो को कोई उपयोगी उद्योग सिखायें और उसके द्वारा शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियो का विकास सिद्ध करें। एसा किया जाय तो हमारे गाँवों के लगातार बढ रहे नाश की प्रक्रिया रुकेगी और एसी न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की नींव पडेगी, जिसम अमीरों और गरीबो को स्वतन्त्रता के अधिकारों का आश्वासन दिया जा सकेगा।

•मेरी राय म तो इस देश म, जहाँ लाखा आदमी भूखो मरते हैं बुद्धिपूर्वक किया जानेवाला श्रम ही सच्ची प्रायमिक शिक्षा या प्रौढ शिक्षा है। अक्षरज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए, हाथ से काम करने की क्षमता—हस्तकौशल ही तो वह चीज है जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। लिखना-पढना जाने बिना मनुष्य का सम्पूर्ण विकास नही हो सकता ऐसा मानना एक वहम ही है। इसमे शक नही कि अक्षर ज्ञान से जीवन का सौन्दर्य बढ जाता है, लेकिन यह बात गलत है कि उसके बिना मनुष्य का नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास हो ही नही सकता।

•मेरा मत है कि बुद्धि की सच्ची शिक्षा हाथ पैर, आँख, कान, नाक आदि शरीर के अंगों के ठीक अभ्यास और शिक्षण से ही हो सकती है। दूसरे शब्दो मे, इन्द्रियो के बुद्धिपूर्वक उपयोग से बालक की बुद्धि के विकास का उत्तम और शीघ्रतम मार्ग मिलता है। परन्तु जबतक मस्तिष्क और शरीर का विकास साथ साथ न हो और उसी प्रमाण मे आत्मा की जाग्रति न होती रहे, तबतक केवल बुद्धि के एकांगी विकास मे कुछ विशेष लाभ नही होगा। आध्यात्मिक शिक्षा से मेरा आशय हृदय की तालीम से है। इसलिए मस्तिष्क का ठीक और चतुर्मुखी विकास तभी हो सकता है, जब वह बच्चे की शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियो की तालीम के साथ साथ होता हो। ये सब बातें एक और अविभाज्य हैं। इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार यह मान बैठना

बिलकुल गलत होगा कि उनका विकास टुकड़े करके या एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में किया जा सकता है।

•मनुष्य न तो कोरी बुद्धि है न स्थूल शरीर है और न केवल हृदय या आत्मा ही है। संपूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए तीनों के उचित और एकरस मेल की जरूरत होती है और यही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है।

•शिक्षा की मेरी योजना में हाथ अक्षर लिखना सीखने के पहले औजार चलाना सीखेंगे। आँखें जिस तरह दूसरी चीजों की तसवीरों के रूप में देखनी और उन्हें पहचानना सीखती हैं उसी तरह के अक्षरों और शब्दों की तसवीरों की तरह देखकर उन्हें पढ़ना सीखेंगी और कान चीजों के नाम और वाक्यों का आशय पकड़ना सीखेंगे। गरज यह कि सारी तालीम स्वाभाविक होगी। बालकों पर वह लादी नहीं जायगी बल्कि वे उसमें स्वतः दिलचस्पी लेंगे। और इसलिए यह तालीम दुनिया की दूसरी तमाम शिक्षा पद्धतियों से जल्दी फल देनेवाली और सस्ती होगी।

• हाथ का काम इस सारी योजना का केन्द्रबिन्दु होगा। हाथ की तालीम का मतलब यह नहीं होगा कि विद्यार्थी पाठशाला के संग्रहालय में रखने लायक वस्तुएँ या ऐसे खिलौने बनायें जिनका कोई मूल्य नहीं। उन्हें ऐसी वस्तुएँ बनाना चाहिए जो बाजार में बेची जा सकें। कारखानों के प्रारम्भिक काल में जिस तरह बच्चे मार के भय से काम करते थे उस तरह हमारे बच्चे यह काम नहीं करेंगे। वे उसे इसलिए करेंगे कि इससे उन्हें आनन्द मिलता है और उनकी बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है।

• बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के माध्यम से बालकों का शारीरिक बौद्धिक और नैतिक विकास करना है। लेकिन मैं मानता हूँ कि कोई भी पद्धति जो शैक्षणिक दृष्टि से सही हो और जो अच्छी तरह चलायी जाय आर्थिक दृष्टि से भी उपयुक्त सिद्ध होगी। उदाहरण के लिए हम अपने बच्चों को मिट्टी के खिलौने बनाना भी सिखा सकते हैं जो बाद में तोड़कर फेंक दिये जाते हैं। इसमें भी उनकी बुद्धि का विकास तो होगा लेकिन इसमें इस महत्त्वपूर्ण नैतिक सिद्धान्त की उपेक्षा होती है कि मनुष्य के श्रम और साधन-सामग्री का अपव्यय कदापि न होना चाहिए। उनका अनुत्पादक उपयोग भी कभी नहीं करना चाहिए। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग ही होना चाहिए इस सिद्धान्त के पालन का आग्रह नागरिकता के गुण का विकास करनेवाली सर्वोत्तम शिक्षा है साथ ही इससे बुनियादी तालीम स्वावलम्बी भी बनती है।

• हमारे जैसे गरीब देश में हाथ की तालीम जारी करने से दो हेतु सिद्ध

होंगे। उसमे हमारे बालकों की शिक्षा का खर्च निकल आयेगा और वे ऐसा धन्धा सीख लेंगे जिसका अगर वे चाहे तो उत्तर-जीवन मे अपनी जीविका के लिए सहारा ले सकते है। इस पद्धति से हमारे बालक आत्म निर्भर अवश्य हो जायेंगे। राष्ट्र को कोई चीज इतनी कमजोर नही बनायेगी जितनी यह बात कि हम श्रम का तिरस्कार करना सीखें।

• मैं कालेज की शिक्षा मे कायापलट करके उसे राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुकूल बनाऊँगा। राज्य की देख रेख म कारखाने ही इंजिनियरों की तालीम चलायेंगे। इसी तरह दूसरे उद्योगो के नाम लिये जा सकते है।

• डाक्टरी के कालेज प्रामाणिक अस्पतालो के साथ जोड दिये जायगे। चूंकि ये धनवानो मे लोकप्रिय है इसलिए उनसे आशा रखी जाती है कि वे स्वेच्छा से दान देकर डाक्टरी के कालेजों को चलायेंगे। और कृषि कालेज तो अपने नाम को सार्थक करने के लिए स्वावलम्बी होने ही चाहिए। मुझे कुछ कृषि-स्नातकों का दुखद अनुभव है। उनका ज्ञान ऊपरी होता है। उनमे व्यावहारिक अनुभव की कमी होती है। परन्तु यदि वे देश की जरूरतो के अनुसार चलनेवाले और स्वावलम्बी खेतो पर तालीम लें, तो उन्हे अपनी डिग्रियाँ लेने के बाद फिर अपने मालिको के खर्च पर तजुरबा हासिल नही करना पडेगा। राज्य को ऐसे कालेज चलाना बद कर देना चाहिए।

• यह सुझाव अक्सर दिया गया है कि यदि शिक्षा अनिवार्य करनी हो या शिक्षा प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले सब लडके-लडकियो के लिए उसे सुलभ बनाना हो, तो हमारे स्कूल और कालेज पूरे नहीं तो करीब-करीब स्वावलम्बी हो जाने चाहिए। दान, राजकीय सहायता अथवा विद्यार्थियो से ली जानेवाली फीस के द्वारा भी उन्हे स्वावलम्बी बनाया जा सकता है, लेकिन यहाँ वैसा स्वावलम्बन इष्ट नही है। विद्यार्थियो को खुद कुछ ऐसा काम करते रहना चाहिए, जिससे आर्थिक प्राप्ति हो और इस तरह स्कूल तथा कालेज स्वावलम्बी बनें। औद्योगिक तालीम को अनिवार्य बनाकर ही ऐसा किया जा सकता है। विद्यार्थियो को साहित्यिक तालीम के साथ-साथ औद्योगिक तालीम भी मिलनी चाहिए, इस आवश्यकता के सिवा—और आजकल इस बात का महत्त्व अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है—हमारे देश मे तो औद्योगिक तालीम की आवश्यकता शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने के लिए भी है। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हमारे विद्यार्थी श्रम का गौरव अनुभव करना सीखें और हाथ-उद्योग ने ज्ञान को प्रतिष्ठा का चिह्न माना जाने लगे।

• विश्वविद्यालयों को स्वावलम्बी जरूर बनाना चाहिए। राज्य को तो सामान्यत उन्हीं लोगों को शिक्षा देनी चाहिए, जिनकी सेवाओं की उसे आवश्यकता हो। शिक्षा की अन्य सब शाखाओं के लिए उसे निजी प्रयत्न को ही प्रोत्साहन देना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर हालत में बदल दिया जाना चाहिए और प्रान्तीय भाषाओं को उनका उचित स्थान मिलना चाहिए। आज प्रतिदिन पैसे की जो भयंकर बरबादी बढती जा रही है, उसके बजाय तो उच्च शिक्षा के क्षेत्र म कुछ समय के लिए मैं अव्यवस्था को भी अधिक पसन्द करूँगा।• (मेरे सपनो का भारत'* से उद्धृत)

*"मेरे सपनों का भारत'—गांधी शताब्दी सस्करण—सर्व सेवा सघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१ मूल्य : १ रु०

बुनियादी शिक्षा और संसदीय समिति

के० श्रीनिवास आचार्लू

भारत सरकार ने एक ससदीय समिति का गठन करके उसे यह कार्य सौंपा था कि वह शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार करे और सरकार के लिए राष्ट्रीय शिक्षानीति-सम्बन्धी प्रतिवेदन का एक ऐसा प्रारूप तैयार करे जिसम शैक्षिक कायक्रमो की वरीयता का स्पष्ट उल्लेख हो। ससदीय समिति ने शिक्षा आयोग की प्रमुख सस्तुतियो की जांच करते हुए मुख्य सस्तुतियो को तो कबूल किया, लेकिन किन्ही सस्तुतियो मे कुछ सशोधन और परिवर्तन भी किया।

ससदीय समिति ने यह भी जाहिर किया कि राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति द्वारा निम्नलिखित परिणाम सामने आने चाहिए

१—आज का जो सामाजिक ढांचा है उसको तेजी से बदलने की जरूरत है ताकि न्याय समता, स्वतन्त्रता और व्यक्ति के सम्मान पर आधारित एक नया सामाजिक ढांचा बने।

२—राष्ट्र के हर बालक को समान और भरपूर अवसर मिल सके और उसके व्यक्तित्व को पूर्ण विकास करने की सहायता मिल सके।

३—देश की आधारभूत एकता के प्रति नवोदित पीढी को चेतन बना सके।

४—विज्ञान और यान्त्रिकी (टेक्नालोजी) पर जोर देते हुए नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यो को पनपाये।

आज शिक्षा सम्बन्धी सबसे शीघ्र लागू होनेवाले सुधार की आवश्यकता है, जिससे चालू शिक्षा व्यवस्था रूपातरित होकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाये, सामाजिक एकबद्धता बढाये, आर्थिक विकास की गति तेज करे और नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो का सूत्रपात कर सके।

समदीय समिति की सिफारिशें यदि भारत सरकार की प्रस्तावित शिक्षा नीति की सूचक हो तो यह साफ-साफ जाहिर हो जाता है कि बुनियादी शिक्षा की सकल्पना के पीछे चाहे जितनी प्रेरणा ऐतिहासिक परिस्थिति और उस नव समाज की रचना करने की सम्भावनाएं मौजूद हो, जिसका इस शताब्दी के लोग सपना देखते हैं प्रचुर अनुभव भी है, वह समय के लिहाज से मौजूं होते हुए भी असम्मानपूर्वक पृष्ठभूमि म हटा दी गयी है। (मूल अग्रेजी से)

गांधीयुग बीता नहीं, अभी आने को है !

काका कालेलकर

समय समय पर गांधीजी ने व्याख्यान दिये, लेख लिखे, असंख्य व्यक्तियों को हजारों खत लिखे, अनेक संस्थाओं से बातचीत करके सार्वजनिक जीवन के कल्याणकारी सिद्धांत समझाये और जब जब उनकी मदद माँगी गयी उन्होंने सब संस्थाओं के लिए प्रस्तावों के मसौदे की तकदीरी भी तैयार करके दी। इस तरह राष्ट्र के लोगों को और सेवकों को व तैयार करते गये। अपने जमाने के सब सवालों का हल भी राष्ट्र के सामने रखते गये। गांधीजी कर्मवीर थे इस वास्ते उन्होंने जो कुछ कहा अथवा लिखा केवल उस समय के काम की सफलता के लिए था। ऐसा करते उन्होंने अपने जीवन सिद्धांत भी लोगों के सामने रख दिये जिनका सार हम चार शब्दों में दे सकते हैं—सत्य, अहिंसा, संयम और सेवा।

इस तरह के अपने काम के संदर्भ में उन्होंने जो साहित्य दिया उनके अलावा उन्होंने अनेक संस्थाएँ चलायीं, अनेक संस्थाओं का मार्गदर्शन किया, देश के उत्तमोत्तम सेवकों को प्रभावित किया, राष्ट्रीय जीवन में प्राणपूर्ण नव जीवन खड़ा किया और फलस्वरूप अहिंसक प्रतिकार द्वारा भारत को आजाद किया। आज कृतज्ञ राष्ट्र उनको राष्ट्रपिता कहता है और उनकी जन्म शताब्दी बड़े उत्साह के साथ मना रहा है।

गांधीजी के कार्यकाल में ऐसे भी लोग थे जो अंग्रेजों का राज्य कायम करने के पक्ष में थे। ऐसे भी शिक्षक, प्रोफेसर और शिक्षा शास्त्री थे जिनका राष्ट्रीय जागृति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसे भी धर्माभिमानी हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी पारसी लोग थे जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता का विरोध किया और अपना उल्लू सीधा करने के लिए अपने अपने गुट का नेतृत्व किया।

दुर्गुणों के प्रतिनिधियों का नव-पराक्रम

गांधीजी के नैतिक तेज के सामने दुर्गुणों के ये प्रतिनिधि दब गये। उन्होंने देखा कि सिर ऊँचा करने का यह समय नहीं है। ऐसे लोग जानते हैं कि सत्ययुग हमेशा के लिए कायम नहीं रहता। अंगीठी चाहे जितनी गरम हो और उसकी धधकती ज्वालाएँ गर्मी और प्रकाश भी देती हों यथासमय ठंडी होनेवाली है। आज जिन्हें दब कर रहना पड़ा है कल सिर ऊँचा कर सकेंगे, समाज को बहका सकेंगे। जिन दुर्गुणों को अनेक जमाने में पोषण

मिला है वे बीस-तीस वर्ष के सत्ययुग से नष्ट होनेवाले नहीं। जो राष्ट्रीय दोष राष्ट्रीय कमजोरियाँ और राष्ट्रीय अधिकार कलियुग के नाम से पनप रहा था, फिर अपने अधिकार प्रस्थापित करेगा ही।

स्वराज्य मिला। देश के पुराने अनुभवी नेता स्वराज्य चलाने के उत्साह में राष्ट्रीय दोष और राष्ट्रीय कमजोरियाँ भूल गये और औद्योगिक तथा शैक्षणिक प्रगति की योजनाएँ सरकार द्वारा सिद्ध करने की कोशिश में लग गये।

इधर जिन लोगों को स्वराज्य प्राप्ति के लिए बलिदान करना नहीं था और जिन लोगों ने राष्ट्रीय विकास के लिए राष्ट्रीय सदगुणों की उपासना कभी नहीं की थी और जो लोग स्वराज्य प्राप्ति के दिनों में अप्रतिष्ठित थे अब सिर ऊँचा करके कहने लगे हैं—'गांधीजी महात्मा थे, धर्मात्मा थे सही किन्तु उनका जमाना अब खतम हुआ है। गांधीजी का उपवास गांधीजी का सत्याग्रह, गांधीजी के समझौते अब इस जमाने में कोई काम के नहीं हैं। उपवास का और सत्याग्रह का कैसा दुरुपयोग हो रहा है सो तो आप देखते ही है। गांधी भले ही महात्मा हों, उनका मानस दकियानूस था। उनका मार्ग उनके इलाज, आपके हमारे इस जमाने के लिए काम के नहीं हैं। अपने जमाने में उन्होंने अच्छा काम किया। उनके प्रति हम कृतज्ञ रहेंगे। उनके स्मारक बनायेंगे। इतिहास में उनके नाम का जिक्र आदर से करेंगे, किन्तु उनके रास्ते जाने की, उनके सिद्धान्त के अनुसार चलने की बात हम सोच नहीं सकते।' दुख की बात तो यह है कि ऐसे लोगों ने गांधीजी का साहित्य देखा भी नहीं होगा। आजकल राजनैतिक अधिकार हथियाने की होड में मतलबी लोग गांधीजी का नाम लेते हैं, गांधीजी के सिद्धान्त समझाते हैं। उतने पर से लोगों को जो जानकारी मिलती है उसीको प्रमाण मानकर उतावले लोग गांधीजी की कीमत तय करते है और आज के जमाने के *लोकमानस की कसौटी पर गांधीजी को* कसकर जाहिर करते हैं कि आज का जमाना गांधीजी को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

इस तरह सोचनेवाले लोगों की संख्या कम नहीं। वे अपने विचारों का प्रचार सभा में खड़े होकर नहीं करेंगे, लेख नहीं लिखेंगे, किन्तु सभापणों में जगह-जगह यही बात चलायेंगे। गांधी जन्म-शताब्दी के कारण जो गांधी-साहित्य तैयार हो रहा है उसमें इन लोगों के प्रचार को तोड़ने के लिए कुछ भी लिखा नहीं जा रहा है। भले लोग या तो गांधीजी के शब्द इकट्ठा करके जनता के सामने रखते है, अथवा गांधीजी कैसे बड़े थे इनका जिक्र करके गांधी-माहात्म्य लिखते हैं। दोनों का प्रचार अपने ढंग से चलता आ रहा है। सबसे

बडी बात तो यह है कि दोना पक्ष इस बात को स्वीकार करते हैं कि गाधीयुग खतम हुआ है। अब तो उसका श्राद्ध करन का ही बाकी है।

गाधीयुग कब ?

एसे लोगो को मैं कहता हूँ कि गांधीयुग का—सच्चे गाधीयुग का—अभी प्रारम्भ ही नही हुआ है। जिस काल म गाधीजी का जन्म हुआ और अपने जिस युग म गाधीजी न देहावसान तक अपना जीवन-कार्य चलाया वह युग सचमुच गाधीयुग नही था। उसे तो युद्ध युग ही कहना चाहिए। गाधीजी का जन्म युद्ध-युग म हुआ था। उन्होन अपन जीवनकाल मे युद्ध युग चलता हुआ देखा। एव नही दो-तीन युद्ध उन्होन देख। आखिरी दिनो म उन्होन युद्ध की पराकाष्ठा भी देखी और एसे भयानक युद्ध-युग म उन्होने अपने नव युग का बीज बोया। दक्षिण अफ्रीका गाधीजी की प्रयोगभूमि थी। अग्रजी म जिस नर्सरी (पौधाघर) कहते है वैसा वह स्थान था। वहाँ पर सत्याग्रह का बीज तैयार हुआ। उसे लकर गाधीजी जब भारत आय तब तो केवल यूरोप म ही नही सारी दुनिया म युद्ध का दावानल भभक रहा था। गाधीजी जब भारत म सत्याग्रह का बीज बोते थे तब अग्रजी साम्राज्य यूरोप के रावण हिटलर को खतम करने की कोशिश म था।

अब युद्ध-युग के सवश्रेष्ठ राष्ट्र अमरिका एशिया आदि जागतिक युद्ध के लिए आणविक अस्त्र तैयार कर रहे है सही किन्तु उनका युद्धा पर का विश्वास उड गया है। वे जानते है कि अब अगर वे युद्ध म उतरे तो विजय के लिए नही जागतिक सवनाश के लिए ही उन्हे उतरना होगा। इसीलिए सारी दुनिया काप रही है और खोज रही है कि आत्मरक्षा क लिए स्वतत्रता ममता और बधुता की रक्षा के लिए कौनसा उपाय है? हिंसा की भयानक कला मे जो सवस अधिक प्रवीण है उनका विश्वास हिंसा म नही रहा। उन्होंने गाधीजी के अहिंसक युद्ध का एक प्रयोग देखा तो भी उनका विश्वास नही बैठता कि मानवजाति सत्याग्रह के लिए तैयार हो सकती है। उनको यह भी विश्वास नही हो रहा है कि सत्याग्रह के द्वारा स्वतत्रता की, न्याय की और राष्ट्रीयजीवन की रक्षा हो सकेगी। गाधीजी के जाने के बाद गाधीजी ने भारत न बीस वष म न कोई अहिसा की साधना की है न कोई सत्याग्रह का युद्ध लड बताया है। भारत ने निर्वीय गृहकलह का एक नमूना ही दुनिया के सामने इन बीस वर्षो मे पेश किया है। और अब अपने को सयाने समझनेवाले लोग पूछ रहे हैं— जैसे हम है हम समझाकर बताइए गाधीजी का माग हमारे जमाने के लिए कारगर है?

गांधीजी का बोया हुआ बीज उनके दिनों में अपना चमत्कार भले दिखा सका, लेकिन उनके इस भूमि में उसको पोषण नहीं मिला इसलिए गांधीयुग का प्रारंभ होते-होते रुक गया है। छोटे-छोटे राष्ट्र आज भी युद्ध छेड़ने की हिम्मत कर रहे हैं और बता रहे हैं कि युद्ध-युग अप्रतिष्ठित हुआ सही, लेकिन खतम नहीं हुआ है। बड़े राष्ट्र युद्ध की तैयारियाँ भी कर रहे हैं और युद्ध टालने की कोशिशें भी कर रहे हैं। इस परिस्थिति में या तो एक अंतिम जागतिक युद्ध शुरू होगा अथवा गांधी विचार का उदय होकर सत्याग्रह भौतिक स्वरूप पकड़ेगा। अगर ऐसा हुआ तो हम कह सकेंगे कि गांधी युग का सूर्योदय हो रहा है। अगर भारत ने गांधीमार्ग का अनुसरण नहीं किया तो दूसरे किसी राष्ट्र को अथवा जाति को सत्याग्रह का प्रयोग आजमाना पड़ेगा। अगर भारत ने पचास लाख शांति सैनिकों की फौज तैयार की होती और कम-से-कम आंतरिक शांति और सुरक्षा की जिम्मेवारी अपने सिर पर ओढ़ ली होती तो दुनिया भारत पर नजर रख सकती और गांधी युग का प्रारम्भ हुआ होता। हम कुछ करें ही नहीं तो गांधी-युग आप ही उगनेवाला नहीं है।

अब दुनिया की हालत ही ऐसी हुई है कि या तो गांधी युग का उदय होगा या जागतिक युद्ध फूट निकलकर विश्वनाश के प्रयोग की ओर आगे बढ़ेगा। हमें विश्वास है कि विश्व विनाश होने के पहले ही मानव सचेत होगा और गांधी-मार्ग को स्वीकार करके विनाश को टाल सकेगा। गांधीजी भूतकाल के प्रतिनिधि नहीं हैं, भविष्य के प्रतिनिधि हैं।•

सीमान्त गांधी का जीवन-परिचय

पख्तूनों की धरती पर यों तो अनेक ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया है, जिस पर शताब्दियाँ गर्व करती रहेंगी। ऐसे अनगिनत सूरमाओं ने मानवता की इतनी सेवा की है कि जिससे इतिहास के पन्ने सदैव जगमगाते रहेंगे। परन्तु पठानों के इस देश ने एक ऐसा नेता पैदा किया, जिसने पठानों में नये जीवन का संचार किया। लड़ाकू और क्रोधी पठानों को अमन, शान्ति, मोहब्बत और भाई चारे की राह पर डाल दिया। इनके हाथों से बन्दूक फेंकवा दी और निहत्थे हाथों से मुकाबिला करने की हिम्मत पैदा कर दी। इस नये जीवन के जन्मदाता हैं—खान अब्दुल गफ्फार खाँ, जिसे पठानों ने 'बाचाखाँ' कहा, हिन्दुस्तानियों ने सीमान्त गांधी के प्रिय नाम से पुकारा, और समस्त दुनिया इन्हें महापुरुष कहकर पुकारती है।

पिता और माता की सेवा-निष्ठा

सीमान्त गांधी का जन्म उतमानजई (पेशावर) में सन् १८९० में एक मध्यवर्गी परिवार में हुआ था। बाचाखाँ कहते हैं 'मेरे पिता बहराम खाँ गाँव के एक बड़े खान थे। परन्तु उनको इस गौरवशाली उपाधि का कुछ भी गर्व न था। वे अत्यन्त विनम्र स्वभाव, ईश्वरोपासक, पवित्र हृदय और संयमी पुरुष थे। ऐसा ही उदार स्वभाव और कोमल प्रकृति मेरी माता ने भी पायी थी। वे सदा सालन की एक हाडी गली-मुहल्ले के गरीब लोगों के लिए पकाया करती थीं और उन सबमें थोड़ा थोड़ा सालन बाँट दिया करती थीं।"

बाचाखाँ को लोक-सेवा की शिक्षा दीक्षा अपने माता-पिता से ही मिली। बाचाखाँ के हृदय में बचपन से ही सेवा की भावना जाग्रत हो चुकी थी। वे अपने गाँव के गरीब बच्चों से खेलते थे। गरीब बच्चों को अपना दोस्त व मित्र बना लेते थे। अन्त में यह भावना उनके जीवन का एक हिस्सा बन गयी। बचपन और लड़कपन की दुनिया से निकलकर जब उन्होंने यौवन की सीमा पर कदम रखा तो उनका दिल भी बदला और दिमाग भी। आस-पड़ोस और गली-मोहल्ले से निकल उस मैदान में जा पहुँचे, जहाँ भाँति-भाँति के मुकाबिले होते हैं—शक्ति और दुर्बल का मुकाबिला, अमीर और गरीब का मुकाबिला, जाति-पाँति और ऊँच नीच का मुकाबिला और इससे बढ़कर जहाँ न्याय और अन्याय का मुकाबिला होता है। बाचाखाँ इस मैदान में सूरमा की भाँति डट गये। उन्होंने न्याय और सत्य की लड़ाई में अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा दे दिया।

यह वह युग था जब चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। अंग्रेजी साम्राज्य की काली-काली घटाएँ सारे हिंदुस्तान पर मँडरा रही थीं। हिंसा की आग भड़क रही थी और पठानों का देश इस आग में बुरी तरह झुलस रहा था। बाचाखाँ ने इस समय में बड़ी निडरता और उत्साह से कहा था, "पठान कभी किसीका गुलाम नहीं रहा। स्वतंत्र रहना उसका धर्म है। वह गुलामी की जिन्दगी से मौत को पसन्द करता है। इन्हीं दिनों बाचाखाँ ने यह भी कहा था, "पठानों का यह सुन्दर देश अब ज्यादा समय तक जिन्दा नहीं रह सकता। मैं पठानों से कहता हूँ कि वे आगे बढ़ें और आजादी के लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानियाँ दें।
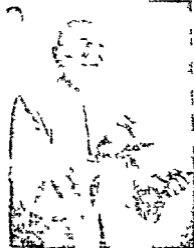
अंग्रेजी शासन खान बाबा के इस ऐलान से भड़क उठा। उसने भाँति भाँति की धमकियाँ देनी शुरू कर दीं। अगर बाचाखाँ लोक-सेवा के लिए एक कदम बढ़ाते तो फिरंगी (अंग्रेजी) दस कदम पहले ही उनकी राहों में पत्थर रख देते।

बाचाखाँ ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत पाठशालाएँ खोलने से शुरू की थी। जब अंग्रेजों ने हिंदुस्तान को अपने अधीन कर लिया तो उनकी पहली कोशिश यह थी कि वे अपनी भाषा को लोगों में फैलायें। वे जानते थे कि इस तरह से अपनी शासन प्रणाली को मजबूत कर देंगे। फिरंगी ने हिन्दुस्तान के साथ इतना एहसान तो किया कि हिंदुस्तानियों की प्रायमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में हो। परन्तु जब अंग्रेज सीमाप्रान्त में आये तो पठानों में इतनी खातिरी भी न बरत सके। पठानों को प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में न दी गयी। जब बाचाखाँ ने उस तरफ ध्यान दिया तो अंग्रेजों के अतिरिक्त मुल्ला मौल्वी भी पश्तो भाषा के विरुद्ध हो गये। पठानों के इस देश में सबसे पहली पाठशाला उतमानजई के गाँव में हाजी तुरंग जई ने

स्थापित की। और जब हाजी साहब अंग्रेजो के विरुद्ध स्वतंत्रता का आन्दोलन छेड़ने के लिए आजाद कबाइले म चले गये तो वाचाखाँ ने पाठशालाओं का काम आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने गाँव उतमानजई मे 'आजाद हाई स्कूल' की बुनियाद रखी। यही वह स्कूल था जहाँ के विद्यार्थियो न स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ चढकर भाग लिया। इस स्कूल को हम देवबन्द पाठशाला से भी जोड सकते है। पाठशालाओ के खुलने स फिरंगी का शासन डोलने लगा। वाचाखाँ को गिरफ्तार कर लिया गया और तीन वर्ष तक के लिए कारावास मे भेज दिया गया।

यह उनकी पहली गिरफ्तारी थी। इसके बाद तो जेल उनका घर ही बनता चला गया। उनका एक पाँव जेल म होता था और दूसरा पाँव बाहर। जल की अंधेरी और गदी कोठरियो के पट इनके लिए खोल दिये गये। वाचाखाँ जब पहली सजा काटकर जेल स बाहर आये तो उन्होन विचार किया कि पठानो का संगठन किया जाय। उनके दिल म प्रेम भाईचारा, प्यार और स्वतंत्रता को भावना उत्पन्न की जाय।

खुदाई खिदमतगार

वाचाखाँ ने सन १९२९ म खुदाई खिदमतगार जमात की बुनियाद रख दी। इस विषय म वाचाखा कहते है सन १९३० म हमने खुदाई खिदमतगार नाम से काय आरम्भ कर दिया। म इस बात को अच्छी तरह जानता था कि आज की दुनिया मे जमात (संघ) के बगैर कोई भी जाति जीवित नही रह सकती। हमारे खुदाई खिदमतगार थोड ही दिनो म गाव-गाँव तक फैल गये। अंग्रेज हमार संगठन से बहुत घबराया और हम लोगो को पकडकर जेल मे डाल दिया। जेलवालो ने हम पर ऐसे ऐसे अत्याचार किये कि कोई जंगली कौम भी ऐसे अत्याचार न कर सकती थी।

हम जिस समय अंग्रेजो की जेल मे थे हमारे दो साथी चोरी छिपे हमसे मिलने जेल तक आये। उन्होंने बताया कि अंग्रेज हम पर बड अत्याचार कर रहा है। हमने मुस्लिम लीग का नाम सुना था। मुसलमानो की जमात थी। इसलिए हमने अपने साथियो को यह राय दी कि मुस्लिम लीग क पास जाओ उससे कहो कि वह पख्तून मुसलमानो की सहायता करे। ये दोनो साथी पूरे हिंदुस्तान मे फिरे लेकिन एक भी मुस्लिम लीग का सदस्य पख्तूनो की सहायता के लिए तैयार न हुआ। यह बात स्पष्ट थी कि मुस्लिम लीग को अंग्रेजो ने हिंदुस्तानियो के साथ लडाने के लिए स्वय तैयार किया था और हमारी लडाई

अंग्रेजो के साथ थी। हमारे ये दोनो साथी दो माह पश्चात् फिर हमारे पास आये और कहा कि मुस्लिम लीग अंग्रेजो का साथ देती है, हमारा साथ देने को तैयार नही है, क्योकि हमारी लडाई तो अंग्रेजो के विरुद्ध है। यह सुनकर हमने कहा कि हिन्दुस्तान मे एक दूसरी जमात कांग्रेस है, आप उसके पास जायें और सहायता मांगें। वे दोनो साथी कांग्रेस के पास गये और फिर वापस लौट आये। उन्होंने बतलाया कि कांग्रेस की यह शर्त है कि अगर आप हमारा साथ दें तो हम सहायता करने को तैयार है; क्योकि आप भी देश की आजादी चाहते है और हम भी आजादी चाहते है। आपका झगडा भी अंग्रेजो से है और हमारी लडाई भी अंग्रेजो से है। इसके बाद हमने पख्तूनो की एक सभा की और यह निश्चय किया कि हम कांग्रेस की जमात के साथ मिल जायें। कांग्रेस ने सारे संसार मे हमारी जमात का प्रचार किया।"

खुदाई खिदमतगार जमात कांग्रेस के साथ मिलने के बाद बडे उत्साह के साथ अपना कार्य करने लगी। उन्होंने सबसे अनोखी बात की कि लडाकू पख्तूनो से बन्दूक छुडा दी। उन्होंने अहिंसा का मार्ग अपना लिया। इससे पूर्व पठान अहिंसा का नाम तक भी नही जानते थे। वे हिंसा के पुजारी थे। फिर भी वे इतने बलवान न थे। वे जेल से डरते थे। सिपाहियो से बात करते हुए भी उनकी सांस फूल जाती थी। उनकी लडाई अपने ही भाइयो के विरुद्ध थी और जब बाचाखां ने गांधीजी से मिलने के पश्चात अहिंसा की शिक्षा दी तो पठानों ने उसे अपना धर्म बना लिया। अहिंसा के मार्ग पर चलते ही वे बलवान हो गये। उन्होंने स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे अहिंसा को ही अपना हथियार बनाया। वे कल भी अहिंसा के पुजारी थे और आज भी अहिंसा उनका परम धर्म है। यह सब गांधीजी की देन है।

गांधीजी ने पठानो पर सबसे बडा एहसान यह किया कि उन्हे हिंसा की गन्दी आदत से हमेशा के लिए छुडा दिया और इसी अहिंसा के मार्ग पर चलकर खान अब्दुल गफ्फार खां ने पठानो का संगठन किया। खिलाफत आन्दोलन, हिजरत आन्दोलन, रौलेट बिल और इसी तरह के दूसरे आन्दोलनो मे बाचाखां ने कांग्रेस के साथ-साथ स्वतन्त्रता की लडाई लडी। वे वर्षों तक अपने प्रदेश से बाहर हिन्दुस्तान की जेलो मे भी रहे। उन्होने १५ वर्ष जेल मे काट दिये। वे अधिक समय तक गांधीजी के चरणो के पास रहे। कभी साबरमती आश्रम मे, कभी वर्धा के सेवाग्राम मे और कभी दिल्ली की भंगी कालोनी मे रहे। वे कल भी गांधीजी के अनुयायियो मे थे और आज भी गांधीजी के सिद्धान्तो के अनुयायी हैं।

गांधीजी के ही दूसरे स्वरूप

बाचाखां जब गाधीजी के पास होते थे तो प्रार्थना-सभा मे भी भाग लेते थे। उन्होने (बाचाखां) गीता का अध्ययन भी किया। वे सब धर्मों को प्रेम-भाव की दृष्टि से देखते है। इनके निकट धर्म एक मानवता का पवित्र मार्ग है। गाधीजी के बाद अगर यह कहा जाय कि खान अब्दुल गफ्फार खाँ ही गाधीजी के दूसरे स्वरूप है तो गलत न होगा। यहाँ तक यह कहा जा सकता है कि दोनो गाधी कद-बुत के लिहाज से भले ही न मिलें, दिल व दिमाग से एक थे। श्री महादेव देसाई कहते हैं कि वर्धा मे १५ दिन तक रहने से इन दोनो भाइयो और गाधीजी और जमनालाल बजाज में परस्पर एकदिल हो गया था। इनमे कोई राजनीतिक बातचीत न होती थी। सब लोग खामोशी से बैठकर भगवान की उपासना करते थे। खान अब्दुल गफ्फार खाँ हर रोज आश्रम मे जाते थे और गाधीजी से तुलसी की रामायण सुना करते थे। इसके अतिरिक्त सुबह व सायकाल की प्रार्थना मे भी सम्मिलित होते थे।

सादगी, सत्य और अमन बाचाखां के जीवन के खास लक्ष्य हैं। वे बनावट को कभी भी पसन्द नही करते। इनमे नेताओ की तरह शान-शौकत नही। सादा लिबास, मामूली खुराक और साफ बातें इन्हे पसन्द हैं, सच्चाई और ईमानदारी उनकी मुट्ठी मे पडी हुई है। वे कहते कम हैं और कार्य अधिक करते है। उनका शरीर बूढा हो चुका है, परन्तु उनकी उमगें जवान है। वे हर रोज तारो-भरी छाँव मे उठते हैं। दिन भर लोगो से मिलते हैं और मीलो-मील तक लोगो के साथ चलते है। वे बच्चो मे बच्चे, बूढो मे बूढे और जवानो मे जवान है।

शराब के विषय मे बात करते हुए बाचाखां ने फरमाया कि यह कितने दुख की बात है कि जिस शराब के लिए हमारे लाखो पख्तूनो और अनगिनत भारत-वासियो ने लाठियाँ खायी, गोलियाँ खायी और जेलो मे गये, वही शराब आज खुले बाजारो मे पानी की तरह बहती है। गाधीजी के देश मे शराब का होना बड़े शर्म की बात है।●

बुनियादी शिक्षा का सन्दर्भ-साहित्य

गाधीजी ने शिक्षा के सम्बन्ध मे एक विशिष्ट और समग्र दृष्टि-कोण भारत के सामने रखा था। अन्य अनेक विचारको ने भी भारत की इस नयी शिक्षा-पद्धति पर अनुसन्धान तथा विश्लेषण किया है। आगे हम सर्व सेवा सघ-प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कुछ ऐसी पुस्तको का सक्षिप्त परिचय दे रहे हैं, जिनमे बुनियादी शिक्षा के विभिन्न स्तरो और आयामो का स्पष्टीकरण हुआ है।

शिक्षा मे अहिंसक क्राति पृष्ठ १३५, मूल्य १·०० रुपया

गाधीजी ने शिक्षा के बारे में जो विचार रखे हैं, वे सब इस पुस्तक मे सार रूप म आ जाते है। शिक्षामत्रियो से, राष्ट्रीय शिक्षकों से, पाठशालाएँ चलानेवालो से, शिक्षक बनने की इच्छा रखनेवालो से तथा शिक्षा की प्राचीन मान्यताओं मे पड़े हुए लोगो से गाधीजी ने जो बातें कही है, उन्हे जानने के लिए इस पुस्तक का अपूर्व महत्त्व है।

बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा पृष्ठ १९३, मूल्य १ ५० रुपया

सन् १९३७ म वर्धा मे जो शिक्षा-सम्मेलन हुआ था वह अपने ढग का एक ऐतिहासिक आयोजन था। उसी सम्मेलन मे जाकिर हुसेन साहब की अध्यक्षता मे एक समिति बनायी गयी थी। उस समिति को बुनियादी शिक्षा की एक योजना तैयार करने का काम सौंपा गया था। उस समिति की रिपोर्ट इस पुस्तक मे दी गयी है।

आठ सालो का सम्पूर्ण शिक्षाक्रम पृष्ठ १४०, मूल्य १ ५० रुपया

इस पुस्तक के पहले खण्ड मे बुनियादी तालीम की सामान्य रूपरेखा दी गयी है और दूसरे खण्ड मे बुनियादी तालीम का विस्तृत शिक्षाक्रम दिया गया है। इस तरह वैचारिक और व्यावहारिक, दोनों पहलुओं को एकसाथ इस पुस्तक द्वारा प्रस्तुत कर दिया गया है।

शिक्षण विचार पृष्ठ ३६८, मूल्य २ ५० रुपया

इस पुस्तक मे विनोबा के शिक्षण-सम्बन्धी विचारो का सग्रह किया गया है। बुनियादी शिक्षा-साहित्य म इस पुस्तक का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हमारा राष्ट्रीय शिक्षण पृष्ठ ३४०, मूल्य २ ५० रुपया

बगाल के प्राणवान समाजसेवी और रचनात्मक आन्दोलन के नेता श्री चारुचन्द्र भण्डारी एक शिक्षाशास्त्री के रूप मे भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान

रखते है। उन्होंने ही आज के हमारे राष्ट्रीय शिक्षण पर अपने चुनौतीपूर्ण विचार इस पुस्तक मे दिये हैं।

बच्चो की कला और शिक्षा पृष्ठ २०४, मूल्य ८ रुपये

श्री देवीप्रसाद नयी तालीम के अध्यापक और अपने-आप म एक कलाकार हैं। यह पुस्तक उनके दीर्घकालीन क्रियात्मक अनुभव का नवनीत है। अनेक रगीन और सादे चित्रो से भरी-पूरी इस पुस्तक मे छोटे छोटे बच्चो की कला कृतियाँ हृदय को मोह लती है और इस बात को सिद्ध कर देती है कि "कलाकार कोई विशेष प्रकार का मनुष्य नही होता, बल्कि हर मनुष्य एक विशेष प्रकार का कलाकार होता है।' बच्चो का कलात्मक और मनोवैज्ञानिक रुचियो का परिचय देनेवाली इस सजिल्द पुस्तक की प्रस्तावना डा० जाकिर हुसेन ने लिखी है और नन्दलाल बसु ने आशीर्वाद लिखा है।

समग्र नयी तालीम पृष्ठ १६८, मूल्य १ २५ रुपया

नयी तालीम भारतीय शिक्षण-विचार की एक नयी देन है। श्री धीरेन्द्र मजूमदार शिक्षण विचार की इस धारा के एक विशेषज्ञ और अनुभवी चिन्तक हैं। उन्होंने नयी तालीम को सघर्षमुक्त क्रान्ति का वाहन बताया है। इस पुस्तक के प्रारम्भ मे उन्होंने अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया का निरूपण किया है और आखिर म कुछ व्यावहारिक कार्यक्रम भी सुझाये हैं।

सुन्दरपुर की पाठशाला का पहला घण्टा पृष्ठ ४०, मूल्य ७५ पैसे

गुजरात के सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री तथा अनुभवी शिक्षक जुगतराम दवे ने सुन्दरपुर की एक काल्पनिक पाठशाला के नाम से एक आदर्श पाठशाला का रूपक इस पुस्तक म बाँधा है। उन्होने वेडछी के अपने विद्यालय मे इस तरह के अनेक प्रयोग किये हैं। उन प्रयोगो के अनुभवो को बहुत आसान और रोचक भाषा मे इस पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

बालवाडी पृष्ठ ३२४, मूल्य ३ रुपये

इस पुस्तक के लेखक भी श्री जुगतराम दवे ही हैं। बाल-शिक्षण के अनेक पहलुओ का बडे मनोवैज्ञानिक ढग से इस पुस्तक मे विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक एक प्रकार से पूर्वबुनियादी की सम्पूर्ण शिक्षण-पद्धति का विवेचन करती है। इस पुस्तक के भावो को युवक कलाकार श्री हकूभाई शाह ने अपनी अनोखी शैली मे रेखाकित किया है। पुस्तक हिन्दी मे अपने ढग की है।●

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : ३
मूल्य . ५० पैसे

अनुक्रम

अक्तूबर, '६९

•

निवेदन

• 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
• 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
• पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
• रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित; अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : अक्तूबर '६९
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

बा - बापू जन्म - शताब्दी - समारोह

(२अक्तूबर सन् १९६९ से फरवरी सन् १९७०)

इस पर्व में गांधीजी का सन्देश घर-घर पहुँचाइए
ग्राम-स्वराज्य कायम करने की प्रेरणा जगाइए

- फिल्म-'गांधीजी के पथ पर'
- प्रदर्शित सेट - 'वेदों से गांधी-विनोबा युग'
- 'ग्राम-स्वराज्य' फोटोग्राफिक पोस्टर-प्रदर्शनी सेट
- स्लाइड्स
- पुस्तकें एवं पोस्टर-फोल्डर

आदि प्रेरक सामग्री हेतु सम्पर्क-स्थान

१. अपने प्रदेश का सर्वोदय संगठन
२. अपने प्रदेश की गांधी जन्म-शताब्दी-समिति
३. गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति
टुंकलिया भवन, कुंदीगरों का भेरू, जयपुर-३ (राजस्थान)

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति)
टुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भेरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित ।

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी

वर्ष : १८
अंक : ४

- एक संगठित अध्यापक-समुदाय
- मध्यकालीन भारत में शिक्षक के गुणों की रूपरेखा
- हमारे आज के अध्यापक : एक विश्लेषण
- शिक्षकों की परिवर्तित भूमिका
- संस्थागत नियोजन

नवम्बर १९६९

दिवंगत श्रीमती जानकी देवी प्रसाद

९ नवम्बर को सर्वोदय परिवार की सुपरिचित और श्री देवी भाई की सहधर्मिणी श्रीमती जानकी देवी का लन्दन म अचानक मस्तिष्क म ट्यूमर होने के कारण देहावसान हो गया। शल्य क्रिया के उपलब्ध सारे आधुनिक उपकरण उन्हे बचा नहीं सके।

श्रीमती जानकी बहन वारियर सन् १९४४ मे हिन्दुस्तानी तालीम सघ म नयी तालीम अध्यापिका का प्रशिक्षण लेने सेवाग्राम आयी थी। तब से ही सर्वोदय-परिवार की सदस्या रही। केरल के एक सभ्रान्त परिवार म वे जन्मी थी। प्रचलित स्कूल-कालेजो मे शिक्षा न लेकर वे घर मे ही मातृभाषा मलयालम के उपरात हिन्दी, सस्कृत और अग्रेजी भाषा म अभ्यास कर पारगत हुई थीं। आरोग्य शास्त्र का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। तालीमी सघ मे प्रशिक्षण लेने के बाद कुछ दिनो के लिए गृहमाता की, और बाद म तालीमी सघ और सेवाग्राम आश्रम के सम्मिलित पुस्तकालय की पुस्तकालयाध्यक्षा का काम उन्होंने, सन् १९६१ मे जब सेवाग्राम छोडा, तब तक दक्षता के साथ किया। नयी तालीम पत्रिका के सम्पादन मे उनका प्रमुख हाथ रहा।

सेवाग्राम मे ही श्री देवीप्रसादजी को उन्होने अपना जीवन साथी चुन लिया था। सन् १९६१ मे श्री देवी भाई और जानकी बहन सपरिवार लन्दन गये और तब से अभी तक देवी भाई अन्तरराष्ट्रीय युद्ध विरोधी सभा के महामत्री का काम सँभाल रहे हैं। सर्वोदय-परिवार को देश की सीमा के पार ले जाने म

उनका काफी सहयोग रहा। लन्दन मे देवी भाई को उनके काम मे मदद करते हुए जानकी बहन अपने आर्थिक सकट दूर करने के लिए कई दूसरे काम भी करती रही। वृद्ध लोगो के एक अस्पताल मे उन्होने सेविका का काम किया।

भारत के गाधी परिवार स स्थूल रूप से वे दूर हो गयी थी, पर ब्रिटेन म उनके आस-पास एक नया गाधी-परिवार उपस्थित था। उन्होंने अनक तरुण अग्रेजो को गाधी विचार की गहराई म ले जान का प्रयत्न किया। 'एकागी विरोध' से पीडित ब्रिटिश शान्ति आन्दोलन को रचनात्मक दृष्टि अपनाने क लिए भी प्रेरित करती रही।

भारत से गाधी-परिवार का कोई भी सदस्य जब पश्चिम की ओर जाने का सोचता था तो उसकी दृष्टि जानकी बहन की ओर अवश्य पडती थी और जानकी बहन के घर का द्वार ऐसे अतिथियो के लिए सस्नेह खुला मिलता था। कभी कम न टूटनेवाला अतिथियो का ताँता उनकी व्यस्तता को कई गुना बढा देता था पर उसी अनुपात म उनकी प्रसन्नता की मात्रा भी बढती चली जाती थी।

व शीघ्र ही वापस भारत लौटने तथा ग्रामदान क्रान्ति के आरोहण म शामिल होने का सपना देखने लगी थी। 'अति शहरीकरण' का प्रत्यक्ष अनुभव लन्दन म प्राप्त कर लेने के बाद उन्हे लगने लगा था कि भारत को यदि इस रास्ते पर जाने से बचाना है तो ग्रामदान के काम म उन्हे अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए, पर उनका यह सपना साकार होना कि उसके पहले ही उनकी बीमारी ने उन्हे हमसे छीन लिया।

सारा सर्वोदय परिवार शोक-सतप्त श्री देवीभाई तथा चिरजीव गुनन्दन, उदयन तथा रसीदा के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करता है।•

ज्ञान-शक्ति और श्रम-शक्ति के जुटने से ही भारत की ताकत बनेगी

विनोबा

गांधीजी के जाने के बाद बाबा ने एक काम को उठा लिया और १८-१९ साल से लगातार लोगों को समझाता रहा है। भारत में साढ़े पाँच लाख गाँव हैं। उनमें से सवा लाख गाँव ग्रामदान में आ गये हैं यानी भारत के गाँवों का पाँचवाँ हिस्सा ग्रामदान में आ गया। सारा बिहार प्रान्त ग्रामदान में आया।

श्रम-शक्ति मजबूत कैसे हो ?

यह जोरदार आन्दोलन श्रम-शक्ति बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। गाँव-गाँव के लोग बिखरे हुए हैं। एक-एक गाँव की ग्रामसभा बने और ग्रामसभा को जमीन के स्वामित्व का समर्पण हो और भूमि का बीसवाँ हिस्सा भूमिहीनों में बँटे और सारा गाँव सम्मिलित होकर ग्रामसेवा करे तो श्रम-शक्ति मजबूत होगी। आज श्रम-शक्ति दबी हुई है, गाँव-गाँव में पड़ी है और उसकी किसीको परवाह नहीं है। राजनीतिवाले ऊपर-ऊपर देखते हैं। गाँवों में जाते नहीं, और गाँव की शक्ति कैसे बढ़े, उसकी तरफ उनका ध्यान ही नहीं है।

अब यह श्रम-शक्ति गाँव के लोगों को ही बनानी होगी। स्वावलम्बन से अपना काम चलायें, यह प्रयत्न १८-१९ साल से चल रहा है। दूसरी शक्ति है—ज्ञान शक्ति, जो शिक्षकों की है। शिक्षकों की ज्ञान शक्ति और ग्रामीणों की श्रम-शक्ति, दोनों इकट्ठी हो जायें और दोनों का योग हो तो भारत में ताकत बनेगी। शिक्षकों की ज्ञान-शक्ति और गाँव के श्रमिकों की श्रम-शक्ति, दोनों को इकट्ठा करने की यह कोशिश है। प्रथम श्रम शक्ति संगठित करने में १५-१६ साल गये। उसके बाद यह ज्ञान-शक्ति मिली है। यह प्रयत्न बाबा का दो साल से चला है और उस प्रयत्न में जगह-जगह विश्वविद्यालयों में जाकर बाबा ने व्याख्यान दिया। यह सब विचार "आचार्यकुल" पुस्तिका* में छपे हैं। यह किताब हर एक शिक्षक के पास पहुँचनी चाहिए। इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो अपनी शक्ति को कैसे बढ़ावें, इसका भान होगा।

* 'आचार्यकुल' : विनोबा। प्रकाशक—सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी—१। मूल्य : एक रुपया।

शिक्षक राजनीति मुक्त हो

इसमे दो तीन बातें मुख्य है—एक बात यह है कि शिक्षको को राजनीति से मुक्त होना चाहिए। जबतक राजनीति शिक्षकों में रहेगी, तबतक उनकी शक्ति दबी रहेगी। इसलिए शिक्षको को राजनीति से अलग होना चाहिए। हमने कई यूनिवर्सिटियो और कालेजो मे देखा कि चार प्रोफेसर इस पार्टी के, और चार प्रोफेसर दूसरी पार्टी के, यानी प्रोफेसरों म पार्टियाँ बनी है। इस प्रकार यूनिवर्सिटियो मे दगे चलते है—विद्यार्थियो के दगे—और शिक्षक भी उसमे शामिल होते है। फिर पुलिस भी बीच मे आ जाती है। इस तरह यूनिवर्सिटियो मे शिक्षा का सारा वातावरण खराब हो जाता है। बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश मे भी ऐसा ही हुआ। उसका कारण है कि राजनीति अन्दर पैठ गयी है। एक बात तमाम शिक्षको को करनी चाहिए कि वे राजनीति से मुक्त हो जायें। राजनीतिवालो का पाँच साल तक ही चलता है, उसके बाद नया चुनाव होता है और नये चुनाव म नये लोग आ जाते है। इस तरह राजनीतिवालो को काम करने की मर्यादा पाँच साल की और शिक्षकों की तीस साल की होती है। राजनीतिवालो का यदि ठीक चला तो पाँच साल, नहीं तो उलट-पुलट हो जाय तो दो तीन साल म ही वे बदल जाते है। बिहार, उत्तर-प्रदेश और बगाल आदि म दो तीन साल के अन्दर ही मिनिस्ट्री खत्म हो गयी ऐसी तो उनकी हालत है। परन्तु शिक्षको को तीस साल तक सेवा करने का मौका है। तीस साल के बाद आप रिटायर होगे तो आपके ही पढाये हुए विद्यार्थी शिक्षक बनेंगे। इसका मतलब है कि तीस साल तक लोकमानस बनाने का अधिकार है और तीस साल के बाद आपकी परम्परा चलेगी क्योंकि आपके पढाये हुए विद्यार्थी ही शिक्षक बनेंगे।

ज्ञान की अखण्ड परम्परा

इस प्रकार ज्ञान की अखण्ड परम्परा आप लोगो के द्वारा चल सकती है। वह परम्परा बनाना शिक्षकों का काम रहेगा। विद्यार्थियो को प्रेम से शिक्षा देना और बचे हुए समय म गाँव-गाँव जाकर, ग्रामसभा का गठन करना, उसका सचालन और जमीन का बँटवारा कैसे हो, यह सारा ग्रामसभा को उन्हे सुझाना चाहिए। एक-एक गाँव को शिक्षक सलाह देनेवाला और मित्र बने। ऐसा करने से ग्रामीण जनता आपके हाथ म आयेगी, विद्यार्थी-समाज आपके हाथ मे आयेगा। ये दो बडी शक्तियाँ आपके हाथ मे आयेंगी। फिर आपके द्वारा भारत म एक शक्ति खडी होगी। यह आचार्यकुल का सार है।

मुझसे पूछा जाता है कि पुलिस कालेजों में क्यों आती है? पुलिस क्यों आती है इसलिए कि आज शिक्षक और छात्र के बीच प्रेम-सम्बन्ध नहीं है। वे केवल पुस्तकें पढ़ाते हैं और वह भी कौन-सी जो कि ऊपर से निर्धारित होकर आती हैं। इसका मतलब आज शिक्षक नौकर की हालत में आ गये हैं। इसी कारण उनका जो ऊँचा स्थान था, वह गिर गया है। अब उनको ऊँचा स्थान हासिल करना चाहिए, तब पुलिस की जरूरत नहीं पड़ेगी।

पुलिस की जरूरत किसी भी हालत में नहीं रहे, ऐसा काम होना चाहिए। कहीं दंगा हो तो शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर उसको दबाने के लिए जायें, ऐसा होना चाहिए। सारा प्रदेश शिक्षकों और विद्यार्थियों की यूनिवर्सिटी है, यह मानकर दोनों सम्मिलित हो शान्ति-स्थापना की जिम्मेवारी लें तो शान्ति की एक बहुत बड़ी शक्ति खड़ी होगी। प्रेम की शक्ति, नीचे श्रम की शक्ति और दोनों के बीच में शान्ति की शक्ति ऐसी त्रिविध शक्तियाँ पैदा होंगी। शिक्षकों में प्रेम शक्ति, श्रमिकों में श्रम शक्ति और दोनों को जोड़नेवाली शान्ति-सैनिकों की शान्ति शक्ति होगी। शांति-सैनिक शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों होंगे। दोनों मिलकर शान्ति-सेना बनायेंगे तो सारा देश आपके हाथ में आयेगा, और लोगों का चित्त आपके हाथ में आयेगा। फिर यह जो राजनीतिवाले हैं उनकी चलेगी नहीं वह आपकी शरण में होंगे। बाबा ने वह नया विचार लोगों के सामने रखा। मैं आशा करता हूँ कि इस बारे में आप लोग सम्मिलित होकर चर्चा करेंगे और आचार्यकुल का गठन करेंगे। इस आचार्यकुल के लिए अपने वेतन में एक प्रतिशत देना होगा। यदि ३०० रु० वेतन है तो ३ रु० प्रति माह देने होंगे। यदि काफी संख्या में शिक्षक लोग इसमें आ पायेंगे तो संभव है कि डेढ़ प्रतिशत ही वतन का प्रतिमाह देना पड़े। वह जो पैसा इकट्ठा होगा उसके आधार से गाँव-गाँव में जाना लोगों को समझाना सारे शिक्षकों का सम्मेलन बुलाना, सम्मेलन करके अपनी सर्व-सम्मत राय प्रकट करना एक जगह से दूसरी जगह के लोगों के साथ संपर्क करना है। यह सारा करने के लिए एक आफिस रखना पड़ेगा और एक क्लर्क भी रखना होगा, अपने में से एक शिक्षक को भी इस काम के लिए नियुक्त करना होगा। इस काम के लिए उस एकत्रित पैसे में से खर्च होगा। यह आपको मैंने आचार्यकुल का थोड़े में सार समझा दिया।•

एक संगठित अध्यापक-समुदाय

जे० पी० नायक

[शिक्षा म गुणात्मक सुधार का केन्द्र शिक्षक ही हो सकता है। और अगर उसे अपनी सस्था की शक्षिक आयोजन की प्रक्रिया का भी आधार बनना है, तो उसे सघबद्ध होना होगा—शायद विनोबा की सकल्पना का आचायकुल बनाना होगा। प्रस्तुत लख मे विद्वान लखक ने विभिन्न श्रणियो को छोडकर अध्यापको से एक हो जाने की माँग की है—आचायकुल बने—कुल-के-कुल आचाय एक हो, ऐसी सकल्पना है—सम्पादकीय]

यदि सस्थागत आयोजन प्रणाली (इन्स्टीटयूशनल प्लानिंग) को आयोजन की प्रक्रिया का आधार स्वीकार किया जाता है और जिला राज्य एव राष्ट्रीय स्तरो पर शक्षिक आयोजन एव विकास के हेतु अध्यापको के सगठन तैयार किये जाते है तो सम्पूण अध्यापक समुदाय शक्षिक आयोजन के निर्माण एव कार्यान्वयन से सक्रिय रूप स सम्बद्ध होगा। यह प्रस्ताव यथाथत शिक्षा आयोग की सिफारिशो पर आधारित है और यह आशा की जाती है कि सभी सम्बन्धित अधिकारियो द्वारा इन्हे स्वीकार किया जायगा।

इस सम्बन्ध म एक और प्रश्न उपस्थित होता है कि वतमान समय म अध्यापक-समाज क्या इस नवीन उत्तरदायित्व को स्वीकार करने की स्थिति म है ? इस प्रश्न के सम्बन्ध म मुझ कोई सन्देह नही है। किन्तु मैं समझता हूँ कि विभिन्न श्रणियो म विभक्त होने के कारण अध्यापक समुदाय इस नवीन उत्तरदायित्व को वहन करने क लिए सक्षम नही है। विश्वविद्यालय के अध्यापको ने अपना अलग एव स्वतत्र वग बना लिया है। माध्यमिक शालाओ के मुख्याध्यापको ने अपना एक अलग वग बना लिया है तो माध्यमिक शालाओ के अध्यापको ने अपना एक अलग स्वतत्र सगठन बना लिया है। प्राथमिक शिक्षको का अपना एक अलग सगठन है। वतमान समय म इन विभिन्न वर्गों म आपस म बहुत कम सम्पक है और उनके लिए एसे अवसर भी बहुत कम आते है जहाँ वे अपने सम उद्देश्यो की पूर्ति क लिए एकत्र होकर आपस मे निकट के सम्बन्ध स्थापित कर सकें। अत ऐसे कायक्रम अथवा कायक्रमो की आवश्यकता है जो अध्यापक समुदाय म श्रणियो को हटाकर एक विशाल सुसगठित अध्यापक समुदाय का रूप देने म सहायक हो। इससे शक्षिक योजनाओ के निर्माण एव कार्यान्वयन म सहायता प्रदान करने के लिए उनकी योग्यता एव क्षमता मे

काफी वृद्धि होगी। यदि मुझे यह सुझाने के लिए कहा गया कि वर्तमान स्थिति में भारतीय अध्यापकों को किस महत्त्वपूर्ण काम के लिए कटिबद्ध होना है, तो मार्क्स की घोषणा में अल्प परिवर्तन करके *कहूँगा कि—विभिन्न श्रेणियों के* अध्यापको ! एक हो जाइए।

भारत में हम किस प्रकार संगठित अध्यापक-समुदाय का निर्माण कर सकते है ? इसके लिए अनिवार्य रूप से दो प्रकार के प्रमुख कार्यक्रमों की आवश्यकता होगी।

(१) प्रवृत्तियों में परिवर्तन—प्रथम तो हमें अध्यापकों की प्रवृत्तियों में, *जो प्रायः प्राचीन उपनिवेशवादी अथवा शिक्षा प्रणाली में प्रतिबिंबित जातिवादी* परम्परा में रंजित हैं परिवर्तन करना होगा। विश्वविद्यालय के अध्यापक अपने को प्रायः श्रेष्ठ वर्ग के व्यवसाय के पंडितों के रूप में, जैसा कि प्राचीन समय में माना जाता था, समझते हैं। ये श्रेणियाँ आगे भी विश्वविद्यालयीन अध्यापक, महाविद्यालयीन अध्यापक, शासकीय महाविद्यालयों के अध्यापक अलग जाति के हैं। फिर प्रथम श्रेणी द्वितीय श्रेणी और अराजपत्रित श्रेणी इनकी उप-*जातियाँ हैं। माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों का एक मध्यम वर्ग है,* जो इस व्यवसाय के वैश्य अथवा क्षत्रिय कहलाते हैं। ये सामान्यतया अपने को प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों से श्रेष्ठ मानते हैं और अलग रहते हैं तथा ये महाविद्यालयों के अध्यापकों का दर्जा पाने की आशा रखते हैं किन्तु महाविद्यालयों के अध्यापक इन्हें अपने से काफी दूर रखते हैं। प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों का इस व्यवसाय में सबसे बड़ा वर्ग है किन्तु उन्हें इस जाति प्रथा में शूद्रों के *समान स्थान दिया गया है तथा उनसे सभी मामलों में प्रायः उसी तरह का* व्यवहार किया जाता है। यह स्पष्ट है कि आधुनिक भारत न्याय स्वाधीनता, समानता तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा के आधार पर नवीन सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए कटिबद्ध है। अतएव इस प्रकार की परम्परावादी और निरर्थक प्रवृत्तियों के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है। सारे अध्यापक एक *ही व्यवसाय के हैं और स्वाभाविक रूप से एक दूसरे के समान हैं, इस प्रकार के* बंधुत्व की भावना सभी में सम्प्रबल निर्माण की जानी चाहिए।

(२) संस्थागत गठन—प्रवृत्तियों में परिवर्तन अथवा उनमें स्थिरता लाने का कार्य स्थायी रूप से करने के लिए संस्थाओं की रचना में आमूल परिवर्तन आवश्यक है। यदि सारे अध्यापकों में बंधुत्व की भावना का निर्माण करना है तो उन्हें समउद्देश्यों की पूर्ति के लिए समीप आकर एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करने और आदर करने के लिए सभी संस्थाओं में समुचित अवसर प्रदान किया

जाना चाहिए। इस सदर्भ म यह जानकर खुशी होगी कि शैक्षिक आयोजन व लिए जिस व्यापक प्रणाली के निर्माण के लिए ऊपर सिफारिश की गयी है वही प्रणाली अध्यापक व्यवसाय को एक सूत्र मे बाधने के लिए सहायक होगी। उदाहरण के लिए स्कूल काम्प्लेक्स प्रणाली माध्यमिक शालाओ के अध्यापको को प्राथमिक शालाओ के साथ विश्वविद्यालयीन एव महाविद्यालयीन अध्यापको को माध्यमिक शालाओ के अध्यापको क साथ काम करने के अवसर उपलब्ध करेगी। इसी तरह जिला अध्यापक परिषदो राज्य स्तर पर सयुक्त अध्यापक परिषदो अथवा अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय अध्यापक परिषद की स्थापना मे जिसम अध्यापको के विभिन्न सगठनो का प्रतिनिधित्व होगा विभिन्न श्रेणियो के अध्यापको को सम उद्देश्यो की पूर्ति के लिए एक होकर काम करने की दिशा म एक महत्वपूर्ण साधन उपलब्ध होगा। विषयानुसार अध्यापको के सगठनो का निर्माण करने स भी इसी उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी। इसमे कोई सदेह नही है कि ये परिषदे स्वप्ररणा एव प्रयोगो को बढावा देंगी तथा उत्कृष्ट शिक्षण सामग्री तथा शिक्षण एव परीक्षण के आधुनिक तकनीको के माध्यम से पाठ्यक्रमो म सशोधन कर उन्ह उन्नत करने के लिए सहायक होगी। साथ ही पूर्व प्राथमिक शालाओ के अध्यापको से विश्वविद्यालयो के अध्यापको तक के विभिन्न श्रेणियो के अध्यापको को एक मच पर एकत्र लाने के लिए भी इन परिषदो मे विशेष लाभ होगा। इस प्रकार की सस्थाओ का निर्माण जिला, राज्य एव राष्ट्रीय स्तरो पर किया जाना चाहिए।

शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि अनुसधान, पाठ्यक्रमो म सुधार, शिक्षण एव परीक्षण की नवीन प्रणालियो का आविष्कार अध्यापक प्रशिक्षण, प्रतिभा की खोज एव विकास तथा पाठ्य-पुस्तको एव अन्य अध्ययन-अध्यापन सामग्री का निर्माण आदि के माध्यम स पाठशालाओ की शिक्षा म सुधार करने के कार्यक्रमो से विश्वविद्यालयो को पूर्ण रूप मे सम्बद्ध किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम के माध्यम म विश्वविद्यालयो क अध्यापको को विभिन्न स्तरो के अन्य अध्यापको के निकट सम्पर्क म आकर काम करने के अवसर उपलब्ध होंगे।

शैक्षिक योजनाओ के निर्माण एव कार्यान्वयन की क्षमता

अध्यापक-व्यवसाय की यह एकता यद्यपि एक मूल्यवान शक्ति है, जिसका अध्यापको को शैक्षिक आयोजन एव विकास म नेतृत्व प्राप्त करने के लिए निर्माण करना चाहिए तथापि परिस्थिति के आह्वान का सामना करने के लिए वह पर्याप्त नही है। यदि अध्यापको को अपने उत्तरदायित्वो का सफलतापूर्वक निर्वाह

करना है तो, उन्हें अभिरुचि एवं क्षमता नामक दो अतिरिक्त गुणों अथवा कौशलों का विकास करना होगा।

(१) अभिरुचि—

यह दुर्भाग्य की बात है कि अध्यापकों ने इस महत्त्वपूर्ण विषय की आज तक उपेक्षा की है तथा विगत तीन *पंचवर्षीय योजनाओं* में एवं *तीन वर्षीय* योजनाओं में अध्यापक-संगठनों ने विशेष अभिरुचि नहीं दिखाई है। इन योजनाओं की उन्होंने गहराई से अथवा सर्वांगपूर्ण आलोचना भी नहीं प्रस्तुत की है। वास्तव में उनसे केवल आलोचना की ही नहीं अपितु वैकल्पिक योजना तैयार कर प्रस्तुत करने की आशा थी जिससे जनता शासकीय योजनाओं का मूल्यांकन स्वयं कर सके। अतः यह स्पष्ट है कि इस उपेक्षा का परित्याग जितनी जल्दी हो सके उतना ही अच्छा होगा।

(२) क्षमता—

अध्यापकों को व्यक्तिगत रूप से अथवा संस्थाओं के माध्यम से शैक्षिक आयोजन के लिए अपेक्षित क्षमता का भी विकास करना जरूरी है। यह सत्य है कि पूर्व खण्ड में निर्दिष्ट नवकेन्द्रित कार्यक्रम के निर्माण तथा शैक्षिक आयोजन एवं कार्यान्वयन में वस्तुतः और पूर्णरूप से अध्यापकों को सम्बद्ध करने से ही उनमें अपेक्षित क्षमता का विकास होगा। किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में कुछ औपचारिक एवं संस्थागत प्रयासों की भी आवश्यकता है। उदाहरण के लिए *शैक्षिक आयोजन तथा भारतीय शिक्षा की समस्याएँ* अध्यापन विषय के रूप में विभिन्न स्तरों की प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित की जानी चाहिए। *इन योजनाओं के विकास के लिए सम्बन्धित संस्थाओं में* योग्य रीति से अध्यापक प्रशिक्षित किये जाने चाहिए तथा समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में इस विषय पर आवश्यक साहित्य निर्मित किया जाना चाहिए। कुछ ऐसे केन्द्रों की भी स्थापना होनी चाहिए जिनमें स्नातकोत्तर स्तर पर शैक्षिक आयोजन में उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम की व्यवस्था हो तथा शिक्षक-संगठनों द्वारा इस विषय एवं उससे सम्बन्धित समस्त प्रश्नों का अध्ययन कर अध्यापक समुदाय को प्रशिक्षित करने के लिए कार्यकारी समूहों का भी गठन किया जाना चाहिए। पश्चिमी राष्ट्रों की भाँति, शिक्षक संगठनों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे अनुसंधान करें तथा शैक्षिक आयोजन-सम्बन्धी साहित्य एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन करें। इन सभी प्रयासों में इन्हें राज्य-सरकार से प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए।•

मध्यकालीन भारत में शिक्षक के गुणों की रूपरेखा

डा० सुबोध अदावाल

भारत म मध्ययुग मे दो विभिन्न शिक्षा-प्रणालियों का प्रचार था। शिक्षा का आधार पूर्णतया धार्मिक होने के कारण हम एक को हिंदू तथा दूसरी को मुसलमानी प्रणाली कह सकते है। धार्मिक प्रभाव की भिन्नता के कारण ही दोनों प्रणालियाँ पृथक् पृथक् पनपती रही। एक की कुछ विशेषताएँ दूसरी ने कभी-कभी अवश्य अपना ली, किन्तु दोनो मिलकर एक कभी नही हुई।

हिन्दू तथा बौद्ध शिक्षा सस्थाओ को इस बीच गहरा धक्का पहुँच चुका था। बौद्ध सस्थाएँ तो समाप्त प्राय थी, किन्तु हिन्दुओ की छोटी-मोटी शिक्षा-सस्थाएँ किसी-न किसी प्रकार इस काल में चलती रही। काशी जैसे शिक्षा के केन्द्रो मे शिक्षकगण प्राय. अपने पाडित्य, धार्मिक ग्रन्थो के पाठ, तथा शास्त्रार्थ के लिए दूर-दूर तक विख्यात थे। सरल जीवन तथा आदर्श चरित्र उनकी विशेषता थी। यश तथा आदर की प्राप्ति ही उन्हे अधिकाधिक ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रेरणा देती थी। विक्रमशिला म तो विद्वान् तथा आदर्श चरित्र अध्यापको की मूर्तियाँ दीवारो पर अकित कर उन्हे पुरस्कृत तथा सम्मानित किया जाता था। स्वय सम्राट् ऐसे गुरुओ को 'पण्डित' की उपाधि से विभूषित करते थे।

मध्यकाल मे अध्यापको के लिए 'पण्डित' शब्द के प्रयोग से हमे उनके व्यक्तित्व के एक विशेष गुण का पता लगता है। पण्डित शब्द का अर्थ है ज्ञानवान और इससे यह स्पष्ट है कि इस काल मे विभिन्न विषयो का अधिकाधिक ज्ञान ही विशेष रूप से सफल शिक्षक की योग्यता का परिचायक माना जाता था। नैतिकता तथा चारित्रिक गुणो का अपना महत्त्व था, पर पाठ्य विषय तथा धर्म ग्रन्थो के ज्ञान को विशेषता प्राप्त थी। मुख्यतया ब्राह्मण ही अध्यापक होते थे।

मुसलमानी शिक्षा प्रणाली मे भी अध्यापक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुओं के उपनयन सस्कार के समान ही मुसलमानो में 'मकतब' सस्कार का विधान है। इसके द्वारा गुरु बालक की सम्पूर्ण जिम्मेदारी लेकर उसे ज्ञान-क्षेत्र मे प्रविष्ट कराता है। सस्कार मे धार्मिक पुट होने के कारण उसके द्वारा गुरु तथा शिष्य एक दृढ एव अटूट सम्बन्ध मे बँध जाते है।

साधारणतया सभी मध्यकालीन शासक विद्वानो तथा महान शिक्षकों को सरक्षण प्रदान करनेवाले थे। स्वय महमूद गजनी क्रूर तथा लालची होते हुए

भी कवि, ज्ञानी तथा विद्वानों का आदर-मान करता था। बलबन के हृदय में विद्वानों के प्रति श्रद्धा थी। फरिश्ता के अनुसार बलबन का कथन था—'सुयोग्य व्यक्तियों को खोज निकालने में कोई कसर बाकी नहीं रखनी चाहिए। उनके प्रति स्नेह तथा उदारता का व्यवहार हो जिसमें कि वे तुम्हारे दरबार की शोभा बनकर रहें और तुम्हारे अधिकारों की सरक्षा करें।'—भाग १, पृष्ठ २६७।

मुहम्मद तुगलक के समय में विद्वानों के नाम अधिक सुनने में नहीं आते। लॉ ने अब्दुल हक हक्की के निम्न शब्दों का उल्लेख करते हुए यही परिणाम निकाला है कि "अला के राज्य के बाद उच्च ज्ञान तथा विद्वत्ता का स्तर नीचे गिरने लगा। साहित्य का रूप कुछ और ही हो गया। यद्यपि सुलतान मुहम्मद तुगलक समस्त उच्च ज्ञान का आदर करता था, किन्तु उसके समय में विद्वानों की सख्या उतनी नहीं थी जितनी कि अलाउद्दीन के समय में।"—पृष्ठ ४३-४४।

किन्तु लॉ का कहना है कि स्वयं मुहम्मद तुगलक 'कल्पना शक्ति, और प्रभावोत्पादक तथा विचारपूर्ण रचना में योग्य अध्यापकों तथा प्राध्यापकों से कहीं अधिक बढ़कर था। वह वक्तृत्व-कला में प्रवीण तथा वाद विवाद करने में दक्ष था। उसकी लिखावट बड़े-बड़े लेखन व कलाकारों तक से अच्छी थी।'

इन सब से यह तो स्पष्ट ही है कि देहली के सुल्तान तथा अन्य शासक विद्या तथा कला में स्वयं अत्यधिक रुचि रखते थे। किन्तु, ये वर्णन इस बात की ओर विशेष रूप से इंगित करते हैं कि उस काल में विद्वानों तथा शिक्षकों में किन गुणों की अपेक्षा की जाती थी। यह स्पष्ट है कि विद्वत्ता, तथा वाद-विवाद, वक्तृत्व-कला और लेखन-शैली में दक्षता आदि ही वे गुण थे जिनके आधार पर दरबारों में आश्रय प्राप्त होता था। खुशखत (लेखन-सौन्दर्य) पर विशेष बल दिया जाता था। शासकों द्वारा इन दिशाओं में रुचि होने के कारण जनता में भी व्यक्ति का मान इन्हीं गुणों के आधार पर होता था।

अतएव, अध्यापक में भी सादा तथा सरल जीवन, कुरान का पाठ करने की योग्यता तथा सुन्दर लेखन उसके व्यक्तित्व के प्राथमिक गुण माने जाते थे। उसे धार्मिक होना आवश्यक था, तथा धार्मिक नेताओं को प्राप्त समस्त आदर भक्ति उन्हें भी प्राप्त थी। लॉ के कथनानुसार—'अकबर ने लिखावट की सुन्दरता को महत्त्व प्रदान कर लोगों को इसकी ओर उत्साहित किया—विशेषकर नस्तालीक ढंग की लिखावट को। मुद्रण के आविष्कार के पूर्व स्वच्छ तथा स्पष्ट लेखन आवश्यक था और इसीलिए इस पर इतना बल दिया गया है।'

आईन ए अकबरी में अबुल फजल ने बालक के शिक्षण के विषय में अकबर के विचारों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार 'इस बात का ध्यान

रखना चाहिए कि बालक सब बातें स्वयं समझने का प्रयत्न करे। अध्यापक इसमें उसे थोड़ी सहायता दे सकता है। अध्यापक को विशेष रूप से निम्न पाँच बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—अक्षर ज्ञान, शब्दार्थ, भाषा व्याकरण, छंद और पूर्व पाठ। यदि यह शिक्षा विधि प्रयुक्त की गयी तो बालक एक महीने क्या एक दिन में वह सब सीख लेगा जिसे जानने में उसे आजकल वर्षों लग जाते हैं। लोगों के लिए यह अत्यन्त आश्चर्यजनक होगा।

इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि राजकुमार तथा राजकुमारियों की शिक्षा किस प्रकार होती थी। उनके लिए मकतब संस्कार के बाद योग्य अध्यापक नियुक्त किया जाता था। छोटे बालकों के लिए नपुंसक कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। औरंगजेब ने अपने बच्चों की शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया था। मनूसी के अनुसार, उन्हें विद्वानों तथा नपुंसक व्यक्तियों के अधिकार में देकर युद्ध-कला तथा अन्य विषयों की शिक्षा दिलायी जाती थी। अध्यापक उनके आमोद प्रमोद के क्रिया-कलापों को इस प्रकार नियन्त्रित करते थे कि उन्हें सांसारिक ज्ञान के साथ ही साथ अच्छी आदतें भी सीखने को मिलें।

जब औरंगजेब सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसका गुरु अनेक आशाएँ लेकर उसके समक्ष उपस्थित हुआ। उस समय औरंगजेब ने उसे जो ताड़ना दी उसका उल्लेख बर्नियर ने किया है। औरंगजेब का तात्पर्य था कि बालक की शिक्षा उसके भावी जीवन के अनुसार होनी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक को बाल विकास का सम्यक ज्ञान हो तथा उसमें बालक के भावी जीवन की पूर्व कल्पना करने की पूरी शक्ति हो।

मध्यकालीन सम्राटों तथा सामंतों द्वारा देश में ज्ञान प्रसार के लिए किये गये प्रयत्नों के विषय में इतिहासकारों ने बहुत कुछ लिखा है। उस काल में बने मदरसों की इमारतों की कला तथा सौंदर्य के विषय में वर्णन करते हुए अन्य इतिहासकारों के समान लोगों ने भी अनेक पृष्ठों को रँगा है। किन्तु उनमें से किसी ने इस महत्वपूर्ण बात पर तनिक भी प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया कि इन सुंदर इमारतों में शिक्षा प्रणाली कैसी थी, विद्यार्थी तथा शिक्षक किस प्रकार अपना अध्ययन अध्यापन काल व्यतीत करते थे, पाठ्य विषय क्या थे? हमारे लिए वास्तव में इस बात का उतना अधिक महत्त्व नहीं कि ईंट चूने की इमारत कैसी बनी हुई थी जितना इस बात का कि उन इमारतों में शिक्षा-व्यवस्था कैसी थी।

दूसरे अकबर तथा औरङ्गजेब के शिक्षाविषयक विचारों से यह भी नहीं कहा जा सकता कि सारे देश में वैसी ही व्यवस्था होगी। वास्तव में उन

सम्राटों के प्रगतिशील विचार केवल उन्हीं तक सीमित थे, उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न शायद कभी नहीं हुआ। वैभवशाली मुगल दरबारों से दूर साधारण जनता अपने बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध अपने मनमाने पुराने ढंग से ही करती चली थी।

अतएव, हिन्दू मुसल्मानों के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों के अतिरिक्त सारे देश में शिक्षा का एक घरेलू तथा व्यावहारिक ढंग भी प्रचलित था। इसके अनुसार अध्यापक अपने तथा पड़ोस के मुहल्लों से बालकों को मन्दिर अथवा मस्जिद में स्वयं एकत्रित कर लेते थे तथा उन्हें एक साथ पढ़ाते थे। कुछ अध्यापक अपने घर पर ही इन कक्षाओं को लगा लेते थे। इस प्रकार की प्राथमिक शिक्षा अवश्य ही प्रारम्भिक लिखाई-पढ़ाई तथा गणित तक सीमित थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विद्यालय सर्वसाधारण के बीच खूब प्रचलित थे।

'के' का कथन है कि 'स्थानों की भिन्नता के साथ ही इन प्राथमिक शिक्षालयों का रूप भी भिन्न था। उनके कार्यक्रम का स्तर अध्यापकों की योग्यता तथा निपुणता पर निर्भर करता था। वर्तमान मापदंड के अनुसार तो वे शिक्षालय अवश्य ही भिन्नकोटि के होंगे। उनका दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित था तथा उद्देश्य सर्वथा उपयोगितावादी। बालकों का सर्वोच्च मानसिक विकास अथवा उनमें सौन्दर्यानुभूति पैदा करना उनका उद्देश्य नहीं था। बालक का चारित्रिक अथवा आत्म-विकास का उद्देश्य भी सर्वथा गौण था। स्पष्टतया जो उद्देश्य सर्वाधिक मान्य था वह था लेखन, पठन तथा गणित का सम्यक् ज्ञान तथा पत्र-व्यवहार, व्यावसायिक हिसाब किताब आदि में इनका प्रयोगात्मक अभ्यास। इस प्रकार अपने दैनिक क्रिया-कलाप में बालक इन विषयों में सहायता प्राप्त करते थे। बालक नहीं, बल्कि विषय पढ़ाये जाते थे'—पृष्ठ १७६।

जिस मन्दिर में पाठशालाएँ सम्बन्धित थीं उनके पुजारी तथा मकतब में मस्जिदों के मुल्ला ही अध्यापक होते थे। यह स्पष्ट है कि पाठ्य विषयों का ज्ञान उन्हें उसी सीमा तक होता था जहाँ तक कि वह बालकों के लिए आवश्यक था। किन्तु सीमित ज्ञान होते हुए भी न केवल बालकों, बल्कि सर्वसाधारण में भी उनका समुचित आदर था।

'के' ने ठीक ही कहा है कि भारत में संस्था की अपेक्षा गुरु ही प्रमुख रहा है। पश्चिम के विद्यार्थियों में अपनी शिक्षा-संस्थाओं के प्रति जो आदर तथा सम्मान की भावना हम पाते हैं वह भारत में गुरु के प्रति जीवन पर्यन्त पूजा-भाव

के रूप में लक्षित होती है।"—पृष्ठ १९१। पाठशालाओं में परम्परा से ब्राह्मण ही शिक्षत्व करते थे किन्तु धर्म निरपेक्ष शिक्षालयों में उनका स्थान धीरे-धीरे कायस्थ लेने लगे थे। प्राय कायस्थ उस समय की भाषा—अरबी-फारसी का समुचित ज्ञान रखते थे।

मध्यकाल म सूफी मत का प्रभाव अत्यधिक था, तथा सर्वसाधारण मे भी सूफी ही धार्मिक गुरु माने जाते थे। पाठशालाओं में अध्यापक भी साधारणतया सूफी लोग ही होते थे। सूफी साहित्य मे गुरु को बहुत महत्व दिया गया है। ईश्वर-प्राप्ति म सहायक के रूप मे उसे विशेष स्थान प्राप्त है—यहाँ तक कि 'गुरु को 'गोविन्द' से भी बढ़कर माना गया है। ऐसे गुरु मे चरित्र तथा ज्ञान के उच्चतम विकास की अपेक्षा करना स्वाभाविक ही था। अतएव सूफियों ने गुरु के उच्च गुणों की एक विशिष्ट परम्परा ही निर्धारित कर दी।

कबीर, दादू, सुन्दरदास आदि ने गुरु के महत्व पर जो बल दिया है, उसमे इस काल का साहित्य भरा पड़ा है। उन्होने सद्गुरु के आवश्यक गुणों पर भी विस्तार से लिखा है। उनके विचार मे गुरु अज्ञान के जाले को साफ करता है, शारीरिक सुख की इच्छा नहीं करता, सत्कार्य म लग्न रहता है, दयावान तथा समद्रष्टा होता है ब्रह्म की एकता तथा व्यापकता मे विश्वास करता है, तथा अपनी शिक्षा और उपदेशों द्वारा लोगों के मन की द्विविधा मिटाने की शक्ति रखता है।* सूफी सम्प्रदाय के इन महात्माओं का प्रभाव साधारण जनता पर इसलिए और भी अधिक था कि वे उसी के बीच रहते थे। के ऊपर से तो गँवार तथा साधारण प्रतीत होते थे, पर वास्तव म ज्ञान तथा चरित्र मे बहुत ऊँचे थे।

---

*—सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्त रजो तम ताप निवारी।
इन्द्रिय देह मृषा करि जानत सीतलता समता उर धारी।।
व्यापक ब्रह्म विचार अखडित द्वैत उपाधि सबै जिन टारी।
सबद गुनाय सँदेह मिटावत सुन्दर वा गुरु को बलिहारी।।
समदृष्टी सीतल सदा अद्भुत जाकी चाल।
ऐसा सतगुरु चाहिए पल मे करै निहाल।।

—सुन्दरदास

गणेश प्रसाद द्विवेदी हिन्दी सत काव्य सग्रह, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, प्रयाग (१९५२) पृष्ठ १९९।•

मध्य-युग के शिक्षकों की दशा तथा उनमें अपेक्षित और वर्तमान गुणों का यह ब्यौरा कुछ बातें पूर्णतया स्पष्ट कर देता है। यह कहा जा सकता है कि कुछ अध्यापक प्राचीन परम्परा के अनुसार ज्ञान तथा विद्वत्ता, और हृदय तथा मस्तिष्क के उच्च गुणों से विभूषित थे, किन्तु अधिकांश—और यह संख्या बहुत बड़ी थी—साधारण तथा निम्न योग्यता के ही थे। शिक्षा प्रणाली भी आदर्श पाठ की नकल तथा रटाई तक ही सीमित थी। शिक्षक में अच्छी लिखावट, स्पष्ट तथा शुद्ध उच्चारण, और धर्मग्रन्थों के पाठ की योग्यता ही यथेष्ट गुण समझे जाते थे। कक्षा में छड़ी के बल पर नियन्त्रण स्थापित होता था अतः शिक्षक में प्रभावशाली व्यक्तित्व की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती थी। ग्रंथ-पाठ तथा बिना समझे उन्हें रट लेना ही विद्वत्ता थी। इसीलिए साधारणतया वास्तविक ज्ञान की अपेक्षा कृत्रिमता ही पनपने लगी।

उत्तर मध्यकाल में शिक्षा-कार्य ब्राह्मणों की अपेक्षा कायस्थों के हाथ में अधिक था। दक्षिण में अवश्य अभी भी ब्राह्मणों का ही प्रभुत्व था। एडम के अनुसार सामूहिक रूप से मुसलमान अध्यापक हिन्दुओं की अपेक्षा उच्च कोटि के थे।—पृष्ठ २१५,१५८। जफर का कथन है कि अधिकांश में इन सब अध्यापकों के चरित्र की आध्यात्मिक शक्ति के विषय में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। उनका शिक्षण इतना प्रभावशाली होता था कि कोई उँगली नहीं उठा सकता था।'—पृष्ठ ४-५। किन्तु इस युग के अधिकांश अध्यापकों के विषय में इस मत से सहमत होना कठिन है। मध्यकाल के चुने हुए अध्यापकों के विषय में ही हम ऐसा कह रहे हैं।

हमारे आज के अध्यापक : एक विश्लेपण

शंकरलाल त्रिवेदी

मंदिरो मे आनेवाले सभी दर्शनार्थी मात्र देवदर्शन के लिए ही नहीं आते हैं। कुछ भक्तो को प्रसाद का स्वाद आकर्षित करता है तो किसी को नारी-सौन्दर्य के दर्शन। ठीक इसी प्रकार आज के शिक्षा-प्रसार युग मे सरस्वती मंदिर मे आनेवाले सभी अध्यापक शिक्षा-प्रेमी नहीं हो सकते। विभिन्न प्रकृति, विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि एव कौटुम्बिक वातावरण शालाओ मे इस तथ्य को चरितार्थ करते है कि "जितने व्यक्ति उतने स्वभाव"। अतः वर्तमान परिस्थितियो मे प्रत्येक प्रधानाध्यापक के लिए अपने अध्यापको के व्यक्तित्व का ज्ञान रखना अनिवार्य हो जाता है। व्यक्तित्व-ज्ञान की रूपरेखा अंकित करने मे वर्गीकरण प्रणाली अधिक सहायक हो सकती है। हमारे दैनिक सपर्क मे आनेवाले अध्यापकों की मनोवृत्तियो का एव व्यवहार का अध्ययन किया जाय तो उपयुक्त वर्गीकरण करना सभव हो सकता है।

हेन्डर्सेम के अनुसार मानसिक सन्तुलन ऐसे व्यक्ति मे पाया जाता है जिसके जीवन म व्यवहार एव मूल्यो मे ऐक्य विद्यमान हो, अथवा जिसके व्यक्तित्व के विभिन्न अशो को एक अशी के रूप म पहचाना जा सके। रेमन्ड के अनुसार व्यक्तित्व वह गुण है जो प्रस्तुत परिस्थितियो मे व्यक्ति के व्यवहार को समझने मे सहायक हो। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक के व्यवहार मे कुछ सगति अवश्य होनी है जो हमे उस व्यक्ति के साथ व्यवहार निभाने के लिए जानना आवश्यक है। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भी व्यक्ति के विभिन्न वर्गीकरण किये गये हैं। ग्रथियो के आधार पर व्यक्ति का वर्गीकरण हुआ है। स्पेंसर ने समाज के प्रति प्रतिक्रियात्मक व्यवहार के आधार पर वर्गीकरण किया है। जुग ने अन्तर्मुखी, बाह्यमुखी, ये दो प्रधान भेद किये हैं। सिद्धान्त के अनुसार वर्गीकरण बुद्धिमान्, भावनात्मक, सवेदनात्मक, प्रभुत्ववशवर्तीपन आदि के अनुसार किया जा सकता है। ये सभी अध्ययन मनुष्य के व्यवहार को समझने एव नियत्रित करने के प्रयास हैं। हम यदि इतने गहरे न जाकर हमारे स्वय के अनुभव के आधार पर हमारे साथ कार्य करनेवाले अध्यापको का वर्गीकरण कर लें तो हमारे दैनिक व्यवहार मे कार्य समायोजन सरल हो जाता है।

इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखकर मैंने वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। अपने २८ वर्ष के सपर्क के आधार पर किये गये वर्गीकरण का यही लक्ष्य है कि

प्रशासन-कार्य करनेवाले मेरे साथी बधुओं के सामने एक वर्गीकृत रूपरेखा प्रस्तुत कर सकूँ, जो नीति निर्धारण एवं प्रशासनिक प्रक्रियाओं में सहायक हो सके और उनके अनुभवों का लाभ मुझे भी मिले। इस वर्गीकरण का आधार अध्यापकों का व्यवहार, आचरण एवम् प्रकृति है। साथ में यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह वर्गीकरण पुरुष-अध्यापकों का ही है। अध्यापिकाओं की प्रकृति का ज्ञान मेरे पास नहीं है। हमारे अध्यापकों के निम्नानुसार ग्यारह वर्ग हम बना सकते हैं—

(१) कल्पना प्रधान (Theoretical)
(२) अर्थदृष्टि प्रधान (Economic)
(३) विकृत व्यवहार प्रधान (Esthetic)
(४) संतुलित व्यवहार प्रधान (Balanced)
(५) हताश (Frustrated)
(६) कामचोर
(७) सामाजिक (Social)
(८) राजनीतिक (Political)
(९) धार्मिक (Religious)
(१०) अर्धविकसित (Adolescent)
(११) कलाकार (Artist)

१ कल्पना प्रधान

मेरे अनुभव में इस प्रकार के अध्यापक प्रत्येक शाला में पाँच से दस प्रतिशत तक होते हैं। अधिकांशतः ये अध्यापक अन्तर्मुखी होते हैं। अपने विचार लिखित अथवा मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता इनमें अन्य अध्यापकों की तुलना में अधिक विकसित होती है। लेकिन जहाँ सामाजिक संबंधों का प्रश्न है इस वर्ग के अध्यापक शर्मीले व मितभाषी होते हैं और मौन रहना अधिक पसंद करते हैं। विस्तृत एवं गहन वाचन का इनको शौक है। इनका जीवन स्वयं की अन्तर्भावनाओं से प्रभावित होता रहता है। नमनशीलता अथवा लचीलापन इनमें कम पाया जाता है। किसी किसी में प्रत्येक कार्य एवं विचार की आलोचना करने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। शारीरिक श्रम जिनमें अधिक हो ऐसे कार्य में इनकी रुचि कम रहती है। कक्षागत अध्ययन-अध्यापन को एवं बौद्धिक व्यायाम को ये अधिक महत्त्व देते हैं। अन्य की आलोचना करने की प्रवृत्ति एवं शारीरिक श्रम से अछूते रहने की प्रवृत्ति

अपने समुदाय मे उन्हे अप्रिय भी बना देती है। इनकी दृष्टि अर्थाभिलाषिणी कम होती है।

अर्थदृष्टिवाला अध्यापक

इस अध्यापक के प्रत्येक कार्य एवं प्रवृत्ति के पीछे मुख्य हेतु अर्थ ही रहता है। परिणामत कार्य एवं क्षमता को विकसित करने की मूल प्रेरणा अर्थ ही है। सौंपे हुए कार्य को अर्थ-स्वार्थ की दृष्टि से लाभ-हानि के पलडे मे ही वह तोलता है। समाजहित, राष्ट्रहित, स्वल्पत्याग, बालको का हित—इन सबसे इस अध्यापक को कोई सम्बन्ध नहीं रहता है, चाहे कक्षाध्यापन हो या सहपाठी प्रवृत्ति, इसमे थोडा-सा भी अर्थलाभ दिखाई पड़ते ही कार्य करने का उत्साह उसमे दुगुना हो जाता है। अपने स्वार्थ के लिए शाला-समय मे अधिक से अधिक इजाजत मांगना, अपने ही बिलो का कार्य करते रहना, कक्षाध्यापन के समय मे निजी परीक्षा की तैयारी करते रहना, शाला मे स्वयं के काम होने से देर से आना और शीघ्र चले जाना उसका स्वभाव बन जाता है। अर्थलाभ से वंचित होते ही कार्य को मध्य मे अधूरा छोड़ देता है। कर्त्तव्य के प्रति वफादारी का उसके समक्ष प्रश्न ही नही रहता। घर घर ट्यूशन करना, व्यापार-वाणिज्य करना इत्यादि अन्य कार्य उसके लिए अपनी नौकरी से अधिक महत्त्व के होते हैं। ये किसी का विश्वास नही करते। नगण्य-सी बात मे भी कई शकाएँ उत्पन्न करते हैं। उसके साथी उसका साथ भी कम देते हैं। यदि कोई दो अध्यापक वार्तालाप कर रहे हो तब यही सोचते है कि वे उसकी निन्दा कर रहे हैं। उनके सरक्षण मे जो साधन-सामग्री पठन-पाठन सहायतार्थ होती है, उसे इस प्रकार बन्द रखते हैं कि कही हवा नहीं लग जावे। ये अध्यापक शाला के लिये अध्यापन की दृष्टि से कम लाभदायक होते हैं। शाला का कार्य इनके लिए भारस्वरूप होता है, परिवर्तन से बहुत घबराते है। अपना कार्य दूसरों से करवा लेते हैं। थोडा-सा समय शाला मे अधिक हो जाय तो व्याकुल हो उठते हैं। हर समय छुट्टी अथवा अवकाश की ही बात सोचते रहते है। अपनी कक्षा समय के पूर्व छोड देना उनका सहज स्वभाव बन जाता है।

इनमे दो प्रकार के स्वभाव के व्यक्ति पाये जाते हैं। एक तो वे जो कि अपने अधिकारी के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखते है, जिससे उनके कार्य मे बाधा उत्पन्न न हो और वे अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहे। अन्य वे अध्यापक होते हैं जो अपने अधिकारी से सघर्ष ही करते रहते है और हर कार्य मे बाधा डालते हैं। मेरे एक मित्र प्रधानाध्यापक को ऐसे ही एक अध्यापक से जिसका

मुख्य धधा फोटोग्राफी था, अत्यन्त परेशान होना पडा। ये अध्यापक नियम-बन्धनो से छूटने के लिए तडपते हैं और यदि कोई प्रधानाध्यापक नियम-बन्धनो को ढीला करने से इन्कार करता है तब उसके दुश्मन बन जाते हैं। इस वर्ग के अध्यापक शालाओ में १० प्रतिशत से ३० प्रतिशत तक पाये जाते हैं। इन अध्यापको से कार्य लेने का एक ही तरीका है। उनके अर्थलाभ से शाला का कार्य सतुलित बनाये रखना है। साथ ही शाला के कार्य के लिए शाला के बाहर इनको भेजा जाय अन्यथा शाला के एक घटे के कार्य के पीछे अपना तीन घटे का कार्य करके वे लौटेंगे।

संतुलित मनोवृत्ति-प्रधान अध्यापक

इस वर्ग के अध्यापक सरल मनोवृत्ति के सीधे-सादे एव अपने काम-से-काम करनेवाले सभ्रान्त व्यक्ति होते हैं। इनके बिना शाला का सतुलित सचालन कठिन हो जाता है। ये विश्वसनीय, गभीर, अध्ययनशील, रचनात्मक मनोवृत्ति के, निष्ठा एव लगन से कार्य करनेवाले एव सस्था के प्रति ममत्व रखनेवाले होते हैं। इनकी कार्य-निष्पन्नता मे स्पष्टता अधिक रहती है एव विषय को अथवा इसके रहस्य को शीघ्र समझ लेते हैं। नगण्य-सी छोटी बातो के लिए कभी प्रधानाध्यापक के पास नही जाते। वे अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखना जानते हैं। स्वतत्र रूप से कार्य करने की क्षमता उनमे विद्यमान रहती है। उचित अनुचित का व्यावहारिक विवेक भी उनमे होता है। उनके कार्यों मे त्रुटियाँ आने की सभावना कम रहती है। यदि अधिकारी से मनमुटाव भी हो जाय तो भी वे मौन रहते हैं। कभी विनाशक प्रवृत्तियो को नही अपनाते हैं। उनकी तरफ से कोई समस्या उत्पन्न नही होती। आलोचना भी कम ही करते हैं। विकट समस्याओ मे भी उनका मस्तिष्क सतुलित कार्य करता ही रहता है। समस्या सुलझाने मे सहायक होते हैं। इस वर्ग मे अधिकाश अध्यापक सम्पन्न अथवा मध्यम श्रेणी के वर्ग के व्यक्ति होते हैं। सम्पन्न अध्यापक शालाओ की छोटी-छोटी आर्थिक समस्याओ मे भी सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ यदि उनके पास वाहन है तो आवश्यकता पडने पर देते रहते हैं। कभी अतिथि-सत्कार मे भी अपने यहाँ आयोजन रखकर सहयोग देते हैं। विनिमय मे ये अध्यापक प्रामाणिक होते हैं और जीवन मे सतुष्ट बने रहते हैं। इस प्रकार के अध्यापक प्रत्येक शाला मे एक या दो से अधिक नही होते हैं। मैं जिन जिन शालाओ मे रहा हूँ, मुझे ऐसे अध्यापक दो-चार मिल ही गये हैं, लेकिन मेरे मित्रो के पास ऐसी शालाएँ भी देखी हैं जहाँ इस प्रकार के अध्यापको के अभाव मे स्वय प्रधानाध्यापक को जिम्मेदारी के सभी कार्य करने पड़ते हैं।

विकृत बुद्धि अध्यापक

"हम यह कहते हैं कि सिगरेट मत पिओ, शराब मत पिओ, ब्रह्मचर्य का पालन करो इससे तुम सौ वर्ष तक जीवित रहोगे–कितनी मूर्खता की यह बात है। इसके बजाय यदि यह सभी मौज शौक, भोग विलास पूर्णतया प्राप्त करके ४० वर्ष में ही मर जावें तो क्या बुरा है।" ये वाक्य हैं मेरे एक साथी अध्यापक के जिसने आज से १७ वर्ष पूर्व कहे थे। यह है जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण जिसमे पशुवत् इन्द्रिय-सुख और वासना-तृप्ति के अलावा कुछ भी नही है। इस वर्ग के अध्यापकों का अधिकारी कितना भी कल्याण करें वे कृतघ्न ही होते हैं। उनके स्वार्थ-सिद्धि में बाधा डालनेवालों के ये कट्टर दुश्मन बन जाते हैं। अन्य साथियों का अधिक-से-अधिक नुकसान कैसे हो यही उनकी भावना बनी रहती है। साहित्यिक भाषा में ये शेक्सपीयर के 'इयोगा' होते हैं। चरित्र की दृष्टि से विद्यार्थियों के विकास में ये हानिकारक रहते है। कक्षाओं में ये अध्यापन बहुत कम पढाते हैं। जब पढाते हैं तो विकृत अर्थ ही बतलाते हैं। इतिहास के तथ्यों को ये अधिक तोडते हैं। साहित्य में भी इसी प्रकार अर्थ का अनर्थ करते हैं। इस वर्ग में दो उपवर्ग होते हैं (१) उद्धत (२) कुटिल।

(१) उद्धत –इस वर्ग के उद्धत, कलहप्रिय, लडाकू, गाली गलौज करनेवाले होते हैं। प्रत्येक आज्ञा का उल्लंघन करने में वे गौरव अनुभव करते हैं। स्टाफ-मीटिंग में कोई निर्णय लेना, कार्य करना अथवा विचार करना इनकी उपस्थिति की वजह से असभव-सा हो जाता है। वे प्रत्येक अच्छी बात का विरोध करेंगे। आलस्य, भोग एवम् स्वार्थसिद्धि में ही इनका मन लगा रहता है।

(२) कुटिल –एक वे अध्यापक होते हैं जो ऊपर से मीठे लेकिन पीठ के पीछे छुरा भोंकनेवाले होते हैं। जो अध्यापक इतनी खुशामद करनेवाला हो कि प्रातःकाल हमारे जगने से पूर्व नमस्कार करने उपस्थित हो जाय और रात्रि को सो जाने के बाद घर पर जाय, उसका कभी विश्वास नही करना चाहिए। ये विश्वासघाती होते हैं। पर्दे के पीछे गुटबाजी करना, साथी-साथी को लडाना, विद्यार्थियों में असन्तोष उत्पन्न करना, इनका प्रधान लक्ष्य रहता है। एक ऐसे अध्यापक का मुझे ज्ञान है जो अपने अधिकारी का पूर्ण कृपापात्र एवं दाहिना हाथ था जिसने उस अधिकारी के विरुद्ध हड़ताल में विद्यार्थियों को धन तक की सहायता की थी।

मिलनसार अध्यापक

इस वर्ग के अध्यापक अधिकांशत बाह्यमुखी होते हैं। यह बहुभाषी, प्रदर्शनप्रिय वायदा करनेवाले, परम्परावादी, व्यावहारिक सम्बन्ध निभानेवाले

एव दृश्य प्रमाण के आधार पर ही सोचने-विचारनेवाले होते हैं। इनमे खिलाड़ी, सामाजिक कार्यकर्ता एव सामाजिक प्रवृत्तियों में भाग लेनेवाले होते हैं। किसी भी व्यक्ति से पहिचान शीघ्र बढ़ा लेते हैं। समुदाय मे सरलता से इस वर्ग के अध्यापकों मे "अहम्" की भावना अधिक अभिव्यक्त होती है। इनमे तीन उपवर्ग पाये जाते हैं।

(अ) यशाभिलाषी :—ये ऐसे कार्य की तलाश मे रहते हैं जहाँ इन्हे खूब प्रशसा प्राप्त हो। ईर्ष्या की मात्रा इनमे अधिक होती है। यदि यश किसी अन्य को मिलनेवाला हो तब अपना सहयोग वापस खीच लेते हैं एव तत्काल दोष निकालना आरम्भ कर देते हैं। यदि अन्य अध्यापक के किये गये कार्य का यश स्वय लेने का प्रसग उपस्थित हो जाय तो कार्य करनेवाले को शीघ्र पृष्ठभूमि मे दबाकर स्वय रगमच पर दर्शकों के सामने आ जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि कार्य करनेवाले के मन मे निराशा छा जाती है। यशप्राप्ति होने पर कभी-कभी ये बहक जाते हैं और यह समझने लगते हैं कि उनके बिना शाला का कार्य चलेगा ही नही। विषय ज्ञान इनका सामान्य होता है।

(ब) बाबू : इनको छोटे बाबू अथवा बड़े सरकार की सज्ञाओं से भी सबोधित किया जाता है। रगीला व्यक्तित्व, फिजूलखर्ची, कीमती आधुनिक फैशनपरस्त पोशाक, ये इनके प्रधान लक्षण होते हैं। सिनेमा, क्लब, दावतें, सभा इत्यादि मे जाना इनका मुख्य कार्यक्रम रहता है। विषय ज्ञान मे ये साधारण ही होते हैं। अपना काम अन्य साथियों से करवा लेने मे गर्वानुभव करते है। किसी भी बहाने से अनुज्ञा लेकर शाला से व कक्षा से बाहर रहना, कक्षा समय मे पूर्व छोड़ देना, इनकी सामान्य आदत हो जाती है। जब मिलेंगे अपना स्वास्थ्य प्रतिकूल ही बतलायेंगे। सख्त काम इनसे होता ही नही है।

(स) जल्दबाज —कार्य करने के प्रति उत्साह मे इतना उतावलापन करते हैं कि या तो कार्य बिगड़ जाता है अथवा होता ही नहीं। कार्य ये तभी आरम्भ करेंगे जब कार्य का समय बहुत ही कम रह गया हो। ये जल्दबाजी मे साथियों से विवाद उत्पन्न कर देते हैं। लापरवाही इनका प्रधान लक्षण रहता है। असफल होने पर दोष अपने साथी अथवा प्रधानाध्यापक पर मढ़ देते है। छोटी-छोटी बातों पर निराश, हतोत्साह व क्रोधित हो जाते हैं।

(द) कार्यापेक्षी —"हमारे पास कार्य करने का समय तो नही है। हम तो आपको सलाह दे सकते हैं कि काम करो और इस प्रकार करो" यह उनका वाक्य होता है। सभी बातों मे प्रेक्षक ही बने रहते हैं। काम सौंपा जाय तब

दस बहाने बनाकर काम करने से छूट पड़ते हैं। इनका नकारात्मक व्यक्तित्व ही विकसित होता है। 'यह काम कभी सफल नहीं हो सकता", यही काम के आरम्भ के समय उनका मतव्य रहता है। अधिकाशतः पराजयवादी होते हैं। उनका आत्मविश्वास डगमगाता रहता है शक्तियाँ सुषुप्त हो जाती हैं और रुचियाँ नकारात्मक बन जाती है, परिवर्तन से विमुख बने रहते है। नया कार्य आने पर आरम्भ मे ही कह देते है, "साहब यह कार्य तो हमसे नहीं होगा"। जब उन्हें कोई काम नहीं दिया जाय और कोई उन्हें हाथ मे लेने का सुझाव देवें तब कह देते हैं "गरज होगी तब हमारे पास आयेगा।" अपनी शक्तियों को अन्य साथियों की शक्ति से अधिक आँकते हैं। इनमे यदि कोई थोड़ा-सा भी काम करनेवाला अध्यापक हुआ तब तो काम करने के पूर्व बड़ी खुशामद करवाता है और कनिष्ठ अध्यापको से बात करने मे हीनता का अनुभव करता है। किसी से सीखना तो वह चाहता ही नहीं। कभी अपने साथी के कार्य की प्रशसा नहीं करेगा। यदि उसके साथी ने कार्य को सुन्दर रूप से कर दिया तो उसके अभिमान को ठेस पहुँचती है और शीघ्र आलोचना कर देते हैं, "यह तो सब दिखाने का है'। देखो न काम मे कितनी गलतियाँ थी। समय से काम को पूरा करने मे इन्हे अधिक कठिनाई होती है। छात्र असतोष फैलाने मे भी कभी-कभी ये निमित्त बन जाते हैं।

निराश अध्यापक

इस व्यक्तित्व के दो रूप सामने आते हैं—(१) उदासीन (२) हताश। भग्नाशा से युक्त अध्यापक उत्साहहीन व दुखी रहता है। अपने समुदाय से विलग रहता है। काम करने की इच्छा ही नही होती है। वह अपने कर्तव्य के प्रति, अपने स्वय के प्रति, अपने समाज के प्रति, उदासीन बना रहता है। कौटुम्बिक वातावरण, जीवन के घात प्रत्याघात, प्रगति को अवरुद्ध करनेवाली बाधाएँ इसके जीवन मे रस को सुखा देती हैं। ये अध्यापक यत्रवत् कार्य करने के आदी हो जाते हैं। विद्यार्थी पढ़ें या भाग जायें, शाला मे अच्छा कार्य हो चाहे न हो, शाला मे कोई अतिथि आवे चाहे न आवे, उनको इससे कोई सम्बन्ध नहीं। 'मुझे क्या करना है ? चलता है, होता रहेगा जो होना है'— यही उनकी विचारधारा बनी रहती है। कोई भी कार्य समयानुसार पूर्ण नहीं कर सकते। आज के प्रयोग प्रायोजना प्रधान युग मे, समुदाय मे इनका समायोजन असभव-सा हो जाता है। लकीर के फकीर रहते? गतानुगतिक प्रवृत्तिया के लिए ये अध्यापक अनुपयुक्त होते हैं।

निराशा जब हताशा मे परिणत हो जाती है तब अध्यापक एक समस्या

बन जाता है। एक हताश अध्यापक मेरे सम्पर्क म आया है। वह उपाधि प्राप्त था लेकिन कक्षा छोडकर बाहर बेंच पर सोकर सिगरेट पीता रहता है। जब उसका यह कार्य अनुचित बतलाया गया तब प्रयोगशाला म किवाड बन्द कर पीता रहता। जब उसे बार-बार मुख्य स्थान छोड घर जाने से रोका गया तब रात्रि को १० बजे साइकल निकालकर बीस मील घर पहुँचता। प्रात फिर चार बजे निकल कर वापस आता। जब उसकी पत्नी अपने पिता के घर जाने को उद्यत हुई तब अपने मासूम दूध पीते बच्चे को लेकर शाला म चला आया। बडी कठिनाई से अध्यापक साथियो ने समझा-बुझाकर बच्चे को पत्नी के साथ भिजवाया।

इस प्रकार हताश अध्यापक धूम्रपान अधिक करता है अथवा शराब पीता है। हमारी कठिनाई यह होती है कि हमारे पास इतना समय नही होता कि ऐसे अध्यापको से हम मनोवैज्ञानिक ढग से काम लेवें और उनकी हताशा दूर करने का प्रयत्न करें। कभी-कभी हताशा आक्रामक प्रतिक्रिया म भी परिणत हो जाती है। ऐसे अध्यापक से काम लेना कठिन हो जाता है।

हमारे सामने समस्या यह है कि उदासीन मनोवृत्ति आज बढ रही है और हमारे अध्यापको म १५ से २५ प्रतिशत तक के अध्यापक उदासीनता के शिकार रहते हैं। इससे सभव है मानसिक असतुलन न बढ। शाला म ऐसा वातावरण हम कैसे बनाये रखें कि अध्यापक आनन्द अनुभव कर सके उदासीनता को भूल सके और थोडी चिताएँ हलकी हो—यही समस्या प्रधानाध्यापक के लिए मुख्य है। उदासीनता उदासीनता को ही जन्म देती है और विद्यार्थी भी इसके प्रभाव म आ जाते हैं।

राजनीतिज्ञ—इस श्रेणी के अध्यापक चालाक मतलबी अपना काम निकालने म दभ और भेदनीति से अध्यापको के आपस म फूट पडानेवाले होते हैं। किसी-न किसी राजनीतिक पार्टी से उनका सम्बन्ध रहता ही है। इन पर कोई भरोसा नही किया जा सकता। ये बहुरगी होते है और जहाँ जैसा रग देखा वैसे ही हो जाते है। इनको क्लब सभा सोसायटी सभी जगह देखा जा सकता है लेकिन वहाँ उनका उद्देश्य विशुद्ध राजनैतिक होता है। शाला की प्रवृत्ति राजनीतिक उद्देश्य के अनुरूप न होने पर बाधा उत्पन्न कर देते हैं। दिखावा अधिक करते हैं और काम कम करते हैं। किसी काय म नही फँसकर दूसरा पर भार डाल दते हैं। बदला लेने की भावना इनम प्रबल रहती है। अन्य साथियो को अपने राजनैतिक सम्बन्धो के प्रभाव से दबाव रखकर शोषित करते रहना इनका मुख्य कार्य होता है। तुम्हारा काम मैं करवा दूँगा कहकर

अध्यापकों को अपने चगुल मे फँसाये रखकर शोषित करते रहने का प्रयत्न करते है। रगमंच एव लाउड-स्पीकर के लिए हर समय लालायित रहते हैं। तालियाँ बजवाने के खूब शौकीन होते हैं। भाषण देने की उत्कट अभिलाषाएँ नियत्रित नहीं कर पाते। समिति अथवा सस्था के सचालक बनने की इन्हे तीव्र इच्छा बनी रहती है। धन्यवाद देने खडे होंगे तब पूरे आध घटे का प्रवचन देंगे। इन अध्यापकों के विचार, वाणी व कर्म मे सगति का अभाव रहता है। शाला की प्रतिष्ठा को भी इनसे हानि पहुँच सकती है। राजनीतिज्ञ अध्यापक शाला को लाभ भी पहुँचाते हैं। कई ऐसी समस्याएँ जो राजनैतिक स्तर पर हल नही जा सकती है अथवा राजनीतिक पार्टियो के नेताओ से हल हो सकती हो, वे इनके माध्यम से हल करायी जा सकती है।

कलाकार :—अध्यापकों मे श्रेष्ठ सगीतकार, चित्रकार, शिल्पी, कवि एव साहित्कार भी पाये जाते हैं। ये काम से काम रखनेवाले होते हैं। कार्य तब करते हैं जब मनोवृत्ति अनुकूल हो। काम बहुत ही सुन्दर एव आकर्षक करते हैं। इनमें थोडा आलस्य अवश्य पाया जाता है। ये अपने कार्य की सराहना मात्र चाहते हैं। हमारे कहने पर काम नही करेंगे लेकिन उनके ध्यान मे आते ही काम पर जुट जाते हैं।

धार्मिक मनोवृत्ति के अध्यापक

यहाँ धार्मिक से अर्थ है प्रचलित प्रधान धर्मों मे से किसी भी धर्म की परम्परा एव क्रियाओ म पूरा विश्वास रखनेवाले अध्यापक का। अपने धर्म-निरपेक्ष युग मे अन्य अध्यापक इनकी तरफ उदासीन अवश्य रहते हैं लेकिन ये अध्यापक ईश्वर मे श्रद्धा रखने के कारण नैतिकता की ओर अधिक झुकते हैं।

ये अध्यापक विश्वासपात्र, लगन से काम करनेवाले एव विद्यार्थियो मे ईश्वर के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले होते है। सस्कृति से उन्हे प्रेम होता है एव विनयशील भी होते हैं। ये अन्य धर्मों को अधिक उदारता से देखते हैं और उनका आदर करते हैं। इन अध्यापकों के लिए विद्यार्थियो मे भी आदर बना रहता है। इतना अवश्य है कि नये परिवर्तनो को आजमाने मे धार्मिक मनोवृत्तिवाले अध्यापक को कठिनाई होती है। ये अधिकाश रूढ़ि-वादी होते हैं।

तरुण अध्यापक

आज अधिकाधिक सस्था मे शालाएँ खुल रही है। परिणामत परिपक्व अनुभवनिमित अध्यापक प्राप्त नहीं होते। फलस्वरूप सोलह वर्ष की आयु से

चौबीस वर्ष की आयु तक के अध्यापकों की नियुक्तियाँ अधिक होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अवस्था व्यक्तित्व के निर्माण की है। अच्छे अध्यापक इनमें से गढ़ जा सकते है, यदि इनको उपयुक्त वातावरण काम एवं मार्गदर्शन मिले। लेकिन परिस्थितियाँ उनको उदासीन बना देती हैं। ये अध्यापक एकाएक समायोजित नहीं हो जाते। हमेशा प्रधानाध्यापक के पास छोटी मांगें निकायतें लाते ही रहते हैं। कभी-कभी कक्षा उनके नियंत्रण में ही नहीं रहती। ये विद्यार्थियों के इस प्रकार के मित्र बन जाते हैं कि अध्यापक विद्यार्थी की मर्यादा ही टूट जाती है। अपनी खिलती जवानी के प्रवाह में भूलें भी करते हैं। यदि सहशिक्षा का प्रावधान शाला में है तब इनकी नवोदित यौन भावनाएँ परिष्कृत अथवा विकृत होती रहती हैं।

उपरोक्त वर्गीकरण प्रशासन की दृष्टि से मनुष्य को समझने का एक प्रयास मात्र है। वर्ग इससे अधिक अथवा कम भी हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सभी अध्यापकों को इस खाके में बिठाया जाय। मिश्रित वर्ग के अध्यापक भी पाये जा सकते हैं।

आज शालाओं में अर्थाभिलाषी एवं कार्योपेक्षी अध्यापकों की संख्या अधिक है और संतुलित अध्यापक एवं कलाकारों की संख्या कम है। यदि किसी शाला में संतुलित अध्यापक नहीं रहे तो उस शाला का सुचारु रूप में संचालन मुश्किल हो जाता है एवं सभी काम प्रधानाध्यापक को करने पड़ते है। बिना कलाकार के शाला में सुन्दरता एवं स्वच्छता नहीं आती। तरुण अध्यापक यदि अर्थाभिलाषी एवं कार्योपेक्षी अध्यापकों के साथ रहे तो सम्पर्क उनको वैसा ही बना देता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक ही नहीं वरन् निरीक्षक निदेशक एवं सभी अधिकारी इस बात का ध्यान रखें कि प्रत्येक शाला में कम-से-कम एक संतुलित मनोवृत्ति का अध्यापक एवं एक कलाकार हो।

['जन शिक्षण' से साभार]

शिक्षकों की परिवर्तित भूमिका

डा० त्रिभुवन ओझा

हर स्वतंत्र राष्ट्र का एक अपना राष्ट्रीय चरित्र होता है और उस चरित्र का मुख्य विधायक तथा संवाहक तत्व होता है उस राष्ट्र की शिक्षा। एक राष्ट्र के जीवन में शिक्षा का वही स्थान है जो एक व्यक्ति के जीवन में। यह ठीक है कि एक सुनिश्चित लक्ष्य के अभाव में राष्ट्रीय शिक्षा के सभी संघटक तत्त्व—शिक्षक, शिक्षा प्रणाली, पाठ्‌-क्रम और पाठ्य-पुस्तकें आदि—सही दिशा और पर्याप्त मात्रा में कार्य नहीं करते और न ही उनसे उचित परिणति की अपेक्षा ही की जानी चाहिए। लेकिन शिक्षा यदि मनुष्य के पूर्वजन्मार्जित और स्वअर्जित समस्त शक्ति और सम्भावनाओं का द्वार मुक्त करती है तो वह एक राष्ट्र को भी न केवल सही दिशा-बोध देगी वरन् उसकी समस्त शक्ति, क्षमता और संभावित विकास की गति को बल भी प्रदान करेगी।

देश को आजाद हुए आज २२ वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस बीच देश में अनेक परिवर्तन हुए विकास के कई नये आयाम खुले और प्रगति के चरण कई नयी दिशाओं में संचरण किये। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में पारस्परिक मोहजनित जड़ता भंग न हुई। बात यह नहीं कि परिवर्तन की आवश्यकता हमने अनुभव नहीं की या कि परिवर्तन की उस अनिवार्य अकांक्षा का समवेत गान हमने न किया, सो सब कुछ नहीं। किन्तु शिक्षा के बहुविध लक्ष्य की अनिर्दिष्टता के कारण हम परिवर्तन की उस अनिवार्य प्रक्रिया के मुख्य घटक नहीं बन पाये। दूसरे शिक्षा और शिक्षक के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण भी बदल नहीं पाया। लगता है कि राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का महत्त्व अभी तक स्वीकारा ही नहीं गया है। यदि ऐसा होता तो निश्चित रूप से शिक्षा के बारे में आवश्यक सचेष्टता और सजगता बरती जाती न कि वह केवल प्रायोगिक होकर ही रह जाती। लेकिन आज इस देश की शिक्षा हमारे चरित्र और राष्ट्रीय विकास का एक अनिवार्य अंग न होकर रोजी रोटी पाने का केवल एक साधन या माध्यम बनकर रह गयी है। साध्य जब साधन बन गया तो, जैसा कि ऐसी हालत में अक्सर होता है साधन पर दृष्टि कम गयी और फलतः शिक्षा में शिक्षक की भूमिका या तो स्वयं गौण पड़ गयी या फिर उसकी भूमिका को गौण बताया या बनाया गया। चरित्र निर्माण जब आवश्यक न रहा तो चरित्रवान शिक्षक के चरित्र की महत्ता आँकी ही क्यों जाती? बुद्धि-

विकास और ज्ञानार्जन जब महत्त्वपूर्ण न रहे तो प्रतिभा-सम्पन्न, विवेकी बहुज्ञ और विशेषज्ञ शिक्षक की उपेक्षित होना स्वाभाविक ही था। और तब शैक्षिक उपाधियाँ जीविका की आवश्यक शर्तें बनीं, शिक्षा की स्वाभाविक निष्पत्ति नहीं। चरित्र निर्माण और राष्ट्रीय विकास से वर्तमान शिक्षा का जब नाता प्रायः टूट गया तो इस भ्रम को बल मिला कि चरित्र निर्माण और राष्ट्रीय विकास एक चीज है, और शिक्षा दूसरी।

शिक्षक कौन ?

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद शिक्षा-जगत् में राजनीति का प्रवेश हुआ। शैक्षणिक संस्थाओं के प्रशासन में राजनीति के कुटिल खेल खेलनेवाले नाममात्र के शिक्षित और संस्कारहीन तृतीय श्रेणी के व्यक्तियों का प्रवेश सुगम हो गया। फलतः विद्यालय, कालेज और विश्वविद्यालय का स्वाभिमानभरा गौरवशाली, स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व क्रमशः विनष्ट होने लगा। अध्यापकों में कुंठा, भय और असुरक्षा की भावना घर करने लगी। एक दूसरे ढंग से भी राजनीतिक नेताओं ने अध्यापकों को गुमराह उनकी शक्ति को कुंठित उनकी बुद्धि को जड़ और उनकी जीवन-दृष्टि को जीवन से विरत करने की चेष्टा की। नेताओं ने अपने भाषणों में कहा, शिक्षक देश की भावी पीढ़ी का निर्माता है समाज का विधाता है। उसे राजनीति के दलदल में नहीं फँसना चाहिए। सुख-सुविधा की आकांक्षा उसे न करनी चाहिए। उसके लिए त्याग वरेण्य है भोग त्याज्य। उसे प्राचीन ऋषियों की पंक्ति में बैठाया गया ऋषि आश्रम ही उसका निवास बनाया गया और अन्ततः अभावग्रस्त जीवन ही उसके लिए उचित ठहराया गया। शिक्षकों की एक अलग जाति-पाँत बनी। सामाजिक और राजनीतिक हलचलों से उसे हमेशा अलग रखने की चेष्टा हुई और राष्ट्रीय विकास, सामाजिक उत्थान सांस्कृतिक उन्नयन एवं राजनीतिक जागरण में उसके महत्त्व को परोक्ष ढंग से नकारा जाने लगा। उसे समाज का एक अजूबा व्यक्ति माना गया। नेताओं की ओर से प्रायः पुरजोर कोशिश की जाती रही कि शिक्षकों को अपनी शक्ति का एहसास न हो, अपने दायित्वों का ज्ञान न हो तथा कम-से-कम अपने अधिकारों का अवबोध न हो।

लेकिन इस भ्रांत धारणा का निरसन यथाशीघ्र होना ही चाहिए कि 'शिक्षक समाज का एक अजूबा व्यक्ति है।' अभी तक, जैसा कि लोग भ्रमवश समझते हैं, शिक्षक समाज का एक विशिष्ट व्यक्ति होता है। किन्तु विशिष्ट इस अर्थ में नहीं कि वह समाज में रहते हुए समस्त सामाजिक हलचलों से कटा रहता है या समाज का अन्न जल वह ग्रहण नहीं करता अथवा सामाजिक और

व्यक्तिगत सम्मान की भावना उसमें नहीं होती या उसमे भौतिक सुख की लालसा नहीं जागती और दुःख दशा उसमे दर्द नहीं पैदा करता। वह विशिष्ट इस कारण भी नहीं है कि 'गीता' के अनुसार वह 'स्थितप्रज्ञ' होता है और 'सुखे-दुखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' में उसकी मानसिक प्रतिक्रिया एक-सी होती है या 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के गुरुतर आदर्श को जीवन में चरितार्थ करने का सकल्प भार केवल उसी ने ले रखा है। वह विशिष्ट इस कारण भी नहीं है कि राजनीतिक परिवर्तनो, हलचलो से उसे कोई वास्ता नहीं होता या कि सामाजिक आर्थिक परिवर्तनो का प्रवक्ता, सास्कृतिक चेतना सवाहक, बौद्धिक जागरण का उद्घोषक और स्वतत्रता का जागरूक प्रहरी बनना वह नहीं चाहता या उसमे इन दायित्वो को सम्भालने की क्षमता नहीं होती। उसकी विशिष्टता इस बात में भी निहित नहीं है कि वह हर चीज, हर वाद, हर सिद्धान्त, हर सघर्ष को बिना सोचे-समझे अपना लेता है या उसके आगे घुटने टेक देता है और जुझने के बजाय वह भाग खडा होता है।

जब यह सब कुछ नहीं तो वह विशिष्ट क्यो? विशिष्ट इसलिए नहीं कि उसमे उपर्युक्त विशेषताएँ हैं वरन् इसलिए कि उसकी बौद्धिक चेतना सर्वाधिक सवेदनशील, जागरूक और सक्रिय होती है। उसकी विशिष्टता इस बात में निहित है कि वह सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र का अधिष्ठाता है। एक सुदृढ समाज की गहरी नीव मे पत्थर डालने का काम वह और केवल वही करता है। वह देश के वर्तमान जीवन का नियामक और भविष्य का सष्टा ही नहीं, गौरवशाली अतीत का समर्थ व्याख्याता भी वही है। परशुराम और द्रोणाचार्य जैसे गुरुओ के तेजोदीप्त, महिमामडित व्यक्तित्व का भी उसे भान है। उसमे भी उन्ही का तेज-ताप, पौरुष-पराक्रम शेष है। वह, अब, धीरे धीरे विनय की भाषा भूल रहा है, मात्र भिक्षा पर जीना नहीं चाह रहा है, अभाव की अग्नि मे तपकर वह कचन जो बन गया है।

शिक्षको की भूमिका क्या हो?

आज परिस्थितियाँ बदलती जा रही है। इस बदलते सदर्भ मे शिक्षको की भूमिका और दायित्व भी गुरुतर होता जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि देशहित से सम्बन्धित किसी भी राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नो, समस्याओ पर वह न केवल विचार करे, निर्णय ले, वरन् सक्रिय सहयोग दे और राष्ट्रीय मगल कार्यों का वह नेतृत्व भी करे। मैं मानता हूँ कि उसके चारो ओर जो वाडे लगाये गए हैं, जो सीमाएँ खडी की गयी हैं उन्हे पलक मारते वह दूर नहीं

कर सकता। लेकिन अपनी शक्ति का अवबोध होने से हर कार्य सम्भव है। आज युवा-वर्ग (इसमें छात्र भी सम्मिलित हैं) में असंतोष, भय, कुंठा, संत्रास, नव निर्माण की आकांक्षा, भावी मंगल का आह्वान आदि जो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं उनमें पर्याप्त सृजनात्मक सम्भावनाएँ हैं। आवश्यकता है उन्हें सही दिशा निर्देश और नेतृत्व की। इन सृजनात्मक शक्तियों का सही नेतृत्व केवल शिक्षक ही कर सकता है, क्योंकि युवकों और छात्रों को जितनी निकटता से शिक्षक जानता-समझता है उतनी निकटता से और कोई नहीं। बहुत-सी समस्याएँ शिक्षकों और छात्रों की एक-सी हैं। छात्रों का सबसे बड़ा विश्वासी शिक्षक होता है और शिक्षकों का सर्वाधिक विश्वासपात्र छात्र। आज देश के स्वार्थलोलुप, राजनीतिक नेता छात्र आन्दोलन, युवा असंतोष को गलत नेतृत्व देकर देश में विध्वन्सकारी कार्य करा रहे हैं। इस प्रकार देश की सबसे बड़ी शक्ति विनाश में लगती जा रही है। इससे देश को बचाने राष्ट्रीय विकास में योगदान देने और राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के लिए शिक्षकों को आगे आना ही होगा। शिक्षक अब समाज का निरीह व्यक्ति न रहा। दूसरे की कृपा पर वह जीना नहीं चाहता है। नारे लगाना उसके लिए अब अशोभन नहीं। क्रान्ति का नाम लेना अराजकता नहीं, सुविधाओं की माँग करना अनुशासनहीनता नहीं। नेतृत्व की बागडोर अब सम्भालनी ही होगी।•

संस्थागत नियोजन

गगा महेश मिश्र

सुनन म सस्थागत नियाजन एक नयी चीज लगती है किन्तु वस्तुत देखा जाय तो प्रत्येक सुबुद्ध और कर्तव्यशील प्रधानाध्यापक/प्रधानाचार्य अपने विद्यालय को ऊँचा उठाने की दृष्टि से अपना एक कार्यक्रम बनाता है और उस निर्धारित क्रम क अनुसार ही विद्यालय के शैक्षिक और प्रशासनिक कार्यकलाप म सुधार करने का प्रयास करता है। ऐसा बरसो से होता चला आ रहा है। विद्यालय उन्नयन के इस कार्यक्रम को थोड़ा और सुनियोजित करना और उस कार्यक्रम की पूर्ति क लिए समय साधन और मानवीय प्रयास का निर्धारण ही दूसरे शब्दो म सस्थागत नियोजन है।

सस्थागत नियोजन क्या है ? यदि इसे थोड़े से स शब्दो म कहा जाय तो यह विद्यालय परिवार का ऐसा सहायता प्राप्त कार्यक्रम है जिसे वे स्वय नियोजित कर सचालित करते हैं। इसम स्थानीय रूप म उपलब्ध सभी साधनो से लाभ उठाया जाता है। सरकार से कुछ आर्थिक तथा तकनीकी सहायता की ही अपेक्षा की जाती है। इसका उद्देश्य आत्म विश्वास प्रेरणा शक्ति का विकास तथा विद्यालय के हितो का निरन्तर चिन्तन है।

विद्यालय-योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि विद्यालय के सभी सम्बन्धित व्यक्ति मिलकर विद्यालय की वतमान कमियो के बारे मे विचार करें और उन्हे दूर करने के लिए सगठित प्रयास करें। शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए यद्यपि धन की आवश्यकता होती है किन्तु मानवीय प्रयास का भी अपना अलग महत्त्व है। सस्थागत नियोजन म स्थानीय उपलब्ध साधनो का सहारा लेकर विद्यालय को समुन्नत करने के मानवीय प्रयास पर ही सर्वाधिक बल है।

विद्यालय के समुचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय मे ऐसे वातावरण का सही रूप मे निर्माण हो जिसम प्रत्येक अध्यापक विकास काय को अपना दायित्व समझ। आरम्भ म अल्पकालिक योजनाएँ बननी चाहिए परन्तु बाद म एक वष से अधिक अवधि की अर्थात दीर्घकालिक योजनाएँ भी बनायी जा सकती हैं। प्रारम्भिक स्तर के विद्यालयो (जूनियर बेसिक तथा सीनियर बेसिक स्कूलो) के लिए आरभ मे यही वाछनीय होगा कि प्रत्येक विद्यालय अपनी अपनी वार्षिक योजना बनाये और उनका सही रूप

मे कार्यान्वयन करे। सस्थागत नियोजन म हम भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार जे० पी० नायक के उस कथन को सदैव सम्मुख रखना है जिसम उन्होंने कहा है कि "नीचा लक्ष्य नही, वरन् असफलता अपराध है" (Not low aim but failure is acrime)।

शैक्षिक उन्नयन की दिशा मे सस्थागत नियोजन के कार्य के महत्त्व पर बल देते हुए शिक्षा निदेशालय उ० प्र०, से जो निदेशपत्र प्रदेश के समस्त जिला विद्यालय निरीक्षको को तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारियो को अभी हाल मे निर्गत हुआ है, उसकी रूप रेखा अध्यापक बन्धुओ के लाभार्थ नीचे दी जा रही है।

सस्थागत-नियोजित-लक्ष्य निर्धारित करने के सिद्धान्त

सस्थागत नियोजन के अन्तर्गत विद्यालय स्थानीय परिस्थितियो को दृष्टि मे रखते हुए अपनी अपनी विकास-योजनाएं अलग अलग बनायें। इन योजनाओ मे विकास लक्ष्यो को निश्चित करने म निम्नलिखित सिद्धान्तो को दृष्टि मे रखना चाहिए —

१—विद्यालय-योजना विद्यालय के अध्यापको द्वारा विद्यालय की तात्कालिक आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर बनायी जाय।

२—लक्ष्य ऐसे हो जिनसे वर्तमान स्थिति मे साधन तथा क्षमताओ की दृष्टि से अधिकतम लाभ हो सके अर्थात वे ठोस एव व्यावहारिक हो।

३—प्रारम्भ मे इतने ही लक्ष्य निर्धारित किये जायें जिनकी पूर्ति सत्र म हो सके। लक्ष्यो की सूची बालको तथा कक्षा शिक्षण की आवश्यकताओ के आधार पर हो अर्थात अधिक आवश्यक कार्य सूची मे ऊपर रखे जायें।

४—कुछ लक्ष्य ऐसे भी हो जिनमे स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियो समुदाय, प्रबन्ध-समिति तथा विद्यालय के सभी अध्यापको का सहयोग लिया जा सके।

५—लक्ष्यो के चुनाव मे सम्बन्धित अध्यापको की रुचि, योग्यता व क्षमता का भी ध्यान रखा जाय।

६—इनम से कुछ लक्ष्य एस होंगे जिन्हे प्राप्त करने मे विद्यालय मे सभी अध्यापको का सहयोग सामूहिक रूप से अपेक्षित होगा जैसे स्वच्छता, अनुशासन, बालको का स्वास्थ्य, यूनिफार्म आदि। ऐसी योजनाओ के अन्तगत अच्छा यह होगा कि एक मास के लिए एक विषय लिया जाय और उसी पर पूरा बल दिया जाय। दूसरे मास म दूसरा विषय लिया जाय, मगर पहले विषय का

अनुसरण निरन्तर चलता रहे और पूरे सत्र भर उसमें शिथिलता न आवे। इसी प्रकार विषयों का क्रम चलता रहे। एक सत्र में ४-५ विषयों से अधिक को नहीं लेना चाहिए।

एक प्राथमिक विद्यालय की योजना की रूप-रेख

विद्यालय-योजना को (क) दैक्षिक उन्नयन (Improvement) तथा (ख) विकासात्मक (Developmental) पहलुओं में बाँट लेना चाहिए। दैक्षिक उन्नयन का तात्पर्य शिक्षा के गुणात्मक सुधार से है। अत इसमें दैक्षिक कार्यों को ही लिया जावे।

उदाहरणार्थ —

(१) छात्रों के लिखित कार्य को उन्नत करना

(क) छात्रों से लिखित कार्य नियमित रूप से कराना।

(ख) लिखित कार्य की नियमित रूप से जाँच होना और छात्रों द्वारा त्रुटि-सुधार।

(ग) इस कार्य को गुणात्मक एव परिमाणात्मक दृष्टि से उत्तम बनाना।

(२) वर्तनी-सुधार

(क) कक्षा-स्तर के व्यवहार म आनेवाले शब्दों का सर्वेक्षण और सचय कर एक चार्ट बनाना जो कक्षा म टँगा रहे।

(ख) ऐसे चार्ट में प्रति सप्ताह २० शब्द सबको दीखने वाले स्थान पर मोटे अक्षरों में लिखा देना।

(ग) सप्ताहान्त में उनका श्रुतलेख कराना और अशुद्ध लिखे शब्दों को पाँच बार लिखवाना।

(३) कक्षा ४ और इससे ऊपर की कक्षाओं में स्वाध्याय का स्वभाव डालना

(क) विद्यालय के पुस्तकालय की पुस्तकों को पढने की रुचि उत्पादन करना।

(ख) कक्षा ४ और इससे ऊपर के बालकों में पत्र-पत्रिकाओं के बढने में रुचि उत्पन्न करना।

(ग) पत्र पत्रिकाओं से चित्र एव उपयोगी विषय सामग्री काटना।

(४) बालकों की स्वच्छता

(क) प्रतिदिन बालक स्वच्छ कपडे पहन कर आयें।

(ख) वे मुँह, दाँत, नाखून, बाल, आँख तथा नाक साफ रखें।

(ग) अस्वच्छ दाँतों, नाखूनों आदि की सफाई विद्यालय में ही कराना।

(घ) स्वच्छ रहने की आदत डालना।

(५) शाला-उद्यान निर्माण

(क) वर्षा-काल में ही चहार दीवारी की व्यवस्था करना।

(ख) वर्षा-कालीन तथा बाद में जाडे के फूलदार पौधे लगाना।

(ग) बालकों द्वारा खाद तथा पानी की व्यवस्था कराना।

(६) गणवेश (यूनीफार्म) की व्यवस्था

(७) कक्षा-शिष्टाचार

(८) कक्षा से बाहर आचार व्यवहार में शिष्टाचार लाना

(९) उच्चारण-शुद्धि

(१०) पर्याप्त मात्रा में कविताओं को कठाग्र करना

(११) बालकों द्वारा श्यामपट्ट का प्रयोग और पाठ विकास में अधिकाधिक योगदान।

(१२) कक्षा में बालकों द्वारा मानचित्रों का सामूहिक रूप में सघन अध्ययन।

(१३) चार्टों, चित्रों तथा माडल्स का निर्माण।

चार्टों आदि के निर्माण का तात्पर्य कक्षा शिक्षक के लिए उपयुक्त सहायक-सामग्री के निर्माण से है। इनका निर्माण अध्यापक स्थानीय उपलब्ध सामग्रियों से ही कर सकते हैं जैसे

(१) गणित—लिटर की धारणा, बालकों को पुराने टीन के डिब्बे में एक लिटर पानी भर के पानी की सतह के ठीक ऊपर छेद बनाकरदी जा सकती है।

मीटर के लिए दीवार पर खडी (ऊँचाई नापने के लिए) तथा पडी लाइनें बनाकर उनमें सेन्टीमीटर के निशान बना दिये जायें। बच्चे अपनी ऊँचाई, फैली बाहों की लम्बाई, बालिश्त तथा पैर का सही नाप याद रखें।

किलोग्राम तथा इससे बडे भारों के लिए ईंट या पत्थर के टुकडे उसी तौल के बनाये जा सकते हैं।

गिनती, दहाई, सैंकडा भिन्न दशमलव, ज्यामितीय आकृतियाँ तथा विशिष्ट संख्याओं के पढ़ाने के लिए सरल चार्ट सभी प्रशिक्षित अध्यापक बना सकते हैं।

(२) सामाजिक विषय—इसके अन्तर्गत समय-रेखा, विभिन्न प्रकार के मानचित्र, प्राकृतिक भूगोल सम्बन्धी चार्ट जैसे दिन-रात, ऋतुएँ, ज्वार-भाटा, सौर-मंडल इत्यादि की रेखा चित्र उत्साही अध्यापक स्वयं बना लेते हैं। अतः इस कार्य को अवश्य प्रोत्साहन दिया जाय। भौगोलिक परिभाषाओं, जैसे द्वीप प्रायद्वीप, महाद्वीप, जल डमरूमध्य तथा यदि सम्भव हो सके तो प्रदेश तथा देश के मिट्टी के बने माडलों का प्रयोग यथाशीघ्र प्रारम्भ किया जा सकता है। विद्यालय के प्रांगण में ही भूमि पर देश, प्रदेश और जिले के मानचित्र (Relief maps) बालकों के लाभार्थ बनाये जा सकते है।

(३) भाषा—भाषा के अन्तर्गत कहानी चित्रण, वर्तनी की अशुद्धियों के अनुसार वर्गीकरण (ह्रस्व दीर्घ, स, श, ष, मात्रा, संयुक्ताक्षर, अनुस्वार, चन्द्र-बिन्दु आदि) शब्द-सूचियों, फ्लश कार्डस टविस्टीस्कोप तथा फ्लानेलोग्राफ आदि का निर्माण स्थानीय साधनों से कराया जा सकता है।

(४) कृषि और सामान्य विज्ञान—के अन्तर्गत विभिन्न पेड पौधे, पशु-पक्षियों, फसलों तथा प्रक्रियाओं आदि के चित्र बनवाये जा सकते हैं। छात्र पक्षियों के पर, घोसले एकत्रित करें तथा पत्तियों व फूलों को सुखाकर एल्बम तैयार कर सकते हैं।

प्रत्येक पाठशाला के किसी सुरक्षित स्थान में एक सैंड-ट्रे अथवा सैंड पिट बनाया जा सकता है, जिससे बालकों में स्वतंत्र भाव प्रकाशन के अन्तर्गत कार्य कराना सम्भव हो सके।

(१४) संग्रह करना

प्राइमरी विद्यालयों में संग्रह-कार्य पर विशेष बल देना चाहिए। इसमें स्थानीय पैदा होनेवाले अनाज, स्थानीय मिट्टी तथा चट्टानें, कारीगरी की वस्तुएँ, पेड-पौधे तथा जीव जंतु-सम्बन्धी संग्रह को बल देना चाहिए।

विज्ञापनों, समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में भाषा, सामाजिक विषय, कृषि तथा सामान्य विज्ञान, स्वास्थ्य तथा मनोरंजन-सम्बन्धी चित्र प्रायः निकलते रहते हैं। अध्यापकों को इनके संग्रह, सुरक्षा (एल्बम तथा चार्ट के रूप में) प्रदर्शन एवं सम्यक प्रयोग को प्रोत्साहन देना चाहिए।

विकास कार्यों का सम्बन्ध उन कार्यों से है जिनके लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता हो सकती है। इन कार्यों को वरीयता के आधार पर दो भागों में (क) अल्पकालिक (ख) दीर्घकालिक में बाँट लेना चाहिए। अल्पकालिक योजना
(शेष पृष्ठ १८७ पर)

पाठ्यक्रम में सहायक पुस्तकों का स्थान

सच्चिदानन्द सिंह 'साथी'

शिक्षण की उदात्त प्रक्रिया निम्नांकित मुख्य बिन्दुओं से होकर गुजरती है जिसके केन्द्र में बालक है

यथा • शैक्षिक उद्देश्य• शिक्षक• पाठ्यक्रम• शिक्षण विधि आदि।

बालक जो क्रम क्रम से अपनी आयु-सीमा को पार करता हुआ प्रौढ़ता की दुनिया में प्रवेश करता है वह आयास अनायास सहस्र माग रखता चलता है जिनकी पूर्ति हम करते नहीं करते है। आज के वैज्ञानिक युग में हमने बालकों के प्रिय चाद चन्दा मामा को पकड़कर उनके सामने रख दिया तो उनके अन्य मांगो को हम वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि देकर क्यों नहीं देखे? आज शिक्षा जगत् में भी नयी-नयी खोजें नयी नयी चमत्कारिक उपलब्धियाँ हाथ लग रही हैं, जिनका सही उपयोग कर बालको के विकासमय जीवन को हम एक नयी और निश्चित दिशा दे सकते हैं। और इसके लिए उनके सामने हम पाठ्यक्रम का एक सुनिश्चित दर्पण रखते हैं।

पाठ्यक्रम

शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप में पाठक्रम हमारे सामने आता है। हम यों कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम हमारे शैक्षिक उद्देश्य का व्यावहारिक परिधान है। एतदर्थ इस क्रम मे आनेवाली हर महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया इसमें समाहित है। यो साधारणतया अगर हम समझ लें कि पाठ्यक्रम मात्र पाठ्य-पुस्तकों की निर्देशिका है तो यह सर्वथा गलत है। यह तो सत्य है कि पाठ्य-पुस्तक का इसमें महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु इसके अतिरिक्त छात्रों के वे सभी अनुभव जो वे विद्यालय या समाज में प्राप्त करते हैं उनका आकलन भी इसमें होता है। इसलिए हम कहेंगे कि—"Modern curriculum covers all the wider

areas of individual and group life. It encompasses all the meaningful and desirable activities outside the school, provided that these are planned, organised and used educationally.† इसलिए तो माध्यमिक आयोग ने यह मत व्यक्त किया है—"It must be clearly understood that according to the best modern educational thought, curriculum in this context does not mean only the academic subjects traditionally tanght in the school but it includes the totality of experiences that pupil receives through the manifold activities that go on in the school, in the class room, library laboratory, workshop, play-grounds and in numerous informal contacts between teachers and pupils. In this sense, the whole life can touch the life of the students at all points and help in the evolution of balanced personality.* जो आज की शिक्षा-नीति की स्वीकृत माँग है।

इस प्रकार पाठ्यक्रम के दो महत्त्वपूर्ण विचार बिन्दु सामने आये—

पुस्तकें—लिपिबद्ध रूप में छात्रों के लिए ज्ञानार्जन एवं मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों की उपलब्धि के साधन बनती है, और

सह-पाठ्य-क्रियाएँ—पाठशाला के पाठ्येतर कार्यक्रमों की वाहिका बनकर बालकों के सर्वांगीण विकास का साधन बनती है।
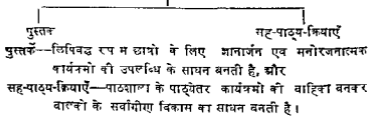
और, इस प्रकार पाठ्यक्रम सम्पूर्ण विद्यालय-जीवन को प्रभावित करता है। यह कहना नहीं होगा कि पुस्तकें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, क्योंकि वे विद्यालय और घर, दोनों की स्थितियों में उनके साथ रहती है, जिनसे सहज रूप में अनुप्राणित हो जाना बालकों के लिए स्वाभाविक है। आइए, कुछ कहने के पूर्व हम इन पुस्तकों को निम्नांकित रूपों में देखें—
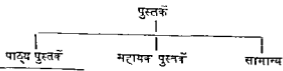
† Encyclopedia of Educational Research—0.1 Fredrick p 374
* Report of the Secondary Education Commission (1952-53) p 80

पाठ्य-पुस्तकें

इस स्थल पर हम क्या नही इन उपर्युक्त चर्चित बिन्दु क्रमो म विचार कर लें। पाठ्यक्रम म पाठ्य-पुस्तको का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसकी परम्परा उस काल से प्रारम्भ होती है जब ऋषि मुनियो आचार्यों के ज्ञान को भोजपत्रा पर लिपिबद्ध किया गया और इस अर्थ म वद ही विश्व की सबसे प्राचीन पाठ्य-पुस्तकें थीं। आधुनिक युग म पाठ्य-पुस्तको को शिक्षण प्रक्रिया के एक सरल माध्यम के रूप म स्वीकारा गया। प्रारभिक कक्षा से लेकर उच्च और विश्वविद्यालय कक्षाओं तक पाठ्य-पुस्तकें ही महत्त्वपूण भूमिका अदा करती रही हैं। छात्रा के ज्ञान की जैसे य पाठ्य पुस्तक कुञ्जी है। य उनका ज्ञानवधन करती है साथ ही एक निश्चित सीमा म भाषा-सम्बन्धी योग्यता का भी विकास करती हैं जिनको 'पठन, वाचन एव लेखन' तीनो के क्रमिक विकास की ओर ध्यान रखा जाता है। य पुस्तक वग विषय और आयु-वग की सीमा म बँधी होकर निश्चित ज्ञान की गठरी बालका के सिर पर रखती हैं।

सामान्य पुस्तकें

सामान्य पुस्तको के अन्तर्गत वे सभी बालोपयोगी पुस्तक (पाठय पुस्तका को छोडकर) आयेंगी जो बालको की सामान्य माँगो को ध्यान म रखकर तैयार की गयी है। अत ये पुस्तकें बालको का ज्ञानवधन भी करगी और मनोरजन भी, परन्तु बालका पर कोइ दाब वे नही रखेंगी। व इह अपनी रुचि के अनुरूप पढेंगे। ये बाल ग्रन्थ प्रकारान्तर से बालजीवन के लिए एक खुली ज्ञानात्मक और रजनात्मक सम्पत्ति प्रस्तुत करगे, जिनका जो छात्र जितना चाहेंगे छककर उपयोग करेंगे। इस परिधि म हम विभिन्न बाल पत्र पत्रिकाएँ भी समाहित कर ले सकते है।

परन्तु पाठय पुस्तका और सामान्य पुस्तका के मध्य पुस्तको का एक अन्य प्रकार भी है जो छात्रा को जब व पाठय पुस्तका क भार से थककर भी मन के प्याम का नहीं मिटा पायग तृप्ति देगी और दूसरी ओर सामान्य बाल ग्रन्था के विस्तृत और स्वतन्त्र प्रन्त्र की महती ललक पदा करेगी और वह प्रकार है सहायक पुस्तका का।

सहायक पुस्तकें

सहायक पुस्तकें इस क्षेत्र म बहुत महत्त्वपूण हैं, क्योकि जो काय पाठ्य-पुस्तक नही कर पाती व करती हैं या कहे पाठय पुस्तकें यदि ज्ञान-बीज अकुरण का काय करती हैं तो य सहायक पुस्तकें उसे अन्य तरह म उसे पुष्ट और पल्लवित करती हैं। आज की पाठ्य-पुस्तका के सम्बन्ध म सजग शिक्षाशास्त्री

महात्मा गांधी ने जो कहा था, इस स्थल पर उल्लेख्य है—"लगभग शुरू से ही आजकल की पाठ्य-पुस्तकों मे उन चीजो की चर्चा नही होती, जिनसे लडके-लडकियो का अपने घरो मे काम पडता है. परन्तु उन वस्तुओ की होती है जिन्हे वे बिलकुल नही जानते। कोई लडका पाठ्य-पुस्तकों मे यह नही सीखता कि घरेलू जीवन मे क्या ठीक है, और क्या बेजा है। उसे ऐसी शिक्षा कभी नही दी जाती कि जिससे उसके मन मे अपने पास-पडोसियो के विषय मे अभिमान जाग्रत हो। वह जितना आगे बढता जाता है, उतना ही अपने घर से दूर होता है—यहाँ तक कि शिक्षा के अन्त मे आस-पास की परिस्थितियो से उसका चित्त हट जाता है। उसे गृह जीवन मे कोई कवित्व अनुभव नही होता। उसकी अपनी सभ्यता उसे निःसत्व, जगली, वहसी और लगभग निकम्मी बनाती जाती है। उसकी शिक्षा उस परम्परागत संस्कृति से दूर हटाने के लिए दी जाती है। **मेरा वश चले तो अधिकाश वर्तमान पाठ्य पुस्तकों को नष्ट कर दूँ और ऐसी पाठ्य पुस्तकें लिखवाऊँ जिनका गृह जीवन से सम्बन्ध और मेल हो, ताकि वह आसपास के जीवन से हिलता-मिलता जाय और उसमे सक्रिय हिस्सा लेने लगे।"**

स्पष्ट है महात्मा गाधी इस बात से सन्तुष्ट थे कि यदि शिक्षा का लक्ष्य बालको के जीवन के लिए तैयार करना है तो आज की पाठ्य-पुस्तकें उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं इसलिए यहाँ पर अनायास हमारी दृष्टि सहायक पुस्तकों की ओर केन्द्रित हो जाती है और हम यह समझते हैं कि सहायक पुस्तकों की अनुकूल, उपयुक्त और प्रभावकारी निर्माण प्रक्रिया जिस ओर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान व प्रशिक्षण-परिषद् ने अपना विशिष्ट बल केन्द्रित किया है और जिसके लिए राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के अन्तर्गत स्थापित पाठ्य-पुस्तक विभाग क्रियाशील है, गाधी जिनकी जन्म शताब्दी आज हम मना रहे है, की उक्त शिकायत को बहुत दूर तक दूर करने मे समर्थ होगी।

इस प्रकार सहायक पुस्तकें पाठ्य-पुस्तको की सहगामिनी होकर उनका पूरक बनेंगी। इस स्थल पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान बालक-बालिकाओ की मनोवैज्ञानिक माँगो की ओर जायगा और हम उनकी रुचियो, प्रवृत्तियो और सम्वेगो का अध्ययन कर वर्ग की सीमा मे उनका निर्धारण करेंगे, क्योंकि उम्र के बढने के साथ-साथ सवेगो, रुचियो और प्रवृत्तियो मे स्पष्ट भिन्नता होती है। इसलिए हम बालक-बालिकाओ के सवेगात्मक, सामाजिक, मानसिक, और शारीरिक विकास क्रम को सहायक पुस्तक प्रणयन की पृष्ठभूमि मे रखेंगे। बालको की मनोवैज्ञानिक माँगो का जबतक हम गहरा अध्ययन नही करेगा, सहायक पुस्तकों का आधार सुनिश्चित नही किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक माँगों के साथ-साथ अन्य राष्ट्रीय और स्थानीय महत्त्व के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन-पहलुओं को भी दृष्टि में रखकर हम योजना को एक रूप देंगे। चूँकि पाठ्य-पुस्तकें बालकों के रुझान और अन्य आवश्यक जीवन-माँगों को सर्वाधिक महत्त्व नहीं दे पाती, सहायक पुस्तकें उनकी पूर्ति करेंगी। ये सहायक पुस्तकें छात्रों के मन और हृदय को स्पर्श कर उनमें पढ़ने का माद्दा पैदा करेंगी, क्योंकि उनका सम्बन्ध विभिन्न विषयों से होगा जिन्हें छोड़कर पाठ्य-पुस्तकें बढ़ती हैं। इस क्रम में विभिन्न विषयों—जैसे कथा जीवनी, सामाजिक शिक्षा, विज्ञान शिक्षा, गीत, आदि के अन्तर्गत करीब १७०० पुस्तकों की समीक्षा कराने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने किया है, उसमें पुनर्विचार करने की आवश्यकता अनुभूत होती है। फिर भी उक्त कार्य ने सहायक पुस्तकों के निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण आधार स्थिर किया है।

उल्लेख्य है, सहायक पुस्तकों के निर्माण-क्रम में भाषा, शैली आदि महत्त्वपूर्ण अंगों पर वैज्ञानिक दृष्टि से काम करने की आवश्यकता है ताकि वर्ग और आयु के अनुरूप छात्रों के लिए सहायक पुस्तकें मधुर और मनोनुकूल सिद्ध हों और जो उनके चित्त पर स्थायी प्रभाव पैदा कर सकें। विषय, शब्दावली, भाषा और शैली का चुनाव महत्त्वपूर्ण है, जिस ओर हम विचार करने की आवश्यकता है।

यद्यपि बाल-साहित्य स्वतंत्र रूप में बहुत तो नहीं, पर लिखे गये और लिखे जा रहे हैं, जिन्हें हम सहायक पुस्तकों के रूप में रख सकते हैं, रख रहे हैं। परन्तु इस क्षेत्र में शोधपूर्ण दृष्टि और कार्य की आवश्यकता है। पहले हम अबतक की प्रकाशित ऐसी पुस्तकों की तत्परता से खोज करें। दूसरी ओर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम ऐसे अध्यापकों को स्थानिप्राप्त पुस्तकालयों के बाल-मनोविज्ञान विशेषज्ञ पुस्तकाध्यक्षों एवं अन्य बाल-साहित्य-अनुरागी लेखकों को ढूंढ निकालें जिन्हें इस प्रकार का पर्याप्त अनुभव है। कहना नहीं होगा कि हमारे यहाँ ऐसे लोग मिलेंगे और सहजता से हम कार्य का सम्पादन कर सकेंगे।

सहायक पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए जीवनामृत है और इस दृष्टि से निम्न कक्षाओं से इसका निर्माण होना चाहिए। एतदर्थ पाठ्यक्रम में सहायक पुस्तकों का अपना विशिष्ट स्थान है।

[राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थान (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण-परिषद) के पाठ्य-पुस्तक-विभाग के तत्त्वावधान में इलाहाबाद में ६ से १० अक्तूबर '६६ तक आयोजित कार्य संगोष्ठी में प्रस्तुत]

पत्राचार-प्रशिक्षण—सोवियत संघ में

डा० रामसेवक पाठक

सोवियत संघ और भारत की शैक्षिक समस्याओं में बहुत कुछ समानता रही है। क्रान्ति से पूर्व सोवियत संघ में शिक्षा-क्षेत्र में पिछड़ेपन की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही थी, जैसी स्वतंत्रता से पूर्व भारत में। इस पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सोवियत संघ में जो सराहनीय प्रयास किये गये, उनका अपना अलग इतिहास है। पिछले दशक में, इस दिशा में किये गये प्रयत्नों में पत्राचार-प्रणाली द्वारा शिक्षण और प्रशिक्षण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षण-व्यवस्था का जो रूप सोवियत संघ ने विकसित किया है, वह हमारे शिक्षा नियोजनकर्ताओं के लिए भी रुचिकर एवं माननीय विषय हो सकता है।

भारत के संविधान में १४ वर्ष तक के बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा को शासन का दायित्व घोषित किया गया है। सोवियत संघ में सभी स्तरों पर सबकी शिक्षा का प्रबन्ध शासन का दायित्व है। स्नातकोत्तर शिक्षा तथा शोध कार्य तक निःशुल्क है। प्रत्येक स्तर के अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिए सभी प्रकार की सुविधा दी जाती है। जो लोग दिन में अन्य काम करते हैं और दिन में प्रशिक्षण विद्यालयों में नहीं जा सकते उनके लिए सायंकालीन और पत्राचार प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस प्रणाली के अन्तर्गत ५० प्रतिशत से अधिक अध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। सायंकालीन तथा पत्राचार-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम से सोवियत संघ के नागरिकों को अपने विकास के लिए समान अवसर दिया जाता है। रूस में पत्राचार प्रशिक्षण की लोकप्रियता इसी से विदित हो जाती है कि देश के कुल २ ३०० प्रशिक्षण विद्यालयों में से १,००० में पत्राचार पाठ्यक्रम भी चलता है।

प्राइमरी स्कूलों के भावी अध्यापक, जिन्होंने १० वर्ष तक सामान्य शिक्षा प्राप्त की है २ वर्ष तक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। जिन्होंने केवल ८ वर्ष तक सामान्य शिक्षा प्राप्त की है उनके लिए ४ वर्ष का प्रशिक्षण-कोर्स है। प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में क्रियात्मक शिक्षण को प्रमुख स्थान दिया जाता है। प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को कुल १३५ पाठ पढाने पड़ते हैं। प्रशिक्षार्थियों का क्रियात्मक शिक्षण-कक्षाध्यापकों और शिक्षण विधि के अध्यापकों द्वारा पर्यवेक्षित होता है।

कक्षा में अध्यापन का प्रशिक्षण देने के साथ कक्षा के बाहर के कार्यक्रम में भी उनको दीक्षित किया जाता है। प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को ग्रीष्मावकाश में चार सप्ताह के लिए "पायनियर" शिविर में रहना पड़ता है, जहाँ वह 'पायनियर' तथा अन्य पाठ्येतर कार्यों का संगठन करना सीखता है।

प्रत्येक सत्र के अन्त में प्रशिक्षार्थियों की परीक्षा होती है। यह इनकी आन्तरिक परीक्षा है जो लिखित एवं मौखिक दोनों रूप में होती है। प्रत्येक प्रशिक्षार्थी के कार्य का पुंजीभूत अभिलेख (क्युमुलेटिव रेकार्ड म) रखा जाता है। इसके आधार पर उसके कार्य का वर्गीकरण किया जाता है। पाठ्यक्रम पूरा हो जाने के बाद प्रशिक्षार्थी को सार्वजनिक परीक्षा में बैठना पड़ता है। पाँच परीक्षकों की एक समिति द्वारा परीक्षा ली जाती है जिसमें प्रशिक्षण विद्यालय के ४ सदस्य रहते हैं।

सोवियत संघ के प्रत्येक विद्यालय में किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता। प्रत्येक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क है। अध्यापकों का प्रशिक्षण पूर्णकालिक पंजीकृत प्रशिक्षार्थियों के लिए तो निःशुल्क है ही, यह सायंकालीन कक्षाओं एवं पत्राचार पाठ्यक्रम से प्रशिक्षण प्राप्त करनेवालों के लिए भी निःशुल्क है। अन्तर केवल इतना ही है, पूर्णकालिक प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्ति मिलती है। यह छात्रवृत्ति उनके कार्य में प्रगति के साथ बढ़ती रहती है। प्रत्येक पूर्णकालिक प्रशिक्षार्थी को कम-से-कम २० रूबल प्रति मास छात्रवृत्ति नियत है। सायंकालीन तथा पत्राचार पाठ्यक्रम के प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्ति नहीं मिलती, क्योंकि वे दिन में अपना काम करते हैं और उससे जीविकोपार्जन करते हैं।

मास्को प्रशिक्षण-संस्थान में पत्राचार-प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें ९,५०० प्रशिक्षार्थियों के लिए स्थान है। इस संस्थान में पत्राचार पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में शोध-कार्य भी किया जाता है।

पत्राचार-पाठ्यक्रम उन प्रशिक्षार्थियों के लिए भी है जो अध्यापन के कार्य में लगे हुए हैं। इस पाठ्यक्रम का लक्ष्य अध्यापकों को अपनी योग्यता बढ़ाने का अवसर प्रदान करना है। दिन के अथवा सायंकालीन विद्यालयों के छात्र प्रवक्ताओं के भाषण तथा निर्देशन के आधार पर परीक्षा की तैयारी करते हैं, किन्तु पत्राचार प्रणाली का मूल आधार स्वाध्याय ही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पत्राचार पाठ्यक्रम में सस्थागत प्रशिक्षण का अभाव है। नियत अवधि के लिए सस्थागत कार्य इस प्रणाली का अभिन्न अंग है। प्रायः प्रत्येक जून मास के अन्त तक प्रशिक्षार्थियों का प्रवेश पूरा हो जाता है। पत्राचार-प्रशिक्षार्थियों को प्रारम्भ में एक मास तक संस्थान में रहना पड़ता है। संस्थान में रहकर उनको

ग्रीष्मकालीन अवकाश में सत्रीय कार्य करना पड़ता है। इस सत्रीय कार्य के अति-रिक्त जाड़े में एक बार १० या १५ दिन के लिए प्रशिक्षार्थियों को पुन संस्थान में आना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को साल में दो बार कुल चालीस या पैंतालीस दिनों के लिए सत्रीय कार्य हेतु आना पड़ता है। दिन के पाठ्यक्रम की अपेक्षा पत्राचार-पाठ्यक्रम की अवधि एक साल अधिक है।

प्रशिक्षार्थी स्वाध्याय-कार्य विधिवत सम्पादित कर सकें, इस दृष्टि से प्रशिक्षण-विद्यालयों में अध्ययन की योजना, शिक्षण-विधि के सम्बन्ध में निर्देश पाठ्यपुस्तकों तथा सदर्भ-पुस्तकों की सूची और अभ्यासार्थ प्रश्नों की सूची तैयार की जाती है। सत्रों के मध्य में दिये गये निर्देशों के अनुसार प्रशिक्षार्थी स्वय अध्ययन करते है। प्रशिक्षण-सस्थान से अथवा परामर्श-केन्द्रों से प्रशि-क्षार्थियों को पुस्तकें उधार दी जाती हैं। पुस्तकालय से प्रशिक्षार्थियों को पुस्तक भेजने का डाकव्यय सस्थान द्वारा वहन किया जाता है। प्रशिक्षण-सस्थानों मे प्राय १,५०० पाठ्य पुस्तकें प्रशिक्षार्थियों के लिए रहती हैं। परामर्श-केन्द्रों मे भी पुस्तकालय की अच्छी व्यवस्था रहती है।

प्रमुख सस्थान के प्राध्यापक सप्ताह मे एक बार (प्राय रविवार के दिन) परामर्श केन्द्रों में जाते है। वहाँ से प्रशिक्षार्थियों का मार्गदर्शन करते हैं। पत्राचार-प्रणाली मे दूरदर्शन (टेलीविजन) की सुविधाओं का भी उपयोग किया जाता है। प्रशिक्षार्थी परामर्श-केन्द्र मे जितनी बार चाहे आ सकते हैं। इस अवसर पर वे पाठ्यपुस्तकों और सदर्भ पुस्तकों को परामर्श केन्द्र के पुस्तकालयों से उधार ले जाते हैं और पहले ली हुई पुस्तकों को लौटा देते हैं।

सस्थान मे प्रशिक्षार्थियों के लिखित कार्य का केवल मूल्याकन ही नहीं होता बल्कि उस पर आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ और सुझाव भी दिये जाते हैं। प्रशिक्षार्थियों के लिखित कार्य मे श्लाघ्य अशो तथा त्रुटियों का उल्लेख विस्तार के साथ किया जाता है जिससे अच्छे प्रशिक्षार्थियों को बराबर प्रोत्साहन मिलता रहे और त्रुटियाँ दूर हो सके। आवधिक परीक्षाओं मे वही परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकते हैं जो 'कन्ट्रोल पेपर्स' म पास हो गये हो। अन्तिम मूल्याकन के लिए 'कन्ट्रोल पेपर्स' म प्राप्त अकों पर भी विचार किया जाता है।

सत्रीय कार्य क लिए आयोजित दूसरे शिविर मे छात्रों को कठिन विषयों पर व्याख्यान दिये जाते हैं। वे प्रयोगशाला म कार्य करते हैं तथा उनकी परीक्षा होती है। यदि वे एक परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो जाते हैं तो वे अपनी परीक्षा की तैयारी पूरी हो जाने के बाद उस विषय मे पुन परीक्षा दे सकते

है। उनको अगले सत्र के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है। इन परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के आधार पर अन्तिम परीक्षा का मूल्यांकन किया जाता है।

पत्राचार पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थियों को अनेक सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं —

१–प्रशिक्षार्थियों को विभिन्न सत्रों मे भाग लेने के लिए अतिरिक्त अवकाश दिया जाता है।

२–परीक्षाओं में भाग लेने तथा परीक्षा की तैयारी के लिए उनको सवैतनिक अवकाश मिलता है। परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए, परीक्षा की तैयारी और सत्रीय कार्य की आवश्यकता के अनुसार अतिरिक्त अवकाश भी प्रदान करने की व्यवस्था है।

३–छात्रों की परीक्षा के समय अथवा विभिन्न सत्रों में निवास के लिए निःशुल्क आवास की व्यवस्था है। परीक्षा में पास होने पर उनको दोनों ओर का मार्गव्यय दिया जाता है, अन्यथा केवल एक ही ओर का व्यय दिया जाता है। परीक्षा में पूरी तैयारी के साथ भाग लेने के लिए प्रोत्साहन हेतु ही यह नियम बनाया गया है।

सामान्य प्रशिक्षण-प्रणालियों की तुलना में पत्राचार प्रशिक्षण के अनेक लाभ हैं। पहले तो इस प्रणाली में अलग से विद्यालय-भवन की समस्या नहीं होती। सत्रीय शिविरों का आयोजन सामान्यतः ग्रीष्मावकाश में किया जाता है। पत्राचार प्रणाली के पाठ्यक्रम को पूरा कर लेने पर प्रशिक्षार्थी का स्वाध्याय का स्वभाव बन जाता है जो उसकी व्यावसायिक क्षमता बढ़ाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पत्राचार प्रणाली से प्रशिक्षण प्राप्त करनेवाले अध्यापक दिन में अपने व्यवसाय का कार्य सम्पादित करते हैं और अतिरिक्त समय में स्वाध्याय से अपनी व्यावसायिक क्षमता बढ़ाते हैं।●

(शेष पृष्ठ १७८ से)

में उन कार्यों को रखा जाना चाहिए जिनकी पूर्ति स्थानीय साधनों से की जा सके। दीर्घ कालिक योजना में उन कार्यों को रखा जाय जिनके लिए धन की व्यवस्था राज्य सरकार अथवा विभाग से होना अभीष्ट है। इसमें कुर्सी, मेज, श्यामपट्ट, टाट तथा अन्य सज्जा की वस्तुएँ, पुस्तक, चार्ट, मानचित्र तथा भवन निर्माण की योजनाएँ आती हैं।

अल्पकालिक योजनाओं में भवन की सफेदी, प्रमुख स्थान पर पाठशाला के नाम का लिखा जाना, श्यामपट्टों के लिए काले पेंट की व्यवस्था, अस्थायी मूत्रालय की व्यवस्था, प्रत्येक कक्षा में कूड़ादान का होना इत्यादि कार्यों के लिए धन की व्यवस्था विद्यालय के अपने या स्थानीय साधनों से की जानी चाहिए।●

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

(आलोचनात्मक मूल्यांकन)

केशव प्रसाद

केन्द्रीय नियोजन समूह ने शिक्षा पर अधिक खर्च करने की बात सोचा था, प्रान्तों ने अपना शैक्षिक बजट भी अधिक बनाया, परन्तु चौथी पचवर्षीय योजना के शिक्षा क्षेत्र म बेहद कटौती हुई और कुल राष्ट्रीय खच का आठ प्रतिशत भाग ही इस पर खच किया जायगा। सचमुच यह बडी दुर्भाग्यपूण बात है।

नवीन चतुथ पचवर्षीय योजना के अतिम प्रारूप हेतु राज्यो की सरकारो ने १४ अक्तूबर १९६८ से २५ नवम्बर १९६८ तक विचार किया। यद्यपि इन्हें हिदायत दे दी गयी थी कि पुरानी चतुर्थ पचवर्षीय योजना से अधिक बजट नही बनाना चाहिए। अगर ये राज्य अपनी योजना लम्बी-चौडी बनाना ही चाह तो इन्हें अपने प्राकृतिक एव आर्थिक स्रोतो को बढाना होगा। परन्तु अधिकाश राज्या ने अपनी योजना बडी बनायी और अपनी पुरानी शिकायत दुहराई कि मरी आमदनी कम है, समस्याएँ अधिक हैं और केन्द्र हमे पूरी तरह सहायता नही दता। राज्या की प्रस्तावित योजना ८ ६१९ करोड रुपये की थी जो पुरानी योजना (१९६६ ७१) से १ ५४१ करोड रु० अधिक की थी। 'प्लानिंग कमीशन ने ६ ५०० करोड रु० की शैक्षिक योजना बनाने की राय दी। फलस्वरूप राज्यो की शैक्षिक योजनाओ मे दस प्रतिशत से लेकर साठ प्रतिशत तक की कटौती हुई। अतिम शैक्षिक योजना (चतुर्थ पचवर्षीय) यो है—

राज्य	खच (लाख रुपयो मे)	पूरी राज्य की योजना का %
आन्ध्र	४८९९ ००	७७
आसाम	४२७५ ००	९८
बिहार	४२६२ ००	८२
गुजरात	३४७० ००	६१
हरियाना	२०६५ ००	७९
जम्मू काश्मीर	१०९४ ००	६४
केरल	२८३० ००	६१
मध्यप्रदेश	३९१० ००	७१

मद्रास	६०३६ ००	९ ७
महाराष्ट्र	७०३० ००	७ ०
मैसूर	२३०० ००	८ ०
नगालैण्ड	७०० ००	१२ ०
उडीसा	२६७९ ००	८ ३
पजाब	२०५० ००	६ ३
राजस्थान	१६२५ ००	५ ०
उत्तरप्रदेश	११९८६ ००	८ ९
प० बगाल	७७३५ ००	१३ २
कुल योग	६८८२६ ००	८ ०

इस प्रकार ६८८२ करोड रुपये से अधिक खर्च चौथी पचवर्षीय योजना म खर्च होगे जो कुल राष्ट्रीय खर्च का ८% है। इस सदर्भ मे यह बात भूलन योग्य नही है कि पुरानी पचवर्षीय योजना मे शिक्षा पर ६ ४% खर्च किये जाने का विचार था। इसका साफ साफ अर्थ यह है कि केन्द्र ने शिक्षा पर कम ध्यान दिया है। पूरी योजना की कटौती म शिक्षा की कटौती सबसे अधिक है। यद्यपि उत्तरप्रदेश का प्रतिशत कुछ बढा है पहले यह प्रतिशत ८ २ था। अब ८ ९% उत्तरप्रदेश शिक्षा पर खर्च करेगा जो राष्ट्रीय शैक्षिक खच से १०% अधिक है। परन्तु अशिक्षा यहाँ अधिक है इस दृष्टि से इस प्रदेश को शिक्षा पर १५% कम से-कम खच करना चाहिए।

शैक्षिक खच के ब्योरे तथा उनका औचित्य

नयी चौथी योजना म सामान्य शिक्षा पर ५९९ करोड रुपय खच होग, जबकि पुरानी योजना म ५७३ करोड खच की बात थी। उत्तरप्रदेश इस मद पर ६६ ९८ करोड खर्च करेगा, जो पूरे शैक्षिक खर्च का ७४% होगा। पुरानी योजना मे उत्तरप्रदेश इस पर ६ ३% ही खर्च करता। देखने म ऐसा लगता है कि उत्तरप्रदेश इस पहलू पर अन्य राज्यो स बहतर है अधिक खच करेगा, प्रतिशत भी कम नही है। परन्तु उत्तरप्रदेश म अशिक्षा भी अन्य प्रान्तो (राज्यो) से अधिक है और यहा तक कि बिहार राज्य से भी अधिक। इसलिए इस राज्य को इस क्षेत्र मे और अधिक खर्च करना चाहिए। इस प्रदेश को इस पहलू पर विशिष्ट धनराशि भी दी जानी चाहिए।

सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र मे नयी पंचवर्षीय योजना म अधिक कटौती हुई है। पहले इस मद पर २२ ८० करोड रुपये खर्च होनेवाले थे पर अब मात्र

७४२ करोड़ रुपये ही खर्च होगे। मैं इस पहलू पर सहमत हूँ कि इस पर कम खर्च हो। इसलिए नही कि यह विभाग खर्च करने लायक नही वरन् यह कि इस मद के पैसे का पिछली योजनाओ मे दुरुपयोग हुआ है। साक्षरता-अभियान का मजाक उड़ाया गया है। परन्तु इस क्षेत्र म एक विशेषज्ञों की समिति बननी चाहिए जो साक्षरता अभियान के क्रियात्मक रूप पर विचार करे। मैं सर्वोदय के आचार्यकुल को इस क्षेत्र मे विशेष रूप से जागरूक देखना चाहता हूँ। इसलिए कि सर्वोदय का साक्षरता अभियान भी एक अंग हो।

भारत मे आले दर्जे का मस्तिष्क अध्यापक होना पसन्द नही करता। जो अध्यापक होना चाहते हैं या हैं उनकी शिक्षा की अवहेलना इस देश से बढ़कर विश्व मे अन्यत्र नही। केन्द्रीय नियोजन समूह की राय थी कि चौथी पचवर्षीय योजना मे इस पहलू पर १०२ ३५ करोड रुपये ख र्च हों। पर निर्धारित किया गया मात्र १६ ३६ करोड। इससे अधिक शिक्षा की क्या अवहेलना हो सकती है। शिक्षा के प्रणेता पर ध्यान नही दिया जाय तो अपने धधे से प्रेम कैसे करेंगे? शिक्षक की अवहेलना तो राष्ट्र की अवहेलना है। पूरे भारतवर्ष मे इस पहलू पर ३ २% शिक्षा का खर्च होगा जब कि उत्तरप्रदेश मे २.२% मात्र, जम्मू काश्मीर १३%, आसाम ६%, बगाल ४३% और महाराष्ट्र ४% खर्च करेंगे। उत्तरप्रदेश मे अगर शिक्षको की अवहेलना अधिक हो रही है तो कारण यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है।

उच्च शिक्षा पर भारत के प्रत्येक राज्य अधिक खर्च करना चाहते है। इसलिए वे अपने वर्तमान बजट पर खुश नही है, क्योकि उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे उन्हें अपेक्षित सहायता केन्द्र से उपलब्ध नही हो पायी। मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ। परन्तु भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति मे प्राथमिक, माध्यमिक एव शिक्षा के उद्योगीकरण को अधिक प्रश्रय देना चाहिए। अशिक्षा दूर करने के लिए जड से चढ़ना होगा, कूद कर प्रगति के पेड की टहनी पर नहीं चढ़ा जा सकता। आश्चर्य की बात है कि गाधीजी की बुनियादी शिक्षा पर चौथी योजना में ध्यान नही दिया गया है। फिर भी इस मद मे भारत के राज्य १७ ८% खर्च करेंगे। इस क्षेत्र मे उत्तरप्रदेश सबसे पीछे है। वह उच्च शिक्षा पर अपने शैक्षिक खर्च का केवल दस प्रतिशत भाग ही खर्च करेगा। यहाँ मैं इस प्रदेश के इस बजट से पूर्णतया सहमत हूँ।

राज्यो ने प्राथमिक शिक्षा पर ४८ ८% खर्च करने की योजना बनायी है। इस पहलू पर सबसे अधिक खर्च उत्तरप्रदेश करेगा। वह अपने शैक्षिक खर्च का ६६.४% भाग प्राथमिक शिक्षा पर खर्च करेगा। बिहार ६३%

खर्च करेगा और मद्रास ४६ ६ %। इस मद मे उत्तरप्रदेश ६६२७.५७ लाख रुपये खर्च करेगा जो सर्वथा उचित भी है। माध्यमिक शिक्षा पर राज्य २३.४ % खर्च करगे परन्तु उत्तरप्रदेश इस शिक्षा पर केवल १४ ६% भाग ही अर्थात् १४८७२० लाख रुपये ही खर्च कर पायगा। उत्तरप्रदेश का यह खर्च कम है। इस मद पर अधिक खर्च करना चाहिए। अगर उत्तर प्रदेश की लाटरी की आमदनी माध्यमिक शिक्षा पर खर्च की जाय तो शायद यह कमी पूरी हो जाय। मैं प्रदेश के माननीय मुख्यमत्री का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए कहना चाहूँगा कि लाटरी की आमदनी का ६० % भाग माध्यमिक शिक्षा पर १० % अध्यापकों की शिक्षा पर और शेष रकम अन्य शैक्षिक मदो मे खर्च किया जाय। माध्यमिक शिक्षा पर महाराष्ट्र सबसे अधिक अर्थात् शैक्षिक आमदनी का ३८ ६ % भाग खर्च करेगा और मध्यप्रदेश ३६ ५ % भाग खर्च करेगा।•

बिहार प्रदेशीय बेसिक एजुकेशन बोर्ड का प्रस्ताव

पटना में १ नवम्बर '६६ को बिहार प्रदेशीय बेसिक एजकेशन बोर्ड की एक बैठक हुई। उक्त बैठक मे नीचे लिखे दो प्रस्ताव स्वीकृत हुए —

१ "सर्व सेवा सघ द्वारा चलाये गये ग्रामदान तूफान आन्दोलन मे बुनियादी शिक्षा तथा अन्य विद्यालयो से सम्बन्धित शिक्षक, शिक्षक-प्रशिक्षक और प्रशासक बडी सख्या मे ऐच्छिक रूप मे सम्मिलित हुए। बोर्ड इसकी प्रशसा करते हुए यह सिफारिश करता है कि वे सभी लोग ग्रामदानी गाँवों के निर्माण कार्य तथा विशेष रूप से तरुण शातिसेना तथा आचार्य-कुल के कार्यक्रम मे भी इसी प्रकार की दिलचस्पी लेकर सर्व सेवा सघ को अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करें।"

२. बोर्ड यह भी सिफारिश करता है कि ग्रामदानी क्षेत्र के सभी प्राथमिक विद्यालयो को पूर्णरूपेण बुनियादी विद्यालयो म परिवर्तित करने की दिशा मे सक्रिय कदम उठाये जायँ और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रथम चरण के रूप मे सभी शिक्षको और प्रशासको को सर्व सेवा सघ के विशेषज्ञो की सहायता से सक्षिप्त नवप्रशिक्षण दिलाया जाय। यह नवप्रशिक्षण न सिर्फ नयी तालीम के सिद्धान्तो और व्यवहारो, बल्कि ग्राम-स्वराज्य की परिकल्पना और उसकी रचनात्मक कार्यान्विति के बारे मे भी होना चाहिए।

दूसरे प्रस्ताव को बोर्ड ने अपनी कार्यसमिति के पास इस अपेक्षा से प्रेषित किया कि वह इस प्रस्ताव के कार्यान्वयन से सम्बन्धित आर्थिक तथा अन्य पहलुओ पर एक *विस्तृत प्रतिवेदन तैयार करके बोर्ड की अगली बैठक मे* पेश करें।•

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : ४
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

नवम्बर, '६९

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होनी है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित; अमल कुमार बसु,
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ मे मुद्रित।

नयी तालीम : नवम्बर '६९

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

"मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।" गांधीजी

गांधीजी का सारा जीवन एक खुली पुस्तक है। उसे समझना और उसके अनुसार आचरण करना उनके प्रति सबसे उत्तम श्रद्धांजलि है।

राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी की रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति
दुकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमंदिर वाराणसी

वर्ष : १८
अंक : ५
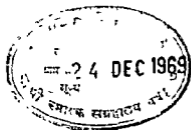
- व्यापक एवं विकेन्द्रित आयोजन-प्रणाली
- प्राथमिक विद्यालयों में निरीक्षण को प्रभावकारी बनाने के उपाय
- विद्यालय तथा समुदाय के बीच निकट-सम्बन्ध क्यों और कैसे ?
- नये समाज के लिए नयी तालीम
- प्रतिभा की खोज
- बाल जीवन

दिसम्बर, १९६९

कुमारी मनु गांधी का निधन

कुमारी मनुबहन गाधी का ८ दिसम्बर को आल इण्डिया मेडिकल इस्टीट्यूट दिल्ली मे प्रातःकाल देहान्त हुआ ! वे ३९ वर्ष की थी । २ महीने से उनकी तबीयत खराब थी। उनका इलाज चल रहा था। कुमारी मनुबहन गाधी महात्मा गाधी के अन्तिम दिनो मे बराबर उनके साथ रही थी । उस समय की उनकी डायरी गाधी के जीवन के अन्तिम चरण का सर्वाधिक प्रामाणिक वृत्तान्त है ।

मनुबहन श्री जयसुखलाल गाधी की पुत्री थी। बहुत ही छोटी उम्र में वह गाधीजी के पास आ गयी । उन्होंने स्वय अपने बारे मे लिखा है, "सन् १९४६ मे पूज्य कस्तूरबा जब जेल मे थी, तब मैं भी नागपुर जेल मे थी । मेरी उम्र उस वक्त सिर्फ १४ वर्ष की ही थी । मेरी जन्म देनेवाली माँ तो मुझे १२ साल की छोडकर दुनिया से चल बसी थी । पर उनके मीठे आशीर्वाद से कुछ ही समय मे मुझे कस्तूरबा की गोद मिल गयी। बा ने कभी मुझे माँ की कमी न महसूस होने दी। सख्त ठड हो या दम चलने लगे, और नीद न आती हो तो, या तो बा मेरे बिछौने मे आ जाती या फिर मुझे अपने बिछौने पर ले जाती और कहती—'बेटी, तुम सो जाओ। दिनभर काम करते-करते थक जाती हो। मुझे नीद नही आ रही है । इसलिए मैं तुम्हे अपने पास बुला रही हूँ ।' और, मुझे थपकियाँ दे-देकर इस तरह सुलाती जैसे माँ छोटे बच्चे को सुलाती हो ।

"बस, बा गयीं (परलोक) उस दिन से बापू ने एक माँ की तरह अपनी १४-१५ साल की बच्ची की देखभाल करना शुरू कर दी । इस उम्र मे लडकी सहज ही माँ के पास रहना पसन्द करती है और यदि पहले से साथ ही रहती आयी हो, तो वह माँ के और भी ज्यादा नजदीक आना चाहती है। इसलिए बापू ने मुझे अपने पास ही रखना शुरू किया। मेरे खाने-पीने, पहनने-ओढने, जाने-आने, बीमारी, अभ्यास, यहाँ तक कि मैं हर हफ्ते अपने बाल धोती हूँ या नही, इन सब बातो मे उन्होने सावधानी रखना शुरू किया । और यह सावधानी आखिर तक बनी रही ।"

इस प्रकार कस्तूरबा और गाधीजी की देखरेख मे पली-पुसी मनुबहन उनके अन्तिम दिनो की साक्षी-रूप थी । गाधीजी के साथ रहकर उन्होंने जो भी पाया हो वह तो सब था, परन्तु उनके पास गाधी की धरोहर भी थी । बहुत ही थोडी उम्र मे उनका उठ जाना अधिक सतापकर है । सारा सर्वोदय परिवार उनकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है !

शिक्षा का राष्ट्रीयकरण

इस देश की परम्परा शासन-मुक्त शिक्षा की रही है। जिस युग को 'भारतीय शिक्षा का स्वर्ण युग' कहा जा सकता है, और जिस युग मे नगरो के कोलाहल से दूर वनो से घिरे आश्रमो मे ऋषियो और आचार्यो ने जीवन के ऐसे शाश्वत मूल्यो का उद्घाटन किया था, जो आज भी मानव-संस्कृति के प्रकाश-स्तम्भ हैं, उस युग मे शिक्षा शासन-मुक्त थी। उन आचार्यो की वाणी आज भी सन्तप्त मानवात्मा पर चन्दन का लेप कर जाती है। तब 'गुरुकुलो' पर 'कुलपतियो' का पूर्ण अधिकार था। और यद्यपि गुरुकुलो को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता मिलती थी, भूमि मिलती थी, गौएँ मिलती थी, फिर भी गुरुकुलो मे किन विषयो का अध्यापन हो, किस पद्धति से अध्यापन हो, कौन अध्यापन करे, इन बातो के निर्णायक कुलपति ही थे। गुरुकुल की व्यवस्था मे राजा किसी प्रकार का दखल नही देता था। राजा यदि गुरुकुल मे गया तो उसे कुलपति से नीचे स्थान मिलता था। अगर कुलपति राजसभा मे चला गया तो राजा उसे अपने से ऊँचा आसन देता था। उस युग में 'कौपीनधारी' ब्राह्मण राजा से बडा था। विद्वत् शक्ति राज-शक्ति से बडी थी। आचार्य सर्वथा स्वतंत्र था, शासन-मुक्त था। विनोबा जब आचार्यकुल की स्वायत्तता की बाते करते हैं, तो नि सन्देह उस स्वर्ण युग की

वर्ष : १८
अंक : ५

प्रेरणाप्रद स्मृति ही उनसे उस युग की पुनरावृत्ति की वकालत कराती है।

यह तो प्राचीन युग की वात है—उस युग की जिसे हम इतिहास में महाकाव्य युग और बौद्ध युग कहते हैं, शायद उससे भी पहले की, जव उपनिषद काल मे महान तत्त्वचिन्तक मनीषियो के चरणो में बैठकर शिष्यो ने 'परा-अपरा' विद्या का चिन्तन और विश्लेषण किया था। परन्तु मध्य युग में, मुसलमानों के समय तक भी, भारतीय शिक्षा शासन-मुक्त ही थी। उस समय भी काशी जैसे विद्या के केन्द्रों मे पडितगण उपवनो मे स्थित विद्या-सस्थानो मे विद्यार्थियो को लेकर स्वतत्र रूप से अध्ययन-अध्यापन का काम करते थे। मुसलमानो की मस्जिदो से सलग्न मकतव भी पाठ्यक्रम और आन्तरिक व्यवस्था के लिए दरवार का मुँह नही ताकते थे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस देश मे शासन-मुक्त शिक्षा की परम्परा रही है।

इस परम्परा को अंग्रेजों ने भंग किया राजकीय शिक्षा-सस्थाएँ खोलकर। ये संस्थाएँ आदर्श की तौर पर लगभग सभी जिलो में खोली गयी थी। इन सस्थाओ मे क्या पढाया जाय, कौन पढाये, इन वातो का निर्णय राज्य करता था। परन्तु अधिकांश शिक्षा स्थानीय सस्थाओ और व्यक्तियो के हाथ मे ही रही थी। और शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की सगठित आवाज नही उठायी गयी। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के वाद 'शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हो' ऐसी मांग की जाने लगी। कुछ तो शायद इसलिए कि राष्ट्रीयकरण समाजवादी व्यवस्था की प्रकृति है और कुछ इसलिए कि स्थानीय सस्थाओ और व्यक्तिगत प्रवन्धको (मैनेजरो) के हाथ मे शिक्षा व्यवसाय और भ्रष्टाचार का साधन बन रही थी। यह साफ कहा जाने लगा कि शिक्षा के क्षेत्र मे जो गिरावट आयी है, वह तब तक दूर नहीं होगी, जब तक शिक्षा का राष्ट्रीयकरण नही होगा।

परन्तु राष्ट्रीयकरण की यह माँग लोकतत्र की आत्मा के प्रतिकूल है। सच्चे लोकतत्र का अर्थ है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, प्रत्येक स्तर पर, नीति का निर्णय नागरिक द्वारा हो और उसका कार्यान्वियन भी नागरिक ही करे। आज लोकतत्र का सबसे वडा अभिशाप यही है कि नीति का निर्णय भले ही लोकसभा और विधान सभाओं द्वारा

हो, परन्तु उसका कार्यान्वयन वेतनभोगी नौकरशाही द्वारा हो रहा है। परिणाम यह हुआ है कि अँगरेजी अमेरिकी पैटर्न का व्यक्तिवादी लोकतत्र हो, चाहे रूसी पैटर्न का साम्यवादी लोकतत्र हो, शासन 'ब्यूरियोक्रेसी' (नौकरशाही) के हाथ मे ही है। और जब तक यह स्थिति रहेगी तबतक न लोकतत्र का कुछ अर्थ है, न साम्यवाद का। तत्र का सचालन करनेवाली नौकरशाही, नीति का निर्धारण करनेवाली लोकसत्ता से, अलग होकर उसे ताकपर रख देती है। यही इस युग की सबसे बडी समस्या है जिसका हल नही निकला तो लोकतत्र टूट जायगा।

और इस समस्या का जो भी दूसरा हल निकले, एक हल है कि शिक्षा नीति का निर्धारण और कार्यान्वयन 'लोक' के हाथ मे हो, 'राज्य' के हाथ मे न हो। दूसरे शब्दों मे, शिक्षा का राष्ट्रीयकरण न हो। लोकतत्र तभी सच्चा लोकतत्र होगा जब नीति का निर्णय और सचालन 'लोक' द्वारा हो। यदि अपने जीवन के नियमन और सचालन मे लोक असहाय है, तो जिस 'तत्र' मे वह जी रहा है, वह लोकतत्र की विडम्बना मात्र है। लोकतत्र की इस व्याख्या मे (मेरी समझ मे जो लोकतत्र की सही व्याख्या है) शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का कोई अर्थ नही रह जाता, क्योंकि शिक्षा-सम्बन्धी विचार तो व्यक्ति-व्यक्ति मे बदलते रहते हैं, वातावरण के अनुसार भिन्न होते हैं, भिन्न होने चाहिए। अत शिक्षा-नीति का जो निर्णय और सचालन शिक्षा-सस्थाओ द्वारा हो, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल हो, क्षेत्र-सापेक्ष्य और काल-सापेक्ष्य हो, वही लोकतत्र के हित मे होगा ऐसा निश्चित है। दूर के किसी केन्द्र मे बैठकर इस नियमन और नियत्रण का अर्थ है, एक ऐसी शिक्षा-नीति को लादना जिसका 'लोक' की स्थानीय आवश्यकता और विचारधारा से कोई सम्बन्ध नही है। यह 'अलोकतान्त्रिक' प्रवृत्ति होगी और इसका लोकतत्र मे कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि राष्ट्रीयकरण के साथ केन्द्रीयकरण की भावना जुडी हुई है। जब एक आती है तो दूसरी भी आ जाती है और दोनो मिलकर अधिनायकवाद को जन्म देती हैं। यदि भारत मे 'शिक्षा के राष्ट्रीयकरण' की माँग बढी तो स्वभावत इस देश मे यह भी माँग होगी कि शिक्षा 'राज्य का विषय' न होकर (जैसा आज

है) 'केन्द्र का विषय' हो । 'राष्ट्र की एकता' के नाम पर यह मांग होने भी लगी है। इस मांग को अगर अस्वीकार न किया गया और शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हुआ तो राष्ट्र मे जिस एकता का निर्माण होगा, वह ऐसी एकता होगी, जिसमे मानवात्मा का स्वतत्र अभिव्यक्ति सदा के लिए समाप्त हो जायगी।

—वशीधर श्रीवास्तव

व्यापक एवं विकेन्द्रित आयोजन प्रणाली

जे० पी० नायक

शक्षिक आयोजन की वतमान प्रणाली उच्च स्तर पर अत्यधिक भारी है और उल्टे पिरामिड के समान है क्योंकि अधिकाश आयोजन राष्ट्रीय एव राज्य स्तर पर ही किया गया है। अत इस आयोजन की प्रणाली का विकेन्द्रीकरण कर उसका निर्माण जिला एव सस्था नामक दो अन्य स्तरो पर करके, उसे व्यापक आधार प्रदान करना आवश्यक है। अच्छे परिणाम तभी प्राप्त हो सकेंगे, यदि विभिन्न चारो स्तरों पर आयोजन की एकीकृत प्रणाली तैयार कर ली जाय और आयोजन ऊपर से नीचे आनेवाला तथा नीचे से उद्भूत होनेवाला हो।

१ सस्थागत आयोजन इस आयोजन की प्रणाली का आधार सस्थागत योजनाए होगी। मैं इस बात पर विश्वास नही करता कि एक सस्था दूसरी सस्था के समान ही होती है। बल्कि, मैं समझता हूँ कि प्रत्येक सस्था का अपना विशिष्ट स्थान होना चाहिए जैसा कि प्रत्येक छात्र का अपना निजी व्यक्तित्व होता है। अत प्रशासकीय प्रणाली यह होनी चाहिए कि प्रत्येक सस्था को यथासम्भव उचित आधार पर अपने निजी विकास की योजना बनाने के लिए प्रोत्साहन एव सहायता प्रदान की जाय।

सस्थागत योजनाओ से कई लाभ होगे। वे गुणात्मक विकास के कार्यक्रमो पर जोर देंगी और आनेवाले प्रत्येक वष के उन कायक्रमो पर अधिकाधिक जोर दिया जायगा। इसलिए भविष्य की आयोजन प्रक्रिया मे सस्थागत योजनाएँ अविभाज्य अग होगी। सस्थागत योजनाएँ आयोजन की प्रक्रिया से न केवल अध्यापको का अपितु छात्रो एव उनके माता पिताओ का सम्बन्ध भी स्थापित कर सकेंगी और अधिक महत्वपूण बात यह होगी कि ये योजनाएँ स्वप्रेरणा, रचनात्मकता, स्वाधीनता और अध्यापको द्वारा नये प्रयोगो के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करेंगी। ये योजनाएँ व्यय की अपेक्षा मानवी प्रयत्नो पर जोर देंगी और इस प्रकार व्यय-साध्य योजनाओ को, जैसा कि हमारी पिछली योजनाओ का स्वरूप रहा है कम करने मे सहायक होगी।

सस्थागत योजनाएँ तैयार करने के लिए उचित तक्नीक का विकास करने की आवश्यकता है। इसम एक स्वाभाविक खतरा यह है कि सस्थागत योजनाएँ अनेक मांगो को प्रस्तुत करने के लिए प्रवृत्त होगी जिनकी पूर्ति करना किसी भी शासन की शक्ति के बाहर होगा। इससे बचना होगा और कार्य रूप म परिणत किये जानेवाले ऐसे कार्यक्रमो के रूप म इन योजनाओ का निर्माण करना होगा जिनका कार्यान्वयन सस्थाओ के वर्तमान समय म उपलब्ध स्रोतो से अथवा उनम सहज सम्भव वृद्धि करके किया जा सके। वस्तुत सस्थागत आयोजन का श्रीगणेश इस प्रश्न के साथ किया जा सकता है कि उपलब्ध स्रोतों की सीमा म अथवा उनम यथासम्भव अल्प वृद्धि करके आप क्या कर सकते हैं? यह प्रश्न यदा-कदा ही पूछा जाता है। किन्तु बारीकी से सस्थाओ की स्थिति का अध्ययन किया जाय तो यह देखा जायगा कि यदि वे समस्या को सुलझाने के लिए कर्तव्य की भावना, परिश्रम एव यथार्थ कल्पना से कार्य करें तो अपने उपलब्ध स्रोतो से वे कई काम कर सकती हैं। अत सस्थागत योजनाओ के निर्माण के लिए इस मार्ग के अवलम्बन पर बल देना आवश्यक है। शिक्षा आयोग ने कहा है कि—

"प्रत्येक शिक्षा-सस्था अपने उपलब्ध स्रोतो मे उनके सीमित होते हुए भी अधिक परिश्रम और अच्छे आयोजन द्वारा वतमान समय मे उनमे दी जानेवाली शिक्षा म सुधार करने के लिए बहुत कुछ कर सकती है। अत हमारी राय मे इस गतिविधि म भौतिक साधनो पर बल देने की अपेक्षा शिक्षको को सगठित होने और शिक्षा म सुधार करने के लिए अधिक-से अधिक प्रयास करने हेतु प्रेरित कर भौतिक साधनो के अभाव को दूर करने पर बल देना चाहिए। इन प्रयासो मे गत्यावरोध एव अपव्यय कम करना अध्यापन-प्रणालियो म सुधार करना, पिछडे हुए छात्रो को सहायता प्रदान करना प्रतिभासम्पन्न छात्रो की ओर विशेष ध्यान देना पाठयक्रमो को आवश्यकतानुसार सम्पन्न बनाना नवीन कार्यों के तकनीको की योजना करना, सस्था के निर्देशात्मक कार्यक्रम के सचालन मे उत्कृष्ट प्रणाली को लागू करना तथा अध्यापको को अपनी व्यावसायिक क्षमता बढाने के लिए स्वाध्याय-कार्यक्रमो का आयोजन करना आदि बातें सम्मिलित हैं।'

सस्थागत योजनाओ के इस प्रत्यय म कोई नयी बात नही है। आज भी कई ऐसी अच्छी शालाएँ हैं जो स्वय अपने विकास की योजनाएँ तैयार करती हैं एव उन्हे कार्यान्वित करती हैं। ऐसा करना ही वस्तुत अच्छी शाला की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी है। यहाँ यह प्रस्तावित है कि यह प्रक्रिया जो कुछ ही

सस्थाओं तक सीमित है और पूर्णतः वैकल्पिक है, व्यापक हो जाय और समस्त शैक्षिक सस्थाएँ उसे अपना लें।

किसी राज्य में सस्थागत योजनाओं की पद्धति प्रारम्भ करने के लिए कौनसे कदम उठाना आवश्यक है ? इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव राज्य-शासन के विचारार्थ प्रस्तुत है —

(१) अनुदान प्रदान करने की एक शर्त यह होनी चाहिए कि प्रत्येक सस्था अपने स्वय के विकास की एक काफी दीर्घकालिक योजना तैयार करे। उसे इस योजना के सदर्भ में एक पचवर्षीय योजना (जो कि राज्य की पचवर्षीय योजना की समीपवर्ती हो) और एक वार्षिक योजना, जिसमे आगामी वर्ष के दौरान प्रस्तावित गतिविधियाँ दर्शायी गयी हो, तैयार करने के लिए कहा जाना चाहिए।

(२) सस्थाओं द्वारा तैयार की गयी इन योजनाओं के आधार पर नियमित निरीक्षण किये जाने चाहिए। इन निरीक्षणों का उद्देश्य सस्था को अपने उपलब्ध साधनों के भीतर अच्छी-से अच्छी योजना तैयार करने मे सहायता पहुँचाना और उसके कार्यान्वयन मे सस्था का मार्गदर्शन कराना होना चाहिए। यदि ऐसा किया जाय तो निरीक्षणों का वर्तमान कामचलाऊ स्वरूप अधिकाशत समाप्त हो जायगा।

(३) ऐसी योजना तैयार करने के सम्बन्ध मे राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा मार्गदर्शी रूपरेखा प्रस्तुत की जानी चाहिए। इसम स्थूल रूप से राज्य-शासन की वे नीतियाँ दर्शायी जायँगी जो कि उसकी अपनी योजनाओं मे सम्मिलित की गयी हों और वे नीतियाँ सस्थाओं की योजनाओं मे भी उपयुक्त ढग से सम्मिलित की जायँगी। तथापि, यह बात भलीभाति समझ ली जानी चाहिए कि राज्य द्वारा जो मार्गदर्शी रूपरेखा प्रस्तुत की जायगी, उसका स्वरूप सिफारिशी होगा, आदेशात्मक नही। कोई शाला इस बात के लिए स्वतन्त्र होगी कि वह मार्गदर्शी रूपरेखा मे सम्मिलित किया गया कार्यक्रम किसी कारणवश न अपनाये, उसमे दिये गये। कार्यक्रमो मे कोई परिवर्तन करे और कोई ऐसे नये कार्यक्रम भी हाथ मे ले सके जो मार्गदर्शी रूपरेखा म सम्मिलित न किये गये हों।

(४) एक और भी महत्वपूर्ण कार्य यह है कि राज्य के समस्त निरीक्षण-अधिकारियों और मुख्याध्यापकों को कार्यक्रम-सम्बन्धी उपयुक्त प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाय। यह उत्तरदायित्व अनिवार्यत राज्य शिक्षा-सस्था का होना चाहिए।

(५) सस्था द्वारा किसी दीर्घकालिक योजना मे उतनी अवधि सम्मिलित की जायेगी जितनी उसे सुविधाजनक प्रतीत हो। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, ये पचवर्षीय योजनाएँ इस प्रकार बनायी जानी चाहिए कि राज्य की योजनाओं

की समीपवर्ती हो। वार्षिक योजनाएँ तैयार करने के लिए यह आवश्यक है कि शाला-वर्ष में कुछ विशिष्ट समय दिया जाय, और इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि प्रत्येक शिक्षा-वर्ष के आरम्भ में लगभग एक सप्ताह और अंत में एक सप्ताह इस प्रयोजन के लिए आरक्षित रखा जाना चाहिए। निम्नलिखित उपाय लाभकारी होंगे —

(क) अध्यापकों के लिए शाला निर्धारित दिन ही खोली जानी चाहिए, किन्तु छात्रों को एक सप्ताह पश्चात् आने दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शाला आरम्भ होने के पहले सप्ताह में अध्यापक काम पर आयें, किन्तु उनसे अध्यापन करने के लिए नहीं कहना चाहिए। तब हम इस समय को लगातार बैठक और चर्चाएँ आयोजित करने में और शाला के कार्य का विस्तृत वार्षिक आयोजन तैयार करने में लगा सकते हैं। इसमें उसके सभी पहलुओं को सह पाठ्यचर्या पाठ्यचर्या, कक्षा-योजनाएँ विषय-योजनाएँ और ऐसे प्रत्येक कार्यक्रम को जिसे शाला द्वारा हाथ में लिया जाना प्रस्तावित हो विस्तृत आयोजना में शामिल किया जाना चाहिए।

(ख) इसी प्रकार, वर्ष के अंत में एक सप्ताह ऐसा रखा जाना चाहिए जिसमें अध्यापक काम पर आये हों और छात्र छुट्टी पर हों। इस सप्ताह का उपयोग वार्षिक योजनाओं का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने में किया जाना चाहिए।

इस प्रस्ताव का आशय यह है कि छात्रों की छुट्टियाँ अध्यापकों की छुट्टियों से दो सप्ताह अधिक होंगी।* इससे ऐसा प्रतीत होगा कि अध्यापन-समय की कुछ हानि होती है किन्तु अच्छे स्तर के कार्य के रूप में जो लाभ होगा उससे यह कमी पूरी हो जायेगी।

(६) जब वर्ष के आरम्भ में वार्षिक योजना तैयार कर ली जाय तो उसके बाद शीघ्र ही तत्सबंधी सूचना निरीक्षण अधिकारी को दी जानी चाहिए। वर्ष के अन्त में किये गये मूल्यांकन के सम्बन्ध में ऐसा ही किया जाना चाहिए। इन योजनाओं और उनके मूल्यांकन के सम्बन्ध में शाला के अध्यापकों और प्राधिकारियों से (और आवश्यकतानुसार छात्रों से भी) चर्चा करना शाला निरीक्षण का एक महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए।

---

* यह अवधि मात्र सूचक है। वास्तविक अवधि कम भी हो सकती है और संस्था की आवश्यकताओं के अनुसार समयायोजित की जा सकती है।

(७) सस्थागत योजनाम्रो के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण तथ्य है उनका सफल कार्यान्वयन। सामान्य प्रवृत्ति यह है कि महत्त्वाकाक्षी योजनाएँ तैयार की जाती हैं जो कागज पर अच्छी मालूम होती है, किन्तु उनका कार्यान्वयन उदासीनता से किया जाता है, क्योकि निरीक्षण-अधिकारी बहुधा शालाम्रो को अनेक कार्यक्रम हाथ मे लेने के लिए कहते हैं। इसलिए इस प्रवृत्ति को बढावा मिलता है। इस प्रकार प्रभावहीन कार्यान्वयन, अकुशलता और आलस्यपूर्ण कार्य की शुरुआत होती है जिससे कि इस कार्यक्रम की, जो कि सार रूप मे गुणात्मक है, उपादेयता नष्ट हो जाती है। इन कमजोरियो से बचने के लिए यह स्पष्टत निर्धारित कर दिया जाना चाहिए कि छोटा उद्देश्य अपराध नही है। शालाम्रो को इस बात की स्वतत्रता दी जानी चाहिए कि यदि वे चाह तो छोटी योजनाएँ बनायें। पर महत्त्वाकाक्षी योजनाएँ लादने की कोशिश नही की जानी चाहिए। तथापि इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि चाहे आयोजन जो भी हो उसे अधिक-से-अधिक कुशलता से कार्यान्वित किया जाना चाहिए। यदि छोटे कार्य से भी आरम्भ किया जाय तो भी प्राप्त अनुभव के आधार पर और सफल कार्यान्वयन से स्वभावत जाग्रत होनेवाले आत्म विश्वास के आधार पर सस्था भविष्य मे अधिक महत्त्वाकाक्षी योजनाएँ हाथ मे ले सकती है। यदि इसके लिए कुछ धैर्य से काम लिया जाय तो उससे बहुत लाभ होगा।

(८) सस्थागत योजनाएँ तैयार करने मे लोकतान्त्रिक प्रक्रिया अपनाने और सभी सम्बन्धित अभिकरणो को सम्मिलित करने पर स्पष्टत जोर दिया जाना चाहिए। यह सत्य है कि यह उत्तरदायित्व आधारभूत रूप से मुख्याध्यापक या प्राचार्य का है, किन्तु सस्थाम्रो की प्रबन्ध-समितियो को भी इस कार्य मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह अध्यापको को घनिष्ट रूप से सम्मिलित करें। कई कार्यक्रमो मे स्थानीय समुदाय को भी सम्मिलित करना होगा। कुछ कार्यक्रमो मे छात्रो को भी सम्मिलित करना होगा। शिक्षा-सोपान पर जैसे-जैसे ऊपर बढा जाय यह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अतएव यह बात स्पष्टत समझ ली जानी चाहिए कि सस्थागत योजना इन समस्त सम्मिलित अभिकरणो के सहयोग से ही बनती है।

सस्थागत योजनाओं के इस आधारभूत प्रत्यय का सफलतापूर्वक विकास किया जा सकता है। उनमे से कुछ उपाय निम्नलिखित है—

(१) राज्य के शिक्षा विभागो को एक नये ढग की विचारधारा मे ढाला

जाना चाहिए। रूढ़िवादिता तथा एकरूपता के प्रति उनका जो वर्तमान आग्रह है उसे नमनीय तथा गतिशील दृष्टिकोण के हित मे छोड दिया जाना चाहिए। उन पर होनेवाला न्यूनतम व्यय पूरा किया जा सकता है। संस्थाओं तथा अध्यापको की अभिक्रमशीलता, रचनात्मकता, स्वतन्त्रता तथा प्रयोगशीलता को बढावा देना चाहिए। उसका यह उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वे अच्छी शालाओ को पहचानें और उन्हे अधिक सहायता तथा स्वतन्त्रता दें जिससे कि और भी अच्छी शालाएँ बन सकें जब कि इसके साथ ही उन्हें कमजोर संस्थाओ का आवश्यक मार्गदर्शन तथा निर्देशन भी करना चाहिए, जिससे कि वे भी अच्छी शालाएँ बन सकें।

(२) यद्यपि संस्थागत योजनाओ मे अतिरिक्त भौतिक साधनो और धन की अपेक्षा मानवीय प्रयासो पर जोर दिया जाना चाहिए, तथापि इस बात पर जोर देना भी आवश्यक है कि राज्य अनुदान में वृद्धि द्वारा संस्थाओं को अधिकाधिक संशोधन उपलब्ध कराने का प्रयास करें। इसके साथ ही यह बात भी उतनी ही आवश्यक है कि प्रत्येक संस्था अपने विकास के लिए अपने स्वय के साधन जुटाये। इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित तीन उपाय करने होंगे —

[क] शिक्षा-आयोग द्वारा सिफारिश की गयी रूपरेखा के आधार पर एक शिक्षा-निधि का रखा जाना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आयोग द्वारा कहा गया है कि इस निधि मे—(क) स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा संस्था को सौंपी गयी रकमे, (ख) अभिभावको तथा स्थानीय समुदाय द्वारा स्वेच्छा से दिये गये दान तथा अशदान, (ग) प्राथमिक शालाओ को छोडकर अन्य शालाओ में छात्रों से ली जानेवाली समुन्नित निधि, और (घ) राज्य शासन द्वारा समीकरण के आधार पर दिया गया सहायक अनुदान सम्मिलित होना चाहिए।

[ख] सहायक अनुदान की पद्धति मे उत्कृष्टता को प्रोत्साहित करने के लिए सुधार किया जाना चाहिए। शिक्षा संस्थाओ को दिये जानेवाले सहायक अनुदान को दो भागो में विभाजित किया जाना चाहिए। प्रथम प्रकार का अनुदान सामान्य अनुरक्षण अनुदान होगा, जो कि कतिपय समानता के सिद्धान्तो पर दिया जाता है, जिससे कि अध्यापकों के वेतनों का भुगतान किया जाता है तथा थोडा-सा अन्य मदो पर किन्तु कार्यफल के अनुसार विभिन्न संस्थाओ के लिए एक 'विकास अनुदान' की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके द्वारा विभिन्न शिक्षा संस्थाओ को अधिक श्रेष्ठ कार्यक्रम प्रस्तुत करने की दिशा मे प्रोत्साहन मिलेगा

और एक ऐसे आन्दोलन का जन्म होगा जिससे कालान्तर में सभी प्रकार के शैक्षिक स्तर में उन्नति होगी।

[ग] उत्कृष्ट कार्य करने की भावना को प्रोत्साहित करने की एक नीति अपनायी जानी चाहिए। शाला-स्तर पर, अच्छी शालाओं को "प्रायोगिक शालाओं" के रूप में विकसित होने देना चाहिए और उन्हें बाह्य परीक्षाओं के बन्धन से मुक्त कर दिया जाना चाहिए। स्वायत्त महाविद्यालयों के विकास द्वारा अथवा संस्थाओं को विश्वविद्यालयवत् घोषित करने के भारत सरकार में निहित अधिकारों के अधिक उदार प्रयोग द्वारा, विश्वविद्यालय-स्तर पर इसी प्रकार का कदम उठाया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों के उत्कृष्ट विभागों को उच्च अध्ययन के केन्द्रों के रूप में अपना विकास करने में प्रोत्साहन तथा सहायता दी जानी चाहिए तथा कम-से-कम कुछ विश्वविद्यालयों में शिक्षा की सम्बद्ध शाखाओं के उच्च शिक्षा-केन्द्र बनाये जायं जो एक-दूसरे को सुदृढ़ करें और एक-दूसरे की सहायता करें।

(३) संस्थागत योजनाओं के इस नवीन प्रत्यय का विकास करने में विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं को एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से, शिक्षा आयोग द्वारा सिफारिश किये गये 'स्कूल काम्प्लेक्सेस' कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक माध्यमिक शाला आसपास की प्राथमिक शालाओं के साथ घनिष्ट सहयोग से कार्य करेगी तथा मार्गदर्शन-सेवाओं के जरिए और सुविधाओं के जरिए उनके विकास में सहायता पहुँचायेगी। उच्च स्तर पर, एक ओर महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के बीच और दूसरी ओर आस-पास की माध्यमिक शालाओं के बीच यह भी प्रक्रिया अपनायी जा सकती है। वर्तमान स्थिति में, शिक्षा के विभिन्न स्तरों के अध्यापक पारस्परिक दोषारोपण में लगे हुए हैं।

उदाहरणार्थ, अयोग्य तथा कमजोर छात्रों को उत्तीर्ण करने के लिए माध्यमिक विद्यालयों को दोषी ठहराते हैं और माध्यमिक विद्यालय प्राथमिक शालाओं को। शिक्षा-आयोग द्वारा अनुशंसित विद्यालय-संगमों का कार्यक्रम इन सभी मतभेदों को शान्त कर देगा और पारस्परिक सेवा तथा सहायता के कार्यक्रम में शिक्षा के विभिन्न स्तरों को एक-दूसरे के समीप ले आयेगा।

२ स्कूल काम्प्लेक्स—संस्थागत योजनाएँ तैयार करने में और उन्हें कार्यान्वित करने में भी स्वयं अध्यापकों को ही पहल करनी होगी।

(१) प्राथमिक शालाएँ—प्राथमिक शालाओं की, विशेषतः एक अध्यापक-वाली शालाओं की योजनाएँ तैयार करना बहुत कठिन समस्या है। इस दिशा

मे सर्वप्रथम कदम यह होगा कि अध्यापका तथा मुख्याध्यापको को इस कार्य मे प्रशिक्षित किया जाय। उनकी सख्या को दृष्टिगत रखते हुए यह कार्य भी बहुत भारी कार्य है। किन्तु इतना करना ही पर्याप्त नही होगा, बल्कि उनका सतत मार्गदर्शन करना तथा उन्हे सहायता पहुँचाना भी आवश्यक होगा। इस प्रयोजन के लिए, शिक्षा आयोग द्वारा सिफारिश किये गये स्कूल काम्प्लेक्स के कार्यक्रम को अपनाना आवश्यक होगा। प्रत्येक स्कूल काम्प्लेक्स मे एक उच्च/उच्चतर माध्यमिक शाला उसके केन्द्र के रूप मे होगी और केन्द्रीय माध्यमिक शाला के आस-पास की तीन मील से पाँच मील तक के घेरे मे आनेवाली समस्त प्राथमिक शालाएँ उसके अन्तर्गत होगी। इन समस्त सस्थाओ को शैक्षिक योजना तथा विकास के प्रयोजनार्थ एक इकाई के रूप मे माना जाना चाहिए और उसे शिक्षा म एक जीवत कोषिका मानना चाहिए। इसमें सामान्यत अध्यापकों के छोटे और सीमित समूह होगे जो कि सुगम अन्तर पर एक दूसरे के साथ सहयोग से कार्य कर सकेंगे, और उनके अन्तर्गत लगभग एक दर्जन प्रशिक्षित स्नातक होने के कारण उनमे अपेक्षित निपुणता भी होगी। अध्यापको का यह समूह आसानी से एक-दूसरे की सहायता कर सकता है और यह निगरानी कर सकता है कि समूह के अन्तगत सम्मिलित प्राथमिक शालाएँ अपनी स्वय की सतोषजनक योजनाएँ तैयार करें और कार्यान्वित करें।

(२) *माध्यमिक शालाएँ*—*माध्यमिक शालाओ को अपनी सस्थागत* योजनाएँ तैयार करने और कार्यान्वित करने म स्वय माध्यमिक अध्यापकों द्वारा तथा अशात महाविद्याल्यीन तथा विश्वविद्यालयीन अध्यापको को मार्गदर्शन प्रदान किया जायेगा। यह वाछनीय है कि प्रत्येक जिले मे एक माध्यमिक शाला मुख्याध्यापक फौरम हो और इस फोरम का यह उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वह, अपने सदस्यो के जरिये कार्य करते हुए, माध्यमिक शालाओ को उनकी योजनाएँ तैयार करने और कार्यान्वित करने मे मार्गदर्शन प्रदान करे। इसी प्रकार, हम उच्चतर स्तर पर भी एक स्कूल काम्प्लेक्स का निर्माण कर सकते हैं, जिसम किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालयीन विभाग को उसके आस-पास की कुछ उच्च/उच्चतर माध्यमिक शालाओ से सम्बद्ध किया जाय। उसके पश्चात् सम्बन्धित महाविद्यालय अथवा विद्यालयीन विभाग के अध्यापक अपने क्षेत्र की *माध्यमिक शालाओ के अध्यापकों के साथ कार्य कर* सकते हैं और उन्हे उनकी योजनाएँ तैयार करने और कार्यान्वित करने म मार्ग दर्शन प्रदान कर सकते हैं।

(३) **पैनल इन्स्पेक्शन**—एक और पद्धति जिसके अन्तर्गत प्राथमिक शालाओ

तथा माध्यमिक शालाओ की योजनाएँ तैयार करने मे शिक्षक मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं, 'पैनल इन्स्पैक्शन' की पद्धति है, जिसकी सिफारिश शिक्षा आयोग द्वारा की गयी है। वर्तमान समय मे प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाओ के समस्त निरीक्षण विभागीय अधिकारियो द्वारा वार्षिक आधार पर किये जाते हैं। यह पद्धति जारी रहनी चाहिए, तथा शिक्षा-आयोग ने यह सिफारिश की है कि उसके साथ ही प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाओ के निरीक्षण तीन से पाँच वर्षो मे एक बार 'पैनल इन्स्पैक्शन की पद्धति से किया जाना चाहिए। प्रत्येक पैनल मे कुछ चुने हुए अध्यापक या मुख्याध्यापक (जिसमे उस शाला का मुख्याध्यापक भी सम्मिलित हो जिसका निरीक्षण किया जाना हो) सम्मिलित होंगे और एक विभागीय अधिकारी उसके सचिव के रूप मे कार्य करेगा। पैनल मे सम्मिलित अध्यापको को प्रत्येक संस्था के लिए काफी समय देना होगा जिससे उसके कार्यों का मूल्यांकन हो सके और उसका उचित मार्गदर्शन कर सकें। पैनल इन्स्पैक्शन की पद्धति का प्रमुख लाभ यह है कि उससे वरिष्ठ तथा सक्षम अध्यापको के अनुभव और विशेष ज्ञान का लाभ समस्त व्यक्तियों को उपलब्ध हो सकेगा।

(४) महाविद्यालय—महाविद्यालय बिना अधिक कठिनाई के अपनी योजनाएँ तैयार और कार्यान्वित कर सकेंगे। उन्हें जिस मार्गदर्शन की अपेक्षा हो वह विश्वविद्यालयो द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए।

(५) विश्वविद्यालय—विश्वविद्यालयो को अपनी योजनाएँ स्वय तैयार और कार्यान्वित करना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए उन्हे शिक्षा आयोग द्वारा सिफारिश किये गये आधारो पर शैक्षिक आयोजन मण्डलों का गठन करना चाहिए। इनमे अन्य विश्वविद्यालयो मे कुछ व्यक्तियो और समाज के कुछ प्रतिष्ठित तथा अनुभवी व्यक्तियो के अतिरिक्त विश्वविद्यालयो के प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिए। ये मण्डल विश्वविद्यालय को उसकी दीर्घकालीन योजनाएँ तैयार करने मे सलाह देंगे, नये विचार एव कार्यक्रमो के लिए प्रोत्साहन देंगे तथा उपलब्धियों का मूल्यांकन करेंगे।

३. जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय योजनाएँ—जैसा इससे पूर्व की चर्चा से मालूम होगा, संस्थागत योजनायें तैयार करने तथा कार्यान्वित करने मे मुख्यत अध्यापकों को ही नेतृत्व करना होगा और अन्य प्राधिकारी सहायक भूमिका का निर्वाह करेंगे। तथापि जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर योजनाएँ तैयार करने तथा कार्यान्वित करने मे उपयुक्त प्राधिकारियों को पहल करनी होगी। उदाहरणार्थ, शिक्षा-आयोग द्वारा सिफारिश की गयी जिला परिषदें अथवा जिला

शाला मण्डल अपने जिले में शैक्षिक योजनाएँ तैयार करने तथा कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी होंगे। इसी प्रकार शिक्षा की राज्य-स्तरीय योजनाएँ राज्य-शासनों तथा राज्य के शिक्षा विभागों द्वारा तैयार तथा कार्यान्वित की जायेंगी जब कि राष्ट्रीय स्तर की योजनाएं तैयार करने तथा कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय पर होगा। किन्तु यह सुनिश्चित करने के लिए समुचित उपाय करना आवश्यक है कि इन स्तरों पर भी शिक्षा-योजनाएँ तैयार करने और कार्यान्वित करने में अध्यापकों को प्रभावकारी ढंग से सम्बद्ध किया जाय। इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं –

(१) जिले में शिक्षा की योजनाएँ तैयार करने तथा कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी प्राधिकारियों को अध्यापकों की सलाहकार जिला परिषदें गठित करनी चाहिए, जिनमें जिले में कार्य करनेवाले समस्त अध्यापक-संगठनों के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे। शिक्षा के आयोजन तथा विकास से सम्बन्धित समस्त विषयों पर इन परिषदों में परामर्श लिया जाना चाहिए।

(२) इसी प्रकार राज्य-स्तर पर संयुक्त अध्यापक-परिषदों का गठन करना चाहिए जिनमें राज्य में कार्य कर रहे विभिन्न अध्यापक-संगठनों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिए। अध्यापकों के वेतन तथा सेवा से सम्बन्धित समस्त विषयों पर तथा शिक्षा के आयोजन तथा विकास से सम्बन्धित समस्त विषयों पर इनमें सलाह ली जानी चाहिए।

(३) शिक्षा मन्त्रालय को एक राष्ट्रीय अध्यापक परिषद् का गठन करना चाहिए जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत समस्त अध्यापक-संगठनों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिए। उसके कार्य राज्य-स्तर पर गठित संयुक्त अध्यापक परिषदों जैसे ही होने चाहिए और उन्हें शैक्षिक योजनाएँ तैयार करने तथा कार्यान्वित करने में प्रभावकारी ढंग से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।●

प्रतिभा की खोज

डा० हरद्वारीलाल शर्मा

हमारे देश मे सोने की खानें बहुत नही हैं न निकट भविष्य म रासायनिक विधि से मनचाहा सोना बनाये जाने की सम्भावना है किन्तु सोने की खानो से भी अधिक मूल्यवान एव महत्त्वपूण ऐसे बालको को खोजा जा सकता है जो अपनी प्रतिभा के बल से राष्ट्र को समथ और सम्पन्न बना सकते है। लगभग सभी देशा की स्थिति समान ही है, प्राकृतिक साधन सीमित है और मनुष्य की आवश्यकताएं एव कल्पनाएं असीम। सामान्यतया समय और सीमा को बांधा नही जा सकता। अतएव आज मनुष्य की आशाओ का आधार और कल्पनाओ का पोषक सम्बल यदि कुछ है तो वह है उसकी मानसिक ऊर्जाओ का अनन्त आगार एव आध्यात्मिक तत्त्वो की अक्षय निधि। ऐसा नही है कि विशेष प्रतिभा-सम्पन्न बालक बहुत विरले हो। आपके विद्यालय मे यदि १०० छात्र हैं तो उनमे से कम-से-कम ५ बालक उच्च प्रतिभासम्पन्न हो सकते हैं। ५० करोड जनसख्या के इस देश मे ढाई करोड व्यक्ति के असाधारण बौद्धिक ऊर्जा स युक्त होने की सम्भावना हो सकती है। ऐसा भी नहीं है कि ये बच्चे केवल धनी परिवार, गौर वण उच्च जाति अथवा विद्वान वग या गिनेमाने वशो तक ही सीमित हो। प्रतिभा किसी वण वग या वश को नहीं मानती।

ससार के सास्कृतिक वैज्ञानिक बौद्धिक विकास का इतिहास इसका साक्षी है। इस देश म भी प्रतिभा की कमी नही है और वह नगरो एव उपनगरो की भी अपेक्षा गाँव मे खेतो और खलिहानो मे कारखानो के मालिको एव मजदूरो म समान रूप से प्रचुर मात्रा मे बिखरी पडी है। शिक्षा का कायक्षेत्र आज केवल उपस्थित होनेवाले छात्रो को पढाना लिखाना मात्र नही है। इसका काय छात्रो म सामान्य ज्ञान एव कौशलो के विकास के अतिरिक्त प्रतिभा के नूतन स्रोतो का आविष्कार करना भी है ऐसी प्रतिभा जिसम राष्ट्र को ओज और ऊर्जा, तथा नूतन दिशाओ को उदघाटन करनेवाला आलोक प्राप्त होता है।

प्रतिभा की खोज सामान्यतया काम है अध्यापक का। परन्तु इसके लिए चाहिए विशेष कौशल मनुष्य,का विज्ञान उसकी वृद्धि की परख, प्रतिभा की विभिन्न अभिव्यक्तियो को निरखने-परखने की क्षमता मानव-मन की गहराइयो को समझने की सूझ-बूझ बालक की अविकसित एव अन्तर्निहित क्षमताओ को भाँप लेने का अभ्यास। प्रत्येक अध्यापक जो बालको के सम्पक म आता है उन

वैज्ञानिक कौशलो मे दीक्षित होना चाहिए जिनसे वह प्रतिभा को पहचान सके। यो तो साधारणतया भी प्रत्येक बालक के विकास की सम्भावनाएँ होती है जिन्हे अध्यापक स्वय समझने का प्रयास करे और साथ ही अध्यता को उसका बोध कराये। सक्षेप मे 'स्व' का बोध एव उसके विकास की सम्भावनाओ का परिचय छात्र को करा देना आज अध्यापक के लिए उतना ही आवश्यक है जितना स्वय अध्यापन का काम। इतनी बात तो है कि अध्यापक के लिए कौशलो का ज्ञान आवश्यक है परन्तु पर्याप्त नही। बालक के प्रति सच्ची सहृदय सहानुभूति भी उतनी ही अपेक्षित है।

प्रतिभावान बालक की मोटी पहचान तो प्रत्येक अध्यापक को होनी ही चाहिए। केवल रग, रूप, सिर या शरीर की बनावट देखकर अनुमान नही लगाया जा सकता। कभी-कभी छात्र के अच्छे परीक्षाफल मे भी भ्रम उत्पन्न हो सकता है। यद्यपि छात्र का निरन्तर उत्तम रहनेवाला परीक्षाफल इस बात की सम्भावना रखता है कि वह प्रतिभा से युक्त हो। अतएव ऐसे छात्रो पर अध्यापक की दृष्टि जरूर रहनी चाहिए और रहती भी है। परन्तु यह भी देखा गया है कि ऊँची मानसिक ऊर्जावाले बालक कभी-कभी कक्षा मे विशेष रूप से छोटी कक्षाओ मे पिछड जाते हैं। कारण यह होता है कि जो काम सामान्य बुद्धिवाले बालक के लिए काम होता है वह काम असामान्य बुद्धि के बालक के लिए 'न कुछ' के बराबर होता है और वह उसे 'न कुछ' समझकर करता भी नही है, उसे छोड देता है। चुनौती के अभाव मे उसकी इच्छा भी काम करने के लिए नही होती और काम न करने मे वह पीछे रह जाता है। ऐसा प्रतिभा-वान बालक बिगड भी जाता है, शरारतें करने लगता है और धीरे धीरे ऐसा भी होना है कि उसका सारा व्यक्तित्व ही अस्वस्थ हो जाय।

अध्यापक को ऐसे छात्रो की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए उनको खोज-कर वास्तव मे चुनौती देनेवाला काम उनसे कराया जाना चाहिए। अन्य सामान्य छात्रो की अपेक्षा उन्हें दुलार-सम्मान के साथ साथ अनुशासन और उच्च कोटि के कार्य की आवश्यकता होती है। थोडी आयु म ही ऐसे बालक बहुत ऊँची कक्षाओ का कार्य कर लेते हैं। उन्हे आगे पढाइए, आगे बढाइए।

प्रतिभावान बालको का शब्द बोध एव भाषा के ऊपर अधिकार सामान्य से उच्च होता है। शब्द और भाषा का सम्बन्ध विचार और बौद्धिक विकास से है, अत एक अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रो से शब्दो का प्रयोग कराये, वाक्य पूर्ति कराये पर्याय एव विलोम शब्दो का बोध, भाषा के प्रयोग, धाराप्रवाह कठिन शब्दो का भण्डार आदि का पता लगाये। इस सबसे छात्र के बौद्धिक स्तर का

लगभग सही अनुमान लगाया जा सकता है। यदि बालक भाषा में प्रवाह प्रसाद, ओज माधुर्य आदि गुणों को एवं शब्द-सौष्ठव, लय गीत, संगीत शब्दों के भार, गरिमा, आदि गुणों को भी हृदयगम्य कर सकता है और अर्थों के आलोकमय लोक में विचरण कर सकता है तो सम्भव है कि वह साहित्यकार या कवि हो।

प्रतिभावान छात्र सामान्य से अधिक संवेदनशील भी होते हैं। वे किसी भी सरल या जटिल स्थिति को शीघ्र ही समझ जाते हैं और उसे समझकर अपने आपको चटपट समायोजित भी कर लेते है। उदाहरण के लिए यदि पाठशाला में निरीक्षण के लिए डिप्टी साहब के आने पर अध्यापक कुछ सिटपिटाये मालूम होते है तो, प्रतिभावान बालक उस स्थिति को समझकर शीघ्र ही उसके अनुरूप अपना व्यवहार बना लेते हैं। घर में भी विभिन्न स्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालने की योग्यता इन बालकों में होती है। उनमें आत्मालोचन एवं आत्म-मूल्यांकन की क्षमता भी सामान्य से अधिक होती है और वे छोटी उम्र में भी बड़ों जैसा व्यवहार और बातचीत करने लगते हैं। यहाँ तक कि ऐसे बालक सदा अपनों से बड़ों के साथ हिलते मिलते हैं, खेलना और बातचीत करना दोस्ती करना पसन्द करते हैं। इनकी अपने से छोटों के साथ बहुधा नहीं पटती, क्योंकि ये उन्हें तुच्छ हेय समझते है इसी कारण इन प्रतिभाशाली बालकों में गर्व एवं गौरव की मात्रा भी पायी जाती है। वैसे उन्हें घमंडी नहीं कहना चाहिए क्योंकि ये बालक सामान्य और बुद्धू बालकों की अपेक्षा अपनी अपनी शक्ति की सीमाओं को अधिक जानते-पहचानते हैं—परन्तु उनमें सबसे आगे रहने की इच्छा साधारण से अधिक पायी जाती है।

प्रतिभावान बच्चे बहुधा सख्या के आकलन में बड़े तेज होते है। सख्या से अनेक सूक्ष्म सम्बन्ध निकलते हैं जैसे अनेक जोड़ी से मिलकर गुणा बनती है। अनेक बार घटाने को भाग कहते हैं। घटाने में भी जोड़ और जोड़ में भी घटाना शामिल हो सकता है जैसे २५ में कितना जोड़ें कि सख्या ३७ हो जाय या हो इत्यादि तीव्र बुद्धिवाले बालक इन सम्बन्धों को समझने में बहुत तेज होते हैं (तीव्रगति के साथ ही सही होने का गुण तेज होना)। उनका मौलिक गणित बहुत अच्छा होता है। उसकी स्मृति तात्कालिक और स्थायी होना ही अच्छी होती है। साधारण, प्रचलित विश्वास के विपरीत ये बालक सामान्य से अधिक स्वस्थ होते हैं। खेल इनको भाता है और सभी खेलों में भाग लेते हैं। जहाँ बुद्धि की अधिक आवश्यकता होती है वहाँ ये बालक आगे आगे जाते हैं। इन बालकों में 'बोरियत' को सहने की शक्ति भी अधिक होती है।

अतिशय बुद्धिवान बालकों में सबसे प्रबल प्रेरक होती है उनकी जिज्ञासा या ज्ञान पिपासा। वह मानो शान्त होना ही नहीं जानती। कक्षा को अध्यापक पढ़ा रहा है। पूछा कि किसी को कोई बात पूछना हो तो पूछो। सभी छात्र शान्त एवं सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु प्रतिभावान बालक सन्तुष्ट नहीं होता, क्योंकि उसके सामने पूछने के लिए अनेक प्रश्न होते हैं। कभी-कभी तो गूढ़ प्रश्न यह भी हो सकता है कि अध्यापक उसे शरारती बालक समझ बैठे। पर ऐसे बालक मां-बाप के लिए समस्या बन जाते हैं। इतने प्रश्न पूछते हैं कि वे तंग आ जायें और कहें चुप रहो हर समय शैतानी की बात करते हो।

बात शैतानी की नहीं है बात है विशेष प्रतिभा की। प्रश्नों का पूछना हर एक का काम नहीं होता। कैसे कितने प्रश्न बालक पूछता है यह उसके बौद्धिक स्तर की एक पहचान है। वह अपने चारों ओर के परिवेश को समझना चाहता है। चारों ओर से उसकी बुद्धि के दरवाजे एवं खिड़कियां खुली हुई हैं। उसके लिए कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। वह सामाजिक सम्बन्धों को मानवीय रहस्यों को प्रकृति घटनाचक्र को, और कार्य-कारण-सम्बन्धों को हृदयंगम करना चाहता है। इनको जाने बिना वह बेचैन रहता है। यदि उसकी जिज्ञासा शान्त न हुई तो इसके अनेक विकृत रूप हो सकते हैं। अतएव अध्यापक को चाहिए कि उनकी जिज्ञासा के स्वरूप को समझकर उसे तृप्त करने का प्रयत्न करे। जो बालक बहुत ऊँची सृजनात्मक (कारयित्री) प्रतिभावाले होते हैं उनमें नये-नये प्रयोग करने के लिए सदैव प्रेरणा बनी रहती है। इससे उन्हें नये अनुभव प्राप्त होते हैं और उनका मानसिक क्षितिज विस्तृत होता जाता है। उनकी जिज्ञासा को ही नहीं उनके अहं को भी तृप्ति मिलती है। किन्तु प्रयोग करने के लिए चाहिए कल्पना की उर्वरता बुद्धि की उड़ान भरने की क्षमता एवं ऊहापोह करने में आनन्द लेने की योग्यता। अतएव प्रतिभावान बालक बहुत छेड़छाड़ जोड़-तोड़, स्वप्न की-सी आश्चर्यजनक कल्पनाएं बहुत कुछ ऊल-जलूल कही जानेवाली बातें करते हैं। उनमें नयी स्फूर्तियाँ नवोन्मेष नूतन-सम्मुख खड़े होने का साहस आदि होते हैं। अतएव ऐसे बालकों को भी ध्यान से देखना चाहिए। ये अजीब दिखनेवाले बालक कभी-कभी असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न होते हैं।

प्रतिभा की खोज देश की शिक्षा व्यवस्था का पहला किन्तु आवश्यक चरण है। प्रत्येक अध्यापक को चाहिए कि इन पर आँख रखे क्योंकि यह कहा गया है कि ये बालक राष्ट्र की सच्ची निधि हैं और इन प्रतिभा-सम्पन्न बालकों का राष्ट्र के हित में प्रशिक्षण शिक्षा-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण चरण होता है।●

नये समाज के लिए नयी तालीम

यशोधर श्रीवास्तव

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका दोहरा लक्ष्य होता है—समाज को बदलना और समाज का बनाना। यों भी कह सकते हैं कि समाज की यथा स्थिति (स्टेटस-को) को बदलकर नये मूल्यों की स्थापना द्वारा उसके पुनर्निर्माण की अहिंसक प्रक्रिया का नाम ही तालीम या शिक्षण है। शिक्षण की इस प्रक्रिया से दबाव या दंड की प्रक्रिया का विरोध है। समाज को बदलने और समाज के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया जब हृदय-परिवर्तन का समझाने और मनाने का रूप ग्रहण करती है तब वह शिक्षण की प्रक्रिया बन जाती है, जिसे एच० जी० वेल्स ने 'सभ्यता और प्रलय के बीच की दौड़' कहा है। शिक्षण की यह प्रक्रिया अहिंसक क्रान्ति का अग्रदूत भी है और क्रान्ति का पुष्टि-मार्ग भी है। गाधीजी ने अपने सपनों के भारत के निर्माण के लिए जिस अहिंसक प्रक्रिया की खोज की थी उसका नाम रखा था 'नयी तालीम'। गाधीजी को हिंसामूलक पुराने समाज के स्थान पर अहिंसामूलक नये समाज की रचना करनी थी। अतः उन्होंने 'पुरानी तालीम' की जगह 'नयी तालीम' की बात कही। उनकी कल्पना के 'नये समाज' की रचना होनी है तो नयी शिक्षा चलनी चाहिए।

गाधीजी की नयी शिक्षा की सकल्पना मे उनके 'सर्वोदय समाज' की सकल्पना अन्तर्निहित है। नयी तालीम चलेगी तो भारत शोषण-विहीन वर्ग वर्ण भेद-मुक्त एक ऐसा लोकतन्त्र बन सकेगा जिसमें समाज के अन्तिम व्यक्ति का उदय होगा और प्रथम व्यक्ति के 'सहार' की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। सत्य के आधार पर अहिंसक क्रान्ति की कल्पना को चरितार्थ करने के लिए गाधीजी ने 'नयी तालीम' का प्रवर्तन किया था। उन्हें समाज की बुनियाद को ही बदलना था—इसीलिए उन्होंने इस नयी तालीम को 'बुनियादी तालीम'—बेसिक (बुनियादी) शिक्षा कहा।

शोषण की प्रवृत्ति

विकासवाद कहता है कि आखेटयुग मे मिल-जुलकर शिकार करने और आपस मे बाँटकर खाने के कारण जिस आदिम साम्यवाद का जन्म हुआ था कृषियुग की दास प्रथा और परिणामस्वरूप शोषण की प्रवृत्ति के विकास के

कारण उसका ह्रास हो गया। कृषि ने कतिपय बलवानो द्वारा कमजोरो को दास बनाकर उनसे जबरन खेती और खेती से सम्बन्धित दूसरे धन्धो को करवाना सम्भव कर दिया। कृषि ने ही सग्रह और सचय की प्रवृत्ति को जन्म दिया, जिसकी विकृति अस्तेय और परिग्रह म हुई। इन कारणो से शोषण की प्रवृत्ति उभरी और आदिम युग का सहकार और अपरिग्रह मिटने लगा। गेहूँ का दाना खाने के बाद स्वर्ग के उद्यान मे निश्चित निर्द्वंद्व विचरनवाले 'आदम का स्वर्ग खो गया। आदम की सन्तान की सभ्यता का निर्माण दास प्रथामूलक शोषण की प्रवृत्ति पर हुआ। शोषण की यह प्रवृत्ति आज मानव का सस्कार बन गयी है जिसका उन्मूलन कठिन मालूम पडता है।

शोषण हिंसा का दूसरा पहलू मात्र है। जहाँ तनिक भी शोषण है, हिंसा है, और जहाँ हिंसा है, वहाँ वास्तविक लोकतन्त्र (नया समाज) जिसकी कल्पना मानव ने अपनी मुक्ति के लिए की है, टिक नही सकता। किसी-न किसी रूप मे वहाँ हिंसा और दण्डशक्ति पर आश्रित पुराना समाज कायम रहेगा, पुराना समाज चाहे वह अमेरिका की तरह पूजीवाद-मूलक 'लोकतत्र' हो, चाहे रूस के पटन का सर्वाधिकार-मूलक साम्यवाद हो, लोकतत्र नही है। एक म शोषण है—व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण, और दूसरे में राज्य द्वारा मानवात्मा का दमन है। दोनो ही मे हिंसा है। लोकतत्र तो अहिंसा की, अशोषण की, विशुद्ध प्रक्रिया है (डिमोक्रेसी इज अनडाइल्यूटेड नानवायलेन्स)। जहाँ एक है, दूसरा नही रहगा। अहिंसक समाज के निर्माण के लिए हिंसा और कानून (कानून भी परिसीमित, समाज-स्वीकृत हिंसा ही है) से अलग एक तीसरी शक्ति की आवश्यकता है—अहिंसा और प्रेम की शक्ति की। अशोषण की प्रवृत्ति से मुक्त हुए बिना अहिंसा और प्रेम की तीसरी शक्ति का निर्माण नही हो सकता। अत मौलिक समस्या शोषण की प्रवृत्ति को नष्ट करने की है। नयी तालीम शोषण की इसी प्रवृत्ति को निर्मूल करने की प्रणाली है।

शोषण की प्रवृत्ति जन्मी थी स्वय उत्पादन न करके दूसरो मे पैदा कराकर स्वय उपभोग करने की प्रवृत्ति मे, जो समस्त असमान वितरण के मूल म है। अत अगर शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त करना है, तो 'सब अनिवार्यत उत्पादन करें'—ऐसी वस्तुओ का सृजन करें, जिनसे मानव की बुनियादी आवश्यकताओ की पूर्ति होती है—इस प्रवृत्ति का सृजन करना होगा। यह तभी सम्भव होगा जब समाज मे शिक्षण की जो प्रक्रिया चले वह उत्पादन-मूलक हो और हाथ का उत्पादक काम शिक्षण का केन्द्र-बिन्दु बन जाय।

यही कल्पना बुनियादी शिक्षा के मूल में है। गांधीजी ने कहा था— 'हाथ का काम मेरी योजना का केन्द्र बिन्दु होगा। हाथ की तालीम का यह मतलब नहीं होगा कि विद्यार्थी पाठशाला के संग्रहालय में रखने लायक वस्तुएँ या ऐसे खिलौने बनायें जिसका कोई मूल्य नहीं है। उन्हें ऐसी वस्तुएँ बनानी चाहिए जो बाजार में बेचा जा सकें। शिक्षा की मेरी योजना में अक्षर सीखने के पहले लड़के औजार चलाना सीखेंगे।'[1] समाज का हर बच्चा अपने हाथ से उत्पादक काम करना सीखे जिससे अहिंसक समाज रचना के लिए जिस शोषण प्रवृत्ति को मिटाने की आवश्यकता है वह मिटे। जिस व्यक्ति को किसी समाजोपयोगी काम की शिक्षा नहीं मिली है वह दूसरों के शोषण की प्रवृत्ति का दमन नहीं कर सकता।

इसीलिए गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा में इस बात पर जोर दिया कि जिस दिन से बालक विद्यालय में आता है उस दिन से और जब तक वह विद्यालय में रहता है उस दिन तक उसे एक समाजोपयोगी धन्धे को वैज्ञानिक ढंग से सीखना और उसीके माध्यम से पढ़ लिखकर अपने व्यक्तित्व का संस्कार और विकास करना चाहिए। गांधीजी के शब्दों में— उसने हाथ की कुशलता आखिरी मंजिल तक काम में लायी जायगी अर्थात् दिन में कुछ समय तक विद्यार्थियों के हाथ किसी उद्योग में कुशलता के साथ काम करते रहेंगे।[2] ऐसा होगा तभी शोषण की प्रवृत्ति रुकेगी और एक स्वावलम्बी व्यक्तित्व का विकास होगा। इसीलिए स्वावलम्बन की इस प्रवृत्ति को गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की तेजाबी जांच कहा था।

शोषण बनाम स्वावलम्बन

स्वावलम्बन की प्रवृत्ति शोषण की विरोधी प्रवृत्ति है। अशोषण सिक्के का 'निगेटिव' (अस्वीकारात्मक) पहलू है तो स्वावलम्बन पाजिटिव (स्वीकारात्मक) पहलू है। उत्पादक उद्योग के सतत करते रहने से स्वावलम्बी प्रवृत्ति का उदय होता है और जब स्वावलम्बी प्रवृत्ति संस्कार बन जाती है तो शोषण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। हाथ का काम जब बौद्धिक विलास बनकर रह जाता है तो उससे स्वावलम्बन की प्रवृत्ति पुष्ट नहीं हो पाती। इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर गांधीजी का स्वावलम्बन पर जोर देना समझ में आता है। सन१९३७ में जब बुनियादी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ तो उसके

१ हरिजन —११ सितम्बर १९३१
२ हरिजन —२ नवम्बर १९४७

नये समाज और नयी तालीम का दूसरा आवश्यक तत्व है उसकी ग्राम मूलकता। गांधीजी प० जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखते हैं— मेरी दृढ़ मान्यता है कि अगर भारत को सच्ची आजादी हासिल करनी है और भारत के जरिए संसार को भी तो आज नहीं तो कल लोगों को यह समझना होगा कि लोगों को गांवों में ही रहना है शहरों में नहीं। बहुत पहले उन्होंने यंग इण्डिया में लिखा था— भारत की जरूरत यह नहीं है कि चंद लोगों के हाथों में बहुत सारी पूंजी इकट्ठी हो जाय। बल्कि पूंजी का ऐसा वितरण हो कि वह इस विशाल देश को बनानेवाले साढ़े सात लाख गांवों को आसानी से उपलब्ध हो सके।[1]

गांधीजी राजनीतिक आजादी को काफी नहीं मानते थे। अपने आखिरी वसीयतनामे में वह लिखते हैं— मैं ऐसा भारत चाहता हूँ जिसमें गरीब-से गरीब लोग भी यह महसूस करें कि यह उनका देश है। आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हरएक गांव में लोगों की हुकूमत हो। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत हो। हरएक गांव को अपने पांवों पर खड़ा होना है ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके यहां तक कि वह अपनी रक्षा भी खुद कर सके। साढ़े सात लाख (अब साढ़े पांच लाख) गांवों की दृष्टि से हिंदुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है।

जगत के कानून को खतम कर मानव को प्रेम और करुणा के आधार पर जब शांति के साथ एक स्थान पर बसने और रहने की जरूरत महसूस हुई तो गांव बने। इसके विपरीत कारखानों की सभ्यता पर शहर बने जिनके मूल में सत्ता और संपत्ति का केन्द्रीकरण है और जिनकी निष्पत्ति शोषण है। कारखानों की सभ्यता पर हम अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते। स्वावलम्बी गांवों की बुनियाद पर ही वह किया जा सकता है। ग्रामीण आर्थिक रचना की मेरी कल्पना में शोषण बिल्कुल समाप्त हो जाता है और शोषण तो हिंसा का सार है। इसलिए अगर हमें अहिंसक बनना है तो ग्रामीण वृत्तिवाला बनना होगा। अहिंसा पर आधारित समाज गांवों में बने हुए समुदायों का ही हो सकता है।[2]

---

१ यंग इण्डिया—२३ मार्च १९२१
२ हरिजन—जनवरी १९४०

ग्रामस्वराज्य ही वास्तविक हिन्द-स्वराज्य है। वही असली आजादी है, वही भारत का ही नहीं, आज के अतिकेन्द्रित यांत्रिकला से आक्रान्त विश्व की मुक्ति का भी मार्ग है। इसीलिए गांधीजी ने नयी तालीम के मूल मे ग्रामोद्योगों को रखा था। 'जाकिर हुसैन समिति' द्वारा तैयार किये गये 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' नामक पुस्तक के दूसरे सस्करण के लिए लिखी गयी भूमिका मे वे लिखते हैं—

'जिसे जाकिर हुसैन समिति ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा कहा है, वह भारत मे और बाहर भी खासी दिलचस्पी पैदा कर रही है। उसका आकर्षण तो कम पर ज्यादा सही वर्णन होगा—दस्तकारियो द्वारा ग्रामीण राष्ट्रीय शिक्षा। 'ग्रामीण' शब्द से तथाकथित उच्च या अग्रेजी तालीम का निषेध हो जाता है। इस समय 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ है—'सत्य और अहिंसा' और देहाती दस्तकारियो का मतलब यह है कि योजना बनानेवाले शिक्षको से यह आशा रखते हैं कि वे ग्रामीण बालको को उनके गाँवो म इस तरह शिक्षा देंगे जिससे ऊपर से लादे हुए प्रतिबधो और हस्तक्षेपो से मुक्त वातावरण मे कुछ चुनी हुई दस्तकारियों के जरिए बालको की तमाम शक्तियो को बाहर लाया जाय। इस तरह सोचें तो यह योजना देहाती बच्चो की शिक्षा म एक क्रान्ति है। यह किसी भी अर्थ मे पश्चिम से लायी हुई चीज नही है। अगर पाठक इस हकीकत को ध्यान मे रखेंगे तो इस योजना को, जिसे तैयार करने मे कुछ उत्तम शिक्षा-शास्त्रियो ने अपना पूरा ध्यान लगाया है, ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे।

सन् १९४५ मे नयी तालीम के सम्बन्ध मे विचार करते समय उन्होंने इसे देहाती और शहरी, दोनो क्षेत्रो के लिए उपयुक्त बनाया। इसका अर्थ यह है कि वह जिस नयी शिक्षा से नये समाज के बाने की वकालत करते थे उसके मूल मे उन्होंने ग्रामीण दस्तकारियो को ही रखा था, जिससे भारत के लाख-लाख गाँवो मे फैली हुई जनशक्ति का उपयोग हो सके और थोडे पूंजीपतियो द्वारा जनता का शोषण रुक सके।

विकेन्द्रीकरण और यन्त्रीकरण

सत्ता और सम्पत्ति का विकेन्द्रीकरण अहिंसक समाज की पहली शर्त है। 'आज यन्त्रो के कारण मुट्ठी भर आदमी लाखो की पीठ पर सवार होकर बैठे है, और उन्हे सता रहे हैं। आधुनिक यन्त्रो के चलाने के मूल म मनुष्य का लोभ है धन की तृष्णा है, जन-कल्याण की भावना नही है। यन्त्रो के इस दुरुपयोग के विरुद्ध मैं अपनी पूरी शक्ति से लड रहा हूं।'[1]

---

१ 'नवजीवन'–२ नवम्बर, १९२४

यंत्रीकरण केन्द्रीकरण की पद्धति को बढ़ावा देता है। केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज रचना से मेल नहीं बैठता, वह केन्द्रीकरण चाहे व्यक्ति द्वारा हो (पूंजीवाद) अथवा राज्य द्वारा हो (साम्यवाद)। हमारा ध्येय तो लोगों को सुखी बनाना है और साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण बौद्धिक और नैतिक यानी आध्यात्मिक उन्नति सिद्ध करना है। यह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही सध सकता है। केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज रचना से मेल नहीं बैठता।[1]

नयी तालीम के मूल में इसीलिए गांधीजी ने ग्रामोद्योग को रखा था। ग्रामोद्योग की संकल्पना केन्द्रित औद्योगीकरण की विरोधी संकल्पना है। वह अति यान्त्रिकता की भी विरोधी है। केन्द्रीकरण और अति यांत्रिकता दोनों ही मानव के व्यक्तित्व के विकास के लिए अभिशाप हैं। दोनों ही में प्रच्छन्न हिंसा है। ग्रामोद्योगमूलक बुनियादी तालीम से उन अभिशापों से बचा जा सकेगा ऐसा गांधीजी का विश्वास था। और अगर अहिंसामूलक नये समाज का निर्माण करना है तो इस शिक्षा नीति को अपनाना होगा।

समुदाय-निष्ठा

सर्वोदय की स्थापना व्यक्ति से त्याग की अपेक्षा करती है क्योंकि यहाँ जबरदस्ती दूसरों से छीन लेने की क्रिया का निषेध है। अतः सर्वोदय की स्थापना के लिए केवल हृदय परिवर्तन का मार्ग ही बच जाता है। व्यक्ति जब समुदाय के लिए त्याग कर आनन्द का अनुभव करने लगे तभी वह सर्वोदय समाज का सच्चा नागरिक हो सकता है। गांधीजी ने इसी मनःस्थिति के सृजन के लिए नयी तालीम में समुदाय निष्ठा के तत्त्व का संयोजन किया था और प्रत्येक बालक के लिए समाज सेवा, सामुदायिक सफाई आदि का कार्यक्रम अनिवार्य रखा था। वह कहा करते थे कि सेवा ही असली शिक्षा है।

विदेशी भाषा का माध्यम भी हिंसा है

गांधीजी उन लोगों में थे जो मानते हैं कि विदेशी भाषा के माध्यम ने हमारे राष्ट्र की अपार बौद्धिक और नैतिक हानि की है। हमारे छात्रों का आधा से अधिक समय अंग्रेजी सीखने में बीतता है फिर भी वह जो सीखते हैं वह बुरी अंग्रेजी होती है। गांधीजी लिखते हैं "मैं अब यह देखता हूँ कि जितना रेखागणित, बीजगणित, गणित, रसायनशास्त्र आदि सीखने में मुझे चार साल

---

१ हरिजन सेवक—१८ अक्तूबर १९४०

लगे, उतना मैं एक ही साल मे आसानी से सीख लिया होता, अगर अग्रेजी के बजाय मैंने उन्हे गुजराती मे पढा होता। उस हालत मे मैं आसानी और स्पष्टता से इन विषयो को समझ लेता। अग्रेजी के माध्यम ने तो मेरे और मेरे कुटुम्बियो के बीच, जो कि अग्रेजी स्कूल मे नही पढे थे, एक अगम्य खाई खडी कर दी थी। मेरे पिता को कुछ पता नही था कि मैं क्या पढ रहा हूँ, क्योकि वह अग्रेजी नहीं जानते थे। मैं अपने ही घर मे बडी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था। सर्वसाधारण की सेवा करने या उसके सम्पर्क मे आने मे अग्रेजी ज्ञान का मेरे लिए कोई उपयोग नही हुआ है। सच तो यह है कि अगर सात साल मैंने गुजराती पर प्रभुत्व प्राप्त करने मे लगाये होते तो इस तरह से प्राप्त ज्ञान मे मैं अपने पडोसियो को आसानी से हिस्सेदार बनाये होता और शायद सर्वसाधारण की सेवा मे और भी अधिक और महान सहयोग दे पाता।

हिन्दी 'नवजीवन' मे वे लिखते है— विदेशी शासन के अनेक दोषो मे देश के नौजवानो पर डाला गया विदेशी भाषा के माध्यम का घातक बोझ इतिहास मे सबसे बडा दोष माना जायगा। इस माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति हर ली है, विद्यार्थियो की आयु घटा दी है, उन्हे आम जनता से दूर कर दिया है और शिक्षण को बिना कारण खर्चीला बना दिया है। अगर यह प्रक्रिया जारी रही तो जान पडता है, वह राष्ट्र की आत्मा को ही नष्ट कर देगी। इसलिए शिक्षित भारतीय जितनी जल्दी विदेशी भाषा के माध्यम के भयकर वशीकरण से बाहर निकल जाय उतना जनता का और उनका लाभ होगा।"[२]

इसलिए गाधीजी ने विदेशी भाषा के माध्यम को अप्रत्यक्ष हिंसा कहा। इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए अपनी 'रचनात्मक कार्यक्रम' नाम की पुस्तक मे वे कहते हैं—"अहिंसा की बुनियाद पर रचे गये स्वराज्य की चर्चा मे यह बात शामिल है कि हमारा हरएक आदमी उसके निर्माण मे खुद स्वतत्र रूप से सीधा हाथ बँटाये। लेकिन अगर हमारी आम जनता स्वराज्य के हर पहलू और उसकी हर सीढी से परिचित न हो और उसके रहस्य को भलीभाँति न समझती हो (क्योकि हम राज्य का सारा काम विदेशी भाषा मे कर रहे हैं) तो स्वराज्य की रचना मे वह अपना हिस्सा किस प्रकार अदा करेगी।"[३]

---

१ 'हरिजन सेवक'—जुलाई, १९३८
२ हिन्दी 'नवजीवन'—जुलाई १९२८
३ 'रचनात्मक कार्यक्रम'—पृष्ठ ३७-३८

इसीलिए गाधीजी ने बुनियादी शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम से देने की बात कही है। वह साफ साफ कहते हैं कि सारी शिक्षा प्रादेशिक भाषा के माध्यम से ही दी जानी चाहिए! "मेरी मातृभाषा मे कितनी ही खामियाँ क्यो न हो, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदायिनी दूध दे सकती है। यह मानी हुई बात है कि अग्रेजी आज सारी दुनिया की भाषा बन गयी है। इसलिए मैं उसे दूसरी जबान की तौर पर जगह दूंगा, लेकिन विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे, स्कूलो मे नही। वह कुछ लोगो के सीखने की चीज हो सकती है लाखो करोडो की नही।"[1]

लाखो-करोडो के ऊपर अगर अग्रेजी लादी जाय और कुछ लोगो की सहूलियत के लिए अग्रेजी को राजभाषा रखा जाय तो यह एक प्रकार का 'लादना' ही है जो अप्रत्यक्ष हिसा ही है। नयी तालीम इस हिंसा से बचे ऐसा गाधीजी ने स्पष्ट कहा। और नये समाज की स्थापना के लिए जितना महत्व नयी तालीम के स्वावलम्बी पहलू और दस्तकारी के माध्यम का है, उससे कम महत्व 'अपनी भाषा के माध्यम का नही है।

नयी तालीम के मूल सिद्धान्त

२ नवम्बर, १९४७ ई० को, अपने महाप्रयाण के कुछ ही दिन पहले गाधीजी ने हरिजन म एक लेख लिखा था, जिसमे उन्होंने नयी तालीम के उन सिद्धातो की चर्चा की, जिन्हे वे मूलभूत समझते थे। सन् १९३७ मे वर्धा सम्मेलन के बाद ही बुनियादी शिक्षा प्रारम्भ हो गयी थी—व्यक्तिगत रचनात्मक सस्थाओ द्वारा सस्था स्तर पर और प्रादेशिक सरकारो द्वारा राज्य-स्तर पर। इस बीच मे उसकी अनेक आलोचनाएँ हुई थी, विशेषत उसके स्वावलम्बन और समवाय के सिद्धान्त की। कुछ राज्यो मे तो स्वावलम्बन का सिद्धान्त ही नही, उत्पादन का सिद्धान्त भी छोड दिया गया और वहाँ इतने से ही सतोष कर लिया गया कि लडको से केवल कुछ हाथ का काम करा लिया जाय। अधिकाश राज्यो मे बेसिक स्तर पर अग्रेजी की शिक्षा भी प्रारम्भ हो गयी। हिन्दुस्तानी को अन्तर्प्रादेशिक भाषा के रूप मे सीखने की बात भी छोड दी गयी। वर्धा मे और बिहार म बुनियादी शिक्षा को उत्तर बुनियादी स्तर पर भी प्रारम्भ कर दिया गया था, जिस कारण उसके सिद्धान्तो की पुनर्व्याख्या ही नही करनी पडी, उसमे कुछ नये तत्वो को भी दाखिल करना पडा। इन सारी बातो

१ हरिजन सेवक'—२५ अगस्त, १९४६

को ध्यान मे रखते हुए गाधीजी ने बुनियादी शिक्षा के निम्नांकित सिद्धान्तो को मूलभूत बताया —

१—सम्पूर्ण बुनियादी शिक्षा स्वावलम्बी होगी तभी वह सच्ची शिक्षा होगी। अर्थात् पूँजी के सिवाय अपना सारा खर्च अन्त मे वह आप ही निकाल लेगी। पूंजी ज्यो-की-त्यो ही रहेगी।

२—उसम हाथ की कुशलता आखिरी मजिल (अन्तिम स्तर) तक काम मे लायी जायगी। अर्थात् दिन मे कुछ समय तक विद्यार्थियो के हाथ किसी उद्योग मे कुशलता के साथ लगे रहेगे।

३—सारी शिक्षा प्रान्तीय (क्षेत्रीय) भाषा के माध्यम से ही दी जानी चाहिए।

४—इसमे साम्प्रदायिक धर्मों की शिक्षा की कोई गुन्जाइश नही है। सार्वत्रिक नीतिशास्त्र की बुनियादी बातो के लिए इमे पूरा स्थान रहेगा।

५—यह शिक्षा चाहे बच्चो को दी जाय चाहे, बडो को दी जाय, चाहे पुरुषो को दी जाय, या स्त्रियो को छात्रो के घरो तक पहुँचनी चाहिए।

६—चूंकि शिक्षा पानेवाले लाखों-लाखों विद्यार्थियो को अपने को सारे भारत का समझना चाहिए, इसलिए उन्हे एक अन्तर्प्रान्तीय भाषा सीखनी होगी। यह सर्वमान्य अन्तर्प्रान्तीय भाषा नागरी अथवा उर्दू लिपि मे लिखी हुई हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए छात्रो को दोनों लिपियो मे पारगत होना चाहिए।

य थे गाधीजी की नयी तालीम के मूलभूत सिद्धान्त। ये सिद्धान्त सन १९४७ मे अग्रेजो के चले जाने के बाद भी हमारी शिक्षा-नीति का निदेशन करते, तो स्वतत्र भारत मे एक नये समाज का निर्माण होता। विनोबाजी कहते हैं—'अग्रेज गय तो अग्रजी झण्डा भी गया। उसी तरह अग्रेज गये तो अग्रेजो की चलायी हुई तालीम भी जानी चाहिए थी। स्वतत्र देश मे जैसे गुलामी के समय का पुराना झण्डा नही रहता वैसे ही गुलामी की प्रतीक पुरानी शिक्षा भी नही रहनी चाहिए।

परन्तु अग्रेजों की पुरानी तालीम देश से नहीं गयी। अग्रेजी माध्यम मे छोटे बच्चों को पढ़ानेवाले किन्डरगार्टनो और माटेसरी आदि नसरी स्कूलो की

सख्या–चौगुनी अठगुनी हो गयी। अग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूल पहले से दसगुने से भी अधिक हो गये। परिणाम यह हुआ है कि स्वतत्र भारत मे आज वही पुराना समाज' चल रहा है, इतना ही नही, उसकी नीव और भी दृढ हुई है। पूंजीवाद बढा है, शोषण बढा है, शहरो और गांवो के बीच की खाई बढी है, अमीर-गरीब के बीच का भेद बढा है। अमीर और अमीर और गरीब और गरीब हुए हैं। शराब पीना और नशा करना बढा है। प्रादेशिक राज्यो ने लाटरी के बहाने व्यापक स्तर पर 'जुआ' खेलाना प्रारम्भ कर दिया है। इन कारणो से देश का चारित्रिक पतन हुआ है और हो रहा है। प्रभुता और सत्ता की दौड मे गाधीजी का सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि व्रत हमेशा-हमेशा के लिए खो गये मालूम पडते है।

शिक्षा मे गुणात्मक सुधार

और इस बीच म बराबर यह चर्चा होती रही है कि हमारी शिक्षा-पद्धति दूषित है और इसमे सुधार होना चाहिए। गाधीजी ने देश के सामने जो एक नयी शिक्षा-पद्धति रखी थी और जिसके सम्बन्ध मे इस युग के सबसे बडे शिक्षा शास्त्री जान ड्यूई ने कहा था कि गाधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार बहुत मौलिक है, और प्रोजेक्ट पद्धति से कई कदम आगे हैं, उसे निष्ठा की कमी के कारण अथवा गाधी-मार्ग के परित्याग के कारण छोड दिया गया। इस समय भारत की शिक्षा मे एक ही परिवर्तन वाछनीय है, एक ही गुणात्मक सुधार आवश्यक है, वह यह कि देश का प्रत्येक छात्र हाथो से कोई समाजोपयोगी धधा, निष्ठापूर्वक वैज्ञानिक ढग से, नित्य डेढ-दो घटे करे, उतनी देर करे जितनी देर मे उसमे उस धधे को वैज्ञानिक ढग से सम्पादित करने की क्षमता विकसित हो जाय। यही सबसे बडी मौलिक सुधार होगा। यह एक प्रकार की सास्कृतिक क्रान्ति होगी। (चीन की सास्कृतिक क्रान्ति भी तो यही है) जो अत्यन्त वाछनीय है। दूसरा वाछनीय सुधार होना चाहिए प्रारम्भिक स्तर से स्नातकोत्तर स्तर तक की पूरी शिक्षा को क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से देना। ये दोनो बातें नयी तालीम के बुनियादी सिद्धान्त हैं। अत अगर नया समाज बनाना है तो नयी तालीम को प्रारम्भ करना होगा। और चूंकि हमारी कामना इस नये समाज को अहिंसक समाज बनाने की है, अत नयी तालीम मे जिस स्वावलम्बन की प्रवृत्ति, के पोषण की और प्रतिकेन्द्रित यान्त्रिकता के स्थान पर ग्राममूलक ग्रामोद्योगो के माध्यम की, चर्चा की गयी है, उस भी अपनाना होगा। कारखानो की नीव पर अहिंसक समाज नही बन सकता।

अत: अगर हम चाहते हैं कि गांधी और विनोबा की कल्पना का 'ग्राम-स्वराज्यमूलक हिन्द स्वराज्य स्थापित हो', तो हमें 'नयी तालीम' को लाना ही होगा। जैसे हम ग्रामदान ग्रामस्वराज्य आन्दोलन द्वारा नीचे से लोकशक्ति विकसित करने की बात कर रहे हैं, वैसे ही हमें नीचे से 'नयी तालीम' के कार्यान्वित करने की योजना बनानी होगी। नयी तालीम से 'लोकशक्ति' का पोषण होगा और नये समाज का निर्माण होगा। बिना नयी शिक्षा के नया समाज नहीं बनेगा।•

विद्यालय तथा समुदाय के बीच निकट सम्बन्ध क्यों और कैसे ?

गंगा महेश मिश्र

प्रो० जेम्स रास के शब्दों में 'समाज-सेवा ही शिक्षा का उद्देश्य है। शाला को नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों पर अवश्य बल देना चाहिए।"

महात्मा गांधी के कथनानुसार—"यदि आपकी शिक्षा चेतन है तो वह आपके इर्द-गिर्द अपनी सुगन्ध अवश्य बिखेरेगी। आपको नियमित रूप से प्रतिदिन अपना कुछ समय अपने पास-पड़ोस के लोगों की सेवा में लगाना चाहिए।" वह चाहते थे कि हम अपनी पाठशालाओं का विकास ऐसे सामुदायिक केन्द्रों के रूप में करें जहाँ बालक के व्यक्तित्व के विकास में कोई बाधा नहीं आती वरन् सामाजिक सम्पर्क तथा सेवा के सुअवसरों के कारण वह और भी प्रतिभाशाली होता है। **स्वामी विवेकानन्द** ने शिक्षा और आचरण की व्याख्या करते हुए कहा कि "कोई किसी को शिक्षा नहीं दे सकता। अध्यापक अगर यह सोचता है कि वह शिक्षा दे रहा है तो यह उसका केवल भ्रम है और वह सब चौपट कर देता है। मनुष्य के अन्तःकरण में ज्ञान का भंडार है—एक बालक में भी यही है—जिसे केवल जागृत करना होता है। यही अध्यापक का कार्य है। हम बालकों के लिए केवल इतना ही करना है कि वे अपने हाथ, पैर, नाक, आँख आदि का उचित उपयोग करना सीखें। यदि यह हो गया तो सभी काम आसान हो जायेंगे। इसी को सूक्ष्म रूप में उन्होंने कहा है कि **"मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति करना शिक्षा है और पहले के अनुभव से नया अनुभव ले सकना ज्ञान है।"**

हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमारे समक्ष विद्या का जो लक्ष्य रखा है, वह है 'सा विद्याया विमुक्तये" अर्थात् वही विद्या है जो सारे बन्धनों से मुक्ति दिलाती है। यह बन्धन भौतिक भी है और आध्यात्मिक भी।

उपर्युक्त कथनों तथा देववाणियों का यदि हम विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि बालक का बहुमुखी विकास शाला की कृत्रिम दीवारों के बीच सम्भव ही नहीं होता, वरन आवश्यक होता है कि उन दीवारों को गिराकर उसे समुदाय में लाया जाय जहाँ उसे रहना है। यदि हम आज प्रगतिशील देशों

की शिक्षा-पद्धति का अध्ययन करें तो देखेंगे कि वहाँ बालक का किसी भी रूप में कृत्रिम विकास नहीं होता और वह ज्ञानार्जन-काल में भी अपनी प्रतिभानुसार समाज की उपयोगी इकाई बना रहता है। परन्तु जब हम भारत की परम्परागत शिक्षा-पद्धति की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें निराशा ही हाथ लगती है। यहाँ बालक का इतना कृत्रिम विकास होता है कि वह शाला में जाते ही समाज के अपढ़ लोगों से घृणा करना सीख जाता है। इस प्रकार यहाँ की शिक्षा-पद्धति तथा समाज के बीच कोई तालमेल नहीं रहता और विद्यालय तथा समाज के बीच की खाईं दिनोदिन बढ़ती जाती है।

किन्तु आज इस लोकतांत्रिक समाज-व्यवस्था में इसकी उपेक्षा अनिश्चित काल तक सम्भव नहीं हो सकती। अस्तु सामाजिक ढाँचे को और अधिक जर्जर होने से बचाने के लिए यह शीघ्रातिशीघ्र आवश्यक है कि विद्यालय तथा सामाजिक जीवन-धारा के बीच सामञ्जस्य लाया जाय। इसके लिए शाला में ऐसे कार्य नियमित रूप से हों जिससे वह समुदाय के सम्पर्क में आये और बालक पास-पड़ोस के जीवन से अछूता न रहे, सामुदायिक जीवन की आवश्यक मान्यताओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान हो। उसे समुदाय के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से परिचित होना चाहिए जिससे वह उसकी भावनाओं को जान सके।

आज देश और काल की परिस्थितियों से यह सिद्ध है कि देश के विकास के लिए सामाजिक ज्ञान शास्त्रीय विषयों के ज्ञान से कहीं अधिक महत्त्व का है। इसके लिए बालकों को गाँव में जाकर समाजसेवा का कुछ कार्य प्रतिदिन नियमित रूप से करना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यालय को इतना रमणीक तथा आकर्षक बनाना चाहिए कि निकट समाज के लोग देखने के इच्छुक रहें। इसमें भवन तथा प्रांगण, दोनों का ही विकास आवश्यक है। जिसके लिए प्रांगण की स्वच्छता, पुष्पवाटिका का विकास तथा विद्यालय भवन की दीवारों पर कुछ मनमोहक चित्र बने हों तथा कहावतें लिखी हों। समुदाय के लोगों को विद्यालय में आने की पूरी छूट होनी चाहिए जिससे वे इच्छानुसार आकर वहाँ के जीवन से लाभान्वित हो सकें।

छात्र, विद्यालय-भवन तथा प्रांगण का विकास

(१) बालकों में स्वच्छता के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
(२) कूड़ा कूड़ेदान में डाला जाय।
(३) दीवारों, मेज, फर्श पर स्याही के निशान न पड़े हों।

(४) भवन के दरवाजे, खिड़कियाँ तथा शीशे स्वच्छ हो।

(५) कक्षा के बाहर कक्षा का नाम, कक्षा-अध्यापक का नाम, बालको की सम्पूर्ण सख्या तथा प्रतिदिन ठीक समय पर उपस्थित होनेवाले छात्रो की सख्या एक पट्टिका पर लिखी हो।

(६) भवन तथा प्रागण की सफाई बालक स्वय करें जिससे उनमे स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भरता का समुचित विकास हो।

(७) कई स्थानो पर वर्धा-टाइप मूत्रालय हो तथा पी० आर० ए० आई० टाइप शौचालय की व्यवस्था अनिवार्य रूप से की जाय।

(८) पाठशाला के बालक स्वय भी स्वच्छ हो। समय-समय पर उनके दाँतों, बालों, नाखूनो, कपडो तथा शरीर की स्वच्छता की जाँच की जानी चाहिए।

पुष्प वाटिका का विकास

हरीतिमा जीवन की परिचायिका है। बालक के बहुमुखी विकास के लिए सौन्दर्यानुभूति का जागरण आवश्यक है। बालक के मानस पर विद्यालय के वातावरण की अमिट छाप पडती है।

विद्यालय-प्रागण के सजाने के लिए आलकारिक वाटिका के सभी अगो, जैसे—फूल, क्यारियाँ, छोटी-बडी झाडियाँ, किनारो, सजावट के पौधो तथा घास के मैदानो का समुचित प्रबन्ध कर उसे प्रभावोत्पादक रूप देना चाहिए। प्रागण-वाटिका के अभिन्यास में विद्यालय मे विद्यालय की स्थिति, सूर्य प्रकाश की दिशा तथा उसकी गति स्मरणीय तत्त्व हैं।

आदर्श वृक्षारोपण वह है जिसमे पेड-पौधे खुले प्रकाश मे ही लगाये जायँ और प्रमुख भवन के पूर्वाभिमुख या दक्षिणाभिमुख हो। यहाँ अभिन्यास के लिए कोई सुनिश्चित योजना प्रस्तुत करना कठिन है, क्योंकि इसके लिए स्थान की स्थिति, भवन, क्रीडास्थल की स्थिति, सिंचाई के साधन, भूमि, खाद तथा अन्य स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है। पाठशाला के चारो ओर यदि चहारदीवारी नही है तो उसे बाड से अवश्य घेर देना चाहिए तथा मुख्य मार्ग के निकट वाटिका के किनारो पर यदि सुपावलि लगायी जाय तो और भी आकर्षक रहता है। सामने का स्थान ऐसा हो जो अधिक समय तक फूलो से आच्छादित तथा हरा-भरा रह सके। भवन से बाहर की ओर आलकारिक वृक्ष तथा शेष स्थानो पर आलकारिक बाडें लगायी जायँ। फूलो की क्यारियो को उनके मध्य स्थान देना चाहिए।

(१) समुदाय के लोगो की बैठकें आयोजित करना ।

(२) सास्कृतिक तथा मनोरजनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करना ।

(३) सूचना-पट्ट की व्यवस्था ।

(४) खेल-कूद आयोजन ।

(५) प्रौढो के लिए साक्षरता तथा उनकी रुचि के अनुरूप हस्त-कौशल सीखने की व्यवस्था ।

(६) उन्नत कृषि-यन्त्रो, बीजो, उर्वरको, वैज्ञानिक प्रदर्शनो का आयोजन, उन पर परिचर्चा, वाद विवाद तथा विशेषज्ञो के रात्रि मे भाषणो की व्यवस्था ।

(७) वाचनालय तथा पुस्तकालय का आयोजन ।

(८) कृषि-सग्रहालय तथा प्रदर्शनी का आयोजन ।

(९) उपभोक्ता सहकारी भडार के आयोजन की व्यवस्था ।

(१०) युवक मगल तथा महिला मगल दलो के सगठन को सुदृढ बनाना तथा उनकी बैठकें विद्यालय मे आयोजित करना, जिनमे नयी योजनाओ के कार्यान्वयन पर विचार किया जाय ।

(११) बैठको मे विद्यालय के शैक्षिक उन्नयन पर भी विचार विमश किया जाय ।

(१२) छोटी-मोटी बीमारियो की प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था ।

(१३) विद्यालय भवन का सामाजिक कार्यों के लिए प्रयोग सुगम बनाया जाय ।

(१४) साग-भाजी तथा फलो के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाय, जिसके लिए पौद नर्सरी से नि शुल्क दी जाय ।

(१५) विद्यालय मे छोटे-बडे सभी बालकों के खेलने तथा व्यायाम के साधनो की समुचित व्यवस्था हो ।

(१६) ग्रामीण क्षेत्रो में छुट्टियो की ऐसी व्यवस्था हो कि बालक उन दिनो अवकाश पर रहे जब उनके अभिभावको को अधिक कृषि कार्य करने हो, जिससे वे उनके कार्यों मे सहयोग दे सकें ।

इस प्रकार हम विद्यालय को समुदाय के निकट ला सकेंगे और वह सामुदायिक कार्य-कलापो का एक सुविकसित केन्द्र बन सकेगा, जिससे नव जागरण की द्युतिमान किरणें प्रस्फुटित होकर सम्पूर्ण क्षेत्र को आलोकित कर देंगी ।

जिस दिन हमारी पाठशालाएँ अपनी शैक्षिक कार्यों के साथ साथ सामुदायिक कार्य कलापों को भी अपने कंधो पर लेकर चलेंगी उसी दिन लोकतंत्र की सशक्त जड़ें अगाध जल तक पहुँची समझी जायेंगी और ग्रामीण जन जीवन में नूतन विकास का अरुणोदय होगा जो ग्राम्य-जीवन के तटों का निरंतर स्पर्श कर उन्हें नित-नये जीवन का मधुर संगीत सुनाती हुई अबाध गति से प्रवाहित करेगी। समाज नये वातावरण में श्वास लेगा जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन होगा और रामराज्य की कल्पना गाँवों में साकार हो सकेगी।•

प्राथमिक विद्यालयों में निरीक्षण को प्रभावकारी बनाने के उपाय

एम० वाई० सिद्दीकी

निरीक्षण एक पुरानी विचारधारा है, जिसके अर्थ में समय-समय पर समाज की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं परन्तु निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य सदा से शिक्षा-स्तर का उन्नयन एवं शिक्षा संस्थाओं का सर्वांगीण विकास रहा है। शिक्षा शास्त्रियों ने निरीक्षण की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, किन्तु सामान्य रूप से इसमें मतभेद नहीं है। शिक्षण के सुधार में निरीक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है और उच्च कोटि के निरीक्षण व्यवस्था के माध्यम से ही शिक्षा के वाञ्छनीय स्तर को बनाये रखते हुए उसमें गुणात्मक सुधार लाना सम्भव है।

इसमें भी मतभेद नहीं हो सकता है कि उच्च शिक्षा का आधार-स्तम्भ प्राथमिक शिक्षा है। अतः प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षण दशा में सुधार लाने की आवश्यकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। निरीक्षण का उद्देश्य शिक्षा स्तर का उन्नयन एवं शिक्षा-संस्थाओं का सर्वांगीण विकास है। किन्तु वास्तव में अभी तक निरीक्षण के बारे में सामान्य धारणा यही रही कि निरीक्षक का कार्य केवल निरीक्षण ही है और उसके कर्तव्यों में शासन एवं निरीक्षण का कार्य प्रमुख है। प्राथमिक विद्यालयों का निरीक्षक अभी तक इसी 'अधिकार वादी' विचारधारा की दृष्टि से शिक्षकों तथा छात्रों के कार्य का मूल्यांकन एवं आलोचना कर लेना ही अपना उत्तरदायित्व समझता रहा था।

स्वतंत्रता के पश्चात् जैसे-जैसे हमारी प्राचीन मान्यताएँ बदलती जा रही हैं वैसे-वैसे शिक्षा में भी निरीक्षण की विचारधारा में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। आज विकेन्द्रीकरण के कारण उत्पन्न शिक्षा-क्षेत्र की परिवर्तित स्थिति में बहुमुखी कार्यों के कारण निरीक्षण की नवीन विचारधाराओं को अपनाना आवश्यक हो गया है। इस लोकतान्त्रिक युग में निरीक्षक के चार प्रमुख रूप हो गये हैं—

(१) समन्वयक—इस रूप में निरीक्षक का कार्य विद्यालय और समुदाय में निकट सम्पर्क स्थापित करना, अभिभावक और अध्यापक को एक-दूसरे के समीप लाना और विभागीय आदेशों तथा शैक्षिक योजनाओं से अध्यापक एवं अभिभावक को अवगत कराना।

(२) परामर्शदाता—अपने इस रूप म वर्तमान निरीक्षक अध्यापक तथा अभिभावक को विभागीय नियमो एव नवीन विचारधाराओ के सतत सम्पर्क में रखता है। परामर्शदाता के रूप म उसका कर्तव्य है कि अपने क्षेत्र के प्रतिभा शाली एव विज्ञान अध्यापको का आदर्श पाठ अन्य अध्यापको के समक्ष मार्ग दर्शन हेतु दिलाने की व्यवस्था करे तथा विभिन्न विषयो की नवीन शिक्षा विधियो से अपने अध्यापको को अवगत करायें, जिससे कि प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण म गुणात्मक सुधार होता रहे।

(३) निरीक्षक—एक निरीक्षक होने के नाते उसका कर्तव्य है कि विद्यालय की सामूहिक प्रगति का मूल्यांकन करके विद्यालय के स्तर के उन्नयन के लिए रचनात्मक सुझाव दे। अपने निरीक्षण के सिलसिले मे यह देखे कि पजिकाएं एव अन्य अभिलेख नियमपूर्वक रखे व लिखे जाते हैं या नही विभिन्न परिक्षाएं नियमानुसार ली जाती हैं या नहीं। कक्षा ५ की वार्षिक परीक्षा नियमानुसार सम्पादित करना भी निरीक्षक का कर्तव्य है।

(४) व्यवस्थापक—इस रूप म उसका कर्तव्य है कि वह नवीन विद्यालय खोलने के लिए सर्वेक्षण करे एव स्थानीय जनता का सहयोग सगठित करे। विद्यालय भवन के नव निर्माण तथा मरम्मत की देखरेख, छात्र-वृद्धि आन्दोलन की व्यवस्था तथा अन्य विभागीय योजनाओ के कार्यान्वयन का प्रबन्ध करना, मध्याह्न उपाहार की व्यवस्था मे स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त करना पाठशाला प्रबन्धक समिति को सक्रिय बनाना, विद्यालय को समुदाय के निकट लाने का प्रयास करना और विद्यालय की विभिन्न समस्याओ के निराकरण के लिए उपाय करना।

अब हमे यह देखना है कि निरीक्षक के उत्तरदायित्व एव कार्यों का उल्लेख, जैसा कि ऊपर किया जा चुका है उनको वह पूरा कर पा रहा है या नही। यदि नही तो क्यो ? उसकी क्या समस्याएं हैं और अपने निरीक्षण को प्रभाव शाली बनाने मे उसे किन कठिनाइयो का सामना करना पडता है ? गोष्ठी के विचाराधीन निम्नलिखित बातें रखी जाती हैं, जो निरीक्षक के कार्य मे बाधा उत्पन्न करती हैं।

१—कार्यभार (वर्क लोड))

(अ) निरीक्षक के बहुमुखी उत्तरदायित्वों को देखते हुए विद्यालयों की सख्या एव दौरे के दिनो का प्रभाव (नाम) अधिक प्रतीत होता है।

(ब) उसको विद्यालयो के निरीक्षण तथा समन्वय के रूप म कार्य करने के

लिए पर्याप्त समय नही मिल पाता। इसलिए कि समय का अधिकाश भाग विभागीय प्रपत्रो के प्रसारण एव सकलन मे बिताना पडता है।

२—जिला परिषद के शिक्षा-कार्यालय पर उपविद्यालय निरीक्षक का नियन्त्रण न होने के कारण कार्य समय पर नही हो पाता और प्रति उपविद्यालय निरीक्षको से बहुत कुछ कार्य करवाना पडता है।

३—शिक्षको पर निरीक्षको के प्रशासकीय नियन्त्रण का अभाव होने के कारण निरीक्षक अपने निरीक्षण को प्रभावकारी बनाने के प्रयत्न म सफल नही हो पाता।

४—पर्वतीय क्षेत्रो मे आने-जाने के साधनो की कमी के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने मे बडी कठिनाइयां होती हैं और अधिक समय लग जाता है।

५—पाठशाला के सुधार के कायक्रमो म समुदाय एव अभिभावको की रुचि का अभाव, जिसके फलस्वरूप पाठशाला प्रबन्ध समिति का होना नही के तुल्य है।

६—प्राथमिक विद्यालयों के भवन की वर्तमान दशा सन्तोषजनक न होना।

७—भवनो मे पर्याप्त साज-सज्जा, आवश्यक सहायक सामग्री, खेलकूद तथा बागवानी के लिए भूमि का अभाव। अधिकाश स्थानो पर पीने के पानी की व्यवस्था न होना। आर्ट व क्राफ्ट के लिए आवश्यक सामग्री का अपर्याप्त होना आदि।

८—योग्य प्रशिक्षित एव कुशल अध्यापको का अभाव और शिक्षण-कार्य मे वाछनीय रुचि की कमी, अध्यापको का राजनीतिक दलो के कार्यों मे भाग लेना।

६—निरीक्षक वर्ग की सेवा-दशा, यात्रा सम्बन्धी असुविधाएँ और यात्रा-भत्ता सन्तोषजनक न होना, जब कि महँगाई इतनी बडी हुई है। निरीक्षक का वर्तमान वेतन-क्रम तथा पदोन्नति का प्रश्न भी विचारणीय है, इसलिए कि वर्तमान ढाँचे मे उसको पदोन्नति करने में काफी समय लगता है जिससे उनमे उदासीनता उत्पन्न होती है और योग्य तथा ऊँचे स्तर के लोग जो इस व्यवसाय मे अधिक उपयुक्त सिद्ध हो, आने की प्रवृत्ति नही रखते।

१०—(अ) व्यावसायिक प्रशिक्षण—वर्तमान स्थिति मे प्राथमिक विद्यालय-निरीक्षक ट्रेण्ड ग्रेजुएट होता है और उसकी प्रशिक्षण-योग्यता बी० टी०, एल० टी० तथा बी० एड० होती है, किन्तु इस स्तर के प्रशिक्षणो के पाठ्यक्रम देखने से ज्ञात होता है कि उसमे प्राथमिक विद्यालयो के निरीक्षण एव शिक्षण के

विषय में कोई ज्ञान नहीं दिया जाता है, अतः उत्तम व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए पूर्व-सेवा प्रशिक्षण एवं सेवाकालीन प्रशिक्षणों की अत्यन्त आवश्यकता है।

(ब) निरीक्षण के प्रभावशाली न होने का यह भी कारण है कि निरीक्षक वर्ग का प्राथमिक विद्यालयों की समस्याओं एवं निरीक्षण-विधि का ज्ञान अपने ही प्रदेश तक सीमित है और उन्हें दूसरे प्रदेशों में जाकर अपनी व्यावसायिक दक्षता को बढाने का अवसर नहीं मिलता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी प्राथमिक शिक्षा में सुधार तथा उन्नयन हेतु अपने निरीक्षण को प्रभावकारी बनाने के उपाय करना निरीक्षक वर्ग का पुनीत कर्तव्य है। इस सम्बन्ध में विचार-गोष्ठी के सम्मुख निम्नलिखित दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन सुझाव प्रस्तुत हैं।

(अ) दीर्घकालीन :

१ निरीक्षक वर्ग की व्यावसायिक दक्षता तथा सेवा-परिस्थितियों में सुधार :—

(क) क्या निरीक्षक वर्ग की पूर्व-सेवा प्रशिक्षण की आवश्यकता है? यदि हाँ, तो उसका कार्यान्वियन कैसे हो?

(ख) सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता और इस सम्बन्ध में राज्य शिक्षा संस्थान का दायित्व।

(ग) व्यावसायिक दक्षता के उन्नयन के लिए क्रियात्मक शोध-कार्य करने के लिए विषयों की विस्तृत सूची क्रियात्मक शोध-कार्य के वर्किंग पेपर में दी गयी है।

(घ) उपविद्यालय निरीक्षकों के कार्यालय में निरीक्षक वर्ग के प्रयोग के लिए एक पुस्तकालय की व्यवस्था।

(ङ) क्षेत्रीय विकास के कार्यों में भाग लेने के कारण तथा प्रशासकीय कार्यों में व्यस्त रहने के फलस्वरूप अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों की ओर भली-भाँति ध्यान न दे सकना—क्या उचित होगा कि निरीक्षण-कार्यों से प्रशासकीय कार्यों को अलग कर दिया जाय? और दो पृथक्-पृथक् अधिकारी नियुक्त किये जायें?

(च) निरीक्षण की प्रचलित विधि में परिवर्तन—क्या इस सम्बन्ध में कोठारी कमीशन रिपोर्ट के पृष्ठ २६५ पर दिये गये (१०·४७, १०·४८, १०·४९) सुझावों से आप सहमत हैं? यदि हाँ, तो उसका कार्यान्वियन कैसे किया जा सकता है?

(छ) क्या 'इण्डियन ईयर बुक ग्राफ एजुकेशन' (१६६४) के पृष्ठ ३७३ पर उल्लिखित निरीक्षण की ग्राल्टरनेटिव प्रणाली हमारे यहाँ ग्रपनायी जा सकती है ? यदि हाँ, तो कैसे ?

"निरीक्षण की यह योजना विश्व के कई देशों में चलायी जा रही है। इस विकसित योजना के अन्तर्गत निरीक्षक ग्रपने क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों को उपयुक्त समूहों में विभाजित कर देता है। प्रत्येक समूह में १०-१५ तक विद्यालय सम्मिलित होते हैं, जो केन्द्रीय विद्यालय से ८·५२ किलोमीटर तक के दायरे में रहते हैं। केन्द्रीय विद्यालय का प्रधानाध्यापक शिक्षक-निरीक्षक कहलाता है ग्रौर उसके दो उत्तरदायित्व हैं—

(१) ग्रपने विद्यालय को ग्रादर्श पाठशाला के रूप में विकसित करना।

(२) ग्रपने समूह के सभी विद्यालयों का निरीक्षण।

इस प्रकार प्रति उपनिरीक्षक का कार्य हलका हो जाता है, क्योंकि उसका दायित्व केवल केन्द्रीय ग्रादर्श विद्यालयों का निरीक्षण तथा शेष पाठशालाग्रों के कुछ ऐसे ग्रावश्यक कार्यों की देख-रेख रहता है जो शिक्षक निरीक्षक के क्षेत्र से परे होते हैं।"

ज—क्या हमारे प्रदेश के निरीक्षक वर्ग के लिए उपयोगी होगा कि उनको देश के ग्रन्य प्रदेशों में दौरा करने का ग्रवसर दिया जाय, जिससे वे वहाँ की प्राथमिक शिक्षा-व्यवस्था का ग्रध्ययन करें ग्रौर वहाँ के निरीक्षकों से निकट सम्पर्क स्थापित कर विचार-विनिमय कर सकें, जिससे उनका दृष्टिकोण ग्रौर विस्तृत हो तथा उनकी व्यावसायिक दक्षता बढ सके।

२ प्राथमिक विद्यालय का शिक्षक :—

क—क्या प्राइमरी स्कूलों के ग्रध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए चुनाव का ढंग ग्रौर न्यूनतम योग्यता उचित है ग्रथवा इसमें परिवर्तन की ग्रावश्यकता है, उनके प्रशिक्षण की ग्रवधि पर्याप्त है या नहीं ?

ख—प्राथमिक विद्यालयों के ग्रध्यापकों का वेतन-क्रम ग्रौर उनके सेवा-नियमों में ग्रावश्यक सुधार।

(ब) अल्पकालीन :

१—प्रथम निरीक्षण के समय बहुत थोड़े-से सुझाव दिये जायँ ग्रौर दूसरे निरीक्षण में यह देखा जाय कि दिये गये सुझावों का कार्यान्वयन हुग्रा है ग्रथवा नहीं। यदि नहीं, तो किन कारणों वश ? उन कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाय। प्रथम निरीक्षण के समय निरीक्षक

अपने अध्यापको को यह भी आदेश दे कि वह विभागीय 'निर्देशिका' को पढे और उसीके आधार पर दो नमूने के पाठ तैयार करके दूसरे निरीक्षण के समय उन पाठो को पढायें। यह भी आवश्यक है कि निरीक्षक अपनी निरीक्षण आख्या तत्काल पाठशाला मे दे दें।

२—निरीक्षण के समय निरीक्षक को चाहिए कि वह शिक्षण-कार्य की जांच के लिए और उसमे रचनात्मक सुझाव देने के लिए पर्याप्त समय दें। उसे निरीक्षण के समय स्वय आदर्श पाठ भी देना उपयोगी होगा।

३—निरीक्षण के समय बच्चो की लेखनी तथा बैठने की क्रिया का निरीक्षण तथा सुलेख पर बल देना।

४—लिखित कार्य की जांच के समय कम-से-कम ५ प्रतिशत कापियो की जांच स्वय करें।

५—अध्यापको की डायरी, कक्षा-प्रबन्ध तथा समय विभाजन चक्र का निरीक्षण।

६—पाठशाला की स्वच्छता तथा उसकी साज-सज्जा आदि का निरीक्षण, बच्चो की व्यक्तिगत स्वच्छता पर पूर्ण बल देना।

७—पाठ्य सहगामी कार्यक्रम के अन्तर्गत सामूहिक व्यायाम, सग्रहालय, मध्याह्न उपाहार-योजना, खेलकूद प्रतियोगिताएँ तथा बालसभा की व्यवस्था।

८—पाठशाला-सुधार-कार्यक्रम हेतु कुछ निम्नलिखित कार्य कराये जा सकते हैं —

(क) विद्यालय-प्रागण की सीमा पर बेहया, मेहदी, जगल जलेबी तथा अन्य झाडीदार वृक्ष या झाडियाँ लगाना।

(ख) विद्यालय का नाम मोटे अक्षरो मे विद्यालय के सामने दीवार पर लिखवाना।

(ग) विद्यालय की सजावट के लिए चार्ट, चित्र, माडल आदि बालको द्वारा बनवाना।

(घ) विद्यालय भवन की मामूली मरम्मत तथा उसे स्वच्छ रखने के लिए अध्यापको और बालको द्वारा श्रमदान कराना।

९—नब्बे प्रतिशत से अधिक उपस्थित रहनेवाले छात्रो को पुरस्कार की व्यवस्था। ऐसे छात्रो के नाम महीने के अन्त मे प्रोत्साहन के लिए बोर्ड पर अकित किये जायँ।

१०–प्रोत्साहन देने के लिए अच्छे काम करनेवाले अध्यापकों की सूची तैयार करना और किसी रूप में पुरस्कृत करना।

११–जनसम्पर्क एवं अभिभावक-सम्पर्क बढ़ाने के लिए समय और परिस्थिति के अनुकूल प्रति उप विद्यालय निरीक्षक को अपने कार्यक्रम की सूचना स्कूलों को देना। समुदाय तथा अभिभावकों से निम्नलिखित कार्यों में सहयोग लेने के लिए अभिभावक शिक्षक संघ और पाठशाला प्रबन्धक समिति का न केवल गठन किया जाय, वरन् उन्हें सक्रिय बनाया जाय।

(क) स्कूल भवन तथा बागवानी के लिए भूमि प्राप्त करना।

(ख) साज-सज्जा की मरम्मत।

(ग) भवन की सफाई, लिपाई, पुताई, मध्याह्न उपाहार-योजना को चलाना, साज-सज्जा एवं उपकरण जुटाना।

(घ) उत्सव, पर्व, त्यौहार आदि का आयोजन।

(ङ) बालक/बालिकाओं के प्रवेश के सिलसिले में छात्र-वृद्धि आन्दोलन का आयोजन।

(च) खेल-कूद, प्रदर्शनी आदि का आयोजन।

(छ) पुस्तकालय एवं वाचनालय तथा संग्रहालय की स्थापना।

अन्त में सभी अधिकारियों से मेरा अनुरोध है कि वे उपयुक्त सुझावों को दृष्टि में रखते हुए अपने मंडल, जिला तथा क्षेत्र के लिए विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखकर एक ऐसा कार्यक्रम बनाने का प्रयास करें, जिससे प्रभावकारी निरीक्षण द्वारा प्राथमिक स्तर के सभी पाठशालाओं का बहुमुखी विकास सम्भव हो सके।•

भावना, योजना और साधना : तूफान से अतितूफान की ओर

गुरुशरण

१८ वाँ अखिल भारतीय सर्वोदय समाज सम्मेलन राजगिर (पटना विहार) म २५ से २८ अक्तूबर ६६ को लगभग ३ लाख की भीडभरे वातावरण मे सम्पन्न हुआ। पूरे चार दिन महात्मा बुद्ध और महावीर की उस साधना-स्थली म बहुजनहिताय बहुजनसुखाय का उदघोष होता रहा। इस बार राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि परम पावन दलाई लामा जापान के फूजी गुरुजी और आस्टर गाड जैसे अनेक विदेशियो की उपस्थिति एव विनोबाजी के सक्रिय भाग लेने से तमाशबीनो की सख्या बहुत बढ गयी। सर्वोदय विचार मे आस्था और विश्वास रखकर भाग लेनेवाले प्रतिनिधि बारह हजार थे। इसी अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय विश्वशान्ति स्तूप का उद्‌घाटन हुआ और प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सर्वोदय-सम्मेलन भी। इस सम्मेलन के बाद से ग्रामदान आन्दोलन राज्यदान की भूमिका पर पहुँच रहा है। कहा गया कि विहार का राज्यदान लगभग पूण हो गया है पर यहीं इस आन्दोलन के आगे अनेक प्रश्नचिह्न खडे हो जाते हैं जिनका सम्यक समाधान इस सम्मेलन की चर्चा-परिचर्चाओ से तो नहीं हुआ लेकिन आशा की किरण अवश्य दिखती है। लगता है, पत्थर पर घिस जाने के बाद अब हिना (मेहदी) रग लायेगी।

सम्मेलन की अध्यक्षता कुमारी निमला देशपाण्डे ने की जिन्हे विनोबा की मानसपुत्री कहा जाता है। ४० वर्षीय अध्यक्षा को इस आन्दोलन मे लगी तरुणाई के अभिनन्दन की सभा दी गयी और इस बार बड बूढों के बजाय तरुणों के व्याख्यान अधिक हुए और सबसे अच्छी बात यह हुई कि ग्रामदानी गाँवो से आये किसानों को भी मच पर बोलने का अवसर दिया गया। उनके प्रेरणादायी अनुभव सुनकर एसी अनुभूति हो रही थी कि आन्दोलन भारतीय जनमानस की जडो को छू रहा है। किसाना के साथ-साथ मजदूरी की ट्रेड यूनियनो को राजनीतिक दलो से मुक्त करावर उनमे स्वराय चेतना भरने का विनोबाजी न आह्वान किया। नगरों म वार्डों के माध्यम से सर्वोदय-काम करने पर विशेष बल दिया गया।

जापान तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया से आये हजारो विदेशी बौद्धो, उनके फूजी गुरुजी तथा उनके परम पावन दलाई लामा ने सम्मेलन को सम्बोधित किया। राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने अपना समर्थन व्यक्त किया। नागा-नेता कैनेत्तर हो, आदिवासी-नेता जयपाल सिंह, सर्वोदय-विचारक काका कालेलकर, सर्व सेवा सघ के पूर्वअध्यक्ष श्री मनमोहन चौधरी, वर्तमान अध्यक्ष एस० जगनाथन्, मत्री श्री ठाकुरदास बग, श्री सिद्धराज ढड्ढा, डा० दयानिधि पटनायक आदि ने समय-समय पर अपने ओजस्वी विचार प्रकट किये, जिनमें इस क्रान्ति के विविध आयामो का वर्णन था। पर सभी के व्याख्यानो में एक दबी-ढँकी व्यथा भी थी कि जो चाहते हैं वह हो नही पाता। इसके लिए श्री वसन्तराव नारगोलकर ने कहा कि अपने आइने में पहले खुद ही देखें कि गुप्त शक्तियो से भरे ऐसे महान् आन्दोलन की गति मन्द क्यो होती जा रही है ? उनका जोर गाधीप्रणीत सत्याग्रह पर था और उसके माध्यम से क्रिया द्वारा शिक्षा की ओर संकेत था।

श्री जयप्रकाश नारायण ने बिहारदान के लगभग पूरे होने की बात बताते हुए बिहार के शिक्षको और राजनैतिक दलो को बधाई दी। इसे सामान्य *लोगो का आन्दोलन कहकर आलोचको पर व्यग्य करते हुए कहा कि ग्राम चुनाव* के समय मतपत्र कागज का टुकडा है तो ग्रामदान के दानपत्र भी कागजी हैं, पर जिस तरह उसके पीछे लोकमत की बात कही जाती है उसी तरह हम इसके पीछे जनमत तथा लाखो-करोडो लोगो का पावन सकल्प है, कह सकते हैं। मैं मानता हूँ कि ये कागज के ग्रामदान हैं, पर उन कानूनो को क्या कहेंगे, जो देश की विधान-सभाओ और ससद ने बनाये। चाहे रैयत टैनेन्सी एक्ट हो, चाहे सीलिंग का कानून, क्या उनसे भूमिहीनो और वेघरबारो को जमीन मिल सकी ? हमे अपनी भावना, योजना और साधना से *कागज का लिखा जमीन पर उतारना है। आज का गाँव तो दुर्योधन का दरबार है।* मैं ग्रामदानी गाँवो की ग्रामसभाओं मे क्रान्ति का रूप देख रहा हूँ। ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य की सम्भावनाएँ उजागर हो रही हैं।

आचार्य राममूर्ति ने बडे ही भावपूर्ण शब्दो मे विश्लेषण किया कि अलगाव, बहिष्कार और सहार प्राचीन समाजरचना का आधार था, उसके बजाय सर्व का उदय आज विज्ञान और लोकतत्र की प्रेरणा है। पर वह लगडी भिन्न की तरह कटकर शून्य हो गयी है। राजनैतिक दलो के द्वारा सरकार परिवर्तन की सभी डिजाइनें धूमिल हो गयी हैं। अब तो जरूरत है कि खडे हो जाओ और चल पडो तो कल का भविष्य तुम्हारा है।

भागलपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० रामजी सिंह ने 'आचार्यकुल' की सम्भावनाओ पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आचार्यों की ज्ञान-शक्ति और ग्रामीणो की ग्राम-शक्ति, दोनो का योग होगा तो भारत मे लोकशक्ति बनेगी। परन्तु आचार्यो की शक्ति तभी बनेगी जब वे दलगत राजनीति से मुक्त हो जायें। उन्होने कहा कि आचार्यकुल अब विधानत सर्व सेवा सघ की प्रवृत्ति बन गयी है और अधिक-से-अधिक आचार्यों को आचार्यकुल का सदस्य बनकर ग्राम-स्वराज्य के काम को दिशा देना चाहिए।

सम्मेलन के उद्घाटन-कर्ता श्री चारुचन्द्र भडारी ने कहा कि आज हमारे मन की सबसे ऊपरी बात है पिछले महीने मे अहमदाबाद आदि स्थानो मे घटी दुखजनक घटनाएँ, जिनसे लगता है कि गाधी की आहुति के बाद भी साम्प्रदायिक आग अभी बुझी नही है। धर्म के दूषित अर्थ ने इसे बनाये रखा है, इसके लिए स्कूल-कालेजो मे सच्चा अध्यात्म-शिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। ईश्वर मे विश्वास हो, श्रद्धा हो, उसकी भक्ति करें, उपासना करें और सत्य-प्रेम-करुणा का पालन करें, यही धर्म है।

ग्रामदान विचार गाधी विचार का अनुसिद्धान्त है। इसे समाज मे मूर्त करना शक्य है। इसके लिए सभी की सम्मिलित शक्ति अपेक्षित है।

विनोबाजी ने सर्वोदय-सम्मेलन को स्नेह-सम्मेलन कहते हुए आशा प्रकट की कि अभी तो ग्रामदान-तूफान की स्थिति थी। अब अति तूफान का समय आ गया है, बिहार का राज्यदान बाबा का 'वाटरलू' है। समय हमारा इन्तजार नही करेगा, इसलिए हमे पूरी शक्ति लगाकर काम करना है। सीमात गाधी के भारत-आगमन को 'गाधी का पुनरागमन' कहकर उनके शाति प्रयासो की सराहना की। उनसे सेवाग्राम मे मिलने के लिए अपना अगला कार्यक्रम निश्चित किया और आगे के लिए केवल सात दिनो का कार्यक्रम बनाने का सूक्ष्मतर-प्रवेश घोषित किया। आम सभाओ के बजाय गोष्ठियो मे चर्चा करने का तय किया। थके कार्यकर्ताओ को घंटे भर ज्यादा सोने की सलाह देकर निद्रोपनिषद् सुनाया। कहा कि अहकार शून्य होकर की गयी अल्प सेवा भी बडी प्रभावी होती है। देश का एक प्रदेश राज्यदान तक आया तो समझो कि बूढ़ी माँ को पहला लडका हुआ। कभी चढ़ाव, कभी उतार, यह तो आन्दोलन मे आता ही है। यह तो भगवान की सगीत कला है।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अफगानिस्तान, बर्मा और सीलोन को ए० बी० सी० त्रिभुज बताते हुए उनका महासंघ बनाने का सुझाव देकर उन्होंने कश्मीर,

पाकिस्तान आदि समस्याओं का हल बताया। सर्वोदय विचार को उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नाम दिया।

खादी को सरकार के आश्रय से मुक्त कर जनाधारित करने का एक प्रस्ताव सम्मेलन में रखा गया। वर्तमान राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के सन्दर्भ में संघ निवेदन पारित हुआ। देश विदेश में शांति के प्रयोगों की चर्चा के उपरान्त शांति-सेना, तरुण शांति-सेना, भूमि सेना की चर्चा हुई। आचार्य कुल को विनोबाजी की अद्यतन देन बताते हुए उसके देश-व्यापी संगठन पर जोर दिया गया। इसी अवसर पर कडप्पा जिलादान की घोषणा हुई। घर घर सर्वोदय-साहित्य और पत्रिका पहुँचे इसके लिए पांच और सात पुस्तकों के सेट एक एक लाख प्रतियों में छापने का स्वागत किया गया।

अन्त में अध्यक्षा ने धरती-चाँद बहन भाई कहकर इस चन्द्रयात्रा के युग में धरती की एकता की बात सहज सम्भाव्य बतायी। जनता में नित-नूतन ग्रामोद्धार की शक्ति विकसित हो और ग्रामसमूहों का विश्वराज बने ऐसी महती आकांक्षा प्रकट की।

सम्मेलन-मंत्री श्री गोविन्दराव देशपाण्डे ने आगत जनों के प्रति आभार प्रकट किया और ग्रामदान की इस प्रवाह-यात्रा को मंगलमय बताया। बिहार दान के पराक्रम के प्रतीक-रूप बिहार के ज्येष्ठ सर्वोदय-कार्यकर्ता श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी का उत्तर प्रदेश के श्री कपिल भाई ने अभिनन्दन किया। चार दिनों का यह सर्वोदय-सम्मेलन नयी उमंगों के साथ बहुजनहिताय बहुजनसुखाय के लिए दृढ़संकल्पी लोगों के पारस्परिक मेल मिलाप के मेले के रूप में समाप्त हुआ।•

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार – प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : ५
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

दिसम्बर, '६९

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित; कमल कुमार बसु,
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : दिसम्बर '६९
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य

'ग्रामस्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम् जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। क्योंकि हरएक देहाती के जीवन का सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और गाँव की इज्जत के लिए मर मिटे।'

—गांधीजी

अब समय आ गया है कि इस देश के बुद्धिवादी, किसान, मालिक, मजदूर, सभी इस बात पर विचार करें कि ग्रामदान हमें ग्रामस्वराज्य की ओर अग्रसर करता है या नहीं? यदि हमें जँच जाय कि हाँ, इससे हमें ग्रामस्वराज्य के दर्शन हो सकेंगे, तो यही अवसर है कि हम लोग इस पुण्य काम में तुरन्त लग जायँ।

राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी की रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति
दुकन्या भवन, कुन्दीगरों का भैरूँ, जयपुर ३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर, वाराणसी

- अनभिज्ञ शिक्षक, अशान्त विद्यार्थी और अनुपयुक्त शिक्षण
- विद्यालय-योजना द्वारा शिक्षा में क्रान्ति
- आक्रमण, पराक्रम और आत्म-प्रतिष्ठा
- राष्ट्रीय एकता और शिक्षा
- वाल जीवन

जनवरी, १९७०

राजनीति बनाम लोकतंत्र

भारत की राजनीति दलो की है, सत्ता की है, सघर्ष की है। वह जनता, सेवा और समन्वय की राजनीति नही है। इसीलिए जब हम जनता को सामने रखकर सोचते हैं तो प्रचलित राजनीति का निकम्मापन, खोखलापन, खुलकर सामने आ जाता है। राजनीति को जनता के कल्याण की चिन्ता भले ही हो, किन्तु उसमे चेष्टा जनता की शक्ति बनाने की नहीं है। उसकी चेष्टा है सत्ता की और चिन्ता है जनता की। सत्ता और जनता का मेल सम्भव नही है, आज के जमाने मे तो कतई असम्भव है। असम्भव केवल इसलिए नहीं है कि राजनीति के लोग स्वार्थी हैं, अदूरदर्शी हैं, बल्कि इसलिए है कि भारत की परम्परा, परिस्थिति, प्रतिभा सत्ता, और जनता का मेल सम्भव नही होने दे रही है। असम्भव को सम्भव बनाने का विफल प्रयास राजनीति बाईस वर्षों से कर रही है। भारत ही नही, भारत की तरह के एशिया और अफ्रीका के दूसरे देशो मे भी यह मेल अस्वाभाविक अव्यावहारिक सिद्ध हुआ है, और उसकी विफलता के कारण ही हर जगह राजनीति टूटी है और लोकतत्र समाप्त हुआ है। उसी विफलता के कारण भारत मे भी राजनीति टूट रही है। लेकिन राजनीति के साथ-साथ लोकतत्र भी टूट जाय, इसके पहले हमे लोकतत्र के बचाव के लिए कदम उठा लेना चाहिए। चिन्ता राजनीति की नही है, चिन्ता है लोकतत्र की। यह सिद्ध हो गया है कि दोनो एक नही हैं।

वर्ष : १८
अंक : ६

लोकतन्त्र के बचानेवाले कदम की कल्पना गांधीजी ने १९४८ मे ही कर ली थी, और योजना के रूप मे उन्होंने कांग्रेस के स्थान पर 'लोक-सेवक-संघ' का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया था। लेकिन उस वक्त सत्ता ने जनता को छोडकर अलग रास्ता अपनाया, और पिछले इतने वर्षो तक सत्ता ने विकास के मोहक खिलौने दिखाकर जनता को भुलावे मे रखा। जनता भ्रम मे पड़ी रही कि सत्ता की राजनीति ही लोकतन्त्र है, तथा योजना के नाम मे नौकरशाही जितना कर दे वही विकास है। हो सकता है कि इन्दिराजी का नया कदम इस भ्रम को कुछ दिन और कायम रखे, पर जमाना जिस तेजी के साथ बदल रहा है और समस्याएँ जिस तेजी के साथ जनता को अधीर बनाती जा रही हैं उन्हे देखते हुए लगता नही कि यह भ्रम ज्यादा दिन टिकेगा। जनता शीघ्र समझ जायगी कि राजनीति के तरीको से कोई समस्या हल होनेवाली नही है।

प्रश्न यह है कि जब भ्रम दूर हो जायगा तो क्या होगा? तब क्या हमारे नेता यह कहेगे कि विफलता की जिम्मेदारी उनकी राजनीति पर नही, लोकतन्त्र पर है? हो सकता है कि सारा दोष लोकतन्त्र के माथे मढा जाय, और कोई नयी शक्ति खडी हो जाय जो जनता से कहे, 'तुम्हारी मुक्ति इसीमे है कि लोकतन्त्र से मुक्त हो जाओ'।

अब हमारे देश मे असली प्रश्न है . **राजनीति बनाम लोकतंत्र।** अगर लोकतंत्र की रक्षा करनी है तो राजनीति मे गुणात्मक परिवर्तन होना चाहिए। किन्तु वह परिवर्तन कैसा हो, कैसे हो? सत्ता की राजनीति की सारी आशा ध्रुवीकरण पर लगी हुई है। ध्रुवीकरण किसमे? आजकल जोरो के साथ दक्षिणपंथी और वामपथी राजनीति के ध्रुवीकरण की बात कही जा रही है। 'पीपुल्स डिमाक्रेसी' के कुछ क्रांतिकारी हिमायती शोषको और शोषितो के ध्रुवीकरण का नारा लगाते है, और कहते हैं कि असली ध्रुवीकरण आज जो हो रहा है वह नही है, बल्कि वह है जो कल होगा। गाली और निन्दा की भाषा मे चाहे जो कहा जाय, लेकिन अगर जनता को सामने रखा जाय तो कोई पथ, दक्षिण या वाम, सत्ता अपने हाथो से निकालकर जनता के हाथों मे सौंपना नही चाहता। वह इतना कहकर रह जाता है कि सत्ता उसके और उसके साथियो के हाथ मे रहे तो लोकहित

सधेगा। राजनीति जनता के सामने जाकर ठिठक जाय उसके साइनबोर्ड चाहे जो हो, उसकी प्रगतिशीलता अधूरी ही मानी जायगी।

वास्तविक गुणात्मक परिवर्तन की दिशा ध्रुवीकरण की नहीं, कुछ दूसरी ही है। लोकतंत्र मे निर्णायक तत्त्व 'लोक' है, 'राज' नहीं। लोक को ध्रुवो मे बाँटने से आज की विरोधवादी, सहारवादी, राजनीति के सिवाय दूसरा कुछ नही मिलेगा। अगर लोकतंत्र को मजबूत करना हो तो लोक-जीवन पर सरकार की सत्ता समाप्त होनी चाहिए; बाजार मे मुनाफाखोर की सत्ता समाप्त होनी चाहिए, और स्वय सरकार पर दल की सत्ता समाप्त होनी चाहिए। यह सम्भव होगा गाँव-गाँव, शहर-शहर मे, लोकशक्ति-सगठन से। आज की राजनीति अपनी सत्ता के लिए जनता के क्षोभो को उभाड तो सकती है, लेकिन उसमे शक्ति भरकर उसे समाज-परिवर्तन का साधन नही बना सकती। हमे सरकार से आगे जाकर समाज की, और तत्र के आगे जाकर लोक की, बात सोचनी चाहिए। कौनसी राजनीति आज सरकार से आगे जा रही है? क्या लोकतंत्र का हित दलो के अदल-बदल से सधनेवाला है?

ऐसा नही है कि समाज की बात सोचनेवाले सत्ता से मुक्त दिमाग के लोग देश मे मौजूद नही हैं। वे मौजूद हैं। बात इतनी है कि वे किसी कारण से पीछे पड गये हैं, या खुद पीछे हट गये है। अब समय आ गया है कि वे सामने आयें और नयी चेतना का जामन डालकर लोकजीवन मे गुणात्मक परिवर्तन करें। हमारे लिए गुणात्मक परिवर्तन का एक ही अर्थ है—लोकशक्ति का जागरण और सगठन। हम सत्ता चाहते है 'सर्व' की, दलो की नही, नीति चाहते हैं समाज की, सरकार की नही। आज जरूरत है ऐसे नर और नारियो की, जो आमूल परिवर्तन के माध्यम बन सकें। हम चुन लें कि हमे एक राजनीति की जगह दूसरी राजनीति चाहिए, या नया, जीता-जागता, लोकतंत्र?

-

अनभिज्ञ शिक्षक, अशान्त विद्यार्थी और अनुपयुक्त शिक्षण

प्रश्न : शिक्षक विद्यार्थियों से प्रेम करनेवाला एवं विद्वान होना चाहिए और उसे राजनीति मे सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए। आज के शिक्षक मे इन गुणों का अभाव किन कारणों से है, और इन कारणों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

विनोबा . प्रथम तो यह है कि आज के शिक्षको मे ऊपर के जो गुण बताये हैं उनका अभाव हो है, ऐसा मैं मानता नहीं हूँ। यह असम्भव बात है कि आज के शिक्षको का विद्यार्थियो के लिए प्रेम न हो। दूसरा, यह सम्भव है कि वह विद्वान न हो, लेकिन साधारण लोग जितने विद्वान् हो सकते हैं उससे तो शिक्षक अधिक ही विद्वान् होते हैं। राजनीति मे भाग नहीं लेना चाहिए यही मुख्य आपत्ति है। उसका कारण यह है कि राजनीति ने इन दिनो सबके चित्त को घेर दिया है और शिक्षको को उसमे से मुक्ति का भान नहीं है। मैंने कई बार कहा है कि राजनीतिज्ञ केवल ५ साल के लिए होते हैं, उसके बाद बदलते हैं। उनकी जगह पर दूसरे आयेंगे। लेकिन शिक्षक कम-से-कम ३० साल तक रहते हैं। वे अपना काम पूरा करके निवृत्त होंगे, उसके बाद उन्हीके सिखाये हुए विद्यार्थी शिक्षक होंगे। इसका अर्थ यह है कि शिक्षको की परम्परा चलेगी और राजनीतिवालो की परम्परा का कोई सवाल ही नहीं है। कल एक पार्टी सत्ता मे रहेगी और आज दूसरी पार्टी। अभी आप देख ही रहे हैं, पार्टी का नसीब किस प्रकार का है। तो शिक्षकों को भान होगा कि उनकी अपनी एक स्वतंत्र शक्ति खडी की जा सकती है भारत मे, जो विद्वानो की शक्ति होगी, और तटस्थ विद्वानो की होगी। इस वास्ते देश के मसले पर जब कभी कठिन प्रश्न उपस्थित हो तो उस पर विचार करने के लिए इन विद्वानों की एक परिचर्चा आयोजित की जाय और उन सबकी सम्मिलित राय जाहिर करेंगे तो शिक्षको की आवाज बुलन्द होगी तथा इससे लोगो को मार्गदर्शन भी मिलेगा। राजनीति से मुक्त होकर यदि शिक्षक गाँव गाँव के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ें, एक एक गाँव को मार्गदर्शन देने का काम करें, ग्राम सभा को मार्गदर्शन दें, तो उसका असर सारे भारत पर पड़ेगा। इधर ग्रामीण जनता उनके साथ और उधर विद्यार्थी इनके साथ होंगे। इस प्रकार से बहुत बडी ताकत शिक्षको के हाथ मे आयेगी तब उनको भान उन्हे होगा। यह भान होने की जरूरत है।

जैसा कि मैंने कहा है कि वे विद्यार्थियो से प्रेम करते ही नही, ऐसी बात नहीं है। फिर भी यह सही है कि जितना ख्याल अपने घरवालो पर होता है उतना इन बच्चो पर नहीं होता। उसका मुख्य कारण यह है कि हम लोगो मे वानप्रस्थ वृत्ति आयी नही। एक-दो बच्चे हो गये, उसके बाद ब्रह्मचर्य की साधना शिक्षको को करनी चाहिए। इससे उनके घर मे जीवन पवित्र बनेगा। उसके बाद वे प्रेम वगैरह को विद्यार्थियों तक व्यापक कर सकेंगे। आखिर तक चित्त बेचारा घर के मामले मे उलझा रहता है, वैसी हालत मे प्रेम का झरना बहता नही, कोई खास विद्यार्थी होते हैं जो अपनी बुद्धिमत्ता से शिक्षको को आकर्षित करते हैं, उन पर शिक्षको का प्यार होता है, लेकिन उसको ज्यादातर विद्यार्थियो की कमाई समझनी चाहिए। इसलिए जब यह होगा कि अपने परिवार की मर्यादा बनायें, वह आधुनिक तरीके से नही बल्कि सयम से करेंगे, तो आनन्द होगा।

प्राचीन काल मे शास्त्रकारो ने कहा था कि शिक्षक उसे होना चाहिए जिसको जीवन का अनुभव हो, जो वानप्रस्थी हो। आज तो जो विद्यार्थी 'यूनिवर्सिटी' से निकला तो वह शिक्षक हो गया। जैसे, शिक्षक राजनीति का तो है लेकिन राजनीति जानता नहीं। राजनीति का शिक्षक तो पडित नेहरू को होना चाहिए था। उनको अन्त मे राजनीति छोडकर वानप्रस्थी बनकर शिक्षक बनना चाहिए था। वैसे ही वाणिज्य कालेज के शिक्षक वे होते हैं जिनको वाणिज्य का अनुभव नहीं। वाणिज्य का तो उत्तम शिक्षक घनश्यामदास बिडला हो सकते हैं। क्योकि उनको उसका काफी अनुभव है। यदि वाणिज्य के शिक्षक को व्यापार के लिए पाँच हजार रुपया दिया जाय तो कुछ समय मे वह पाँच के छ नहीं बनायेंगे, बल्कि दो हजार पर ला देंगे। यह इसलिए कि उनको व्यापार करना आता नही। इस प्रकार अनुभवसम्पन्न हुए बिना ही आजकल राजनीति और वाणिज्य सिखाते हैं।

अनुभव के बाद शिक्षक बनता है तो वह अनुभवयुक्त ज्ञान विद्यार्थियो को देगा। उसकी वासना भी उस समय तक क्षीण हो जाती है। इस वास्ते वह आदर्श शिक्षक बन सकता है। लेकिन आज यह हालत नही है। आज तो २०-२२ साल का ही शिक्षक होता है जिसको उद्योग का अनुभव लेना बाकी है, फिर भी वह शिक्षक है। मेरे ख्याल से शिक्षक की उम्र ४० साल से लेकर ६० साल तक होनी चाहिए। क्योंकि वह शिक्षक ४० साल के बाद वानप्रस्थी होगा और उस समय तक उसने घर के लिए कुछ पैसा कमा लिया होगा। उसके बाद यदि प्रोफेसर बन गया तो १०० रुपये मे ही वह काम कर

सकेगा, तो इस तरह से प्रोफेसर सस्ता होगा तो शिक्षा भी सस्ती हो जायेगी। अनुभव के बाद शिक्षक बनेगा तो अनुभवयुक्त ज्ञान देगा। तीसरी बात, वह वासना भी उसकी कम हो जायेगी तो उसका प्रेम का प्रवाह विद्यार्थियों पर बहेगा। ऐसा होगा, अगर मेरी चले।

'मूरख-मूरख राज कीने, पण्डित फिरे भिखारी'—यह कबीर का कथन चरितार्थ होता है। मूरख-मूरख चुन करके राजा बना दिया और पण्डित भिखारी होकर १४ साल से घूमता रहा, भीख माँगता रहा। राजसत्ता उनके हाथ में आ गयी, इस वास्ते आप लोगों को समझना चाहिए कि *नालायक लोगों के हाथ में सत्ता है* और *हम उनके पीछे-पीछे जायें यह* उचित नहीं। यदि यह ध्यान में आ जायेगा और वानप्रस्थी शिक्षक बनेगा तो शिक्षक का पावित्र्य बढ़ेगा और विद्यार्थियों के लिए प्रेम का प्रवाह बहना शुरू होगा। इसे हम वानप्रस्थ की महिमा कहेंगे।

शिक्षक विद्वान् तो होते ही हैं, लेकिन वह पर्याप्त नहीं। आजकल होता यह है कि लोग बी० ए०, एम० ए० कर लेते हैं और फिर अध्ययन छोड़ देते हैं। पुराने अध्ययन के आधार पर शिक्षण देते हैं, यह ठीक नहीं। जैसे रोज देह को खिलाना जरूरी है वैसे ही चित्त के लिए रोज अध्ययन जरूरी है। और बाबा सतत अध्ययन करता है। एक दिन भी उसका बिना अध्ययन किये जाता नहीं। ७४ साल की उम्र में भी नित्य नया-नया अध्ययन करता ही रहता है और वह शायद मरने के दिन भी अध्ययन करके ही मरेगा। यह अध्ययन-सम्पन्नता अगर शिक्षकों में आ गयी तो जो मूर्ख समाज की तुलना में वे विद्वान् हैं, कल वे सचमुच विद्वान् होंगे। नित्य नया ज्ञान प्राप्त करते रहेंगे, यह शिक्षकों की समझ में आ जायेगा तो उन्हें अध्ययन का चस्का लगेगा।

प्रश्न : असन्तुष्ट व त्रस्त युवकों की एक नयी समस्या भारत में निर्माण हुई है। इस समस्या का प्रमुख कारण केवल देश की बिगड़ी हुई आर्थिक परिस्थिति व बढ़ती हुई बेकारी ही हो सकती है क्या ? त्रस्त युवकों के प्रश्न का हल कैसे होगा ?

विनोबा : आज के युवक का अपना कोई दोष नहीं है। जो दोष है वह केवल तालीम का है। तालीम उसे ऐसी दी जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप वह स्वतंत्र ढंग से काम करने में असमर्थ होता है। कृषि-शास्त्र पढ़ करके वह अपने खेत में जाये और सामान्य किसानों से अधिक अन्न उत्पन्न करे, यह होता नहीं, वह तो नौकरी माँगता है। बहुत थोड़े लोगों को

आप पायेंगे जो कृषि-शास्त्र पढकर आगे उत्तम किसान बने हो। परिणाम यह है कि कृषि कालेज म केवल शास्त्र सिखाया जाता है। और वे कालेज भी होते हैं शहरो मे। शहरो म कौनसी खेती करेंगे? इस वास्ते हर विद्यार्थी के लिए कुछ प्लाट रख देते हैं जिसमे वह हफ्ते मे ३-४ घंटे समय देता है, बाकी सारी पढ़ाई सैद्धान्तिक होती है। ऐसा नही होता है कि आपको १ एकड जमीन दे देते हैं, उसम से जो कमाई होगी उस पर आपको जीवन जीना है। उसको तो छात्रवृत्ति मिलेगी या तो माता पिता खर्चा देंगे। ऐसी पराधीन शिक्षा कृषि कालेज मे भी होती है। फिर मुझे तो आश्चर्य होता है कि कृषि कालेज मे भी अंग्रेजी सीखकर आना जरूरी है, ऐसा नियम है। १८ साल तक उसने शिक्षा पायी और तब खेती नही की। कृषि कालेज मे लिया गया और वहाँ खास खेती करने का रहता नहीं, तो परिणाम यह होता है कि वह अपनी खेती पर काम करने के लिए जाता है तो काम करने की आदत न होने के कारण धूप-बारिश आदि सहन करनी पडी कि बीमार पड जाता है। फिर वह खेती क्या करेगा और खेती सीखने क लिए अंग्रेजी सीखने की कैद क्यो होनी चाहिए? क्या मातृभाषा म खेती भी नही हो सकती है? दूसरे विज्ञान वगैरह के विषय हो तो दूसरी बात है लेकिन खेती जैसी मामूली वस्तु के लिए तो जो थोडा पढ़ा लिखा हो, और प्रत्यक्ष खेती करनेवाला हो, उसको कृषि कालेज मे लिया जाय। उसको सिखाने के लिए ३-४ सौ शब्द जो जरूरी हैं, वह सिखा सकते हैं।

इस वास्ते जो तालीम आजकल दी जाती है वह बेकार है। जो युवक त्रस्त ग्रस्त हैं उसका कारण आज की तालीम ही है। तालीम के सुधार के लिए दो-दो कमीशन नियुक्त किये गये। पहला कमीशन राधाकृष्णन् की अध्यक्षता म बना। वे इतने विद्वान् आदमी हैं। उन्होने जो रिपोर्ट पेश की, उस पर अमल नही हुआ। कुछ साल निकल जाने के बाद फिर एक कोठारीजी की अध्यक्षता म कमीशन बना। उन्होंने भी हजार बारह सौ पन्नो की रिपोर्ट दी। लेकिन दो दो रिपोर्टों के बाद भी अमल नही हो रहा है। इसलिए तालीम बदले बिना विद्यार्थियो का असंतोष कम होना मैं सम्भव नही मानता।

प्रश्न आज के नवयुवकों मे जिम्मेदारी की भावना का निर्माण कैसे हो?

विनोबा बिल्कुल सरल युक्ति ईश्वर ने बनायी है। बाप मरता है तो बेटे म अपने आप जिम्मेदारी की भावना आ जाती है। जैसे, बापूजी से

कुछ लोग पेट दुखे तो भी पूछते थे कि कैसे ठीक हो ! दूसरी बात तो पूछते ही थे लेकिन ये छोटी-छोटी बातें भी उनसे पूछते रहते थे। इतने लोग बापू के अधीन हो गये थे। ईश्वर ने यह देखा तो सोचा कि इन लोगों को जिम्मेदारी का ध्यान लाने के लिए उन्हे उठा लेना चाहिए। यह परमात्मा की बहुत बडी कृपा है कि वह अनुभवी लोगों को उठा लेता है और कच्चे लोगों के हाथों मे छोड देता है, ताकि उनको जिम्मेदारी महसूस हो। लेकिन ऐसा है कि ये बूढे जल्दी मरते नहीं और सतत बने रहते है। मैंने सुझाव पेश किया था कि ६० साल की उम्र के बाद राजनीति मे नही पडना चाहिए। यह नियम होना चाहिए कि ६५ साल के बाद उसको टिकट न दिया जाय। जिस प्रकार से ६५ साल की उम्र मे 'फेडरल कोर्ट' के न्यायाधीश को रिटायर होना पडता है, उसी प्रकार से राजनीतिज्ञों को भी ६५ साल के बाद रिटायर हो जाना चाहिए। ऐसा करने से राजनीति मे 'डेविल' करनेवाले जो बूढे लोग हैं. बाहर आ जायेंगे और आजकल जो झगडे चल रहे हैं, उनमे ५०-६० प्रतिशत झगडे खतम हो जायेंगे, अगर केवल इसी नियम का पालन करें।

यह तो मैंने उपाय बताया कि वृद्धों को प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र से हटना चाहिए। उसके लिए एक उपाय तो भगवान करता ही है, लेकिन जहाँ भगवान नहीं करता वहाँ यह नियम होना चाहिए कि वे ६५ साल के बाद हटें।

विद्यार्थियों को स्कूल मे जो किताबें पढायी जाती हैं केवल उसीसे संतोष-समाधान नहीं मानना चाहिए, बल्कि उसके साथ-साथ आसपास के समाज का निरीक्षण करना चाहिए। वहाँ की हालत क्या है, इसका पता चलेगा कि कितने लोग बेकार हैं, कितने लोगो को पूरा खाना नहीं मिलता है, कितने लोग बीमार हैं जिनके लिए इलाज का कोई इतजाम नही। ऐसा सारा सर्वेक्षण करेंगे तो उन्हे देश की हालत का पता चलेगा और उससे उनको दुनिया का भान होगा और जिम्मेदारी की भावना आयेगी।

प्रश्न : भारत में आज जो नैराश्य का वातावरण बना है उसको उत्साह-वर्धक बनाने में शिक्षक क्या करें ?

विनोबा : अपने वैद्यक शास्त्र मे यह लिखा है कि वैद्य को कैसा होना चाहिए। वह जब रोगी की कोठरी मे जाय तो उसका प्रसन्न चेहरा देखकर रोगी का आधा दुःख खतम हो जाय। इस प्रकार शिक्षकों को अपना चेहरा प्रसन्नमय रखना चाहिए। गुस्से के समय का फोटो यदि लिया जाय तो उसे पता चलेगा कि कितना रद्दी चेहरा हो जाता है, तो फिर वह गुस्सा नहीं करेगा। आज तो जब चेहरा प्रसन्न होता है तभी फोटो निकालते हैं। प्रसन्नता के सम्बन्ध

मे गीता मे कहा है—'जिसका प्रसन्न चित्त है उसकी बुद्धि एकदम स्थिर और शान्त हो जाती है।'

निराशा जो है वह निगेटिव है, उसका अस्तित्व है नहीं। कोई पूछेगा कि अन्धेरे को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए तो टार्च आया कि वह भाग गया, क्योंकि उसका अस्तित्व है नहीं। टार्च के अभाव मे वह है। वैसे ही नैराश्य तो तब होता है जब सामने 'पॉजिटिव (विधायक) वस्तु नहीं होती है। जैसे पौधे मे रोज ताजा फूल होता है, वैसे ही नित नयी प्रसन्नता होनी चाहिए, नित नया मानव होना चाहिए यानी भूतकाल को भूल जाना, भविष्य की चिन्ता नहीं करना और वर्तमान काल म ही काम करना। अगर भविष्य की चिन्ता करेगा और भूतकाल की याद करेगा, यदि ये दोनो आयें तो वतमान-काल चला जायेगा। भविष्य हाथ म है नही अभी आपके हाथ म, वतमान काल है। भूत और भविष्य के लिए वर्तमान काल खोना यह बिल्कुल मूर्खता है। इसलिए भूत, भविष्य छोडकर वर्तमान मे हमेशा प्रसन्न रह। इस क्षण मे आपको कोई दुख है तो उसको दूर करना होगा। जो कल था वह आज भूल जाना चाहिए। मान लीजिए, आपको बिच्छू ने इसी वक्त काटा तो उसका इलाज होना चाहिए। बाकी भूत और भविष्य की चिन्ता छोड सकते हैं, और छोडना चाहिए।। इससे निराशा का क्षेत्र बहुत कम हो जायेगा।

प्रश्न भारत मे अभी जातीय दगे क्यों होते हैं? सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सब धर्म और जातियाँ कैसे एकत्र आ सकती हैं?

विनोबा . ये जो जातियाँ उत्पन्न हुई और धर्म उत्पन्न हुए, वे जिस जमाने मे हुए उस समय उनकी आवश्यकता थी। और उस जमाने के लोगो को जोडने का काम किया। मैं भारत की मिसाल दूँ, यहाँ पर कुछ लोग अफ्रीका से आये तो यहाँ के लोगो को उनके स्वागत करने की प्रेरणा हुई। लोगो ने कहा कि हम अपने रीति रिवाजों का पालन करेंगे, आप अपने रीति-रिवाजो का पालन करें। इसमे सह अस्तित्व का स्थान आ जाता है। अगर यह नहीं बनता तो उनको 'शूट' ही कर देते। आस्ट्रेलिया म जो भी बाहर की जातियाँ आयी और वहाँ की जो आदिवासी जातियाँ थी उनको 'शूट कर दिया। इस प्रकार से मानव-समाज के आचरण का इतिहास हमारे सामने है। या तो उन्हे 'शूट' करना या उनको जबर्दस्ती अपने म शामिल करना या उनके साथ सह-अस्तित्व के विचार से व्यवहार करना। ऐसे जो जातियाँ निर्माण हुई वे कोएक्जिसटेंस' (सह-अस्तित्व) के ख्याल से। लेकिन अब ये 'आउटडेटेड' हो गयी हैं। जैसे पौधे के झाड के लिए बाड लगाना जरूरी है, और पौधे के

बढ जाने के बाद उसे निकाल देना पडता है, फिर भी अगर उसको रखेंगे तो बाड पौधे को खा जाती है। ऐसी हालत आज जातियो की हुई है। आज तो वह द्वेषमय में है लेकिन पुराने जमाने मे उसके कारण समाज में प्रेम रहा। ऐसे ही धर्म की बात है। जैसे कुल दुनिया के साथ आज सम्बन्ध है वैसा पहले था नही। आज तिब्बत के बार्डर पर दस आदमी मारे गये ऐसी खबर तुरन्त अखबारो मे सब जगह आ जाती है। लेकिन तीन सौ साल के पहले ऐसा नही था। इस तरह अखबारो के द्वारा एकदम सबको मालूम हो जाता है। दुनिया मे विज्ञान फैला है इसलिए खबरें दूर-दूर फैल जाती हैं। पहले धर्म एक स्थान मे लोगो को प्रेम मे जोडने का काम करता था लेकिन आज विज्ञान के कारण अनेक देश और जातियाँ नजदीक आ गयी। उस हालत मे वे पुराने धर्म तोडने का काम कर रहे हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख पारसी आदि जो धर्म हैं, उनमे भी आपस मे आज जो चल रहा है, वह आज के जमाने के लिए बिलकुल निरुपयोगी साबित हो रहा है। प्राचीन काल में तो ठीक था। इस वास्ते आज सब धर्मों का सम्मान होना चाहिए। एक-दूसरे की अच्छी चीजो को ग्रहण करना चाहिए। सब धर्मों का सार अध्यात्म निष्ठा और नैतिक सदाचार है। इसमे सब धर्म समान हैं। झूठ मार-काट आदि कोई धर्म कबूल नही करता। इस वास्ते धर्म का सार लेकर असार छोडना चाहिए। धर्मों के ऊपर का छिलका हटाना, यही उसका उपाय है। इसलिए हमने सब धर्मों का सार निकालकर लोगो के सामने रख दिया है। उसको लोग पढ़ेंगे तो एक-दूसरे के धर्मों का परिचय होगा।

प्रश्न अनुशासनहीनता नष्ट करने के लिए विद्यार्थियों को क्या धार्मिक शिक्षण दिया जाय? यदि देना आवश्यक हो तो उसका स्वरूप क्या हो?

विनोबा अनुशासनहीनता या धार्मिक असहिष्णुता जो भी नाम दीजिए, लेकिन जो आज खराब शिक्षा दी जा रही है उसके बावजूद हमारे विद्यार्थी आज जितने अनुशासन का पालन कर रहे हैं इसका हमे आश्चर्य होता है। बहुत कम अनुशासनहीनता है। १०० मे से ४५ विद्यार्थी ही ऐसे होंगे। आज की परिस्थिति में यदि बाबा विद्यार्थी होता तो निश्चय ही ज्यादा अनुशासनहीन होता, इसमें कोई शक नहीं। आज के *विद्यार्थी काफी अनुशासन* पालन कर रहे हैं जिसकी आशा करना आज की परिस्थिति मे उचित नहीं। क्योंकि उनमे जो अपने गुरु के आदर करने का भाव है वह अपनी सभ्यता

मे पढी है, इस वास्ते वे वैसा कर रहे हैं। कहा ही है–"विद्या विनय सम्पन्ने" विद्या से विनय आता है। नही तो वे जोरदार बगावत करते।

आध्यात्मिक शिक्षा बच्चों को मिलनी चाहिए। सब धर्मों के सार की जानकारी उनको मिलनी चाहिए। इससे उनका चरित्र बनेगा लेकिन उनके लिए शिक्षको का चरित्र भी ऊँचा होना चाहिए। केवल अच्छी-अच्छी कितावें सिखा दिया, इतने से बस नहीं, कहनेवाले के आचरण मे भी वह चीज होनी चाहिए। हमारी माँ ने कहा तो असर पड़ता है, क्योकि माता सत्यनिष्ठ थी। स्कूलों और कालिजो मे धार्मिक शिक्षा देने मे आपत्ति नहीं, लेकिन मुख्य वस्तु यह ध्यान मे रखनी चाहिए कि वह सदाचारी हो, वैसे होंगे तव ही उनके वचनो का उपयोग होगा।

[वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा के प्राध्यापकों तथा छात्र-संघ के पदाधिकारियों के साथ; गोपुरी, वर्धा, ता० ७ दिसम्बर, '६९]

बाल-जीवन

ब्र. ना. कौशिक

बालकों का अपना अलग ही विश्व है। उस विश्व का अपना ही रूप है जो सहज ही बनता और बिगड़ता रहता है। इतने पर भी बाल-विश्व यह सहन नहीं कर सकता कि कोई उसमे हस्तक्षेप करे। ज्यों ही बाल-वर्ग अपने विश्व मे किसीका किसी रूप मे हस्तक्षेप देखता है, तत्क्षण विरोध प्रकट कर देता है। इसका प्रथम चरण होगा बल्पूर्वक सगठित हमला, द्वितीय रुदन, मचलना, रूठ जाना, बनी वस्तु को नष्ट कर देना या पलायन, तृतीय चरण मे सत्याग्रह, अर्थात् हठ आता है। कहने को तो बीसवीं सदी को शिक्षा-शास्त्रियों ने बाल-शताब्दी की सज्ञा दी है। पश्चिमी देशो मे सम्भव है बाल-जीवन पर कुछ अध्ययन हुआ हो, परन्तु भारत मे बाल-जीवन उपेक्षित ही रहा है। बाल-मन्दिर, बाल-भारती, बाल-निकेतन नाम से विद्यालय अवश्य हैं, परन्तु उनमे भी स्पष्ट कुछ नहीं है। बाल-जीवन के अध्ययन के क्षेत्र मे कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अभी तक नहीं है। किंडर-गार्डन, माण्टेसरी शिक्षण-पद्धतियों का जन्म शिशु-जीवन के अध्ययन की स्पष्ट उपलब्धि है, जिसे हमने मूल बाल-जीवन की उपलब्धि स्वीकार कर लिया है।

वस्तुत बाल-जीवन शिशु और किशोरावस्था के मध्य की एक अविच्छिन्न कड़ी है। किशोरावस्था के अध्ययन के आधार पर प्राप्त आँकड़ो से स्पष्ट है कि किशोरावस्था की रूढ़ियाँ, धारणाएँ, व्यवहार, सवेग (भय, क्रोधादि) एव भाषाविकास आदि पर बाल-जीवन की मानसिक सस्थितियाँ तथा पर्यावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। अपराधी विचारो के अध्ययन से भी यह स्पष्ट ज्ञात हो चुका है कि वे अपने बाल-जीवन मे अपराध वृत्तियो की ओर उन्मुख हो चुके थे।

अधिकाशत इस वय मे बालक-बालको मे और बालिकाएँ बालिकाओ मे विचरण करती हैं। इनके अपने अलग-अलग सगठन होते हैं। बाल अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते परिवार मे शिशु किलोलें करने लगता है माता पिता बालक को छोटे शिशु के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे देखने लगते हैं। अत बालक के लिए अपना सगठन बनाना भी अनिवार्य हो जाता है। यह बालक और बालिकाओं के सगठन अपने-अपने वर्ग को ही प्रमुखता प्रदान करते हैं। यदि कभी कोई बालक बालिकाओ के वर्ग म चला जाता है तो साथी बालक उसे स्त्रीलिंग के नामो से सम्बोधन करने लगेंगे। यही अवस्था बालिकाओ की भी रहती है। यह छोटे-

छोटे बाल-संगठन जैसा इन्हे सूझता है उसीके अनुसार अग्रसर रहते हैं। निर्देशन के अभाव मे प्रारम्भिक अवस्था के दुष्ट किशोर इन बाल-वर्गों का शोषण करने लगते हैं जिससे इनम अपराध-वृत्ति जागने लगती है।

अनुकरण की वृत्ति प्रारम्भ से ही इस वय के बालको मे सर्वाधिक होती है, नकली मूंछें लगाना, खांसना, झुककर लाठी के सहारे चलना, अकड़कर बोलना, काम न करना, फुरसत मिलते ही बडो के मध्य बैठकर उनकी बातें सुनना इन्हे विशेष रुचिकर लगता है।

इस वय के बालक भाव-लोक म व्यापक रूप से विचरण करने हैं। कल्पना के घोड़े दौडाना, साहसिक व रोमाचकारी घटनाओ से प्रभावित होना। इसी लोक मे विचरण करते यह बाल-समूह अपने को स्वतःप्रेरित, स्वतःसचालित एव स्वतःपूरित वयस्क अनुभव करने लगते हैं। प्रारम्भिक अवस्था मे नैतिक और सद्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं परन्तु स्वस्थ निर्देशन के अभाव मे अनैतिक कार्यों, यथा—चोरी, बीडी-सिगरेट, यौन-सम्बन्धो के विषय मे छिपकर जानना आदि बातें सम्मिलित हो जाती हैं।

बालक अपने अनुभव के वृत्त को विस्तृत करने शरीर को बलिष्ठ बनाने व सृजनात्मक तर्कों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने लगता है। साथ ही बालक अपने द्वारा किये गये कार्य की प्रशसा भी चाहने लगता है। प्रशसा न मिलने पर उसके अहम् को ठेस लगती है। आत्म प्रशसा—अहम् के इस प्रदर्शन—मे उसकी सत्य से पलायन की वृत्ति के बढने की पूरी सम्भावना रहती है। यदि अहम् और आत्म प्रदर्शन की वृत्ति के समय कौशलपूर्वक यथोचित व्यवहार बालक को सुलभ न हो तो विकृत व्यक्तित्व के सगठन की सम्भावना निश्चित है। यहीं से बालक मे क्रोध का जन्म होने लगता है। अपना हक न मिलने तिरस्कृत किये जाने व चिढ़ाये जाने की स्थिति मे क्रोध का विकृत रूप स्पष्टतः उभरने लगता है। ऐसी अवस्था मे यदि बालक को पीट दिया जाये एव वह अपने को परवश समझ ले तब क्रोध और भय की सम्मिलित अभिव्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। इससे उसका पूर्ण आन्तरिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त हो जाता है जिसके स्पष्ट लक्षण बालक के मुख पर उभर आते हैं। प्रायः ऐसी अवस्था का प्रभाव मानसिक विकृतियो एव स्नायु रोगों के उत्पन्न होने मे सहायक सिद्ध होता है। मानसिक विकृतियाँ एव स्नायु रोगों के शिकार बालक अपने शेष जीवन मे चिड़चिड़े या ईर्ष्यालु बने रहते हैं।

केवल मात्र स्नेह या प्रेम द्वारा ही क्रोध और भय की स्थिति मे परिवर्तन सम्भव है। बालक जहाँ कहीं भी प्यार पाता है उस ओर वह बडी तेजी से

आकृष्ट होता है। उसके लिए यह आवश्यक नही है कि वह परिवार के ही सदस्य हो। अपने से अधिक वय के अन्य व्यक्तियो द्वारा प्रेम से व्यवहार किये जाने पर उस ओर चला जाता है। साथी बनाना, थोडे-से मतभेद पर ही साथी छोडना, मिलकर काम करना, मिलकर गाना गाना, साथ-साथ रहना बाल-जीवन का प्रमुख लक्षण है। इस वय का बालक जहाँ इसी वय के दूसरे बालको के साथ प्रेम करता है, वहाँ वह अपने से बडो का प्रेम पाने की भी आकाक्षा करता है, जिसके प्राप्त न होने पर कई अन्य विकृतियाँ न्यूनाधिक रूप मे जन्म ले लेती हैं।

हम बालकों को स्नेह और सहानुभूति प्रदान कर उन्हें अपने निकट ला सकते हैं। उन्हे सहकार्यों की ओर प्रेरित कर सकते हैं। हमारा प्यार बालक मे उत्साह और प्रेरणा का सचार करेगा, जिससे निराश बालक हीनवृत्ति से मुक्त होकर अपने को प्रोत्साहित व सम्मानित अनुभव करेंगे, जिसका प्रभाव होगा बालक मे सृजनात्मक शक्ति का विकास। यह निश्चित है कि इस वय के बालको मे कल्पना-शक्ति वडी प्रबल होती है। बालक यथार्थ और कल्पना मे भेद नही कर पाता। जबतक यह भेद स्पष्ट नही हो जाता तबतक भय रहता है कि कहीं बालक यथार्थ से भटक न जाये। ललित कलाओ के माध्यम से बालक की स्वाभाविक कल्पना शक्ति को सहज ही विकसित किया जा सकता है। प्राय सृजनोन्मुखी कल्पना के न होने से बालको मे अनुशासनहीनता, उच्छृङ्खलता और विध्वसात्मक प्रवृत्तियों का जन्म हो जाता है।

कल्पना का अविच्छिन्न रूप भी है, जिसे अतिशय कल्पना या कपोल कल्पना कहा जाता है। प्राय निर्बाध कल्पना बालक के मानसिक एव सावेगिक स्वस्थता के लिए आवश्यक है। हमे बालक की रक्षा केवल उद्विग्नता एव विकार-ग्रन्थियो से करनी है। बालक भावनामय प्राणी अधिक होता है। वह अपने साथ किये गये व्यवहार मे प्रेम क्रोध राग-द्वेष, ईर्ष्या, भय आदि भावनात्मक द्वन्द्वों को अत्यन्त शीघ्रता से अनुभव करता है। अबोध होने के कारण इन द्वन्द्वो का उचित निराकरण नहीं कर पाता। उत्साह वर्धन और सृजनात्मक शक्तियो के वातावरण प्रस्तुत करने पर ही हमे सर्वाधिक बल देना चाहिए।

वीरोचित सस्कार बालक सहज ही ग्रहण कर लेता है। प्राय भारतीय बालक की तो यह सास्कृतिक पृष्ठभूमि रही है कि बालक किसी भी अद्वितीय शक्ति सम्पन्न को अपना आदर्श मान लेता है। बाल विश्व हेतु हम अप्राप्य को प्राप्य, असाधारण को साधारण कठिन को सरल नही कर सकते तो कम-से-कम अपनी भावनाएँ या इच्छाएँ उन पर न थोपें, उन्हे उन्ही द्वारा निर्मित विश्व मे उन्मुक्त किलोल करने दें।•

आक्रमण, पराक्रम और आत्म-प्रतिष्ठा

मनमोहन चौधरी

कनाडा मे ओजिब्वा नामक एक आदिवासी जाति है। इसमे कभी-कभी किसी-न-किसीको एक 'दर्शन' या 'स्वप्नादेश' होता है कि उसे लडाई मे विजय प्राप्त होनेवाली है। तो वह दूसरों को इसका सन्देश देता है और स्वयसेवको की माँग करता है। ये स्वयसेवक करीब एक साल तक तालीम लेते हैं, युद्ध की तैयारी करते हैं। फिर पडोस की किसी बस्ती पर हमला करते हैं। जो इस लडाई मे अच्छा पराक्रम दिखाते हैं, उनको इनाम मिलता है।

नागाओ मे तथा दुनिया की और कई आदिवासी जातियो मे मुण्ड शिकार की प्रथा थी और आज भी शायद अफ्रीका मे कही-कही होगी। इसमे किसी एक गाँव के या ग्राम-समूह के लोग दूसरे गाँव या गाँवो पर हमला करके वहाँ के लोगो के सिर काटकर ले आते थे। इन कटे मुण्डो को बडे गौरव के साथ गाँव के सार्वजनिक स्थान मे रखा जाता था। इस अवसर पर पूजा, उत्सव आदि भी होते थे।

अपने देश मे दिग्विजय की प्रथा थी। कोई-न-कोई राजा अपनी श्रेष्ठता साबित करने के लिए युद्ध करने निकलते थे। दुनियाभर मे इस प्रकार हुआ है। सिकन्दर, चगेज खाँ, तैमूर, अशोक आदि तो मशहूर दिग्विजेता थे।

गिरोह या समाज मे जिस प्रकार यह आचरण दिखाई देता है उसी प्रकार व्यक्तियों मे भी देखने को मिलता है। नागा आदि आदिवासियो मे व्यक्ति भी मुण्ड शिकार करने पर उतारू होते थे। पडोस के गाँव के पास या जगल मे छिपकर बैठते थे और कोई अकेला बेखबर मनुष्य उधर से निकला, तो उसका सिर काट लेते थे। मारपीट, लडाई झगडे तो दुनिया मे हर रोज चल ही रहे हैं।

स्वार्थ के विरोध से तो झगडा होता ही है। राम की गाय श्याम के खेत मे गयी तो श्याम गाय को पीटेगा और शायद राम को भी पीटने पर उतारू हो जायगा। स्वार्थ तथा मतवादो के सघर्ष के कारण दुनिया मे लडाइयाँ हुई है और हो भी रही हैं। पर ऊपर दिये गये ओजिब्वा तथा दूसरी जातियों की करतूतो मे स्वार्थ का भी सवाल नही होता। ओजिब्वा लडाकू टोली या नागा ग्रामवासी जिन बस्तियो पर हमला करते थे, उनके साथ इनका किसी प्रकार के स्वार्थ के सघर्ष का अस्तित्व तक नही होता था और न उनसे इनको किसी प्रकार

के आक्रमण का खतरा होता था, जिसमे वे अपने बचाव के लिए हमला करते। तो यह लडाई के शुद्ध आनन्द के लिए ही लडाई हुई न ?

इसी प्रकार के सबूतो के आधार पर यह व्यापक तौर पर माना जाता है कि मनुष्य म एक आक्रामक वृत्ति है जो लडाई झगडे स ही तुष्ट होती है। इसलिए लडाई झगडो को मनुष्य-जीवन का अपरिहार्य अग माना गया है और शान्ति चाहनेवालो के लिए यह एक महत्त्व का सवाल बन गया है। अगर सिफ झगड ही नही युद्ध भी मनुष्य की बुनियादी वृत्ति या प्रेरणा है तो फिर शान्ति कहा ?

पर मानव विज्ञान के शोधो स दूसरे प्रकार का सबूत भी मिला है। नागाओ के बारे मे हमने पहले देखा है उनमे आपस म कभी झगड नही होते। आरापेश

एक प्ररणा दो स्वरूप
सामाजिक सन्दभ के अनुसार
पराक्रम-वृत्ति का स्वरूप बदलता है।

जाति के बारे मे भी हमने यही देखा। इस तरह और कई जातियों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसका रहस्य क्या है ?

मनुष्यो मे तथा प्राणियो मे भी भूख प्यास काम-वत्ति जैसी कोई हाजत पैदा होती है तो उसकी पूर्ति के लिए वह प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न मे बाधा आती है, तो उसको लाँघने के लिए भी वह प्रयत्न करता है।

मनुष्य अपना अन्न पैदा करने के लिए खती करता है। कोई मजदूरी नौकरी या व्यापार करके कमाता है और पैसे से अन्न खरीदता है। इन सब

धन्धो के लिए मनुष्य बहुत पुरुषार्थ करता है। पथरीली जमीन को तोडकर खेती के लायक बनाता है। जमीन फोडकर कुआँ बनाता है। महीनों या बरसो प्रयत्न करके धन्धा सीखता है। नीद हराम करके रात को पढाई करता है या दूकान का हिसाब लिखता है।

यह पराक्रम सामाजिक रूप भी लेता है। नदियों को वश म करने के लिए तथा सिंचाई के लिए विशाल बाँध बनाये जाते हैं, बडी-बडी नहरें खोदी जाती हैं। सूक्ष्म यत्र और विराट् कारखाने बनाये जाते हैं। इस तरह प्रतिकूलताम्रो को लाँघकर अपना ध्येय हासिल करने के लिए अकेले व्यक्ति भी तथा समूह भी प्रयत्न करते पाये जाते हैं।

सिर्फ अपनी शारीरिक आवश्यकताम्रो की पूर्ति के लिए ही नही, उनसे कोई सम्बन्ध न रखनेवाले ध्येयो के लिए भी मनुष्य इस प्रकार पुरुषार्थ करता है। हिलरी और तेनसिंग एवरेस्ट की चोटी पर चढे, तो उनके पीछे भूख-प्यास या काम-वृत्ति का कौनसा तकाजा था? जगदीशचन्द्र बसु या चन्द्रशेखर वेंकट रमन विज्ञान के महान् आविष्कार किये बिना भी अपना पेट पाल सकते थे। महात्मा गाधी या जवाहरलाल नेहरू आजादी के लिए मेहनत किये बिना भी आराम की जिन्दगी जी सकते थे।

मतलब यह कि सामाजिक सन्दर्भ से भी मनुष्य के ध्येय पैदा होते हैं और भूख, प्यास आदि से भी उन ध्येयो की प्रेरणा अधिक जबदस्त हो सकती है। राष्ट्रीयता, मानवीय अधिकार सामाजिक न्याय, आज की प्रतिष्ठा, धर्म का गौरव आदि पचासो या सैंकडो ध्येय मनुष्य सामाजिक सन्दर्भ मे अपनाता है और उनके लिए जीवन न्योछावर करने को तैयार हो जाता है।

इस तरह पुरुषार्थ करने की, प्रतिकूलता के सामने जूझने की वृत्ति मनुष्यो मे सर्वत्र पायी जाती है। फ्रायड आदि कई वैज्ञानिको का मानना था कि यह आक्रामक वृत्ति का ही सुसस्कृत (सब्लिमेटेड) रूप है। यानी दूसरो से लडने-झगडने की वृत्ति ही सयत होकर तथा लक्ष्य-परिवर्तन करके बाधा विघ्नो के सामने जूझने के रूप मे प्रकट होती है। आजकल मनोविज्ञान मे अक्सर 'आक्रामक वृत्ति' (अग्रेसिवनेस) शब्द का उपयोग इसी अर्थ म किया जाता है। अधिक पैदा करने के लिए मेहनत करनेवाला किसान, बाँध बनाकर नदियो को काबू मे करने की कोशिश करनेवाला इजीनियर मरीज की जान बचाने के लिए दिन रात एक करनेवाला वैद्य और कुदरत के रहस्यो को उद्घाटित करने के लिए खोज और प्रयोग करनेवाला वैज्ञानिक भी अपनी अपनी 'आक्रामक वृत्ति' चरिताथ करते हैं ऐसा कहा जाता है।

लेकिन अब प्रयोगों से यह साबित हुआ है कि मनुष्यों मे इस प्रकार पुरुषार्थ करने की एक बुनियादी प्रेरणा ही होती है। उसको एचीवमेंट मोटीवेशन ('साफल्य प्राप्ति की प्रेरणा') के नाम से पहचाना गया है।

जॉर्ज वाशिंगटन का एक मशहूर वचन है, जो उसने अपने बचपन मे अपनी डायरी मे लिखा था 'ए फेन्स इज ए टेंपटेशन टू जंप"—"सामने बाड हो तो वह फाँदकर पार करने को प्रेरित करती है।" असफलता मिली या बाधा आयी तो उसका सामना करने के लिए चित्त विशेष रूप से प्रेरित होता है। इसका रोचक प्रयोग हुआ है। कुछ बच्चो को खिलौनो से कुछ काम करने को दिये गये। इनमे से आधे कामो को उन्होंने पूरा किया, पर बाकी के आधे को पूरा करने से उनको रोक लिया गया। फिर बाद मे उनको खेलने के लिए मौका दिया गया। पर देखा गया कि खेल के बीच मे वे अपने अधूरे कामो को पूरा करने की कोशिश अधिक करते थे। इसी तरह बडो को काम करने दिया

नयी सामर्थ्य प्राप्त करने की आपके बच्चों की
कोशिशों को आप नापसदगी की दृष्टि से देखते हैं ?

गया और कुछ काम अधूरे छोडे गये, तो बाद मे याद करने पर अधूरे काम ही ज्यादा याद आये।

व्यक्तियो मे पुरुषार्थ या पराक्रम म फरक देखने को मिलता ही है। जिन्होंने समाज-सेवा, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कला, दर्शन आदि के क्षेत्रो मे विशेष पराक्रम किया है, उनकी बात छोडिए सामान्य जीवन मे भी अपनी समस्याओ के सामने कोई अधिक पराक्रम करता है, कोई कम, तो और कोई पहले से ही

हार मानकर घुटने टेक देता है। अपने देश मे अक्सर यह शिकायत की जाती है कि सरकारी कर्मचारियों मे काम के प्रति निष्ठा कम होती है। अपनी जिम्मेवारियो को पूरा करने के लिए वे भरसक प्रयत्न नहीं करते। काम हुआ, तो हुआ, नहीं हुआ, तो नहीं हुआ, कागजात दुरुस्त रहे तो ठीक है। कहा जाता है कि वे पैसे के लिए काम करते हैं, उनमे त्याग-भावना या देश-प्रेम नही होता, इसलिए ऐसा होता है।

← या प्रोत्साहित करते हैं ?

पर दूसरे कई देशो म देखने को मिलता है कि सरकारी कर्मचारी कहीं अधिक लगन मे काम करते हैं। जिम्मेवारी पूरी करने के लिए तकलीफ उठाते हैं। उनको तनख्वाह तो भरपूर मिलती है, बल्कि हमारे देश की तुलना म ज्यादा मिलती है। अपने यहाँ भी ज्यादा तनख्वाह देकर देखा गया है। पर ज्यादा तनख्वाह से लगन या पुरुषार्थ बढता है, ऐसा दीखता नही। असल म देश-देश के बीच भी पराक्रम-वृत्ति की मात्रा मे फरक होता है। एक देश से दूसरे देश की पराक्रम-वृत्ति का औसत स्तर ऊँचा-नीचा होता है। समाज की

रीति-नीति और श्रद्धाएँ परिवार मे बच्चो की परवरिश के तरीके शिक्षण-पद्धति आदि पर यह निर्भर है ।

प्रोत्साहन का परिणाम

इन दिनो दुनिया के कई पिछड़ हुए राष्ट्र अपनी तरक्की के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। उनको बाहर से भी तरह-तरह की मदद मिल रही है। पर सब राष्ट्रो मे प्रयत्न का स्तर एक सा नही है। कही देशवासी ज्यादा बुद्धि और

मेहनत लगाकर आगे बढ रहे हैं, तो कहीं पुरुषार्थ की कमी है। बाहर से मदद जितनी मिल सकती है मिल जाय, हम अपनी अँगुली नहीं हिलायेंगे, इस प्रकार की भिखारी वृत्ति भी कई जगह लोगो मे देखने को मिलती है। तो, इस प्रकार यह एक बहुत बडी और व्यापक समस्या है। तफसील से इसकी छानबीन मे यहाँ उतरना सम्भव नही है। व्यक्तियो की मानसिक विशेषताओ के अलावा बाहर की सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक सन्दर्भ की परिस्थिति के कारण भी लोगो मे पराक्रम-वृत्ति के प्रस्फुटन मे बाधा आती है।

पराक्रम-वृत्ति को जाँचने के तरीके भी सोचे गये है, जिससे किसी व्यक्ति मे उसके प्रमाण का पता लग सके। किसी जिम्मेदारी के स्थान के लिए मनुष्य को चुनना हो, जिसमे पुरुषार्थ, अभिक्रम आदि के गुण जरूरी हो, तो इन तरीको के द्वारा उम्मीदवारो मे पराक्रम-वृत्ति का पता लगाकर योग्य व्यक्ति चुना जा सकता है। आजकल फौजो मे अफसर चुनने के लिए, व्यापारी सस्था या बडे उद्योगो मे सचालक चुनने के लिए इस प्रकार की जाँचों का उपयोग दूसरे देशो में काफी व्यापक पैमाने पर हो रहा है।

यह वृत्ति ही व्यक्ति तथा समाज के सभी प्रकार के विकास और अग्रगति का उद्गम-स्थल है। सर्वोदय-आन्दोलन मे हम 'जन-शक्ति' की बात करते हैं, तो जनता मे इसी वृत्ति का सामूहिक विकास हमारा ध्येय होता है। इसलिए बचपन से इस वृत्ति के विकास के लिए पर्याप्त अवसर तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। लेकिन अपने देश मे अक्सर उल्टा ही होता है, खास करके मध्यम-वर्ग में। "उधर मत जाओ, गिरोगे।", "मत दौडो", "उसको हाथ मत लगाओ", "चुप बैठो"—इस प्रकार के निषेधो से बच्चों का जीवन घिरा हुआ होता है। नदी या तालाब मे तरने, पेड पर चढने, धूप मे खेलने की मनाही होती है। इस तरह उनकी पराक्रम-वृत्ति बचपन मे ही कुचल दी जाती है।

इसके मुख्यतया तीन प्रकार के परिणाम होते हैं। एक तो यह कि बच्चे दब्बू और डरपोक बन जाते हैं। फिर उनम इस वृत्ति की विकृति चुगलखोरी, गुटबाजी आदि के रूप मे प्रकट होती है। दूसरा परिणाम यह होता है कि बच्चे बगावत करते हैं। कुछ लडके, और कभी कभी लडकियाँ भी, ऊधमी, अबाध्य, दुःसाहसी निकलते हैं। यह बगावत प्राणशक्ति की स्वस्थ प्रतिक्रिया है। इन्हीमे जान होती है और आगे चलकर ऐसो से ही समाज को कुछ लाभ मिलने की आशा रखी जा सकती है। तीसरे प्रकार में, बच्चे ऊपर-ऊपर से विधि निषेधो का पालन करते हैं, परन्तु पालको से छिपाकर मनमानी करते हैं। इस तरह वे अपना मार्ग बना लेते हैं पर इसमे खतरा होता है। मार्गदर्शन के अभाव मे

बड़ी गलतियाँ करने की सम्भावना होती है। बच्चों को पराक्रम करने का मौका देना चाहिए, फिर उसके खतरों से आगाह भी कर देना चाहिए।

एक लड़का तैरना सीखना चाहता है। उसके पालक उसका विरोध करते हैं, तो हो सकता है, वह लुक छिपकर तैरने जाय और किसी दुर्घटना का शिकार हो जाय। बेहतर यही है कि उसे तैरना सीखने मे मदद की जाय और साथ-साथ उसमे किस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिए, इसकी भी जानकारी दी जाय। इस तरह से यह अधिक सम्भव है कि पालकों पर उसका विश्वास बना रहेगा और उनकी सलाह लेने के लिए उसकी अधिक तैयारी रहेगी।

हमने आक्रामक वृत्ति से चर्चा शुरू की थी। पराक्रम-वृत्ति आक्रामक वृत्ति का सुधरा हुआ स्वरूप है, इस धारणा से लेकर पराक्रम की स्वतंत्र वृत्ति को मान्यता देने तक हम पहुँचे। अब इससे भी आगे की बात मानने का कारण भी है और वह यह कि लड़ाई-झगड़े की वृत्ति अलग मूलभूत वृत्ति नही है, बल्कि पराक्रम या पुरुषार्थ का ही एक विशिष्ट या विकृत रूप है।

एरिक फ्रम ने इसका अच्छा विवेचन किया है। उनका कहना है कि मनुष्य मे एक 'श्रेष्ठत्व-लाभ की वृत्ति' होती है। इसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है :

"मनुष्य का बच्चा जन्म से असहाय होता है, दूसरों पर निर्भर रहता है। इसलिए उसमे इस असहायता से छुटकारा पाने की प्रेरणा होती है। फिर आगे चलकर कुदरत की शक्तियों के सामने वह अपने को असहाय पाता है, तो कुदरत को जीतकर उस असहायता से अपने को मुक्त करने की, कुदरत की शक्तियों पर अपना 'श्रेष्ठत्व' साबित करने की प्रेरणा होती है।"

अपनी शारीरिक और बौद्धिक योग्यता बढ़ाकर वह बचपन की असहायता से मुक्त होता है। कुदरत के नियमो को जानकर तथा अपनी कला और कारीगरी के द्वारा वह कुदरत पर श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है, करता है। किसान खेती से अन्न उपजाता है, तो उसमे कुदरत पर उसकी विजय होती है। इञ्जीनियर बाँध बनाता है, तो उसी रूप में अपनी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है।

जो बात कुदरत के बारे मे है, वही मनुष्य-समाज मे भी है। मनुष्य अपने समाज मे अपनी समझ और सूझ के द्वारा बेहतर मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने मे मदद करके, अपने तकनीकी ज्ञान के द्वारा समाज को भौतिक कठिनाइयो से मुक्त करके तथा अपनी कलाकृतियो तथा दूसरी सास्कृतिक सृष्टियो के द्वारा समाज के आन्तरिक जीवन को समृद्ध करके अपना श्रेष्ठत्व साबित कर सकता है।

लेकिन जहाँ मनुष्य मे इस प्रकार सृजनशीलता के द्वारा या ज्ञान के द्वारा अपना श्रेष्ठत्व साबित करने की सूझ नही होती, वहाँ वह विध्वस के द्वारा उसे

जाहिर करने की कोशिश करता है। 'मैं बना नही सकता हूँ, तो बिगाड तो सकता हूँ।' 'फ्रम' के अनुसार चगेज खाँ जैसे विध्वसको की वृत्ति इसी प्रकार

सस्कृति और विकृति

एक को बनाने मे पुरषार्थ का अनुभव होता है, दूसर को तोडने मे।

की थी। लाखो मनुष्यो का कतल करके, सैकडो गाँव और शहरो को जलाकर, इस प्रकार के मनुष्य अपना श्रेष्ठत्व जाहिर करना चाहते है। इस दृष्टि से विध्वसक वृत्ति सृजनशीलता की विकृति है।

दूसरे वैज्ञानिको ने भी इस तरह 'मास्टरी' या विजय-लाभ की वृत्ति का स्वतत्र अस्तित्व माना है। बोनर ने विवेचन किया है कि इसके मुख्य चार पहलू हैं। जानने की वृत्ति या कुतूहल को वह इसका अश मानते हैं। कुतूहल या एषणा को हम अलग मानें या श्रेष्ठत्व-लाभ या विजय लाभ का अश मानें, यह विचार गौण है, लेकिन प्रयोग से साबित हुआ है कि यह वृत्ति मनुष्येतर प्राणियो मे भी होती है। चूहो को भूलभुलैया मे डालकर उन पर मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया जाता है। खाद्य की खोज मे वे कितनी जल्दी उसका मार्ग निकाल सकते हैं, इसका पता लगाया जाता है। तो कई बार बिना खाद्य के आकर्षण के ही ये चूहे भूलभुलैया मे घूम-फिरकर उसका पता लगाने लगते हैं। बन्दरो मे भी यह वृत्ति जोरदार होती है। ज्ञान से ही विजय प्राप्ति मे मदद मिलती है। दूसरा, वे मानते हैं कि मनुष्य मे अपनी अन्दरूनी शक्ति तथा सम्भावनाओ का विकास करके अपने 'अपनापन' को मूर्त-स्वरूप देने की प्रेरणा होती है। श्रेष्ठत्व या विजय-लाभ का यह भी एक पहलू है। इसमे मनुष्य अपनी अन्दरूनी शक्तियो पर विजय प्राप्त करता है। इसकी अधिक चर्चा हम आगे करेंगे।

तीसरा, नेतृत्व करने, दूसरो पर प्रभाव जमाने की प्रेरणा को भी वे इसका एक रूप मानते हैं तथा अन्तिम है सृजनशीलता।

इसके अलावा 'बोनर' तथा दूसरों ने 'स्टेटस' या प्रतिष्ठा की भी एक

नीड या हाजत गिनायी है। धन के जरिये, जातिगत श्रेष्ठता का प्रतिपादन करके, विद्या की श्रेष्ठता से सत्ता का पद पाकर, और इसी तरह के तरीको से समाज मे अपनी प्रतिष्ठा या बडप्पन जतलाने की कोशिशो स हम सब परिचित हैं।

हम देख सकते है कि यद्यपि फ्रम तथा बोनर के विश्लेषणो मे कुछ फरक है फिर भी दोनो ने एक ही चीज की ओर इशारा किया है। बोनर आदि की प्रतिष्ठा (स्टटस) भी फ्रम के श्रेष्ठत्व लाभ म आ जाती है।

जैसे दूसरी वृत्ति या प्रेरणाओ के चरितार्थ होन का या काम करने का ढग उस उस समाज की परम्परा या रीति-नीति के अनुसार निर्धारित होता है, वैसे इस वृत्ति के मामले म भी होता है। भिन भिन समाज मे पराक्रम या श्रेष्ठत्व लाभ के अलग अलग तरीके प्रचलित हुए है। परिवार की परम्परा से बच्चे सीखते हैं पर पारिवारिक परम्परा भी सामान्यतया आसपास के समाज के अनुसार बनती है। मारवाडी कोमटी या चेट्टीयार परिवार के लडके को व्यापार मे ही पराक्रम करने का सूझगा। नपाली कोडगी या पजाबी को अवसर फौजी पराक्रम ही सूझन की सम्भावना है। इस तरह एक एक समाज की या जाति की अमुक अमुक परम्पराएँ बन गयी हैं। अब आर्थिक राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के बदलने के कारण इन सबमे भी परिवतन हो रहा है। परन्तु पुराना ढाँचा आज भी देखने को मिलता है और विशेष रूप से आदिवासी समाजो मे।

अध्याय के शुरू मे हमने ओजिब्वा जाति की युद्ध प्रथा का तथा दूसरी जातियो के मुण्ड शिकार का उल्लेख किया था। हमने देखा कि उनके इन प्रयासो मे आत्मरक्षा धन प्राप्ति या बदला आदि की आकाक्षा गौण होती है। जो लडाई म या मुण्ड शिकार मे भाग लेते है, समाज मे उनकी प्रतिष्ठा बढती है गौरव होता है विशेषत अभियान के नेता का। नागाओ मे तो हालत यह थी कि कोई जवान एक आध मुण्ड शिकार करके नही लाता है तो उससे शादी करने के लिए कोई लडकी तैयार ही नही होती थी। स्पष्ट है कि इनमे पराक्रम करने के प्रतिष्ठा तथा गौरव प्राप्त करने के ये परम्परागत तरीके हैं। जसे किसी अग्रेज या अमेरिकन को सूझता है कि चलो एक टोली बनाकर उत्तरी ध्रुव या एवरेस्ट की चोटी पर सैर कर आयें ओजिब्वा लोगो की वह विजय यात्रा वैसी ही होती है।

कनाडा म क्वाकीउटल्ल नाम की दूसरी एक जाति है। उसमे दूसरो पर श्रेष्ठत्व जतलाने का तरीका दूसरा होता है। सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए उनमे आपस मे जबरदस्त प्रतियोगिता चलती है पर शातिपूर्ण ढग से। बीच-बीच मे

वे लोग भोज का उत्सव करते हैं, इसे पोट्लाच कहा जाता है। इन अवसरों पर खिलाने-पिलाने में तो दूसरों से अधिक खर्च करके बड़प्पन दिखाया जाता है, उसके अलावा कम्बल, ताँबे के बरतन तथा दूसरी कीमती चीजें नष्ट भी कर दी जाती हैं। जो जितना ज्यादा बरबाद कर सके, वह उतना बड़ा ! इस तरह की प्रतियोगिता में किसीकी हार होती है, तो बहुधा वह आत्मघात कर बैठता हैं। अपने देश में ब्याह शादी, श्राद्ध आदि में दीखनेवाले सर्चीलेपन में भी इसी चीज की झलक मिलती है।

आरापेश जाति के बारे में पिछले अध्याय में जिक्र आया है। यह बिलकुल शांतिप्रिय जाति है। इसमें आपस में लड़ाई वगैरह होती ही नहीं। पर अलग-अलग गाँवों के व्यक्तियों के बीच में प्रतियोगिता की छूट रहती है। दो गाँवों के दो व्यक्ति एक-दूसरे को चुनौती देते हैं कि चलो, शिकार में, अन्न उपजाने में या सूअर पालने में कौन अधिक कर दिखाता है।

ग्रीनलैण्ड की एस्कीमो जाति में लड़ाई की परम्परा है ही नहीं। किसी दूसरे का अपमान करना हो या उससे अपने को श्रेष्ठ साबित करना हो, तो दोनों आमने-सामने खड़े होकर एक-दूसरे का विद्रूप करके गाना गाते हैं। दूसरे लोग दर्शक के तौर पर उपस्थित रहते हैं। फिर वे ही बताते हैं कि किसकी जीत हुई।

सामाजिक या सांस्कृतिक वातावरण के कारण किस प्रकार इस वृत्ति का स्वरूप बनता है, इसका अच्छा उदाहरण अमेरिका की कोमाचे जाति है। अठारहवीं सदी में यह बड़ी शांत और घुमक्कड़ जाति थी। यूरोप के लोग अमेरिका में पहुँचे, तो उनके जरिये उन्नीसवीं सदी में घोड़े और बन्दूक उनके पास पहुँचे। इनके सहारे दूर-दूर जाकर लूटमार करने, गाय-बैल चुराने में सहूलियत हुई और इस प्रकार के उपद्रव करने के लिए आसपास बसे हुए यूरोपियन लोगों ने उनको प्रोत्साहन दिया। चोरी के गाय-बैल और गुलाम बनाने के लिए पकड़े गये कैदी आदि को ये इन यूरोपियनों के हाथों बेचते थे। इस तरह ये लोग उस प्रदेश के लिए आतंक बन गये। बाद में उनके रहने के लिए अमेरिकी सरकार ने एक विशेष क्षेत्र निश्चित कर दिया। कुछ दिनों बाद परिस्थिति फिर बदली और लूटमार का कोई अवसर या लाभ नहीं रहा, तब ये लोग फिर से धीरे-धीरे शांत स्वभाव के बन गये।

तो इस तरह हम देखते हैं कि श्रेष्ठत्व-लाभ के तरीके अलग अलग समाजों की परम्पराओं के अनुसार अलग अलग होते हैं। और जो चीज परम्परा के कारण बनती है, परम्परा को बदलकर उस चीज को बदला भी जा सकता है।

पराक्रम के और प्रतिष्ठा प्राप्त करने से जिन तरीकों से अशान्ति पैदा

होती है, दूसरो को त्रास होता है, अपमान होता है, समाज मे संघर्ष पैदा होता है, उनको टाला जा सकता है, जिनमे समाज को लाभ ही हो, परस्पर-सौमनस्य बढे, उस प्रकार के ध्येय अपनाये जा सकते हैं।

आरापेश समाज मे हमने देखा कि पैदावार बढाने मे ही वहाँ प्रतियोगिता होती है। इनमे तथा जुनी जाति मे धन या सत्ता से प्रतिष्ठा प्राप्त करने का रिवाज नही है। सत्ता के पद पर कोई स्वेच्छा से नहीं जाता, लोग किसीको मनाकर बैठाते हैं, यह हमने देखा है विनय को ही वहाँ महत्त्व दिया जाता है। तो, जो अधिक विनयशील हो, उसकी ज्यादा प्रतिष्ठा उस समाज मे होती है। इस तरह दूसरो को दबाकर वहाँ कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नही करता।

इस तरह अपने देश मे तथा दुनिया के कई भागो मे धन कमाने मे प्रतिष्ठा मानी जाती है। पर आरापेशो मे वैसा नही है। वहाँ कोई जानवर मारता है तो दूसरो को ही दे देता है, खुद नहीं खाता, इसीमे प्रतिष्ठा मानी जाती है। अपना मारा हुआ शिकार जो खाता है, वह समाज का नियम भग करनेवाला समझा जाता है।

अपने देश मे यह भी परम्परा थी और है कि धन कमाकर उससे कुआँ, तालाब, धर्मशाला आदि बनवानी चाहिए। इस तरह समाज का कल्याण करने मे प्रतिष्ठा मानी जाती थी। आधुनिक सन्दर्भ मे भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान आदि के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का मार्ग विनोबाजी ने बताया है। यह परम्परा चल पडी, तो प्रतिष्ठा के ये कल्याणकारी मार्ग होंगे।

विद्या से, साहित्य, कला, शिल्प आदि की कृतियो से, इञ्जीनियरिंग के निर्माण-कार्यों से, उद्योग-धन्धों के सगठन से, बिमारियो के निराकरण के प्रयत्न से, निसर्ग के रहस्यो के शोध से तथा और सैंकडो-हजारो तरीको से मनुष्य अपनी श्रेष्ठत्व-वृत्ति चरितार्थ कर सकता है, विजय और प्रतिष्ठा का अनुभव प्राप्त कर सकता है, जो तरीके कल्याणकारी, शान्तिमय हों। इनकी सम्भावनाएँ आज चारो ओर खुल गयी हैं।

पर सवाल होगा कि अपने ध्येय के लिए प्रयत्न करते हुए मनुष्य को बाधाओं का सामना करना पडता है, एक के साथ दूसरे के ध्येय का विरोध होता है। इस तरह निष्फलता का अनुभव होता है, और जहाँ निष्फलता आयी, वहाँ गुस्सा भी आता है। मनुष्य स्वभाव मे गुस्सा तो है ही। इसलिए लडाई-झगडे भी जरूर पैदा होते रहेंगे। उनका अन्त कहाँ होगा ?

[''मनोजगत् की सैर' पुस्तक से—प्रकाशक : सर्व सेवा सघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१, मूल्य ६ रु०]

विद्यालय-योजना द्वारा शिक्षा में क्रान्ति

जे० पी० नायक

विद्यालय-योजना क्यों ?

विद्यालय-योजना का विचार नया है अथवा पुराना इससे हम कोई लाभ न होगा। हमारे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या यह हमारी आज की परिस्थिति के लिए आवश्यक तथा उपयुक्त है अथवा नही। यदि हम सभ्यता के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हम ज्ञात होगा कि जहाँ एक ओर जीवन प्रतिक्षण बृहत् एव व्यापक होता जा रहा है साथ-ही-साथ वह, जो भी सूक्ष्म और सूक्ष्मतर है, उसकी भी अधिकाधिक चिन्ता करने मे व्यस्त है। मनुष्य चन्द्रमा मे अवतरित होने के लिए अग्रसर है और इस प्रकार यह सम्पूर्ण सृष्टि उसकी व्यापक दृष्टि के अन्तगत है। साथ ही वह परमाणु पर खोज करने मे भी सलग्न है। इस प्रकार महानतम से लघुत्तम तक होनेवाली इस समस्त मानव प्रक्रिया का नाम ही सभ्यता की प्रगति है। यही वास्तव मे ईश्वर के समीप तक पहुँचने का प्रयास है जिसे उपनिषदो ने 'अणोरणीयान महतो महीयान्' कहा है। ईश्वरीय सत्ता का सच्चा ज्ञान हमे तभी होता है जब हम अपने 'स्व' का विस्तार करते-करते अनत मे लीन हो जाते हैं तथा दूसरी ओर लघु-से-लघु तथा नगण्य-से-नगण्य के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करते हैं।

शिक्षा को भी कुछ ऐसा ही उत्तरदायित्व निभाना पडता है। एक ओर तो हमारी शिक्षा की दृष्टि इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वह अपने मे समस्त ब्रह्माण्ड तथा इस विश्व मे मनुष्य के शातिपूर्ण सह अस्तित्व के पुनर्शिक्षण को अपने मे समेट ले तथा दूसरी ओर उसे इतना सुलभ एव नम्र भी होना पडेगा कि वह प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओ की ओर भी पर्याप्त ध्यान दे सके।

इस व्यापक दर्शन को ध्यान मे रखते हुए मैं यह कहूँगा कि शैक्षिक योजना की समस्त प्रक्रिया भी एक वाक्य में रखी जा सकती है। एक ओर शैक्षिक योजना मे समग्र, अपितु सम्पूर्ण विश्व का समावेश होना चाहिए दूसरी ओर इसके अन्तर्गत प्रत्येक सस्था अपने म एक इकाई मानी जानी चाहिए। इतना ही नही, इसी रूप मे प्रत्येक संस्था के लिए प्रत्येक बालक अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओ एव महत्वाकाक्षाओ के साथ एक इकाई है। यदि हम इन दोनो कार्यक्रमो का समान रूप से साथ-साथ विकास करें तो निश्चय ही हम अपने लक्ष्य प्राप्ति मे सफल होंगे।

विद्यालय-योजनाएं कैसे तैयार की जायें ?

यह मानते हुए कि हमे विद्यालय योजनाएँ बनानी चाहिए, प्रश्न उठता है कि हम उनका प्रारम्भ कैसे करें ? कैसे हम सस्था के स्तर पर योजना बनायें ? मैं समस्या के इस पहलू की गहराई मे नही जाना चाहता, किन्तु मैं इस सम्बन्ध मे कुछ सामान्य पर व्यापक निरीक्षण अवश्य करूँगा ।

मेरा पहला मत है कि राष्ट्रीय अथवा राज्य की योजनाओ से विद्यालय की योजना का कोई विरोध अथवा मतभेद नही है । उन सबको एक-दूसरे से समझौता करना है । उदाहरणार्थ राष्ट्रीय योजना प्रत्येक बात को तय नही करती । और यदि वह ऐसा करती है तो वह पुन· तानाशाही योजना हो जायगी । अत राष्ट्रीय योजना को केवल राष्ट्रीय महत्त्व के कुछ कार्यक्रमो का निर्धारण करना चाहिए और राज्यो को पर्याप्त मात्रा मे इस बात की छूट देनी चाहिए कि वे अपने प्रदेशो मे प्रचलित परिस्थितियो के प्रकाश मे अपनी-अपनी योजनाएँ बनायें । राष्ट्रीय योजना के चौखटे के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य अपनी योजना अधिक विशिष्ट और विस्तृत बनायेगा, पर अपनी पारी के समय राज्यो को भी यह बात स्वय निश्चित नही करनी चाहिए, बल्कि इस बात की पर्याप्त छूट देनी चाहिए कि लोग जिला स्तर पर अपने लिए स्वय योजना बनायें । इसी प्रकार जिला-योजनाएँ भी राज्य-योजना के व्यापक चौखटे के अन्तर्गत बनायी जायेंगी । किन्तु जिला-स्तर पर भी हमे व्यक्तिगत सस्थाओं को पर्याप्त स्वतत्रता और छूट देनी चाहिए, ताकि वे अपने हित मे विशिष्ट कार्यक्रमो की योजनाएँ बना सकें और उन्हे लागू कर सकें । इसी प्रकार सस्थागत योजना मे भी प्रत्येक शिक्षक के लिए कुछ-न-कुछ स्वतत्रता सुलभ होनी चाहिए, ताकि वह अपने लिए भी कुछ योजना बना सके । यह क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा । यदि चुनाव की यह स्वतत्रता न हो तो किसी योजना का निर्माण हो ही नही सकता । पर क्योकि चारो स्तरो पर विषयो के चुनाव की यह सुविधा है, राष्ट्रीय, प्रदेशीय, मडलीय तथा सस्थानीय स्तर पर एक सुबद्ध योजना प्रणाली होनी चाहिए । पर आप जब भी किसी स्तर पर योजना बनायें, आप कुछ प्रमुख सिद्धान्तो का अनुसरण करें और दूसरे स्तर पर कार्य करनेवालो के लिए पर्याप्त स्वतत्रता तथा छूट दें, ताकि वे अपनी सुविधा और आवश्यकता के अनुसार योजना बनायें ।

इसी प्रकार जो योजना किसी एक स्तर के लिए बनायी जाय उसके अन्तर्गत उससे उच्च स्तर पर बनी हुई सभी योजनाओ को अपने कार्यक्रम मे सम्मिलित करना चाहिए और उन्हे लागू करने का प्रयत्न करना चाहिए । उदाहरण के

लिए सस्थागत योजना किसी-न किसी रुप मे राष्ट्रीय राज्य तथा जिला-योजना को कार्यान्वित करने का प्रयास करेगी। योजना निर्माण इस प्रकार आदान प्रदान का कार्य है। विद्यालय जिन विचारो को जन्म देंगे और जो भी छू लेंगे वे जिले तक पहुँचेंगी जिलो स राज्य-स्तर तक और अन्त म राष्ट्रीय स्तर तक, ठीक उसी प्रकार जैसे राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित किये गये कार्यक्रम और धारणाएँ, राज्य जिला तथा विद्यालय-स्तर तक पहुँचेंगी। इस प्रकार विचारो के आरोहावरोह की यह सतत प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए तभी योजना निर्माण में कोई गुणात्मक वृद्धि सम्भव है। इस प्रकार उच्च स्तरा पर होनेवाले योजना निर्माण के काम म तथा विद्यालय-योजना निर्माण के काम मे किसी प्रकार का विरोध नही है।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहूँगा वह यह कि हम अपनी विद्यालय-योजना अपने वर्तमान साधनों के उत्तम प्रयोग को ध्यान मे रखकर ही करनी चाहिए। यो तो प्रत्येक सस्था को अतिरिक्त साधनो की आवश्यकता होती है और यदि हम अपना पूरा ध्यान केवल उन अतिरिक्त साधनो की प्राप्ति की ओर ही केंद्रित कर दें जिन्हे हम चाहते हैं तो हमारी विद्यालय-योजना तो केवल माँगो का प्रयत्न मात्र बनकर रह जायेगी। इन माँगो को पूरा करने के लिए पैसा तो मिलेगा नही और उसके अभाव में हमे केवल निराशा और कुण्ठा का शिकार बनना पडेगा। इसका बहुत अच्छा उदाहरण हमारी चतुर्थ योजना है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह निश्चय किया कि प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने लिए एक योजना बनाये और विश्वविद्यालयो से ऐसा करने की प्राथना भी की। स्वभावत प्रत्येक विश्वविद्यालय ने यह सोचा कि वह जितनी विशद योजना बना सके, बनाये और इस प्रकार बडी-बडी योजनाए बनाने की एक होड-सी लग गयी। ऐसी सब योजनाओ का कुल योग मिलाकर लगभग ३०० करोड रुपये आया, यद्यपि यह अनुमान वास्तविक राशि का एक साधारण अकन ही समझिए। अन्यथा यह सरलता से तीन हजार करोड तक जा सकता था जब कि अनुदान आयोग ने केवल ५८ करोड रुपया इस काय के लिए नियत किया था। इससे बडी निराशा हुई। आन्ध्रप्रदेश के शिक्षा निदेशक न एक छोटे-से परीक्षण के रुप मे यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि यदि राज्य के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय के लिए एक पर्याप्त भवन देने की व्यवस्था की जाय तो कितना व्यय बैठगा। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि केवल माध्यमिक स्कूलो की इमारतो का प्रबन्ध करने पर १० करोड रुपये का खर्च लगेगा तथा प्राइमरी स्कूलो की इमारतो के लिए उन्हें ३० करोड रुपये की आवश्यकता पडेगी।

यदि हम अतिरिक्त साधनो की राशि के आधार पर योजना बनायें तो हमे इस प्रकार का अनुभव प्राप्त होता है। अत यदि हम विद्यालयो से केवल योजना बनाने को कहें और यह न बतायें कि उन्हे क्या और कैसी योजना बनानी है तो स्वाभाविक है कि वे लम्बी-लम्बी मांगें प्रस्तुत करेंगे जिनका योग आकाश को छूनेवाला होगा। तब हमे विवश होकर उनसे कहना पड़ेगा कि हमारे पास धन नही है और यह उत्तर पाकर उनका विश्वास ही योजना निर्माण के कार्य से उठ जायगा। यह एक ऐसी स्थिति है जिससे बचने के लिए हमे सदैव सावधान रहना चाहिए।

मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि अतिरिक्त साधनो की आवश्यकता नहीं है। उनकी आवश्यकता है और हमे उन्हें सुलभ बनाने का पूर्ण प्रयत्न भी करना है। किन्तु विद्यालय-योजना बनाते समय हमे प्रत्येक सस्था से यह प्रश्न करना चाहिए—'आपके पास जो उपलब्ध साधन हैं, अथवा यदि उनमे थोडी-बहुत वृद्धि कर दी जाय, तो अधिक परिश्रम और उत्तम योजना के बल पर आप अपने विद्यालय मे क्या उन्नति कर सकते हैं?' मैं नहीं समझता कि कोई भी व्यक्ति अधिक परिश्रम अथवा अच्छी और व्यवस्थित योजना से बच सकता है। शिक्षा अपने मूल रूप मे परिश्रमगत विस्तार की प्रक्रिया है और शिक्षको और छात्रो को अपनी अतिम सीमा तक परिश्रम करना पडता है। यदि वे इस परिश्रम और शक्ति के अतिम बिन्दु तक काम करने से मुँह मोडते हैं तो शिक्षा आरभ ही नही हो सकती। आप भले ही अच्छे-से अच्छे उपकरणो और भवनो का प्रबन्ध कर दें पर यदि अतिम कार्यक्षमता तक काम करने की भावना नही है तो किसी भी अर्थों मे शिक्षा प्राप्त न होगी।

दुर्भाग्यवश यह एक ऐसा विचार है जिसकी लोगो ने उचित सराहना नही की। मुझ अपनी युवावस्था का समय स्मरण है। मैं एक गरीब विद्यार्थी था और अपनी आजीविका के लिए मुझ ट्यूशन करने पडते थे। मेरे इलाके के एक जागीरदार ने सोचा कि व अपने लडके के लिए मुझे अग्रेजी शिक्षक के रूप म घर पर लगा लें। उनका बालक ९ साल का था और अग्रेजी सीखना चाहता था। सौदा अच्छा था। उन दिनो जब मेरे खाने पीने का मासिक व्यय ३ रु० ५० पैसे था। मुझ प्रतिदिन एक घण्टा अग्रेजी पढाने के लिए १२५ रु० मासिक का प्रस्ताव आया था। साथ ही-साथ मेरे घर से जागीरदार साहब के बगले तक आने-जाने के लिए मोटर कार का प्रबन्ध अलग था। अत मैंने स्वभावत यह राजसी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। १५ दिनो के बाद जागीरदार साहब ने यह जानना चाहा कि उनका चिरजीव कैसी प्रगति कर रहा है। अत उन्होने

मुझे बुला भेजा। मैंने कहा, 'आपका बालक चतुर तो है, पर सुस्त है। मैंने उसे गृहकार्य दिया है जो वह नही करता। मैंने उससे अग्रेजी की वर्तनी याद करने के लिए कहा, उसने वह याद नहीं की।' जागीरदार को बडा आश्चर्य हुआ। वे बोले—'मास्टर साहब, यदि मेरे लडके को ही वर्तनी [Spelling] याद करनी पडी, तो फिर आपको लगाने का लाभ ही क्या हुआ ?' यही सबसे बडी समस्या है। मैं समझता हूँ, हममे से बहुतेरे लोग आज भी उसी मानसिक स्थिति मे हैं जिसमे कि जागीरदार साहब थे। शिक्षा के अधिकाश क्षेत्रो मे विद्यार्थी सीखना नही चाहता और शिक्षक सिखाना नहीं चाहते और इन दो आधारभूत तथ्यो के अभाव मे हम भवन, पद्धतियाँ, सामग्री तथा वेतन-मान-वृद्धि की योजनाएँ बनाते जा रहे हैं। मैं जिस बात पर पुनः बल देना चाहता हूँ वह यह कि शिक्षा अपने मूल मे परिश्रम के विस्तार की प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत शिक्षको और छात्रो, दोनो को अधिकाधिक परिश्रम करना है। हमे प्रत्येक छात्र को प्रतिदिन ८ से १० घटे तक किसी सार्थक और चुनौती देनेवाले कार्य मे लगाना है और यह कार्य सप्ताह मे सात दिन तथा वर्ष मे ५२ सप्ताह इसी प्रकार चलाना है। यह एक बहुत बडी चुनौती है, और इसका सामना केवल वाह्य अनुशासन के बल पर नहीं हो सकता। हमे एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करनी है जिसमे ज्ञान के प्रति, समाज-सेवा के प्रति तथा कडे परिश्रम के प्रति हम आस्था प्रकट करें और उसका निर्वाह करने के लिए कटिबद्ध हो जायें। मेरा मत है कि इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालय-योजना का प्रयोग साधन के रूप मे होना चाहिए।

यहाँ पर दृष्टान्त-रूप मे मेरे मित्र श्री गोवर्धनलाल बख्शी शिक्षा-निदेशक पजाब द्वारा किये हुए कार्य का उल्लेख सार्थक होगा। वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने विद्यालय-योजना की धारणा को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने देखा कि उनके यहाँ विद्यालय मे एक गतिरोध-सा आ गया है और परीक्षाफल भी केवल ५० प्रतिशत है। उन्होंने अपने शिक्षको की सभा बुलायी और उनसे पूछा कि परीक्षाफल का प्रतिशत बढाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है। केवल एक ही निर्णय लिया जा सका। छात्रो के अभिभावक नगर मे आसपास ही रहते थे। अत. यह निश्चय किया गया कि हर दूसरे माह प्रत्येक छात्र की प्रगति-सूचना उसके अभिभावक के पास भेज दी जाय। शिक्षको ने कहा, "यदि अभिभावको और माता-पिता ने अपने बालको को हमें सौंपा है, तो हमारा कर्तव्य है कि हम कम-से-कम हर दूसरे माह उन्हे यह बतला दें कि उनके लडके अथवा लडकियाँ कैसा काम कर रहे हैं ?' पर यह कार्य सरल कार्य न

था। विचार करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि इस कार्य को सुचारुरूप से करना है तो प्रत्येक छात्र के लिखित कार्य का सही मूल्यांकन होगा। साथ ही, क्योंकि प्रत्येक बालक के साथ अनेक शिक्षकों का सम्बन्ध है, उन्हें नियमित रूप से मिलना होगा और अपने-अपने विषयों में छात्र की प्रगति-सम्बन्धी विचारों का आदान-प्रदान होगा। परीक्षण के रूप में एक वर्ष तक इस कार्य को किया गया। इस कार्य में न तो कोई अतिरिक्त व्यय ही हुआ और न अतिरिक्त शिक्षक की ही आवश्यकता हुई। प्रश्न केवल नेतृत्व प्रदान करने तथा मार्ग-दर्शन का था। परिणाम क्या हुआ? गतिरोध एकदम निचले बिन्दु पर गया और परीक्षा में उत्तीर्ण का प्रतिशत ५० के स्थान पर ८५ तक पहुँच गया। अब यह विचाराधीन है कि इस योजना को पूरे चण्डीगढ़ में लागू कर दिया जाय। चण्डीगढ के लिए निर्धारित १४५ लाख रुपये की योजना के अन्तर्गत इस कार्य के लिए केवल २ लाख रुपये की व्यवस्था है। इस प्रकार के अनेक ऐसे कार्यक्रम हैं जिन पर बहुत कम व्यय होता है। केवल मानवीय प्रयत्न तथा उत्तम योजना की आवश्यकता है। एक दरिद्र देश में, जिनमें भारत भी है, लोग बड़े कुचक्र में फँस जाते हैं। धनहीनता के कारण वे शिक्षा में सुधार नहीं कर पाते, और दरिद्र रहते हैं; क्योंकि शिक्षा में उन्नति और सुधार नहीं होता। इस कुचक्र को केवल एक ही प्रकार से तोड़ा जा सकता है, अर्थात् मानवीय प्रयत्न से। यदि हम ढंग से योजनाएँ बनायें, परिश्रम करें और उपलब्ध साधनों का उत्तम-से-उत्तम उपयोग करें तो हम इस कुचक्र को काटकर इससे बाहर निकल सकते हैं। यदि हम केवल पैसे के द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं को हल करना चाहते हैं तो मेरी यह निश्चित धारणा है कि वे कभी हल नहीं किये जा सकते। हमें संभवतः अपनी दरिद्रता का अनुमान नहीं है, और न ही हम यह जानते हैं कि हम शिक्षा पर कितना व्यय कर रहे हैं? भारत-वर्ष में शिक्षा के ऊपर होनेवाले सम्पूर्ण खर्च का औसत १६ रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष है, जब कि अमेरिका में वे औसतन प्रतिव्यक्ति, प्रति वर्ष १२०० रुपए केवल शिक्षा पर व्यय करते हैं। यह कल्पनातीत है। एक औसत अमेरिकन लगभग ७० डालर प्रति वर्ष तो केवल सिगरेट पर खर्च कर डालता है जब कि हम ३ डालर से भी कम शिक्षा पर करते हैं। भारतवर्ष में हम जितना शिक्षा पर खर्च करते हैं वह एक सामान्य अमेरिकन स्त्री द्वारा नींद की गोलियों पर किये गये खर्च से भी कम है। आर्थिक प्रगति और दरिद्रता के इस महान् अन्तर के मध्य हम धन के आधार पर अन्य देशों से होड़ ले भी कैसे सकते हैं? पर निश्चय ही हम मानव-प्रयत्न, बुद्धि, अच्छी योजना इन सब बातों में किसी भी

देश से प्रतिस्पर्द्धा कर सकते हैं। यदि हम ऐसा करें तो निश्चय ही हम अपनी विशाल जनसख्या मे पायी जानेवाली बुद्धि एव श्रम का सार्थक एव प्रभावकारी उपयोग कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी उन्नति कर सकते हैं।

किसी भी विद्यालय-योजना का सम्बन्ध इस प्रकार के प्रश्नो से होना चाहिए—'हम शिक्षा मे होनेवाली बरबादी को कैसे रोक सकते हैं ? शिक्षक की प्रगति मे उत्पन्न होनेवाली जडता एव गतिरोध को कैसे कम किया जा सकता है ? हम अपनी उपलब्ध सुविधाओ का अधिक श्रेष्ठ उपयोग कैसे कर सकते हैं ? सुबद्ध विद्यालय-योजनाओ के सैकडो उदाहरण दिये जा सकते है। मैं केवल एक उदाहरण दूँगा—बम्बई नगर के एक विद्यालय का उदाहरण। बम्बई नगर मे मध्यम श्रेणी के परिवारो के लिए आवास की समस्या बडी विकट समस्या है। बम्बई मे ९० प्रतिशत या उससे भी अधिक परिवार केवल एक कमरे मे गुजर करते हैं। एक परिवार का तात्पर्य है माता पिता, माता-पितामह, कभी-कभी चार-पाँच भाई, कभी-कभी परिवार का सबसे बडा भाई जिसका विवाह भी हो चुका है और उसकी पत्नी जो उसके साथ रहती है। हो सकता है उस परिवार मे एक से अधिक सदस्य विवाहित हो और अपनी पत्नियो के साथ रहते हो। ये सबके सब एक ही कमरे मे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसा है बम्बई का जीवन ! भवन तो कई मजिले हैं और बाहर से बडे विशाल और गगनचुम्बी दिखाई पडते हैं, पर एक परिवार को उसमें रहने के लिए जो स्थान प्राप्त है वह एक कबूतर के दरबे से अधिक बडा नहीं ! ऐसे परिवार मे घर पर भला बच्चो के लिए स्थान कहाँ ? उन्हे न बैठने का स्थान है, न पढने का। यदि परिवार गरीब है तो वह छुट्टियो मे भी बालको को कही बाहर नहीं भेज सकते। अस्तु, मेरे मे मित्र प्रधानाध्यापक प्रत्येक वर्ष अपने विद्यालय मे एक ग्रीष्म शिविर का आयोजन करते हैं। यह बडा सरल-सा कार्यक्रम है। ग्रीष्मावकाश मे विद्यालय भवन खाली रहता है। खेल के मैदान भी उपलब्ध रहते हैं। अत पूरे विद्यालय भवन को एक सामूहिक निवास (dormitory) मे बदल देते हैं। प्रत्येक छात्र से यह कह दिया जाता है कि वह खाना खाने के लिए अपने घर जा सकता है, शेष समय वह स्कूल म रहे और अपनी पढाई मे लगाये। इस प्रकार वह वही रहता है, वही सोता है, तथा उन सभी विद्यालय क्रियाओ मे भाग लेता है जो वहाँ उसके लिए आयोजित की जाती हैं। ऐसे अवसरो पर कुछ शिक्षक नियुक्त कर दिये जाते हैं जो उनके लिए स्वाध्याय, निर्देशित अध्ययन तथा मनोरजन का प्रबन्ध करते हैं। छात्र शातिपूर्वक पूरा दिन और रात विद्यालय मे व्यतीत कर सकता है। मैंने इन

शिविरों को देखा है और इनमे रहनेवाले छात्रो की प्रसन्नता को परखा है। निश्चय ही वे अधिक प्रसन्न होते यदि उन्हे महाबलेश्वर अथवा माथेरान जाने का अवसर मिलता। पर वह तो सभव नही। इस प्रकार के शिविरो मे प्रत्येक छात्र पर होनेवाला व्यय ३ या ४ रुपये प्रति वर्ष से अधिक नही। पर इस छोटे-से व्यय मे, छात्र प्रसन्नचित्त अनुभव करते हैं, उनकी पढाई मे प्रगति होती है, तथा विद्यालयों मे उपलब्ध सभी प्रसाधनो का अच्छा उपयोग होता है। अन्य दृष्टात देने की आवश्यकता नही। मेरे कहने का तात्पर्य केवल यह है कि विद्यालय-योजना का वास्तविक उद्देश्य ही उपलब्ध साधनो को अधिकाधिक प्रभावकारी ढग से काम मे लाना है, और भौतिक उपकरणो के अभाव से उत्पन्न होनेवाली कमियो को सुवद्ध योजना तथा अधिक श्रम से दूर करना है। हमारे देश मे प्रत्येक परिस्थिति मे करने के लिए बहुत कुछ है, और देश मे कोई स्थिति इतनी गिरी हुई नहीं है कि उसमे कुछ न किया जा सके। अब अच्छी योजना-निर्माण द्वारा यह पता लगाना, कि अमुक परिस्थिति मे सबसे सुन्दर कार्य क्या हो सकता है, हमारा काम है। योजना-निर्माण के साथ-साथ अधिक मानव-श्रम भी चाहिए। आर्थिक सहायता की अपेक्षा अति अल्प, वरन् नहीं ही, करना चाहिए। विद्यालय-योजना की यह आधारशिला है। हम यह मानकर ही चलना चाहिए कि आर्थिक साधन सीमित हैं और हमे उन्हीके अन्तर्गत बहुत कुछ करना है।

विद्यालय-योजना मे शिक्षक, अभिभावक, छात्र, प्रधानाध्यापक, सभी को भाग लेना चाहिए। मैं देखता हूँ कि हम शिक्षक को स्वतत्रता देने के लिए जब विद्यालय-योजना का निर्माण करते हैं, तो वहाँ भी हमारी अधिकार भावना हमारा साथ नही छोडती। राजस्थान मे कोटा मे आयोजित एक विद्यालय-योजना-गोष्ठी मे भाग ले रहा था और वहां के ग्रामीण क्षेत्र मे स्थित एक विद्यालय के उत्साही प्रधानाध्यापक महोदय अपनी योजना प्रस्तुत कर रहे थे। उन्होने कहना आरम्भ किया, 'मेरा विद्यालय, मेरी योजना, मैंने ऐसा किया आदि। मैं देख रहा था कि क्या वे एक बार भी 'हम' शब्द का प्रयोग करते हैं। किन्तु उन्होंने ऐसा नही किया। वे बडे ही त्यागी शिक्षक थे और उन्होंने अपने विद्यालय के साथ अपना सम्पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लिया था। किन्तु परामर्श के अवसर पर उनमे एक कमी थी। अन्त मे मैंने प्रश्न किया, 'क्या आप यह आवश्यक नही समझते कि अपनी इस योजना की तैयारी के समय आप अपने शिक्षको का भी सहयोग और परामर्श लेते? उन्होंने आश्चर्य से उत्तर दिया, 'मेरे शिक्षक! वे तो सब मेरे विद्यार्थी हैं। वे सब बहुत ही अच्छे हैं और मैं जो कुछ कह देता हूँ उसे सहज रूप से स्वीकार कर लेते हैं।' इस प्रकार आप देखेंगे कि शिक्षको

की मुक्ति और स्वाधीनता के इस कार्यक्रम में भी अधिकार भावना हमारा पीछा नही छोड़ती। हमारा अंतिम उद्देश्य क्या है? छात्र की वैयक्तिक स्वाधीनता! वह उसे कैसे प्राप्त होगी जब तक कि उसके शिक्षक को ही यह प्राप्त नही है। शिक्षक को यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता तब तक प्राप्त नही होगी जब तक उसके प्रधानाध्यापक के दृष्टिकोण में परिवर्तन नही आता। प्रधानाध्यापक के दृष्टिकोण में परिवर्तन नही आ सकता जब तक कि विद्यालय निरीक्षक अथवा शिक्षा-सचालक के दृष्टिकोण म परिवर्तन नही आता। इस प्रकार सारी बात ऊपर तक पहुँचती है। यह दूसरी बात है जिसे हमे स्मरण रखना चाहिए। हम अपनी योजना म हरएक को सम्मिलित करना है।

विद्यालय-योजना को मैं एक आदर्श वाक्य प्रदान करना चाहता हूँ जो हमारे आज के आदर्श वाक्य से भिन्न है। हमारा सामान्य आदर्श वाक्य है—'सफलता नहीं, किन्तु साधारण लक्ष्य अपराध है।' किन्तु हम इस आदर्श का उपयोग गलत ढग से करते हैं। हम कोई महान लक्ष्य चुन लेते हैं और जब हम असफल होते हैं तो हम महान आदर्शों म निहित असफलता का आश्रय लेकर उसका समर्थन करते हैं। हमारी यह बडी दोषपूर्ण नीति है। विद्यालय-योजना मे तो यह अत्यन्त हानिकारक है। विद्यालय-योजना के लिए हमारा आदर्श वाक्य होना चाहिए—'महान् लक्ष्य का अभाव नही, किन्तु असफलता एक अपराध है।' मुझे इसकी चिन्ता नही कि अध्यापक कितनी छोटी योजना तैयार करता है। भले ही कोई शिक्षक कहे 'मैं अपने छात्रो का लेख सुधारना चाहता हूँ।' मैं इसमे भी बहुत प्रसन्न हूँ। आप क्या करने का निश्चय करते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं। किन्तु एक बार आप यदि कुछ करने का निश्चय करते हैं तो मैं असफलता का कोई बहाना सुनने के लिए तैयार नहीं। हमें इसी बात पर बल देना है। प्रत्यक कार्य को सम्मान, स्वाभिमान और सफलता के साथ सम्पादित करना है। यदि हम इसका निर्वाह कर सकें तो निश्चय ही विद्यालय-योजना को हम ठोस भूमि पर उतार सकते हैं। अंतिम बात जो मैं कहना चाहता हूँ वह इस कार्यक्रम के विस्तार के सम्बन्ध मे है। आपके विचारार्थ मैं कुछ सुझाव रखना चाहता हूँ। पहला सुझाव है कि इस धारणा का विकास प्रशिक्षण महाविद्यालयो को करना चाहिए। प्रशिक्षण महाविद्यालयों म, हम शिक्षको को पाठ-योजना की शिक्षा देते हैं, जो अत्यन्त साधारण और सरल बात है। जहाँ हम उन्हे पाठ की इकाइयो की योजना सिखाते हैं, सिखाते रहे, पर हम इस विचार को अधिक व्यापक बनायें और अपने पाठ्यक्रम म विद्यालय-योजना को भी सम्मिलित कर। अध्यापकों और प्रधानाध्यापको को विद्यालय-योजना से सम्बन्धित समस्याओं से

परिचित करायें और उनकी गहराइयों तक शिक्षकों का ध्यान आकर्षित करें। इस कार्य के लिए प्रशिक्षण-संस्थाओं को अपने पास-पड़ोस के विद्यालयों से सतत संपर्क रखना पड़ेगा और यह पता लगाना पड़ेगा कि वे अपनी योजनाएँ कैसे बनाते हैं जिससे कि उनके निर्माण और उन्हें लागू करने में वे उन संस्थाओं को सहायता प्रदान करें। कार्य क्षेत्र का यह प्रायोगिक अनुभव धीरे-धीरे कुछ विशेषज्ञों का दल तैयार करेगा जिन्हें विद्यालय-योजना का सम्यक् ज्ञान होगा और इससे प्रशिक्षण-महाविद्यालयों को महत्वपूर्ण लाभ होगा। इसी प्रकार हमें अपनी निरीक्षण प्रणाली में भी परिवर्तन लाना होगा। बजाय उस यांत्रिक एकरूपता के जिसका आज हम अनुसरण कर रहे हैं, हम एक नयी प्रणाली का विकास करना चाहिए जिसके अंतर्गत निरीक्षक महोदय प्रत्येक शिक्षक को अपने विद्यालय सम्बन्धी योजना के निर्माण में मार्गदर्शन कर सकें। साथ ही किसी भी विद्यालय का सही मूल्यांकन उसकी योजना के आधार पर कर सकें। मैंने अनेक निरीक्षण रिपोर्टें देखी हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि किसी भी रिपोर्ट का इसकी पिछली रिपोर्टों से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। निरीक्षण-विवरण-पत्र बहुत कुछ शिक्षक द्वारा स्वयं भर दिया जाता है और केवल एक ही सामान्य टिप्पणी का स्तम्भ निरीक्षक महोदय के लिए छोड़ दिया जाता है। इसमें भी जो टिप्पणियाँ दी जाती हैं वे अत्यन्त चलती हुई और सामान्य होती हैं। इस प्रकार का यांत्रिक निरीक्षण समाप्त होना चाहिए और नये निरीक्षण की विधि को विद्यालय-योजना से जोड़ना चाहिए।

इसके पूर्व कि मैं समाप्त करूँ, एक अंतिम सुझाव और। शैक्षिक योजना के तकनीक में निश्चय ही सुधार होगा यदि हम स्वाधीनता को प्रतिस्पर्द्धा (Confrontation) से जोड़ दें। हमें प्रत्येक विद्यालय को अपनी-अपनी योजना के निर्माण और विकास की छूट देनी चाहिए। फिर हम सारे विद्यालयों को एक स्थल पर एकत्र करना चाहिए और फिर उन सबके समक्ष उन विद्यालयों का योजना विवरण प्रस्तुत करना चाहिए जो इस दिशा में अच्छा कार्य कर रहे हैं। सुधार केवल ऊपर से सम्भव है, यह धारणा भ्रमपूर्ण है। निरीक्षकों से कोई नहीं सीखता विद्यालय तो स्वयं अपने कार्य और अनुभवों से सीखते हैं। निरीक्षक का कार्य केवल विभिन्न विद्यालयों को एक स्थान पर लाकर एक-दूसरे के समक्ष उपस्थित कर देना है जिससे कि किसी एक विद्यालय में होनेवाले अच्छे काम से अन्य भी लाभ उठा सकें।•

राष्ट्रीय एकता और शिक्षा

सुमतीशचन्द्र चौधरी

राष्ट्रपिता ने देश की स्वाधीनता का सकल्प लेकर एक यज्ञ अनुष्ठित किया। भारत के जननायको तथा जनता ने त्याग और बलिदान की आहूति से होम शिखा को प्रज्वलित किया। शिखा भभक उठी—अग्रेज भारत छोडकर चले गय देश स्वतत्र हुआ। परन्तु बाईस वर्ष म धीरे धीरे वह ज्योति विलीन होती गयी है और आज हमम राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय एकता का सर्वथा अभाव है। राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रो मे राष्ट्र-चरित्र का ह्रास परिलक्षित हो रहा है। बिना रक्तपात के बडी सरलता से हमे स्वराज्य मिल गया था। हम भ्रम मे पड गये कि जब अग्रेज जैसे पराक्रमी राष्ट्र से हमने देश को स्वतत्र करा लिया तो उसका सम्पूर्ण विकास भी आसानी से हो जायेगा। हम परिश्रम से भागने लगे। खेत, कारखाने कार्यालय व विद्यालयो मे छुट्टियाँ बढाने और काम के घटे कम कराने के लिए तत्पर हो गये। सकुचित स्वार्थ और भ्रष्टाचार के शिकार बनकर राष्ट्रीय लक्ष्यो की बातें भूल गये। अभी राष्ट्रीय चेतना आ भी न पायी थी कि लगे अन्तर्राष्ट्रीयता की लम्बी-चौडी और खोखली बातें करने। परिणाम वही हुआ जो होना था—देश मे व्यापक असतोष, बेरोजगारी, अन्न-सकट, विदेशो से अन्न का आयात, छोटी-छोटी बातें लेकर विधानसभा और ससद मे नारे लगाना और अशोभनीय व्यवहार, देश भर म हिंसात्मक विघटनात्मक तथा विध्वसात्मक कार्यवाहियाँ, भाषा प्रादेशिकता और साम्प्रदायिकता को लेकर अशान्ति, उद्योगपतियो और प्रबन्धको के साथ कर्मियो का सघर्ष, तथा राजनैतिक दलो मे पारस्परिक तथा आन्तरिक मतभेद तथा विरोध प्रदर्शन।

आज भी भारत का प्रौढ समाज सकुचित और सकीर्ण विचारधारा का अनुयायी है। विदेशी शासन-काल से चली आयी शिक्षा रूपी वृक्ष की जड खोखली हो गयी है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे द्रुत सामाजिक परिवतनो के साथ शिक्षा का सामजस्य नही हो पाया। शिक्षा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय चेतना और जागृति से नहीं रहा। व्यावहारिक पक्ष की अवहेलना, तथा केवल मात्र पुस्तकीय ज्ञान के प्रसार के साधन हो जाने के कारण शिक्षा आगे चलकर वेकारी की जननी बनकर एक अभिशाप-सी बन गयी। स्वतत्र

भारत के स्वप्न को साकार करने हेतु एवं मौलिक शिक्षण-व्यवस्था की आवश्यकता थी। आज की माँग है कि शिक्षा व्यावहारिक हो। शिक्षा द्वारा नैतिकता, सहयोग सहकारिता आदि सुनागरिकता के गुणों का विकास हो। इसके द्वारा श्रम-बल व स्वावलम्बन-जैसे चारित्रिक गुणों का सृजन हो। ऐसी शिक्षा-समाप्ति पर छात्र केवल उपाधि और प्रमाणपत्र मात्र से सतुष्ट नहीं होगा। वह इसमें गौरव अनुभव करेगा कि वह राष्ट्र निर्माण हेतु सक्षम हो गया है। उसे नौकरी न मिलने पर वह स्वयं अपनी जीविका के प्रश्न को वैयक्तिक स्तर पर हल कर सकेगा। उसे अपने अधिकारों से पहले अपने कर्तव्यों की चिन्ता होगी।

किसी देश का शिक्षित वर्ग जितना अधिक प्रबुद्ध और जागरूक होगा उस राष्ट्र की मानसिकता उतनी ही सचेत सुदृढ़ और कल्याणकारी होगी। शिक्षक ही शिक्षित वर्ग का निर्माता होता है और साथ-ही-साथ समाज का नेता भी। इसलिए शिक्षा-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि नवयुवकों को भावात्मक और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरित करें। हम यह मान लेना पड़ेगा कि बावन करोड़ भारतवासी एक बृहत परिवार के अविभाज्य सदस्य हैं। पहले हम भारतवासी हैं, फिर बंगाली, गुजराती या पंजाबी। समग्र भारत की उन्नति हमारी उन्नति है। इस समय हमारे देश के तनाव के मूल मे विवेकपूर्ण नेतृत्व का अभाव है जिसके कारण अनेक दल, मत और पंथ बन गये हैं। एकमात्र स्वस्थ और उदात्त भावनाओं से प्रेरित शिक्षा-नीति द्वारा ही परिस्थिति सँभल सकेगी। स्वस्थ एवं सबल राष्ट्रीयता का अभाव ही देश के राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विच्छेद और विवाद का कारण बन गया है।

नवोदित स्वतंत्र राष्ट्र की सीमाओं पर तीन अतिक्रमण हुए। उस समय समग्र राष्ट्र मे त्याग, एकता व उत्साह की लहर दौड़ गयी थी। सभी लोग सभी प्रकार के भेद भावों को क्षणभर के लिए भूलकर विदेशी आक्रमणों का सामना करने के लिए एकबद्ध होकर प्रस्तुत हो गये थे। परन्तु खेद का विषय है कि संकट समाप्त होते ही हमारे क्षुद्र स्वार्थ व संकीर्ण मनोवृत्ति पुनः उभर आयी।

शिक्षा से संलग्न सभी वर्ग प्रशासक, प्रशिक्षक, निरीक्षक, शिक्षक, छात्र एवं अभिभावक सभी का यह सम्मिलित सक्रिय एवं लगन के साथ प्रयास होना चाहिए कि प्रारम्भ से ही प्रजातंत्र की भावना बालक मे अंकुरित हो तथा उसे पल्लवित व पुष्पित करके वृक्ष को हराभरा रखे, जिससे राष्ट्रीय भावना उसके व्यक्तित्व का स्थायी अंग बन जाय।

विद्यालय के सम्पूर्ण कार्यक्रम—पठन-पाठन, शारीरिक उत्कर्ष, खेल-कूद सांस्कृतिक कार्यक्रम, सामूहिक प्रार्थना, जलपान, पाठ्यक्रमेतर क्रियाएँ इत्यादि—

जनतांत्रिक ढांचे पर सगठित किये जायें। छात्रों में सहिष्णुता मानवमात्र के प्रति ममता व बन्धुता, विपक्षियों के मत के प्रति उचित दृष्टिकोण की भावना पैदा करनी होगी। प्रत्येक अवसर पर छात्र को यह विश्वास दिलाया जाय कि सभी समान हैं और सभी सुविधाएँ सभी के लिए हैं। अध्यापक स्वय किसी प्रकार का पक्षपात न करें। विद्यालय के समस्त कार्यक्रमो व क्रियाकलापो का चयन, नियोजन तथा कार्यान्वयन मे छात्रों को साझीदार बनाया जाय। कही पर भी अध्यापक स्वय अपना मत या रुचि छात्रो पर न थोपें। जो कुछ निर्णय लिये जायें वे सबके हित के लिए तथा बहुमत-स्वीकृति के पश्चात् ही लिये जायें।

प्रजातांत्रिक विधान के अभ्यास के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना को प्रदीप्त करनेवाले गौरवपूर्ण नाटको, ग्रथो, घटनाओ, घटना-स्थलो व स्मारको का परिचय पुस्तको, वर्णनो, व्याख्यानो, चित्रो पोस्टरो चलचित्रो अथवा यात्राओ द्वारा दिलाने का प्रयास किया जाय। साम्प्रदायिक मेल मिलाप, विश्व-बन्धुत्व मानव-अधिकार सम्बन्धी नाटक, अभिनय व सास्कृतिक कार्यक्रमो का एक सुनिश्चित कार्यक्रम भी बना लेना उचित होगा।

उचित-अनुचित का निर्णय लेना, व आत्म नियत्रण अनुशासन द्वारा ही सभव है। यही राष्ट्रीय जीवन की आन्तरिक शक्ति है। प्रारम्भ से ही शिक्षक स्वय अनुशासित आचरण का आदर्श रखे। वह अभिभावक का सहयोग प्राप्त करे। दोनो मिलकर बालक को अनुशासित जीवन विताने के प्रेरणा दे, जिससे व्यावहारिक अनुशासन मानसिक अनुशासन के रूप मे एक प्रवृत्ति-सी बन जाय। विद्यालयो मे शारीरिक उत्कर्ष, सगठित खेलकूद, समाज-सेवा, श्रमदान, बालचर दल, जूनियर रेडक्रास, इत्यादि कायकलाप अनुशासन की प्रत्यक्ष एव परोक्ष शिक्षा के अवसर प्रदान करते हैं। इनकी एक प्रभावशाली समन्वित योजना बनानी पडेगी। 'राष्ट्रीय अनुशासन योजना' तथा 'राष्ट्रीय सुदृढ छात्र-सगठन' (नेशनल फिटनेस कोर) भी बालको के बौद्धिक, शारीरिक एव भावात्मक उन्नति के द्वारा उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिकता को प्राप्त करने तथा राष्ट्रप्रेम जाग्रत करने के लिए चलायी गयी हैं। इनका विस्तार, और द्रुत व व्यापक होना चाहिए।

अहिंसक समाज की रचना और शोषण-प्रवृत्ति के दमन हेतु राष्ट्रपिता ने शिक्षा मे उत्पादक कार्य के समावेश पर बल दिया था। वे विश्वास करते थे कि श्रम के तिरस्कार द्वारा ही राष्ट्र कमजोर बनता है। विद्यालयो म चाहे बुनियादी शिल्प का अनुशीलन हो अथवा शिक्षा-आयोग द्वारा सस्तुतित 'कार्यानुभव' हो, आवश्यकता इसकी है कि प्रतिदिन अध्यापक एव छात्र, निष्ठा के साथ नियम-

पूर्वक एकाग्र होकर एक नियत अवधि के लिए कोई-न-कोई समाजोपयोगी उत्पादक कार्य अवश्य करें। इसमे समय, सामग्री या उत्पादित सामग्री का कदापि अपव्यय न किया जाय।

भारत एक विशाल देश है। इसके विभिन्न स्थलो की रचना, जलवायु, उपज विविध हैं। भिन्न प्रान्तो की भाषा, वेश भूषा, रहन-सहन विभिन्न हैं। हमें सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत इस विविधता मे एकता, पारस्परिक निर्भरता, एक-दूसरे को समझने की भावनाओ को बल देना होगा। आवागमन तथा सचार के साधनो ने दूरी को समेट लिया है। मानव मात्र की मौलिक आवश्यकताएँ, अधिकार नियति एव आकाक्षाएँ एक हैं। अत काल्पनिक तथा अवास्तविक भेदभाव की भावना हमारी सन्तानो को विरासत म न मिले इसकी चेष्टा करनी होगी। हमे ऐतिहासिक तथ्यो की नयी व्याख्या करनी होगी। तभी नागरिकता, राष्ट्रीयता जनतत्रता की भावना पुष्ट होगी।

नवीन राष्ट्रीय मूल्य का सृजन, शिक्षा के दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाकर ही सभव होगा। तभी आजादी कायम रहेगी और देश का पुनर्निर्माण होगा।•

शिक्षा और सौदेबाजी

क्रान्तिवाला

हैदराबाद से तीन लडकियो को दिल्ली जाना था। दो फर्स्ट क्लास की यात्री थी, एक थर्ड क्लास की। थर्ड क्लासवाली को आरक्षण मिला, पर सीट का।

'बापरे, दो रात का सफर बैठकर करना होगा ?"—घबराहट थी उसके चेहरे पर।

"अरे हम साथ मे हैं। चिन्ता मत करो, आओ।"—हमारे साथ बैठे फर्स्ट क्लासवालो ने आश्वासन दिया। यात्रा शुरू थी।

"ये दो टिकट आपके, और आपका ?"—आकर कण्डक्टर ने पूछा।

"इनका टिकट यह है अगले स्टेशन काजीपेट मे अपने डिब्बे मे चली जायेंगी।"

"रात को १२ बजे गाडी काजीपेट पहुँचेगी, जरूर भेज देना, नही तो कठिनाई मे पडेंगी।'—कण्डक्टर ने चेतावनी दी।

सवेरे ८ बजे बलारशाह पर उतरने के लिए थर्ड क्लास के टिकटवाले गेट पर पहुँची, तो गार्ड की हरी झण्डी दिखाई पडी, वापस लौट आयी। कण्डक्टर फिर आया। पूछा, 'आपकी सवारी काजीपेट पर अपने डिब्बे मे चली गयी थी ?"

"हाँ, जाने के लिए तैयार थी, हरी झण्डी के कारण जा नही सकी।"—धीमे स्वर में उत्तर मिला।

"काजीपेट उतर नही सकी ? अच्छा, वर्धा पर उतर जाना।"

"हाँ, जरूर उतर जायगी।"—एकसाथ तीनो ने जवाब दिया।

× × × ×

तीनों की एक वार्ता।

'जानती हो, प्रेमा एम० ए० है पर इन्टर फेल लडके से विवाह कर रही है।"

"क्यों ?"

"व्यापारी है, खूब कमाता है।'

"और इसका पूरा शास्त्र है। मेरे सामने भी एक प्रसग ऐसा आया था, तब लडकी से बात करने पर उसने बताया कि—"एम० ए० हूँ, पी-एच० डी० भी

हूँ यह सही है। लेकिन, मन इसी स्तर के लड़के से शादी करने का मतलब है कि घर खर्च चलाने के लिए मुझे भी स्कूल की नौकरी करनी पड़ेगी, अर्थात् बनियों की खुशामद करनी पड़ेगी। उससे अच्छा है व्यापारी पति को ही स्वीकार करना।'

'बनियों की खुशामद ?

अरे हाँ बनियों की खुशामद स्कूलों की मैनेजिंग कमेटी में और कौन होते हैं ? क्या पढ़े-लिखे लोग होते हैं ?

× × × ×

आधुनिक परिस्थिति आधुनिक शिक्षा, आधुनिक दिशा और आधुनिक मानस के इन दो सजीव चित्रों में से पहले में स्वीकृत है झूठ नहीं बोलना पर प्रामाणिक होने के लिए अपेक्षित है सुख-सुविधा का त्याग और परेशानी कठिनाई का वरण। इसलिए दोनों के बीच का रास्ता है—झूठ नहीं, पर धोखा।

दूसरे में स्त्री-पुरुष सहजीवन के लिए स्वीकृत है विवाह का आवरण, उसके लिए शरीर, बुद्धि, मन के अनुबन्ध से भिन्न, प्राथमिकता है पैसे के अनुबन्ध की। दाम्पत्य की नींव मित्रता नहीं सौदेबाजी है। पति-पत्नी के बीच भी सौदे की इस बुनियाद पर क्या प्रेम विश्वास, और सख्यता की अपेक्षा रखी जा सकती है ? व्यापार का सौदा राजनीति में आया, शिक्षण में आया, धर्म में आया, और अब विवाह के माध्यम से परिवार में भी आ गया।

सौदेबाजी के चौराहे पर खड़ा व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ है। प्यार की भूख, सहयोग की तलाश और विश्वास की चाह उसे ले आयी सौदे के बाजार में। जाने पहचाने सब दरवाजों को खटखटाकर निराश इंसान के अन्दर एक संकल्प उदित होता है— अनजाने पथ पर भटकने का और इच्छित प्राप्त करने का। आज उसकी अन्तरात्मा से आवाज आ रही है— जितना कुछ परिचित है वह वर्जित है सीमित है। और जो असीम है मुक्त है वह अनपहचाना है। तो नयी राह नयी दिशा नयी शक्ति और नयी चेतना के लिए अनजानी राह का राही बनने की हिम्मत करनेवाला ही मानवीय मूल्य पा सकेगा प्रेम विश्वास और मुक्ति पा सकेगा।

असीम के मुक्ति के अनन्त पथ पर चलने के लिए हमें अपने को हल्का करना होगा। फिर वह बोझ चाहे धन-वैभव का हो चाहे ज्ञान के भंडार का हो चाहे मान सम्मान का हो और चाहे मान्यताओं-परम्पराओं का हो। सबसे मुक्त होकर ही मुक्ति पथ पर प्रयाण संभव है।•

आचार्यकुल का संगठन और कार्य-योजना

ता० २६-१२-'६९ को संध्या ४-३० बजे श्रीमती महादेवी वर्मा के निवास-स्थान (अशोकनगर, इलाहाबाद) पर आचार्यकुल समिति की बैठक हुई, जिसमे निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे

सदस्य	आमंत्रित
१ श्री सुमित्रानन्दन पंत (उ० प्र०)	१ श्री सुरेशराम भाई, मंत्री, उत्तर प्रदेश शांति-सेना समिति
२ श्रीमती महादेवी वर्मा (उ० प्र०)	२ श्री ब्रजनन्दन स्वरूप, उप शिक्षा निदेशक (उ० प्र०)
३ डाक्टर रामजी सिंह (बिहार)	३ डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी, उप-शिक्षा निदेशक (प्रशिक्षण)
४ श्री वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक)	

श्री जैनेन्द्रजी और मामा क्षीरसागरजी ने अनुपस्थिति की सूचना भेज दी थी।

सर्वप्रथम श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने 'आचार्यकुल' के विकास, संगठन एवं कार्यक्रम पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि आचार्यकुल के प्रमुख तीन लक्ष्य हैं—(१) दलगत एवं सत्ता संघर्ष की राजनीति के स्थान पर लोकनीति (विश्व-व्यापक मानवीय राजनीति) का प्रसार, (२) विचार द्वारा अशांति का शमन एवं दण्डशक्ति के निराकरण का प्रयास एवं राष्ट्र और समाज को निष्पक्ष एवं स्वस्थ मार्ग दर्शन, और (३) शिक्षा की स्वायत्तता।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आचार्यकुल के सदस्य को तीन संकल्प करने पड़ते हैं—(१) वे दलगत राजनीति से अलग होंगे और किसी राजनीतिक पार्टी का सदस्य नहीं बनेंगे, (२) वे अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त लोकसेवा का कार्य करेंगे, जिससे लोक-मानस से उनका सम्पर्क बना रहे और वे लोकनीति का निर्देशन कर सकें, और (३) वे किसी भी समस्या के समाधान के लिए हिंसात्मक मार्ग का अवलम्बन नहीं करेंगे।

संगठन के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि संगठन की दृष्टि से आचार्यकुल सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए चलनेवाली प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति है और उसका कार्यक्षेत्र लोकनीति, लोक शिक्षण, लोक-सेवा और लोकनीति का

निर्देशन है। आचार्यकुल के सदस्यों को परिषदों में एकत्र होकर देश विदेश की समस्याओं पर निष्पक्ष निर्णय लेकर निर्भयतापूर्वक अपनी राय जाहिर करनी चाहिए। इस काम के लिए धन की आवश्यकता होगी और विनोबाजी ने सुझाव दिया है कि आचार्यकुल के सदस्य अपने वेतन का एक प्रतिशत और कम वेतन-वाले आधा प्रतिशत दें, अथवा आचार्यकुल जो भी निश्चय करे वह लिया जाय। इस धन का बीसवाँ भाग सर्व सेवा संघ, गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र) को भेज दिया जाय, जिससे केन्द्रीय स्तर पर परिषदों का आयोजन किया जा सके और संयोजन के दूसरे काम किये जायें।

अन्त में उन्होंने समिति से प्रार्थना की कि वह आचार्यकुल के कार्यक्रम की ऐसी रूपरेखा बनाये, जिससे आचार्यकुल के कार्य में प्रगति हो। उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि समिति आचार्यकुल-समिति के लिए विभिन्न प्रदेशों से सदस्यों को 'कोआप्ट' करे और प्रादेशिक आचार्यकुल समिति के निर्माण के लिए सुझाव दें। इसके बाद महादेवीजी ने उन लोगों के अनुभव जानना चाहा जिन्होंने आचार्य-कुल का काम किया है। डाक्टर रामजी सिंह ने बिहार में आचार्यकुल की प्रगति पर प्रकाश डाला और कहा कि यद्यपि विनोबाजी की उपस्थिति के कारण बिहार में आचार्यकुल का काम सबसे पहले प्रारम्भ हुआ था, परन्तु इस काम में अधिक प्रगति नहीं हुई है। उन्होंने बताया कि गत अप्रैल में जैनेन्द्रजी के दौरे से बिहार में विश्वविद्यालयों को प्रेरणा मिली थी और उनकी इच्छा है कि महादेवीजी, पंतजी, जैनेन्द्रजी आदि साहित्यकार यदि विश्वविद्यालयों और शिक्षा-संस्थाओं का दौरा करें तो बहुत लाभ होगा और एक वातावरण बनेगा जिसमें आचार्यकुल का काम आगे बढ़ेगा।

श्री वंशीधर ने मामा क्षीरसागर द्वारा भेजा गया महाराष्ट्र में आचार्यकुल के काम का विवरण सुनाया। महाराष्ट्र में अबतक २० महाविद्यालयों और ४० माध्यमिक शालाओं में आचार्यकुल की योजना की जानकारी दी गयी है। सामान्यतया माध्यमिक और प्राथमिक शालाओं में आचार्यकुल के विचार का स्वागत हुआ है, परन्तु कहीं-कहीं इस योजना को अव्यावहारिक भी बताया गया है, यद्यपि अधिकांश लोगों का विचार यही रहा है कि संभव है कि आज के असुरक्षित वातावरण में आचार्यकुल की नैतिक शक्ति उपकारक और तारक सिद्ध हो। महाराष्ट्र के कुछ स्थानों में आचार्यकुल की स्थापना हो चुकी है।

इसके बाद श्री वंशीधर ने उत्तर प्रदेश से आचार्यकुल की प्रगति पर प्रकाश डाला और बताया कि उत्तर प्रदेश के १३ जिलों में आचार्यकुल के विचार का प्रचार हुआ है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का आचार्यकुल सक्रिय

है। गोरखपुर मडल के चारो जिलो म जनपद-स्तर पर आचार्यकुल की स्थापना हो चुकी है।

पतजी ने कहा कि आचार्यकुल का विचार तो अच्छा है, लेकिन आज के लडके हृदय-परिवर्तन की बात सुनते कहाँ हैं। आज के हिंसा के वातावरण म मे आचार्यकुल का काम कठिन होगा।

श्री व्रजनन्दन स्वरूप ने कहा कि जो भी हो, आचार्यकुल का विचार अधेरे मे एक प्रकाश की किरण जैसा है और आचार्यकुल का काम होना चाहिए।

डाक्टर देवेन्द्रदत्त तिवारी ने कहा कि शिक्षा की स्वायत्तता सिद्धान्तत ठीक है, परन्तु शिक्षा का शासनमुक्त होना कठिन है—वैसे न्याय-विभाग भी शासनमुक्त नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार आचार्यकुल के विभिन्न पहलुओ पर मुक्त चर्चा के बाद निम्नाकत निर्णय लिये गये

१—यह निश्चय किया गया कि आचार्यकुल के सगठन को बल देने के लिए अभी बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा एव मध्यप्रदेश मे सघन रूप से कार्य किया जाय।

२—बिहार के लिए प्रिंसिपल कपिल, आर० डो० एण्ड डी० जे० कालेज मुगेर, आचार्यकुल के सयोजक मनोनीत किये गये। उत्तर प्रदेश के लिए यह तय हुआ कि श्री वशीधर, डा० श्रीमाली एव डा० शीतल प्रसादजी से पूछकर सयोजकत्व का निश्चय करें। उत्तर प्रदेश की राज्य-समिति के लिए सर्वश्री रोहित मेहता, वाराणसी, श्री राधाकृष्ण अग्रवाल (कानपुर), श्री सुरेशराम भाई (इलाहाबाद), आचार्य केशवचन्द्र मिश्र (देवरिया), डा० अनन्तरमण (वाराणसी), डाक्टर देवेन्द्रदत्त तिवारी (इलाहाबाद), व्रजनन्दन स्वरूप, विश्वम्भरनाथ पाडेय, (इलाहाबाद), प्रो० पी० भटनागर (इलाहाबाद), विश्वनाथ टडन (मुरादाबाद), कु० डा० कचनलता सब्बरवाल (लखनऊ) और रामवचन सिंह (गोरखपुर) को मनोनीत किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि आवश्यकतानुसार समिति अन्य लोगो को 'कोआप्ट' कर ले। श्री वशीधर महाराष्ट्र के लिए मामा क्षीरसागर और मध्यप्रदेश के लिए श्री नरेन्द्र दुबे से बातें करके सयोजकत्व तय करेंगे और प्रादेशिक समितियो का निर्माण करायेंगे।

३—सदस्यता शुल्क, आचार्यकुल जैसा भी निश्चय करे, रखा जाय परन्तु विश्वविद्यालय-स्तर पर यह शुल्क कम-से-कम बारह रुपये रखा जाय।

४—जैसा सर्व सेवा सघ की प्रबन्ध समिति ने निर्णय किया है आचार्यकुल के सदस्यता-शुल्क का बीसवाँ हिस्सा सेक्रेटरी सर्व सेवा सघ, गोपुरी, वर्धा

(महाराष्ट्र) को भेज दिया जाय । इस धन का उपयोग सब आचार्यों की परिषद बुलाने आदि की व्यवस्था के लिए करे ।

५—राज्य स्तर के आचार्यकुल के संयोजक अपने राज्य मे विश्वविद्यालय स्तर एव जिला स्तर के सयोजको को लेकर प्रादेशिक समिति का गठन करें। फिलहाल उत्तर प्रदेश के लिए उपर्युक्त जिस तदर्थ समिति का गठन किया गया है उसे भी जिला स्तर के सयोजको को लेकर व्यापक बना लिया जाय ।

६—आचार्यकुल की भावना के व्यापक प्रचार एव प्रसार के लिए आचार्यकुल के सदस्य विशिष्ट विद्वानो के भ्रमण एव भाषण का प्रबन्ध किया जाय । इस सम्बन्ध मे यह भी तय हुआ कि महादेवीजी, पतजी एव जैनेन्द्रजी के भ्रमण एव भाषण की व्यवस्था की जाय । डाक्टर रामजी सिंह से प्रार्थना की गयी कि वे बिहार के सम्बन्ध म पत्र-व्यवहार करके इन विद्वानो का समय बिहार मे लें ।

७—आचार्यकुल के सदस्य विशिष्ट विद्वान आचार्यकुल की चर्चा उपयुक्त निबन्धो एव कृतियो के माध्यम मे अखबारो एव रेडियो-प्रसारणो मे करें। पतजी और महादेवीजी ने इसको सहर्ष स्वीकार किया ।

८—पतजी के प्रस्ताव पर निश्चय किया गया कि यथाशीघ्र राष्ट्रीय स्तर पर आचार्यकुल का एक मुखपत्र प्रकाशित किया जाय ।

९—प्रयाग विश्वविद्यालय मे व्याप्त विद्यार्थी विक्षोभ पर भी चर्चा हुई और यह निश्चय किया गया कि प्रयाग विश्वविद्यालय का आचार्यकुल और शान्ति-सेना मिलकर इस गुत्थी को सुलझायें, इससे आचार्यकुल के सगठन को बल मिलेगा ।

१०—यह भी निश्चय किया गया कि आचार्यकुल की जो दूसरी बैठक बुलायी जाय उसमे विश्वविद्यालयो के उपकुलपति और आचार्यकुल के अध्यक्ष और सयोजक रहे जिससे आचार्यकुल के व्यावहारिक पहलू पर विचार किया जा सके ।

११—सगठन और कार्यक्षेत्र पर भी चर्चा हुई और फिलहाल कार्यक्रम की निम्नलिखित रूपरेखा निर्धारित की गयी

क—स्थानीय सगठनों के लिए

१—स्थानीय शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन-गोष्ठी परिसवाद आदि के द्वारा कोई एक सर्व-सम्मत हल प्रस्तुत करना ।

२—शिक्षा-सस्थाओं को राजनैतिक एव साम्प्रदायिकता से मुक्त रखने का कार्यक्रम, जैसे तरुण शान्तिसेना आदि का सगठन ।

३—शिक्षा-संस्थाओं की अशान्ति के शान्तिपूर्ण हल मे निर्भयता एवं निष्पक्षतापूर्वक सहयोग करना।

४—छात्र एवं शिक्षक-कल्याण का कार्य—आचार्यों तथा छात्रों की कठिनाइयों को हल करने का सुव्यवस्थित कार्यक्रम।

५—लोक-सेवा का कार्य—अकाल, भूकम्प, सामूहिक सफाई आदि।

६—लोकनीति-निर्माण का कार्य—ग्रामदान प्राप्ति अथवा ग्रामस्वराज्य की स्थापना के कार्य मे सहायता देना—जैसे, ग्रामसभाओं के निर्माण मे, भूमि के वितरण मे अथवा ग्रामकोष के विनियोग मे।

ख—प्रादेशिक संगठन के लिए

१—प्रादेशिक स्तर पर शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन—विचार-गोष्ठियों, परिसवादों आदि द्वारा।

२—संस्थागत अथवा जनपदीय स्तर की इकाइयों के काम म सहायता देना और उनका मार्ग-दर्शन करना।

३—राज्य स्तर की ज्वलत सामयिक समस्याओं पर विचार करने के लिए शिक्षा-परिषदों का आयोजन करना और जनता के सामने निष्पक्ष राय रखना।

४—शिक्षा-जगत् की स्वायत्तता के लिए राज्य-सरकार से सम्पर्क रखना और उचित कार्यवाही करना।

५—समय-समय पर आचार्यकुल के कामों की बुलेटिन आदि निकालना, 'आचार्यकुल' की पत्रिका निकालना।

ग—केन्द्रीय संगठन

१—प्रादेशिक सगठनों से सहयोग और उनका सयोजन।

२—अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षा की स्वायत्तता के लिए प्रयास करना—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अन्तर विश्वविद्यालय मडल, शिक्षा-मत्रालय, शिक्षक-सगठनों आदि लोक प्रतिनिधियों से सपर्क करके अपने लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास करना।

३—अखिल भारतीय मच से शिक्षा, राजनीति आदि समस्याओं पर आचार्यकुल की परिषद बुलाकर राष्ट्र एव समाज का दिशा-दर्शन करना।

४—शिक्षा-शास्त्रियों के ऐसे गैरसरकारी सगठन का सचालन करना जो शिक्षा-सस्थाओं और शासन के बीच की कड़ी का काम करे और शिक्षा-नीति के सम्बन्ध मे उसकी सलाह लेना सरकार के लिए अनिवार्य हो। —वशीधर श्रीवास्तव, सयोजक, आचार्यकुल

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : ६
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

जनवरी, '७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित; अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : जनवरी '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० सं० एल १७२३

ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य

'ग्रामस्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम् जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। क्योंकि हरएक देहाती के जीवन का सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और गांव की इज्जत के लिए मर मिटे।'

—गांधीजी

अब समय आ गया है कि इस देश के बुद्धिवादी, किसान, मालिक, मजदूर, सभी इस बात पर विचार करें कि ग्रामदान हमें ग्रामस्वराज्य की ओर अग्रसर करता है या नहीं? यदि हमें जँच जाय कि हाँ, इससे हमें ग्रामस्वराज्य के दर्शन हो सकेंगे, तो यही अवसर है कि हम लोग इस पुण्य काम में तुरन्त लग जायें।

राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी की रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति
टुबलिया भवन कुन्दीगरों का भैरू जयपुर ३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आवरण मुद्रक सम्मेलन प्रेस मानमंदिर वाराणसी

नयी तालीम

सर्व-सेवा-संघ की मासिकी

बर्ट्रेण्ड रसेल

फरवरी, १९७०

वर्ष : १८ अंक : ७

प्रारम्भिक शिक्षा भी उत्पादनमूलक हो

भारत सरकार के राष्ट्रीय शैक्षणिक अन्वेषण और प्रशिक्षण सस्थान ने दिल्ली मे २७ जनवरी, १९७० को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर क्षति और अवरोध (वेस्टेज और स्टेगनेशन) की समस्या पर विचार करने के लिए उन शिक्षा-अधिकारियो का, जिनका सम्बन्ध प्रारम्भिक शिक्षा से है, एक पच-दिवसीय सम्मेलन बुलाया था। सम्मेलन के सामने प्रमुख समस्या थी—प्रारम्भिक कक्षाओ (कक्षा १ से कक्षा ७ या ८ तक) मे पढाई छोड देनेवाले विद्यार्थियो का बढता हुआ प्रतिशत। आज स्थिति यह है कि ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रारम्भिक स्कूलो मे प्रवेश-सख्या तो बढी है, परन्तु प्रारम्भिक कक्षा के अन्तिम स्तर (कक्षा ७ या ८) तक पहुँचने के पहले ही बीच मे ही पढाई छोड देनेवाले छात्रो की सख्या भी बढी है और कही-कही तो छोडनेवालो का प्रतिशत ७५ तक पहुँच गया है। दूसरे शब्दो मे, प्रारम्भिक स्तर की पहली कक्षा मे भरती होनेवाले छात्रो की सख्या अन्तिम कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते २५ प्रतिशत हो रह गयी है। यह भयकर स्थिति है। और अगर इसी अनुपात मे विद्यार्थी पढना छोडते रहे तो, हम चौथी योजना के अन्त तक प्रारम्भिक शिक्षा के अपने शत-प्रतिशत लक्ष्य को पूरा नही कर पायेंगे। चौथी योजना के अन्त की बात छोड दीजिए—हम कभी भी देश के शत-प्रतिशत बच्चो को प्रारम्भिक शिक्षा भी नही दे पायेंगे।

वर्ष : १८
अंक : ७

क्षति और अवरोध की समस्या पर सौ वर्ष से विचार हो रहा है। कोठारी आयोग ने भी इस

समस्या पर विचार किया है और इसके चार कारण बताये हैं —

१ नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था का अभाव।

२ छात्रो विशेषत छात्राओ का आर्थिक कारणो से अपने कुटुम्ब की सहायता करना।

३ माता-पिता अथवा पालको का अपने बच्चो को आगे न पढाना और लडकियो को बालक बालिकाओ की मिली-जुली सस्थाओ म न भेजना।

४ पडोस मे उच्चतर प्रारम्भिक स्तर (कक्षा ५ से ७ अथवा ६ से ८ तक) न होना।

सम्मेलन मे इन्ही कारणो को दोहराते हुए कहा गया है कि प्रौढो को अपने बच्चो की शिक्षा मे दिलचस्पी लेनी चाहिए, इसके लिए उनकी मनोवैज्ञानिक तैयारी की जाय।

सच पूछा जाय तो क्षति और अवरोध का एक ही कारण है—वह है पालको की प्रारम्भिक शिक्षा के प्रति उदासीनता। ग्रामीण माँ-बाप (पालक) प्रारम्भिक शिक्षा मे दिलचस्पी नही लेते। वह इस शिक्षा से कुछ लाभ नही देखते। देहात के किसान मजदूरो के बालक-बालिकाओ का उनके माता पिता के लिए 'आर्थिक मूल्य' है। लडका बाप की सहायता करता है लडकी घर की करती है। इस तत्काल के मुनाफे के काम को छोडना सम्भव नही है। इसलिए गाँव की पढाई के पाठ्यक्रम को अर्थमूलक बनाना होगा, उत्पादक बनाना होगा। जब ग्रामीण देखेगा कि उसके लडके कोरी पढाई न करके कुछ कमाई भी करते हैं' तब वह खुशी से लडको को स्कूल भेजेगा। सम्मेलन ने सिफारिश की है कि इस स्तर का पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाय कि जो देहाती लडको के लिए आकर्षक और कम बोझिल हो। वह फिर 'मूलतत्त्व' को भूल गया। आकर्षक और कम बोझिल होने के साथ कार्यक्रम 'अर्थमूलक', उत्पादन मूलक' भी हो तभी वह ग्रामीण प्रौढ को आकर्षित कर सकेगा। बुनियादी शिक्षा मे उत्पादकता का यही तत्त्व था और भरपूर था। अगर वह चली होती तो आज प्रारम्भिक शिक्षा ग्रामीण प्रौढो के लिए इतनी अनाकर्षक न होती। अत अगर क्षति और अवरोध की इस भयावह समस्या को हल करना है तो बुनियादी शिक्षा को ईमानदारी के साथ लागू करना होगा।

—वंशीधर श्रीवास्तव

गांधी-दर्शन तथा शिक्षण-शैली

आदित्य नारायण तिवारी

परिचय

गाधी-दर्शन के सन्दर्भ मे शिक्षण-शैली की चर्चा करने के पूर्व गाधीजी के जीवन-दर्शन तथा उनके शिक्षा-दर्शन पर एक विहगम दृष्टि डाल लेना परमावश्यक है। शिक्षा के लक्ष्य से शिक्षण-शैली का सम्बन्ध साध्य-साधना का-सा है। महात्मा गाधी के मतानुसार अच्छा साध्य कभी भी बुरे साधनो से नहीं प्राप्त किया जा सकता। साध्य की अच्छाई की रक्षा तभी हो सकेगी जब उसकी प्राप्ति के साधन भी उतने ही अच्छे होंगे। अत यह निर्विवाद सत्य है कि गाधी-दर्शन मे शिक्षा का लक्ष्य जितना ही ऊँचा व पवित्र होगा, उतनी ही ऊँची व पवित्र शैली के माध्यम से उसकी प्राप्ति सम्भव हो सकेगी।

गाधीजी एक ऐसे महापुरुष थे, जिनका लक्ष्य ईश्वरीय पृष्ठभूमि पर मानवीय गुणो की फसल बोना, सीचना और काटना था। सत्य, अहिंसा और प्रेम, ये तीनो गाधीजी के विचारो के आधार-स्तम्भ है। उनके लिए सत्य ही ईश्वर का रूप है और इसकी प्राप्ति का साधन है अहिंसा। ईश्वर के बनाये जीव-जन्तु ही नही, अपितु कण-कण से प्रेम करना अहिंसा है। घृणा हिंसा की जन्मदात्री है। इसीसे तो अहिंसा के पुजारी और प्रचारक महात्मा गाधी प्रेम का साम्राज्य बसाने के स्वप्न देखते थे, घृणा का नहीं। प्राणी मात्र से प्रेम का जो आदर्श गाधीजी ने प्रस्तुत किया था, वह वस्तुत मानवता का सन्देश था। जाति, वर्ग, वर्ण, धन और शक्ति की कृत्रिम सीमाओ से बाहर एक सार्वलौकिक स्वतत्र मानवलोक की स्थापना करना गाधीजी का स्वप्न था। ऐसी समाज-रचना का आन्दोलन मानवीय भ्रातृत्व की अभिवृद्धि पर आधारित था और किसीके प्रति अन्याय एवं सन्ताप से मुक्त था। वे 'मानव-सेवा ही ईश्वर-सेवा, की सूक्ति को सजग बना गये। संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि गाधीजी की विचार धारा मे मानव-जीवन का मुख्य लक्ष्य सत्य-लाभ (ईश्वर-प्राप्ति या ईश्वर-ज्ञान) होना चाहिए जिसके साधन निहित हैं प्रेम और अहिंसा मे। समाज मे रहना, अपने साथी मनुष्यो की सेवा करना, उनसे प्रेम रखना, जीवन मे सद्गुणो के विकास का प्रयास करते रहना, आदि को गाधीजी परमशिव उद्देश्य की पूर्ति के साधन मानते रहे।

शिक्षा का मानवीकरण

हमारे देश म पचवर्षीय योजनाएं चल रही हैं, किन्तु खेद है कि उनका मेल गाधी-दर्शन से बिलकुल नहीं है। गाधीजी के मत मे केवल भौतिक सुख साधनो के बढ जाने से ही कोई राष्ट्र प्रगतिशील नहीं बन जाता। किसी भी राष्ट्र की प्रगति की सच्ची नाप तो उसके नागरिको की संस्कारशीलता और चरित्र ही माना जायगा। परन्तु दुःख की बात है ऐडम स्मिथ से लेकर मार्क्स और कीन्स तक के सभी समाज-शास्त्र के चिन्तको ने इस प्रश्न के मानवी तथा नैतिक पक्ष पर बहुत कम ध्यान दिया है। गाधीजी ने लिखा है कि "सभ्यता का असली अर्थ अपनी जरूरतो को बढाना नहीं, बल्कि उन्हे विवेकपूर्वक कम करना है।" आधुनिक अर्थ शास्त्रियो द्वारा बनाये गये 'लॉ आफ डिमिनिशिंग युटिलिटी' का अर्थ भी तो यही है। आर्थिक सयोजन को जिस पद्धति मे केवल उपभोग्य वस्तुओं के उत्पादन बढने पर ही बल दिया जाता है और मनुष्य के नैतिक विकास का ध्यान नहीं रखा जाता, वह निश्चय ही समाज को अन्धे कुएँ मे गिरानेवाली होती है।

विकेन्द्रीकरण

गाधी-दर्शन मे दूसरी वस्तु है विकेन्द्रीकरण। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के साथ आर्थिक और राजनैतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी परम आवश्यक है। जिस प्रकार अपने घर पर ही भोजन पका लेने मे कोई पिछडा पन नहीं है, उसी प्रकार विवेकयुक्त विकेन्द्रीकरण कभी पिछडेपन का द्योतक नही माना जा सकता। स्वावलम्बन व्यक्ति और समाज, दोनो के जीवन मे अहिंसा को सुलभ बना देता है, जो दोनो की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। पश्चिम के विचारक भी अब इस बात को मानने लगे हैं कि जहाँ राजनैतिक और आर्थिक सत्ता अत्यधिक केंद्रित होती है, वहाँ लोकतन्त्र का समुचित विकास नहीं हो सकता। अत्यधिक केन्द्रीयकरण से मनुष्य की सृजन शक्ति दब जाती है, स्वतन्त्रता के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता और अपने आप काम करनेवाले यन्त्र की भाँति वह जड बन जाता है। मार्शल टीटो ने भी युगोस्लाविया म विकेन्द्रीकरण के प्रयोग आरम्भ कर दिये हैं। बेकारी दूर करने का प्रश्न भी विकेन्द्रीकरण के साथ जुडा हुआ है। स्वय सयुक्तराष्ट्र अमेरिका म लाखो आदमी बेकार हैं। वहाँ भी अब विकेन्द्रीकरण की दिशा म लोग सोचने लगे हैं।

बेकारी की समस्या

भारत जैसे कम विकसित और घनी जनसख्यावाले देश म तो गृहउद्योगों

को बहुत बडे पैमाने पर सारे देश मे बिना फैलाये हम बेकारो को काम देने की कल्पना भी नही कर सकते। गाधीजी का खादी और ग्रामोद्योग का कार्यक्रम केवल सैद्धान्तिक वस्तु नहीं है, वह पूर्णत एक व्यावहारिक योजना है, जिसमे देश के असख्य बेकारो की शक्ति का सदुपयोग सहज सम्भाव्य है। इस प्रकार के आर्थिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह नहीं है कि इसमे विज्ञान के आविष्कारों से लाभ नही उठा सकेंगे। गाधीजी का उद्देश्य केवल उत्पादन के ढेर लगाना नही था, बल्कि बेकारी को दूर करते हुए उत्पादन बढाना था, जिससे समाज का स्वास्थ्य बना रहे और उसका विकास भी होता रहे। गाधीजी इस बात पर बडा बल देते थे कि प्रत्येक मनुष्य अपने हाथ से परिश्रम करे और अपनी आर्थिक स्थिति सुधारे। वे मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी शरीरश्रम को आवश्यक मानते थे। विज्ञान की प्रगति के कारण अब अहिंसा अनिवार्य हो गयी है। अब तो यदि जीवित रहना है तो शान्ति-युक्त सह-जीवन, अर्थात् अहिंसा के बिना काम नहीं चल सकता है। मानवता और आध्यात्मिकता पर ध्यान दिये बिना यदि हम केवल भौतिक मूल्यों के पीछे ही दौडते रहे तो यह युद्धोन्मुख विज्ञान और यंत्र समाज का कल्याण करने के स्थान पर जीवन मे विष घोल देंगे और समाज को विनाश की गर्त मे पहुँचा देंगे।

ग्रामोत्थान

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो की रक्षा शहरो की अपेक्षा गाँवो मे अधिक अच्छी तरह से हो सकती है। इसीलिए तो गाधीजी चाहते थे कि भारत मे शहरो और पाश्चात्य सभ्यता के ढग के बडे-बडे उद्योगों का विकास न हो, अपितु छोटी-छोटी इकाइयो अर्थात् ग्रामों का विकास हो और इनमे छोटे-छोटे उद्योग एव कारखाने भी हो जो इनकी आवश्यकताओ को पूरी कर दिया करें। गाँवो मे यदि ये सुविधाएँ हो जाती हैं तो गाँवों का उजडना बन्द हो जायगा और ग्रामीण स्वाभाविक मुक्त वातावरण में रह सकेंगे।

शिक्षा की परिकल्पना

गाधीजी के इन विचारो एव परिकल्पनाओ की पृष्ठभूमि मे अब हम उनके शैक्षिक विचारो को रुचिपूर्वक समझ सकेंगे। शिक्षा की परिभाषा करते हुए गाधीजी ने लिखा है, 'शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के उत्कृष्ट और सर्वागीण विकास से है। साक्षरता शिक्षा की अन्तिम सीढी नही न ही प्रथम सोपान है। यह तो पुरुष और स्त्री को

शिक्षित करने का एक साधन है। अपने मे साक्षरता शिक्षा नही कहला सकती।" गाधीजी शिक्षा को मनुष्य के सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास का आधार मानते थे। वे विद्यार्थी को शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक शिक्षा के समन्वित रूप से कुछ भी कम देने के पक्ष मे न थे। शिक्षा के लक्ष्यो की ओर सकेत करते हुए गाधीजी ने कहा है "यदि एक मनुष्य की उन्नति होती है तो उससे ससार की उन्नति होती है और यदि एक मनुष्य का पतन होता है तो सारे संसार का पतन होता है।" गाधीवाद का कहना है कि व्यक्तियो के सुधार और उनकी उन्नत अवस्था के द्वारा ही समाज की उन्नत अवस्था स्थापित हो सकती है। अपने देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि देश और समाज का उत्थान व्यक्ति के चारित्रिक उन्नयन पर ही निर्भर है। जीवन के प्रत्येक अग तथा समाज-कार्य के प्रत्येक विभाग मे चरित्र का ह्रास ही आज बुरे परिणाम प्रकट कर रहा है। शिक्षा द्वारा राष्ट्र के चरित्र को ऊँचे स्तर पर ले जाने की अविलम्ब आवश्यकता है। शिक्षा द्वारा गाधीजी यत्रीकरण के पक्ष मे नही थे। उन्होंने लिखा है, "यत्रीकरण से मेरा मूल विरोध इसी कारण है कि उसके बल पर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण करता है। अतएव, व्यावसायिक उददेश्य का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी हम उसे भारतीय शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य नही मान सकते।' डा० एम० एस० पटेल ने गाधीजी के शिक्षा दर्शन की व्याख्या करते हुए कहा है, 'गाधीजी रूप मे प्रकृतिवादी, लक्ष्य मे आदर्शवादी और शैली मे प्रयोजनवादी हैं।"

शिक्षण-शैली

गाधीवादी शिक्षण-शैली की आधार शिला मनोविज्ञान है। गाधीजी का मत था कि बालक के ऊपर दबाव डालकर उसे पुस्तक रटाने से उसके विकास का माग अवरुद्ध हो जाता है। वे मनोवैज्ञानिक स्थिति को लक्ष्य बनाकर बालक की रुचियो के माध्यम से ही उसे सिखाने के पक्ष मे थे। इस विचार की पुष्टि मे बालक की प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र मे वे किसी न-किसी उद्योग का समावेश अपेक्षित समझते थे। उनके विचार मे बालक निष्क्रियता को कभी पसन्द नहीं करता। वह तोड-फोड चाहता है, स्वय अपने नन्हें हाथों से कुछ करना चाहता है। प्रारम्भिक शिक्षा मे अपनाये जानेवाले उद्योग अथवा शल्प को गाधीजी यान्त्रिक रूप कभी नही देना चाहते थे। उन्होंने लिखा है कि शिल्प की शिक्षा से मेरा अभिप्राय शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की सम्पूर्ण शिक्षा से है। अत गाधीजी बाल-मनोविज्ञान तथा बाल रुचियो पर शिक्षा

परियोजना को आधारित कर उसे बाल-केन्द्रित तथा माध्यम रूप म उद्योग को अपनाकर उसे उद्योग-केन्द्रित बनाना चाहते थे। वे उद्योग को शिक्षा का एक सामान्य विषय बनाने के पक्ष मे न थे, अपितु उसे केन्द्र बनाकर अन्य सभी विषयो का अध्ययन उसीके माध्यम से कराना चाहते थे। गाधीजी के प्रस्तुत विचारो पर स्पष्टत प्रयोजनवाद का प्रभाव दिखाई पडता है और वे जॉन ड्यूवी से सहमत होते हुए पाठ्य क्रम का निर्वाचन ही क्रियाशीलता पर आश्रित रखना चाहते थे। अत गाधीवादी शिक्षण शैली को हम सक्षेप म बाल-केन्द्रित तथा उद्योग-केन्द्रित शिक्षण शैली कह सकते हैं। कोठारी-आयोग (१९६४-६५) ने भी शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर वर्क एक्सपीरिएन्स' की सबल सस्तुति की है।

अनुबन्धित पाठ

गाधीजी बच्चो की शिक्षा का श्रीगणेश तकली से करना चाहते थे। बच्चो की शिक्षा तकली के माध्यम से किस प्रकार सम्भव हो सकती है इसे हम यहां उदाहरण के रूप मे गाधीजी के ही शब्दों म 'हरिजन सेवक' (११-६-'३८) से उद्धृत कर रहे हैं:—"थोडा तकली से परिचित कराने के पश्चात् लडको को अब मैं सिखाऊँगा कि हमारे प्रतिदिन के जीवन म तकली का क्या स्थान प्राप्त था। इसके बाद मैं उन्हे उसका थोडा-सा इतिहास बताऊँगा और यह भी बताऊँगा कि उसका पतन कसे हुआ। फिर भारतवष के इतिहास के सक्षिप्त क्रम पर आऊँगा—आरम्भ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी से या उससे भी पहले मुसलिम-काल से करूँगा। उन्हे तफ्सीलवार यह बताऊँगा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की तिजारत ने किस तरह हमारे देश का शोषण किया और हमारी इस मुख्य दस्तकारी का दम किस तरह इरादतन घोटा गया और अन्त मे इसका खातमा कर डाला गया। इसके बाद तकली के यन्त्र-शास्त्र का, उसकी बनावट का सक्षिप्त कोर्स चलेगा। शुरू शुरू म मिट्टी की या आटे की छोटी-सी गोली सुखाकर और उसके ठीक मध्य म बाँस की सीक डालकर तकली बनायी गयी होगी। बिहार और बगाल के कुछ भागो म अब भी इस किस्म की तकली देखने में आती है। इसके बाद मिट्टी की गोली की जगह ईंट की चकती ने ले ली। और अब आज ईंट की चकती की जगह लोहे या फौलाद और पीतल की चकती ने और बाँस की सीक की जगह फौलाद के तार ने ले ली है। यहाँ भी हम काम के काफी प्रश्न सोच सकते हैं। जैसे 'चकती और तार की नाप इतनी ही क्यो रखी गयी है ? इसमे ज्यादा या कम क्यों नहीं ?' इसके बाद कपास पर थोडे-से व्याख्यान दिये जायेंगे। जैसे, कपास खासकर किस तरह

की जमीन मे पैदा होती है, उसकी कितनी किस्मे है, किन देशो और हिन्दुस्तान के किन प्रांतों में वह उगायी जाती है, वगैरह-वगैरह। कपास की खेती के बारे मे और उसके लिए कौनसी जमीन उपयुक्त हो सकती है, इस बारे मे भी कुछ ज्ञान कराया जा सकता है। इससे हम थोड़ा खेती-बारी के बारे में भी जान लेंगे। कताई के तारो को गिनती गजों मे निकालना, सूत का नम्बर मालूम करना, लच्छियाँ बनाना, बुनकर के लिए उसे तैयार करना, कपडे की अमुक बनावट मे कितने गज सूत लगेगा आदि बातों द्वारा पूरा प्रारम्भिक गणित सिखाया जा सकता है। कपास उगाने से लेकर बुनाई, कपास चुनना, ओटना, धुनना, कातना, माँड़ी लगाना, बुनना तक की सभी क्रियाओं का अपना-अपना सम्बन्ध यन्त्र-शास्त्र, इतिहास और गणित से है। इसमे मुख्य कहना यह है कि बच्चों को जो भी दस्तकारी सिखायी जाय, उसके द्वारा उन्हे पूरी तरह से शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शिक्षा दी जाय। उद्योग की सभी क्रियाओं के द्वारा आपको बच्चो के अन्दर जो भी अच्छी चीजें हैं, उन सबको विकसित करना है।"

सर्वांगीण विकास

इसी क्रम मे गांधीजी ने 'हरिजन सेवक' (१७-४-'३७) मे आगे लिखा है कि "यदि बचपन से बालकों के हृदय की वृत्तियो को ठीक तरह से जोड़ा जाय, उन्हे खेती, चरखा आदि उपयोगी कामो मे लगाया जाय और जिस उद्योग द्वारा उनका शरीर खूब कसा जा सके, उस उद्योग की उपयोगिता और उसमे काम आनेवाले औजार वगैरह की बनावट आदि का ज्ञान उन्हे दिया जाय, तो उनकी बुद्धि का विकास सहज ही होता जायगा और नित्य उसकी परीक्षा भी होती जायगी। ऐसा करते हुए गणित-शास्त्र आदि के जिस ज्ञान की आवश्यकता हो वह उन्हे दिया जाय और विनोद के लिए साहित्य आदि का ज्ञान भी देते जायें, तो तीनो वस्तुऐं सन्तुलित हो जायेंगी और उनका कोई अंग अविकसित न रहेगा। मनुष्य न केवल बुद्धि है, न केवल शरीर, न केवल हृदय या आत्मा। तीनो के एक समान विकास मे ही मनुष्य का मनुष्यत्व सिद्ध होगा। इसमे सच्चा अर्थ-शास्त्र है। इसके अनुसार यदि तीनों का विकास एक साथ हो तो हमारी उलझी हुई समस्याएँ आसानी से सुलझ जायेंगी।"

उद्योग की आत्मनिर्भरता

गांधीवादी शिक्षा की एक विशेषता माध्यम रूप से चुने जानेवाले उद्योग का आत्मनिर्भर होना है। गांधीजी उद्योग की आत्मनिर्भरता पर इसलिए जोर

देते हैं कि इससे विद्यार्थी अपने भावी जीवन म आत्मनिर्भर बनने और अपनी आवश्यकताओं को स्वय पूर्ण करने की प्रेरणा पाता है। इम प्रकार गाधीजी के मतानुसार यह शिक्षा विद्यार्थी के भावी जीवन मे बेकारी के विरुद्ध महान् शान्ति बनकर जगती है। शिक्षा मे उद्योग के समावेश से न केवल छात्रों के व्यक्तित्व का सागोपाग विकास ही होगा, प्रत्युत पाठशाला और उसके बडे रूप समाज, दोनो मे आत्मनिभरता का साम्राज्य होगा।

उद्योग को आत्मनिर्भर बनाये रखने के लिए विद्यालयो म अनुसधान और खोज की जायगी। विद्यार्थी स्वय कला के उत्थान के लिए अपनी सुकोमल बुद्धि के आश्रय मे नये-नये प्रयोग करेंगे। प्रयोगो मे न केवल उन्हे आगे बढने का पथ प्रदर्शन ही मिलेगा अपितु वे अपने अपने कार्य मे दत्त चित्त रहने से सत्यान्वेषी साधन अहिंसा का भी सम्यक पालन कर सकेंगे। उद्योग का आधार प्राय सामूहिक क्रियाशीलता होती है अत छात्रो मे स्वभावत ही परस्पर सहयोग सहकारिता और सम्मान के गुणो का आविर्भाव होगा। वे दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे, अपने चारो ओर सामाजिक वातावरण की स्थापना करेंगे और बदले मे अपने अधिकारो का सम्यक लाभ उठा सकेंगे। इस प्रकार सामाजिक उत्तरदायित्व का परिवर्धन गाधीवादी शिक्षा की एक और विशेषता है।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा

गाधीजी के अनुसार बालक की प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। विदेशी भाषा नि सन्देह बालक को सुगमतापूर्वक अपने विचार प्रकट करने मे सहायता नही दे सकती। उसके अनेक भाव कह न सकने।के कारण अन्दर ही घुटकर रह जाते हैं। वह निराश हो जाता है निराशा गम्भीर होती है और वह समय से पूर्व बूढा हो जाता है। बालक अपना चुल-बुलापन सहज चचलता तथा हास्य खो बैठता है, दूसरी भाषा उस पर बोझ बन जाती है वह दब जाता है पिस जाता है। उसके गुणो का विकास नहीं होता और उसके व्यक्तित्व का ह्रास हो जाता है।

बेसिक शिक्षा

ग्राम को सबसम्पन्न इकाई के रूप म दिखाने के इच्छुक महात्मा गाधी ग्राम की आत्मनिर्भरता को अपना लक्ष्य बनाते हुए और उसी लक्ष्य को व्यावहारिक बनानेवाली बेसिक शिक्षा की योजना दी है जो बालक को विशुद्ध सैद्धान्तिक या पुस्तकीय वातावरण से बचा लेती है और उसकी क्रियाशील रुचि की सतुष्टि

का कारण बनती है। प्रस्तुत शिक्षा क्रियाशील और उत्पादक है। देश भर के बालक एक ही ढर्रे पर शिक्षा प्राप्त करेंगे, सक्रिय रहगे और उत्पादन करेंगे। ऐसा करने से प्रादेशिक सकीर्णता का अन्त हो जायेगा और वे सब परस्पर अनेक होते हुए भी एक प्राण बने रहेंगे। उनम परिश्रम के प्रति लगाव होगा, वे मिलकर कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढेंगे। उनम सामाजिक उत्तरदायित्व के भाव पनपेंगे। यह शिक्षा शरीर विज्ञान की भी उपेक्षा नही करती। विद्यार्थी को बौद्धिक परिपक्वता ही नही, शारीरिक परिपक्वता प्रदान करने की योजना भी इसमे है। डा० जाकिर हुसैन समिति ने इस पर मत प्रकट करते हुए लिखा था कि शारीरिक शिक्षा मे मानवीय अस्तित्व अधिक पुष्ट और योग्य हो सकता है। गाधीजी की शिक्षा पद्धति पुरातन रूढियो के ३ आर पर नहीं, ३ एच पर आधारित है। यह रीडिंग राईटिंग-अर्थमेटिक तक ही सीमित नही, यह हैण्ड, हेड और हार्ट की शिक्षा है।

उपसहार

वस्तुत गाधीजी ने हमे जो भी दिया, महान् विचार-धारा, उसका सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप तथा उसे व्यवहार मे रखने के परिस्थित्यानुकूल अपेक्षित साधन, जीवन के उच्च लक्ष्य, लक्ष्यो का मूल्याकन और उस पर भी सत्य, अहिंसा और प्रेम की मणि माला, सब अनूठा और सरस दिया। मानव-जीवन के क्षत विक्षत वक्षस्थल पर अनुलेप सदृश सदेश दिया, मानवता का आह्वान किया और पुनीत नैतिकता को मनुष्य की सगिनी बनाकर भारतवासियो के हृदय-परिवर्तन कर दिये। महात्मा गाधी का प्रस्तुत महत्त्व युगो तक इसी प्रकार छाया रहेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।●

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति : एक समीक्षात्मक दृष्टि

शंकरलाल त्रिवेदी

नीति-निर्धारण के आधार पर

आश्चर्य की बात है कि आज आजादी के २२ वर्ष बाद भी हमारी शिक्षा नीति स्पष्ट नही है। आज तक राष्ट्र यह निर्णय नही कर पाया है कि शिक्षा म हम चाहते क्या हैं ? राष्ट्रीय नीति निर्धारण मे प्राय राजनीति अपना दाव खेल जाती है।

आयोग बनते हैं नीति निर्धारण के लिए, लेकिन किसी आयोग ने यह निश्चय नही किया कि हमारी शिक्षा के शाश्वत आधार क्या हैं। प्रत्येक आयोग ने मानव-जीवन के शाश्वत मूल्यो को कम महत्त्व देकर अपना अधिक ध्यान एकमात्र भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति की तरफ लगाया है जैसे मानव जीवन भौतिक सुख-सुविधाओ के अलावा कुछ है ही नहीं। राष्ट्रहित के बजाय विभिन्न राज्य एव समुदायो की माँगो को पूर्ण करने का ही प्रयत्न किया है। आयोगों के अधिकतम सुझाव आज भी विषय-केन्द्रित ही जान पडते हैं। इसम कोई सशय नही कि तकनीकी दक्षता एव ज्ञान भण्डार आज की शिक्षा के प्रमुख ध्येय हैं, लेकिन 'हेज' के कथनानुसार—'इन सबके होते हुए भी कुछ हम भूल रहे हैं वह बुद्धि कि जो हमे सुख-शान्ति के साथ रहने मे सहायता कर सके।' रसेल के शब्दो मे आज बढती हुई बुद्धिमत्ता एव बढते हुए पार स्परिक विनिमय के ससार म प्रगति की सकल्पना स्पष्ट करना भी मुश्किल है। मानव-मस्तिष्क शायद 'प्लेटो' के आदर्श-स्वप्न (यूटोपिया) तक नही पहुँच सके, लेकिन ऐसा एच० आर० हेय का कहना है कि यदि वह पशुता से परे दृष्टि करके देवत्व की तरफ देखता ही रहे तो हम अज्ञानजन्य अनेक विपत्तिया को देख सकते हैं।

शिक्षा-नीति के निर्धारण मे एक अन्य बाधा भी है। गणतत्र प्रजातत्र व्यक्ति, समाज, व्यक्तित्व आदि शब्दो का प्रयोग तो हम करते हैं, परन्तु आज तक हमारे सामने इन शब्दो का सही एवं स्पष्ट रूप नही आया है। किसी आयोग ने यह कही स्पष्ट नही किया कि भारतीय व्यक्तित्व कैसा और क्या होगा ? भारतीय नागरिक का स्वरूप क्या होगा और कैसे व्यक्तित्व का निर्माण करने की हम कल्पना करते हैं। जब तक हमारे सामने व्यक्तित्व का यह रूप

न हो, जिसे हम शिक्षा के माध्यम से निखारना चाहते हैं, तब तक शिक्षा-नीति का सही निर्धारण नहीं हो सकता।

अत राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के निर्धारण मे हमे स्थायित्व लाना है। हमे यह देखना है कि राजनैतिक अथवा प्रशासनिक परिवर्तनो से शिक्षा-नीति मुक्त रखी जा सके। हमे हमारी सकल्पनाओ को अद्यतन भारत के शिक्षा-दर्शन के आधार पर स्पष्ट करना है। साथ ही कुछ सैद्धान्तिक आग्रह-दुराग्रह, जो हमारी वास्तविक परिस्थितियो की तरफ आँखें बन्द करने को बाध्य करते हैं, उन्हे भी दूर करना होगा। भारतीय सामाजिक सरचना मे जातिगत वर्गीकरण एक तथ्य है, लेकिन जातिविहीन समाज की कल्पना नीति-निर्धारण में इस तथ्य पर विचार करने से रोक देती है। वैसे ही वर्ग-प्रधान नागरी सामाज मे वर्ग-हीन समाज की कल्पना वर्ग प्रदत्त शक्तियो का उपयोग करने से हमे रोकती है। वर्गनिरपेक्षता के कारण धार्मिक शिक्षा-प्रदत्त उच्च गुणो का लाभ हमारी शिक्षण-सस्थाएँ बालको को नही दे सकतीं।

जब हम आवश्यकताओ को आधार बनाकर नीति निर्धारण मे लग जाते हैं तब एकमात्र आर्थिक एव भौतिक आवश्यकताएँ ही आधार बन जाती हैं। कोठारी-आयोग ने भी उत्पादन को ही प्रथम आधार बनाया है और उसके साथ विज्ञान एव तकनीकी जानकारी को सम्बद्ध किया है। जीवन के शाश्वत प्रश्नो का उत्तर दर्शन ही देता है। इसका अर्थ यह नहीं कि भौतिक आवश्यकताओ को प्रधानता न मिले। जैसे हेग्ज का कहना है, "इन प्रश्नो को हमे आज की समस्याओ के सन्दर्भ मे ही देखना होगा।" लेकिन जीवन के प्रयोजन एवम् मूल्यो पर दर्शन एवम् विचारो का प्रभाव रहता ही है। और इसी दर्शन के आधार पर बुद्धिमानी के साथ जिसे प्रेम है वह बुद्धि के उच्चतम स्वरूप को प्राप्त करने की खोज करते ही रहते हैं। शिक्षा-नीति निर्धारणकर्ताओ को यह याद रखना चाहिए कि दर्शन हमे समुचित कल्याणमय जीवन का लक्ष्य प्रदान करता है। जिसे शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयत्न होता है। मानव की सुषुप्त आध्यात्मिक प्रवृत्ति को जाग्रत करने के लिए भी दर्शन की आवश्यकता है।

मनोविज्ञान को हम दर्शन से भिन्न नही कर सकते। मानव-प्रकृति और विशिष्ट दृष्टि से शिक्षार्थी, शिक्षक एव शिक्षा मे ग्राहक समाज के अग, उनकी मनःस्थितियो का अध्ययन आदि तत्वो का सम्यक् ज्ञान शिक्षा-नीति के निर्धारण मे अत्यन्त आवश्यक हैं। उच्चतम शिक्षा-योजना मनोवैज्ञानिक आधार के बिना असफल रहती है। हमारी शिक्षा-नीति बनाते समय कभी हमने

व्यापारी, उद्योगपति, नौकर-वर्ग अथवा अधिकारी-वर्ग की सलाह नही ली। शिक्षानीतियां सामूहिक मनोवृत्ति के अध्ययन के बिना एवम् बाल-मनोविज्ञान के आधार के बिना पगु ही रहती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति राष्ट्रीय जीवन की कल्पना को साकार करने का मार्ग-दर्शन है एवम् तदनुकूल नीतियो का अनुकूलन है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय सचित सस्कृति एवम् परम्पराओ को सजाये रखना तथा नूतन परिस्थिति के परिवर्तनो को विना विकृति के आत्मसात् करना है। जीवन मे आयातित ज्ञान और परम्पराएँ जब तक राष्ट्रीय शिक्षा मे आत्मसात् एवम् ओतप्रोत नहीं होगीं तब तक शिक्षा श्रेयस्कर नहीं हो सकती।

राष्ट्रीय जीवन की परिकल्पना को पूर्ण एव पुष्ट करने के लिए शिक्षा-नीति निर्धारण मे हमे राष्ट्रीय, सामाजिक, सामुदायिक एव व्यक्तिगत आव श्यकताओ को ध्यान मे रखना पडेगा। जब हम यह मानते हैं कि व्यक्ति एव समाज एक-दूसरे के पूरक हैं, हम व्यक्ति को नजरअन्दाज नहीं कर सकते। कोठारी आयोग ने जितना महत्त्व सामाजिक आवश्यकताओ को दिया है उतना व्यक्ति को नहीं दिया। इसमे भी फिर बौद्धिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक एवम् भौतिक सभी आवश्यकताओ को समान रूप से हमे स्थान देना चाहिए। सिर्फ गरीबी की दुहाई देकर भौतिक पक्ष को ही सबल बनाये रखना राष्ट्रीय चरित्र के लिए अहितकर ही है। भारतीय विद्यार्थी को यदि आलोडित, चक्र-विशिष्ट एवम् अन्तर्जात हताशा से बचाना है और उसमे व्याप्त घोर नैराश्य को दूर करना है तो आध्यात्मिक एवम् भावात्मक आवश्यकताओ पर पूर्ण विचार नीति-निर्धारण के समय होना चाहिए। भावात्मक सतुष्टि मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वैसे ही आध्यात्मिक शिक्षाजन्य नैराश्य प्रतिरोधक शक्ति की भी राष्ट्र को आवश्यकता है।

हमारी निर्धारित शिक्षा-नीति

गत वर्ष भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा-नीति पर एक निर्णय पारित किया है। इसका अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि अभी बीस वर्ष के पश्चात् भी कुछ भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के अलावा हमारी शिक्षा-नीति मे कोई शाश्वत तत्त्व अथवा आधारभूत नीति हम नहीं ला सके हैं। शिक्षा-नीति मे सबसे प्रथम वाक्य यह है—'ब्रिटिशकाल मे जो भारत मे शिक्षा थी वह न शिक्षा थी, न वह भारतीय थी।'' इसी सन्दर्भ मे आज जो शिक्षा-नीति निर्धारित की गयी है, उसे देखें तो क्या उसमे सही शिक्षा एवम् भारतीयता का निर्धारण

स्पष्ट नजर आता है। सर्वप्रथम तो 'भारतीय' की सकल्पना ही हमारे सामने स्पष्ट नही है। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी, प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समुदाय अपनी-अपनी दृष्टि से 'भारतीय' शब्द का अर्थ निकालते है। परिणामत. हमारे सामने यही स्पष्ट नही है कि 'भारतीय शिक्षा' कैसी हो ? इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा-नीति-निर्धारण मे इस सकल्पना को स्पष्ट कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से कुछ ऐसी परम्पराएँ एवम् व्यवहार हमे निश्चित करने पडेंग जिनको पाश्चात्य से भिन्न 'भारतीय' हम कह सकते हो। इसको जब हम निर्धारित करेंगे तभी 'राष्ट्रीय भावना' के उद्देश्य की हम पूर्ति कर सकेंगे।

शिक्षा मे जितनी स्वतत्रता होगी उतनी ही शिक्षा फलवती होगी। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-नीति मे इस 'स्वतत्रता' का कही भी सकेत नही है। राजकीय नियत्रणो मे हमेशा शिक्षा का स्थान गौण ही रहा है और शिक्षाशास्त्रियो के बजाय राजनीतिज्ञो ने ही शिक्षा की नीति निर्धारित की है। आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार न्याय-विभाग कार्यपालिका से स्वतंत्र है वैसे ही शिक्षा भी शासन के नियत्रण से मुक्त हो जानी चाहिए और इसका सचालन पूर्णतः शिक्षाशास्त्रियो के हाथ मे ही सौपा जाना चाहिए।

आज की शिक्षा-नीति की सबसे बडी कमी यह है कि वह एकागी है। शिक्षा-नीति-निर्धारण मे सर्वाधिक जोर दो बातो पर ही दिया जाता है— (१) विज्ञान, एव (२) भौतिक आवश्यकताएँ। विज्ञान की आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं कर सकता, लेकिन जब हम यह जानते हैं कि हमारे अधिकाश विद्यार्थी अन्य विषयो को पढते हैं तब आवश्यकता से अधिक महत्त्व किसी एक शाखा को देना कई दोषो को उत्पन्न करता है। आज के विज्ञान के विद्यार्थी सामाजिक व्यवहार, दर्शन एव सस्कृति की दृष्टि से किसी समस्या को देख ही नही सकते। इस प्रकार इनका एकागीपन साधारण जीवन-प्रवाह से उन्हे अलग ही रखता है।

यह सामान्य प्रवृत्ति है कि मनुष्य अपनी भौतिक एव शारीरिक आवश्यकताओ को प्रथम स्थान दे, लेकिन हुआ यह कि शिक्षा-आयोग ने सर्वाधिक महत्त्व उत्पादन को दिया है। यदि उत्पादन आवश्यक है तो उत्पादन करनेवाला मनुष्य उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम यदि यह सोचें कि पहले हम उत्पादन बढा लें, फिर मनुष्य को ठीक कर लेंगे तो यह भूल होगी। आज हम देख रहे हैं कि उत्पादन बढाने के कई प्रयत्नो को करते हुए भी भारत के लोगों मे काम न करने की, अधिक मुनाफा कमाने की, तोड-फोड की, हडतालो की, आलस्य की, एव अपने ही स्वार्थ को देखने की जो प्रवृत्ति है वह उत्पादन को

और पीछे धकेल रही है। जहाँ तक भाषाई समस्या का प्रश्न है, शिक्षा में भाषा की समस्या होनी ही नहीं चाहिए। यदि शाला में जो भाषाएँ चाहे उन्हें पढ़ाने की स्वतन्त्रता दे दी जाय एवं अनिवार्यता और प्रशासनिक नियन्त्रण हटा दिया जाय तो अपने आप समस्या का समाधान हो जायेगा। शिक्षा का ग्राहक समाज जिन भाषाओं की आवश्यकता समझेगा अपने बालक को पढ़वायेगा और बालक अपनी आवश्यकता और क्षमता के अनुसार दो भाषाएँ भी सीख सकता है और चार भी। इसके अलावा इस समस्या को सुलझाने का एक यह भी मार्ग है कि सारे राष्ट्र में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त कर दी जाय और राष्ट्र की चौदह भाषाओं में से कोई दो भाषाएँ अथवा इससे अधिक भाषाएँ बालक सीखें। जब तक अंग्रेजी की अनिवार्यता बनाये रखते हैं और हिन्दी पर नारेबाजियों से जोर दे रहे हैं तब तक भाषा-समस्या का हल मुश्किल है। सभी फार्मूले समाप्त कर दिये जायें, प्रादेशिक अप्रादेशिक भाषा के भेद को समाप्त कर दिया जाय, अंग्रेजी की अनिवार्यता हटा दी जाय तो समाज अपनी आवश्यकता की भाषा अपने आप चुन लेगा और विकसित कर लेगा।

अध्यापकों के प्रशिक्षण का जहाँ तक प्रश्न है हमारी राष्ट्रीय नीति जब तक उसे दैनिक व्यावहारिक कार्यों से नहीं जोड़ेगी एवम् पंचवर्षीय मूल्यांकन नहीं करेगी, प्रशिक्षण का प्रभाव अध्ययन-अध्यापन पर नहीं रहेगा। वैसे ही चयन एवं पदोन्नति की प्रणालियों में अध्यापक कितना सतत अध्ययन करता है एवं शिक्षा-क्षेत्र में उसका कितना योगदान, प्रयोग प्रकाशन प्रायोजना एवं प्रवचनों के माध्यम से है समाज में उसका प्रभाव किस प्रकार का है इसको स्थान नहीं मिलेगा तो गुणात्मक विकास भी मुश्किल से ही हो सकेगा।

अब हम प्रसार-नीति पर भी पुनर्विचार करना होगा। प्रसार की गति धीमी करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। अति प्रसारवाद ने आज कई समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। भवन की अध्यापकों की, साधन-सामग्री की स्तर गिरने की इत्यादि कठिनाइयाँ इतनी अधिक हैं कि वर्तमान विद्यालयों की परिस्थितियाँ देख कर दुःख होता है। प्रसार की धुन में कितना ही समय अध्यापकों का व्यय में ही नष्ट होता है। यदि वास्तव में प्रसार की गति इतनी ही तेज रही तो आने वाले वर्षों में गुणात्मक दृष्टि से हम राष्ट्र को लाभ नहीं पहुँचा सकेंगे।

प्रौढ़ शिक्षा को भी आज हम राष्ट्रीय नीतियों में महत्त्व का स्थान दे रहे हैं। यदि इतना ही ध्यान हमने इस बात पर दिया होता कि नये प्रौढ़ अशिक्षित न होने पायें तो आज समस्या इतनी जटिल नहीं होती साथ ही जो प्रौढ़ प्रशिक्षित होने हैं वे भी कुछ समय बाद जैसे थे वैसे ही हो जाते हैं। यह कार्य

अध्यापको से ही लिया जाता है एव निःशुल्क लिया जाता है। परिणामत प्रौढ शिक्षा का लाभ राष्ट्र को नही मिल पाता है। अत इस पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है। मेरा तो यही विचार है कि गाँवो के बालक यदि सभी शिक्षित हो जायें तो प्रौढो की समस्या अपने आप ही कुछ वर्षों मे समाप्त हो जायगी। अत अधिक जोर प्राथमिक शिक्षा पर ही दिया जाय तो अधिक लाभ होगा। प्रौढो को पढाना ही है तो ४० वर्ष के ऊपर की आयु के लोगो को खीचने की इसम आवश्यकता नही है। प्रौढ शिक्षा का स्तर कक्षा ५ वी तक का निर्धारित पाठ्यक्रम होना चाहिए, उसकी भी परीक्षा होनी चाहिए। सिर्फ अक्षरज्ञान हस्ताक्षर करना सौ तक पहाडे और एक-दो गीतो को गा सकने म ही प्रौढ शिक्षा समाप्त नहीं हो जानी चाहिए।

हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-नीति ने अभी तक स्पष्ट रूप से यह नही अपनाया कि खेलकूद, व्यायाम, सामाजिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक प्रवृत्तियो एव बालक के व्यवहार को विषयाध्यापन के समान स्तर को ही महत्त्व दिया जाय। अभी हम वही ब्रिटिशकालीन विषयोन्मुखी तथा कक्षागत प्रणाली पर चल रहे हैं। बालक का सर्वांगीण विकास तब तक सम्भव नही, जब तक इन प्रवृत्तियो को महत्व नही मिलता।

धर्मनिरपेक्षता की नीति का हमने तो यही अर्थ लगा लिया है कि धर्म का कही नाम तक नही हो। सारी शिक्षा-नीति मे इस पर कोई ध्यान नही दिया गया। ज्ञान विज्ञान के असतुलित बुराइयो का आध्यात्मिक चेतना को जागृत किय बिना परिष्कार नही कर सकेंगे।

धर्म में से आस्था हटाकर हम रिक्तता अवश्य उत्पन्न कर रहे है लेकिन उस रिक्तता को भरने के लिए हमारे पास कोई साधन नही है। माँ-बाप अशिक्षित हैं और शालाओ मे भी नैतिक धार्मिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नही है। ऐसी परिस्थिति म बालक एकमात्र भौतिक सुख-सुविधा के अलावा और क्या देखेगा? मानवीय गुणो का विकास सम्भव ही नही है। अत जब वह समाज मे प्रवेश करता है तब सिवाय अपने स्वार्थ के कुछ नही देखता। हमारी शिक्षा नीति म इस समस्या का निराकरण होना चाहिए।

हमारी शिक्षा-नीति कृषि पर आज सर्वाधिक जोर देती है। कृषि हमारा मुख्य व्यवसाय है यह सत्य है। कृषि से ही अन्न एव कच्चा माल प्राप्त होता है इसम भी सशय नही, लेकिन आर्थिक दृष्टि से जितना भार हमने कृषि पर दिया है उतना ही भार हम उद्योगो पर देते तो आज कृषि एव उद्योग, दोनो ही समुन्नत होते और विदेशी मुद्रा की कमी नहीं होती। कृषि, हमेशा न्यून से

न्यूनतर उत्पादन देनेवाला धन्धा है। कृषि मे आज भी हम उतने आश्वस्त नहीं हो सकते जितने उद्योगो मे, और उद्योग के साथ कृषि तो अपने आप बढती ही है। साथ ही अन्नाभाव को हम उद्योग से अर्जित धन से भी पूरा कर सकते हैं। कृषि का लाभ भी हमें बहुत देर से मिलता है, साथ ही आज भूमि पर इतना भार है कि कृषि को अधिक महत्त्व देने से शहरी जनता भी कृषि की तरफ मुड रही है। परिणामत: यह भार और अधिक बढ रहा है। गांवो मे बेरोजगारी बढ रही है। छोटे-छोटे खेत होने से महँगे वैज्ञानिक उपकरणो का उपयोग सम्भव नही है। वैज्ञानिक खाद का यह प्रभाव हो रहा है कि पिता हँसते है और पुत्र रोयेंगे। अत. राष्ट्रीय शिक्षा-नीति को कृषि एव उद्योग म सतुलन बनाये रखने मे समर्थ होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति ने जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं उनम कही दर्शन एवम् मनोविज्ञान को आधार नही बनाया गया। चारो ही उद्देश्य एकमात्र वर्तमान बाहरी आवश्यकताओ को ही देखते हैं। भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति मात्र से मनुष्य मनुष्य नही बनता। मनुष्य-जाति की मानसिक कुठाओं को दूर करना होगा। नैराश्य एव हताशा से सघर्ष करने की शक्ति विकसित करनी होगी एवम् व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन का आधार भी निश्चित करना होगा। हमारी निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा-नीति मे इसका कोई आधार निश्चित नहीं किया गया है। हम भारतीय शिक्षा दर्शन निर्धारित करना पडेगा, तभी शिक्षा-नीति सफल बन सकेगी।

हमने व्यक्ति एवम् समाज, दोनो को विकसित करने का बीडा उठा रखा है, लेकिन जहाँ तक राष्ट्रीय नीति का प्रश्न है, व्यक्ति के विकास के लिए इसमे बहुत कम गुजाइश रखी गयी है। समूह को हमने अधिक ध्यान म रखा है। प्रमाणात्मक विकास पर जितना जोर दिया गया है उतना ही व्यक्ति की प्रतिभा के विकास के लिए कम स्थान है। आज आजादी के बीस साल बाद सही रूप से प्रतिभाओ को ढूंढने एव विकसित करने की कोई न-कोई नीति हमे निर्धारित करनी पडेगी।

विश्वविद्यालयो की शिक्षा व्यवस्था को भी हमे बदलना होगा। विश्व-विद्यालयो को अध्यापन-केन्द्रो एव परीक्षा-केन्द्रो के रूप म बनाये रखने के बजाय एकमात्र अध्ययन-केन्द्रो के रूप मे ही विकसित किया जाना चाहिए। जिनको स्वय अध्ययन करना है वे वहाँ जितने दिन रहना हो, अपनी इच्छा से रहे। विश्व विद्यालय के प्राध्यापक मार्गदर्शक मात्र रहे, चाहे विद्यार्थी पुस्तकालय मे अध्ययन करें चाहे किसी विशिष्ट बिन्दुओ पर प्राध्यापको का प्रवचन सुनें अथवा समवर्ग-

चर्चा आयोजित करें। वर्ष भर रहना एव उपस्थित की अनिवर्याता की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। नियमित एव प्राइवेट विद्यार्थियो का भेद समाप्त कर अध्ययन की पूर्ण जिम्मेदारी विद्यार्थी पर ही डाल दी जाय। इस प्रकार यदि विश्वविद्यालय अध्ययन-केन्द्र बनेंगे और विद्यार्थी स्वय अध्ययन के लिए जिम्मेदार होगे तो आज की अनुशासनहीनता की स्थिति बिलकुल समाप्त हो जायगी।

हम इन सभी बातो पर विचार करते समय कभी-कभी यह भी सुनते हैं कि पहले आवश्यकताओ की पूर्ति होगी उसके बाद ही मनुष्य चरित्र, धर्म, गुण, सभ्यता एवम् सस्कृति के बारे में सोचता है। लेकिन यदि हम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति मे ही खो जायेंगे और मनुष्य मानवता से रिक्त होता जायेगा तो फिर उसका इलाज आसान नही होगा। इसीलिए शिक्षा मे भौतिकता के साथ साथ आध्यात्मिकता का समावेश होना चाहिए। हमे विश्वास है हमारे शिक्षाशास्त्री समय रहते हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-नीति को सही दिशा मे मोडने का प्रयास कर रहे हैं।

—'जन शिक्षण' से साभार।

आचार्यकुल : लक्ष्य और संगठन

वंशीधर श्रीवास्तव

पृष्ठभूमि

स्वराज्य हो गया तो गांधीजी ने यह नही कहा कि हमारा काम पूरा हो गया। उन्होंने तो यह कहा कि हमारा काम तो अब शुरू हुआ है। वह काम था एक ऐसे समाज का निर्माण जिसमे सबका उदय हो, सबका विकास हो।

सर्वोदय-समाज के निर्माण के विषय में गांधीजी ने एक बात साफ कही थी कि यह काम सत्ता के माध्यम से नही होगा। इसीलिए वह एक ऐसी नयी जमात बनाना चाहते थे जो राजनीति से अलग रहकर लोक-सेवा का काम करे। उन्होंने काग्रेस से कहा भी था, वह राजनीति मे न जाकर 'लोक-सेवक सघ' मे बदल जाय और लोक-सेवा का काम करे। परन्तु काग्रेस ने उनकी बात नही सुनी। और जो बात उस समय गाधीजी ने काग्रेस से कही थी, वही बात आज विनोबा शिक्षको से कह रहे हैं—सत्ता की राजनीति से अलग रहकर लोक-सेवा की और लोकनीति के मार्ग-दर्शन की बात।

सन् १९६७-६८ मे जब विनोबा ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य की अलख जगाते हुए बिहार मे घूम रहे थे, तो शिक्षकों की सामाजिक हैसियत के उन्नयन के लिए और उनकी नैतिक शक्ति जगाने और बढाने के लिए उन्होंने शिक्षको की एक स्वतत्र सत्ता खडी करने की कल्पना की। उन्होंने कहा कि उनकी कल्पना के शिक्षक-संगठन मे प्राथमिक विद्यालयो से विश्वविद्यालयो तक के सभी ऐसे शिक्षक रहेंगे जो इस बात का सकल्प करें कि राजनीति से अलग रहकर वे हिंसा की विरोधी लोकशक्ति के निर्माण मे विनोबा की सहायता करेंगे, जिससे लोगो मे समस्याओ को अहिंसात्मक ढग से हल करने की आदत पडे और विश्व-शांति के लिए आवश्यक मानस तैयार हो सके। विनोबा ने शिक्षको के इस नये सगठन का नाम रखा—"आचार्यकुल"।

आचार्यकुल नाम

आचार्यकुल नाम के सम्बन्ध मे विनोबा कहते हैं—"आचार्यकुल अर्थात् आचार्यों का कुल। कुल शब्द परिवार-वाचक है और हम सभी आचार्यों का एक ही परिवार है। ज्ञान की उपासना करना, चित्त-शुद्धि के लिए प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य-भाव रखकर उनके विकास के लिए सतत् प्रयत्न करते रहना, सारे समाज के सामने जो समस्याएँ आती हैं, उनका तटस्थ भाव से

चिन्तन करके सर्व सम्मति का निष्पक्ष निर्णय समाज के सामने रखना और उनके अहिंसक निराकरण के लिए समाज का मार्गदर्शन करना इत्यादि कार्य जो हम करने जा रहे हैं वह एक परिवार की स्थापना का ही काम है। इस वास्ते मैंने इसका नाम आचार्यकुल रखा है। इसके अलावा अरबी भाषा के साथ भी इसका मल है (संस्कृत के साथ तो है ही)। आचार्यकुल यानी कुल के कुल आचार्य, आचार्यों के कुल का मतलब होता है कि इस परिवार मे ऊँचा-नीचा छोटा-बडा का सवाल ही नही उठता। इसलिए जितने भी शिक्षक है, आचार्य हैं, समान-रूप से आदरणीय है।' [१]

आचार्यकुल का लक्ष्य

इस आचार्यकुल का लक्ष्य क्या होगा इसके विषय मे विनोबा कहते हैं—'यह जो आचार्यकुल स्थापित होने जा रहा है, वह शिक्षको का हक या अधिकार प्राप्त करने के लिए नही है। अधिकार प्राप्त करने के लिए तो दूसरी संस्थाएँ भी हैं। यह तो अपने कर्तव्य के प्रति जागृति और प्रयत्न के लिए है। इससे सारे शिक्षक अपनी वास्तविक हैसियत पायेंगे, जिसे वे आज खोये हुए हैं।' [२]

भारत की परम्परा मे राज्य की सत्ता गुरु पर नहीं थी। गुरु उससे परे था। शिक्षा शासन मुक्त थी। गुरुकुलो पर कुलपतियो का ही अधिकार था। और यद्यपि गुरुकुलो को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता मिलती थी जमीन मिलती थी गौयें मिलती थी, फिर भी गुरुकुलो मे किन विषयो का अध्यापन हो किस पद्धति से अध्यापन हो, कौन अध्यापन करे इस विषय के निर्णायक कुलपति ही थे। गुरुकुल की व्यवस्था मे राजा किसी प्रकार का दखल नही देता था। आज भी न्याय विभाग शासन से ऊपर है और जहां ठीक लगे वहाँ वह शासन के खिलाफ भी फैसला दे सकता है और उस पर अमल करना पडता है। यद्यपि जजो को तनख्वाह सरकार की तरफ से ही मिलती है। इसीलिए न्याय विभाग की अपनी प्रतिष्ठा है। वैसे ही शिक्षको की भले ही उन्हे सरकार की ओर से तनख्वाह मिले क्योंकि सरकार तो लोगो से लेकर ही देती है, अपनी स्वतन्त्र हस्ती होनी चाहिए। शिक्षा शासन मुक्त स्वायत्त होनी चाहिए। यह आचार्यकुल का एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। इसकी योजना आचार्यकुल को करनी है। [३]

१—विनोबा-आचार्यकुल-पृष्ठ-५३-५४

२—विनोबा-आचार्यकुल-पृष्ठ-५४

३—विनोबा-आचार्यकुल-पृष्ठ-३९

आचार्यकुल सत्ता की राजनीति से अलग रहे

इन दोनो लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि आचार्यकुल सत्ता के पीछे न भागकर अपनी शक्ति का विकास करे। राजनीति से अलग हुए बिना आचार्य राजनीति पर असर नहीं डाल सकते। जैसे न्यायाधीश पक्षपातरहित होकर ही न्याय कर सकता है, वैसे ही आचार्य राजनीति से अलग रहकर ही राजनीति का निर्देशन कर सकता है। इस सम्बन्ध मे विनोबा कहते हैं—'आचार्यकुल राजनीति का अध्ययन करेगा, परन्तु सत्ता की राजनीति (पावर-पालिटिक्स) और दलगत राजनीति (पार्टी पालिटिक्स) से वह अलग रहेगा। अगर आचार्य सत्ता की राजनीति और दलगत राजनीति मे पडता है तो उसका गौरव क्षीण होता है। इसलिए आचार्यों को सत्ता-संघर्ष की दलगत-राजनीति से ऊँचा उठकर विश्व-व्यापक मानवीय राजनीति अपनानी चाहिए।"[1] अगर आचार्य की अपनी खोई हुई हैसियत वापस पानी है तो उसे इतना त्याग करना पडेगा।

आज देश की राजनीति पक्ष-ग्रस्त है। हरएक दल अपने दल की ही बात को सत्य मानता है। 'मेरा सत्य' और 'तेरा सत्य' के जजाल मे 'सार्वत्रिक सत्य' खो गया है। सत्ता के भय और सम्पत्ति के लोभ से ऊपर उठकर सार्वत्रिक सत्य की बात कहनेवाले नही रह गये हैं। अत यह काम आचार्यकुल करे, ऐसी आशा विनोबा करते हैं। जब तक दलगत सत्य से–खडित सत्य से–ऊपर नही उठा जायगा, पूर्ण सत्य हाथ नही लगेगा। इसीलिए विनोबा का आग्रह है कि आचार्यकुल पार्टी-पालिटिक्स से अलग रहे और खडित सत्य का माध्यम न बने।

आचार्यकुल लोकनीति से सम्पृक्त रहे

पूर्ण सत्य को पाने के लिए आचार्यकुल को लोकसेवा के माध्यम से लोक मे सम्पर्क रखना होगा। अगर शिक्षक यह मानते हैं कि कक्षा मे बच्चो को पढा दिया तो हो गया और समाज के प्रति उनका दूसरा कोई कर्तव्य नही है तो शिक्षक राजनीति पर असर नही डाल सकते। अत आचार्यकुल के सदस्य राजनीति से अलग रहे, परन्तु लोकनीति से जुडे रहें। आचार्य अगर लोकसेवा का कार्य नही करेंगे तो लोक मानस से उनका परिचय नही होगा और वे लोकनीति का निर्देशन नही कर सकेंगे।

'भारत मे साढे पाँच लाख गाँव हैं। उनमें लगभग सवा लाख गाँव ग्रामदान मे आ गये हैं। ग्रामदान-ग्राम स्वराज्य के इस आन्दोलन से देश की श्रम-शक्ति

१ विनोबा—आचार्यकुल—पृष्ठ ३३-३४।

बढ़ेगी। यह किसान मजदूरों की श्रम-शक्ति है। यह एक शक्ति है। दूसरी शक्ति आचार्यों की शक्ति है, विद्वानो की शक्ति है। किसान मजदूरो की श्रम शक्ति और आचार्यों की ज्ञान शक्ति, जब इन दोनो शक्तियो का सयोग होगा तो देश मे सच्ची शक्ति बनेगी।" इस शक्ति का निर्माण आचार्यकुल का एक प्रमुख लक्ष्य है।

विनोबा ग्रामदान ग्रामस्वराज्य द्वारा जिस लोकशक्ति का निर्माण कर रहे हैं, उस कार्य मे आचार्यो से सहायता मिलनी चाहिए। करुणा के बिना विद्या का उपयोग नही है। इसलिए विनोबा जो करुणा का कार्य कर रहे हैं, उसमे आचार्यकुल का पूरा सहयोग मिलना चाहिए। 'आज स्थिति लगभग यह है कि गाँव-गाँव मे शिक्षक हैं, अगर वे ग्रामदान प्राप्ति मे, ग्रामसभा बनाने मे, और उसके सचालन मे, जमीन का बँटवारा और ग्राम-कोष का विनियोग कैसे हो, यह समझाने मे, ग्राम-स्वराज्य का विचार समझाने और प्रेम की बात ठीक से अमल मे लाने मे, गाँव का नेतृत्व करें, तो शिक्षको द्वारा बहुत बडा काम होगा। अगर देखा जाय तो भारत को आचार्यों ने बनाया है। भारत का जितना धर्म विचार है, अर्थ विचार है, समाज विचार है, वह सबका सब आचार्यों के विचार के कारण बना है। इसलिए अगर ग्रामदान-आन्दोलन को अपना आन्दोलन समझकर आचार्य अपना थोडा-सा समय दें तो बहुत बडा काम होगा।"[1]

एक-एक गाँव को सलाह देनेवाला एक-एक शिक्षक मित्र बन जाय और गाँवो की गरीबी और अज्ञान को मिटाने मे वह करुणा मूलक सहकार करे तो लोकशक्ति के निर्माण मे तो प्रगति होगी ही, समाज मे उसकी प्रतिष्ठा भी बढेगी और वह अपनी खोयी हुई हैसियत फिर प्राप्त कर सकेगा।

आचार्यकुल के तीन संकल्प—तीसरी शक्ति के निर्माण के लिए

आचार्यकुल के ये लक्ष्य पूरे हो, इसके लिए आचार्यकुल के सदस्य को तीन सकल्प करने पडते हैं। पहला तो यह कि वह दलगत राजनीति से अलग रहेगा और किसी भी राजनैतिक पार्टी का सदस्य नही बनेगा। अर्थात् सत्ता की राजनीति मे वह मुक्त रहेगा। दूसरा यह कि वह लोकसेवा का कुछ कार्य अवश्य करेगा, जिससे लोकमानस से उसका सम्पर्क बना रहे और उससे लोक-नीति को दिशा मिले। तीसरा यह कि वह किसी भी समस्या के समाधान के लिए न तो हिंसात्मक मार्ग अपनायेगा, न उसका समर्थन करेगा। अशान्ति मे दमन के लिए दण्ड-शक्ति का उपयोग नही करेगा।

१ विनोबा—आचार्यकुल—पृष्ठ ३२-३३

'अहिंसा' लोकनीति का प्रमुख तत्व है और विचार द्वारा अशान्ति का शमन उसका प्रमुख अंग। 'लोकनीति दण्ड निरपेक्ष होती है। वह मानती है कि हिंसा से और राजनीति की दण्डशक्ति से किसी समस्या का हल नहीं हो सकता। वह मानती है कि समाज की प्रगति रुक न जाय और समाज नीचे न गिर जाय, इसलिए एक बड़ी जमात समाज में ऐसी होनी चाहिए, जो निरन्तर समाज-सेवा में लगी रहे और जागरूकता के साथ सेवा करती रहे। वह सत्ता से अलग रहकर तटस्थ बुद्धि से अपने विचार जाहिर करे, जिसका नैतिक असर सरकार पर और लोगों पर पड़े। वह ऐसी जमात ही हो सकती है, जो सत्ता में न पड़े।'[1] प्रेम से विचार समझ-समझाकर सेवा और त्याग का मार्ग लोकनीति का मार्ग है।

लोकशक्ति हिंसा की विरोधी प्रवृत्ति है और दण्ड शक्ति से भिन्न है। 'दण्ड-शक्ति निरी हिंसा शक्ति नहीं है। वह मर्यादित राज्य-सम्मत हिंसा है। फिर भी हम देश में ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना है, जिसमें दण्ड शक्ति के उपयोग का भी मौका न मिले।'[2] विनोबा कहते हैं कि लोकनीति तीसरी शक्ति है, जो हिंसा की शक्ति की विरोधी है अर्थात् हिंसा की शक्ति भी नहीं है और, जो दण्ड शक्ति से भी भिन्न है अर्थात् दण्ड की शक्ति भी नहीं है। सर्वोदय समाज के निर्माण के लिए इसी तीसरी शक्ति को व्यापक बनाना है। 'आचार्यकुल' अगर ऊपर के तीन संकल्प करता है तो वह इस तीसरी शक्ति के निर्माण में सहायक हो सकेगा और देश में सरकार की शक्ति के स्थान पर लोकशक्ति खड़ी हो सकेगी। ग्रामदान-ग्राम-स्वराज्य द्वारा जिस लोकनीति का निर्माण हो रहा है, इस विद्वत्-शक्ति से उसे निर्देशन मिले तो लोकनीति की प्रगति में तेजी आयेगी।

आचार्यकुल की युग-सापेक्षता संघर्ष-मुक्त-क्रान्ति के लिए

विनोबा की संकल्पना का यह आचार्यकुल युग सापेक्ष है। आज के अणु युग में यह बात साफ हो गयी है कि शस्त्र का प्रतिकार अगर शस्त्र से किया गया, तो सर्वनाश हो जायगा। परन्तु आज तक का ऐतिहासिक सत्य यह रहा है कि हिंसा शक्ति और दण्ड शक्ति (और दण्ड-शक्ति भी प्रच्छन्न, मर्यादित, समाज-सम्मत हिंसा-शक्ति ही है) मानव-समाज को शासित करती रही है। मानव-समाज के निर्माण, धारणा और परिवर्तन के लिए ये दोनों शक्तियाँ ही जिम्मेदार रही हैं।

मनुष्य के जीवन में पहली क्रान्ति उस समय हुई थी जिस समय मनुष्य ने

---

१. विनोबा—लोकनीति—तृतीय संस्करण—पृष्ठ १२

२. चांडिल (बिहार) का भाषण ७-३-'५३

'जंगल के कानून' से बचने के लिए उन्मुक्त हिंसा के स्थान पर हिंसा को मर्यादित कर उसे राज्य के हाथ मे 'दण्ड शक्ति' के रूप मे सौंपा था। यह परिवर्तन शासन-तंत्र मे ही एक प्रकार का परिवर्तन था। उन्मुक्त हिंसा का स्थान दण्ड-शक्ति ने लिया था। परन्तु इसके बाद मनुष्य के जीवन मे जितनी भी क्रान्तियाँ हुई, चाहे वह फ्रान्स की प्रजातांत्रिक क्रान्ति रही हो, चाहे रूस की साम्यवादी क्रान्ति रही हो, उन्होंने तंत्र मे कोई परिवर्तन नहीं किया। लोकतंत्र को चलाने के लिए राजतंत्र द्वारा विकसित तंत्र को हूबहू अपना लिया गया और इस सारे तंत्र के पीछे पुलिस और सेना झांकती रही। लोकतंत्र के संचालन के लिए लोक मूलक पद्धति नहीं बनी। लक्ष्य 'सिर' काटने के स्थान पर 'सिर गिनने' का हुआ, दबाव (कोग्रर्सन) के स्थान पर मनाव (कान्सेन्ट) का हुआ, परन्तु तंत्र जिनके हाथ मे रहा, उनकी नीति सिर काटने की, हिंसा की, दण्ड की ही बनी रही। इस विसंगति का परिणाम यह हुआ कि लोकतंत्र या तो शोषण का साधन बन गया (पूंजीवादी लोकतांत्रिक देशो मे) अथवा दमन का (साम्यवादी सर्वाधिकार देशो मे)। राज्य 'लोक' का नहीं, 'तानाशाह' का रहा या 'पूंजीपति' का। नाम 'लोकशाही' रहा, काम अमलाशाही (ब्यूरोक्रेसी) का। श्री धीरेन्द्र मजूमदार के शब्दों मे 'लोक तंत्र' में खो गया।

गांधीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस विसंगति को दूर करने की बात कही। उन्होंने कहा कि अगर साध्य शुद्ध है, तो साधन भी शुद्ध होना चाहिए, नहीं तो अशुद्ध साधन साध्य को भी दूषित कर देगा। यही अब तक होता रहा है। अतः अगर लोकतंत्र की प्रक्रिया को अहिंसक रखना है, तो लोकतंत्र का संचालन-तंत्र भी अहिंसक होना चाहिए। 'हिंसक क्रान्ति हिंसा से होती है और उससे बडी हिंसा से टिकती है। हिंसा का अन्त नहीं होता है। संघर्ष से मेल न विज्ञान का है और न लोकमत से चलनेवाले लोकतंत्र का, जिसे गांधीजी ने अहिंसा की विशुद्ध प्रक्रिया कहा है। अतः अगर विज्ञान और लोकतंत्र की रक्षा करते हुए सामाजिक क्रान्ति करनी है, तो संघर्ष मुक्त क्रान्ति की पद्धति विकसित करनी होगी।''[1]

विनोबा के 'ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन' का 'आचार्यकुल आन्दोलन' से संयोग इसी पद्धति के विकास के लिए है। संघर्ष मुक्त क्रान्ति की प्रक्रिया विचार-परिवर्तन की, शिक्षण की, प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया मे हिंसा का स्थान, अहिंसा, दण्डनीति का स्थान लोकनीति और सैनिक-संस्था का स्थान शिक्षा और शिक्षण-संस्था और सैनिक का स्थान शिक्षक लेगा। अगर समाज निर्माण,

१—राममूर्ति—ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य-पृष्ठ २६

समाज-परिवर्तन और समाज-धारणा के लिए हिंसा को अपदस्थ कर अहिंसा को प्रतिष्ठित करना है तो दण्ड-शक्ति के स्थान पर शिक्षण-शक्ति और सेना के स्थान पर विनोबाजी की संकल्पना के आचार्यकुल को प्रतिस्थापित करना होगा।

इसीलिए मैंने कहा था कि अहिंसा और हृदय-परिवर्तन की नीति मे निष्ठा रखनेवाला आचार्यकुल युग-सापेक्ष है।

छात्र-विद्रोह को विधायक दिशा देने के लिए

छात्रो की अनुशासनहीनता और छात्र-विद्रोह आज इस देश की ही नही, सारे संसार की समस्या है। अनुशासन का अर्थ है शासन के पीछे चलना। आज के लोकतंत्र के युग मे जब हर व्यक्ति को शासन बदलने का जन्म-सिद्ध अधिकार मिल गया है, तो विद्यार्थियों से यह आशा करना कि वे शासन के पीछे चलेंगे, गलत है। 'शासन' यथास्थिति (स्टेटसको) का प्रतिनिधित्व करता है, पुराने मूल्यो का, निहित स्वार्थों का सरक्षक होता है। अत युवक छात्र यदि सबसे पहले उसी को बदलना चाहता है उसी पर हमला करता है, तो कुछ बेजा नहीं करता। आज के युवक की मानसिक स्थिति हर पुराने मूल्य को अस्वीकार करने की है। अत विक्षुब्ध होकर वह विद्रोह करता है। यह विद्रोह जागतिक समस्या है, जागतिक लक्षण है। अमेरिका का विद्यार्थी, नीग्रो-जाति के प्रति अपने देश की दुराव की नीति के विरोध मे, अथवा विएत-नाम मे सेना भेजने के विरोध मे, न्यूयार्क की सडकों पर जुलूस निकालता है। जापान मे अमेरिका के कथित स्वार्थों के विरोध मे जापानी छात्र विद्रोह करता है। इन्दोनेशिया मे तो उसने सुकर्ण का तख्त ही पलट दिया, फ्रान्स मे उसने ऐसी क्रान्ति की, जिसमे प्रेसीडेन्ट 'दिगाल' का शासन डोल गया और अभी-अभी पडोसी पाकिस्तान के छात्र-विद्रोह ने अयूब की तानाशाही को समाप्त करने मे बहुत बडा भाग लिया है। छात्र विद्रोह जागतिक (यूनिवर्सल) लक्षण है।

अत समस्या छात्र विद्रोह को दबाने की नहीं है—छात्र विद्रोह को विधायक रचनात्मक दिशा देने की है। छात्र-आन्दोलन आज सर्वत्र 'हिंसक' हो रहा है। छात्र समस्या को चौराहे पर ईंट पत्थर से हल करने की चेष्टा करता है। उसे समझाना है कि आज के अणु-युग मे किसी भी समस्या का हल हिंसा से नही हो सकता। आज के युग मे भौतिक क्रान्ति सम्भव ही नहीं है। आज क्रान्ति अस्त्र से नही, विचारो से होगी। उसे समझाना है कि यदि वह समाज

के मूल्यो को बदलना चाहता है तो सबसे पहले उसे उस मूल्य को बदलना है, जो सबसे पुराना है—और वह मूल्य 'हिंसा' है। 'हिंसा' के इस मूल्य को बदले बिना समाज मे वास्तविक मूल्य-परिवर्तन नही होगा। हिंसा के मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया शिक्षण-नियमन और विचार की प्रक्रिया है। विचार की इस प्रक्रिया का सचालन आचार्य ही कर सकता है, क्योकि विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन का पेशा उसी का पेशा है अथवा जो यह धन्धा करे, वही आचार्य है (इसीलिए विनोबा न विचारशील विद्वानो को आचार्यकुल म लेने की इजाजत दी है)।

अस्तु, छात्र विद्रोह को विधायक दिशा देने का कार्य वही आचार्य कर सकता है, जिसका दण्डशक्ति म विश्वास नही है और जिसकी लोकशक्ति में निष्ठा है। लोकनीति मे निष्ठा रखनेवाला आचार्य स्वय म 'यथास्थिति के विरोध' का प्रतीक है। विद्यार्थी मौजूदा समाज के मूल्यो को बदलना चाहता है और अगर मौजूदा समाज के मूल्यो को बदलने के लिए शिक्षक भी आगे आता है, और दोनों साथ मिलकर 'यथास्थिति को बदलने की कोशिश करते हैं तो आज जो अन्तर शिक्षक और विद्यार्थी के बीच आ गया है, वह मिट जायगा और दोनो समाज के निहित स्वार्थों के लड़नेवाले सिपाही के रूप मे आयेंगे। आज का विद्यार्थी सत्तावाद' का विरोधी है। सत्तावाद कही नही रहना चाहिए, और शिक्षण-सस्था मे तो कदापि नही रहना चाहिए। इसीलिए विनोबा ने आचार्यकुल को सत्ता की राजनीति से अलग रहने की सलाह दी है।

सत्ता से अलग रहनेवाला, लोकनीति का पोषक आचार्यकुल ही आज के छात्र आन्दोलन को विधायक दिशा दे सकता है। आचार्यकुल का सगठन युग सापेक्ष सगठन है और निष्ठापूर्वक काम किया गया तो युग की इस समस्या का हल निकल सकेगा।

हरीश्चन्द्र कालेज, वाराणसी मे भाषण करते हुए दादा धर्माधिकारी ने कहा था :—"आज छात्र के मन से शिक्षक के लिए भय और इज्जत निकल गयी है और प्रेम रह नही गया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि आये दिन पुलिस और सेना बुलानी पडती है। परन्तु सब यह स्वीकार करते हैं कि शिक्षा-सस्थाओ मे सेना और पुलिस की कोई जगह नही है। तो फिर क्या करना होगा। शिक्षक सिपाही के शरण मे रहे और विद्यार्थी का डर बना रहे तो शिक्षण की प्रक्रिया दूषित होगी, और उसे कुछ भी कहिए शिक्षण नही कह सकते। ऐसी हालत मे एक ही मार्ग रह जाता है 'शिक्षक' भी उसी

'यथा स्थिति'–विरोधी पथ का पथिक बने, जिसका छात्र है। दोनो एक रग मच पर आ जायेंगे तो समस्या का हल होगा–विनोबा का आचार्यकुल यही हल प्रस्तुत करता है।

सगठन

सगठन की दृष्टि से 'आचायकुल सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए चलनेवाली अनेक प्रवृत्तियो म से एक प्रवृत्ति है। इसीलिए विधानत उसे सर्व सेवा सघ की प्रवृत्ति भी स्वीकार किया गया है। सर्वोदय समाज और सर्व सेवा सघ की प्रवृत्तियो मे जितनी तत्र मुक्ति और निधि मुक्ति है, उतनी इसम भी रहेगी। परन्तु प्रभावपूण ढग से काम करने के लिए एक सगठन' तो चाहिए ही। इसीलिए आचायकुल की स्थापना के समय ही विनोबा ने कहा था कि 'आचायकुल की स्थापना के लिए थोडा धन इकट्ठा करना होगा। आफिस बनाना होगा। कुछ कार्यकर्ता उसमे रखने होगे। लोगो से सम्पर्क रखने के लिए जगह-जगह मीटिंग बुलानी होगी। यह सब करने के लिए थोडे पैसे की जरूरत होगी। इसीलिए मैंने सुझाव रखा है कि आचायकुल के सकल्प पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले जितने सदस्य होग, वे अपनी तनख्वाह का एक प्रतिशत चन्दे के रूप म दें। कम तनख्वाहवाले आधा प्रतिशत दें। इस धन का उपयोग आचार्यकुल के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जाय। जैसे गाँव-गाँव मे जाकर लोक शिक्षण का काम करना और आचायकुल का सम्मेलन बुलाना आदि। पिछले राजगिर के अठारहवें सर्वोदय सम्मेलन के समय विनोबा ने यह स्वीकार किया कि इस धन का पाँच प्रतिशत सर्व सेवा सघ मे भेजा जाय, जिसका उपयोग सघ राष्ट्रीय-स्तर पर आचायकुल की परिषदें बुलाने और आचायकुल के सयोजन के लिए करे।

संगठन के सचालन के लिए सव सेवा सघ मे एक केन्द्रीय समिति रहेगी, जिसका निर्वाचन सघ की प्रबन्ध समिति करेगी। इस समिति म विभिन्न प्रदेशो के आचायकुल के प्रतिनिधि सदस्य रहेंगे।

सगठन के सम्बन्ध मे एक बात ध्यान मे रखने की यह है कि आचायकुल मे हर बात का निणय सत्र-सम्मति से ही होगा।

काय-क्षेत्र

अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त आचायकुल का कार्य-क्षत्र लोक-सेवा और लोक शिक्षण का है। देश विदेश की सभी समस्याओ का आचार्यकुल अध्ययन करेगा, परिषदो मे एकत्र होकर उन पर विचार करेगा और निष्पक्ष निर्णय

लेकर निर्भयतापूर्वक अपनी राय जाहिर करेगा। इस कार्य के लिए जिला-स्तर, प्रदेश-स्तर पर और राष्ट्रीय-स्तर पर भी परिषदों का आयोजन किया जायगा। प्रादेशिक और राष्ट्रीय-स्तर की परिषदें कम-से-कम साल भर में एक बार तो अवश्य होनी चाहिए।

इसी प्रकार लोक-शिक्षण के लिए गाँव-गाँव जाकर लोगों को ग्रामदान और लोकनीति के विचार समझाने का और ग्रामसभा आदि के गठन में सहायता देने का काम भी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त लोक-सेवक आचार्यों के प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन भी ब्लाक-स्तर या जिला-स्तर पर करना चाहिए।●

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता : अनैतिकता के कारण और उपाय

प्रो० सुखमंगल शुक्ल
डा० रामलखन शर्मा

भारत में आज हर ओर से यह कहा जा रहा है कि हमारी शिक्षा की रूप-रेखा हमारे जीवन के अनुरूप नहीं है। यही नहीं, वह हमें भौतिकता की ओर अधिक आकृष्ट कर रही है और मानवता से दूर ले जा रही है। यह सुनने को मिलता है कि बालक अनुशासित नहीं है, वह उदण्ड हो गया है। अनुशासन की समस्या अपने देश म ही नहीं, विदेशों में भी व्याप्त है। नयी पीढ़ी क्या चाहती है जो उसे समाज नहीं दे पा रहा है, उसे क्यों इतना रोष है, वह अपना रोष क्यों इतने विकृत रूप में प्रकट करता है। ऐसी अनेक समस्याएँ आज हमारे सम्मुख हैं।

इनका समाधान सरल नहीं, वह शिक्षाविदों के लिए एक चुनौती है। इस विषय पर आजकल की पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे जा रहे हैं। शिक्षा में सुधार के निमित्त आयोग भी बिठाये जा रहे हैं, उनके बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण सुझाव इस हेतु आ चुके हैं, पर समस्या ज्यों-की-त्यों है, बल्कि ऐसा कहने में अत्युक्ति न होगी कि वह अधिक विकराल रूप धारण करती जा रही है। इसी हेतु नैतिक शिक्षण पर आगे कुछ विचार किया जा रहा है। नैतिक शिक्षा केवल अनुशासन के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन के लिए उपयोगी होगी।

अनैतिकता तथा अनुशासन-हीनता के कारण

इसके पूर्व कि यह विचार किया जा सके कि बालक को किस स्तर पर किस प्रकार की नैतिक शिक्षा दी जाय, यह भी नितान्त अपेक्षित है कि हम उसके अनैतिक और अनुशासनहीन होने के कारणों पर विचार करें—

ये कारण दो प्रकार के हैं—सामाजिक तथा व्यक्तिगत।

सामाजिक—(१) आज का युग परिवर्तनशील है, इसमें विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने असम्भव को सम्भव बना दिया है। इसके विपरीत भारत का विद्यार्थी अपनी प्राचीन परम्पराओं में पले हुए समाज का अंग है। उसकी मान्यताएँ अभी नयी नहीं हैं, बालक आगे चलना चाहता है, तो पिता व पितामह अथवा वयोवृद्ध उसे उतनी छूट नहीं देना चाहते, वे उसकी प्रगति को भी यदा-कदा मर्यादा के विरुद्ध समझते हैं।

(२) जनसंख्या में इतनी वृद्धि हो गयी है, जिसके फलस्वरूप एक कक्षा में इतने विद्यार्थी बैठने हैं कि वे अध्यापक का व्यक्तिगत ध्यान नहीं प्राप्त कर पाते। बालक की विषमगत दुर्बलता उसे शनैः शनैः अध्यापक से दूर कर देती है। पहले वह कक्षा से बाहर, उनके बाद विद्यालय से बाहर और अन्त में समाज से बाहर विचरण करने लगता है।

(३) पाठ्य क्रम में बहुधा विषयों का चयन बालक की प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं होता। वह किसी विषय को नहीं पढ़ना चाहता, पर उसे पाठ्य-क्रम में होने के नाते पढ़ना पड़ता है। साथ ही इस विषय को वह अपने साथियोंके साथ ही पढ़ता है।

(४) बड़े बालकों के समूह में एक शक्ति है, इस शक्ति का, जब देश परतंत्र था तो, जन-जागरण पैदा करने तथा अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन करने में उपयोग हुआ। पर आज उनके सामने वैसा कोई कार्यक्रम नहीं है। आज राजनीतिक दलों ने अपनी अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु उनका उपयोग प्रारम्भ कर दिया है। आज के माध्यमिक विद्यालय और विश्वविद्यालयों के छात्र-संघों के चुनाव इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

(५) देश की निर्धनता इतनी है कि सर्व-साधारण को जीवन की आवश्यकताओं के लिए सामग्री नहीं जुट पाती। इसका फल यह है कि समाज की विषमता बढ़ती जाती है।

(६) बालक लगभग ६ ७ घण्टे विद्यालय में रहता है, शेष समय अपने आवास और समाज में। उसका खान-पान, रहन-सहन, जीवन, उसकी संगति तथा कुसंगति उसे अनेक बातें सिखाती हैं। इन बातों को वह अपने विद्यालय तक ले जाता है।

(७) सभी अध्यापक अपने विषय के न धनी होते हैं और न अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक ही, और न सभी इतने युक्तिकुशल होते हैं कि बालक की भावनाओं को समझें और तदनुसार उसका मार्गदर्शन करें। अधिकांश अध्यापक नौकरी करते हैं।

व्यक्तिगत—(१) जहाँ तक व्यक्तिगत कारणों का प्रश्न है, इसमें बच्चों की अवस्था, उसकी आकांक्षाएँ, उसकी मानसिक क्रिया तथा भावनाओं का अध्ययन करना होगा। बच्चा बिना पूर्व सोचे कार्य करता है। उसे क्षणिक भावनाओं का प्रतीक कहा गया है। उसमें दो प्रमुख तत्त्व होते हैं—

(क) भावना की तीव्रता (चाहे सुख की हो या दुख की)।

(ख) रुचि की प्रबलता।

इसके अतिरिक्त वह सदा अपनी अनुभूति के अनुसार अपनी स्वेच्छा से कार्य करने मे विश्वास करता है, उसके सामने कार्य-कारण भाव नही रहता। वह सदा सरलता और निश्छलता को पसन्द करता है। उसे कृत्रिमता नही भाती। उसके साथ कल्पना-जगत रहता है, उसके साथ सवेदना रहती है, उसका सारा जीवन इन भावनाओ से ओत-प्रोत रहता है, उसे अपने-पराय का भेद रहता है, अपने स्वार्थ का ध्यान रहता है। यदि उसे सही मार्ग पर चलाया जाय तो वह अपनी ग्रन्थियो को छोड सकता है।

(२) बालक किशोरावस्था म पदार्पण करता है, तब उसे अपनी सत्ता का विशेष अनुभव होता है, उसे अपने पर गर्व होता है वह स्वत नायकत्व चाहता है, कार्य और कारण खोजने लगता है।

अनैतिकता दूर करने के उपाय

इस पृष्ठभूमि को समझकर ही हम नैतिक शिक्षा की परिकल्पना कर सकते हैं। इस शिक्षा के लिए हमे निम्न बातो पर ध्यान देना होगा—

(१) कोई भी बालक खाली न रहे। उस ऐसे कार्य दिये जायें, जो उन्ह व्यस्त रख सकें। इस व्यस्त रखने म खेल की गणना भी सम्भव है, किन्तु अभिभावक या अध्यापक की देख-रेख या निर्देश के अभाव मे वह खेल भी न हो। कोठारी-आयोग ने कार्य अनुभव, की बात की है।

(२) नैतिक शिक्षक का अपना नैतिक बल परम अपक्षित है। इस हतु शिक्षको के अतिरिक्त विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा भी उन्हे सदुपदेश दिलाना आवश्यक है।

(३) हमारी शिक्षा हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति करे। शिक्षित होकर व्यक्ति को जीविकार्थ भटकना न पडे—उसे जीविका का अवसर उपलब्ध हो।

(४) शिक्षक का सबसे बडा कार्य वह क्षण हाथ से न जाने देना है, जब वह बच्चे मे किसी गुण का समावेश कर सके। पाठ्यक्रम मे जो भी सकलित वस्तुएं हैं, वे लगभग सभी इस ओर सकेत करती हैं, किन्तु अध्यापक उनमे से कब और कितना लाभ उठाता है यह उसी के ऊपर निर्भर करता है।

चरित्र निर्माण नैतिक मूल्यो पर निर्भर करता है, पर ये मूल्य नित्यप्रति की वैज्ञानिक प्रगति और जीवन-विकास के साथ परिवर्तनशील हैं। अत बालक को अपने चर्तुदिक वातावरण के उपयुक्त बनाने के लिए हमे सहायता

देनी होगी। जब तक शिक्षाविद् इस विषय मे स्पष्ट नही हैं, तब तक औपचारिक अथवा अनौपचारिक कोई भी नैतिक शिक्षा व्यर्थ है।

(५) अध्यापक किस बात को किस रीति से सिखाता है यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्रिया से सीखना, सद्भाव से सीखना, और अपने हित के निमित्त सीखना आदि बातों को ध्यान मे रखना होगा। आज हमे आध्यात्मिकता की आवश्यकता है, भौतिकवाद की नही। आध्यात्मिकता मानवता, सत्य और अहिंसा के बिना सम्भव नही। इस हेतु नैतिक शिक्षा पहली सीढी है। नैतिकता से अभिप्राय है हम आचार विचार शुद्ध रखें, हमारे अन्तर और वाह्य म एकरूपता हो, हम सहिष्णु, सन्तोषी और समाज-सेवी हो, हम ऐसा कार्य करें जिससे दूसरे लोग हमे चाह। हम जैसा आचरण अपने लिए दूसरो से चाहते हैं वैसा ही दूसरो के प्रति करें।

क्या सिखाना है

(६) अन्त मे यह कहना भी परम अपेक्षित है कि नैतिक शिक्षा का अर्थ धार्मिक शिक्षा न लिया जाय। इसमे सभी धर्मों का समन्वय होना चाहिए। इसके मूलाधार सत्य, सहनशीलता, सद्भाव आदि कहे जा सकते हैं। हमें बच्चे को भला व्यक्तित्व प्रदान करना है, उसमे सत्य, सहानुभूति और त्याग की भावना भरना है, उसमें साहस स्वातन्त्र्य और अग्रणी बनने की ज्योति जगानी है। उसे राष्ट्र का एक उपयोगी अंग बनाना है। अत उसके सम्मुख निम्नलिखित बातें रखनी हैं—

अध्ययन (सैद्धान्तिक) पक्ष

(क) गाधी, तिलक, रानाडे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, अब्राहम लिंकन, गणेशशंकर विद्यार्थी, चन्द्रशेखर आजाद, बादशाह खाँ, विनोबा भावे, यूगोस्लाविया की दैनिकी, सुभाष बोस के जीवन प्रसग।

(ख) मास्को की सडक के निर्माण का विवरण।

(ग) जर्मनी और जापान का पुनर्निर्माण।

(घ) गीता का स्थितप्रज्ञ दर्शन।

(ङ) बाइबिल का पर्वत उपदेश।

(च) डा० भगवानदास-कृत सभी धर्मों की एकता।

(छ) रामायण के उद्धरण।

(ज) विभिन्न धर्मों के पर्वों का ज्ञान।

क्रियात्मक पक्ष

(१) आचार-संहिता तथा परिचय-पत्र

(२) अध्यापक और संरक्षक का सम्पर्क।

(३) मासिक परीक्षा तथा उसके संरक्षक को सूचना।

(४) शिक्षक को इस शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए कुछ समय की छूट।

(५) वाद-विवाद, खेल-कूद का सभी के लिए अवसर।

(६) पुस्तकालय और वाचनालय की सुविधा।

(७) प्रार्थना सामूहिक, पर कक्षा-स्तर पर सुविधा।

(८) नियमित समय पर न आने पर प्रायश्चित तथा व्यक्तिगत कारणों का समुचित अध्ययन और निराकरण।

(९) स्वच्छता के हेतु निर्धन बालकों को आर्थिक सहायता।

(१०) गृह-कार्य अनिवार्यत: मिलना और देखा जाना।

(११) अच्छे कृत्य की सार्वजनिक सराहना।

(१२) घर पर अपने स्थान आदि की सफाई, अपना काय अपने हाथ करना।

(१३) स्कूल के उद्यान म काय करना।

(१४) अच्छे विद्यार्थियो और विशेष कर उच्च कक्षाओ के विद्यार्थियो द्वारा कमजोर विद्यार्थियो को पढाना।

(१५) पर्यटन का अवसर।

(१६) उपस्थिति की संरक्षक को समय-समय पर सूचना।

(१७) स्काउट्स को दिये जानेवाले कार्यों का आचरण।

(विद्यार्थियो को पढाये जाने तथा प्रार्थना मे शामिल किये जाने के कुछ चुने हुए उद्धरण अगले अक मे दिये जायेंगे। स०)

बुनियादी शिक्षा की बुनियाद

अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'

पटना विश्वविद्यालय के यूनियन-हाल म "बुनियादी शिक्षा" पर एक परिसवाद का आयोजन किया गया था। गोष्ठी की अध्यक्षता प्रोफेसर चटर्जी कर रहे थे। हाल छात्र-छात्राओ, श्रोताओ तथा आमन्त्रित व्यक्तियो से खचाखच भरा था। पक्ष विपक्ष दोनो मे भाषण होने थे। इस परिसवाद मे भाग लेने के लिए शेखर को भी आमन्त्रित किया गया था। वह जब निश्चित समय पर "यूनियन हाल" मे प्रविष्ट हुआ तब प्रोफेसर घोष ने एक मधुर, किन्तु व्यग्यपूर्ण मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया। शेखर ने धन्यवाद के साथ आसन ग्रहण किया। उसने अपने चतुर्दिक दृष्टि फेंकी। उसे लगा जैसे वातावरण कुछ बदला-बदला-सा है। विपक्ष का पलडा भारी है। लोग-बाग कानाफूसी कर रहे हैं। कुछ लोग धीमे स्वर मे गाधीजी की इस योजना की आलोचना भी करते हुए दिखाई पडे। शेखर चुपचाप बैठा रहा। इसी समय पर सयोजक ने "बुनियादी शिक्षा" की रूपरेखा पर दृष्टिपात करते हुए लोगो को परिसवाद की ओर आकृष्ट होने का आग्रह किया। प्रोफेसर चटर्जी ने सबसे पहले डा० सिंह को बोलने के लिए आमन्त्रित किया। विश्वविद्यालय के छात्र अच्छी तरह जानते थे कि डा० सिंह गाधीजी की इस योजना के आलोचक हैं। छात्र छात्राओ ने करतल-ध्वनि से डा० सिंह का सम्मान किया। डा० सिंह ने उपस्थित श्रोताओ को सम्बोधित करते हुए अपना भाषण प्रारम्भ किया—

'हमारा देश जिन नाजुक परिस्थितियो से गुजर रहा है, वह किसीसे छिपा नहीं है। इसी समय पर गांधीजी ने 'बुनियादी शिक्षा' का नया क्रान्तिकारी रूप देश की काग्रेसी सरकारो के समक्ष रख दिया है। काग्रेस ने अपने प्रस्ताव मे इस नयी शिक्षा-प्रणाली को 'बुनियादी राष्ट्रीय-शिक्षा' की सज्ञा देकर समर्थन भी कर दिया है और वर्धा-सम्मेलन इसके कार्यान्वयन पर कटिबद्ध है। अत यह स्वाभाविक है कि इसकी ओर देश के प्रमुख शिक्षाशास्त्रियो का ध्यान जाय और इस शिक्षा के गुण-दोषो का गहराई के साथ विवेचन किया जाय। इस शिक्षा म मुझे एक भी गुण ऐसा नजर नही आया कि मैं इसका समर्थन कर सकूं। क्योंकि इस समय प्रश्न यह है कि आज की परिस्थिति म बुनियादी शिक्षा, क्या राष्ट्रीय शिक्षा बन सकती है? राष्ट्रीय शिक्षा वही हो सकती है जो राष्ट्र की परिस्थितियो मे लागू हो सके। शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो अभी वह समय नही आया है जब शिक्षा-

प्रणाली मे व्यापक क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव किया जाय। जब समय और परिस्थितियाँ अनुकूल नही हैं तब नयी शिक्षा प्रणाली की क्या आवश्यकता? बुनियादी शिक्षा म ५ वर्ष से लेकर ११ वर्ष का समय निर्धारित किया गया है। योजना के प्रारूप के अनुसार इस अवधि म बालक आत्म निर्भरता का पाठ तकली चलाकर, लकडी और कागज की चीजें बनाकर तथा कला और श्रम के माध्यम से अपनी कमाई करते हुए सीखेगा। सबसे पहले तो मेरी समझ म यही नही आता कि पाँच से ग्यारह वर्ष के बच्चे को क्या स्वावलम्बी बनाया जा सकता है? वर्धा-समिति के अध्यक्ष डा० जाकिर हुसेन का कथन है कि—'बेसिक शिक्षा मे शिल्प का काम लक्ष्य नही, बल्कि बालको की वृद्धि और विकास का साधन मात्र है।' मैं स्पष्ट रूप से यह पूछना चाहता हूँ कि जो चीज लक्ष्य नही है, उस पर अमल करने से क्या लाभ? मैं इस सम्बन्ध म अधिक कुछ न कहकर केवल इतना ही कहूँगा कि यह शिक्षा समय और राष्टीय परिस्थितियो के अनुकूल नही है। यह अव्यावहारिक है। धन्यवाद।'

करतल-ध्वनि के साथ डा० सिंह का भाषण समाप्त हुआ। संक्षेप म उन्होंने श्रोताओ के सामने अपनी गहन विचारधारा रख दी थी। इसके बाद प्रोफेसर घोष का नाम अध्यक्ष ने पुकारा। प्रो० घोष अपनी सहज गम्भीर मुद्रा मे मच के पास आये। छात्रो ने आपस म कानाफूसी की— लार्ड मेकाले का भाषण सुनें! प्रोफेसर घोष ने अपनी गुरु-गभीर वाणी मे भाषण प्रारम्भ किया— मैं जीवन मे सदैव इस बात का पक्षपाती रहा हूँ कि शिक्षा-प्रणाली म क्रान्ति की आवश्यकता है। लेकिन यह क्रान्ति तकली से होगी, मैंने यह स्वप्न मे भी नही सोचा था। गाधीजी द्वारा अग्रेजी को कोर्स से निकाल देने की बात किसी सीमा तक सत्य हो सकती है, क्योकि इससे अतिरिक्त बोझ बढ जाता है। बच्चो का अधिकाश समय अग्रेजी शब्दो और वाक्याशो के रटने मे चला जाता है। वे जो कुछ सीखते हैं उसे अपनी भाषा मे जाहिर नहीं कर सकते। लेकिन अग्रेजी को पूर्णतया हटा देने के पक्ष मे मैं नहीं हूँ। यह ससार की अकेली सम्पर्क भाषा है। बिना इसके हमारा काम चल नही सकता। स्वय गाधी नेहरू और सरदार पटेल भी यदि अग्रेजी न सीखे होते तो आज अग्रेजो से टक्कर न ले सकते थे। गाधीजी कहते हैं—"बचपन से ही यदि लडके-लडकियाँ हमारे हाथ मे आयें और सात साल या उससे भी अधिक समय तक हम उन्हे शिक्षित करें और फिर भी यदि उनमे स्वावलम्बन की शक्ति न आये, तो हमें यह मानना पडेगा कि नयी तालीम का पूरा-पूरा अर्थ हमने ग्रहण नही किया है। यदि नयी तालीम के द्वारा हम बालक को पूर्ण स्वावलम्बी नहीं बना सकते तो ऐसा मानना होगा कि

शिक्षक-समुदाय उसे समझता ही नही।' अब प्रश्न यह उठता है कि यदि शिक्षक समुदाय उसे नही समझेगा, तब बच्चे क्या समझेंगे ? दूसरी खराबी इस शिक्षा-प्रणाली में यह है कि इसका कार्यान्वयन बच्चों के मनोविज्ञान के अनुसार होना चाहिए। मैं तो यहाँ तक सुझाव दूँगा कि माण्टेसरी शिक्षा-पद्धति के साथ इसका समावेश कर दिया जाय तो यह अधिक उपयोगी हो जाय। मेरा बस चले तो मैं गाधीजी से स्पष्ट कह दूँ कि 'बुनियादी तालीम' में जिस रूप को आप अपने मौलिक एव अनुभवसिद्ध विचारो से जोड रहे है वे आपके अपने नही, मध्य-युगीन विचार हैं। मध्ययुग की शिक्षा-प्रणाली भी कुछ ऐसी ही थी। मैं जानना चाहूँगा कि एक विद्यार्थी जिसने मैट्रिक परीक्षा पास कर ली है, अगर चाहे तो कालेज मे पढ सकता है। क्या एक बच्चा बुनियादी शिक्षा-क्रम को पूरा करके कालेज में पढने योग्य हो सकेगा ? दूसरी बात यह है कि गाधीजी कहते हैं—'बुनियादी स्कूलो मे सात साल से कम उम्र के विद्यार्थी भरती न किये जायेंगे।' मैं जानना चाहूँगा कि यह उम्र शारीरिक होगी या मानसिक ? इसी प्रकार के अनेक मौलिक प्रश्न हैं जो इस शिक्षा-पद्धति की सफलता पर सन्देह उत्पन्न करते हैं।

"मैं आप लोगो का अधिक समय नष्ट न करके केवल इतना ही कहूँगा कि बुनियादी शिक्षा, गाधीजी के विचारो का एक कल्पना-लोक है, जहाँ हम-आप नही, केवल वे ही पहुँच सकते हैं। धन्यवाद।"

प्रोफेसर घोष का भाषण समाप्त होने पर दुबारा करतल-ध्वनि हुई। वे एक विजेता की भाँति अपने आसन पर बैठ गये।

प्रोफेसर घोष के बाद अध्यक्ष ने शेखर का नाम लिया। शेखर की विचारधारा से सभी परिचित थे। शेखर अत्यधिक शान्त, गम्भीर एव विचारशील मुद्रा मे उठा। उसने अध्यक्ष तथा उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जिस बुनियादी शिक्षा पर इतनी देर से वाद-विवाद हो रहा है मैं समझता हूँ कि अभी तक उसके मौलिक आधार को ही लोग समझ नही पाये है। बुनियादी शिक्षा वह है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त स्वावलम्बन और समाज-व्यवस्था के लिए पर्याप्त योग्यताएँ प्राप्त कर सके। इन्ही शब्दो के साथ मैं इस शिक्षा-प्रणाली की गहराई मे प्रवेश करने की आज्ञा चाहूँगा। आप लोग सात वर्ष के बच्चे के स्वावलम्बन पर सन्देह कर रहे हैं। मैं कहता हूँ कि इस शिक्षा द्वारा छोटे-से-छोटे बच्चे मे भी स्वावलम्बन का माद्दा भरा जा सकता है। एक दिन एक प्रश्नकर्ता ने गाधीजी

गे पूछा-- बापू ढाई वर्ष के छोटे बच्चे की शिक्षा कैसी होनी चाहिए ?' बापू ने उत्तर दिया--'हमारा प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि जितने बच्चे हैं, उन सबको हम खीच लें। जो नही आते उनके लिए हम स्वय दोषी हैं। इन बच्चो को खीचने के लिए हमे काफी आकर्षण पैदा करना होगा। जितने बच्चे हमारे पास हैं वे सब हमारी ही सतान हैं, यह समझकर चलना है। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाय, उनके मन मे विकार न घुसने पाये, उनमे सामान्य सभ्यता आ जाय तो हमारा काम हो गया ऐसा मानना चाहिए। मैं नही मानता कि बच्चे तोडना फोडना ही सीखते हैं। मैंने बहुत लडको को सिखाया है। किसीको ऊधम नही करने दिया। अगर वे मेरे हाथ मे रहें तो मैं उन्हे ऐसी तालीम दूँ कि वे बचपन से ही ऊधम न करना विध्वस न करना सीख जायँ। बल्कि वे जो कुछ करेंगे वह सृजनात्मक होगा।'

'आगे चलकर उन्होने बताया-- सीखाने की मेरी पद्धति तो यह होगी कि पहले रगो की पहचान करा कर चित्र से शुरु करूँगा। अक्षर भी तो चित्र ही हैं। कोई तोते का चित्र बनायेगा कोई सूत का, कोई अक्षर का। इस प्रकार सबके अलग अलग चित्र होगे। लिखना चित्र द्वारा शुरु किया जायगा। यथा--१, २, अलिफ-बे, अ, आ आदि चित्र रूप से अक्षर सीखने की बात न रहेगी। पहले अ, आ' १ का चित्र सीखें। सब अक्षर जब चित्रमय हो जायें तो उनको ज्ञान दिया जाय। थ्री आर्स बाद म आयेंग। आज के समाज की तरह 'थ्री आस' नही सिखाये जायेंगे। पहले पढना आ जायगा तब चित्र रूप मे लिखना शुरु किया जायगा। इसी प्रकार बच्चे की बुद्धि बढती जाती है। हाथ भी चलते हैं, पैर भी चलते हैं और वह सब खेलते खेलते सीखता है।

लोगो का यह भी तर्क है कि मैट्रिक पास विद्यार्थी कालेज मे भर्ती हो सकता है, लेकिन बुनियादी शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी क्या करेगा ? यह एक अजीब-सा प्रश्न है। मैं पूछता हूँ आपकी हाईस्कूल शिक्षा म धरा क्या है ? जिस चीज को लडके अपनी मातृभाषा द्वारा दो साल मे सीख सकते हैं उसीका पराई भाषा द्वारा सात साल मे भी नही सीख पाते। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि विदेशी भाषा की अपेक्षा बच्चो को उनके हाथ-पैर का उपयोग करना किसी लाभप्रद कार्य मे सिखायें तो शिक्षा की समस्या अपने आप हल हो जाय। जो पाठशालाएँ इस कल्पना के अनुसार चलेंगी, उनमे बालको को दी जानेवाली दस्तकारी की शिक्षा की मार्फत दूसरी सब प्रकार की शिक्षा भी मिलेगी। गाधीजी की योजना के अन्तर्गत बालक हाथ से चित्र बनाने या अक्षर लिखने से पूर्व औजारो का

प्रयोग करना सीखेगा। आँखें जिस प्रकार संसार की दूसरी चीजों को देखती-परखती है, उसी प्रकार अक्षरों एवं शब्दो को, चित्रो को भी देखेंगी, परखेंगी। कान वस्तुओं और वाक्यों के नाम और अर्थ को ग्रहण करते रहेंगे। शिक्षा की पद्धति पूरी तरह स्वाभाविक और बच्चों का मनोरंजन करनेवाली होगी। इसीलिए देश मे प्रचलित सभी शिक्षा-प्रणालियो की अपेक्षा यह अधिक प्रगतिशील और सस्ती होगी। इस प्रकार इन पाठशालाओ के बालक जितनी तेजी से सोचेंगे, उससे कहीं तेज गति से वे लिखेंगे। आजकल की अधिकांश पाठशालाओं की तरह *लेखन-कार्य मे अशुद्धता की गुंजाइश नहीं रहेगी।*"[१]

"इस समय पर मुझे एक प्रसग याद आ रहा है।" शेखर ने श्रोताओ पर दृष्टिपात करते हुए कहा—"आप लोग मध्यप्रात के शिक्षा-मत्री श्री शिवशंकर शुक्लजी का नाम सुन चुके हैं। वे अपने शिक्षा-विभाग के निदेशक मि० ओवन तथा मि० डी० सिलवा के साथ इस योजना को समझाने के लिए गाधीजी के पास पहुँचे। गाधीजी ने उनके सामने एक नया तर्क प्रस्तुत किया। वह यह था—'बालक राज्य से जो कुछ पाते हैं उसका कुछ हिस्सा राज्य को वापस देने का तरीका उन्हे सिखाकर मैं शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना चाहता हूँ। आप जिसे प्राथमिक, माध्यमिक यानी हाईस्कूल शिक्षा कहते हैं, मैं उन दोनो को जोड देना चाहता हूँ। मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि आज हाईस्कूल में हमारे बच्चो को अग्रेजी के टूटे-फूटे ज्ञान के साथ गणित, इतिहास और भूगोल के उथले ज्ञान को छोडकर और कुछ नही मिलता। जो मेहनत, मजदूरी और शरीरश्रम का काम आप उनसे लेंगे, उससे राज्य को काफी आमदनी हो सकती है। इस शरीरश्रम को सम्पूर्ण शिक्षा के केन्द्र में रखना पडेगा। मैं तो कहता हूँ—मन का विकास हाथ-पैर की इस शिक्षा में स्कूल के संग्रहालय के लिए चीजें बनाने या निकम्मे खिलौने तैयार करने का समावेश नही होता। बाजार में बिकने-योग्य चीजें ही बननी चाहिए।' गाधीजी की इस प्रकार की बातें सुनकर मि० डी० सिलवा ने आशंका प्रकट करते हुए पूछा—'मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि शिक्षा सृजनात्मक कार्यों द्वारा दी जानी चाहिए, लेकिन प्रश्न यह है कि छोटी आयु के सुकुमार बालक बडों के साथ कैसे होड कर सकते हैं?'

'बालक बडों के साथ होड नही करेंगे', गाधीजी बोले—'उनकी बनायी हुई चीजो को राज्य खरीद लेगा और बाजार मे बेचेगा। आप उन्हे ऐसी चीजें बनाना सिखाइए, जो सचमुच उपयोगी हो। आज आप जो शिक्षा देते हैं, वह जब

१ 'हरिजन' ११ सितम्बर, १९३७ के आधार पर।

स्वावलम्बी और स्वय स्फूर्तिवाली बन जायेगी, तभी महा जटिल प्रश्न सरल हो जायगा।'

कहते हुए शेखर ने डा० सिंह की ओर दृष्टिपात किया—"अभी मुझसे पहले एक वक्ता न राष्ट्रीय परिस्थिति का प्रश्न उठाया था। उनका कथन था कि राष्ट्रीय शिक्षा वही हो सकती है जो राष्ट्र की परिस्थिति मे लागू हो सके। यह तर्क किसी सीमा तक तथ्यपूर्ण हो सकता है, लेकिन जब हम शिक्षा के सन्दर्भ मे परिस्थिति की बात करते हैं तो सबसे पहले मनोवैज्ञानिक परिस्थिति पर ही विचार करना होगा। क्योंकि शिक्षा का सम्बन्ध बुनियादी तौर पर मानस से है। गाधीजी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से पूरे देश को स्वावलम्बी समाज म परिणत करना चाहते हैं। उनका कहना है, 'देश म वर्ग भेद नही होगा। एक-वर्गीय समाज म बुद्धि-जीवी और श्रम-जीवी दो प्रकार की श्रेणियाँ नहीं रह सकती।'[१] अब आप गम्भीरतापूर्वक विचार करके देखें तो पता लगेगा कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने देश को दो भागो म बाँट रखा है। जो बुद्धिजीवी है, वह श्रम नही कर सकता और जो श्रमजीवी है वह बुद्धिजीवी नही बन सकता। कितनी बडी विडम्बना है! ऊपर से इस खाई को जो शिक्षा पाटने जा रही है, हम उसीका विरोध करके राष्ट्रीय परिस्थिति की दुहाई देते हैं। वर्गभेद मिटान के लिए इससे अच्छी राष्ट्रीय परिस्थिति हम कहाँ मिलेगी? कब मिलेगी? और कैसे मिलेगी? (करतल ध्वनि)।

क्यो नही बनायी जा सकती ? मध्ययुगीन से प्रोफेसर घोष का क्या तात्पर्य था मैं नही जानता। इस शब्द से मेरा मतलब वर्गों एव वर्णों की अर्थ-व्यवस्था, समाज व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था के सकुचित विचारो से है। लेकिन आज जब हम स्वतत्रता, समाजवाद और राष्ट्रवाद का उद्घोष कर रहे हैं, तब हमारी शिक्षा स्वावलम्बी क्यो नही हो सकती ? (करतल-ध्वनि)

"इसी प्रकार कुछ और भ्रामक प्रश्न उठाये गये हैं। शेखर ने कहा—"मैट्रिक पास विद्यार्थी कालेज म पढ सकता है बुनियादी शिक्षावाला कैसे पढगा ? अथवा सात वर्ष की आयु शारीरिक होगी या मानसिक ? ये सब, जैसा कि मैने निवेदन किया, भ्रामक प्रश्न है। मेरी तो धारणा यह है कि बुनियादी शिक्षाक्रम को पूरा करनेवाला विद्यार्थी, मामूली मैट्रिक पास विद्यार्थी से अच्छा रहेगा। क्योकि उसकी शक्तिया अधिक विकसित होगी। जब यह कालेज म जायगा, तब, मैट्रिकुलेशन की तरह हतारा न होगा। अब रही शारीरिक और मानसिक उम्र की बात—इसम दोनो प्रकार की आयु का विचार रखना होगा, क्योकि एक बच्चा सात वर्ष की आयु मे ज्यादा सिख सकता है, दूसरा सम्भव है उतना न सीख पाये।

'इन शब्दो के साथ मैं आप सबसे अपनी त्रुटियो के प्रति क्षमा-याचना करते हुए निवेदन कर देना चाहता हूँ कि बुनियादी शिक्षा थोडी साहित्यिक और थोडी औद्योगिक नही, यह नयी तालीम दस्तकारी द्वारा सम्पूर्ण शिक्षण है। वदे मातरम्।' —'देवता मेरे देश का' पुस्तक से साभार

भुगतना पडा तथा ब्रिक्स्टन जेल मे रहते हुए उन्होने इण्ट्रोडक्शन टु मैथेमेटिकल फिलास्फी जैसी उच्च स्तर की पुस्तकें लिखकर विश्वव्यापी ख्याति कमायी।

युद्ध के बाद लेबर पार्टी के एक सदस्य की हैसियत से बर्ट्रेण्ड रसल ने लेबर प्रतिनिधिमण्डल के साथ रूस का दौरा किया तथा सोवियत यूनियन के बारे म द प्रैक्टिस ऐण्ड थ्योरी ग्राव बोल्शविज्म नामक एक पुस्तक लिखी। ग्रब ट्रिनिटी कालेज ने उन्हे पुन व्याख्याता पद देने का प्रस्ताव किया, जिसे उन्होंने ग्रस्वीकार कर दिया ग्रौर पीकिंग विश्वविद्यालय मे व्यवहारवाद पर व्याख्यान देने के लिए १९२० मे चीन का दौरा किया। वहाँ उन्होने चीनी जीवन ग्रौर विचार का गहन ग्रध्ययन किया, वहाँ से लौटकर द प्राबलम ग्राव चाइना नामक पुस्तक की रचना की, जिसमे उन्होंने यह बताया कि २०वी शताब्दी मे चीन क्या भूमिका ग्रभिनीत कर सकता है।

शिक्षा मे रुचि

बर्ट्रेण्ड रसेल ने ५० से ग्रधिक पुस्तकें लिखी, जिनमे से ग्रधिकतर गणित, दर्शनशास्त्र ग्रौर ग्रन्य शैक्षिक विषयो पर हैं, किन्तु बहुतेरी सामाजिक समस्याग्रो पर भी हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उन्होने प्रिन्सपिल्स ग्राव सोशल रिकान्स्ट्रक्शन शीर्षक से ग्रपने कुछेक व्याख्यान प्रकाशित कराय, तथा ग्रपनी दूसरी पत्नी डोरा रसेल के साथ १९२३ मे द प्रास्पेक्टस ग्राव इण्डस्ट्रियल सिविलाइजेशन का प्रकाशन कराया। शिक्षा म उनकी बडी रुचि थी, तथा पीटर्सफील्ड (हैम्पशायर) के निकट वे ग्रौर डोरा रसेल मिलकर लडको ग्रौर लडकियो के लिए एक स्कूल चलाते थे, जिसम पढाई ग्रौर खेलो के विषय म बच्चो को बडी ग्राजादी थी।

सन् १९३१ मे जब उनके बडे भाई का देहान्त हुग्रा तो बर्ट्रेण्ड रसेल तृतीय ग्रर्ल के पद के उत्तराधिकारी बने। उन्होंने लिखने तथा व्याख्यान देने का कार्य जारी रखा, तथा भारतीय स्वतत्रता ग्रान्दोलन के प्रति ग्रपनी सहानुभूति के कारण वे ब्रिटेन म बनी इण्डिया लीग के ग्रध्यक्ष बनाय गय, जिसका उद्देश्य भारतीयो तथा स्वशासन के उनके दावे को सहायता प्रदान करना था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ पहले वे व्याख्यान देन ग्रमरिका गये, पहल शिकागो विश्वविद्यालय म, ग्रौर उसक बाद लास ऐंजिलस स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय म। माच १९४० म उन्होने न्यूयार्क सिटी कालेज म प्रोफेसर का पद स्वीकार किया। उनके ग्रग्रवर्ती समाजशास्त्रीय विचारो तथा विशेषतौर पर मैरिज ऐण्ड मॉरल्स नामक उनकी १९२९ म प्रकाशित पुस्तक के कारण उनकी इस नियुक्ति पर एक तूफान उठ खडा हुग्रा, जिसे ग्रन्तत न्यूयार्क सर्वोच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया।

वे १९४४ में स्वदेश लौट आये। उनके पुराने कालेज, ट्रिनिटी, ने जी० एम० ट्रेवेलियन की अध्यक्षता में बर्ट्रेण्ड रसेल को व्यापक शर्तों पर फेलोशिप देने का प्रस्ताव किया। उन्हें इस बात की पूरी छूट दी गयी कि अपना अध्ययन जारी रखते हुए वे कालेज में रहें अथवा बाहर, जब चाहें तब व्याख्यान दें और चाहे न भी दें। इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और कई वर्षों बाद कैम्ब्रिज लौट आये।

यहाँ वापस आने के बाद वे अनेक दिशाओं में बड़े सक्रिय पाये गये। वे बड़े प्रेरणादायी वक्ता और व्याख्याता थे। उनकी गिनती बड़े सफल प्रसारकों में की जाती थी तथा बी० बी० सी० के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए उन्हें अक्सर निमंत्रित किया जाता था।

युद्धोत्तरकालीन कृतियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से उनकी रचनाओं में शामिल हैं **हिस्ट्री ऑव वेस्टर्न फिलासफी** जो उनके ७५ वें वर्ष में प्रकाशित हुई थी और जिसकी सभी प्रतियाँ प्रकाशित होने के पूर्व ही बिक गयी थीं तथा जिसे इस विषय पर *शताब्दी की अत्यन्त प्रामाणिक रचना माना जाता है।* कुछ वर्षों बाद उन्होंने लघु कहानियाँ लिखकर एक नये क्षेत्र में प्रवेश किया। **ह्यूमन सोसाइटी इन एथिक्स ऐण्ड पालिटिक्स** १९४५ में प्रकाशित हुई, पोर्ट्रेट्स फ्राम मेमरी के नाम से उनकी बहुत कुछ आत्मकथा जैसी पुस्तक १९५६ में आयी। माई **फिलासाफिकल डेवलपमेण्ट** तथा **विजडम ऑव द वेस्ट**, दोनों ही १९५९ में प्रकाशित किये गये थे। लार्ड रसेल की बाद की रचनाओं में **अनआर्म्ड विक्ट्री** तथा **पालिटिकल आइडियल्स** शामिल हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी, जिसका तीसरा और अन्तिम खण्ड गत वर्ष प्रकाशित हुआ।

वे एक प्रेरक शक्ति थे, विश्वशान्ति तथा आणविक आयुधों के निर्माण और परीक्षण के विरुद्ध आन्दोलन करनेवाली विभिन्न संस्थाओं के वे संस्थापक और अध्यक्ष थे।

लार्ड रसेल ने चार बार विवाह किये, और उनके तीन बच्चे थे उनके उत्तराधिकारी लार्ड ऐम्बर्ले का जन्म १९२१ में हुआ था।

उन्हें १९४७ में आर्डर ऑव मेरिट से विभूषित किया गया तथा इसके बाद के वर्ष में साहित्य का नोबेल पुरस्कार उन्हें मिला। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए १९५७ में उन्हें कलिंग पुरस्कार प्रदान किया गया तथा १९६० में उन्हें 'यूरोपीय संस्कृति के प्रति विशिष्ट अवदान' करने के लिए डेनिश सोनिंग पुरस्कार मिला। —ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज से प्राप्त

'मैं जिन्दगी को प्यार करता हूँ'

राममूर्ति

वह जीया तो शौक स जीया, और मरा तो दुनिया में अपने नाम की शान छोड गया। उसने हमेशा दिल से जिन्दगी को प्यार किया, लेकिन कभी जिन्दगी की बदिशो और मजबूरियो को कबूल नही किया। उसके सत्तानबे साल का एक एक साल मनुष्य द्वारा मनुष्य के साथ होनेवाली अमानुषिकता के विरुद्ध जहाद करने मे बीता। रसेल के जीवन म दार्शनिक, तत्त्वज्ञानी, योद्धा और सुधारक का विलक्षण समन्वय था।

रसेल के लिए जीवन म दो लक्ष्य थे एक, जानना, हर रोज जानना, जिन्दगी भर जानते ही जाना दूसरा, दुनिया जैसी है उससे ज्यादा शात, सुखी दुनिया बनाना। इन दो लक्ष्यो के लिए रसेल का जीवन समर्पित था। वह विवेक (रीजन) को सभ्य मनुष्य की सबसे बडी पूंजी मानता था। सत्य से बढकर विवेक का दूसरा कोई आधार नही और विवेक के बिना सत्य प्राप्त करने का दूसरा कोई साधन नही, इसलिए रसेल ने विचार को, विवेक को, किसी बधन म मान्यता म, मजबूरी म, ग्रन्थ के प्रमाण म, गुरु के वचन म, या सरकार के प्रचार मे नहीं बँधने दिया। विचार को उसने हमेशा मुक्त और सबस ऊपर रखा। मनुष्य की मुक्ति जिन क्रान्तिकारियो के जीवन का चरम लक्ष्य रही है उनमे रसेल का नाम है, क्योकि रसेल की दृष्टि म बुद्धि और विवेक की गुलामी सारी गुलामियो की जड है। उसने किसी 'सत्य' को कभी स्वीकार ही नही किया जब तक कि उसकी बुद्धि ने उसे अपनी कसौटी पर कस नहीं लिया। गाधी की तरह रसेल के लिए सत्य—तर्क की आग म तपाया हुआ सत्य—ही सर्वोपरि था। विज्ञान के इस सत्य का, कि सत्य तभी सत्य है जब वह सत्य सिद्ध हो जाय, उसने अपने जीवन म कभी उल्लघन नही होन दिया और, न तो अपनी ही इच्छाओ को अपने विवक और विचार पर हावी होन दिया। उसने बुद्धि के सिवाय दूसरी कोई सत्ता कभी मानी ही नहीं। एक बार बचपन म उसका बडा भाई उसे ज्यामिति सिखा रहा था। बच्चे रसेल ने ज्यामिति के गृहीत सत्यो (ऐक्सियम) पर शका प्रकट करना शुरू किया। उसके भाई ने कहा 'ज्यामिति म इन गृहीत सत्यो को स्वीकार किय बिना गुजर नही। इन्हे छोडकर हम आगे नही बढ सकते, रसेल चुप तो हो गया, किन्तु उसे समाधान नही हुआ। रसेल को धुन बढने की नहीं, जानने की

थी। वह सत्य की शोध और साधना करने के लिए पैदा हुआ था, उसका पंडा और व्यापारी बनने के लिए नहीं।

सत्य के लिए वह समर्पित था, इसलिए कष्ट-सहन उसके लिए सत्य का ही अंग था। १९१४ के पहले महायुद्ध तथा अनिवार्य भर्ती का उसने विरोध किया, इस अपराध मे ६ महीने जेल मे रहा। दूसरे महायुद्ध का औचित्य उसने इस कारण माना कि हिटलर के जुल्म का मुकाबिला करने का दूसरा कोई उपाय नही था, लेकिन युद्ध के बाद वर्षों मे जब उसने यह देखा कि अणु-बम मानव के अस्तित्व को ही समाप्त कर देगा तो वह जी-जान से उसके बहिष्कार मे लग गया। ७५ साल की आयु मे उसने अणु-बम के खिलाफ लडाई छेडी। जब वह ८० साल का था तो उसे अपने देश इंगलैण्ड के सरकारी दफ्तर के सामने बम-बहिष्कार के लिए प्रत्यक्ष कारवाई करने के जुर्म मे सात दिन की सजा हुई। ८८ साल की उम्र मे उसने सविनय-अवज्ञा आन्दोलन छेडा। अणु-बम के प्रति उसका विरोध अंतिम समय तक रहा। वह दुनिया को चेताता ही रहा, जगाता ही रहा। मानव-प्रेमी, मानव-सेवक रसेल मानव-मुक्ति की सतत चेष्टा मे कभी बूढा नही हुआ। न उसकी बौद्धिक जागरूकता कभी कम हुई, और न उसकी नैतिक हिम्मत ही कभी पीछे हटी।

रसेल जिन्दगी भर सक्रिय रहा, कोई-न-कोई आन्दोलन हमेशा करता ही रहा, किन्तु कभी किसी सस्था या सगठन की चारदीवारी के अंदर बन्द नहीं हुआ। समाज के जीवन मे कई तरह की कठोरताएँ होती हैं, कई बधन होते हैं, जिन्हे स्वीकार करना पडता है, इस कारण उसका और भी ज्यादा आग्रह था कि विचार को मुक्त रहना चाहिए। न उसे यही पसद था कि जीवन हर कील-कांटे मे इतना दुरुस्त रहे, कि इसान हिल-डुल न सके, और न यही पसद था कि तरह-तरह के सकोचो और भयो म फँसकर रह जाय और आदमी कुछ कर न सके।

रसेल ने अपनी जिन्दगी को वहाँ जाने दिया जहाँ कठोर, निर्मम सत्य उसे ले गया। दार्शनिक बनकर उसने ज्ञान की उपासना की, और सुधारक बनकर दुनिया की सेवा।

जब वह था तो दुनिया उससे धनी थी, आज जब वह नही है तो दुनिया उसकी कृतज्ञ है। कितने हैं जो दुनिया को कुछ देकर, कुछ बताकर, एक नयी रोशनी दिखाकर जाते हैं? •

विश्व-शांति के लिए एक मार्मिक अपील

(बर्ट्रेंड रसेल का ऐतिहासिक पत्र, जो उन्होंने आइजनहावर और ख्रुश्चेव को लिखा था)

मैं यह पत्र आपको विश्व के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न दो राष्ट्रों के प्रधान होने के नाते लिख रहा हूँ। इन दो देशों—अमरीका और सोवियत रूस—की नीति निर्देशन करनेवाले व्यक्तियों के हाथों में आज भला या बुरा करने की इतनी अधिक क्षमता है, जितनी पहले कभी भी किसी व्यक्ति या व्यक्तिसमूह को प्राप्त न थी। आपके राष्ट्रीय हितों के पारस्परिक प्रतिरोधवाले मुद्दों पर आपके देशों की जनता के विचारों से मैं परिचित हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि आप-जैसे दूरदर्शी और बुद्धिमान व्यक्ति इस बात से अवश्य ही परिचित होंगे कि, रूस और अमरीका के स्वार्थों की टक्करवाले विषयों से अधिक महत्वपूर्ण वे विषय हैं, जिनसे दोनों का स्वार्थ सधता है। आज हर व्यक्ति के लिए, चाहे वह किसी भी विचारधारा का पोषक हो, सबसे अधिक चिन्ता का विषय यही है कि, किस तरह मानव-जाति के बीच की मनमुटाववाली स्थिति के कारण यह समस्या आज बड़े विकट रूप में उपस्थित है। यदि दूसरे छोटे छोटे राष्ट्र भी आणविक अस्त्र प्राप्त कर लें, तो इसका स्वरूप और भी भयानक हो जायेगा। तब तो किसी भी विक्षिप्त मस्तिष्कवाले व्यक्ति की मात्र एक गैर जिम्मेदार कारखाई समस्त मानवता को काल के गाल में ढकेल देगी।

आणविक अस्त्रों का अबाध प्रसार एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता पैदा करेगा जो रूस या अमरीका, किसी के लिए भी हितकारी नहीं होगा। यदि प्रभुतासम्पन्न राष्ट्रों के शासकों में सूझ-बूझ और समझदारी का लेशमात्र भी हो तो वे अपने नागरिकों की रक्षा की दृष्टि से ऐसा आचरण न करें। इन कारणों से आणविक अस्त्रों के प्रसार पर प्रतिबन्ध अनिवार्य है।

अतः महाशयो (अमरीका के राष्ट्रपति* आइजनहावर और रूस के प्रधानमंत्री *श्री ख्रुश्चेव) मेरा विनम्र सुझाव है कि, आप दोनों आपस में मिलें और अपने अपने पक्ष के स्वार्थ-साधन के मुद्दों पर बातचीत न कर उन तरीकों

* तत्कालीन।

पर खुले हृदय से विचार-विमर्श करें जिनसे मानवता के सिर पर छाये काले बादल छट जायें और सर्वत्र सुख-समृद्धि का प्रखर आलोक फैल जाय। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस महान् कार्य के लिए सम्पूर्ण विश्व अपने अन्तरतम से आपका आभार मानेगा।

श्रद्धांजलि

आणविक युद्ध की विभीषिका से भय-ग्रस्त जगत को युद्ध-मुक्त करानेवाले के लिए अनवरत संघर्ष करनेवाले विश्व-मानव लार्ड बर्ट्रेण्ड रसल के निधन (दिनांक २ फरवरी '७०) पर सर्व सेवा संघ के वाराणसी स्थित कार्यालय में आयोजित कार्यकर्ताओं की सभा द्वारा हार्दिक श्रद्धांजलि दिवंगत आत्मा को अर्पित की गयी।

सभा में सर्वोदय परिवार के बुजुर्ग आचार्य दादा धर्माधिकारी ने लार्ड रसेल की महानता को प्रस्तुत करते हुए कहा कि ९७ साल की उम्र में भी उनकी प्रतिभा ताजी बनी रही। विविध प्रकार के शासनों अनुशासनों के सांचों और ढांचों में ढली-जकड़ी विचार-पद्धति और परतंत्र बुद्धिवादिता के इस युग में उनकी अकुण्ठित बुद्धि निरन्तर विचार-स्वातंत्र्य के लिए प्रयत्नशील रही। दादा ने कहा कि रसेल को जाना तो था ही, उसका दुःख नहीं दुःख इस बात का है कि विचार की समानुरूपता और शासकीय नियंत्रणवाली दुनिया में प्रखर चिन्तन की प्रतिभा-सम्पन्न एक जागतिक विभूति अब नहीं रही।

इस मानवनिष्ठ विश्वमानव को हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि।

प्रिय मित्रो,

जानकी के चले जाने पर जो प्रेम और करुणा की वर्षा आप लोगों ने हमारे ऊपर की उसके कारण ही विश्वशान्ति के कार्य को दुगुनी श्रद्धा के साथ चालू रखने की शक्ति मिली। इस प्रेम के लिए कैसे कृतज्ञता प्रकट करूँ पता नहीं। तो भी आप सब चि० रशीदा, उदयन, सुनन्द और मेरा प्रेमपूर्ण जय जगत स्वीकार करें, यह निवेदन करना चाहता हूँ।

आपका
देवी भाई

(लन्दन से २८ जनवरी, १९७० को लिखे गये श्री देवीभाई के पत्र से)

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार – प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अक : ७
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

फरवरी, '७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है ।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ५० पैसे ।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है ।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित; अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ मे मुद्रित ।

नयी तालीम : फरवरी '७०

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

महान् बा को नमन

'बा का जबर्दस्त गुण सहज अपनी इच्छा से मुझमें समा जाने का था। मैं नहीं जानता था कि यह गुण उनमें छिपा है।...लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गयी और पुख्ता विचारों के साथ मुझमें यानी मेरे काम में समाती गयी। '

—गांधीजी

'.. मुझे अगर अब किसीसे ज्यादा उम्मीद है—सेवा करने की, कौम की खिदमत करने की—तो बहनों से, औरतों से है, क्योंकि उन लोगों में अभी तक खुद-गरजी नहीं आयी है...। परमात्मा के लोग बेगरजी होते हैं और परमात्मा का आशीर्वाद वे ही हासिल करते हैं।...'

—सीमांत गांधी (बादशाह खाँ)

सेवा, त्याग एवं करुणा की मूर्ति महान् कस्तूरबा को उनकी सौवी जन्म-शती के अवसर पर शतशः नमन, जिनके कारण यह सत्य उद्घाटित हुआ और युग-पुरुषों को अनुभूति हुई कि स्त्री की अहिंसक-शक्ति के माध्यम से वर्तमान की सभी समस्याओं को सरलता से हल किया जा सकता है।

राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी की रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति.
ढूंढलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

भारगव मुद्रक : मण्डलदास प्रेस, मानमंदिर वाराणसी

वर्ष : १८
अंक : ८

- सामाजिक क्रान्ति के लिए गांधीवादी लोक-शिक्षण
- रचनात्मक शिक्षण एक अभिनव प्रयोग
- राष्ट्रीय एकता और पाठ्यपुस्तकें
- शिल्प और शिक्षा

मार्च, १९७०

बर्ट्रेण्ड रसेल : एक महान् शिक्षा-शास्त्री

बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रियों की बात सोचते है तो अमेरिका के जान ड्युवी के बाद बर्ट्रेण्ड रसेल का ही ध्यान आता है। निश्चय रूप से जहाँ रसेल इस शताब्दी के एक महान् दार्शनिक, तत्त्वज्ञानी और समाज-सुधारक थे, वही वे एक महान् शिक्षा-शास्त्री भी थे। उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए 'नयी तालीम' के पिछले अक मे आचार्य राममूर्तिजी ने लिखा था—"रसेल के जीवन के दो लक्ष्य थे—एक, जानना, हर रोज जानना, जिन्दगी भर जानते ही जाना, दूसरा, दुनिया जैसी है, उससे ज्यादा शान्त और सुखी दुनिया बनाना।" यही शिक्षा के भी लक्ष्य हैं। जीवन भर जानते रहना, यही बर्ट्रेण्ड रसेल की शिक्षा का लक्ष्य था। रसल ने कहा था, "सतत जानते रहने की—निरन्तर विवेक जागृत करने की—यह प्रक्रिया तभी जागृत होगी जब विद्यार्थियो को साधन नही, साध्य समझा जायगा।" ससार की अधिकाश शिक्षा-प्रणालियाँ छात्र-छात्राओं को 'साधन' समझकर उनको इस या उस साँचे मे ढालने की कोशिश करती हैं। और प्राचीन यूनान, भारत, चीन, जापान, इग्लैंड अथवा यूरोप और अमेरिका आदि देशों मे प्रचलित प्रख्यात शिक्षा-प्रणालियों को देखिए तो आपको इस बात की सच्चाई का अनुभव होगा। परन्तु रसेल ने स्पष्ट कहा कि हमे विद्यार्थियो को 'साधन' नही, 'साध्य' समझना चाहिए। ऐसा समझने पर

वर्ष : १८
अंक : ८

ही 'ज्ञान और विवेक जगाने' की प्रक्रिया शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य बन सकेगी।

इसीलिए रसेल विद्यार्थियो के आदर्श निर्माण के लिए चार विशिष्ट गुणो को आवश्यक मानते है। वे हैं—शक्ति, साहस, सवेदनशीलता और बुद्धि।

शक्ति मात्र शारीरिक गुण है—ऐसा रसेल नही मानते और कहते हैं कि अवस्था बढने के साथ शारीरिक शक्ति कम होती जाती है। अत वे जिस 'शक्ति' को आवश्यक गुण मानते है—वह 'आत्मा' की शक्ति भी है। यद्यपि शारीरिक स्वास्थ्य को वे कम महत्त्व नही देते हैं, क्योकि यदि शक्ति है, तो सुखो का आनन्द और अधिक हो जाता है और दु खो की वेदना कम हो जाती है।

इसी प्रकार वे साहस को भी परम आवश्यक मानते है। साहस के कई रूप हैं--निभयता इसका एक पक्ष है और मन पर नियत्रण कर पाना दूसरा पक्ष है। रसेल जीवन मे किसी भी प्रकार के अनुचित भय को प्रश्रय नही देना चाहते, इसीलिए उनकी राय है कि भय का उन्मूलन उसको दवाकर कभी नही करना चाहिए। इसी प्रकार 'साहस उत्पन्न करने के लिए 'दमन का उपाय' भी कभी नही अपनाना चाहिए। यहाँ तक कि सार्वजनिक निन्दा के भय से साहस का सचार करना भी व्यक्तित्व के विकास के लिए हानिकर ही है। चेतन और अचेतन मन मे भय की शून्यता की पृष्ठभूमि म 'जिस' 'साहस' की प्रवृत्ति का विकास होता है वही श्रेष्ठ है। और जब बर्ट्रेण्ड रसेल सर्वाच्च कोटि के साहस के लिए जीवन के प्रति तटस्थ दृष्टि को अपनाने की बात कहते है तब तो वे गाधीजी के बहुत ही निकट पहुँच जाते हैं। रसेल मानते है कि 'ऐसे व्यक्ति मे जो साहस होता है वह निषेधात्मक और दमनकारी न होकर सहज और स्वाभाविक होता है।' इस सहज और स्वाभाविक साहस को ही रसल चारित्रिक पूणता का महत्त्वपूर्ण अग मानते हैं।

'सवेदनशीलता' रसेल छात्र का तीसरा आवश्यक गुण मानते हैं। इस गुण को वह साहस का सशोधक और परिमार्जक मानते हैं। सवेदनशीलता के विकास की आवश्यक शर्त है सहानुभूति--सहानुभूति उसी समय नही जब दूसरे का कष्ट प्रत्यक्ष सम्मुख है, परन्तु उस समय भी जब स्थितियाँ प्रत्यक्ष सामने नही हैं। अगर शिक्षा अप्रत्यक्ष बातो

के प्रति भी सहानुभूति जागृत कर सके तो औद्योगीकरण की शोषण-मूलक क्रूरता अथवा युद्ध की विभीषिका के प्रति भी सात्विक घृणा उत्पन्न होगी।

परन्तु इन तीनों गुणों से अधिक आवश्यक गुण रसेल 'बुद्धि' को मानते हैं। परम्परागत सदाचार सूची मे बुद्धि को निम्न स्थान दिया जाता रहा है। इस सम्बन्ध मे यूनानियो ने कभी भी भूल नही की, पर यूरोप के चच ने सदैव मनुष्य को यही शिक्षा दी कि जीवन में सदाचार के अतिरिक्त किसी वस्तु का कोई मूल्य नही है। और सदाचार तो एक सापेक्षिक शब्द है जो देश और काल मे भिन्न हो सकता है। इस देश काल को परखनेवाला तत्व तो बुद्धि है। इसलिए बुद्धि का महत्व सबसे अधिक है। बुद्धि से रसेल का तात्पय वास्तविक ज्ञान और ज्ञानापाजन की शक्ति से है। अज्ञानी को कभी कुछ सिखाया नही जा सकता है। बुद्धि के बिना ससार की उन्नति का प्रश्न तो दूर रहा, निर्वाह होना भी असम्भव है। इसीलिए रसेल शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बुद्धि मे समुचित विकास को ही मानते हैं। सत्यता की जाच बिना सच्ची प्रगति असम्भव है और सत्यता की जाँच के लिए बुद्धि का निखार आवश्यक है। आचाय राममूर्तिजी के ही शब्दो मे— बर्ट्रेण्ड रसेल विवेक को (रीजन को) सभ्य मनुष्य की सबसे बडी पूजी मानता था। सत्य स बढकर विवेक का कोई दूसरा आधार नही है और विवेक के बिना सत्य की प्राप्त करने का दूसरा कोई साधन नहीं। इसीलिए रसेल ने विचार को विवेक को, किसी बन्धन मे, मान्यता मे, मजबूरी मे, ग्रन्थ के प्रमाण मे, गुरु के वचन मे या सरकार के प्रचार मे बँधने नही दिया।' और इसीलिए उसने बुद्धि के विकास को ही शिक्षा का सबसे बडा लक्ष्य समझा। नर नारियो का वह समुदाय जिसमे शिक्षा के कारण शक्ति साहस, सवेदनशीलता और बुद्धि अपने सर्वोत्कृष्ट रूप मे विद्यमान है आज तक के सभी समुदायो से भिन्न होगा। इसी मानव को प्राप्त करना रसेल की शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य है। —बंशीधर श्रीवास्तव

सामाजिक क्रान्ति के लिए गांधीवादी लोक-शिक्षण

के० एस० आचारलू

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाधीजी ने देश के सामने जो प्रमुख उद्देश्य रखा, वह था अहिंसा के आधार पर समाज की पुनरचना करना। स्वराज्य प्राप्ति उनके लिए राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति या साध्य मात्र नहीं था, वरन् व्यक्तिगत व सामाजिक अच्छे जीवन की उपलब्धि करने का साधन मात्र था। गाधीजी ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमे न दरिद्रता हो न अभाव हो न शोषण हो वरन व्यक्ति के विकास के विपुल साधन उपलब्ध हो।

यह अहिंसक रचना निम्नोक्त विधियो से लायी जानी थी—

१ ग्रामीण समाज की आर्थिक-सामाजिक उन्नति हो, इसमे गांवो का सहयोग हो उनमे सामूहिक उन्नति के प्रति उत्तरदायित्व व सामाजिक न्याय व सुरक्षा की भावना पनपे।

२ ग्रामसमाज की सहायता करना, ताकि वे अपने उपक्रम से आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान कर सकें स्वय की विकास-योजना बना सकें व उन्हें कार्यान्वित कर सकें।

३ यह देखना कि योजना उनके जीवन की आवश्यकताओ—भोजन वस्त्र, निवास, स्वास्थ्य व शिक्षा इत्यादि—को पूर्ण कर सके, साथ ही आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन व वितरण हो, स्थानीय साधनो का उपयोग हो सके, क्षेत्रीय स्वावलम्बन हो, यत्रो व कार्य विधि मे ऐसा सुधार हो कि न तो मानव श्रम का शोषण हो न काम मे लगे लोग बेकार हो जायें।

इस प्रकार की व्यापक क्रान्ति तभी हो सकती है जब कि लोगो ने इसे स्वेच्छा से स्वीकार किया हो तथा स्वय इस परिवर्तन को लाने के लिए प्रयत्नशील हो। इसी दृष्टि से लोक शिक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न बन जाता है।

इस समस्या की गहनता का तब अन्दाज हो सकता है जब कि कुछ मुद्दो का जो ग्रामीण समाज से सम्बन्ध रखते हो अध्ययन किया जाय।

सामाजिक दशा

ग्रामीणो मे लाखो लोग रोगो से ग्रस्त हैं जो कि उनके स्वास्थ्य या जीवनी शक्ति को सोखते रहते हैं तथा उनकी शक्ति व कार्य करने की इच्छा को समाप्त करते रहते हैं। लाखो अवनतोमुखी कृषि पर निर्भर हैं या फिर भूमि से भूमिहीन श्रमिकों या हिस्सेदारो के तौर पर बंधे हुए हैं। अनुपस्थित

जमींदार इस असहाय अवस्था में उनका शोषण करता रहता है। प्राकृतिक साधनों के गैरजिम्मेवाराना विनाश के कारण क्रमश: जंगलों का नाश, भूक्षरण, बाढ़ व नदियों-तालाबों का मिट्टी से भर जाना तथा पुन: बाढ़ व विनाश—यह दूषित क्रम चलता ही रहता है। कई कुशल कारीगर जो जूता बनाने, कपड़ा बुनने, मिट्टी के बर्तन बनाने, लकड़ी व पत्थर में नक्काशी करने के काम में लगे हुए थे, फैक्टरी के बने सस्ते सामान से स्पर्द्धा न कर सकने के कारण या तो व्यवसाय की खोज में चले गये या परम्परागत धन्धा छोड़ बैठे। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि लोग इसे भाग्य का फल मानते हैं – एक अमिट दुर्निवार कारण— मान बैठे हैं। उन्हें पता नहीं कि न तो इस दुर्दशा को ईश्वरप्रदत्त माना जा सकता है, न अनिवार्य ही है। लोग इतने आलसी निरुद्यमी परमुखापेक्षी हो गये हैं कि वे हर काम सरकार के माध्यम से करवाना चाहते हैं। सारी परिस्थिति बदल सकती है, जीवन ज्यादा अच्छा हो सकता है यदि लोग सजग हो जायँ। कोई कारण नहीं कि दरिद्रता, अशिक्षा, रोग, आर्थिक शोषण, अभाव—ये किसी समाज के अंग बने ही रहें। स्थिति में परिवर्तन लाना हो तो उनके लिए एक नयी दृष्टि, नया निश्चय प्रयत्न व सहयोग की आवश्यकता है।

हमारी आज की-सी दुर्दशा अतीत में कभी नहीं रही। हमारा इतिहास ही दूसरा रहा है। सदा से ही भारत गाँवों का देश रहा है। एक जमाने में ये ही गाँव हमारी शक्ति, सुरक्षा व सुख के गढ़ थे तथा उनमें पर्याप्त स्वतंत्रता थी, स्वावलम्बन था। इतिहास की खोजें सिद्ध करती हैं कि भारत का पुराना गौरव उसके राजाओं व शासनकर्ताओं के कारण नहीं, वरन् लोगों के उपक्रम व निश्चय तथा एक सुबद्ध, सुसंगठित आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के कारण था। प्राचीन काल का भारत एक परम साहसी, विपुल सम्पत्तिशाली राष्ट्र रहा। यह स्थिति अंग्रेजों के आगमन तक रही, उसके बाद गाँव की आर्थिक व्यवस्था विघटित हो गयी व गाँव शोषण के वेध लक्ष्य हो गये।

गांधीजी का प्रयत्न ग्रामस्वराज्य

इसीलिए, इसी प्राचीन ग्रामीण संस्कृति के विरासत के आधार पर, गांधीजी इस निश्चय पर पहुँचे कि स्वराज्य का वास्तविक अर्थ गाँवों का नवनिर्माण है, ग्रामस्वराज्य यानी अहिंसा का जीता जागता स्वरूप।

गांधीजी की कल्पना के अनुसार, ग्रामस्वराज्य का अर्थ है, शोषण विहीन, विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थ व्यवस्था, सहयोग, सबके लिए पूर्ण रोजगार, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति वस्त्र, भोजन व निवास के क्षेत्र में ग्राम को स्वावलम्बी बनाने के

लिए काम करेगा। गाधीजी ने कल्पना की थी कि गांव छोटे छोटे गए (Republics) हो, जो कृषि व उद्योग मे आत्मनिर्भर हो व अपने आप मे पूर्ण इकाई हो सकें। प्रत्येक ग्रामीण की शिक्षा, जन्म से मृत्यु पर्यन्त की, नयी तालीम के आधार पर हो, प्रत्येक गांव अपना भोजन व आवश्यक कपास उगाये। उसके अपने चरागाह होगे। यदि अतिरिक्त भूमि हुई तो द्रव्यवाली उपज उगायी जा सकेगी, लेकिन मादक वस्तुएँ नही, जैसे—तम्बाकू, अफीम, गांजा। बालको व प्रौढो के लिए गांव का अपना सामुदायिक केन्द्र होगा, रंगमंच होगा, स्कूल होगा। सभी मुद्दो का निश्चय ग्रामसभा का होगा, वह भी लोगो की राय से (बहुमत से नही, वरन् उनकी वास्तविक इच्छा पहचान-कर)। गांव मे शान्तिसेना होगी। गांव के मकान स्थानीय साधनो से बने होगे, परन्तु आजकल जैसे अन्धेरेवाले, बन्द हवावाले नही। प्रत्येक घर मे एक छोटा सब्जी व फल का बगीचा होगा। गांव मे एक पूजास्थान होगा, बाजार होगा, सार्वजनिक चरागाह होगा, सहकारी दुग्धशाला होगी तथा नयी तालीम की शाला होगी। झगडो को निपटाने को न्याय पचायत होगी। न कोई *आलसी होगा, न कोई विलास मे पडा रहेगा। यह ग्रामस्वराज्य का सपना* था, जो गाधीजी ने देश के सामने रखा था।

ग्रामस्वराज्य की आवश्यकता

प्रश्न उठता है कि अब ग्रामस्वराज्य लाने की इस द्वितीय क्रान्ति की क्या आवश्यकता है, जब कि एक समुचित वैध जनतान्त्रिक सरकार केन्द्र म है, जो कि ऐसे सविधान के आधार पर चल रही है, जो कि आदर्श है व ऐसी परि-स्थितियो ने सहयोग के आधार पर मनुष्य मस्तिष्क निर्माण कर सकता है। *यह सही है कि हमारे यहां जनतत्र है, परन्तु जनतत्र प्रतिनिधित्व का है, यानी* हमारे अधिकार हमने दूसरे को सौंप दिये हैं। जनतत्र की वास्तविक पहचान यह है कि लोग इच्छित परिवर्तन को अपने प्रयास से लायें, इस हेतु अपने म शक्ति उत्पन्न करें तथा अपनी समस्याओ को हल करें। बिना लोकशक्ति के कोई समाज जीवित नही रह सकता। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि हमारी ससदीय जनतान्त्रिक प्रणाली, जो दलगत राजनीति के आधार पर कार्य करती है, जो कि केवल सत्ता हथियाने का खेल-मात्र है, वह गाधी के सपनो का स्वराज्य तो नही ला सकती।

सर्वविदित है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार, जिसके कन्धो पर नये समाज के निर्माण का भार था और उसने सविधान म उल्लिखित इस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन पंचवर्षीय योजनाओ को, व सामुदायिक विकास व पचायती

राज को बनाया। परन्तु पचायती राज के नियमोपनियम ऊपर से बनकर आये, अतएव सत्ता उन लोगो के हाथो म रही जो कि दिल्ली मे बैठे थे, तथा वहाँ की कटुता, स्पर्द्धा व दल्गत झगडे, जो दिल्ली म थे गाँव मे प्रतिबिम्बित होने लगे। गाँव-स्तर पर न तो विचार ही हुआ, न योजना ही बनी। सबसे प्रमुख समस्या भूमि, उसको तो छुआ तक नही गया। स्थिति इतना गिर गयी है कि सभी यही अनुभव कर रहे हैं कि पचायती राज गिर जायगा यदि उसे केन्द्र मे नही सँभाला गया। सामुदायिक विकास के 'प्रोजेक्टस ने निम्न स्थिति के लोगो तथा साधनहीनो का कोई भला नही किया, उनका लाभ तो साधन-सम्पन्न लोगो ने ही उठाया। यहाँ तक कि भारत-केन्द्र-प्रमुख-निर्माता, नेहरू भी इन परिणामो को देखकर निराश हुए बगैर न रहे तथा कहा कि राष्ट्र को नयी प्रेरणा व मार्गदर्शन के लिए गाधी की ओर मुडना होगा।

ग्रामस्वराज्य के लिए सर्वोदयी प्रयत्न

गाधीजी को इसम लेशमात्र भी सन्देह नही था कि लोगो को जो स्वराज्य मिला वह स्वराज्य वह नही था, जिसके सघर्ष का नेतृत्व उन्होंने किया था। इसलिए उनके मन मे एक और क्रान्ति की आवश्यकता थी, जनसाधारण के लिए आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, अहिंसात्मक क्रान्ति। यह सर्वोदयवादी क्रान्ति केवल एक ही विधि से हो सकती है, यानी लोकशक्ति जगाकर। सच्ची क्रान्ति तब होती है जब कि लोगो के मन मे क्रान्ति के विचार जगें व उनमे नये मूल्यो का सृजन हो। यही गाधीवादी सर्वोदयी क्रान्ति का विचार विनोबा के ग्रामदान-आदोलन म प्रतिफलित हो रहा है।

ग्रामदान एक आर्थिक सामाजिक क्रान्ति है, जिससे ग्रामसमाज का प्रसुप्त बल व उत्तरदायित्व जाग्रत होकर ग्रामसमाज का विकास करेगा। यह लोगो पर इस बात के लिए जोर डालता है कि उन्ह अपनी समस्याएँ अपने बल-बूते पर ही हल करना है, उनका कल्याण उन्हीके हाथो मे है, राजनैतिक दलो के नेताओ के नहीं, न शासन के हाथो मे है।

एक आधुनिक प्रकाशन मे राबर्ट थियाबाल्ड ने बताया है कि दरिद्रता का निराकरण व्यक्ति व समाज में उद्देश्य जाग्रत कर किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, जनतत्र का आधार लोगो का उसमे सीधा भाग व सर्वसम्मत निर्णय होना चाहिए। इस प्रकार के नये जनतत्र के लिए नया मानवीय तकनीक चाहिए, नये प्रकार का शिक्षण चाहिए।

प्रसिद्ध समाजशास्त्रवेत्ता पाल गुडमन लिखते हैं—' भागीदारी का जनतत्र

एक माँग है कि हमारे जीवन को प्रभावित करनेवाले निर्णयों में हमारा भी भाग हो, हम भी कुछ कह सकें, यह उस पद्धति के विरोध में है, जिसमें निर्णय ऊपर से आते हैं, सामाजिक अभियन्त्रीकरण होता है सामूहिक व राजनैतिक केन्द्रीकरण होता है, अनुपस्थित स्वामित्व तथा सामूहिक प्रसार माध्यमों द्वारा दिमाग को बदला जाता है या अमुक वाद के लिए अनुकूल बनाया जाता है। भागीदारी का जनतंत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है, वह है जो लोग किसी एक काय म लगे हैं वे ही भली-भाँति जानते है कि उसे कैसे किया जाय। सभावना यही है कि यह स्वतंत्र निणय अवश्य ही दक्षतापूर्ण, खोजपूर्ण, सुन्दर व सबल होगा। प्रवृत्तिमूलक व आत्मविश्वासपूर्ण होने से इसका सहयोग अन्य समूहों से बिना अधिक ईर्ष्या या चिन्ता के होगा। बिना हिंसात्मक अविचार के या दबाने की इच्छा के होगा। इस प्रकार की समाज-रचना ही आत्मविकासशील होती है। हम सभी काय करके ही सीखते हैं तथा नागरिकों को शिक्षण देने की विधि यही है कि वे जैसे भी है उन्हें शक्ति प्रदान करो।' ('न्यूयार्क टाइम्स १४ जुलाई ६८)। जॉर्ज वेनेलो का कथन है कि किसी प्रबन्ध में सत्ता एवं उत्तरदायित्व के वितरण से काय अधिक अच्छा होगा; लोगों की समझ अच्छी होगी, इसके कारण स्वतन्त्रता बढ़ेगी काम में लग जाने की भावना का विकास होगा।

ग्रामदान का रहस्य है–भिन्न भिन्न प्रकार के हृदयों को मिलाना जिनकी रुचियाँ अलग अलग हैं मनोवृत्तियाँ अलग हैं। गाँव में श्रमिक व जमींदार, व्यापारी व बोहरे के आपसी सम्बन्ध अविश्वास, लोभ व शोषण के आधार पर बने होते हैं। ग्रामदान इस वस्तुस्थिति को बदल देना चाहता है सभी को ग्रामसभा म लाकर एकसूत्र म बाँधता है, जिसम श्रमिक अपना श्रम देते है, जमींदार अपनी जमीन व बोहरा अपना धन का अंश। प्रत्येक के थोड़े थोड़े स्वार्थ-त्याग से सामाजिक क्रान्ति का रेला बह निकलता है। ग्राम समाज सक्रिय होकर परिस्थितियों की वास्तविकता को समझने लगता है, अपने आपके लिए सोचने के प्रति अग्रसर होता है तथा अपने सामाजिक आर्थिक विकास के लिए सोचने लगता है और इस भाँति नये मनोभावों, मनोवृत्तियों व मूल्यों को ग्रहण करता है। यह सब होता है मन की भावना से, किसी बाह्य आदेश या निर्देशन से नहीं। यह सृजनात्मक परिवर्तन बदल शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। इसी दृष्टि से 'समाज शिक्षण' का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

समाज-शिक्षण यानी क्या ?

वास्तव म हम यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि 'समाज शिक्षण' से

हमारा तात्पर्य क्या है ? इस आन्दोलन के प्रारम्भ मे प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ होता था प्रौढो मे निरक्षरता का अन्त करना। परन्तु आजकल प्रौढ शिक्षा का अर्थ व्यावहारिक होता जा रहा है। कोठारी कमीशन (१९६६) ने इसकी परिभाषा करते हुए इसका उद्देश्य यह बतलाया है कि इसके द्वारा प्रत्येक प्रौढ़ को आत्म-विकास, जीवन-समृद्धि, व्यावसायिक दक्षता तथा सामाजिक-राजनैतिक जीवन मे भाग लेने की योग्यता प्राप्त होनी चाहिए। इसकी विधि होगी प्रौढों की निरक्षरता समाप्त करना, निरन्तर शिक्षण, पत्राचार-सत्र तथा पुस्तकालय का उपयोग। इस धारणा के आधार पर कि निरक्षरता राष्ट्र व समाज के विकास मे बाधक है, कमीशन ने इस बात पर बल दिया है कि प्रौढ शिक्षण व साक्षरता को राष्ट्रीय विकास-कार्यक्रमो म प्रथम स्थान देना चाहिए। साक्षरता-कार्यक्रम व्यावहारिक (functional) होना चाहिए।

यूनेस्को ने एक नये पारिभाषिक शब्द का प्रयोग प्रारभ किया—मूल शिक्षण (Fundamental Education) जिससे उनका तात्पर्य है—एक ऐसा सामान्य शिक्षण जो कि अविकसित प्रदेशों के लोगो को अपनी समस्याओ को समझने मे सहायता कर सके, उन्हें नागरिको के अधिकार-कर्तव्यों का भान करा सके। क्योंकि इसमे समझने पर जोर दिया गया, अतएव एक अधिक व्यापक व्याख्या-शब्द 'समुदाय शिक्षण' प्रयोग में आने लगा जिसका अर्थ न केवल नये ज्ञान, कौशल व मनोवृत्तियो के आधार पर व्यवहार-परिवर्तन है, वरन् उन्हें इस बात को सीखने मे सहायता की जाती है कि वे अपने आप की सहायता कैसे कर सकें।

इन व्यापक व विस्तारपूर्ण शब्दो, पारिभाषिक व व्याख्यात्मक नाम निरूपण के उपरान्त भी कार्यक्रम मूलरूप मे वही है—निरक्षरता का उन्मूलन, साक्षरता-कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध व व्यवस्था सम्बन्धी इतर बातें। परन्तु ये सभी विधियाँ व कार्यक्रम मूल प्रश्न को अछूता ही छोड़े हुए हैं। ये गाँव के उच्चतर जीवन को गतिमान करनेवाले तत्त्वों को बढावा नही देते।

जीवन के द्वारा जीवन की शिक्षा

हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की एक मीटिंग (पूना १९४५) मे गांधीजी ने अपने उद्देश्यों की इस प्रकार व्याख्या की थी, 'जीवन के द्वारा जीनव की शिक्षा।" समाज शिक्षण का उद्देश्य है, मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ पूर्ण हो, वह दूसरो के जीवन के बारे मे अपना दायित्व समझे व जीवन को समृद्ध बनावे। गाधीजी ने नयी तालीम को नवीन समाज-व्यवस्था की रचना मे अग्रदूत के रूप मे देखा, जिसका प्रभाव बहुत आग जानेवाला था। उनके मतानुसार शिक्षा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चलनेवाली थी। नयी तालीम का उद्देश्य नयी समाज-रचना

था, जिसका आधार था सहयोगी कार्य, सभी की भलाई के लिए। शिक्षा का अर्थ एक विशेष प्रकार का जीवन जीना तथा इसी जीने के *साथ सीखना कि कैसे* सहकारी जीवन के द्वारा जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार नयी तालीम 'समाज शिक्षण' के उस मूल विचार के लगभग *निकट आ जाती है, जिसका अर्थ केवल निरक्षरता-उन्मूलन नहीं वरन व्यक्ति का* विकास है, जिसमें वह अपने आत्मसम्मान को जगा सके, अपनी गरिमा को पहचान सके व उसमें आत्मविश्वास पनपे। इस प्रकार के सोचने से गांधीजी का समाज शिक्षण एक आर्थिक व सामाजिक क्रान्ति है जिसमें लोगों का दृष्टिकोण बदलता है व वे अहिंसा के आधार पर नये मूल्यों की रचना करते हैं। इसका अर्थ यह है कि ग्राम-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए धनवान और गरीब, जमींदार व बँटाईदार, जनसाधारण व वर्गविशेष सभी अपने अपने स्वामित्व का, अपनी योग्यताओं का व अपने कौशल का समुदाय के कल्याण के लिए त्याग करते हैं।

कुछ प्रयोग

सर्वोदय कार्यकर्ताओं द्वारा इस प्रकार के शान्त व विनम्र प्रयोग सैंकड़ों गाँवों में चल रहे हैं। कई स्थानों पर उपलब्धियाँ हुई हैं व समग्र विकास के *कार्य हुए हैं जमींदारों ने भूमिहीनों को वितरण हेतु भूमि दी है, गरीब किसान* बोहरों के चंगुल से, ऋणग्रस्तता से मुक्त हुए हैं, ग्रामसभा की स्थापना हुई जिसने सारे ग्राम के कल्याण का कार्य उठाया है, ग्राम-कोष की, सहकारिता की स्थापना हुई है, लघु सिंचाई कार्य हुए हैं स्वास्थ्य सुधार अभियान हुए हैं, पीने के पानी के कुएँ बने हैं, न्याय की पंचायतें बनी हैं, सर्वोदय-पात्र व शान्तिसेना *की स्थापना हुई है। अम्बर चरखे चालू किये गये हैं, प्रवृत्तिमूलक शिक्षा प्रारम्भ* की गयी है तथा इस प्रकार ग्रामदान द्वारा ग्राम पुनर्निर्माण-कार्य की सम्भावनाएँ फलित होने लगी हैं।

ग्रामदान की शान्त, सामाजिक क्रान्ति में प्रभावशाली समाज शिक्षण की क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उद्योग, कृषि, शान्तिसेना ग्रामसभा के कार्य के माध्यम से, समाज शिक्षा की व्यवस्था करने से लोगों में विकास की भावना जगेगी, सहकारिता के भाव उत्पन्न होंगे उत्पादन बढ़ाने की इच्छा जगेगी व सामाजिक जिम्मेवारी बढ़ेगी। ग्रामदान आन्दोलन एक जीवित रहने का कार्यक्रम है जिसका आधार सम्पूर्ण शिक्षण द्वारा राजनैतिक, सामाजिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना, गाँव के जनतन्त्र की जड़ें मजबूत करना, आत्मविश्वास व स्वावलम्बन पनपाना। ग्रामदान समाजविज्ञानवेत्ताओं व समाज शिक्षण-शास्त्रियों के लिए एक चुनौती है।

अनु०—वी द. द

राष्ट्रीय एकता और पाठ्यपुस्तकें

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

राष्ट्रीय एकता के संदर्भ मे पाठ्यपुस्तको का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। किन्तु इसके पहले कि हम इस पर विचार करें कि पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियो मे राष्ट्रीय एकता की भावना किस प्रकार प्रस्फुटित, पल्लवित, पुष्पित और विकसित की जा सकती है, यह आवश्यक है कि हम यह स्पष्ट कर लें कि राष्ट्रीय एकता से वस्तुत हमारा क्या अभिप्राय है।

भारत वह विशाल देश है जिसमे विभिन्न धर्मों और मतो के, विभिन्न विश्वासो और रीति-रिवाजो के माननेवाले लोग रहते हैं। यहाँ के निवासी अनेक जातियो और उपजातियो मे विभक्त हैं तथा उनकी अनेक भाषाएं और बोलियाँ हैं। प्राकृतिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टियो से भी भारत के प्रदेशो की अपनी कुछ विशिष्ट विभिन्नताएं हैं। किन्तु इन समस्त विभिन्नताओ के होते हुए भी कुछ बातें ऐसी एक-सी भी हैं जो इस विशाल देश के निवासियो को एक राष्ट्र के सूत्र मे बाँधे हुए हैं तथा जिनकी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से यहाँ के निवासियो के व्यक्तित्व पर वह छाप पड़ती है, जिससे वे 'भारतीय' कहलाते हैं। जब हम विदेशो मे होते हैं, तब यह बात सम्भवतः बहुत स्पष्ट रूप से हमारे सामने आ जाती है, क्योकि वहाँ जब एक बगाली गुजराती से, मद्रासी मराठा से, कश्मीरी केरलवासी से, असमी आन्ध्र-निवासी से, पजाबी बिहारी आदि-आदि से मिलता है तो उसके मन मे यह प्रश्न उठता ही नही कि वह किसी भिन्न प्रदेश के रहनेवालो से मिल रहा है। वह तो यही अनुभव करता है कि वह अपने देशवासी 'भारतीय' से ही मिल रहा है। और जब वह अमेरिकी, अफ्रीकी, रूसी, चीनी, जापानी, जर्मनी आदि नागरिको के बीच अपने को पाता है तो वह यह स्पष्ट अनुभव करता है (और अन्य देशो के नागरिक भी) कि वह जिस अर्थ मे 'भारतीय' है, अन्य कोई नहीं है।

इस प्रकार जाति, धर्म, भाषा, भूगोल, इतिहास आदि की विभिन्नताओ के होते हुए भी इस विशाल देश के निवासी जो यह अनुभव करते हैं कि वे 'भारतीय' हैं, एक देश के निवासी हैं तथा एक राष्ट्र के नागरिक हैं, यही सही अर्थ मे भारतीयता की भावना है, राष्ट्रीय एकता की कल्पना है। पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियो के हृदयों मे 'भारतीयता' अथवा 'राष्ट्रीय एकता' की इस भावना का किस प्रकार बीजारोपण किया जाय, तथा किस

प्रकार उसे उन्नत किया जाय, आगे की पंक्तियों में हम इसी पर, संक्षेप में कुछ विचार व्यक्त करेंगे।

पूर्वप्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर उच्च कक्षाओं तक के पाठ्यक्रमों में जितने भी विषय सम्मिलित होते हैं, पाठ्यपुस्तकें उन सभी विषयों पर होती हैं। अतएव यों तो प्रत्येक स्तर की तथा प्रत्येक विषय की पाठ्यपुस्तकों के रचयिताओं तथा चित्रकारों का यह दायित्व हो जाता है कि उनकी लेखनी अथवा तूलिका से किसी भी स्तर पर किसी भी विषय के प्रतिपादन में कोई ऐसा भाव, विचार, वाक्य या शब्द न निकल जाय, कोई रेखा ऐसी न खिंच जाय अथवा कोई चित्र ऐसा न बन जाय, जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना को ठेस पहुँचे, तथापि भाषा और सामाजिक विषय, विशेषकर इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के रचयिताओं पर इस दिशा में विशेष उत्तरदायित्व आ जाता है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए अर्थात् पाठ्यपुस्तकों द्वारा बालकों में राष्ट्रीय एकता की भावना के अंकुर जमाने के लिए तथा उस भावना को सुदृढ़ करने के लिए कतिपय निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं। ये सुझाव मात्र संकेतात्मक हैं, सर्वाङ्गपूर्ण नहीं।

(१) बालकों में 'भारतीयता' अथवा 'राष्ट्रीय एकता' की भावना को प्रारम्भ से ही इस रूप में प्रस्फुटित और पुष्ट किये जाने का प्रयास किया जाना चाहिए कि वह उनके लिए एक आस्था का विषय बन जाय।

(२) 'भारतीयता' अथवा 'राष्ट्रीय एकता' की भावना को सुदृढ़ बनाने के लिए एकदम सीधी उपदेशात्मक शैली का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, वरन इस सम्बन्ध में जो कुछ कहना हो, वह अप्रत्यक्ष रूप से ही कहा जाना चाहिए।

(३) बालकों में इस बात की स्पष्ट चेतना जागृत करने का प्रयास किया जाना चाहिए कि वे सब एक देश (भारत) के निवासी हैं और उसके विशाल जन-समूह का एक अभिन्न अंग हैं।

(४) भारत एक ऐसा देश है जिसमें हजारों वर्षों से विभिन्न धर्मों और विश्वासों के अनुयायी रहते आ रहे हैं तथा उनकी पूजा और प्रार्थना, अर्चना और आराधना आदि की विधियाँ भी पृथक् पृथक् हैं। पठन-सामग्री तथा उसके प्रस्तुतीकरण के माध्यम से बालकों में उन समस्त धर्मों के अनुयायियों, उनके धार्मिक सिद्धान्तों तथा विश्वासों, उनकी पूजा प्रार्थना आदि की विधियों की जानकारी तथा उनके प्रति आदर और सम्मान की भावना उत्पन्न करनी चाहिए तथा एक-दूसरे के धार्मिक दृष्टिकोणों के प्रति उदार और सहिष्णु

-बनने की वह प्रवृत्ति विकसित की जानी चाहिए जो भारतीय धार्मिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता रही है।

(५) धार्मिक विभिन्नता के साथ दूर-दूर और अलग अलग क्षेत्रो मे रहने-वाले इस विशाल देश के नागरिको के रहन-सहन के तरीके, सामाजिक रीति-रिवाज, आचार और व्यवहार, सास्कृतिक परम्पराएँ, वेष भूषा तथा खान-पान की विभिन्नताएँ भी स्पष्ट हैं। इनके सदर्भ मे भी बालको को इस प्रकार की पठन-सामग्री दी जानी चाहिए जिससे कि उनमे इन सामाजिक और सास्कृतिक विभिन्नताओं के प्रति भी आदर और सम्मान की भावना का उदय हो तथा वे इन्हें उदारता के साथ पूरे भारतीय जीवन का ही अग समझें। साथ ही यह भी कि भारत की सास्कृतिक गौरवमयी प्राचीन परम्परा एव धरोहर को वे सभी अपनी पावन थाती समझें।

(६) भारतीय जीवन-दर्शन तथा उसकी सस्कृति की एक बहुत बडी विशेषता रही है 'अनेकता म एकता'। पाठ्यपुस्तक-रचयिताओं द्वारा इस विशेषता को सदैव अपने सामने एक 'निर्देशक सिद्धान्त' के रूप मे रखा जाना चाहिए और इस देश की सस्कृति के उन मूल्यो और मान्यताओ को बालकों के सामने प्रभावी ढग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिनके कारण भारतीय सस्कृति की यह विशेषता अक्षुण्ण और अनुकरणीय रही है।

(७) भारत बहु भाषा भाषी देश है। अतएव बालकों मे आरम्भ से ही इस मनोवृत्ति की नीव डालनी चाहिए कि वे अपनी भाषा के साथ-साथ अन्य प्रदेशो की भाषाओं के प्रति भी आदर और सम्मान की भावना रखें और यह समझें कि वे भाषाएँ भी इसी देश की भाषाएँ हैं अतएव सब प्रकार से आदर की पात्र हैं।

(८) भारत वह विशाल भू-खड है जो प्रशासकीय दृष्टि से विभिन्न भागो मे क्षेत्रों मे तथा प्रदेशो म बँटा हुआ है। किन्तु वे सब भाग, क्षेत्र और प्रदेश एक भारत भूमि के ही अश हैं, यह विचार बालकों के मन मे स्पष्ट किया जाना चाहिए। और साथ ही यह भी कि यद्यपि वे किसी एक प्रदेश-विशेष के ही मूलत निवासी हैं, तथापि उनका देश उस प्रदेश से बडा है, ठीक वैसे ही, जैसे कि घर से गाँव बडा है, गाँव से नगर, नगर से जिला और जिले से प्रदेश। अतएव उनकी अपने प्रदेश के प्रति भक्ति अपने सम्पूर्ण देश के सदर्भ मे ही होनी चाहिए, अर्थात् देश-भक्ति को प्रदेश-भक्ति के ऊपर होना चाहिए। साथ ही यह भी कि देश भक्ति को जाति, धर्म अथवा अन्य समस्त प्रकार के वर्गों से भी सर्वोपरि होना चाहिए। उनके हृदयो मे यह भावना

कूट-कूटकर भर दी जानी चाहिए कि देश बडे-से-बडे व्यक्ति से, बडे-से-बडे वर्ग से तथा बडे-से-बडे प्रदेश से भी बडा है।

(६) भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे अथवा प्रदेशों मे रहनेवाले सतो, सूफियों, सामाजिक एव धार्मिक सुधारको, राजनीतिज्ञो, वैज्ञानिको, शिक्षाविदो, कलाकारो, शिल्पियो, कृषको, श्रमिको, तथा विचारको ने भारत के सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक विकास और उसकी प्रगति मे जो-जो योग-दान प्रदान किया है, वह उन्ही-उन्ही क्षेत्रो या प्रदेशो के गर्व और गौरव की बात नही है, वरन् वह समूचे देशवासियो के गर्व और गौरव की बात है, क्योंकि आज जिसे हम 'भारतीय सस्कृति' 'भारतीय सभ्यता', 'भारतीय सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था', अपने 'नये तीर्थ और मदिर' कहते हैं वे उन सभी के कार्यों और विचारो का एक समन्वित परिणाम हैं। अतएव वे महान नर-नारी न तो किसी एक प्रदेशविशेष के हैं और न किसी एक जाति या धर्म-विशेष के। वे सम्पूर्ण भारत के हैं। यह बात स्पष्ट रूप से बालको के हृदयो मे घर कर जानी चाहिए।

(१०) बालको के मन मे वाछित पठन-सामग्री द्वारा यह भावना भी जमा देनी चाहिए कि यदि देश के किसी एक भाग मे कोई प्रगति होती है तो उसका प्रभाव देश के अन्य भागो पर भी पडता है, और इसी प्रकार, यदि देश का कोई एक भाग पीछे रह जाता है तो उसका प्रभाव भी सारे देश पर पडता है। अतएव उन्हे यह स्पष्ट हृदयगम करा देना चाहिए कि सम्पूर्ण भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक उन्नति सारे प्रदेशो के पारस्परिक सहयोग तथा सबके समान विकास पर ही निर्भर करती है।

(११) पाठो के लिए विषय-सामग्री के चयन मे इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह, यथा-सभव देश के भिन्न भिन्न भागो से ली गयी हो, जिससे कि पाठ्यपुस्तक पूरे देश को प्रतिबिम्बित कर सके और विद्यार्थी उस सामग्री को पढकर पूरे देश के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करने मे समर्थ हो सकें। इस दृष्टि से, उदाहरणार्थ, महान पुरुषो की जीवनियाँ देते समय हमें सम्पूर्ण भारत पर दृष्टि रखनी चाहिए और शकराचार्य, वेमन, नानक, गुरु गोविन्द सिंह, नरसी, एनीबेसेंट, रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, निजामुद्दीन, अमीर खुसरो, अशोक, राणाप्रताप, अकबर, रानी लक्ष्मीबाई, चाँदबीबी, अहल्याबाई, गाधी, नेहरू, पटेल, सुभाष बोस, मौलाना आजाद आदि, आदि को पाठ्यपुस्तको मे यथास्थान सम्मिलित किया जाना चाहिए। धार्मिक

महान आत्माओं की जीवनियाँ देते समय हमें राम, कृष्ण, बुद्ध, हजरत मुहम्मद, महात्मा ईसा, गुरु नानक, महावीर स्वामी आदि को सम्मिलित करना चाहिए तथा साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों से तुलसी, सूर, कबीर, जायसी, रहीम, रसखान, मीराबाई, टैगोर, गालिब, मैथिलीशरण गुप्त, सुब्रह्मण्यम, भारती, इक्बाल, सरोजिनी नायडू, शंकर कुरूप, तानसेन, *अलाउद्दीन, रवि शंकर, ओंकारनाथ ठाकुर, रवि वर्मा, नंदलाल बोस, हुसेन,* जगदीशचन्द्र बोस, रामानुजम्, गोखले, रमन, बीरबल सहानी, भाभा इत्यादि, इत्यादि को समाविष्ट किया जाना चाहिए।

(१२) उपर्युक्त के अतिरिक्त हमें ऐसे पाठों का चयन भी करना चाहिए, जो विभिन्न प्रदेशों की कला और कारीगरी से सम्बन्धित हों तथा जिनसे बालक उन प्रदेशों के जीवन के और अधिक निकट आ सकें। उदाहरणार्थ, काश्मीर का लकड़ी का काम, मैसूर का हाथीदाँत का काम, बनारस का रेशम का काम, लखनऊ का चिकन का काम, राजस्थान का पत्थर का काम, असम का हथ-करघों का काम आदि आदि।

(१३) देश-प्रेम का अर्थ होता है उस देश की मिट्टी के कण-कण से प्रेम होना, उसकी नदियों, पर्वतों, पेड़ों, पशु-पक्षियों, आदि से प्रेम होना तथा उनसे एकाकार होना। इस दृष्टि से पाठ्यपुस्तकों में ऐसे पाठों का प्रचुर मात्रा में समावेश किया जाना चाहिए, जैसे—भारत की नदियाँ, गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, ताप्ती कावेरी, ब्रह्मपुत्र, आदि, भारत के पर्वत—हिमालय, अरावली, विन्ध्याचल आदि तथा भारत के पशु-पक्षी और फूल, जैसे–शेर, हाथी, ऊँट, बैल, गाय, मोर, कमल आदि।

(१४) भाषा की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे पाठ भी प्रस्तुत किये जाने चाहिए जो अन्य प्रदेशों पर हों। जैसे—यदि उत्तरी भारत के छात्रों के लिए कोई पुस्तक तैयार की जा रही हो तो उसमें अन्य पाठों के साथ दक्षिणी, पश्चिमी तथा पूर्वी प्रदेशों पर भी उपयुक्त पाठ सम्मिलित किये जायें। और इसी प्रकार यदि दक्षिणी भारत के छात्रों के लिए पुस्तकें लिखी जा रही हों तो उनमें उत्तरी भारत पर पाठ दिये जायें। इसके साथ-ही-साथ देश की विभिन्न भाषाओं का उत्कृष्ट साहित्य भी स्तरानुकूल चयन कर पाठ्यपुस्तकों में समाविष्ट किया जाना चाहिए।

(१५) राष्ट्रीय चिह्नों अथवा प्रतीकों (राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान आदि) से सम्बन्धित पाठ राष्ट्रीय एकता के उन्नयन में बहुत ही प्रभावी सिद्ध होंगे। अतः इनका समावेश अवश्य किया जाना चाहिए।

(१६) राष्ट्रीय एकता के उन्नयन की दृष्टि से स्कूल-स्तर पर इतिहास विषय की पाठ्य-पुस्तकों के लिए सामग्री के चयन और उसके प्रस्तुतीकरण मे विशेष सतर्कता और सावधानी वरती जाने की आवश्यकता है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि राष्ट्रीय एकता के नाम पर इतिहास के तथ्यों को असत्य रूप मे प्रस्तुत नही किया जा सकता, क्योंकि यदि ऐसा किया गया तो शिक्षा का जो एक सर्वोत्तम लक्ष्य है—बालक को सत्य की ओर ले जाना, वही खतरे म पड़ जायगा। तथापि इस सदभ म इतिहास विशेषज्ञो द्वारा इस पर विचार किया जा सकता है कि किस स्तर पर किन तथ्यों को पाठ्यपुस्तकों मे सम्मिलित किया जाना उपादेय होगा और किनको नहीं। बहुत-से तथ्य सभवत ऐसे हो सकते है जो परिपक्व बुद्धि के छात्रों के समक्ष ही रखे जायें जिससे कि वे उन पर अपनी तर्क एव विवेचनात्मक बुद्धि से विचार कर सकें। जहाँ तक कोमल मस्तिष्कवाले बालकों का सम्बन्ध है क्या ऐसा नही हो सकता कि उनके सामने युद्धो आदि के वणन उतने प्रस्तुत न किये जायें जितने कि वे आन्दोलन जिनसे इस देश को महान उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। अस्तु यह एक ऐसा विषय है जो विशेषज्ञो द्वारा ही विचारणीय है। हम तो यहाँ पर इतना ही कह सकते हैं कि यदि कोई बात हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति म सहायक नहीं होती तो हमे उस पर गम्भीरतापूवक विचार करने की आवश्यकता है, क्योंकि देश और राष्ट्र, किसी सकुचित अर्थ मे नही, सर्वोपरि है।•

रचनात्मक शिक्षण : एक अभिनव प्रयोग

ब्रह्मदत्त दीक्षित

आज वर्षों से चाहे नागरिक हो या नेता अधिकारी हो या सेवक, शिक्षा-शास्त्री हो या अर्थशास्त्री, समाज का प्रत्येक वर्ग यह कहता आ रहा है कि हमारी शिक्षा हमारे देश व काल के अनुकूल नहीं है। उसमें आमूल परिवर्तन होना चाहिए। ये 'चाहिए' की आवाज इतनी तीव्रतर है कि कभी कभी इस कथन पर क्रोध भी आने लगता है। 'चाहिए' का उपदेश कौन किसको दे रहा है? क्या बाहर का व्यक्ति आकर इसका उत्तर देगा? स्थिति इतनी ही भयावह नहीं है, उससे भी अधिक है। आज छात्र भी अपनी विवशता को क्रोध के माध्यम से व्यक्त करना सीख रहा है। कितने ही दीक्षान्त भाषणों के अवसर पर उनका कहना 'डिग्री नहीं चाहिए काम चाहिए', कितना सार्थक है और भयावह स्थिति कितनी सांकेतिक—उसकी अहमियत महसूस करना अत्यावश्यक है, अन्यथा आगामी स्थिति इतनी भयावह हो सकती है कि रोग के इलाज का समय ही नहीं मिलेगा।

अतएव हम गम्भीर मन से न केवल सोचना है, प्रत्युत उत्कट संकल्प लेकर कार्य क्षेत्र में उतरना है। शिक्षा की उस अवगत स्थिति का सामना करना है और समुचित विकल्प सिद्ध करके दिखाना है।

विद्यार्थी को काम चाहिए

आज शिक्षार्थी काम की मांग कर रहा है। काम न मिलने पर क्या कर सकता है इसकी कल्पना हम सब कर सकते हैं। काम कौन देगा? बाहर से भीख लाकर हम इस देश में इतना काम पैदा नहीं कर सकते है, जिससे सबकी भूख मिट सके। कभी-कभी प्राय ऐसा होता है कि हम बाहर से भीख लाकर जिन कामों में उसे लगाते हैं वे काम हमारे यहाँ बेरोजगारी में और सहायक हो जाते हैं, हमारी बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या को हल नहीं करते हैं। अतएव हमें प्रत्येक दशा में अपनी ही स्थिति में से काम खोजने पड़ेंगे, दूसरा कोई विकल्प नहीं। ग्रामीण उद्योगों के विकास की बात गांधीजी ने इसीलिए कही थी, जिसे हमने एकदम विस्मृत कर दिया। परिणाम यह हुआ कि अब उसी स्थिति पर हम पुन पहुँचे। करोड़ों को काम देना बड़े उद्योगों का केन्द्रीकरण नहीं कर पायेगा। 'मशीन काम छीनती है, देती नहीं है', 'हर हाथ को काम देना'—हमारी एकमात्र समस्या है। यह समस्या कोई अन्य

विभाग दूर भी नहीं कर सकता है। इसका एकमात्र उत्तरदायित्व 'शिक्षा' को ओढ़ना पड़ेगा, चाहे आज और चाहे कल। अंतर इतना ही होगा कि 'आगामी कल' भयकर हो सकता है। समय रहते ही सचेत हो जाना बुद्धिमानी का लक्षण है, अन्यथा समाज का प्रवाह तो अबाध है। जब उसमें असहनशील ताप बढ़ता है तो आंधी-पानी आता है और समस्त वातावरण को शान्तिमान बना देता है।

'हर हाथ को काम देना'—आज शिक्षा का मोड़ यही है। इस विकल्प की सिद्धि ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त कोई दिशा नहीं, जिस ओर हम मुड़ें और अपने त्राण का प्रकाश देख सकें। तब करना क्या है?

हमें काम न करना पड़े और बिना श्रम किये हुए ही श्रम का फल मिली जाय—दुर्भाग्य से हमारे समाज की ऐसी वृत्ति बन गयी है अथवा यूं कहिए कि कि वर्तमान 'बाबू सभ्यता' की थाती हमें प्राप्त हुई है। यह समाज के ऊपर और मध्यम स्तर की अर्थहीन आस्थाएँ हैं। गनीमत इतनी ही है कि ये आस्थाएँ अधिक टिकनेवाली नहीं हैं, क्योंकि नीचे का स्तर तथा पेट की बढ़ती हुई ज्वाला इसे ध्वस्त करने के लिए उत्तेजित हो लपक उठी है।

वर्तमान सामाजिक स्थिति के इस संदर्भ में हमें सोचना है कि 'हर हाथ को काम मिले' और काम भी विकासशील बुद्धि के अनुरूप हो, इसे सार्थक करना है। आज का छात्र काम चाहता है और काम भी ऐसा ही जिसमें उसकी बुद्धि का उपयोग हो तथा वह काम मनोरंजन का साधन ही न हो, वरन् किसी एक व्यवसाय-विशेष की भूमिका बने जो उत्पादन एवं स्वावलंबन की अवस्था से ओतप्रोत हो। इसके लिए सवप्रथम हमें दो उपलब्धियाँ प्राप्त करनी होंगी—(१) उद्देश्य के अनुरूप शिक्षकों की सम्यक् ट्रेनिंग। (२) जहाँ छात्र शिक्षाभ्यास करते हैं वे विद्यालय या तो किसी समाजोपयोगी व्यवसाय या उद्योग से अनुबन्धित हो अथवा अपने विद्यालय को ही समाजोपयोगी व्यवसाय या उद्योग का केन्द्र बनाने में समर्थ हो। पहिला विकल्प तो वर्तमान अवस्था में सम्भवतः न बैठ पायेगा, किन्तु दूसरा विकल्प अभी हमारे हाथ में आ सकता है यद्यपि कठिन प्रयास तो करना ही पड़ेगा, क्योंकि हमारे विद्यालय निरर्थक शिक्षा की दिशा में तीव्रतर गति से दौड़ लगा रहे हैं और मानवी मस्तिष्क बिना 'आगामी कल' को सोचें स्पुटनिक की भाँति मशीनी गरत में सलग्न है।

शिक्षकों का प्रशिक्षण

इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता है—शिक्षकों का प्रशिक्षण। रचनात्मक प्रशिक्षण द्वारा हम दोनों स्तरों के (ग्रेजुएट और अण्डरग्रेजुएट) अध्यापक प्रशि-

क्षित करें। ये शिक्षक जहाँ एक ओर योग्य शिक्षक होने की दक्षता प्राप्त करेंगे वहाँ अत्यावश्यक होगा कि किन्हीं दो शिल्पों के प्रशिक्षण की क्षमता भी प्राप्त करें। प्रशिक्षण का समय ९ महीने न होकर पूरे १२ महीने का होना चाहिए। इसके लिए नया पाठ्यक्रम निर्मित करना पड़ेगा, जिसमें उपयोगी और प्रभावशील तथ्यों का ही समावेश होगा। पाठ्येतर कार्य हमारी वर्तमान आवश्यकता के अनुसार होंगे। शिक्षा-सम्बन्धी तथा शिल्प-सम्बन्धी उपलब्धियाँ समय और लक्ष्य के आधार पर निर्धारित होंगी। कार्य का समय ८ घंटा प्रतिदिन होगा। परीक्षा भी तदनुरूप ही होगी।

जहाँ तक शिल्पों की व्यवस्था का प्रश्न है उसका मौलिक आधार होगा—

(१) शिल्प का समाजोपयोगी होना। (२) उसकी उत्पादन तथा व्यावसायिक क्षमता। (३) शिल्प-शिक्षण का सम्यक् प्रबन्ध (सामान-सज्जा की दृष्टि से तथा प्रशिक्षकों की दृष्टि से)। (४) शिल्प-शिक्षा का व्यावसायिक तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण—शिल्प या तो कुटीर-उद्योग का स्वरूप ले अथवा किसी बड़े उद्योग का अनुबन्धित स्वरूप हो जो व्यवसाय या उत्पादन की दृष्टि से सक्षम हो अथवा कोई Hobby (हॉबी) हो और स्वावलम्बन का साधक बने। कुछ शिल्प-शिक्षणों के नाम दिये जा रहे हैं —(१) सिरेमिक्स सम्बन्धी विविध कार्य जैसे—पॉटरी, तामचीनी का कार्य आदि। (२) फल-संरक्षण, तेल, पालिश, आदि के कार्य जो औद्योगिक रसायन की शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। (३) सिलाई। (४) प्लास्टिक का काम। (५) किचन-गार्डन तथा पुष्पादि-उत्पादन का शिक्षण, जो कृषि के सम्बद्ध कार्य हैं। इन सबके पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-सम्बन्धी अन्य व्यवस्था, सम्पूर्ण योजना बनाने, तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए दो माह का समय चाहिए।

इस नवीन शिक्षा क्रम के लिए प्रायोगिक आधार-भूमि कक्षा ६,७,८,९ के छात्र होंगे जो रचनात्मक शिक्षण विद्यालय से स्वत शासनीय ढंग से सम्बद्ध हैं। इतना और आवश्यक होगा कि उक्त विद्यालय का अध्यक्ष सहयोगिक प्रवृत्ति का हो। यह कार्य शासन के लिए अत्यन्त सहज है।

प्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य-क्षेत्र

इस प्रकार के शिक्षक के पास दो प्रकार का प्रशिक्षण है—(१) विविध विषयों का प्रशिक्षण-कौशल, (२) शिल्प-शिक्षण की दक्षता। यह शिक्षक आठ घंटे कार्यरत रहेगा। अतएव ३० रु० अधिक पारिश्रमिक का अधिकारी है। साथ ही यह अपने शिल्प शिक्षण के अध्यापन से टारगेटयुक्त धनराशि भी एकत्र करेगा जो विद्यालय की आय होगी।

यदि कोई प्रशिक्षित शिक्षक अथवा शिक्षार्थी शिल्प प्रशिक्षण के पश्चात् स्वतन्त्र व्यवसाय का इच्छुक है तो उसे सरकार द्वारा तीन वर्ष तक अनुरूप अनुदान मिलेगा जिसे वह लम्बी किश्तों में चुकायेगा। ऐसे कुटीर उद्योग यदि ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित होते हैं तो उन्हें तरजीह देना होगा तथा इन कौशल-सम्पन्न शिल्पियों को ग्रामों में ही व्यवस्थित करना होगा, जहाँ पर शिल्प स्वाभाविक स्वरूप लेकर पनप सकें।

विद्यालयों में शिल्प शिक्षण का प्रसार

प्राय देखा गया है कि ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालय अपने यहाँ शिल्प विषय इसलिए नहीं खोल पाते हैं कि

(१) योग्य अध्यापक नहीं मिलते।

(२) शिल्प विषयों की सामग्री व साज-सज्जा प्रारम्भ में खर्चीली लगती है, उन्हें इसके लिए कोई अतिरिक्त अनुदान नहीं मिलता।

(३) तैयार माल की बिक्री का समुचित प्रबन्ध नहीं होता।

शिक्षा में शिल्प शिक्षण का विषय एक अधूरा एवं उपेक्षित प्रश्न है। सम्भवत यह प्रवृत्ति हमारी 'बाबू सभ्यता' से जुड़ी हुई होने के कारण रही है। अतएव एक बार इसके उद्धार के लिए हम विशेष संरक्षण देने ही होंगे। प्रतिवर्ष जो सरकारी अनुदान प्रत्येक जिले में जाते हैं, उनका ½ भाग अधिक उन विद्यालयों को मिलें जो शिल्प शिक्षण की सम्यक् व्यवस्था को अपने विद्यालय में संचालित करने में इच्छुक हों। इनका समय समय पर समुचित निरीक्षण भी होना रहे। इसके अतिरिक्त शेष बाधाएँ विभाग द्वारा आसानी से दूर की जा सकती हैं।

उद्देश्य यह है कि हमारे विद्यालय ऐसे शिल्प केन्द्रित हों, जिनका स्थानीय मान हो तथा छात्र अपनी ज्ञानात्मक शिक्षा के अतिरिक्त अधिक समय काम करने व पाने के शिक्षण में व्यतीत करने का अवसर पा सकें। उन्हें अपने ही परिसर में शिक्षा भी मिले, काम भी मिले श्रम का मूल्य भी मिले, तभी वह वहाँ टिकेगा और अपनी समुन्नत स्थिति भी बना सकेगा। अन्यथा बड़ी मशीनों के नगरों की ओर भागता रहेगा, जहाँ उसे निराश मन तथा अस्वस्थ शरीर की ही प्राप्ति हो सकती है।

व्यवसाय और हॉबी

आज प्राय शिक्षित व्यक्ति नौकरी के लिए आतुर है। कोई भी देश ऐसी व्यवस्था कभी भी न कर सकेगा कि उसके प्रत्येक नागरिक को नौकरी मिल

जाय। देश म नाना प्रकार के स्वतत्र व्यवसाय उत्पन्न करने होगे, जिनम सभी अपनी रुचि के अनुसार कार्य पा सकें और अपने जीवन को उन्नत बना सकें। अतएव जहाँ तक एक ओर जॉब उत्पन्न करना आवश्यक है वही यह भी आवश्यक है कि उनकी सम्यक् ट्रेनिंग की भी व्यवस्था हो, जिससे श्रममूलक एव उत्पादन मूलक जॉब या 'व्यवसाय' समाज के लिए उपलब्ध हो सके और उपयोगी बन प्रत्येक बालक और बालिका के हाथ म एक दो, तीन ऐसे श्रमशील शिल्प विद्यमान हो, जिससे वह किसी भी अवस्था मे अपने को परावल न समझे। अतएव नवीन व्यवसाय या उद्योग उत्पन्न करना और उनकी सम्यक् ट्रेनिंग देना परमावश्यक है। हर हाथ को काम देना हमारी एकमात्र समस्या है।

इसी आधार पर शिक्षा को श्रम उद्योग व नवीन व्यवसायो के आधार पर खड़ा करना होगा। इस दृष्टि के परिणामस्वरूप हम सवप्रथम ऐसे अध्यापक प्रशिक्षित करने होगे जो अपने दिल और दिमाग से इम दर्शन के प्रति आस्थावान हो चिन्तनशील हो तदनुरूप कायशैली म प्रशिक्षित हो, जिनमे उद्देश्य क प्रति मिशनरी स्वरुप प्रतिलक्षित हो। ऐसे अध्यापको का प्रशिक्षण बडी ही सावधानी और सतकता से करना होगा जिससे उनको शिक्षण शैली की दक्षता और कुशलता भी उपलब्ध हो सके तथा वे किसी-न किसी नवीन उद्योग, श्रमशील व्यवसाय तथा उत्पादनमूलक क्रिया मे पूर्ण प्रशिक्षित हो। उनके मस्तिष्क और हाथ, दोनो समाज के कल्याणकारी कार्यो म सयोजित हो जिससे उनका वास्तविक योगदान समाज को प्राप्त हो सके।

उद्योग तथा शिल्प भी ऐसे खोजने होंगे, जो—

(१) बडे उद्योगो के पर्याय न हो जिससे अनावश्यक प्रतियोगिता का सामना करना पडे और उनका स्वरूप खडा करना अधिक व्ययशील हो।

(२) उत्पादन तत्काल दृष्टिगोचर हो, जिससे बच्चो म उपलब्धि का भावना उत्पन्न हो सके।

(३) जनप्रिय कुटीर उद्योग का स्थान ग्रहण कर सके।

(४) स्वतत्र व्यवसाय के रूप मे कोई भी व्यक्ति उसे अपनी अन्न का साधन बना सके।

(५) उत्पादित वस्तु की खपत निश्चितप्राय हो। किसी बडे प्रबन्ध की उसके लिए आवश्यकता न पडे।

ऐसे श्रमशील उद्योग एवं शिल्प हमें दो प्रकार के उपलब्ध हो सकते हैं :—

(१) लघु कुटीर उद्योग, जिनमें उपरोक्त पाँचों गुण विद्यमान रहते हैं।

(२) बड़े उद्योगों के छोटे-छोटे स्वतंत्र कार्य, जो स्वतंत्र व्यवसाय के रूप में समाज में प्रचलित हैं तथा चलाये भी जा सकते हैं और अधिक व्ययशील भी नहीं हैं। इसी आधार को ध्यान में रखते हुए कतिपय ऐसे ही शिल्प-विषयों का समावेश पाठ्यक्रम में किया गया है, जिनका प्रशिक्षण अध्यापकों को प्रदान किया जायेगा।

एल० टी० अभ्यर्थियों का प्रशिक्षण-काल एक वर्ष का होगा। प्रत्येक छात्राध्यापक को कम-से-कम दो शिल्प लेने होंगे, जिसमें एक अपेक्षाकृत बड़ा होगा और दूसरा अपेक्षाकृत छोटा, जिसका स्वरूप हॉबी का होगा। शिक्षा की प्रारम्भिक कक्षाओं के वातावरण को अधिकाधिक क्रिया-सम्पन्न बनाना होगा, जो न केवल शिक्षा और मनोविज्ञान की दृष्टि से परमावश्यक है, वरन् समाज के लिए भी आवश्यक है।

प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को शिक्षण-काल में जिस शिल्प की वह ट्रेनिंग लेगा, उसमें उत्पादन की दृष्टि से पूरा अभ्यास करना होगा और अपनी ऐसी दक्षता सिद्ध करनी होगी, जिससे उसे विश्वास हो सके कि उसका मनोनीत विषय स्वतंत्र व्यवसाय या 'जाब' का गुण रखता है और वह एक ओर उसकी उन्नत आय का साधन भी हो सकता है, तथा दूसरी ओर समाज का उपयोगी कार्य भी। शिल्प-सम्बन्धी व्यावसायिक ट्रेनिंग भी उसे प्रदान की जायेगी, जिससे वह जाग्रत शिल्पी बन सके और अपने श्रम के मूल्य को पाने में समर्थ हो सके।

वर्तमान शिक्षा के क्रम में यह एक नया मोड़ है, जिसे कार्यान्वित करना न केवल हमारा कर्तव्य है, वरन् त्राण पाने का एकमात्र मार्ग है। यदि हमारे संकल्प श्रमशील और निष्ठावान् रहे तो निश्चय ही हम शिक्षा की एक नयी दिशा खोल सकेंगे और भावी संतति को सम्पन्न नागरिकता तथा काम और दाम समय रहते दे सकेंगे।•

यांत्रिक उत्पादन प्रणाली में प्रयुक्त मशीनों और औजारों के सन्दर्भ में शिल्प में औजारों के स्थान का प्रश्न उठता है। मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग एवं उद्योग के अमानवीकरण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कुछ लोग शिल्प से *यन्त्रों और औजारों के बहिष्कार का स्वप्न देखते हैं। वे शिल्प को प्रधानतया* हस्त-कार्य का समानार्थी मानते हैं, और यदि कुछ मात्रा में औजारों के प्रयोग की अनुमति भी देते हैं तो केवल ऐसे औजारों की जिनके बिना शिल्प का कार्य सम्भव नहीं हो सकता। इस दृष्टिकोण से उनका ध्यान उन औजारों की ओर जाता है, जिसका प्रयोग मनुष्य ने सभ्यता के विकास की आदि अवस्थाओं में किया है। एसे औजारों का प्रयोग ही इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत वांछनीय माना जाता है। यह दृष्टिकोण उतना ही भ्रामक है जितना कि उपयोगिता के नाम पर शिल्प को कला से पूर्णतया पृथक करना। वास्तव में एक योग्य शिल्पी अपने औजारों को उतना ही महत्त्व देता है जितना कि निर्मित वस्तुओं को। सभ्यता के क्रमिक विकास में औजारों के विकास का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। सुन्दर शिल्प की वस्तुओं का निर्माण करने के लिए कितने ही शिल्पियों ने औजारों में संशोधन, परिवर्तन किया और उन्हें अधिकाधिक उपयोगी बनाया है। किसी भी देश की शिल्प-परम्परा में ऐसे शिल्पी न मिलेंगे, जिन्होंने अपने औजारों की उपासना न की हो। ऐसी दशा में शिल्प के औजारों का प्रयोग वर्जित करना अथवा केवल आदिकालीन औजारों के सहारे शिल्प की क्रियाओं का सम्पादन करना शिल्प की उन्नति में ही नहीं अस्तित्व में भी बाधक होगा। इसके साथ ही यह दृष्टिकोण यथार्थ, परम्परा और व्यावहारिकता का भी उल्लंघन करता है। औजारों की संख्या तथा उनके विकास की अवस्था के आधार पर शिल्प को उद्योग अथवा यांत्रिक प्रणाली से पृथक करने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि शिल्प में प्रयुक्त औजार मनुष्य को शुद्ध एवं परिष्कृत कार्य करने के लिए सक्षम बनाते हैं उसे अनायास परिश्रम से बचाते हैं और सुन्दर शिल्प-कृतियों के निर्माण में सहायता देते हैं। इसके विपरीत यांत्रिक उत्पादन प्रणाली में मनुष्य मशीनों के अभाव की पूर्ति करता है और उनके कल पुर्जों की भाँति कार्य करता है। अतः शिल्पी की स्वतन्त्रता तथा शिल्प के माध्यम द्वारा अपनी सुरुचि एवं कलात्मक भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के मार्ग में यदि औजार और मशीनें बाधक नहीं सिद्ध होतीं तो उनका प्रयोग निश्चय ही शिल्प में किया जा सकता है।

शिक्षा में शिल्प की आवश्यकता

शिल्प की परिभाषा एवं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के

रखा जा सकता। उपयोगी होते हुए भी किसी वस्तु को शिल्प की श्रेणी म हम तभी रख सकते हैं जब वह वस्तु सु दर और आकर्षक भी हो तथा उसके निर्माण मे शिल्पी को उसी सुख और आनन्द की प्राप्ति हुई हो, जो कलाकार को अपनी कृति के सृजन म होती है।

उपयोगिता को शिल्प की मुख्य विशेषता मान लेने पर शिल्प तथा यान्त्रिक उत्पादन प्रणाली के अन्तर की ओर ध्यान जाता है। आज मानव-जीवन की अधिकाश आवश्यकताओ की पूर्ति ऐसी वस्तुओ द्वारा होती है जिनका उत्पादन बडी मात्रा मे बडे कारखानो म होता है। इस उत्पादन प्रणाली को उद्योग की सज्ञा दी जाती है। उद्योग के अन्तगत उत्पादन की समस्त व्यवस्था, कच्चा माल, मशीनें प्रक्रियाएँ और निर्मित वस्तुएँ आती हैं। बडी मशीनें इस प्रणाली की प्रमुख विशेषता है। जिस कारखाने म जितनी जितनी बडी और दक्ष मशीनो का प्रयोग होता है उसे उतना ही आधुनिक समझा जाता है, और इन मशीनो की दक्षता की एकमात्र कसौटी यह है कि उसमे आदमियो की आवश्यकता कम से-कम हो। वास्तव म आधुनिक उत्पादन प्रणाली म मनुष्यो की आवश्यकता इसलिए पडती है कि अभी पूण दक्ष मशीनो का आविष्कार नही हो पाया है, उनम कुछ कल पुर्जों की कमी है, जिसका स्थान मनुष्य ले लेता है। जैसे-जैसे इन कल-पुर्जों का आविष्कार होता जायेगा, मनुष्य की आवश्यकता समाप्त होती जायेगी और जब तक इस प्रकार के पुर्जे नही बनते, मनुष्य पुर्जों की भाँति काय करता रहेगा। इस प्रणाली द्वारा उत्पादन और लाभ की मात्रा म वृद्धि अवश्य हो जाती है किन्तु कार्य करनेवालो को वह आन्तरिक सुख और काय करने का सतोष नही प्राप्त होता जो शिल्पी को प्राप्त होता है। इस प्रणाली मे कारखानो के मालिको का एकमात्र ध्येय अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना होता है और कारीगरो का अधिकाधिक वेतन। कारखाने के मालिक अधिक लाभ के लिए निर्मित वस्तुओ के मानक को गिराने मे जिस प्रकार सकोच नही करते उसी प्रकार कारीगर और मजदूर अपने वेतन-वृद्धि के लिए काम बन्द करने मे सकोच नही करते। यदि काय का एकमात्र ध्येय महीने या सप्ताह के अन्त म प्राप्त वेतन हो जाता है तो स्वाभाविक है कि वेतन वृद्धि के प्रयास मे जितना उत्साह कमचारी दिखायेंग उतना काय करने म नही। परिणामस्वरूप आज कारखानो के कारीगर और मजदूर औजार रख देने' म जो उत्साह दिखाते हैं वह औजार उठाने मे नही। इसका एकमात्र कारण यही है कि आज की उत्पादन प्रणाली म काय से प्राप्त सतोष का स्थान मासिक वेतन ने ले लिया है।

शिल्पियों द्वारा सम्पन्न होता था उसे अब संस्थागत सम्पन्न करने का प्रयास किया जाय। फलतः राज्य की ओर से ऐसी शिक्षण संस्थाएँ खोली गयीं जिनमें विभिन्न प्रकार के शिल्प और उद्योगों की शिक्षा-दीक्षा देने की व्यवस्था थी।

शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षाविदों का ध्यान भी शिल्प शिक्षा की महत्ता और उपयोगिता की ओर गया। शिक्षा को जीवन की तैयारी के रूप में देखने के फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा की माँग हुई। शिक्षालयों में दी जानेवाली केवल भाषा, गणित और साहित्य की शिक्षा को लोगों ने अपर्याप्त बताया। उपयोगी ज्ञान और उपयोगी कौशल को शिक्षा में स्थान देना आवश्यक समझा जाने लगा। बालक-बालिकाओं की सामान्य शिक्षा की दृष्टि से तथा उनके व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए हाथ से काम करने, उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करने, प्रकृतिदत्त वस्तुओं की सहायता से सुन्दर और उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करके अपने विचारों, भावनाओं एवं सौन्दर्यानुभूति को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करने के लिए शिल्प-शिक्षा आवश्यक समझी गयी। शिक्षा में क्रिया के सिद्धांत तथा शिक्षा-क्षेत्र में प्रयोजनावाद के प्रभाव से भी शिल्प की महत्ता में वृद्धि हुई और बालक-बालिकाओं के बौद्धिक विकास की दृष्टि से भी शिल्प के कार्य महत्वपूर्ण समझे जाने लगे। प्रसिद्ध अमेरिकी शिक्षाविद जॉन ड्युवी ने यह स्पष्ट कर दिया कि शिल्प कार्य में उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने के लिए किसी कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए जो पद्धति अथवा योजना छात्र अपनाते हैं उसमें चिंतन की वैज्ञानिक प्रणाली का सांगोपांग प्रयोग होता है। जॉन ड्युवी ने शिक्षाविदों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि छात्रों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास की दृष्टि से यह आवश्यक है कि स्वतंत्र चिंतन की उनमें आदत डाली जाय और चिंतन की सही पद्धति अपनाने की शिक्षा दी जाय तथा स्वयं सोचने और विचार करने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाय। शिल्प कार्य अथवा सप्रयोजन क्रियाएँ इसके लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध करती हैं इस बात को भी ड्युवी ने अपने लेखों और पुस्तकों में प्रस्तुत किया है।

ड्युवी ने कहा है कि, 'प्रभावपूर्ण शिक्षा तभी सम्भव होती है जब विद्यार्थी शैक्षिक क्रिया को वास्तव में सार्थक देखता है। इच्छा, उद्देश्य, योजना और निर्णय उसके लिए तभी सार्थक होते हैं जब स्पष्ट रूप से वह यह अनुभव कर लेता है कि एक दिशा में अथवा एक ढंग से कार्य करके वह अपने उद्देश्य-पूर्ति में सफल हो सकता है, किन्तु दूसरे ढंग से कार्य करने पर वह उद्देश्य से दूर चला जाता है, और उसके सारे प्रयास निरुद्देश्य सिद्ध होते हैं।'

कार्यक्रम म शिल्प की आवश्यकता तथा पाठ्यक्रम मे शिल्प के स्थान को समझने म विशेष कठिनाई नही होनी चाहिए तथापि इस विषय पर पर्याप्त भ्रम प्रचलित है। एक समय था जब शिल्प की शिक्षा केवल उन्ही बालक बालिकाओ को दी जाती थी जो सामान्य शिक्षा से लाभ उठाने म असमर्थ समझे जाते थे। विकलागता बौद्धिक क्लीबता समाज के मानदण्डो की अवहेलना ही किसी बालक अथवा बालिका को शिल्प शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध करती थी। शिल्प की शिक्षा या तो अध अथवा बधिर विद्यालयो म दी जाती थी या बालक बालिकाओ के लिए बने हुए कारागृहो म। इस प्रकार की शिल्प शिक्षा ने ऐसे बालक बालिकाओ के पुनर्वसन म जो भी सहायता दी हो, शिल्प की परपरा को स्थायी रखने तथा उसकी वृद्धि करने म न तो यह सफल हुई और न सफल हो सकती थी। फिर भी इससे एक लाभ अवश्य हुआ, जो शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वह यह कि मनोवैज्ञानिको और शिक्षाविदो का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ कि मानसिक सतुलन प्राप्त करन की दशा मे शिल्प अथवा रचनात्मक कार्य सहायक होते हैं। किन्तु शिल्प शिक्षा के इस प्रयोग ने शिल्प और शिक्षा दोनो के सम्बन्ध म एक गलत धारणा का सूत्रपात किया, जिसका प्रभाव आज तक चला आ रहा है। शिल्प शिक्षा को हेय समझने की जो परम्परा आज भी जीवित है उसे पुष्ट करने का कुछ श्रेय इस प्रभाव को भी है। जिस ढग से राज्य अथवा शिक्षा विभागो की ओर से शिल्प शिक्षा का प्रारम्भ किया गया उससे कुछ लोगो के अन्दर यह धारणा बनी कि शिल्प की शिक्षा ऐसे बालक-बालिकाओ के लिए ही उपयुक्त है जो सामान्य शिक्षा से विशेष लाभ नही उठा सकते हैं जिनका बौद्धिक स्तर सामान्य से कम है, अथवा जो किसी अन्य प्रकार से शारीरिक मानसिक एव नैतिक योग्यता से वचित है। राजकीय विभागो द्वारा शिल्प-शिक्षा की इस व्यवस्था के अतिरिक्त भी शिक्षण और प्रशिक्षण का एक ऐसा साधन था जिसने शिल्प की परम्पराओ को जीवित रखा। यह व्यवस्था थी लब्ध और साधारण शिल्पियो द्वारा बच्चो को अपने शिल्प की परम्परा, सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक ज्ञान और कौशल से परिचित कराने तथा अपने शिल्प विशेष के प्रति उनके हृदय मे अनुराग उत्पन्न करने की। प्रत्येक शिल्पी न्यूनाधिक सख्या मे बालको को अपने शिल्प की शिक्षा दीक्षा देता था और इसीसे शिल्प की परम्परा आज तक जीवित रही। किन्तु औद्योगीकरण के युग म यह सभव नही प्रतीत हुआ कि यह व्यवस्था अब अधिक समय तक जीवित रह सकेगी। शिल्प और उद्योग के केन्द्रीयकरण और राज्य के कर्तव्यो मे विस्तार के फलस्वरूप यह अपेक्षित हुआ कि जो कार्य पहले व्यक्तिगत

एक अवस्था पर किसी प्रकार की त्रुटि हो जाती है तो अगली अवस्था म स्वय उसका आभास हो जाता है और उसे दूर करने के लिए छात्रो को बाध्य होना पडता है।

माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे शिल्प का स्थान

शिल्प की शक्षिक उपयोगिता, शिक्षा म शिल्प की आवश्यकता तथा पाठ्य क्रम म शिल्प को स्थान देने क सम्बन्ध मे मतभेद और विवाद की अवस्था अब प्राय समाप्त हो गयी है। आज कदाचित ही कोइ ऐसा शिक्षाविद होगा जो शिल्प की शक्षिक उपयोगिता पर सदेह करता हो तथा पाठ्यक्रम म उसे उचित स्थान देन की आवश्यकता का अनुभव न करता हो। मतभेद यदि है भी तो वह इन प्रश्नों पर, जैसे—शिल्प का पाठ्यक्रम म क्या स्थान हो ? इस अनिवाय विषय के रूप मे पढ़ाया जाय या वैकल्पिक विषय के रूप मे ? प्राथमिक शिक्षा स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम मे शिल्प का क्या स्थान होना चाहिए ? माध्यमिक स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम म शिल्प का क्या स्थान होगा ?

ज्ञानाजन एव व्यक्तित्व के विकास की दष्टि से क्रिया अनुभव और सोद्देश्य क्रियाओं की महत्ता को स्वीकार करने तथा भारत मे बेसिक शिक्षा के सिद्धात को मान्यता प्रदान करने के परिणामस्वरूप कक्षा १ से ८ तक के पाठ्यक्रम मे शिल्प को महत्वपूण स्थान दिया गया है और एक अनिवाय विषय क रूप मे इसकी शिक्षा दी जाती है। किन्तु माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर अभी शिल्प को यथोचित स्थान नही मिल पाया है। उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियो को तैयार करना माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रहा है और माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम मुख्यतया उच्च शिक्षा की आवश्यकताओ से ही निर्धारित होता रहा है। माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे ऐसे ही विषयो को प्रधानता मिलती रही, जिनका अध्यापन उच्च शिक्षा की संस्थाओ मे होता था। इस प्रकार साहित्यिक विषय, सामाजिक अध्यापन और विज्ञान के अन्तगत आनेवाले विषय ही माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे स्थान पाते रहे।

जैसे-जैसे शिक्षाविदो का ध्यान छात्रो के विकास तथा समाज की आवश्यकताओं की ओर गया माध्यमिक शिक्षा के इस एकागी और एकमार्गी पाठ्यक्रम स उनका असतोष बढ़ता गया। माध्यमिक शिक्षा के लिए एक ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो छात्रो की प्रवृत्तियो और रुचियो को विकसित होने का अवसर प्रदान कर सके, समाज की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति म सहायक हो सके तथा इस तथ्य की ओर भी ध्यान दे सके कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियो मे से अधिकाश उच्च शिक्षा से

छात्रों के सामाजिक विकास की दृष्टि से भी शिल्प शिक्षा का उपयोगी माध्यम है। स्वावलम्बन, सहकारिता, श्रम के प्रति निष्ठा, अपने कार्यों का उत्तरदायित्व स्वीकार करने की क्षमता तथा उनको दूसरों के सम्मुख रखने की उत्सुकता आदि ऐसे गुण हैं, जो किसी भी समाज के भावी सदस्यों के लिए आवश्यक हैं। प्रतियोगिता, परीक्षा प्रणाली पर आधारित पुस्तकीय शिक्षा इन गुणों का विकास करने में अधिक सफल नहीं हो सकती। किन्तु शिल्प-कार्य द्वारा ऐसे अवसर उपलब्ध होते हैं जब छात्र वैयक्तिक एवं सामूहिक ढंग से कार्य करके, प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं से अपनी बुद्धि और अपने श्रम से किसी ऐसी वस्तु का निर्माण करते हैं जो उपयोगी होने के साथ-साथ सुन्दर भी होती है। अपने श्रम एवं प्रयास के इस फल को देखकर प्रसन्न होना, दूसरों के समक्ष गौरव के साथ स्वनिर्मित वस्तु को प्रस्तुत करने की सहज अभिलाषा स्वाभाविक है। शिल्प कार्य के दौरान वे एक-दूसरे को सहायता देते हैं। अपने हाथ से कार्य करने का परिणाम यह होता है कि छात्र हाथ से काम करनेवालों को, शारीरिक श्रम करनेवालों को, उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते उन्हें हेय नहीं समझते। अपितु ऐसे व्यक्तियों के कार्यों की उपयोगिता एवं सामाजिक महत्व को समझने का प्रयास करते हैं। शिक्षा में क्रिया के सिद्धान्त का सूत्रपात करनेवाले तथा दि एक्टीविटी स्कूल के लेखक एडल्फ फेरेरी के शब्दों में 'शारीरिक श्रम मिलजुलकर कार्य का अवसर प्रदान करता है जिससे सामाजिक एकता की भावना का विकास होता है।"

इसके अतिरिक्त निपुणता के साथ स्वेच्छा और शुद्ध कार्य करने की आदतें जिस मात्रा में शिल्प द्वारा विकसित की जा सकती हैं उतनी पाठ्यक्रम के किसी अन्य विषय के माध्यम से नहीं। इतिहास, भूगोल अथवा भाषा आदि में छात्रों का कार्य शत प्रतिशत शुद्ध न होकर यदि लगभग शुद्ध है तब भी काम चल सकता है किन्तु शिल्प के कार्यों में उन्हें यह प्रयास करना पड़ता है कि उनके कार्य शत प्रतिशत शुद्ध हों। किसी भी प्रतिमान के निर्माण में चाहे वह काष्ठ-शिल्प का प्रतिमान हो अथवा ग्रंथ शिल्प या धातु शिल्प का, छात्रों को सफलता तभी मिल सकती है जब उसके विभिन्न भागों को बनाते समय वे निर्धारित नाप का शत प्रतिशत अनुसरण करें तथा उचित विधि से ही कार्य करें। एक ऐसी कुर्सी, जिसके चारों पैर बराबर नहीं हैं अथवा किसी पुस्तक की ऐसी जिल्द, जिसके ऊपर और नीचे की दफ्ती के आकारों में असमानता है केवल देखने में ही भद्दी नहीं लगेगी, वह उस आवश्यकता की पूर्ति भी नहीं कर सकती जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है। इतना ही नहीं प्रतिमानों के निर्माण में यदि

एक अवस्था पर किसी प्रकार की त्रुटि हो जाती है तो अगली अवस्था म स्वय उसका आभास हो जाता है और उस दूर करने के लिए छात्रो को वाध्य होना पडता है।

माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे शिल्प का स्थान

शिल्प की शक्षिक उपयोगिता, शिक्षा मे शिल्प की आवश्यकता तथा पाठय क्रम म शिल्प को स्थान देने के सम्ब ध म मतभेद और विवाद की अवस्था अब प्राय समाप्त हो गयी है। आज कदाचित ही कोइ ऐसा शिक्षाविद होगा जो शिल्प की शक्षिक उपयोगिता पर सदेह करता हो तथा पाठयक्रम म उसे उचित स्थान देन की आवश्यकता का अनुभव न करता हो। मतभेद यदि है भी तो वह इन प्रश्नों पर, जैसे—शिल्प का पाठयक्रम म क्या स्थान हो ? इस अनिवाय विषय के रूप मे पढाया जाय या वैकल्पिक विषय के रूप म ? प्राथमिक शिक्षा स्तर की शिक्षा के पाठयक्रम मे शिल्प का क्या स्थान होना चाहिए ? माध्यमिक स्तर की शिक्षा के पाठयक्रम म शिल्प का क्या स्थान होगा ?

ज्ञानाजन एव व्यक्तित्व के विकास की दष्टि से क्रिया अनुभव और सोद्देश्य क्रियाओं की महत्ता को स्वीकार करने तथा भारत मे बेसिक शिक्षा के सिद्धात को मान्यता प्रदान करने के परिणामस्वरूप कक्षा १ से ८ तक के पाठयक्रम म शिल्प को महत्वपूण स्थान दिया गया है और एक अनिवाय विषय के रूप मे इसकी शिक्षा दी जाती है। किन्तु माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर अभी शिल्प को यथोचित स्थान नहीं मिल पाया है। उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियो को तैयार करना माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रहा है और माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम मुख्यतया उच्च शिक्षा की आवश्यकताओ से ही निर्धारित होता रहा है। माध्यमिक शिक्षा के पाठयक्रम म ऐसे ही विषयो को प्रधानता मिलती रही, जिनका अध्यापन उच्च शिक्षा की सस्थाओ मे होता था। इस प्रकार साहित्यिक विषय, सामाजिक अध्यापन और विज्ञान के अन्तगत आनेवाले विषय ही माध्यमिक शिक्षा के पाठयक्रम मे स्थान पाते रहे।

जैसे-जैसे शिक्षाविदो का ध्यान छात्रो के विकास तथा समाज की आवश्यकताओ की ओर गया माध्यमिक शिक्षा के इस एकागी और एकमार्गी पाठ्यक्रम से उनका असतोष बढता गया। माध्यमिक शिक्षा के लिए एक ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो छात्रो की प्रवृत्तियो और रुचियो को विकसित होने का अवसर प्रदान कर सके, समाज की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक हो सके तथा इस तथ्य की ओर भी ध्यान दे सके कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियो म से अधिकाश उच्च शिक्षा से

लाभान्वित हुए बिना ही सामाजिक जीवन मे पदार्पण करेंगे। फलतः माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को विस्तृत, बहुउद्देशीय और उपयोगी बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव किया जाने लगा कि पाठ्यक्रम मे कुछ ऐसे भी विषयो को स्थान दिया जाय जो उपयोगी हो, जिनके आधार पर विद्यार्थियो को प्राविधिक सस्थाओ मे प्रवेश पाने अथवा स्वतत्र रूप से जीविका-निर्वाह करने मे कुछ सहायता मिल सके। इस दृष्टि से तथा छात्रो की प्रवृत्तियो को विकसित होने का अवसर प्रदान करने की दृष्टि से शिल्प उपयोगी विषय समझा गया। इसके अतिरिक्त शिल्प की शैक्षिक सभावनाओं, विद्यार्थियो मे वाछित गुण, भावनाओ, कौशल आदि का विकास करने मे शिल्प की उपयोगिता के कारण भी यह आवश्यक समझा जाने लगा कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शिल्प को उचित स्थान दिया जाय। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे भी एक वैकल्पिक विषय के रूप मे शिल्प को स्थान मिला। सयुक्त राष्ट्र के शैक्षिक, सामाजिक एव सास्कृतिक सगठन (यूनेस्को) ने माध्यमिक शिक्षालयो मे शिल्प-शिक्षण की स्थिति पर, एक अध्ययन १९५० ई० मे प्रकाशित किया (दि टीचिंग आफ हैण्डीक्राफ्ट्स इन सेकेण्ड्री स्कूल्स)। इसके अनुसार जिन ४७ देशो से इस विषय पर उत्तर प्राप्त हुए, उनमे से ३८ देशो मे माध्यमिक स्तर पर शिल्प की शिक्षा प्रदान की जाती है। शेष ९ देशों मे से ६ मे प्राथमिक स्तर और दीक्षा विद्यालयो म शिल्प की शिक्षा दी जाती है। केवल तीन देश ऐसे हैं जिनके उत्तरो से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वहाँ, शिक्षा-व्यवस्था मे शिल्प को कोई स्थान नहीं दिया गया है। अरजेनटाइना आस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, इक्वेडर, मिश्र, इग्लैंड तथा वेल्स, होडुराज, लेबनन, मोनेको, न्यूजीलैंड, नारवे, पनामा, फारस, पुर्तगाल, स्विटजरलैंड, सीरिया, थाईलैंड और तुर्की मे माध्यमिक स्तर की कुछ कक्षाओ मे शिल्प का शिक्षण अनिवार्य है। कनाडा मे ओन्टेरियो, फिनलैंड, फ्रान्स, स्वेडन तथा ट्रान्सवाल मे माध्यमिक शिक्षा की प्रारम्भिक कक्षाओ मे तो अनिवार्य विषय के रूप मे शिल्प की शिक्षा दी जाती है, किन्तु अतिम कक्षाओ मे शिल्प वैकल्पिक विषय हो जाता है।

भारतवर्ष मे भी अधिकाश प्रदेशो मे वैकल्पिक विषय के रूप मे माध्यमिक स्तर पर शिल्प की शिक्षा दी जाती है। कुछ प्रदेशो मे यह एक पृथक् वर्ग के रूप मे है। उत्तरप्रदेश मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जब माध्यमिक शिक्षा का सगठन किया गया तो इस स्तर की शिक्षा को बहुद्देशीय और बहुमुखी बनाने की दिशा म पाठ्यक्रम मे चार वर्ग रखे गये—साहित्यिक, वैज्ञानिक, रचनात्मक और कलात्मक। रचनात्मक वर्ग मे अधिकांशतया शिल्प ही थे। कृषि और

वाणिज्य-शास्त्र भी उपयोगिता के आधार पर इसी वर्ग के अन्तर्गत आते थे। उत्तर माध्यमिक (हाईस्कूल) तथा इण्टरमीडिएट परीक्षा पास करनेवाले विद्यार्थी अपनी रुचि एव क्षमता के आधार पर इन वर्गों म मे कोई भी वर्ग ले सकते थे। रचनात्मक वर्ग मे भी विद्यार्थियो को रुचि-वैभिन्य की दृष्टि से कई विषयो म से चुनने का अवसर मिलता था। इस प्रकार कृषि, काष्ठ शिल्प, धातु-शिल्प, ग्रथ-शिल्प, कताई-बुनाई, कुलाल विज्ञान, औद्योगिक रसायन आदि सभी रचनात्मक वर्ग के अन्तर्गत आते थे। इस समय उत्तरप्रदेश मे माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम मे वर्गों की सख्या और भी बढ़ गयी है। कृषि और वाणिज्य अलग-अलग वर्ग हो गये हैं तथा प्रदेश के कुछ विद्यालयो म टेकनिकल वर्ग मे भी शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है।

मुदालियर कमीशन द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम मे शिल्प का स्थान

माध्यमिक स्तर की शिक्षा के पुनर्संगठन हेतु भारत सरकार द्वारा नियुक्त मुदालियर कमीशन ने इस स्तर की शिक्षा के लिए जो पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है उसम हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करनेवाले सभी विद्यार्थियो के लिए अनिवार्य रूप से किसी एक शिल्प की शिक्षा की सस्तुति की गयी है। इस पाठ्यक्रम मे दो भाषाएँ, सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान और गणित तथा निम्नलिखित शिल्पो मे से कोई एक शिल्प अनिवार्य विषय के रूप मे है —(१) कताई बुनाई, (२) काष्ठ शिल्प, (३) धातु शिल्प, (४) बागवानी, (५) सिलाई, (६) मुद्रण-कला, (७) वर्कशाप प्रैक्टिस, (८) सिलाई-कढ़ाई और (९) मूर्तिकला।

कमीशन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्थानीय सुविधा एव आवश्यकता के अनुसार इस सूची मे वृद्धि की जा सकती है और किसी अन्य शिल्प की शिक्षा दी जा सकती है। अनिवार्य विषय के रूप मे शिल्प की शिक्षा देने की सस्तुति कमीशन ने मुख्यतया दो कारणो से की है —

१—इस स्तर के विद्यार्थियो को हाथ से कार्य करने तथा किसी एक शिल्प म उच्च स्तर की प्रवीणता प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए जिससे आवश्यकता पडने पर वे इसके माध्यम से जीवकोपार्जन कर सकें।

२—हाथ से कार्य करने के फलस्वरूप विद्यार्थियो मे श्रम के प्रति निष्ठा बढ़ेगी। रचनात्मक कार्यों को सम्पन्न करने से उत्पादन के आनन्द का वे अनुभव करेंगे और ईमानदारी तथा प्रवीणता के साथ सुन्दर और उपयोगी वस्तुओ का निर्माण करने के फलस्वरूप उनम स्पष्ट चिन्तन की आदत पड़ेगी, सहयोग से कार्य करने का अवसर मिलेगा, व्यावहारिक दृष्टिकोण का विकास होगा। इस प्रकार उनके सपूर्ण व्यक्तित्व के विकास मे शिल्प की शिक्षा सहायक होगी।•

कर्माश्रयी गवेषणा

डा० उदय पारीक

शिक्षा के क्षेत्र मे हम सुधार की बात करते हैं। वस्तुतः हर एक क्षेत्र में ही सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया जा रहा है। यह है भी आवश्यक। किन्तु हम सुधार की प्रक्रिया पर कोई ध्यान नही देते। सुधार कई प्रकार से हो सकता है। यह हम मानकर चलते हैं कि सुधार लाने मे किसी प्रकार का दबाव अथवा बल का प्रयोग नही होना चाहिए। फिर भी हम उसमें कितना विश्वास रखते हैं, यह सशयात्मक है।

सुधार लाने की एक वैज्ञानिक पद्धति, जिसकी शिक्षा के क्षेत्र मे काफी चर्चा हुई है, 'कर्माश्रयी गवेषणा' की पद्धति कहलाती है। भारत मे इस पर पिछले दिनो काफी चर्चा हुई है। इसका श्रेय डा० स्टीफेन कोरी को है, जिन्होने इस क्षेत्र मे काफी काम किया है और उन्होने भारत के विभिन्न भागो में कर्माश्रयी गवेषणा पर सगोष्ठियाँ करने मे बड़ा योग दिया है।

कर्माश्रयी गवेषणा क्या है? इस विषय पर कई लेख और पुस्तकें उपलब्ध हैं। एक बात, जिस पर कम ध्यान दिया जाता है, किन्तु जो बहुत आवश्यक है, यह यह है कि कर्माश्रयी गवेषणा अध्ययन करने की एक पद्धति मात्र नही है, किन्तु सुधार करने अथवा परिवर्तन लाने का एक विशिष्ट दर्शन है, एक विशेष दृष्टिकोण है। जब तक कोई व्यक्ति इस दर्शन को स्वीकार नही करता, कर्माश्रयी गवेषणा करने मे उसे पूरी सफलता नही मिल सकती। इस दर्शन अथवा दृष्टिकोण की कुछ विशेषताएँ निम्नप्रकार हैं। ये कुछ आस्थाएँ हैं जो कर्माश्रयी

गवेषणा के आधार माने जा सकते है। इन मास्याओं के बिना कर्माश्रयी गवेषणा निरयक रहेगी।

(१) सुधार अधिक प्रभावशाली और अधिक स्थायी तभी हो सकता है जब काम करनेवाला स्वय सुधार के लिए प्रयत्नशील हो। दूसरे शब्दो म आत्म प्रेरित सुधार ही स्थायी सुधार हो सकता है।

(२) सुधार का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए। अत गवेषणा करनेवाला अधिक प्रभावशाली होगा। केवल प्रेरणा अथवा आदेशो के आधार पर होनेवाला सुधार अधिक प्रभावशाली नहीं होता।

(३) काम करनेवाला स्वय गवेषणा करे—ऐसी गवेषणा जो कम पर आश्रित हो—तब अधिक अच्छी प्रकार सुधार हो सकता है। दूसरो की गवेषणा पर आधारित सुधार इतने प्रभावशाली नहीं होते।

(४) किसी भी सुधार के लिए मूलभूत आवश्यकता है—व्यक्ति मे परिवतन अथवा सुधार। व्यक्ति के सुधार से ही अन्य प्रकार के सुधार सभव हैं।

उपर्युक्त आस्थाओं को आधार मानकर कर्माश्रयी गवेषणा की जा सकती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की गवेषणा के लिए सुनियोजित प्रयास की आवश्यकता है। गवेषणा को हम समस्याओ के समाधान की वैज्ञानिक और नियोजित पद्धति कह सकते हैं। समस्याओं के समाधान की वैज्ञानिक पद्धति मे जो सोपान आते हैं उनका कर्माश्रयी गवेषणा में ठीक प्रकार से पालन किया जाता है—यथा, समस्या का सर्वेक्षण, समस्या का अच्छी प्रकार विश्लेषण, कारणो का सभावित निदान, उपायो का विश्लेषण, कार्यान्वय तथा कार्य का मूल्याकन।

शिक्षा के क्षेत्र मे काय करनेवालों के लिए कर्माश्रयी गवेषणा पर सोचना आवश्यक है। इससे भी अधिक उस पर काम करके उसका अभ्यास करना आवश्यक है। राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय मे अध्यापको, प्रधानाध्यापको तथा प्राध्यापको के लिए इस विषय मे एक त्रिदिवसीय सगोष्ठी का आयोजन किया गया था। देश मे सभवत यह पहली सगोष्ठी थी, जिसम हिंदी मे भी काय हुआ। मुझे इस गोष्ठी मे काय करके बहुत प्रसन्नता हुई और बहुत लाभ हुआ। सगोष्ठी की सफलता तो इस बात से पता चल सकेगी कि उसम भाग लेनेवालो मे से कितने लोग आगे कर्माश्रयी गवेषणा के आधार पर अपनी समस्याओ का समाधान ढूंढते हैं।

कर्माश्रयी गवेषणा की योजना—एक उदाहरण

क—१—नाम	सीता शरण सिंह
२—संस्था	राजकीय जुबिली इण्टर कालेज, लखनऊ।
ख—समस्या	
३—समस्या का क्षेत्र	छात्रों में राष्ट्रीय भावना की कमी
४—विशिष्ट समस्या	राष्ट्र-गान तथा अन्य देश-भक्ति गान के समवेत गान का स्तर कक्षा ९ से १२ तक के छात्रों में किस प्रकार ऊँचा उठाया जाय ?

ग—निदान

सम्भावित कारण	क्या हम प्रमाण एकत्रित कर सकते हैं ?	क्या हम कुछ कर सकते हैं ?	प्राथमिकता
१—समय-सारिणी में समवेत गान के अभ्यास का कोई समय निर्धारित नहीं है।	हाँ	हाँ	(२)
२—छात्रों को समवेत गान के लाभ मालूम नहीं हैं।	हाँ	अवश्य	(१)

कार्य परिकल्पना :— (१) यदि नियमित रूप से अभ्यास तथा समय-समय पर सोदाहरण व्याख्यान का प्रयोजन किया जाय तो अच्छा परिणाम निकल सकता है।

कार्य :—प्रमाण संग्रह

प्रमाण	उपकरण	उपकरणों की उपलब्धता
१—राष्ट्र-गान और देशभक्ति के प्रति छात्रो की रुचि कितनी है ?	५ प्वाइण्ट स्केल	उपलब्ध है
२—समूहगान म योग देने म छात्र कितने समथ हैं ?	समूह गान गवाकर स्वय अनुभव	

काय नियोजन

काय सोपान	वांछित समय	विवरण
१—सौ-सौ छात्रो के ६ समूह बनाकर सबसे ५ प्वाइण्ट स्केल द्वारा मालूम कर लेंग कि छात्रो को समूह गान म कितनी रुचि है तथा वे इसे कितना लाभप्रद समझते है।	एक सप्ताह	
२—पूरे समूह से एक गान गवाकर उनकी क्षमता मालूम करेंग।	एक दिन लगभग एक घण्टा।	
३—६०० छात्रो को १०० के ६ समूह म बांटकर प्रत्येक को प्रति सप्ताह ४० मिनट का अभ्यास करायेंग।	१२ सप्ताह	
४—प्रति चार सप्ताह बाद एक सोदाहरण व्याख्यान का प्रबन्ध करेंग।	४० मिनट प्रति व्याख्यान।	

मूल्यांकन —५ प्वाइण्ट स्केल द्वारा छात्रो का मत फिर ज्ञात करेंग तथा प्रत्येक छात्र ३ मास के अभ्यास के बाद कितना समथ हो सकता है इसको भी परीक्षा करके पिछले रिकार्ड से तुलना करके मूल्यांकन कर लेंग।

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता : अनैतिकता के कारण और उपाय

[फरवरी १९७० के अक मे 'नैतिक शिक्षा की आवश्यकता और अनतिकता के कारण और उपाय पर प्रोफेसर सुखमगल शुक्ल और डा० रामलखन शर्मा द्वारा जो लेख दिया था, उसीका यह परिशिष्ट है। छात्रों को पढाये जाने और नित्य की प्रार्थना मे शामिल किये जाने योग्य कुछ उदाहरण यहाँ दिये गये है। —सम्पादक]

Sermon on the Mount

1 Blessed are the poor in spirit for their s is the kingdom of heaven
2 Blesssed are they that mourn for they shall be comforted
3 Blessed are the meek for they shall inherit the earth
4 Blessed are they which do hunger and thirst after righteous ness for they shall be filled
5 Blessed are the merciful for they shall obtain mercy
6 Blessed are the pure in heart for they shall see God
7 Blessed are the peace maker for they shall be called the children of God
8 Blessed are they which are persecuted for righteousness sake for their s is the kingdom of heaven
9 You have heard that it was said by them of old time Thou shalt not kill and who soever shall kill shall be in danger of the judgment
10 Leave there thy gift before the altar and go thy way first be reconciled to thy brother and then come and offer thy gift
11 Agree with thine adversary quickly whilst thou art in the way with him lest at any time the adversary deliver thee to the judge and the judge deliver thee to the officer and thou be cast into prison
12 Ye have heard that it hath been said An eye for an eye and a tooth for a tooth But I say unto you that ye resist

not evil : but whosoever shall smite thee on the right cheek, turn to him the other also

13 You have heard that it hath been said, Thou shalt love thy neighbour, and hate thine enemy. But I say unto you, Love your enemies, bless them that curse you, do good to them that hate you, and pray for them which despitefully use you, and persecute you

14 But when thou doest alms let not they left hand know what thy right hand doth : Take therefore no thought for the morrow, for the morrow shall take thought for the things of itself. Sufficient unto the day is the evil thereof

15 Give not that which is holy unto the dogs, neither cast ye your pearls befors swine, lest they trample them under their feet, and turn again and rend you

16 Therefore all things what soever ye would that men should do to you do ye even so to them for this is the law and the prophets

17 Beware of false prophets which come to you in sheep s clothing, but inwardly they are ravening wolves Ye shall know them by their fruits Do men gather grapes of thorns, or figs of thistles ?

18 Even so every good tree bringeth forth good fruit but a corrupt tree bringeth for thevil fruit

19 A good tree cannot bring forth evil fruit neither can a corrupt tree bring forth good fruit

"सरमन ऑन दी माउण्ट" का हिन्दी अनुवाद

१ धन्य हैं वे, जो मन के दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हींका है।

२ धन्य हैं वे, जो शोक करते हैं, क्योंकि वे शान्ति पायेंगे।

३ धन्य हैं वे, जो नम्र हैं, क्योंकि वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे।

४. धन्य हैं वे, जो धर्म के भूखे और पियासे हैं, क्योंकि वे तृप्त किये जायेंगे।

५ धन्य हैं वे, जो दयावन्त हैं, क्योंकि उन पर दया की जायेगी।

६. धन्य हैं वे, जिनके मन शुद्ध हैं क्योंकि वे परमेश्वर को देखेंगे।

७. धन्य हैं वे, जो मेल करनेवाले हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के पुत्र कहलायेंगे।

८ धन्य हैं वे, जो धर्म के कारण सताये जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीका है।

९ तुम सुन चुके हो, कि पूर्वकाल के लोगो से कहा गया था कि हत्या न करना, और जो कोई हत्या करेगा वह कचहरी में दण्ड के योग्य होगा।

१० अपनी भेंट वही वेदी के सामने छोड दे और जाकर पहिले अपने भाई से मेल मिलाप कर, तब आकर अपनी भेंट चढा।

११ जब तक तू अपने मुद्दई के साथ मार्ग ही मे है, उससे झटपट मेल-मिलाप कर ले, कही ऐसा न हो कि मुद्दई तुझे हाकिम को सौंपे, और हाकिम तुझे सिपाही को सौंप दे और तू बन्दीगृह म डाल दिया जाय।

१२ तुम सुन चुके हो, कि कहा गया था, कि आँख के बदले आंख, और दांत के बदले दांत। परन्तु मैं तुमसे यह कहता हूँ कि, बुरे काम का सामना करना, परन्तु जो कोई तेरे दाहिने गाल पर थप्पड मारे, उसकी ओर दूसरा भी फर दे।

१३. तुम सुन चुके हो, कि कहा गया था, कि अपने पडोसी से प्रेम रखना, और अपने वैरी से बैर। परन्तु मैं तुमसे यह कहता हूँ, कि अपने बैरियो से प्रेम रखो और अपने सतानेवालो के लिए प्रार्थना करो।

१४ परन्तु जब तू दान करे, तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायाँ हाथ न जानने पाये। सो कल के लिए चिन्ता न करो, क्योंकि कल का दिन अपनी चिन्ता आप कर लेगा, आज के लिए आज ही का दुःख बहुत है।

१५ पवित्र वस्तु कुत्तों को न दो, और अपने मोती सुअरों के आगे मत डालो, ऐसा न हो कि वे उन्हें पाँवो के तले रौंदें और पलटकर तुमको फाड डालें।

१६ इस कारण जो कुछ तुम चाहते हो, कि मनुष्य तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो, क्योंकि व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओ की शिक्षा यही है।

१७. झूठे भविष्यवक्ताओं से सावधान रहो, जो भेडों के भेष मे तुम्हारे पास आते हैं, परन्तु अन्तर मे फाड़नेवाले भेडिये हैं। उनके फलो से तुम उन्हें पहचान लोगे। क्या झाडियो से अंगूर, वा ऊँटकटारों स अंजीर तोड़ते हैं?

२८ इसी प्रकार हर एक अच्छा पेड अच्छा फल लाता है और निकम्मा पेड बुरा फल लाता है। अच्छा पेड बुरा फल नहीं ला सकता, और न निकम्मा पेड अच्छा फल ला सकता है।

१ ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

२ गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुर् गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

३ सगच्छध्वं सवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥

४ ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ (कठोपनिषद्)

५ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।
तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ॥
तेजो वारि मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

१—जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र का दुख रज मेरू समाना ॥
जिन के अस मति सहज न आई। ते सठ कत हठ करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपथ चलावा। गुन प्रगटे अवगुनन्हि दुरावा ॥

२—सन्त असन्तन के असि करनी। जस कुठार चन्दन आचरनी ॥
काटई परशु मलय सुनु भाई। निज गुण देय सुगन्ध बसाई ॥
सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहै न जाना ॥
निजपरिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं सुसन्त पुनीता ॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥

३—परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई ॥

४—नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥

५—मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुं एक।
पालय पोषय सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥

(ऐसे अन्य अनेक खण्ड रखे जा सकते हैं।)

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

स्थितप्रज्ञ का वर्णन

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधी किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
य सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
यदा सहरते चाय कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन. ॥
तानि सर्वाणि सयम्य युक्त आसीत मत्पर: ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
ध्यायतो विषयान्पुस सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सजायते काम कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति समोह समोहात्स्मृतिविभ्रम ।
स्मृतिभ्र शाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
प्रसादे सर्वदु खाना हानिरस्योपजायते,
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि- पर्यवतिष्ठते ॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयत· शान्तिरशान्तस्य कुत सुखम् ॥
इन्द्रियाणा हि चरता यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि ॥
तस्मादस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वश· ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥
विहाय कामान् यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति,
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

स्थितप्रज्ञ-लक्षण का अर्थ

१—हे केशव ! स्थितप्रज्ञ के या समाधि में स्थित पुरुष के क्या लक्षण हैं? स्थित प्रज्ञ किस प्रकार बात करता है, बैठता है और चलता है ?

२—हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में पैदा होनेवाली सभी कामनाओं को छोड़ देता है, और अपने आपमें ही सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

३—जो दुःख से दुःखी नहीं होता, सुख की चाह नहीं करता, और जो राग, भय और क्रोध से रहित होता है वह स्थिर बुद्धि कहलाता है।

४—जो शुभ या अशुभ को पाकर सर्वत्र अनासक्त रहता है, और जो न प्रसन्न होता है, न दुःखी, उसकी बुद्धि स्थिर है।

५—जिस प्रकार कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है उसी तरह जब पुरुष अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग कर लेता है तो वह स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

६—जब कोई मनुष्य भोजन नहीं करता, तो उसके विषय शिथिल पड़ जाते हैं, पर उसका विषयों से मानसिक लगाव नहीं छूटता। यह लगाव परमात्मा के साक्षात्कार से ही दूर होता है।

७—हे कुन्तीपुत्र ! ज्ञानी पुरुष के यत्नशील रहने पर भी इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि उसके मन को जबरदस्ती हर लेती हैं।

८—इन सब इन्द्रियों को वशीभूत करके योगी को चाहिए कि मुझमें तन्मय होकर रहे, क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं उसीकी बुद्धि स्थिर रहती है।

९—विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष को उन विषयों में आसक्ति पैदा होती है, आसक्ति से कामना पैदा होती है, कामना से क्रोध पैदा होता है।

१०—क्रोध से सम्मोह उत्पन्न होता है सम्मोह से स्मृति का विनाश होता है और जिसकी स्मृति का विनाश होता है, वह मरे के समान है।

११—जिस मनुष्य का मन उसके वश मे होता है और जिसकी इन्द्रियाँ रागद्वेषरहित होकर उसके अधीन रहती हैं वह मनुष्य इन्द्रियो से काम लेता हुआ भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है।

१२—चित्त की प्रसन्नता से मनुष्य के सब दुःख मिट जाते हैं, प्रसन्नचित्त मनुष्य की बुद्धि तुरन्त स्थिर हो जाती है।

१३—जिस मनुष्य मे समत्व नहीं उसम विवेक नही, भक्ति नही, और जिनमे भक्ति नही उसे शान्ति नहीं, और जिसे शान्ति नही उसे सुख नही।

१४—जिसका मन विषयो मे भटकती हुई इन्द्रियो के पीछे दौडता है, उसका मन उसकी बुद्धि को उसी तरह चाहे जहाँ खीच ले जाता है जिस तरह वायु पानी मे नाव को खीच ले जाती है।

१५—इसलिए हे महाबाहु जिसकी इन्द्रियाँ सब तरफ से विषयो से हटकर उसके वश मे आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

१६—जब सब प्राणी सोये होते है, तब सयमी पुरुष जागता है, जब लोग जागते होते हैं तब ज्ञानवान मुनि सोता है।

१७—नदियो से लगातार भरा जाते हुए भी समुद्र जिस तरह अचल रहता है, उसी तरह जिस मनुष्य के सारे भोग उसम समा जाते हैं वही शान्ति पाता है, कामना करनेवाला मनुष्य नही।

१८—सभी कामनाएँ छोडकर जो मनुष्य इच्छा, ममता और अहकार-रहित होकर विचरता है वही शान्ति पाता है।

१९—हे पार्थ ! इन्द्रिय जय करनेवाले की यही ब्राह्मी स्थिति है, उसे पाने पर मनुष्य मोह के वश म नहीं होता और यदि मरते समय भी ऐसी ही स्थिति बनी रहे तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इस्लाम धर्म के कुछ वचन

१—वल् काज़िमीनल गैज़ वल् आफीन अनिन्नासि वल्लाहु युहिब्बुल मुहसिनीन। (कुरान शरीफ)

अर्थात्—जो लोग अपने क्रोध को पी जाते हैं और दूसरे लोगों की त्रुटियो को क्षमा कर देते हैं, ऐसे भले काम करनेवालो को ईश्वर प्यार करता है।

२—इन्ना खलक़्नाकुम मिन् ज़करिव्व उनसा व जाअल्नाकुम शुऊबं व कबाइल लि तआरफू।

इन्न अक्रमकुम इन्दल्लाहि अत्काकुम। (कुरान शरीफ)

अर्थात्—मैंने तुम्हें पैदा किया पुरुष और स्त्री, और बनाये तुम्हारे कुटुम्ब और कबीले, जिससे कि तुम एक-दूसरे को पहचान सको।

निस्सन्देह परमात्मा के पास तुममें सबसे अधिक प्रतिष्ठित वह है, जो तुममें सबसे अधिक विनम्र है।

३— व तआवनू अलल् बिर्रि वत्तक़्वा व ला तआवनू अलल् इस्मि वल् उद्वानि। (कुरान शरीफ)

अर्थात्—सत्कृति एवं संयम में एक-दूसरे की सहायता करो। पाप एवं अत्याचार में एक-दूसरे की सहायता न करो।

४—अल् ख़ल्क़ु अयालुल्लाहि फ अहब्बु हुम् इलल्लाहि अनफअ़ु हुव लि अयालिहि। (हदीस)

अर्थात्—सारी जनता ईश्वर का कुटुम्ब है ईश्वर को सबसे प्रिय वही मनुष्य है जो उसके कुटुम्ब को ज्यादा लाभ पहुँचा सके।

५—ख़ैरुन्नासि मैंय्यनफअ़ुन्नास। (हदीस)

अर्थात् सबसे अच्छा वह मनुष्य है जो दूसरों को सबसे अधिक लाभ पहुँचा सके।

६—...इस्तइनू बिस्सब्रि वस्सलाति इन्नल्लाह मअस्साबिरीन्।

(क़ुरान शरीफ)

अर्थात्—धीरज तथा प्रार्थना के साथ ईश्वर से सहायता माँगो। चूंकि ईश्वर नि सन्देह धीरज रखनेवाले के साथ रहता है।

७ – क़ुल हुवल्लाहु अहद्। अल्लाहुस्समद्। लम् यलिद् वलम् युलद्। वलम् यकुल्लहू कुफ़ुवन् अहद्।

अर्थात्–कह ईश्वर एक है। ईश्वर निरपेक्ष है। वह न जनिता है, न जन्य। और न कोई उसके समान है।

८—वअ़बुदुल्लाह व ला तुश्रिकू बिही शैअंव्व बिल् वालिदैनि इह्सानंव्व बि जिल् कुर्बा वल् यतामा वल् मसाकीनि वल् जारि ज़िल कुरबा, वल जारिल् जुनुबि वस्साहिबि बिल् जम्बि वब्निस्सबीलि वमा मलकत ऐमानुकुम् इन्नल्लाह ला युहिब्बु मन् कान मुख़्तालन फ़ख़ूरा। (कुरान शरीफ)

अर्थात्–ईश्वर की भक्ति करो और उसके साथ उसकी भक्ति में किसीको साथी न बनाओ। अपने माता पिता, सम्बन्धी, अनाथों, निर्धनों परिचित पड़ोसियों, अपरिचित पड़ोसियों, सह प्रवासियों, यात्रियों तथा अपने सेवकों के

साथ अच्छा व्यवहार करो। वास्तव में ईश्वर उन लोगों को पसन्द नहीं करता जो अभिमानी होते हैं या आत्मश्लाघ करते हैं।

९—या अय्यूहल्लजीन आमनुत्तकुल्लाह व कूलू कौलन सदीदा।
(कुरान शरीफ)

अर्थात्—हे श्रद्धावानो! ईश्वर से डरो और सीधी बात कहो।

१०— वलयकूलू कौलन सदीदा (कुरान शरीफ)

अर्थात् —तुम लोगों को सदा सच बोलना चाहिए।

११—वना तकूलू लिमा तसिफु अलसिनतुकुमुल कज़िब। (कुरान शरीफ)

अर्थात—और तुम ऐसा बात कभी मत बोलो जिससे तुम्हारी जबान झूठ बने।●

पुस्तक-परिचय

'बापू की गोद में'

लेखक नारायण देसाई, सचित्र, पृष्ठ सं० १७२, मूल्य रु० २-५०
प्रकाशक - मंत्री, सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी—१

'साबरमती नदी, वर्धा की हनुमान टेकडी को' समर्पित इस कृति मे लेखक की वे मधुर स्मृतियाँ सकलित हैं, जब वे महामानव बापू की गोद मे खेले, पले और पनपे। गाधी जन्म शती पर, गाधीजी के ढाई दशक तक निजी सचिव के सुपुत्र की सहज लेखनी से नि:सृत २२ लेखो का यह पुस्तकाकार हिन्दी-प्रकाशन सचमुच अभिनन्दनीय है।

यह अनूठी कलाकृति यद्यपि गुजराती से अनूदित है, किन्तु इसमे वर्णित घटनाओ और परिस्थितियो के साथ लेखक का घनिष्ठ एव प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण पुस्तक मे आत्मकथा की सजीवता और प्रतीति है। महादेव देसाई को 'गाधीजी का वास्वेल' कहा जाता है और चूँकि महादेव भाई के पुत्र नारायण देसाई को तो जन्म से ही गाधीजी की गोद मे खेलने का मौका मिला है, गाधीजी के अनेक अनजाने अलौकिक गुणो को प्रकाश मे लाने, तथा "मोहन और महादेव" की विभूतिमय झाँकियाँ प्रस्तुत करने का उन्हे श्रेय है।

महादेव ने मोहन के पास आने के बाद इक्कीस वर्षों मे केवल दो बार छुट्टी ली—एक बार टाइफाइड हो जाने पर और दूसरी बार (१९३८ मे) रक्तचाप बढ जाने पर। बापू की गोद मे ही, १५ अगस्त १९४२ को, आगाखा महल की जेल मे उन्होने आँखें मूँदी। वे पहले-पहल बापू से सन् १९१५ मे मिले थे। नारायण भाई ने बापू का १९२७ ३० का स्मरण करते हुए लिखा है - 'बापू सारे आश्रम के बापू (पिताजी) थे। देश के वे नेता थे, जनता के 'महात्मा' थे। लेकिन इससे बढकर हमारे तो वे 'दोस्त' ही थे। हमे कभी भी दोस्त के अतिरिक्त और कुछ वे लगे ही नही।'

नारायण भाई ने केवल एक तटस्थ प्रेक्षक की भाति नही, अपितु "साबरमती" और "सेवाग्राम" के आन्तरिक जीवन मे घुले मिले साधक की तरह गाधीजी की विभिन्न प्रवृत्तियो एव विचारधारा का परिचय देते हुए उन तीर्थों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है जहाँ भणसाली काका ने आप्टी चिमूर काण्ड पर

उपवास करके ब्रिटिश सरकार को हिलाया था, जहाँ श्रद्धामयी कस्तूरबा ने लेखक से रामायण पढने का प्रस्ताव रखा था, जहाँ सर्वप्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रयोग हुआ था, नयी तालीम का सूत्रपात हुआ था।

लेखक ने रुचि शैली मे स्थान-स्थान पर अपनी सहृदयता का भी परिचय दिया है, जैसे--"किसी कुशल गायक के कण्ठ से निकलें स्वरो के साथ पास मे पडे हुए ततुम्रो के तार झनझनाते हैं, वैसे बापू की हृदय वीणा के तार देश के दरिद्र-नारायण की वेदना के स्वर से झनझनाते थे।" (पृष्ठ ६२) बापू के प्रति जनता की भक्ति भी उस समय उतनी ही उत्कट थी। लेखक ने बापू की चपारन-यात्रा का जिक्र करते हुए लिखा है कि मुजफ्फरपुर के पास बापू के दर्शनो को आये एक युवक के पैर रेल से कट गये। महादेव भाई उससे मिलकर आये और बोले—दोनो पाँवो पर से गाडी का पहिया जाने के कारण घुटने तक के पाँव करीब करीब कट गये है। उसके बचने की उम्मीद नही है। खून बहुत गया है। फिर भी लडका होश मे था। मैंने उसके सामने दुर्घटना के लिए अफसोस प्रकट किया तो लडका कहने लगा, 'इसम अफसोस करने की क्या बात है? गाधीजी की गाडी के नीचे मैं कुचला गया, यह तो मेरा अहोभाग्य ही कहना चाहिए।' आज हम आत्म निरीक्षण करें कि हममे उतनी भक्ति है?

पुस्तक के प्रकाशन मे दादा धर्माधिकारी ने ठीक ही लिखा है—"पुस्तक मे करुण, उदात्त आदि रसो के साथ-साथ ऋजु और सौजन्ययुक्त विनोद की छटाएँ भी हैं, जो उसे अधिक चित्ताकर्षक बनाती है।" विनोबाजी के दीर्घ सहवासी श्री दत्तोबा दास्ताने ने पुस्तक का हिन्दी मे अनुवाद किया है। भाषान्तरकार के समानशील होने से पुस्तक की उपादेयता बढ गयी है और सुन्दर चित्रो के दे देने से सग्रहणीय है।

—अखिल विनय

"नयी तालीम" मासिक का प्रकाशन वक्तव्य

(न्यूजपेपर रजिस्ट्रशन ऐक्ट (फार्म न० ४ नियम ८) के अनुसार हर अखबार के प्रकाशक को निम्न जानकारी प्रस्तुत करने के साथ-साथ अखबार मे भी वह प्रकाशित करनी होती है। तदनुसार यह प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है।—स०)

(१) प्रकाशन का स्थान	वाराणसी
(२) प्रकाशन का समय	माह मे एक बार
(३) मुद्रक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	'नयी तालीम मासिक राजघाट वाराणसी–१
(४) प्रकाशक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	*नयी तालीम मासिक, राजघाट* वाराणसी–१
(५) सम्पादक का नाम	धीरेन्द्र मजूमदार
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	नयी तालीम मासिक राजघाट वाराणसी–१
(६) समाचार-पत्र के सचालकों का नाम-पता	सर्व सेवा सघ गोपुरी, वर्धा (सन १८६० के सोसायटी रजिस्ट्रशन ऐक्ट २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक सस्था) रजिस्टर्ड न० ५२

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

वाराणसी २८ २ '७० — श्रीकृष्णदत्त भट्ट, प्रकाशक

वर्ष : १८
अंक : ८
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

मार्च, '७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ग्रोर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ मे मुद्रित।

गाँव की आवाज

ग्रामस्वराज्य का सन्देशवाहक पाक्षिक

- आज देश के पांच लाख गांव अपनी कलह के कारण टूट रहे हैं
- बाहरी शोषण और दमन के कारण उजड़ रहे हैं
- मौजूदा अर्थनीति और राजनीति में गांव की रक्षा का कोई उपाय नहीं दिखाई देता,
- इसलिए गांव में बसनेवाले ग्रामवासियों को एक होकर नया गांव बनाना होगा, अपनी समस्याएं गांव की मिली जुली ताकत से हल करनी होगी आज की समाज-व्यवस्था को बदलना होगा।

इसीलिए तो ग्रामदान किया है !

लेकिन ग्रामदान के बाद क्या ???

- 'गांव की आवाज' इस सवाल को हल करने में मदद देगी।
- व्यंग्य चित्रों रेखा चित्रों, छाया चित्रों में
- ग्रामीणों की बातचीत कथा-कहानी लोक-गाथों में।
- सरल, सुबोध भाषा-शैली में,

'गाँव की आवाज'

१५ दिन में एक बार प्रकाशित होती है।

वार्षिक चन्दा चार रुपये] [एक प्रति २० पैसे

पत्रिका विभाग, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी १ (उ० प्र०)

नयी तालीम : मार्च '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य

गाधी जन्म-शताब्दी के सुअवसर पर २ अक्तूबर से गाधीजी की वाणी घर-घर पहुंचे, इस दृष्टि से गाधीजी की अमर जीवनी, कार्य तथा विचारो से सम्बन्धित लगभग १५०० पृष्ठों का अत्यन्त उपयोगी और चुना हुआ साहित्य-सेट केवल रु० ७ ०० मे दिया जा रहा है और लगभग १००० पृष्ठों का साहित्य रु० ५ ०० मे।

प्रत्येक संस्था तथा व्यक्ति को इस अल्पमोली और बहुगुणी साहित्य-सेट के प्रचार-प्रसार में सहायक होना चाहिए, ऐसी आशा और अपेक्षा है।

पृष्ठ १५००, रु० ७-००

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१—आत्मकथा १८६९–१९१९	गांधीजी	१ ००
२—बापू कथा : १९२०–१९४८ :	हरिभाऊ उपाध्याय	२.५०
३—तीसरी शक्ति · १९४८–१९६९	विनोबा	२.५०
४—गीता-बोध व मंगल-प्रभात	गांधीजी	१.००
५—मेरे सपनों का भारत : सक्षिप्त :	गांधीजी	१.५०
६—गीता प्रवचन	विनोबा	२.००
७—संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		१.००
		११.५०

यह पूरा साहित्य-सेट केवल रु० ७ ०० मे प्राप्त होगा। २८ सेट का एक बण्डल एक साथ लेने पर फ्री डिलीवरी मिलेगा। अन्य कोई कमीशन नही दिया जा सकेगा।

ऊपर की प्रथम पाँच किताबो का पृष्ठ १००० का साहित्य-सेट केवल रु० ५.०० मे प्राप्त होगा। ४० सेट का एक बण्डल लेने पर फ्री डिलीवरी दिया जायगा। अन्य कोई कमीशन नही दिया जा सकेगा।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट. वाराणसी-१

भार्गव भूषण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी

वर्ष : १८
अंक : ९

- भारतीय शिक्षा में गांधीवादी मूल्य
- हमारी शिक्षा-नीति : एक पुनर्निरीक्षण
- नीति और धर्म की शिक्षा का स्वरूप
- सामान्य विज्ञान-शिक्षण की कुछ मूल बातें
- जीवन और शिक्षा

अप्रैल, १९७०

शिक्षकों प्रशिक्षकों एव समाज शिक्षकों के लिए

वर्धा का राष्ट्रीय सेमिनार

एक अजीब हालत हो गयी है इस देश की। न तो वह गाधी को छोड ही पा रहा है, न अपना ही पा रहा है। वह देख रहा है कि गाधी को छोडकर इस देश की समस्या सुलझ नही पा रही है। 'सर्वोदय' का सपना साकार नही हो रहा है। शोषणविहीन अहिंसक समाज तो बिलकुल ही नही बन पा रहा है। कभी औद्योगीकरण की छलना मे पडकर और कभी उधार मॉगे हुए 'विकास' के रास्ते पर भटककर वह वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ पहुंचना वह नही चाहता और जहाँ घोर अन्धकार है। तब अन्धेरे मे भटके हुए भयभीत मनुष्य की तरह वह गाधी का नाम-स्मरण करने लगता है। ९-१०-११ फरवरी, १९७० को वर्धा मे 'भारतीय शिक्षा मे गाधीवादी मूल्य' पर जो राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित हुआ था (जिसका उदघाटन-भाषण और सस्तुतियाँ इसी अक मे दी गयी हैं) वह कुछ इसी प्रकार का नाम-स्मरण-सा लगता है। (वैसे हमारी कामना तो यही है कि वह नाम-स्मरण-मात्र न रह जाय।)

वर्ष : १८
अंक : ६

सेमिनार के अपने उदघाटन-भाषण मे केन्द्रीय शिक्षा मत्री श्री वी० के० आर० वी० राव ने स्वीकार किया है कि "आज देश की शैक्षिक परिस्थिति कम-बेश वैसी ही है जैसी सन् १९३७ मे उस समय थी, जब गाधीजी ने देश की शिक्षा के पुनर्गठन के लिए एक ठोस योजना (बुनियादी शिक्षा) हमारे सामने रखी थी। इन ३३ वर्षों मे, २३ वर्षों की स्वतत्रता और १९ वर्षों

के सगठित नियोजन के बावजूद, शिक्षा की गुणात्मकता मे किसी प्रकार का तात्विक अन्तर नही पडा है। आज भी शिक्षा का अर्थ सीखना और साक्षरता ही है। उत्पादक और प्रायोगिक कार्य के लिए शिक्षा मे शायद ही कोई स्थान हो। समुदाय और विद्यालय मे अथवा शिक्षा सस्थाओ के पाठ्यक्रमो और बाह्य जगत् के समाज के जीवन को धारण करनेवाली प्रवृत्तियो मे जीवन्त सम्पर्क का सर्वथा अभाव है। एक से अधिक अर्थ मे शिक्षा के क्षेत्र मे हम आज भी वही हैं, जहाँ १९३७ मे थे। मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि हमारी शिक्षा-पद्धति का गाधीजी के शैक्षिक विचारो से साम्य नही है। शारीरिक श्रम की महत्ता स्वीकार करने मे वह सफल नही हुई है। बल्कि 'काम' (वर्क) और 'अध्ययन' (स्टडी) मे वह स्पष्ट अन्तर करती है।" अन्त मे शिक्षा मत्री यह आशा करते है कि इस अन्तर-राष्ट्रीय शिक्षा-वर्ष मे, जो अभी शुरू ही हुआ है, हम अपनी शिक्षा मे गाधीवादी मूल्यो को दाखिल कर ससार को बता सकेंगे कि हम गाधीजी को भूले नही हैं।

कैसे दाखिल होगे ये मूल्य—यही मूल प्रश्न है। परिगोष्ठी इस नतीजे पर पहुँची है कि कम-से-कम, (१) हाथ के उत्पादक काम को और शारीरिक श्रम को शैक्षिक कार्यक्रम का अभिन्न अग बनाया जाय, (२) सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमो द्वारा छात्रो मे सामाजिक चेतना और उत्तरदायित्व की भावना जगायी जाय और (३) सब धर्मों की आधारभूत एकता के बोध द्वारा 'सर्व धर्म-समभाव' की निष्ठा विकसित की जाय। सेमिनार मे इन कार्यक्रमो के अनुरूप शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए एक लचीला और गतिशील (डाइ-नेमिक) पाठ्यक्रम बनाने की सस्तुति की गयी है। इस पाठ्यक्रम मे स्कूल की इमारत और अहाते की सफाई और देखभाल, शिल्प और हॉबीज का शिक्षण और सामुदायिक कार्य आदि इन मुद्दो को शामिल करने का सुझाव भी दिया गया है।

इसका यह अर्थ हुआ कि एक बार फिर शुरू से आरम्भ किया जाय। इस प्रकार का पाठ्यक्रम प्रारम्भिक और उत्तरबुनियादी स्तर के लिए, कई बार बनाया जा चुका है। बुनियादी शिक्षा का काम करने-वाली रचनात्मक सस्थाओ ने जाकिर हुसैन कमेटी के पाठ्यक्रम को

आधार मानकर आठ वर्ष का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम और उत्तरबुनियादी का पाठ्यक्रम बनाया था। भारत सरकार के विशेषज्ञो (एक्सपर्ट्स) द्वारा बुनियादी शालाओं के लिए पाठ्यक्रम ही नहीं तैयार किया गया था, शिक्षकों के लिए एक 'सदर्शिका' भी तैयार की गयी थी। इन पाठ्यक्रमों को बनाने मे देश के अच्छे-से-अच्छे शिक्षा-शास्त्रियों के दिमाग लगे थे, ऐसे लोगो के दिमाग, जिन्हें बुनियादी शिक्षा का व्यावहारिक अनुभव भी था। कोठारी-कमीशन ने जिस 'कार्यानुभव' की बात कही है और उत्तरबुनियादी (माध्यमिक) और विश्व-विद्यालय-स्तर पर वर्कशाप और फार्म आदि सलग्न करने और छात्रों से यथार्थ परिस्थितियों मे काम करने के सुझाव दिये हैं, इस 'कार्यानुभव' का पाठ्यक्रम भी भारत-सरकार ने तैयार किया है। अत· फिर से पाठ्यक्रम बनाना समय, शक्ति का अपव्यय होगा।

आवश्यकता कार्यान्वयन की है। कोठारी-कमीशन की सस्तुतियाँ ही कार्यान्वित की गयी होतीं तो लगभग वे सभी मूल्य हमारी शिक्षाक्रम मे दाखिल हुए होते जिनकी चर्चा इस सेमिनार में हुई है। 'श्रम-प्रतिष्ठा' की बात तो आज ही पूरी हो जाय, यदि यह निश्चय कर लिया जाय शिक्षा-सस्थाओं से (रात के चौकीदार और दिन मे बैक आदि का काम करनेवाले चपरासी को छोडकर) सभी नौकर निकाल दिये जायें और घटा बजाने से स्कूल की सफाई तक का सारा काम छात्र और अध्यापक मिलकर करें। समाज-सेवा और सामुदायिक कार्य का पाठयक्रम भी बना-बनाया है। आवश्यकता निष्ठा-पूर्वक नियम से काम करने की है। शिल्प शिक्षण का कौनसा नया पाठ्यक्रम बनाया जायगा? बुनियादी शिक्षा के तत्त्वों को सामान्य भारतीय शिक्षाक्रम मे दाखिल करने के लिए क्या अब भी अग्रगामी योजना (पाइलॉट प्रोजेक्ट) बनाने की आवश्यकता है? इसीलिए हम कह रहे हैं कि अच्छा होता यदि गाधी की कर्मभूमि मे बैठकर सेमिनार तत्काल कुछ करने की योजना बनाता। परन्तु वैसा किया नहीं गया है और लगता है कि बात एक बार फिर टल जायगी।

—वंशीधर श्रीवास्तव

भारतीय शिक्षा में गांधीवादी मूल्य

वी० के० आर० वी० राव

आज देश की शैक्षिक परिस्थिति कम-बेश वैसी है, जैसी सन् १९३७ में उस समय थी, जब गांधीजी ने शिक्षा के पुनर्गठन के लिए ठोस योजना देश के सामने रखी थी। इन ३३ वर्षों में २३ वर्षों की स्वतन्त्रता और २० वर्षों के सगठित नियोजन के बावजूद आत्मनिर्भरता, सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय एकता के रूप में शिक्षा की गुणात्मकता में किसी प्रकार का तात्त्विक परिवर्तन नहीं हुआ है, यद्यपि मात्रात्मक परिवर्तन बहुत हुआ है, और छात्रों की और विभिन्न प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं की संख्या काफी बढ़ी है। अगर इस विषय में किसी प्रकार के सबूत की जरूरत है तो हमें कोठारी-कमीशन की रिपोर्ट देखनी चाहिए, जिसे प्रकाशित हुए तीन वर्ष हो चुके हैं।

आज भी शिक्षा का अर्थ साक्षरता और सीखना ही है। प्रायोगिक और उत्पादक कार्य के लिए शिक्षा में शायद ही कोई स्थान हो। समुदाय और विद्यालय में अथवा पाठ्यक्रम और शिक्षा-संस्थाओं के बाहर की जीवन को धारण करनेवाली क्रियाओं में आज भी किसी भी प्रकार के जीवन्त सम्पर्क का अभाव है। साक्षरता की औसत बढ़ी है। परन्तु निरक्षरों की संख्या भी बढ़ी है। देश की चौदह वर्ष तक की आयु तक के सभी बच्चों को शिक्षा देने का सवैधानिक संकल्प आज भी दूरगामी लक्ष्य प्रतीत होता है। अतः एक से अधिक अर्थ में शिक्षा के क्षेत्र में हम आज भी वहीं हैं, जहाँ १९३१ में थे। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत-सी इमारतें बन गयी हैं, विज्ञान और तकनीकी में बहुत लोगों को प्रशिक्षण दिया गया है और विद्यालयों में पढ़नेवालों की संख्या भी बढ़ी है, लेकिन शिक्षा की मूल स्थिति आज भी वैसी ही है जैसी उस समय थी, जिस समय गांधीजी ने देश के सामने एक नयी शिक्षा-योजना रखी थी—बुनियादी शिक्षा-योजना।

गांधीजी सर्वतोमुखी, किन्तु समन्वित व्यक्तित्व के मनुष्य थे। वह 'मानव' को उसके उचित स्थान पर पुनर्स्थापित करना चाहते थे। इस पुनर्स्थापना के लिए सत्य का अनुसरण आवश्यक था और सत्य का अनुसरण अहिंसा के बिना सम्भव नहीं है। अतः गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध की सकल्पना की। उनके लिए सत्य और अहिंसा का अर्थ था—मानव की मुक्ति, उसके अन्तर्मन का पुनर्जागरण और सामूहिक समृद्धि के लक्ष्य की उनकी सकल्पना का स्पष्टीकरण।

मानव जीवन का राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय अथवा अन्तरराष्ट्रीय, शायद ही कोई ऐसा पहलू बचा है जिसको गांधीजी ने स्पर्श न किया हो और जिसे उन्होंने अपने जीवन, कर्म, वाणी और लेखनी से उद्भासित न किया हो। उनकी सूची नहीं बनायी जा सकती। वह शान्ति के पुजारी थे और उनके हृदय में सारे जगत् के लिए अपार करुणा भरी थी।

सत्य अहिंसा और करुणा के इन बुनियादी मूल्यों के अतिरिक्त उनके जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू और दूसरे मूल्य भी हैं, जिनकी आज हमारे देश के लिए और भी अधिक प्रासंगिकता है। ये हैं—संघर्ष निराकरण का उनका ढंग, सामूहिक सम्पत्ति को व्यक्तिगत सम्पत्ति से अधिक महत्त्व देना, ट्रस्टीशीप का उनका सिद्धान्त, दरिद्रनारायण के उत्कर्ष के लिए उनकी एकनिष्ठ लालसा, भारत के गाँवों के लिए उनकी चिन्ता, भारतीय अर्थ के पूर्ण विकेन्द्रीकरण की उनकी संकल्पना, गाँवों का स्वावलम्बन, व्यक्तिगत सम्पत्ति की सीमा, अपरिग्रह पर उनका बल और उनका यह विचार कि प्रत्येक मनुष्य को शारीरिक श्रम करना चाहिए और उसके हृदय में श्रम के प्रति प्रतिष्ठा की भावना होनी चाहिए। जीवन के इन गांधीवादी मूल्यों को हम अपने व्यावहारिक जीवन का अंग कैसे बनायें? *यही मुख्य प्रश्न है।* मेरा विश्वास है कि यह तभी सम्भव होगा जब हम अपनी शिक्षा-प्रणाली में वांछित परिवर्तन करें और वह भी प्रारम्भिक स्तर से ही।

शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में गांधीजी के अपने विचार थे। उनका विश्वास था कि शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही दी जानी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो, ज्ञान का माध्यम क्रिया हो, केवल पुस्तकें और भाषण नहीं। उनका यह भी विश्वास था कि शिक्षा का लक्ष्य समग्र छात्र होना चाहिए और शिक्षा से उसके नैतिक और सामाजिक व्यक्ति का विकास होना चाहिए केवल कुछ कौशलों का नहीं। शिक्षा में स्वावलम्बन के पहलू को छोड़ दिया जाय तो शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा है, आज के अधिकांश शिक्षा-शास्त्री उन्हें शिक्षा के आधारभूत और व्यावहारिक सिद्धान्त मानते हैं।

अतः भारतीय शिक्षा पद्धति उनकी कसौटियों पर कहाँ तक खरी उतरती है, और हम उसको गांधीजी की संकल्पनाओं के निकट लाने के लिए क्या कर सकते हैं—यही मुख्य प्रश्न है। मैं गलत नहीं कह रहा हूँ, अगर मैं यह स्पष्ट कहूँ कि हमारी शिक्षा-पद्धति का गांधीजी के शैक्षणिक विचारों से साम्य नहीं है—उस सशोधित रूप में भी नहीं, जिसे मैंने यहाँ रखा है। शारीरिक श्रम की महत्ता स्वीकार करने में वह असफल रही है। इसके खिलाफ वह तो काम और अध्ययन में स्पष्ट अन्तर करती है। काम नौकरों के लिए है और अध्ययन विद्यार्थियों के

लिए ऐसा वह कहती है। अत स्वभावत जब विद्यार्थी स्कूल या कालेज से निकलता है तो अपने सस्कार और यथार्थ ससार को उससे अपेक्षा म विरोध पाता है।

और फिर इस विभिन्न भाषाओ और विभिन्न मजहबोवाले देश क शान्तिपूर्ण विकास के लिए जिस पारस्परिक सहिष्णुता और एक-दूसरे के प्रति आदर भाव रखने के गुणो की आवश्यकता है हमारी शिक्षा सस्थाएँ छात्रो म इन गुणो के विकास के लिए कुछ भी नहीं करतीं और उन्हें इस देश की विभिन्नताओ मे जो एकता अन्तर्निहित है उसे पहचानने की शक्ति नही देती। हमारी धर्म-निरपेक्ष शिक्षा प्रणाली म छात्रो के नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा की पूर्ण अवहेलना हो रही है। इसके अतिरिक्त छुआछूत और जाति प्रथा तो है ही। अपनी शिक्षा प्रणाली के द्वारा एक सेक्यूलर राज्य बनाने का तरीका हम अभी ढूँढ़ नही सके हैं। कहाँ तक यह किताबो और भाषाओ से हो सकेगा और कहाँ तक एक-दूसरे के त्योहारो और सामाजिक पर्वों मे भाग लेने से हो सकेगा यह सब प्रयोग करके देखना है। अगर हमारी शिक्षा प्रणाली को ऐसे भावी नागरिक तयार करना है, जिनसे भारतीय समाज को विधायक सहयोग प्राप्त हो तो उस इस प्रकार का प्रयोग करना होगा।

फिर हमारे शैक्षिक टेकनालोजी का प्रश्न रह जाता है। हमारे शिक्षण की तकनीक अधिकाश तथा सैद्धान्तिक है। हमारी अधिकाश शिक्षा सस्थाओ में शिक्षा का अर्थ सुनने पढने और लिखने तक ही सीमित है। क्रिया तो नाममात्र के लिए है, और जिसे छात्रो द्वारा सामूहिक क्रियाओं म भाग लेना कहते हैं, वह तो है ही नही। जो स्कूल मे पढाया जाता है उसका कोई सम्बन्ध वातावरण से अथवा स्कूल के बाहर के जीवन से नहीं है। नृत्य सगीत, नाटक यहाँ तक कि खेल भी कुछ ही अच्छी सस्थाओ मे सम्भव है। अधिकाश शिक्षा सस्थाएँ तो मनहूसियत के केन्द्र हैं। हम अपनी शिक्षा को बहुद्देशीय कैसे बनायें, जिससे वह मानवीय व्यक्तित्व के बहुमुखी पक्षो का पोषण और उसका सर्वांगीण विकास कर सके ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हम अभी नही ढूढ सके हैं।

दो और ऐसे मूल्य हैं जिनका हमे अपनी शिक्षा प्रणाली मे प्रवेश कराना है। वे हैं अहिंसा और गरीब के साथ अपने को एक करना। ये मूल्य किसी भी सभ्य मानव के निर्माण के लिए आवश्यक हैं बल्कि हमारे देश मे तो उनकी और भी आवश्यकता है क्योकि हमारे देश मे गरीबी और विपन्नता बहुत है। दरिद्रनारायण के साथ अपने को एक करने की भावना का समर्थन भारतवर्ष मे शान्तिपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए भी आवश्यक है। इन मूल्यो को देश की शिक्षा प्रणाली मे

कैसे प्रविष्ट किया जाय, यह एक ऐसा काम है जिसे हमारे शिक्षण-शास्त्रियों को करना है।

गांधीवादी मूल्यों को स्वीकारने का तकाजा है कि हम मानव-व्यक्तित्व के महत्त्व को स्वीकार करें और मानव-जाति की एकता में जो भावनात्मक बाधाएँ हैं, उन्हें दूर करें। विश्व की दूसरी जातियों और उनकी संस्कृति के लिए श्रद्धा भाव को अपनी शिक्षा प्रणाली में बुनना होगा, जिससे भारतीय छात्रों में विश्व मानव के लिए श्रद्धा का भाव उत्पन्न किया जा सके।

मैं आशा करता हूँ कि इस अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-वर्ष में, जो अभी शुरू ही हुआ है हम संसार को बता सकेंगे कि भारत गांधीजी को भूला नहीं है और गांधीजी की केवल मूर्ति नहीं बना रहा है जिसकी पूजामात्र करनी है, परन्तु जिसका अनुसरण नहीं करना है।

[१० फरवरी, '७० को सेवाग्राम, वर्धा में 'भारतीय शिक्षा में गांधीवादी मूल्य' पर आयोजित राष्ट्रीय परिगोष्ठी के उद्घाटन भाषण के कुछ अंश]

श्री वी० के० आर० वी० राव, केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री नयी दिल्ली।

भारतीय शिक्षा में गांधीवादी मूल्य
राष्ट्रीय परिगोष्ठी की संस्तुतियाँ

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने ९ से ११ फरवरी '७० तक सेवाग्राम, वर्धा में, जहाँ गांधीजी ने सबसे पहले नयी तालीम की संकल्पना और योजना प्रस्तुत की थी, एक राष्ट्रीय परिगोष्ठी का आयोजन किया था। केन्द्रीय शिक्षामंत्री प्रो० वी० के० आर० वी० राव ने परिगोष्ठी का उद्घाटन किया और गुजरात के राज्यपाल श्रीमन्नारायण ने उसकी अध्यक्षता की।

परिगोष्ठी का मत है कि विगत तीस वर्षों में भारतीय शिक्षा के सुधार के लिए गांधीवादी जीवन मूल्यों की महत्ता और प्रासंगिकता स्वीकृत हो चुकी है, परन्तु देश की लाखों शिक्षा संस्थाओं में उनके व्यावहारिक रूप का दर्शन नहीं होता। हमारी आशा है कि इस परिगोष्ठी के बाद हम गांधीवादी मूल्यों को भारतीय शिक्षा-प्रणाली में दाखिल करने का सतत सक्रिय प्रयास आरम्भ करेंगे और इस प्रयास को सबका सहयोग प्राप्त होगा। परिगोष्ठी की संस्तुतियाँ निम्नांकित हैं

१—गांधीजी का लक्ष्य अखिल मानवता के कल्याण के लिए शोषण-विहीन अहिंसक समाज की स्थापना करना था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा में निम्नांकित तीन मूल्यों को दाखिल करने की जरूरत है —

(क) शैक्षिक कार्यक्रम के अभिन्न अंग के रूप में हाथ से काम द्वारा शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा।

(ख) सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमों में छात्रों के जरिए सामाजिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, और

(ग) सब धर्मों की आधारभूत एकता के बोध के माध्यम द्वारा सर्वधर्म-समभाव का विचार।

२ —इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर (प्रारंभिक स्तर से विश्वविद्यालय (स्तर तक) समुचित शिक्षाक्रम विकसित करने की आवश्यकता है। स्थानीय परिस्थितियों में उपलब्ध साधनों और कौशलों के अनुरूप इन कार्यक्रमों में विविधता और लचीलापन होना चाहिए। उदाहरणार्थ, इनमें निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल होने चाहिए —

(क) सफाई और स्कूल के भवन और अहाते की देखभाल।

(ख) गांवों में फसल के बोने और काटने के काम में विद्यार्थियों द्वारा ग्रामीणों

म सहयोग। इस काम के लिए विद्यालय के अवकाश के समय में समुचित परिवर्तन कर लिया जाय।

(ग) स्कूल, परिवार अथवा पास-पड़ोस की खेती के उत्पादक कामों में विद्यार्थियों द्वारा सहयोग।

(घ) शिल्पों की शिक्षा।

(ङ) 'हाबीज' का आयोजन।

(च) शिक्षण की नवीन पद्धतियों का प्रयोग, जिनमें छात्रों को प्रत्येक विषय में अपने हाथ से अधिक-से-अधिक काम करने का अवसर प्राप्त होता है।

(छ) पारस्परिक सहयोग और सेवा के कार्यक्रमों-द्वारा शिक्षण संस्थाओं और समुदायों में निकट का सम्पर्क स्थापित करना।

(ज) अकाल, बाढ़, महामारी अथवा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय राहत के काम में छात्रों का भाग लेना।

(झ) मूक अथवा मिलीजुली (कामन) प्रार्थना द्वारा विद्यालय-दिवस का प्रारंभ। विद्यार्थियों के लिए नैतिक और सामाजिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाय।

(ञ) प्रौढ़ शिक्षा के उचित कार्यक्रम का आयोजन, जिसमें साक्षरता के प्रसार का कार्यक्रम भी शामिल हो।

(ट) विद्यार्थियों को ऐसे कामों में लगाया जाय, जिससे उनमें उत्तरदायित्व वहन करने की भावना का विकास हो।

ऊपर सुझाये हुए कार्यक्रमों के आधार पर सभी शैक्षिक स्तर के लिए न्यूनतम पाठ्यक्रम बनाया जाय और उन्हें शिक्षा-संस्थाओं में दाखिल किया जाय। कार्यक्रम के संयोजन और कार्यान्वयन में छात्रों का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जाय। इसके अतिरिक्त जो शिक्षा-संस्थाएँ गहराई और आस्था के साथ इन पाठ्यक्रमों का विकास और कार्यान्वयन करें उन्हें विशेष प्रकार की सहायता और प्रोत्साहन दिया जाय। चुने हुए जिलों में अग्रगामी योजनाएँ प्रारम्भ की जायें—कम-से कम एक राज्य में एक जिला तो चुना ही जाय जहाँ कार्यक्रम पर सघन रूप से प्रयोग किया जाय।

कार्यक्रम ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों में प्रारम्भ किया जाय। शहरी क्षेत्रों की विशेष समस्याओं को देखते हुए शिक्षा-मन्त्रालय एक 'स्टडी ग्रूप' नियुक्त करे, जो इन क्षेत्रों में कार्यक्रम को लागू करने के सुझाव दे।

३—इन कार्यक्रमों का प्रारम्भिक स्तर पर जहाँ देश के लगभग सात करोड़ बच्चे पढ़ते हैं, और जिनमें से अधिकांश इस स्तर के आगे नहीं बढ़ेंगे, विशेष महत्त्व है।

कार्यक्रम को स्कूल के अहाते तक ही सीमित न किया जाय और उसका प्रसार समुदाय तक किया जाय।

४—माध्यमिक स्तर पर कार्यानुभव का पाठ्यक्रम दाखिल किया जाय। पडोस मे जो सामुदायिक विकास के काम चल रहे हैं, उनसे इस कार्यानुभव के कार्यक्रम को सम्बन्धित करने का प्रयास किया जाय। इससे विद्यार्थियों मे राष्ट्र-निर्माण के कार्यों म हाथ बँटाने की भावना का विकास होगा।

५—विश्वविद्यालय-स्तर पर राष्ट्रीय सेवा के कार्यक्रम पर बल दिया जाय। इसके अतिरिक्त चुनी हुई संस्थाओं के साथ वर्कशाप और फार्म्स संलग्न करने की अग्रगामी योजनाएँ भी प्रारंभ की जायँ।

६—बच्चो को सर्व धर्म-समभाव की शिक्षा देने के लिए पुस्तकें तैयार करने की आवश्यकता है। विनोबाजी से प्रार्थना की गयी है कि वे इस प्रकार की पुस्तकें तैयार करने मे मार्गदर्शन करें और उन्होने कृपया इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है। जब इस प्रकार की पुस्तकें तैयार हो जायँ तो उसका सभी राष्ट्रीय भाषाओं म अनुवाद किया जाय।

७—सम्यक् पाठ्यक्रम के द्वारा सभी विद्यार्थियों को महात्मा गाधी के जीवन और उपदेशों से परिचित कराया जाय। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय-स्तर पर उनको, जो गाधीजी के संदेशो का गहराई से अध्ययन करना चाहे, विशेष सहूलियतें दी जायँ।

८—इन कार्यक्रमों की सफलता बहुत सीमा तक प्रशिक्षण संस्थाओं की सम्यक् दक्षता, राज्य के शिक्षा विभागों के नेतृत्व और स्वयंशिक्षकों के अपनी आस्था पर निर्भर करेगी अतः इनकी ओर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए।

९—आज शिक्षा-पद्धति मे गाधीवादी मूल्यों को दाखिल करने का काम एक लचीले और प्रगतिशील शिक्षा-पद्धति की अपेक्षा करता है। अतः आज की प्रणाली मे जो जडता आ गयी है, उसे दूर किया जाय और पाठ्यक्रम और परीक्षा-पद्धति मे अधिकाधिक लचीलापन लाया जाय।

१०—इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षण संस्थाओं के प्रयासो को अभिभावकों और समुदाय से प्रोत्साहन मिलना चाहिए। अतः साथ ही लोक-शिक्षण का कार्यक्रम भी प्रारम्भ करना चाहिए। ('पिपुल्स ऐक्शन' से साभार)

हमारी शिक्षा-नीति : एक पुनर्निरीक्षण

श्रीनिवास शर्मा

स्वतंत्रता की प्राप्ति को बाईस वर्ष से अधिक बीत गये। इतिहास भी इतने वर्षों में करवट बदल लेता है। प्रगति की गति यह है कि अब तो प्रत्येक वर्ष एक युगान्तर उपस्थित कर रहा है। परन्तु हमारे देश में इन वर्षों में शिक्षा का इतिहास एक पग भी आगे नहीं बढ़ पाया, वरन् कुछ बातों में पीछे ही जा रहा है। हम मानते हैं कि शिक्षा का विस्तार हुआ है अधिक स्कूल खुले, अधिक छात्र-छात्राएँ विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं, विश्वविद्यालय भी नये बने हैं, किन्तु क्या हम इसे ईमानदारी से शिक्षा का विकास कह सकते हैं। विस्तार और विकास में अन्तर है। विस्तार इसलिए हुआ कि हमारी जन-संख्या बढ़ रही है और प्रजातंत्र की प्रहरी जनता आज जागरूक है। उसे शिक्षा की भूख है। विस्तार को रोकना हमारे वश की बात नहीं है। किन्तु वास्तव में यह विकास नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब किसी देश में शिक्षा का विकास होता है तो उसके सामूहिक जीवन में नूतन मूल्यों एवं नवीन मान्यताओं का संचार होता है राष्ट्र समृद्ध पुष्ट और समर्थ होता है। सुख-सुविधाओं का विस्तार होता है। सृजन की अनेक अनदेखी दिशाएँ खुलती हैं और उसमें शक्ति एवं संयम (dynamism and discipline), दोनों पनपते हैं। और तब समूचा राष्ट्र आगे बढ़ता नजर आता है। कहा जाता है कि शिक्षा से समस्याओं का समाधान होता है। संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों में शिक्षा के माध्यम से ऐसा ही हुआ है। अनेक गुत्थियों को सुलझाया गया है। जब कभी राष्ट्रीय संकट या समस्या उठ खड़ी होती है तब शिक्षा ही उसका निराकरण करती है। शिक्षा पर उसके समाधान का दायित्व रहता है। आश्चर्य और खेद इस बात का है कि हमारे देश में शिक्षा स्वयं एक उलझन बनकर रह गयी यह किसी भी समस्या का सुलझाव क्या करेगी। फिर भी शिक्षा ज्यों-त्यों आगे बढ़ती ही जा रही है और इस प्रगति से प्रादुर्भूत समस्याओं का भी एक अम्बार-सा लगता जा रहा है।

इस बीच शिक्षा के क्षेत्र में जिन समस्याओं ने जन्म ले लिया है, उनको गिना देना मैं आवश्यक समझता हूँ। वे समस्याएं निम्नांकित हैं —

१—छात्रों अध्यापकों और प्रबन्धकों में व्यापक अनुशासनहीनता।

२—राजनीति का शिक्षा क्षेत्र में अनुचित और अवांछित हस्तक्षेप।

३—स्थानीय निकायों की शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक धाँधली और उनकी असफलता।

४—सहायता-प्राप्त विद्यालयों में प्रबन्ध-समितियों के आये दिन उठने वाले झगडे।

५—सहायता-प्राप्त संस्थाओं में निजी स्रोतों से धन का मिलना प्राय: बन्द हो जाना, कतिपय में विद्यालयों को कमाई का स्रोत बनाना तथा विद्यालयीय तथा छात्रीय-निधियों का गबन और दुरुपयोग।

६—विद्यालयों में छात्र-संख्या के अनुपात में भवन, साज-सज्जा, विज्ञान का सामान, पुस्तकालयीय पुस्तकों एवं शिक्षा, सम्बन्धी अन्य आवश्यक साधनों की कमी।

७—खेल के मैदानों का अभाव और खेलों की इतिश्री, जिससे अनुशासन-हीनता बढ़ी है।

८—अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति, फिर उन्हें कम वेतन देना, उनसे अन्य कार्य लेना, उन्हें अन्य कार्य करने भी देना उनके प्रति अनादर व दुर्व्यवहार की भावना, परिणामस्वरूप उनका राजनीति में प्रवेश, शिक्षा की उपेक्षा, अवैध साधनों की परीक्षा में वृद्धि कराना, परीक्षक के रूप में क्रय हो जाना, ट्रेड यूनियन के रूप में संगठित होना, हड़तालें, उपद्रव व अनुशासनहीनता कराना, शासन का इन परिस्थितियों में झुकना, उन्हें अन्य असमानताओं के होते हुए भी राजकीय सेवाओं में समानता देना, इत्यादि-इत्यादि अध्यापकों से सम्बन्धित समस्याएँ, जिनसे शिक्षा ह्रास की ओर अग्रसर हो रही है।

९—पाठ्य-पुस्तकों में प्रगति का अभाव और वर्षों तक किसी-न-किसी दबाव-वश उन्हीं पाठ्य-पुस्तकों का चलते रहना, जो कि अब हर प्रकार से समयातीत हो चुकी हैं। पिछले १२ वर्षों से जो पुस्तकें आज प्रचलित हैं, उन्हें समझने की क्षमता विद्यार्थियों में तो क्या, अध्यापकों में भी शेष नहीं रह गयी है, विशेषकर अंग्रेजी की।

१०—विशेष विद्यालयों और संस्थाओं की निष्क्रियता और अकर्मण्यता, उसमें निष्ठावान व्यक्तियों का अभाव, इनके कार्यों की रूपरेखा की अनिश्चितता, योग्य और निष्ठावान व्यक्तियों को उन्हीं स्थानों में ऊँची-से-ऊँची प्रोन्नति वर्षों पर न मिल पाना, थोड़े से रुपये के प्रलोभन में उनका उन संस्थाओं को छोड़ देना, जिन व्यक्तियों का मन ही शोध-कार्य में न लगता हो, जिनकी योग्यता शोध-कार्य के लिए नगण्य हो, जो उसके हेतु सर्वथा अयोग्य हो, उनको केवल स्थान-पूर्ति मात्र के लिए या सिफारिश के बल पर इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ

देने मात्र के लिए उन संस्थाओं में ढकेल देना, उन संस्थाओं के प्रशासक-वर्ग को अपने कार्य-क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता का न होना, उनके द्वारा किये गये भले-बुरे शोध-कार्य को प्रयोगात्मक रूप न देना, प्रयोग के बाद जो अच्छा उतरे उससे पूरे प्रदेश की शिक्षा को लाभान्वित न करना और इन सबके कारण वहाँ का करनेवाले प्रशासकों और कार्यकर्ताओं में अपने प्रति हीनता और कार्य के प्रति उदासीनता की भावना का सृजित होना, स्वाभाविक ही है। एक मित्र का तो इन संस्थाओं के बारे में यह कथन है कि ये संस्थाएँ विभाग की गोशालाएं बन गयी हैं, जिनमें अपाहिज, लंगडी, लूली और दूध न दे सकनेवाली निखट्टू गायें एकत्रित कर दी गयी हैं। भले ही इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो, पर यह कथन आधारभूत सत्य की ओर संकेत करता है। अतः यह समस्या निराकरण चाहती है। इतने बड़े व्यय करने के पश्चात् भी यदि हमें शून्य ही हाथ लग रहा हो तो इन्हें बन्द करने की बात भी सोचना अनुपयुक्त न होगा, अन्यथा इन्हें सुदृढ एवं परिमार्जित स्वरूप देकर शिक्षा के शोध-कार्य में, तथा तद्जन्य प्रयोगात्मक अनुभूतियों को शिक्षा-क्षेत्र में कार्यान्वित कर इन्हें एक जागरूक, चेतन और स्वस्थ संस्थाओं का स्वरूप देना आवश्यक है, जिसमें इनकी उपस्थिति और इनके कार्य-कलापों की अनुभूति शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में हो सके।

११—नवीन संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने में एक ओर तो हमें बढ़ती हुई शिक्षा की पिपासा का ध्यान रखना होगा और दूसरी ओर यह भी ध्यान रखना होगा कि ऐसे सुदृढ कूपों का निर्माण हो जो कि टिकाऊ हों और जिनके स्वच्छ जल से जनता की पिपासा शान्त हो सके। अतः मान्यता के प्रतिबन्धों व नियमों में पर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता होगी।

१२—राजकीय संस्थाओं की वर्तमान दुर्दशा भी एक विकट समस्या बन गयी है। नवीन संस्थाएँ खुल गयी हैं। पुरानी संस्थाओं में कक्षा और वर्ग बढ़ा दिये गये हैं। अधिकांश हाईस्कूल इंटरमीडिएट में परिवर्तित हो गये हैं (मैदान में अब केवल कम ही हाईस्कूल हैं), पर न भवन बढ़े हैं, न साज-सज्जा। विज्ञान खोल दिया है, पर पूर्ण उपकरण नहीं है। पुरानी दरों से ही प्रायः प्रासंगिक व्ययों से वर्ष भर काम ही नहीं चलता, आधे वर्ष किसी प्रकार बच्चों से ही सामान माँग-जाँचकर काम चलाया जा रहा है या कार्य अधूरा ही छोड़ दिया जाता है, भवनों में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई, सिफारिशों की शृङ्खला में छात्र-संख्या प्रति वर्ष बढ़ती ही जाती है, बैठने को कुर्सी नहीं, लिखने को मेज नहीं। एक एक कमरे में ४०-४० की जगह ८०-८० छात्र भरे हैं। इस प्रकार जिला परिषद् के प्राइमरी स्कूलों में भी गिरी दशा में आज राजकीय इण्टर कालेज

पहुँच चुके हैं, जो कभी आदर्श संस्था थे। पुस्तकालय की दुर्दशा कहते नहीं बनती और वाचनालय तो आई० ए० एस० के एक ही आज्ञा चक्र में पड़कर चकनाचूर होकर समाप्त हो गये हैं। फिर इन विद्यालयों में कैसी शिक्षा और कैसा आदर्श हो सकता है इसकी कल्पना की जा सकती है। अतः ऊपर की समस्त समस्याओं का समाधान कर एक पंचवर्षीय योजना बनाकर लगभग १० करोड़ रुपये व्यय कर इन संस्थाओं का जीर्णोद्धार करना ही होगा, जिससे कि यह अन्य सहायता प्राप्त संस्थाओं के सामने खड़ी हो सके और जिन आदर्शों के लिए यह चलायी जा रही है उनके प्राप्त करने में थोड़ी-बहुत सहायक हो।

१३—सहायता प्राप्त विद्यालय और संस्थाओं की अनुदान प्रणाली के क्षेत्र में इधर अनेक सुधार होते हुए भी यह अब भी दोषपूर्ण और श्रम साध्य है। उनमें बेईमानी, घूस और बदनामी की आज भी गुञ्जाइश है। अतः उसे सीधा-सादा ढाँचा देना और प्रति छात्र व प्रति अध्यापक के निश्चित आधार पर ही प्रबन्धकों से ही गणना करवा लेना ही इस समस्या का उचित निराकरण प्रतीत होता है।

सहायता प्राप्त विद्यालयों में समय से वेतन दिलवाना भी शासन और प्रशासन का काम है। अतः इस समस्या का भी कोई-न-कोई हल हमें निकालना ही होगा।

१४—परीक्षा प्रणाली भी अब हर दृष्टि से दोषपूर्ण और अधूरी प्रतीत होने लगी है। उसमें व्यापक सुधार वाञ्छनीय प्रतीत होते हैं और कम से-कम आन्तरिक परीक्षण का मूल्यांकन में सम्मिश्रण तुरन्त ही हो जाना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे विद्यार्थी पूरे वर्ष काम करे अध्यापक का अनुशासन माने और उसमें परिश्रम करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो। वह इस प्रकार गृहकार्य भी मनोयोग से करने लगेगा।

१५—निरीक्षक वर्ग द्वारा निरीक्षण का कार्य इस समय प्रायः न के बराबर निरर्थक और मूल्यहीन हो गया है। सम्यक प्रकार से या तो निरीक्षण हो ही नहीं पाता और यदि होता है तो उसकी आख्या और समीक्षा पर कोई ध्यान नहीं देता उसका कोई मूल्य नहीं होता और वह दैनिक कार्यक्रम में खो सी जाती है। अतः उसे भी सार्थक और सबल बनाने की आवश्यकता है, जिससे निरीक्षण द्वारा शिक्षा में प्रगति लायी जा सके। यातायात के भी सरल साधन उपलब्ध कराने आवश्यक हैं विशेषकर महिला वर्ग के लिए, जिससे कि निरीक्षण वास्तव में हो और झूठी सच्ची रिपोर्ट लिखकर किसी प्रकार कार्य न चलाया जाय।

१६—आज बढ़ती हुई कठिनाइयों के बीच विद्यालयों और कार्यालयों में गबन और अन्य आर्थिक गड़बड़ियाँ आये दिन की बात हो गयी हैं। अतः शिक्षा व्यय को सुव्यवस्थित करने के लिए एक बड़े सुदृढ़ और व्यापक परिनिरीक्षण (आडिट) के प्रबन्ध की आवश्यकता है। उसके ऊपर भी आवश्यकता इस बात की है कि आडिट रिपोर्ट में बतायी कमियों को दृढ़तापूर्वक दूर कराया जाय।

१७— नये तारतम्य और नयी परिस्थितियों में राजकीय शिक्षा-सेवाओं से सम्बन्धित एक नयी समस्या ने जन्म लिया है। वह यह है कि मान्यता प्राप्त अन्य विद्यालयों के प्रधानाचार्यों, प्रवक्ताओं और अध्यापकों के वेतन क्रम तो राजकीय सेवाओं के समान कर दिये गये किन्तु राजकीय सेवाओं को वह कोई भी लाभ नहीं दिया गया जो कि सामान्य सेवा के लोगों को उपलब्ध है, जैसे

अवकाश प्राप्ति की अधिकतम आयु सीमा का बराबर न होना, स्थानान्तरण की असुविधा का होना जिसके कारण दूरस्थ ग्रामीण और पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ अब राजकीय स्कूल खुल गये हैं अपने बच्चों की उच्च शिक्षा दीक्षा तथा उचित वैवाहिक असुविधाएं खोकर भी पड़े रहना, राजनीति से पूर्ण सम्बन्ध न लेना, अपनी व्यक्तिगत प्रतिभाओं का पूर्ण रूपेण अविकसित रखना, गोपनीय प्रविष्टियों के आधार पर वार्षिक वेतन वृद्धि, दक्षता रोक और प्रोन्नति में बाधा का आना और कई कई वर्षों तक अस्थायी बने रहना और सबसे ऊपर लोक सेवा आयोग द्वारा कठिन चुनाव के द्वारा चुने जाना, ये ऐसी असमानताएं हैं जिनके हेतु थोड़े से ऊंचे वेतन क्रम में होने से ही इनके अनवरत छलकनेवाले आंसू पोंछते रहते थे, अब समान वेतन के कुठाराघात से वह सम्बल भी छूट गया। अतः अब ये असमानताएं राजकीय सेवाओं के हृदय में शासन और समाज के प्रति ऐसी कुण्ठा को जन्म देंगी जिससे कि शैक्षिक स्तर सदा गिरता ही जायगा और सम्भव है कि यह किसी विघटनकारी विस्फोट का रूप भी ले। अतः समय रहते इसका व छिन्न निराकरण आवश्यक है।

१८—प्राथमिक शिक्षा की द्रुत गति से प्रगति को ध्यान में रख और अधिक से अधिक ५०० विद्यालयों और १० सब डिप्टी इंस्पेक्टर लोगों के कार्य का मानक मानकर प्रत्येक जिले में एक अतिरिक्त डिप्टी इंस्पेक्टर के पद की व्यवस्था की गयी थी। यह प्रगतिशील कदम अभी प्रारम्भ ही हुआ था कि चीन के द्वारा दुर्भाग्यपूर्ण आक्रमण की कठिनाई की घड़ी में यह योजना ही अर्थशास्त्रियों द्वारा व्यय में की गयी काट छांट की प्रथम शिकार हुई और तब से अब तक कभी किसीने इसके पुनर्जन्म की बात नहीं सोची। इस बीच शिक्षा तो आगे

बढती ही जा रही है। हमारे अभियानो के फलस्वरूप लाखो की संख्या मे छात्र स्कूलो मे बढ गये। हजारो नयी प्राथमिक और बहुत माध्यमिक संस्थाएँ खुल गयी, पर वह अतिरिक्त डिप्टी इंस्पेक्टर का पद जो किसी समय आवश्यक समझा गया हम पुन प्राप्त न हो सका। इससे प्राथमिक शिक्षा के निरीक्षण मे ह्रास हुआ और उसका स्तर गिरता ही जा रहा है। अत इस सुधारने के हेतु अतिरिक्त डिप्टी इंस्पेक्टर के पदो का पुनर्जीवन तुरन्त होना आवश्यक प्रतीत होता है।

१९—प्रशिक्षण का काय बडा ही महत्त्वपूण होता है। पर ऐसा लगता है कि प्रशिक्षण के साथ ही शिक्षा-जगत् मे सबसे बडा हास्य हो रहा है। प्रशासन की प्रथम सीढी पर पैर रखनेवाले एस० ई० एस० (ग०) के अधिकारी ही अधिकाश प्रधानाध्यापक बनाये जा रहे है जिनका न प्राथमिक शिक्षक का कोई अनुभव है और न उनके हेतु कोई प्रशिक्षण। अध्यापक वे रखे जाते है, जिनको या तो शिकायतें रही हैं या जो अभी सीधे अल्हड के रूप म अनुभव शून्य नयी भर्ती से चले आ रहे ह, जिन्होने एक दिन भी कभी प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालय म नहीं पढाया है। भला वे प्रशिक्षण का और वह भी भावी अध्यापको के क्या काय कर पायेंगे। अत हमारा सुझाव है कि बी० टी० सी० विद्यालयो के प्रधानाचाय मजे हुए और निपुण प्रशासक होने चाहिए जो कि कम से कम पी० ई० एस० (२) के वेतनक्रम के लोग हो। अध्यापक भी १० वष से कम अनुभव का कोई वहाँ न भेजा जाय। ग्रामीण क्षेत्रो की दुरूहता को ध्यान म रख उन्हे इन विद्यालयो मे काय करने हेतु एक विशेष भत्ते की व्यवस्था की जाय जिससे अच्छे लोग स्वत आकर्षित हो उधर आने की बात सोचें, और छटनी के आधार पर वहाँ उपयुक्त व्यक्ति भेजे जा सकें।

श्री श्रीनिवास शर्मा निदेशक राज्य शिक्षा संस्थान उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

शिक्षा की समस्याएँ

राजस्वरूप माथुर

शिक्षा के सम्बन्ध मे एक विशेष बात यह है कि आमतौर से हमारी शिक्षा पद्धति की बहुत अधिक बुराई की जाती है शिक्षा के साथ ही शिक्षको को भी बदनाम किया जाता है और यह बुराई यह बदनामी इस हद तक की गयी है और की जाती है कि आज विद्यार्थी के दिमाग म न शिक्षा की कोई इज्जत रह गयी है, न शिक्षक की। वह आज गुरुदेव के आगे सिर झुकाने को तैयार नही, और जब विद्यार्थी के हृदय म न उसकी कोई कीमत है जो उसे पढाया जाता है, और न उसकी जो उसे पढ़ाता है, तो फिर वह पढ ही कैसे सकता है ?

यह सब उन लोगो ने किया है जिनको स्कूल-कालेजो मे समय-समय पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया जाता है और जो स्वय विद्यार्थियो एव शिक्षा से अनभिज्ञ हैं। एक अध्यापक ही ऐसा है जो शिक्षा और विद्यार्थी, दोनो का सच्चे अर्थ मे पथप्रदर्शक हो सकता है और जब से अध्यापक पथप्रदर्शक नही रह गया, तभी से चारो तरफ अन्धेरा ही अन्धेरा है। मगर क्या वजह है कि अध्यापक जो जीवन भर पढता और पढाता है उसे यह अनपढ लोग रास्ता दिखाने का दावा करते हैं उनकी निगाह म उसे गिराने की कोशिश करते हैं जिनकी निगाहो मे उसे सबसे ऊँचा होना चाहिए ! ये अशिक्षित लोग आकर *विद्यार्थियो तथा अध्यापको को उपदेश देते है।* एक अध्यापक, जो जीवन भर अपना विषय पढता है और पढ़ाता है उसको य लोग यह बताते हैं कि यह पढाओ और इस प्रकार पढाओ विश्वविद्यालयो और कालेजो को यह करना चाहिए, वह करना चाहिए। यहाँ पर एक मौलिक प्रश्न उठता है कि जीवन भर पढ़नेवाले लोग इनका मार्ग प्रदर्शन करें अथवा ये तथाकथित समाज के ठेकेदार पढनेवालो का मार्ग प्रदर्शन करें ? गाधीजी की दुहाई देकर कहा जाता है कि शिक्षक को ऐसा होना चाहिए और विद्यार्थियो को यह करना चाहिए। मगर यह कहनेवाले कभी यह नहीं सोचते कि गाधीजी ने इनके लिए भी तो कुछ कहा है। ये लोग कहते हैं कि हमारी शिक्षा केवल किताबी है, किन्तु उन्हें यह पता नहीं कि आमतौर से आज का छात्र उच्चस्तर की पाठ्य पुस्तको के समीप तक नही जाता, पढना तो दूर रहा। आज का छात्र तो केवल सरल अध्ययन (मेड इजी) अथवा 'परीक्षा से २४ घटे पूर्व' पढता है

और वह जैसा पढता है, वैसा ही बनता है। यदि उच्च स्तर की पुस्तकों का अध्ययन किया गया होता तो यह दयनीय स्थिति न होती।

इन सब नेताओं और बडे बडे शिक्षा विशारदों से भी बडा शिक्षा का एक और मार्ग प्रदर्शक बन बैठा है—वह है पैसा, शिक्षक भी आज जिसके पीछे दौडता है। पैसा हमेशा से खुदा का बेटा कहा जाता रहा है, मगर वह आज बाप बन गया है और बाप का हुक्म मानना जरूरी है। पहले तो विश्वविद्यालय की डिग्री बडे परिश्रम के बाद भी मुश्किल से मिलती थी, परन्तु आज पैसे के बल पर विश्वविद्यालय की बडी से बडी डिग्री तो क्या 'यूनिवर्सिटी' की 'प्रोफेसर-शिप' तक मिल जाती है तथा लोग विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति (एक्जिक्यूटिव कोंसिल) के सदस्य बन जाते हैं और अपने मतलब के फैसले कर लेते हैं। जब ये लक्ष्मी के पुजारी सरस्वती के मन्दिर म कब्जा कर बैठे हैं, तो देश का जो हाल होना चाहिए वह हो गया है। पहले तो ये लक्ष्मी के पुजारी सरस्वती के मन्दिर मे घुस बैठे, उसे गन्दा किया और अब उसे बदनाम करते हैं। कमियाँ तो हर जगह होती है और हमेशा रहेगी, किन्तु उन कमियो को सुधारने मे ही जीवन है और ससार की उन्नति भी इसीसे होती है। प्रयत्न मे ही जीवन का आनन्द है। आज तक किसीने कभी कोई शिक्षण-नीति नहीं बतलायी और जो है उसकी निन्दा किया करते हैं। केवल यह कहा करते है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, वैसी होनी चाहिए, वह राष्ट्रीय होनी चाहिए, भयंकरी होनी चाहिए और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के उपयुक्त होनी चाहिए, इत्यादि। वस्तुस्थिति तो यह है कि हमे हमारे हाल पर ये लोग छोड दें और वहाँ से हट जायें तो विकृतियाँ समाप्त हो और ईमानदारी से वर्तमान शिक्षा-पद्धति को जितना उत्तम बनाया जा सकता हो, बनाया जाय और तब अध्यापक, जो सरस्वती के सच्चे पुजारी हैं यह देखें कि क्या और कैसे परिवतन करके उसे और अच्छा बनाया जा सकता है।

आज लोग अपने बच्चे को कालेज या विश्वविद्यालय इसलिए नहीं भेजते कि वह सच्ची शिक्षा प्राप्त करे, बल्कि इसलिए भजते हैं कि वह ऐसा हुनर सीखे, जिससे अधिक स अधिक पैसा बनाये। हर रोजगार पैसा पैदा करने के लिए ही है, लेकिन यहाँ सवाल पैसा पैदा करने का नहीं, पैसा बनाने का है। सभी के माँ-बाप चाहते हैं कि उनका लडका डाक्टर हो जाय, वकील हो जाय, इन्जीनियर हो जाय, या बडे ओहदे पाकर पैसा बनाने मे कुशल हो जाय। यह कोई नहीं चाहता कि उसकी सन्तान अध्यापक हो। अध्यापक बनना किसीके जीवन का लक्ष्य नहीं हुआ करता, यह तो अन्य योजनाओं के असफल हो जाने

पर 'मरता क्या न करता' वाली कहावत के अन्तर्गत ही स्वीकार होता है।

जो विद्यार्थी अपने को किसी भी धन्धे में जाने योग्य नहीं पाते, वे स्कूलों एवं कालेजों में नेतागीरी का कार्य शुरू कर देते हैं यह सोचकर कि नेतागीरी से मिनिस्टर होने का मार्ग खुल जाता है। इसलिए प्रत्येक शिक्षा संस्था में कुछ ऐसे तत्त्व विद्यमान रहते हैं जो अपने को छात्र नेता कहते हैं। हजारों नये विद्यार्थी हर साल कालेज में प्रवेश लेते हैं, पढ़ते हैं, पास होते हैं और चले जाते हैं, लेकिन ये हमेशा बने रहते हैं। सरकारी अफसर भी इनकी पीठ थप-थपाते हैं इस भय से कि कहीं किसी मिनिस्टर की अगवानी काले झण्डों से न हो जाय। अखबारवाले भी इन्हें महत्त्व देते हैं और अखबारी दुनिया में इनका पद छात्र नेता का होता है। वास्तविकता यह है कि न तो ये छात्र ही होते हैं और न नेता ही।

आज की स्थिति यह है कि जुलाई में स्कूल और कालेज खुलते ही इन तथाकथित छात्र-नेताओं का उत्पात शुरू हो जाता है। प्रतिदिन इनके चक्कर लगने लगते हैं। नये विद्यार्थी को नेता गुमराह करते हैं।

इन छात्र नेताओं की शिकायतों की एक लम्बी सूची होती है जो हमेशा तैयार रहती है, और उनका कहना यह होता है कि उनकी शिकायतें न कालेज ही सुनता है और न सरकार ही। लेकिन ९९% छात्र न तो कोई शिकायत ही करते हैं और न वे अपनी तकलीफों को तकलीफ मानते हैं। तमाम शिकायतें और दिक्कतें तो उनके नाम पर थोप दी जाती हैं। उनसे कहा जाता है कि उनके साथ यह ज्यादती हो रही है वह ज्यादती हो रही है। उनके अन्दर ऐसे ख्याल पैदा किये जाते हैं कि उनकी कोई परवाह नहीं करता, अतः उन्हें संगठित होकर एकता का नारा लगाना चाहिए। कालेज के विरुद्ध लेक्चरबाजी शुरू की जाती है और प्रबन्धकों को गालियाँ दी जाती हैं। गाँव से आये हुए विद्यार्थी के लिए यह दृश्य नये होते हैं। बुराई सुनने में लोगों को वैसे भी थोड़ा बहुत मजा आता ही है, इसलिए जो लड़के पढ़ने आते हैं वे भी इनके भाषण सुनने के लिए खड़े हो जाते हैं और इस प्रकार उन्हें पढ़ने नहीं दिया जाता।

जुलाई अगस्त में पढ़ाई में कोई खास सरगर्मी तो होती नहीं, इम्तहान भी दूर होते हैं। हुल्लड़ और हुड़दंगे के लिए एक सुअवसर होता है। अतः किसी-न-किसी बात को लेकर झगड़े खड़े किये जाते हैं, और हड़तालों का दौर शुरू होता है। परिणाम यह होता है कि स्कूल और कालेज मुद्दतों तक बन्द पड़े रहते हैं। लड़कों को यह कहकर साथ ले लिया जाता है कि तुम्हारी फीस

माफ करा दी जायेगी। फीस-माफी के ऐलान से लड़को को इस बात का प्रोत्साहन मिल जाता है कि घर से लायी हुई फीस सिगरेट और सिनेमा मे उड़ा दें। एक बार फीस इस तरह खर्च हो जाने के बाद इन विद्यार्थियो को इसके सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता कि इनके गिरोह मे शामिल हो जायें और अधिकारियो से फीस माफ करानेवाले नेताओ के हाथो को मजबूत बनायें।

मगर सितम्बर-अक्तूबर तक इन छात्र-नेताओ की कलई खुलने लगती है। लेक्चरबाजी कम हो जाती है, क्योकि स्थिति स्पष्ट हो जाने के कारण लडके बेकार की बातो मे दिलचस्पी लेना बन्द कर देते हैं। मार्च के आसपास तो इनकी कोई सुनता नही। इन छात्र-नेताओ का विद्यालय कोई प्रबन्ध न्ही कर सकते, क्योकि इनके साथ होते हैं सभी राजनैतिक दल और होता है नगर का वह वर्ग जिसे अच्छा नही कहा जा सकता। यह प्रश्न है 'ला और आर्डर' का, शिक्षा का नही। अत इसे उसी स्तर पर सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सुझाव

मेरा सुझाव है कि विद्यालयो मे एक छात्र को एक कक्षा मे दो वर्ष से अधिक न रखा जाय। बार-बार अनुत्तीर्ण होनेवाले छात्रो तथा इन तथाकथित छात्र-नेताओ के लिए हर राज्य की राजधानी मे तथा दिल्ली मे एक-एक पृथक् विद्यालय खोला जाय और इन्हे वही शिक्षा दी जाय। इस प्रकार यह अवांछनीय तत्त्व जो कि प्रत्येक विद्यालय मे १०-१५ से अधिक नही होता और 'मिनिस्टरी' का स्वप्न देखता है, यदि चाहेगा तो पढ भी सकेगा और मिनिस्टरो के सम्पर्क मे आ जाने से मिनिस्टिरो की ट्रेनिंग भी पा लेगा, साथ ही जिज्ञासु छात्रो के अध्ययन मे बाधा भी उपस्थित नही कर पायेगा।

इस छात्र-अशान्ति का मूल कारण है छात्र-यूनियन। छात्र-यूनियन प्रायः रुपयो को देखती है। प्रत्येक कालेज मे प्रत्येक छात्र से तीन रुपये यूनियन फीस के रूप मे लिये जाते है। इस तरह पाँच-छः हजार विद्यार्थीवाले एक कालेज मे १६-१७ हजार रुपये प्रतिवर्ष जमा हो जाते हैं। इन रुपयों के पीछे ही चुनाव लडे जाते हैं, पार्टियाँ बनायी जाती हैं और झगडे किये जाते हैं। यदि ये रुपये न हो तो विद्यार्थी भी इस अवांछनीय तत्त्व का साथ न दे और न इस अवाछनीय तत्त्व को ही प्रवेश पाने मे कोई दिलचस्पी रहेगी।

मेरे विचार मे सरकार को यूनियन के इस धन के विषय मे कोई प्रबन्ध करना चाहिए। यूनियन की फीस विश्वविद्यालय के आदेश से ही ली जाती है और उसीके द्वारा इसमे किसी प्रकार का सशोधन किया जा सकता है।

कालज इस सम्बन्ध मे कुछ भी नही कर सकता। यूनियन प्रत्येक कालेज मे होनी आवश्यक है, परन्तु यूनियन के पदाधिकारी वे विद्यार्थी ही चुने जाने चाहिए जो अपनी परीक्षा म प्रतिवर्ष उत्तीर्ण होते रहे हो, क्योकि सच्चे विद्यार्थी वही हैं जो पढते हैं और प्रतिवर्ष उत्तीर्ण होते हैं।

हमारे डिग्री कालजो म सबसे बडी कमी यह है कि इनके शिक्षको तथा अन्य कमचारियो का वेतन विश्वविद्यालय के शिक्षको और कमचारियो के वेतन से हर जगह कम रखा गया है जब शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता तथा काय बराबर होने की अपेक्षा की जाती है, उन्हें वेतन भी बराबर मिलना चाहिए। कालजो म वेतन कम होने से इन विद्यालयो के शिक्षक हमेशा विश्वविद्यालयो म जाने की कोशिश करते रहते हैं और जैसे ही वे मौका पाते हैं चले जाते हैं। परिणाम-स्वरूप, अच्छे अध्यापक विद्यालयो में रह ही नहीं पाते। इस पर भी आशा की जाती है कि कालजो का स्तर विश्वविद्यालय के स्तर के समान ही हो।

देश में उच्चतम शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों के सिर्फ १५ प्रतिशत विद्यार्थी विश्वविद्यालयो मे पढते हैं जब कि शेष ८५ प्रतिशत छात्र कालेजो मे ही शिक्षा पाते हैं, जहाँ घटिया किस्म के अध्यापक हैं, घटिया किस्म की प्रयोगशालाएँ है और घटिया किस्म के पुस्तकालय हैं। समझ मे नहीं आता कि छात्रों पर फीस बराबर उनके संरक्षकों पर टैक्स बराबर, फिर पढ़ाई का प्रबन्ध बराबर क्यों नहीं? शिक्षा क क्षेत्र म यह भेद भाव कभी भी गहरी सामाजिक उथल पुथल का कारण बन सकता है।

इस दोहरी नीति का कारण 'यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन' है। इस कमीशन' म सभी व्यक्ति विश्वविद्यालयो के होते हैं। वस्तुत यह कमीशन खास तौर से विश्वविद्यालयो के लिए ही बनाया गया है। कालेजो की, जिनमे ८५ प्रतिशत विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं, बात कहनेवाला कोई नहीं होता। विश्वविद्यालय के लोग अपने पक्ष म निर्णय ले लेते हैं। उनके यहाँ रिसर्च' होनी चाहिए या और अन्य प्रकार की विशिष्ट सुविधा उन्हें मिलनी चाहिए। जो रिसर्च' होती है, वह जैसी होती है सभी को ज्ञात है क्योकि आवासीय यूनिवर्सिटियो के प्रोफेसर लोग बीस-बीस पचीस-पचीस विश्वविद्यालयो की नियुक्ति समितियो तथा पाठ्यक्रम समितियो के सदस्य एव परीक्षक होते है जिसके कारण यदि उन्हे एक एक विश्वविद्यालय म, एक एक, दो-दो दिन के लिए भी जाना पडा तो उनके ७० ८० दिन तो देश के चक्कर काटने म ही बीतते है। पढाई एव शोध तो उन्हे रेल मे ही करनी पडती है। जब वे विशेषज्ञ होकर नियुक्ति-समितियो म बैठते हैं तो प्रत्याशी उनकी जेबो मे से निकल आते हैं

जिनका समाचार-पत्रों में 'कोर्ट केस' पढ़ने से पता चलता है, जिनमें विश्वविद्यालय फँसे रहते हैं। और वे प्रोफेसर जो कि अवकाशग्रहण करने के समीप होते हैं, समस्त प्रत्याशियों को अयोग्य बताकर स्वयं ही प्रत्याशी बन जाते हैं। ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटी हैं कि सात सात लाख रुपया प्रयोगशाला बनाने के लिए एक एक व्यक्ति को दे दिया गया। जब तक ये प्रयोगशालाएँ तैयार हो पायीं तब तक उन्हें कहीं सौ दो सौ रुपये अधिक मिले और वे चल दिये। इस प्रकार दिया हुआ सारा रुपया बरबाद हो गया। ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ प्रयोग न होने के कारण उपकरणों में जंग लग रही है। पश्चिम में जितना विज्ञान बढ़ा वह इसलिए कि एक एक प्रोफेसर ने अपना सारा जीवन एक ही विश्वविद्यालय में लगा दिया। वह स्वयं काम करते रहे और विद्यार्थियों से कराते रहे। सौ-दो सौ रुपये के लिए उन्होंने स्थान नहीं बदला, किन्तु यहाँ की स्थिति बिलकुल विपरीत है।

एक बात और है। हमारे यहाँ खेल कूद का कहीं ऐसा प्रबन्ध नहीं है जो सभी विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त हो, जब कि खेल कूद की फीस सभी से ली जाती है। हमारा विद्यालय शील्ड (पदक) जीते और हमारा खिलाड़ी चैम्पीयन हो, इस प्रशंसा के लिए पेशेवर खिलाड़ी एकत्र कर लिये जाते हैं। वे प्रवेश पाते हैं, उनकी फीस माफ की जाती है, उन पर रुपया व्यय किया जाता है। घुड़दौड़ के घोड़े की तरह उन्हें तैयार किया जाता है और दूसरे विद्यार्थी खेल कूद की सुविधा से वंचित रह जाते हैं। ऐसे ऐसे उदाहरण हैं कि एक ही खिलाड़ी एक वर्ष एक कालेज से विश्वविद्यालय चैम्पीयन बनता है और दूसरे वर्ष वही खिलाड़ी दूसरे कालेज से विश्वविद्यालय चैम्पीयन बनता है। प्रिंसिपल इस खिलाड़ी पर गर्व करता है कि मेरे कालेज का छात्र चैम्पीयन हुआ। पर वस्तुतः यह खिलाड़ी न तो इस कालेज का है और न किसी कालेज का, वह तो किराये का टट्टू है। खेल सब विद्यार्थियों के खेलने के लिए होना चाहिए। अनिवार्य तो होना ही नहीं चाहिए, किन्तु इतने अच्छे ढंग से संगठित होना चाहिए कि कोई छात्र बिना खेले न रहे। खेल-कूद का सच्चा उद्देश्य ही यही है कि सभी छात्रों का स्वास्थ्य-सुधार और मनोरंजन हो। एन० सी० सी० अनिवार्य की गयी है, किन्तु वह भी पूर्णतया असफल है।

प्रत्येक अध्यापक के लिए हर तरह की सुविधा होना जरूरी है। उसको खान पीन और रहन की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। यह उत्तरदायित्व समाज का है कि उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करे, जिससे वह अपना पूरा समय पढ़ने पढ़ाने में लगा सके। किन्तु यदि कोई अध्यापक गलती करता है, वह

किसी भी प्रकार की हो, उसके चरित्र की, अध्यापन में कमी की अथवा परीक्षा म किसी प्रकार की बेईमानी करने की उसकी माफी नहीं होनी चाहिए बल्कि समाज मे व्यक्तियो को इन वातो के लिए जो दण्ड मिलता है, उससे कठोर होना चाहिए, क्योकि उसे समाज के व्यय पर पढने लिखने का अवसर मिलता है *तथा समाज का असली नेता वही है।* इस हेतु प्रत्येक राज्य म एक हाई कोट के स्तर की न्याय-समिति होनी चाहिए जिसमे तीन न्यायाधीश तीन ही धर्मों और तीन भिन्न भिन्न प्रदेशो के हो और जब कोई मामला किसी अध्यापक के प्रतिकूल आवे तो वह इन न्यायाधीशो के सामने रख दिया जाय और उनका निणय अन्तिम निणय हो उसकी कही अपील न हो और अध्यापक और सस्था दोनो उसको मानने के लिए बाध्य हो। इन न्यायाधीशो के लिए कोई कायदे कानून न हो। उनके जो निणय हो व उनकी तक-बुद्धि से निर्णित हो।

श्री राजस्वरूप माथुर प्राचाय डी० ए० वी०, क्रिश्चि कालेज कानपुर।

जीवन और शिक्षा

रामनारायण उपाध्याय

सच्ची शिक्षा वह है जो जीवन मे से आती है और जीवन भर साथ निभाती है। मनुष्य का पहला गुरु मां है, जिससे उसे सस्कार मिलते है। दूसरा गुरु पिता है जो उसे व्यावहारिक ज्ञान और उच्चारण की बातें सिखाता है। तीसरा गुरु शिक्षक है जो उसे ज्ञान की दहलीज तक पहुँचाता है। गुरु का कार्य मजिल तक पहुँचाना नही, वरन् उस राह को दिखाना है, जिस पर मनुष्य अपने पाँव चलकर मजिल तक जा पहुँचता है। उसका कार्य प्रत्येक सवाल को हल करना नही है, वरन् सवालो को हल करने की ऐसी विधि बताना है जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी समस्याओ को स्वय सुलझा सके।

किताबी ज्ञान किताब मे से आता है और किताब मे ही विलीन हो जाता है। कहते हैं, कागज का कुँआ डुबाता भी नही और कागज की नाव तैराती भी नहीं। पुस्तक मे प्रत्येक वस्तु का पर्यायवाची शब्द दिया रहता है लेकिन अर्थ तो जीवन मे से खोजना होता है। पुस्तक मे घोडे की परिभाषा तो लिखी रहती है, लेकिन घोडे का ज्ञान तब तक नहीं होता जब तक उसे प्रत्यक्ष अस्तबल मे जाकर देखा नही जाय। कहते हैं, एक विद्वान बारह भाषाओ मे 'घोडे' शब्द का अर्थ जानता था, लेकिन जब वह बाजार मे घोडा खरीदने गया तो 'गधा' खरीद लाया। कारण किताबी घोडे और गधे की परिभाषा म कोई फर्क नही होता।

आज की शिक्षा मनुष्य को जीवन का सर्वांगीण ज्ञान नही देती। वरन् कुछ विषयो मे निष्णात बनाकर शेष मे शून्य बनाती है। आज के शिक्षा-विशारदो की तो यह हालत है कि एक बार एक व्यक्ति ने एक प्रोफेसर से पूछा—'क्यो भाई, स्टेशन का रास्ता किधर है?" तो उसने कहा—'मैं तो इतिहास का प्रोफेसर हूँ, मुझे भूगोल का ज्ञान नही है।' इसी तरह एक महाशय आकाश के ग्रह-नक्षत्रो का अध्ययन किये चले जा रहे थे कि सामने के एक गड्ढे म गिर गये। उनसे पूछा—"आप कैसे गिर गये?"—तो वे बोले, "मैं ऊपर के आकाश को देख रहा था, जमीन के गड्ढे को नही देखा।"

आजकल किताबी ज्ञान का इतना जोर है कि आदमी शब्द का अर्थ तो जानता है, लेकिन वस्तु का ज्ञान उसे नही है। कहते हैं, एक बार एक विदेशी भारत आया तो उसने यहाँ पर एक विशालकाय जानवर देखा तो पूछा—'यह क्या

है" ? कहा "हाथी।" उसने तुरन्त अपनी डायरी मे 'हाथी' शब्द लिख लिया। फिर उसने एक फल खाया। पूछा—"यह क्या है ?" कहा—"अमरूद।" उसने अपनी डायरी मे 'अमरूद' शब्द लिख लिया। फिर उसने एक सुन्दर कलात्मक इमारत देखी तो पूछा—"यह क्या है ?" कहा—"ताजमहल।" और उसने 'ताजमहल' शब्द को भी अपनी डायरी मे लिख लिया।

जब वह अपने देश मे पहुँचा तो वहाँ उसकी बडी धाक थी। हर कोई उसे भारत के सम्बन्ध मे 'एक्सपर्ट' मानता था। एक बार उसके शहर मे एक बहुत बडा जानवर आया तो लोग उसका नाम जानने के लिए 'एक्सपर्ट' महोदय के पास पहुँचे। और उसने पूछा कि "यह कौनसा जानवर है ?' उसने तुरन्त अपनी डायरी खोलकर बताया कि "यह या तो 'ताजमहल' है या 'हाथी' है या इसे 'अमरूद' होना चाहिए। इन तीनो मे से यह जरूर है।" ज्ञान जब जीवन मे से नहीं आता तो उसकी यही स्थिति होती है।

आज तो हमारे 'विद्यालयो' मे, पहले जहाँ 'विद्या का 'आलय' होता था वहाँ अब विद्या' का 'लय' होने लगा है। और पहले जो विद्यार्थी 'विद्या' का 'अर्जन' करते थे वे ही अब 'विद्या की 'अर्थी निकालने लगे है। अगर किसी लडके से पूछा कि 'तुम पढते कब हो, तो वह कहेगा— मैं पैसा उछालता हूँ। अगर वह चित पडता है तो सिनेमा जाता हूँ पट पडता है तो नाटक देखता हूँ, और अगर वह सीधा खडा रहता है तो पढता हूँ।' पैसा जब तक सीधा नहीं खडा रहे तब तक वह पढेगा नही ! और पैसा सीधा खडा कहाँ होता है ?

उधर शिक्षा की यह हालत है कि एक बार एक नये नये-से शिक्षक ने एक विद्यार्थी से पूछा—कि "जनक का धनुष किसने तोडा ?' तो उसने कहा—'मैंने तो नही तोडा सर !" शिक्षक बहुत परेशान हुआ और उसने हेडमास्टर से इसका जिक्र किया। हेडमास्टर ने कहा—"आजकल के लडके सबके सब बहुत बदमाश होते हैं। जब तक उनकी जमकर पिटाई नहीं होगी वे कुछ बतानेवाले नही।' हारकर बेचारा शिक्षक स्कूल-इन्सपेक्टर के पास पहुँचा और उनसे सारी बात कही। स्कूल इन्सपेक्टर ने बडे ही ध्यान से उसकी बात सुनी और फिर बडी गम्भीरता से कहा—"यह तो 'टेक्निकल' मामला है। स्कूल मे कितने धनुष खरीदे गये, कितने खारिज हुए और कितने शेष हैं इन सबकी जाँच करनी होगी। आप मुझे पूरा मामला लिखकर दे जाइए, मैं जरूर जाँच करूँगा।" कहते हैं, अत मे हारकर बेचारा शिक्षक शिक्षा मत्री के पास पहुँचा था। और शिक्षा-मत्री ने बडी शान से कहा था—"क्या इतनी-सी बात के लिए आप मेरे

पास आये, अभी नया बजट आ रहा है उसमे मैं प्रत्येक स्कूल के लिए वाण सहित धनुष रखवा दूगा ।'

यह सब इसलिए हो रहा है कि कोई भी आदमी जिम्मेदारी में अपना काम करना नही चाहता। और हरेक दूसरे पर अपनी जिम्मेदारी डालकर बरी होना चाहता है। कही पर भी वह आदमी नही है जिसे उसको जिम्मेदारी सौंपी गयी है। कहते हैं एक बार एक स्कूल इन्सपेक्टर एक स्कूल का निरीक्षण करने पहुँच। उन्होने कहा— 'मैं इस स्कूल के सबसे तेज तीन लडके देखना चाहता हूँ। म तख्ते पर एक सवाल लिखूगा और वे उसका जवाब लिख दें। सुनते ही एक लडका उठा और उसने तख्ते पर सही सही जवाब लिख दिया। फिर दूसरा लडका उठा वह और भी सही सही जवाब लिखकर लौट आया। बाद मे तीसरा लडका उठकर तख्ते के पास पहुँचा तो इन्सपेक्टर ने डाँटकर कहा— 'अरे यह तो वही लडका है जो पहले आया था।' लडके ने कहा— जी हाँ सर मै वही लडका हूँ जो पहले आया था। लेकिन इस बार मैं एक तीसरे लडके की जगह आया हू जो मैच दखने गया है।

इन्सपेक्टर न शिक्षक से कहा— क्योजी तुम कसे शिक्षक हो जो एक ही लडके को दो बार आने देते हो? शिक्षक ने कहा— सर! मै लडके पहचानता नही। मै वह शिक्षक नहीं हूँ, जो इस क्लास को पढाता है। व तो मैच देखने गये हैं।

इसपेक्टर ने कहा—' अपने भाग्य को सराहो। आज तुम सबकी खैर नहीं थी। असल मे मैं भी वह इसपेक्टर नही हूँ, जिसे इस स्कूल को देखना है। व तो मच देखने गय हैं।

इस तरह आज हर जगह पर दूसरा आदमी खडा है। जिनके विचार म विश्वास नही ऐसे लोगो पर विचार देने की जिम्मेवारी सौंपी गयी है। लेकिन हम विचार भी उसीको देना चाहिए जिसका विचार म विश्वास है। जो छडी से विचार देता है वह सिपाही हो सकता है, शिक्षक नही। विचार के जरिये विचार देनेवालो मे शकराचाय सबसे बडे थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि मै विचार से ही विचार को समझाऊँगा। पूछा — अगर नही समझ मे आय तो। बोले—' फिर समझाऊँगा। पूछा—' अगर फिर भी समय मे नही आयें तो ' बोले— तब तक समझाऊँगा जब तक समझ मे नही आ जाय।'

कृष्ण ने गीता की कोई 'वैराग नही ली थी, वरन कुरुक्षेत्र के मैदान मे युद्ध के बीचो-बीच जीवन म स अर्जुन को गीता का शिक्षण दिया था।

हरिश्चन्द्र न सत्य बोलने की कोई ट्रेनिंग नहीं ली थी वरन् सत्य उनके

जीवन का ऐसा अनिवार्य अंग बन चुका था कि वे जो कुछ भी बोलते थे वह सच होता था।

हर आदमी आज चरित्र निर्माण और राष्ट्र निर्माण की बात कहता है। लेकिन अगर कोई आदमी अपने समूचे जीवन के माध्यम से निरन्तर राष्ट्र-निर्माण का कार्य कर रहा है तो वह शिक्षक है। शिक्षक ही यह गर्व कर सकता है कि मेरा पढाया हुआ छात्र आज वकील है, न्यायाधीश है डाक्टर है। यह अलग बात है कि आज की राजनीति ने हमें कुछ ऐसे आदमी भी दिये हैं, जिनके लिए ऐसा दावा नहीं किया जा सकता।

लेकिन इतना करने पर भी शिक्षक की आज समाज में प्रतिष्ठा नहीं है। आज समाज में वकील की प्रतिष्ठा है डाक्टर की प्रतिष्ठा है नेता की प्रतिष्ठा है, लेकिन अपने श्वास प्रश्वास के साथ हमारे बच्चों के चरित्र-निर्माण करनेवाले शिक्षक की प्रतिष्ठा नहीं है। इस प्रतिष्ठा को शिक्षक को स्वयं अर्जित करना है। जो प्रतिष्ठा दी जाती है वह छिनी भी जा सकती है। लेकिन जिसका अर्जन किया जाता है वह गौरव बढानेवाली होती है।

कहते हैं, एक बार एक प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री एक शाला का निरीक्षण करने जानेवाले थे। शिक्षक ने कहा—' यदि आप हमारी शाला में नहीं आयें तो कृपा होगी।" उन्होंने पूछा—"क्या ? शिक्षक ने कहा—'अभी तक लडके समझते हैं कि मैं ही सबसे बडा हूँ। अगर आप आयेंगे तो मुझे उठकर आपको प्रणाम करना होगा। इससे लडके समझेंगे कि मुझमें कहीं-न कहीं छोटापन है।' शिक्षा-शास्त्री ने कहा—"मैं शाला में अवश्य आऊँगा। लेकिन तुम्हें उठकर प्रणाम नहीं करना पडेगा। वरन् मैं स्वयं तुम्हें प्रणाम करूँगा, ताकि शिक्षक के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि हो।"

आज हमें ऐसे ही विनम्र शिक्षा शास्त्रियों की जरूरत है। जाने क्यों, आज की हमारी शिक्षा दो हिस्से में बँट चुकी है। शिक्षक अलग, शिक्षार्थी अलग। शिक्षक का काम सिर्फ पढाना है, शिक्षार्थी का सिर्फ पढना। वास्तव में जो शिक्षक है वह भी निरन्तर सीखता है और जो शिक्षार्थी है उसमें भी कुछ सिखाने की क्षमता है। जिसमे 'जिज्ञासा' है वही 'विद्यार्थी' है और जिसकी जिज्ञासा शान्त हो चुकी उसे 'वृद्ध' कहते हैं।

हमारे देश में सबसे बडा जिज्ञासु विद्यार्थी नचिकेता हुआ है। कहते हैं, एक बार उसके पिता ने अपना सर्वस्व दान में दे दिया। नचिकेता ने पूछा—"पिताजी, आप मुझे किसको दे रहे हैं।" पिता ने कोई जवाब नहीं दिया। नचिकेता ने जब बार-बार यही प्रश्न किया, तो पिता ने गुस्से में आकर कह

दिया कि 'मैं तुम्हें मृत्यु को दे रहा हूं।" सुनते ही नचिकेता मृत्यु (यम) के पास पहुँचा। और उससे पूछा कि "ब्रह्म क्या है ?" यम ने कहा कि "तुम संसार का समस्त सुख ले लो, लेकिन यह प्रश्न मत पूछो।" लेकिन उसने एक नहीं मानी और पूरे तीन दिन तक यम के दरवाजे पर भूखा-प्यासा बैठा रहा। लाचार यम ने हार मान ली और उसे 'ब्रह्म ज्ञान' दिया।

तो जिसमें मृत्यु से भी प्रश्न पूछने की क्षमता हो वही सच्चा विद्यार्थी है। लोकमान्य तिलक ने एक बार कहा था कि "यदि मेरे सिर पर आसमान टूटे तो मैं उस टूटे हुए आसमान का अपने लक्ष्य के लिए उपयोग कर लूंगा।" विद्यार्थी में अपने लक्ष्य के प्रति ऐसी ही दृढ निष्ठा चाहिए।

गांधीजी ने जो बुनियादी शिक्षा की बात कही वह इसलिए कि हमारे सामने समूची सृष्टि एक पुस्तक की तरह खुली है। एक नन्हा सा गेहूँ का पौधा हमें अरण्य युग से लेकर कृषि उद्योग तक के मानवीय संस्कृति के विकास की कहानी सुनाता है। गेहूँ के एक एक दाने में हम जिन जिन देशों में गेहूँ होता है उनका इतिहास और भूगोल सिखाने की क्षमता है। कपास का एक नन्हा सा पौधा हमें कातने-बुनने से लेकर, वस्त्रोद्योग तक के मानवीय सभ्यता के विकास की कहानी सुनाता है। बिनौल के माध्यम से हम गणित और सूती उद्योग का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

बुनियादी शिक्षा के लिए हम किताब से नहीं, जन-जीवन और जमीन से रिश्ता जोडना होगा। इसके लिए किसी धुंआधार प्रचार की आवश्यकता नहीं। "यदि हम अपने से शुरू कर दें' तो लक्ष्य में सफलता पायी जा सकती है। जिस तरह माचिस की एक सींक अपने कमरे का अंधेरा दूर करने की शक्ति रखती है उसी तरह एक सच्चे आदमी में अपने आस-पास के अज्ञान, अन्धकार को दूर करने की क्षमता है।

इस सम्बन्ध में गुरुदेव की एक सुन्दर कहानी है—

एक दिन साध्य से रवि ने पूछा—"मेरे बाद मेरे कार्य को कौन पूरा करेगा ?"

सुनते ही सारा जग निरुत्तर हो गया।

इतने में एक नन्हे से माटी के दीप ने कहा—"प्रभु ! अपनी सामर्थ्य भर मैं उसे पूरा करूँगा।"

हम भी माटी के ऐसे ही जीवन दीप बन जायें।

श्री रामनारायण उपाध्याय, साहित्य-कुटीर, ब्राह्मणपुरी, खंडवा (म०प्र०)

एक राष्ट्रीय प्रश्न

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों का स्तरोन्नयन

सच्चिदानन्द 'साथी'

[लेखक ने इस लेख को 'बिहार' राज्य को दृष्टि में रखकर लिखा है, परन्तु यह देश के किसी भी दूसरे राज्य के लिए लागू होता है।—सम्पादक]

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली को गुणात्मक एवं परिमाणात्मक, दोनों दृष्टियों से सगठित करने के निमित्त आजादी के बाद बहुत कुछ सोचा, समझा और किया जा रहा है। कई-एक आयोग और शैक्षिक समितियाँ, जैसे—विश्व-विद्यालय शिक्षा आयोग (१९४९), माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५३), माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों और पाठ्यचर्चाओं से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय मंडली (१९५४), शिक्षा-आयोग (१९६६), आदि बने। इनके प्रतिवेदन प्रस्तुत हुए। योजनाएँ बनीं, कार्य हुए। परन्तु शिक्षा में अभिनव क्रांति हुई नहीं। कहा जाय, हम शिक्षा और राष्ट्रीय विकास-वृक्ष के मूल 'अध्यापक-शिक्षक' को सर्वथा उपेक्षित कर केवल उसकी डालियों और पत्तियों को देखते रहे, वे हरा-भरा रहे—चिन्तन के विषय बने, परन्तु जिस वृक्ष का मूल ही उपेक्षित, फलस्वरूप कमजोर रह जाय, उसकी डालियों और पत्तियों का क्या ठिकाना!

'शिक्षा आयोग' की पहली पंक्ति ही है—"भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारे स्कूलों और कॉलेजों से निकलनेवाले विद्यार्थियों की योग्यता और सख्या पर ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के उस महत्त्वपूर्ण काम की सफलता निर्भर करेगी जिसका प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन सहन का स्तर ऊँचा उठाना है।"[१] स्पष्ट है, शिक्षा म क्राति अनिवार्य है, परन्तु यह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक स्वय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के प्राण-तत्त्व एव कथित कक्षाओं के भाग्य विधाता अध्यापकों के प्रशिक्षण-सम्बन्धी कार्यक्रमों में क्रांतिकारी परिवर्तन न किया जाय। चल रहे प्रशिक्षण-कार्यक्रम प्राय प्राणहीन एव अनुपयुक्त हैं। शिक्षा आयोग ने ऐसा महसूस किया है कि थोड़े से अपवादों को छोड़कर "सामान्यत प्रशिक्षण-शालाएँ" मध्यम या घटिया कोटि की हैं।"[२]

१ शिक्षा आयोग (१९६४-६६) पृष्ठ १ (१:१)
२ शिक्षा-आयोग (१९६४ ६६) पृष्ठ ७६ (४.२)

अत. शिक्षा मे गुणात्मक विकास के लिए पहले "अध्यापकों मे वृत्तिक शिक्षण का एक समुचित कार्यक्रम" हो, आवश्यक है। प्रायः सभी गठित शिक्षा-आयोग एवं समितियों ने इसके महत्त्व को स्वीकार कर महत्त्वपूर्ण अनुशसाएँ की हैं, परन्तु वे कार्यान्वित नही की जा सकी। प्रगति के ग्राफ हमने तैयार तो कर लिये, पर आत्मिक तोष हो, ऐसी बात नही। और इस प्रकार 'अध्यापक-शिक्षण-कार्यक्रम' प्राय. उपेक्षित रहे।

शिक्षक-प्रशिक्षण-सम्बन्धी कार्यक्रमो के सचालनार्थ बिहार मे सम्प्रति दो प्रकार की प्रशिक्षण-शालाएँ कार्यरत हैं—एक महाविद्यालय स्तर पर, तो दूसरे विद्यालय स्तर पर। एक को माध्यमिक अध्यापक तैयार करना है, तो दूसरे को प्राथमिक, परन्तु प्राथमिक अध्यापकों के निमित्त चल रहे शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय माध्यमिक अध्यापक भी तैयार करते हैं। ये दोनो प्रकार की प्रशिक्षण-शालाएँ स्वस्थ भूमिका नही निभा पा रही है। इनमे प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण-शालाओं की तो स्थिति और भी चिन्ताजनक है। शिक्षा आयोग की दृष्टि मे 'प्राथमिक अध्यापको की प्रशिक्षण-शालाओं की बहुत ही दुर्दशा है और उसके शिक्षण-स्तर तो माध्यमिक प्रशिक्षण शालाओं से अधिक गये-गुजरे हैं।"[3] ऐसी स्थिति मे एक ही विकल्प है—"प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण-शालाओं का स्तरोन्नयन"। शिक्षा-आयोग की राय मे "पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापको की प्रशिक्षण शालाओं के स्तर ऊँचे उठाकर कॉलेज-स्तर तक पहुँचाये जायें और इस काम के हेतु प्रत्येक राज्य के लिए अलग अलग क्रमिक कार्यक्रम बनाये जायें।"[4] शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित शिक्षा और राष्ट्रीय विकास के इस अर्थपूर्ण और प्रभावकारी अनुष्ठान मे यदि बिहार निष्ठा से आगे नही बढ सका तो हमारा दुर्भाग्य निश्चित है। इस संदर्भ मे उल्लेख्य है कि कई-एक राज्यो मे प्राथमिक अध्यापको की प्रशिक्षण-शालाएँ कॉलेज-स्तर की हैं, परन्तु बिहार मे विद्यालय-स्तर की, और वे हैं—'शिक्षण-प्रशिक्षण विद्यालय।"

शिक्षण-प्रशिक्षण विद्यालय

कार्य कॉलेज के : स्तर स्कूल का

आइए, जरा हम बिहार के प्रशिक्षण-विद्यालयों के कुछेक महत्त्वपूर्ण दृष्टि-बिंदुओं पर विचार करें। इन प्रशिक्षण-विद्यालयो मे :

(क) प्राथमिक, बुनियादी एवं माध्यमिक विद्यालयो के लिए शिक्षको का प्रशिक्षण होता है।

---

३. शिक्षा-आयोग (१९६४-६६) पृष्ठ ८८ (४ : ४५)

४. शिक्षा आयोग (१९६४-६६) पृष्ठ ८० (४ : १२)

(ख) उच्च एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के भी अस्नातक शिक्षकों का प्रशिक्षण होता है।

(ग) यहाँ की परीक्षा बी० एड्० एवं डिप-एड्० परीक्षाओं के समकक्ष है।

(घ) इन विद्यालयों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमों में कुछेक विषय-सम्बन्धी विषयों का स्तर स्नातक खंड—एक का है तो शेष शैक्षिक विषयों का बी०एड्० एवं डिप-एड्० के समकक्ष तो है ही। इससे अधिक भी।

(च) *प्रवेशार्थ प्रशिक्षार्थियों की योग्यता कम-से-कम मैट्रिक रखी गयी है।*

(छ) राज्य के चुने हुए कुछ प्रशिक्षण-विद्यालयों में तो प्रशिक्षार्थियों की न्यूनतम योग्यता आई० ए०/आई० एस सी०/आई० काम० या स्नातक खंड–१ निर्धारित है।

(ज) शिक्षण-सत्र दो वर्षों का है, जब कि बी० एड्० का एक वर्ष से भी कम का।

उपर्युक्त नचित बिन्दुओं के सन्दर्भ में स्पष्टतः कहा जायेगा कि बिहार के ये शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय काम तो कॉलेज के करते हैं, परन्तु इन्हें स्कूल का स्तर ही प्रदान किया गया है—"आधा तीतर, आधा बटेर।"

परिणाम हैं :

(क) इन शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों के स्तर एवं कार्य घटिया किस्म के हैं।

(ख) इनका सामाजिक मूल्य नहीं, इनके अध्यापकों की समुचित सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं।

(ग) यहाँ तक कि समकक्ष माध्यमिक विद्यालयों के भी "अच्छे अध्यापक प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालयों में काम करना पसन्द नहीं करते।"

(घ) इतना ही नहीं, समकक्ष पदाधिकारी भी इस ओर आकृष्ट नहीं होते और इन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं।

स्पष्ट है, शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय अपनी त्रुटियों में बँधे विवश हैं, तो उनके अध्यापक दु:ख का रोना रोने में व्यस्त और सन्त्रस्त। इनकी स्थिति निरावृत, एतदर्थ निष्प्राण ! फलतः शिक्षा का गुणात्मक विकास यदि विकलांग हो जाय तो दोष किसका ?

सुझाव के स्वर

अभी-अभी बिहार राज्य अवर-शिक्षा-सेवा संघ (प्रशिक्षण एवं बुनियादी शाखा) ने सरकार से यह माँग की है कि शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों को कॉलेज

का स्तर दिया जाय। सही अर्थों में यदि शिक्षा और राष्ट्रीय विकास के कार्यों को आगे बढ़ाना है तो शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय का स्तरोन्नयन करना ही होगा अन्यथा योजना और योजनाओं के पीछे लगे श्रम शक्ति और अर्थ–सभी की बर्बादी होगी तभी तो शिक्षा आयोग ने स्पष्टतः कहा है कि 'ये बाधाएँ तभी दूर हो जायेंगी जब संस्थाओं का स्तर कालेजों के समकक्ष कर दिया जायगा।[5] फिर, आप-से आप अध्यापक शिक्षण' का स्तर ऊपर उठेगा और शिक्षा और राष्ट्रीय विकास-वृक्ष फूलेगा, फलेगा समाज को नयी चेतना का सौरभ और नया जीवन मिलेगा। अतः निम्नांकित महत्त्वपूर्ण सुझाव बिन्दुओं को तुरन्त ही व्यावहारिक रूप दिया जाना आवश्यक है। यथा

- शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों का स्तर कॉलेज के समकक्ष कर उनका नाम 'प्रारम्भिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय (एलीमेन्ट्री टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज) कर दिया जाय,
- अध्यापकों का पदनाम 'व्याख्याता' हो और,
- शिक्षा आयोग की अनुशंसा के अनुरूप व्याख्याताओं की न्यूनतम योग्यता एम० ए० एम० एस सी०/एम० काम० और बी० एड० कर दिया जाय। कहना नहीं होगा ऐसी और इस न्यूनतम योग्यता के अधिक के भी अध्यापक एवं निरीक्षी पदाधिकारी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

आर्थिक उलझन भी नहीं

सही है, आर्थिक उलझन में बँधकर हम अपनी योजनाओं को कार्यान्वित नहीं कर पाते परन्तु ऐसी महत्त्वपूर्ण योजनाएँ भी हैं जिनमें अर्थ बाधक नहीं फिर भी हम उन्हें छोड़ चलते हैं। ये छुटी हुई योजनाएँ कभी कभी इतनी भयानक सिद्ध होती हैं कि राष्ट्र की रीढ़ ही टूटती-सी दिखती है। आवश्यकता है, हम अपनी दृष्टि का विस्तार करें सूझ-बूझ से काम लें। शिक्षा शास्त्री एवं अधुनातन शिक्षा धारा के प्रमुख विचारक श्री जे० पी० नायक ने कहा है– 'अनेक ऐसे कार्यक्रम हैं जिन पर बहुत कम व्यय होता है। केवल मानवीय प्रयत्न और उत्तम योजना की आवश्यकता है। एक दरिद्र देश में जिनमें भारत भी है लोग बड़े कुचक्र में फँस जाते हैं। धनहीनता के कारण वे शिक्षा में सुधार नहीं कर पाते और दरिद्र रहते हैं क्योंकि शिक्षा में उन्नति और सुधार नहीं होता। इस कुचक्र को केवल एक ही प्रकार से तोड़ा जा सकता है, अर्थात्

५ शिक्षा आयोग (१९६४ ६६) पृष्ठ ८८ (४ ४६)

मानवीय प्रयत्न से। यदि हम ढंग से योजनाएँ बनायें, परिश्रम करें और उपलब्ध साधनों का उत्तम-से-उत्तम उपयोग करें तो हम इस कुचक्र को काटकर इससे बाहर निकल सकते हैं। निश्चय ही हम मानव प्रयत्न, बुद्धि और अच्छी योजना, इन सब बातों में किसी भी देश से प्रतिस्पर्द्धा रख सकते है। यदि हम ऐसा करें तो निश्चय ही हम अपनी विशाल जनसंख्या में पायी जानेवाली बुद्धि एवं श्रम का सार्थक एवं प्रभावकारी उपयोग कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी उन्नति कर सकते हैं।[६] शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों के स्तरोन्नयन का सवाल व्यापक और महत्त्वपूर्ण है, साथ ही अर्थ-संकट से मुक्त भी। शिक्षा शास्त्री श्री नायक की जैसी दृष्टि है, हम इस सवाल का हल बुद्धि-चातुर्य से उपलब्ध साधनों में ही प्रभावकारी ढंग से कर सकते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विचार विन्दुओं के सन्दर्भ में अन्त में यह कहा जायगा कि शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों के स्तरोन्नयन का प्रश्न किसी एक विशेष वर्ग का प्रश्न नहीं, यह तो शिक्षा और विकास से जुड़ा एक राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न है, जिसका समाधान ही सरकार की नैतिक एवं सामाजिक जिम्मेदारी है।

श्री सच्चिदानन्द सायी' संपादक— किशोर शिक्षा ब्लाक नं० १५, फ्लैट नं० १२७ राजेन्द्रनगर, पटना–१६।

६ श्री जी० पी० नायक – विद्यालय योजना द्वारा शिक्षा में क्रान्ति' (नयी तालीम जनवरी, '७० पृष्ठ २७२–७३)

सामान्य विज्ञान-शिक्षण की कुछ मूल बातें

सुमतीशचन्द्र चौधरी

सामान्य विज्ञान इस समय प्रारम्भिक शालाओं में एक अनिवार्य विषय हो गया है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह एक स्वतंत्र पाठ्य विषय न होकर 'सफल जीवन-यापन की एक कुंजी' है। यदि अध्यापक इस तथ्य को हृदयंगम कर लें तो उन्हें इस अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय के शिक्षण के सभी पहलुओं पर पुन: विचार करना पड़ेगा और पुरानी धारणाएँ बदलनी पड़ेंगी, तथा अपनी कार्य-पद्धति में नया मोड़ देना होगा।

सामान्य विज्ञान का अध्ययन-क्षेत्र पाठ्य-पुस्तकों के पृष्ठों से बाहर प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण है। अध्यापक का कार्य है कि छात्रों को वातावरण से सार्थक अनुभव प्राप्त करने की परिस्थिति उत्पन्न करें। इन परिस्थितियों के आयोजन करते समय अध्यापक को जिन स्थूल सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में अपनी योजना बनानी पड़ेगी, उनकी चर्चा आगे की जा रही है।

अनुभवों से कार्य प्रारम्भ करना

अनुभव ही सीखने का आधार है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सूचनाएँ मस्तिष्क में पहुँचती हैं, और स्थायी होकर क्रमबद्ध होती हैं। बार बार अलग अलग परिस्थितियों में अनुभव प्राप्त होने से सामान्य प्रत्यय बनते हैं। बालक आम खाता है। यह एक फल है। इसी प्रकार फल शब्द से पहले आम और धीरे-धीरे जामुन, केला सेव, पपीता अमरूद का बोध होता है। अत: फल कहने से वह यह समझता है कि पेड़-पौधों से प्राप्त एक विशेष स्वादवाली वस्तु जिसमें खाने के लिए गूदा और भीतर बोने के लिए गुठली या बीज हो। जब उनके ज्ञान की परिधि और बढ़ती है तो फूल के बीजकोष बढ़ने से जो वस्तु बनती है उसे फल कहेगा। इस प्रकार बैंगन, टमाटर, लौकी को भी फल समझने के योग्य होगा। यह सामान्य प्रत्यय हुए। इन्हीं सामान्य प्रत्ययों के आधार पर विज्ञान के नियम और सिद्धान्त बनते हैं। किसी बर्तन (गिलास या जार) के भीतर, मोमबत्ती, कागज, कोयला, कपूर, चूना, गंधक जलाकर बालक अनुभव करता है कि प्रत्येक के जलने के लिए वायु आवश्यक है। अत नियम या सिद्धान्त निकला कि 'जलने के लिए वायु आवश्यक है।' इन तथ्यों तथा नियमों का स्वत: कोई महत्व नहीं, जब तक इनका उपयोग जीवन की किसी समस्या को सुलझाने या परिस्थिति को समझने के काम में न आये। जलने

के सिद्धान्त के नियम पर आँच तेज करने के लिए चूल्हे म पखा झलना पडता है लालटेनो के नीचे तथा चूल्हे के मुह म छेद बनाये जाते हैं। आग बुझाने के लिए पानी या रेत डाल देने से हवा नही पहुँच पायगी और आग बुझ जायगी। कडाही के घी म आग लग जाने पर इसी सिद्धान्त के आधार पर ही परात से या थाला से ढक देने म आग बुझ जाती है।

सीखने का आधार क्रिया

विद्यालय मे प्राप्त अनुभवों का आधार क्रिया होना चाहिए। यह क्रिया भी मनमानी न होकर किसी उद्देश्य या प्रयोजन से होनी चाहिए। यह उद्देश्य चाहे समस्या-समाधान के लिए हो अथवा जीवन की किसी आवश्यकता पूर्ति के लिए हो या आवश्यकता-पूर्ति की क्रिया को समझने की हेतु हो। उदाहरणत हमे क्षार या अम्ल का ज्ञान कोरे शास्त्रीय रूप से उनके गुणो की सूची रटाकर न करके इस प्रकार देना चाहिए कि वास्तविक जीवन मे उस ज्ञान का उपयोग स्पष्ट हो। बालक को कपडा धोते समय साबुन का प्रयोग करना पडता है। साबुन बनाने तथा वस्त्रो से चिकनाई को दूर करने तथा भारी पानी को हल्का बनाने के लिए क्षार के ज्ञान की आवश्यकता पडेगी। अत इन्ही अवसरो पर क्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए क्षार की पहचान गुणो की जाँच वास्तविक प्रयोग द्वारा देनी पडगी।

बुनियादी शाला मे क्रियाशीलन उद्योग प्राकृतिक वातावरण सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत आते हैं। उद्योग म बालक सूत कातता पौध और फसल उगाता है। मनुष्य को हानि या लाभ पहुचानेवाले जीवो का अध्ययन अलग से पुस्तक से पढाकर व्याख्यान देकर या यो ही अलग से पृथक रूप से न पढाकर खेती को नुकसान पहुचानेवाले जीवो के रूप म कराना चाहिए। इसी प्रकार उसी क्रियाशीलन म प्रसगत लाभ पहुँचानेवाले जीवो जसे—बर्र शहद की मक्खी, लाख का कीडा रेशम का कीडा इत्यादि का निरीक्षण करना साथक होगा।

प्राकृतिक वातावरण म ऋतु परिवर्तन कोई प्राकृतिक घटना जसे पाला पडना बाढ आना आदि के अवसर पर उनसे प्रभावित होनेवाले तत्त्व पेड-पौध जीवो तथा मनुष्यो का अध्ययन आ जायेगा।

विद्यालय म सफाई लिपाई-पुताई दिवाली होली मनाना जलपान की व्यवस्था आदि सामाजिक वातावरण की क्रियाओं का सहारा लेकर उन क्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए सामान्य विज्ञान के क्षेत्र से आवश्यक ज्ञान क्रिया होते

समय, क्रिया के पूर्व या पश्चात् जब स्वाभाविक ढग से उचित और आवश्यक हो, देना चाहिए।

छात्रो को स्वय अनुभव करने का अवसर देना चाहिए। उन्ह कोष, पुस्तको, सारिणी, ग्राफ इत्यादि म आवश्यक तथ्य निकाल लेने की क्षमता आ जानी चाहिए। स्वय करके सीखना उद्देश्यपूर्ण होता है। बालक कुछ प्रयोजनो का सामने रखकर या रुचि के आधार पर अनुभव प्राप्त करता है तो अनुभव-प्राप्ति की क्रिया वास्तविक, सजीव तथा प्रभावशाली हो जाती है।

सीखने के कायकलापो (क्रियाशीलनो) के द्वारा, जीवन की किसी समस्या या बालको की रुचि केन्द्र के आधार पर ही अनुभवो को सगठित करना चाहिए। यह कार्यक्रम किसी एक निश्चित घटे मे न होकर जितना समय स्वाभाविक ढग से आवश्यक हो विद्यालय दिवस के उतने समय या उतने दिनो तक चलना चाहिए। पाठो के उपरान्त छात्रो को पहेलियाँ, वाद विवाद, बालसभा म व्याख्यान, पत्रिका के लिए लख लिखना, समस्या सुलझाने के अभ्यास, सग्रह करना, कुछ रोचक खेल, विज्ञान के सिद्धान्तो पर आधारित खिलौने आदि भी बनवाये जा सकते है।

अनुभव-प्राप्ति योजना बनाने मे बालक को साझदार बनाना

जनतत्र की शिक्षा के लिए बालक को स्वय जनतत्र समाज मे रहकर उसमे सक्रिय भाग लेकर ही सोचना पडेगा। इसीलिए आज बुनियादी शाला मे अध्यापक अनुभव प्राप्त करान के लिए जो योजना बनाता है वह बालको की सहायता से ही बनाता है। बालक स्वय योजना के उद्देश्य निर्धारित करें। वे योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक साधन स्वयं अपनी क्षमतानुसार जुटायें। योजना को कार्यान्वित करने के पश्चात् प्राप्त परिणामो को वे ही सुसगठित करें, वर्णन करें, उनके द्वारा समस्या समाधान करें, दैनिक जीवन म उपयोगिता पर विचार करें और उन्ह जीवन म प्रयोग करें। अन्त मे अपने तथा अपने साथियो के कार्य की प्रगति, स्तर तथा कठिनाइयों की दृष्टि से विचार करें।

प्रत्येक स्तर पर जीवन की उपयोगिता पर ध्यान दिया जाय

सामान्य विज्ञान को निर्जीव सत्यो, प्रत्ययो तथा सिद्धान्तो का एक ढेर समझना बडी भूल है। यदि ऐसा समझा जाय तो जीवन और शिक्षा मे इसका कोई स्थान नही है। जो कुछ भी बालक को अनुभव कराय जायँ, दैनिक जीवन मे उनकी उपयोगिता को बालक स्वय अनुभव करें। सत्य और प्रत्यय तो केवल

मूर्त सिद्धान्त को स्पष्ट करने में सहायक होते है। इनकी वास्तविक उपयोगिता जीवन में है जिसके लिए इनका आविष्कार हुआ। जीवन की उपयोगिता से सत्यों और प्रत्ययो को सम्बन्धित न करने से बालक इन्हे अनायास ही भूल जायगा। रुचि प्रेरणा, क्रिया के आधार पर प्राप्त अनुभव तभी सार्थक होगे जब कि उनका जीवन से सम्बन्ध जोड दिया जाय। इसीसे बालक का सम्यक विकास हो सकेगा। जो कुछ भी अनुभव कराना है, उन्हे जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से अवश्य ही सम्बन्धित किया जाय।

प्रयोग या अनुभवो मे सरल उपकरणो का प्रयोग

सामान्य विज्ञान के जो कुछ भी प्रयोग कक्षा के भीतर या बाहर कराये जाये उनमे यथासम्भव अधिक-से अधिक घरेलू उपकरणो जैसे—बोतल गिलास, रकाबियो, तार छल्ले इत्यादि का प्रयोग किया जाय। इस प्रकार बालक स्वयं इनको अपने अपने घरो जाकर दोहरा सके। विज्ञान अध्यापक को उपकरणो पर होनेवाले व्यय को कम करने की चेष्टा करनी चाहिए। बहुत से उपकरण तो स्वय, या छात्रो से बनवा सकता है।

यह मान लेना कि विज्ञान के प्रयोग केवल सुसज्जित प्रयोगशालाओ मे विशेष उपकरणो द्वारा ही सभव है, भूल होगी। भारत जैसे निधन देश के लिए तो ऐसा मानना और भी ठीक न होगा। प्राचीन समय मे घरेलू उपकरणो द्वारा ही बड-बड वैज्ञानिक आविष्कार हुए। साधारण उपकरणों से प्रयोग व प्रदर्शन अधिक कौतूहलवर्द्धक, सरल तथा अल्प व्यय मे हो जाते हैं। विज्ञान के प्रत्येक अध्यापक को अनावश्यक तथा असम्बद्ध वस्तुओं का परित्याग करना चाहिए।

विज्ञान के सामाजिक पहलू को उपेक्षा न करना

विज्ञान के सामाजिक मूल्य पर विस्तृत आलोचना हो चुकी है। बालक जो कुछ नया अनुभव प्राप्त करे, उसकी सामाजिक उपयोगिता तथा सामाजिक जीवन मे महत्त्व को वास्तविक परिस्थिति मे समझे या अनुभव करें। पाठ योजना बनाते समय ही अध्यापक सोच ले कि क्रिया या अनुभव का सामाजिक पहलू क्या है और बालक के अनुभव-क्षेत्र को इस प्रकार सगठित करे कि बालक इस पहलू के प्रति प्रतिक्रिया करे। अध्यापक को देखना चाहिए कि प्राप्त अनुभव को सामुदायिक ढग पर समाज के हित मे प्रयोग करने की प्रवृत्ति सी बन जाय। यदि बालको से कक्षा साफ करायी गयी तो कक्षा की सफाई से ही अध्यापक को सतुष्ट न होना चाहिए। वह देखे कि निकले हुए कूडे करकट बरामदा, रास्ते, मैदान मे नही डाल दिये जाते। बालकों से इनको खाद के

गढ्ढो या कूड़ादानो मे पहुँचवा देना चाहिए। इसी प्रकार बालक सीखेगा कि अपने घर का कूडा-करकट गली या सडक मे न गिराकर नियत स्थान पर ही ले जाकर डाले या व्यवस्थित ढग से खपाये।

समाज मे उपलब्ध साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग

समाज अपने लिए पीने का जल, रोशनी, सफाई तथा आग से सुरक्षा, रोगियों की देखभाल की व्यवस्था करता है। समाज मे यातायात तथा विचार विनिमय के साधन, जैसे–टेलीफोन, तार, बेतार की व्यवस्था है। जीवन की आवश्यक सामग्री पूर्ति हेतु समाज म कृषि तथा उद्यम (घरेलू उद्योग, कल-कारखाने) हैं। बालक को इन सब सस्थाओ तथा व्यवस्थाओ का अपने जीवन मे कभी न-कभी कुछ-न-कुछ उपयोग करना पडता है, भले ही उसे इसका बोध न हो। आग चलकर उसे इनके सचालन तथा इनसे उत्पन्न विभिन्न समस्याओ का सामना करना पडेगा। इनके विषय मे अनुभव केवल पुस्तको, विवरणो के अध्ययन, व्याख्यान सुनकर या चित्रो को देखकर प्राप्त नही किये जा सकते। इसीलिए सामान्य विज्ञान के अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह अपने छात्रो को स्थानीय खेतो, तालाबो, जगलो, जल-कल, बिजली के कारखानें तथा स्थानीय घरेलू उद्योग व कारखानो मे ले जाकर बालको को वास्तविक परिस्थिति मे अनुभव करने का अवसर दें। इन सस्थाओ के अतिरिक्त समाज मे चलचित्र, रेडियो, (भविष्य मे चलकर टेलीवीजन) समाचार-पत्र, व्याख्यान, प्रदर्शनियाँ आदि शिक्षा एव प्रसार के साधन हैं। कभी-कभी विशेष अभियान जैसे–'हैजे का टीका लगाना', 'मलेरिया उन्मूलन', 'डी० डी० टी० छिडकाव', 'अग्नि-निवारण सप्ताह', 'राजपथो मे दुर्घटना-निवारण सप्ताह', 'वनमहोत्सव', 'विश्व वन्यजन्तु दिवस' आदि आयोजित होते हैं। ये योजनाएँ शैक्षणिक सभावनाओ से भरपूर होती हैं। इसलिए अध्यापक छात्रो को लेकर इनमें सम्मिलित हों और इनको सफल बनाने मे हाथ बँटाये। सामान्य विज्ञान सभी अनुभवों का एक प्रभावशाली तथा सार्थक क्षेत्र होगा, जब कि इसे पुस्तक या व्याख्यान के स्तर से उठाकर वास्तविक प्राकृतिक और सामजिक क्षेत्र में ले जायँ।

श्री सुमतीशचन्द्र चौधरी, राज्य शिक्षा-सस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

नीति और धर्म की शिक्षा का स्वरूप

विनोबा

[गत ३ दिसम्बर, १९६९ को वर्धा में महाराष्ट्र शासन के शिक्षामंत्री श्री मधुकरराव चौधरी ने श्री विनोबाजी से शिक्षा संस्थाओं में नीति और धर्म की शिक्षा के स्वरूप के सम्बन्ध में जो चर्चा की, उसका सार नीचे दिया जा रहा है।—सं०]

मधुकरराव पिछली बार जब हम मिले थे, मैंने आपसे विनती की थी कि आप ऐसा कुछ लिखें, जो विद्यार्थियों को संस्कारशील बना सके। उस समय आपने कहा था 'यह मेरा क्षेत्र नहीं।' आपका संकेत था कि मुझे जो करना हो, मैं करूँ। तदनुसार आगे हमने इस सम्बन्ध में चर्चाएँ कीं। नीति शिक्षा तो दी जाय, पर उसे उपदेश का स्वरूप प्राप्त न हो, इस दृष्टि से एक क्रमिक पाठ्यक्रम तैयार किया गया है।

विनोबा केन्द्र-सरकार ने एक समिति नियुक्त की थी। उसने सिफारिश की है कि शिक्षा-संस्थाओं में विद्यार्थियों को सब धर्मों का सार सिखाया जाय। 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ धर्म-निरपेक्षता किया जाता है जो गलत है। असल में, सब धर्मों के लिए समान भाव, ऐसा उसका भावात्मक अर्थ किया जाना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में से सब धर्मों को हटा देने के बाद लोग संस्कारी कैसे बन सकेंगे? इसी विचार से मैंने 'गीता पर प्रवचन' दिये। 'कुरान' और 'बाइबिल' के सार प्रकाशित किये। 'जपुजी' और 'धम्मपद' का भी सम्पादन किया। शिक्षा-विभाग इन सबका उपयोग कर सकता है।

अहमदाबाद में दंगे हुए। हम जो पिछला इतिहास सिखाते हैं, उसमें राजाओं के राग-द्वेष पर आधारित लड़ाइयों की बातें होती हैं। उन्हें हम छोड़ना होगा। यह समझना एक भूल है कि इतिहास अर्थात् राजा महाराजाओं के जीवन की सन् सवतवार घटनाएँ हैं। जिन राजाओं ने पंजाब में राज्य किया, आज कोई पंजाबी उन्हें जानता नहीं, लेकिन गुरु नानक को सब जानते हैं। बंगाल के पुराने सेन और पाल राजाओं को भी कोई नहीं जानता, लेकिन वहाँ के चैतन्य महाप्रभु का नाम सब लोगों को मालूम है। देश में इतने राजा-महाराजा आये और गये लेकिन लोग तो आज तुलसीदास को और उनकी रामायण को ही जानते हैं। महाराष्ट्र से ज्ञानदेव और तुकाराम के नाम को कौन हटा सकता है? इसलिए इतिहास में इन

महापुरुषो को महत्त्व का स्थान दीजिए और राजाओ को थोडे म निपटाइए। लेकिन ऐसा तो कोई करता नही।

शिवाजी महाराज के पिता का नाम शाहू था। शाहू महाराज पर एक फकीर की कृपा हुई इसलिए वे 'शाहजी' के नाम से पुकारे जाने लगे। यह फकीर कौन था ? उस जमाने का एक सूफी सन्त। इन सन्तो ने उन दिनो लोगो को मुसलमान धम सिखाया। मार-काट का काम राजाओ ने किया। यह मालूम होने पर कि सोमनाथ के मन्दिर की मूर्ति म स ना है, उस मूर्ति को तोडने और मन्दिर को लूटने का काम राजाओ ने किया। उसका धम से कोई सम्बन्ध न था। इस्लाम कभी जबरदस्ती करने को कहता नही। कुरान मे जगह जगह लिखा है कि जबरदस्ती से धर्म का प्रचार नहीं किया जा सकता। लेकिन आज यह बात कोई सिखाता नही। समथ स्वामी रामदास ने देखा कि ये सूफी सन्त शेखसादी का करीमा लोगो को सुनाते हैं और उससे लोग उनकी ओर आकर्षित होते है। इससे रामदास स्वामी को लगा कि उन्हे भी वैस ही वृत्त अथवा छन्द मे अपने विचार प्रकट करने चाहिए। फलस्वरूप उन्होंने उसी ढग पर अपने 'मनाचे श्लोक' लिखे। उदाहरण के लिए मना सज्जना भक्ती पन्थेची जावे। रामदास ने इसमे एक शब्द अधिक जोडा। उनकी रचना ग्यारह शब्दो की रही। अन्तिम शब्द पर सूफियो का जोर रहा। रामदास ने अपनी रचना भुजगप्रयात छन्द मे की। उन दिनो महाराष्ट्र पर इन सूफी सन्तो और फकीरो की आवाज का इतना प्रभाव पडा था। हममे से कितने लोगो को यह जानकारी है कि मराठी के 'मनाचे श्लोक' की रचना 'करीमा' पर आधारित है ? इसलिए मैं कहता हूँ कि इतिहास को या तो नयी पद्धति से लिखा जाय या फिर उसे छोड दिया जाय।

मधुकरराव जब हम धर्मो का सार सिखाने की बात करते हैं, तो वह सार सब धर्मों के लोगो को मान्य होना चाहिए। हमारे सामने यह एक कठिनाई है। यदि आपके समान अधिकारी पुरुष ने यह काम किया, तो सबकी मान्यता मिलना सरल होगा। उस कक्षाक्षा के क्रम से तैयार करना होगा। पुराने धम-ग्रन्थो को अपनाकर चलते हैं, तो उनके साथ पुरानी रूढियाँ परम्पराएँ और चमत्कार आदि सब आते हैं। आज के विज्ञान-युग म य बातें किसीको पसन्द नहीं पडती और अवाछनीय भी सिद्ध होती हैं।

विनोबा मरे लिखे 'कुरान-सार' को मुसलमानो ने माना है। प्रकाशन स पहले, बिना पुस्तक देखे ही, पाकिस्तान के कुछ समाचार-पत्रो ने उसकी टीका की थी। लेकिन पुस्तक के प्रकाशित होने पर वे उसमे एक-दो वचन अधिक जोडने की बात ही सुझा सके थ। मुझे व वचन विशेष महत्त्व के लग नही, इसलिए मैंने उन्ह

छोड़ दिया था। हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध मुसलमान मदूदी ने 'कुरान-सार' को देखने के बाद कहा था कि २५ मौलवी दस साल तक बैठकर और दस लाख रुपये खर्च करके जो काम न कर पाते, उसे अकेले *विनोबा ने कर दिखाया है।* एक प्रसिद्ध मुसलमान सज्जन को 'कुरान-सार' इतना पसन्द आया कि उन्होंने खुद-ब-खुद उसके शब्दों की सूची तैयार करने का काम उठा लिया। कुरान-सार' की अगली आवृत्ति में यह सूची छपेगी।

तीन वर्षों तक अध्ययन करके मैंने 'बाइबिल' का सार तैयार किया है। वह भी सर्वमान्य हुआ है। मैंने उस ईसाइयों के धर्मगुरु पोप की सेवा में उनकी सम्मति के लिए भेजा और उनकी उत्तम सम्मति के साथ मुझे उनका आशीर्वाद भी मिला।

सिखों का 'धर्म-ग्रन्थ', जिसका मैंने सम्पादन किया है, पंजाब के लोगों को अच्छा लगा है। और पंजाब-विश्वविद्यालय ने उस पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। उनकी राय है कि इससे अधिक अच्छा चुनाव हो नहीं सकता। यही बात 'धम्मपद' और 'गीता-प्रवचन' के बारे में भी कही जा सकती है।

हमने जो लिखा सो पचीस वर्षों तक अध्ययन करने के बाद लिखा, अपने को *उस-उस समाज का सदस्य मानकर लिखा अधिकारी पुरुषों की टीकाएँ प्राप्त करके* हमने उनका अध्ययन किया और उनमें आवश्यक सुधार करके उन्हें प्रकाशित किया।

इसलिए आप लोग बैठिए और इनमें से काम की चीज पसन्द कर लीजिए। अब आपको मूल धर्मग्रन्थों को उलटने-पलटने की जरूरत रही नहीं। मैंने अपने 'खिस्तधर्म-सार' में समूची बाइबिल का छठा हिस्सा ही लिया है।

मधुकरराव : इसके लिए कक्षावार क्रमिक योजना कैसी बनायी जाय ?

विनोबा : आप अपने विशेषज्ञों से कहिए कि वे इसका एक प्रारूप तैयार करें। प्रारूप के साथ उन्हें मेरे पास भेजिए। मुझे जरूरी लगा, तो मैं फेरफार सुझाऊँगा।

मधुकरराव : मैं अपनी पाठ्यक्रम-समिति को इसके लिए कहूँगा। आचार्य जोशी (मेहकर) ने इस दिशा में कुछ काम किया है।

जोशी (विनोबा को अपनी पुस्तक भेंट करते हुए बोले) : मैंने इसमें धर्मों का सार संचित किया है। इस काम में मुझे रामकृष्ण मिशन के प्रकाशनों से भी मदद मिली है। सबसे पहले शिक्षा-संस्थाओं के संचालकों के मन में इस प्रकार की शिक्षा के विषय में प्रेम भावना का निर्माण आवश्यक होगा। सन्तुलित विचार के *साथ सिखानेवाले अध्यापकों को प्रशिक्षण देकर तैयार करना होगा।*

विनोबा मैंने जिस समिति (श्रीप्रकाश) को बात कही थी, उसने इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये थे।

मधुकरराव श्री जगन्नाथराव भोसले ने उन सुझावों के अनुसार कक्षावार क्रमिक पाठ्यक्रम तैयार करने का प्रयत्न किया था। अपने मूल रूप में सब धर्मो का सार समान ही होता है। इसलिए प्रत्येक धर्म की विशेषता प्रकट करने का काम महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यह काम और किसीके बस का नहीं। इसे तो आप ही कीजिए।

विनोबा • मेरी पुस्तकें उन्हें दीजिए और उनसे कहिए कि वे क्रमिक पाठ्यक्रम तैयार करें। मैं उसे देख लूंगा और फिर जो निश्चित करूंगा, उसे आप मान्य कीजिए।

मधुकरराव मैं यही चाहता था। मुझे मनचाहा मिला।

आचार्य विनोबाजी, शांतिकुटी, पो० गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र)

शान्ति-सैनिकों के लिए आपत्तिकालीन मार्गदर्शक संहिता

नारायण देसाई

[शान्ति सैनिकों का काम दो प्रकार का माना गया है। आम दिनों मे वह लोगों से परिचय करेगा उनकी सेवा करेगा और शान्ति के विचार तथा दर्शन का प्रसार करेगा अशान्ति के दिनों मे अशान्ति शमन का प्रयास करेगा। अगर हर क्षत्र मे लोगों की निष्काम सेवा करनेवाले शान्ति सैनिक हों तब तो वे अशान्ति होने से पहले ही परिस्थिति को सम्भालने म समय हो सकते हैं, किन्तु अभी देश भर मे इस प्रकार शान्ति सैनिक फैले हुए नहीं हैं, अतएव आज की परिस्थिति मे आपत्तिकाल के समय उपयोग मे आने लायक कुछ हिदायतें नीचे दी जा रही हैं।—स०]

दगे से पूर्व

आमतौर पर यह पाया गया है कि किसी भी स्थान पर दगा होने से पूर्व वहाँ का वातावरण तनावपूर्ण हो जाता है। शान्ति-सैनिक दगे के स्फोट को टालने की भरसक कोशिश अवश्य करें। किन्तु यह काम अपनी शक्ति से बाहर का मालूम हो तो शान्ति-सैनिको को नीचे लिखी कार्रवाई करनी चाहिए

१—नगर के या उस स्थान के सभी शान्ति सैनिक इकट्ठा होकर परिस्थिति के बारे मे विचार विमर्श करें।

२—यह बैठक बुलाने का काम नगर-शान्ति-सेना के सयोजक करें। यदि सयोजक न चुने गये हो, अनुपस्थित हो या अन्य किसी कारण से सक्रिय न हो, तो नगर के किसी भी शान्ति-सैनिक को इस प्रकार की आपत्कालीन बैठक बुलाने का अधिकार है।

३—शान्ति-सैनिकों की यह बैठक अपने नगर के लिए काम की कोई तात्कालिक योजना बनाये, तथा नगर की परिस्थिति के बारे म तार या टेली-फोन से प्रादेशिक शान्ति-सेना के सयोजक को सूचना दे।

४—आवश्यक समझने पर प्रदेश के और स्थानो से शान्ति-सैनिकों की माँग भी प्रादेशिक शान्ति-सेना के सयोजक से की जा सकती है।

५—नगर मे यदि प्रतिष्ठित नागरिको को परिस्थिति के बारे मे अवगत कराया जा सकता है, तो वैसा तुरन्त किया जाय। यदि सम्भव हो तो प्रतिष्ठित

नागरिको के हस्ताक्षर से शान्ति के लिए अपील भी निकाली जाय और समाचार-पत्रो तथा आकाशवाणी से उसे प्रसारित करने की कोशिश की जाय।

६—यदि सम्भव हो तो सम्बन्धित पक्षो के अगुआ लोगो से मिला जाय।

७—परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए अखबार आदि की कतरनें, पत्रिकाएँ आदि संग्रहीत करने की व्यवस्था की जाय, ताकि आगे चलकर निष्पक्ष रिपोर्ट तैयार करने मे उससे सहायता हो।

दगा होते ही

दगे की घटनाओ की सूचना मिलते ही शान्ति सैनिको को नीचे लिखी कारवाइ करनी चाहिए

१ — घटना स्थल पर शान्ति सैनिक पहुँच जायें।

२ — खुद देखी हुई घटना का सक्षिप्त निष्पक्ष विवरण अन्य शान्ति सनिको को दें।

३—सब शान्ति सनिक मिलकर आग की कार्रवाई के बारे मे तुरन्त योजना बनायें।

४ प्रादेशिक शान्ति-सेना समिति के सयोजक को परिस्थिति स अवगत करायें अपनी योजना की जानकारी दें और आवश्यक हो तो और शान्ति सनिको की माग उनसे करें।

५ — दगे के बाद काम करने मे निम्न बातो का ध्यान रखा जाय

अ—अफवाह् बढान मे कोई शान्ति सैनिक गलती से स्वय हिस्सदार न बन जाय। लोगो से सम्पक करके अफवाहो को रोकने का प्रयत्न करे।

आ—अफवाहो को रोकने के लिए पर्चा आदि निकालना आवश्यक लग, तो निकाला जाय।

इ—जिन पक्षो के बीच विवाद हो उनके नेताओसे तुरन्त मिलनेकी योजना बनायी जाय। इस काम के लिए ऐसे शान्ति सनिक जायें, जो अपनी सेवाओ के लिए नगर मे सुपरिचित हो, जो तटस्थता से तथा बुद्धिपूवक चर्चा कर सकें, और जो परिस्थिति को देखकर आवश्यक हो तो कुछ नये निर्णय भी ले सकें।

ई स्फोटक स्थानो पर शान्ति सनिको को भेजा जाय। यदि हिंसा फूट पडे तो जान का खतरा उठाकर भी ये शान्ति-सनिक बीच-बचाव करें। ऐस स्थानो पर उन्ही शान्ति सैनिको को जाना चाहिए, जो इस प्रकार का साहस दिखाने को तयार हो। इन स्थानो पर आमतौर पर शान्ति सनिको को अकेले नही भेजना चाहिए।

उ—परिस्थिति अनुकूल हो तो शान्ति-जुलूस निकाला जाय, जिसमे शान्ति-सेवकों के अलावा नगर के कुछ और नागरिक भी शामिल हो सकते हैं।

दंगे के बाद तुरन्त

१—शान्ति-सैनिक घायलो को अस्पताल मे पहुँचायें और उन्हे देखने के लिए जायं। घायलों के परिवारो से भी भेंट करें।

२—राहत के तात्कालिक कार्यक्रम मे शान्ति-सेना शामिल हो। शान्ति-सैनिकों की निष्पक्षता उन्हे यह काम करने मे अधिक सक्षम बनायेगी।

३—जिस मसले को लेकर दगा हुआ हो, उसके बारे मे यदि सर्वोदय का कोई सुनिश्चित दृष्टिकोण बन सका हो, तो उसका प्रसार किया जाय। वैसा न हो तो *विवादास्पद विषय के बारे म चुप रहना ही ठीक होगा।* शान्ति-सैनिक अपनी बातो मे इसी बात पर जोर दे, कि समस्या का समाधान हिंसा से नही, शान्तिमय तरीको से होना चाहिए।

४—*अपने कर्तव्य को पूरा करते समय लोगो से बातचीत और चर्चा करना* उपयोगी भी हो सकता है और नही भी हो सकता। इसमे मुख्य आधार शान्ति-सैनिको की बातचीत करने के तरीके पर रहेगा।

शान्ति-सैनिक बातचीत करने मे किसी हालत मे विनय-विवेक न छोड़ें। उसकी बातचीत म शिथिलता, अनिश्चय या डर भी नहीं झलकना चाहिए। अगर इस प्रकार का अदेशा हो तो शान्ति-सैनिको के लिए चर्चा मे उलझने की अपेक्षा चुपचाप काम करना ही अच्छा होगा।

५—नगर के शान्ति-सैनिक रोज कम-से-कम एक बार मिलें। काम तथा परिस्थिति के बारे मे चर्चा करें तथा आगे के काम की व्यूह-रचना करें।

६—शहर मे काम करनेवाले शान्ति-सैनिक *इस प्रसग के लिए अपना* नायक चुन लें। तात्कालिक मामलो मे उसी नायक के आदेश माने जायं। यदि उससे मतभेद हो तो उसकी चर्चा बाद मे शान्ति-सैनिको के मिलन के समय की जाय। सार्वजनिक स्थलो पर, और कार्यक्रमो मे, मतभेद की चर्चा न की जाय।

७—यदि आवश्यक हो तो पुलिस, फायर ब्रिगेड आदि को दगे की घटनाओ के बारे मे *जानकारी दी जाय।*

पुलिस, कर्फ्यू आदि

दगे की परिस्थिति मे शान्ति-सैनिको को पुलिस, सेना आदि के सपर्क मे आना पड़ेगा। *उसके साथ व्यवहार करते समय नीचे लिखी बातो पर ध्यान* दिया जाय :

१—पुलिस के मुख्य अधिकारी से सभी शान्ति सैनिक बातचीत करने की कोशिश न करें। केवल नगर शान्ति-सेना के नायक या उनके नुमाइंदे को ही मुख्य पुलिस अधिकारी से बातचीत हो। पुलिस या अधिकारियों से बातचीत करना भी आम तौर पर शान्ति-सनिकों को टालना चाहिए। लेकिन बातचीत का प्रसग आये तो विनयपूर्वक ही बातचीत करें।

२—कर्फ्यू पास के लिए अ० भा० शान्ति सेना मण्डल के अध्यक्ष केन्द्रीय गृह विभाग से संपर्क कर रहे हैं। किन्तु यदि सम्भव हो तो स्थानीय अधिकारियों से मिलकर भी कर्फ्यू-पास की व्यवस्था प्रादेशिक शान्ति-सेना सयोजक को कर लेनी चाहिए। शान्ति सैनिको की ओर से कर्फ्यू पास के लिए अलग अलग माग नहीं जानी चाहिए।

३—शान्ति सनिक दंगके समय काम करते समय अवश्य अपने गणवेशमें रहे।

४—दंगे के समय गणवेश के अलावा अलग से परिचय पत्र (आइडेंटीटी कार्ड) भी देना अच्छा होगा। इस आइडेंटीटी कार्ड पर प्रादेशिक शान्ति-सेना समिति के सयोजक का हस्ताक्षर हो।

५—नगर शान्ति-सेना समिति के पास नगर का एक मानचित्र अवश्य होना चाहिए। दंगे के समय बननेवाली व्यूह रचना शान्ति सैनिको को मानचित्र समेत समझा देनी चाहिए। इससे शान्ति सैनिको को नगर की समूची परिस्थिति का खयाल रहेगा और सबको समझ मे यह बात भी आयेगी कि कितनी शक्ति कहां लगनी चाहिए।

बाहर से आनेवाले शान्ति-सैनिक

१—आमतौर पर किसी स्थान पर बाहर से शान्ति सैनिक बुलाने का आह्वान प्रादेशिक शान्ति-सेना समिति के सयोजक करेंगे। आह्वान करते समय व यह भी सूचित करेंगे कि बाहर से आनेवाले शान्ति सैनिको को दंगा ग्रस्त स्थान पर प्रथम किससे सम्पर्क करना है।

२—बाहर से आनेवाले शान्ति सैनिको को दंगा ग्रस्त स्थान की शान्ति सेना समिति के स्थान का पता मालूम होना चाहिए। अपनी इच्छा से कोई काम शुरू करने की अपेक्षा स्थानीय समिति से मिलकर ही काम करना चाहिए।

३—बाहर से आनेवाले शान्ति सनिक स्थानीय शान्ति सेना के अनुशासन के मातहत काम करेंगे और स्थानीय नायक का आदेश मानेंगे।

४—जहां स्थानीय शान्ति सेना समिति होने की कोई सूचना बाहर से आनेवाले शान्ति सनिकों को न हो, वहाँ उन्हे स्थानीय सर्वोदय मण्डल सर्वोदय कार्यकर्ता गाधी शान्ति प्रतिष्ठान या खादी भण्डार के कार्यकर्ताओं से सम्पर्क करना चाहिए।

५—बिलकुल अपरिचित स्थान में बिना आह्वान के किसी शान्ति-सैनिक को दंगे के समय शान्ति-कार्य करने के इरादे से नहीं चले जाना चाहिए।

अनुपस्थित शांति-सैनिक

१—दंगे के समय यदि किसी नगर में शान्ति-सेना काम कर रही हो तो उस नगर के किसी शान्ति-सैनिक या शान्ति-सेवक को उसमें अनुपस्थित नहीं रहना चाहिए।

२—यदि किसी अनिवार्य कारण से कोई शान्ति सैनिक या शान्ति सेवक उपस्थित न रह पाया तो उसे अपनी अनुपस्थिति का कारण लिखकर अपने यहाँ के संयोजक को सूचित कर देना चाहिए।

३—दंगे के समय यदि कोई शान्ति सैनिक अपने स्थान से बाहर हो तो वह यथाशीघ्र वहाँ पहुँच जाय।

समय की पाबन्दी

दंगे के समय जहाँ शान्ति-सेना काम कर रही हो वहाँ यह नहीं होना चाहिए कि हर शान्ति सैनिक अपना अपना व्यक्तिगत कार्यक्रम बना ले या अपने मनचाहे समय पर आकर काम करे। दिन का कार्यक्रम सारे शान्ति-सैनिकों की सभा में तय हो जाना चाहिए और यह भी तय हो जाना चाहिए कि कौन शान्ति सैनिक किस समय कर्तव्य (ड्यूटी) पर उपस्थित रहेगा। इस मामले में किसी सैनिक को अनियमितता नहीं बरतनी चाहिए।

शांति सेना कार्यालय

अ० भा० शान्ति-सेना मण्डल का प्रधान कार्यालय राजघाट वाराणसी–१ में है। प्राय हर प्रदेश में प्रादेशिक शान्ति सेना-समिति का कार्यालय है। दंगे के बाद यदि काम लम्बे अर्से तक चलनेवाला हो तो उस स्थान पर भी स्थानीय कार्यालय शुरू कर देना ठीक होगा।

इस कार्यालय में दफ्तरी कार्यवाही के लिए आवश्यक सामग्री के अलावा निम्नलिखित चीजें होनी चाहिए

१—जहाँ दंगा हुआ हो उस क्षेत्र का मानचित्र

२—नगर के सारे शान्ति-सैनिक शांति सेवकों के नाम पते और उनका तार का पता और टेलीफोन नम्बर,

३—कौन शांति-सैनिक किस कर्तव्य पर तैनात है इसकी जानकारी

४—अनुपस्थित शान्ति-सैनिकों की अनुपस्थिति के कारण

५—यदि राहत के काम हो रहे हों तो उसकी जानकारी।

श्री नारायण देसाई मंत्री, अ०भा० शान्ति-सेना मण्डल राजघाट वाराणसी १

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : ९
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

अप्रैल, '७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

गाँव की आवाज

ग्रामस्वराज्य का सन्देशवाहक पाक्षिक

- आज देश के पाँच लाख गाँव अपनी कलह के कारण टूट रहे हैं
- बाहरी शोषण और दमन के कारण उजड़ रहे हैं,
- मौजूदा अर्थनीति और राजनीति में गाँव की रक्षा का कोई उपाय नहीं दिखाई देता,
- इसलिए गाँव में बसनेवाले ग्रामवासियों को एक होकर नया गाँव बनाना होगा, अपनी समस्याएँ गाँव की मिली जुली ताकत से हल करनी होगी, आज की समाज-व्यवस्था को बदलना होगा।

इसीलिए तो ग्रामदान किया है!

लेकिन ग्रामदान के बाद क्या ???

- 'गाँव की आवाज' इस सवाल का हल करने में मदद देगी।
- व्यग्य चित्रों, रेखा-चित्रों, छाया-चित्रों में
- ग्रामीणों की बातचीत कथा-कहानी, लोक-गीतों में।
- सरल, सुबोध भाषा-शैली में,

'गाँव की आवाज'

१५ दिन में एक बार प्रकाशित होती है।

वार्षिक चन्दा : चार रुपये] [एक प्रति : २० पैसे

पत्रिका-विभाग, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१ (उ० प्र०)

नयी तालीम : अप्रैल '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य

गाधी जन्म-शताब्दी के सुअवसर पर २ अक्तूबर से गाधीजी की वाणी घर घर पहुँचे, इस दृष्टि से गाधीजी की अमर जोवनी, कार्य तथा विचारो से सम्बन्धित लगभग १५०० पृष्ठो का अत्यन्त उपयोगी और चुना हुआ साहित्य-सेट केवल रु० ७ ०० में दिया जा रहा है और लगभग १००० पृष्ठो का साहित्य रु० ५ ०० में।

प्रत्येक संस्था तथा व्यक्ति को इस अल्पमोली और बहुगुणी साहित्य-सेट के प्रचार प्रसार में सहायक होना चाहिए, ऐसी आशा और अपेक्षा है।

पृष्ठ १५००, रु० ७-००

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१–आत्मकथा १८६९–१९१९	गांधीजी	१.००
२–बापू-कथा १९२०–१९४८	हरिभाऊ उपाध्याय	२.५०
३–तीसरी शक्ति १९४८–१९६९	विनोबा	२.५०
४–गीता बोध व मंगल-प्रभात	गांधीजी	१.००
५–मेरे सपनों का भारत संक्षिप्त	गांधीजी	१.५०
६–गीता प्रवचन	विनोबा	२.००
७–संघ प्रकाशन की एक पुस्तक		१ ००
		११ ५०

यह पूरा साहित्य-सेट केवल रु० ७ ०० मे प्राप्त होगा। २८ सेट का एक बण्डल एक साथ लेने पर फ्री डिलीवरी मिलेगा। अन्य कोई कमीशन नही दिया जा सकेगा।

ऊपर की प्रथम पांच किताबो का पृष्ठ १००० का साहित्य-सेट केवल रु० ५ ०० मे प्राप्त होगा। ४० सेट का एक बण्डल लेने पर फ्री डिलीवरी दिया जायगा। अन्य कोई कमीशन नही दिया जा सकेगा।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी १

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमंदिर वाराणसी

वर्ष १८
अंक १०

- विद्यालय-संकुल
- बुनियादी तालीम के सामाजिक मूल्य
- गांधी-दर्शन और शिक्षा
- स्वदेशी शिक्षा
- स्वभाषा का सवाल

मई, १९७०

नई तालीम

पब्लिक स्कूलों को बन्द करना चाहिए

२२ अप्रैल, १९७० को केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डाक्टर राव ने लोकसभा में घोषणा की कि ग्रामीण क्षेत्रों के चुने हुए विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर जिले के सबसे अच्छे माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा लेने के लिए भेजा जायगा। जिले के सबसे अच्छे स्कूल नगरों के पब्लिक स्कूल ही हैं और जिन नगरों में पब्लिक स्कूल नहीं है, वहाँ अंग्रेजी माध्यम से चलनेवाले कान्वेन्टस और ऐंग्लोइंडियन स्कूल हैं, जो पब्लिक स्कूल के ही दूसरे संस्करण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रामीण मेधावी छात्र देहात के प्रारम्भिक स्कूलों से निकलकर नगर के पब्लिक स्कूलों में पढ़ेंगे। इसलिए साथ-साथ ही डाक्टर राव ने विधायकों को यह सूचना भी दे दी कि 'सरकार पब्लिक स्कूलों को समाप्त नहीं करेगी क्योंकि वे अच्छी शिक्षा दे रहे हैं।' तुरत द्रमुक के एक विधायक ने कहा कि शिक्षा राज्य का विषय है, अत शिक्षा मन्त्री कौन हैं यह कहनेवाले कि पब्लिक स्कूल समाप्त किये जायेंगे अथवा नहीं। और ठीक है कि डाक्टर राव ने पब्लिक स्कूलों को समाप्त करने की जो बात कह दी है वह आधिकारिक नहीं है और उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था।

वर्ष : १८
अंक : १०

एक और वजह है जिससे उन्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए था। वह उस राष्ट्र के मन्त्री हैं जो देश में समाजवाद की स्थापना के लिए व्रतसंकल्प है। १० हजार ग्रामीण विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति देकर इन पब्लिक स्कूलों में भेजने का

अर्थ है–(१) पब्लिक स्कूलो को कायम रखकर शिक्षा के क्षेत्र में असमानता को प्रश्रय और बढ़ावा देना और (२) कोठारी-कमीशन ने देश की शिक्षा-पद्धति में समाजवादी मूल्यों को दाखिल करने के लिए जो लोकतांत्रिक प्रगतिशील सुझाव दिये हैं, उन्हें अस्वीकार करना।

(१) पब्लिक स्कूलो को बनाये रखने का अर्थ है विशिष्ट साधन-सम्पन्न वर्ग के बच्चों के लिए शिक्षा की प्रणाली को चलाते रहना। समाजवादी देश मे यह नही होना चाहिए, क्योकि जब तक सभी को एक समान शिक्षा नही मिलेगी, जीवन में भी असमानताएँ बनी रहेंगी। इसलिए किसी भी कारण से हो (चाहे वह अच्छी शिक्षा के नाम पर ही क्यो न हो) ऐसा कदम उठाना, जिससे इन पब्लिक या विशिष्ट माध्यमिक स्कूलो की स्थिति दृढ़तर हो और जनता की आँखो मे उनकी इज्जत बढे, असमाजवादी कदम होगा। डाक्टर राव की यह घोषणा कि पब्लिक स्कूल समाप्त नही किये जायेंगे बल्कि उनमे पढ़ने के लिए देश के ग्रामीण मेधावी छात्रो को भी छात्रवृत्ति देकर भेजा जायगा, ऐसा ही 'असमाजवादी' कदम है और इसका विरोध होना चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि जब तक देश मे साधन-सम्पन्न ये विशिष्ट स्कूल बने रहेंगे और राज्य का प्रश्रय पाते रहेगे तब तक साधनहीन स्कूलो की समस्या वैसे ही नही हल होगी जैसे हजार-हजार एकड़वाले जमींदार के रहते भूमिहीन किसानों की समस्या। शिक्षा के क्षेत्र में ये पब्लिक स्कूल देश की पूंजीवादी-सामन्तवादी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं और 'स्टेटसको' के गढ हैं। इन्हे बनाये रखने का कोई प्रयास उस सरकार की ओर से नही होना चाहिए, जो देश मे समाजवाद लाने की बात कहती है।

पब्लिक स्कूलो और विशिष्ट स्कूलों की यह समस्या (इनमे ब्रिटेन के लगभग ८ प्रतिशत बच्चे पढते हे) ब्रिटेन के सामने भी है और वहाँ की मजदूर-सरकार ने इस समस्या को हल करने और शिक्षा में समाजवादी तत्त्व दाखिल करने के लिए दो कदम उठाये हैं :

एक तो, प्रो० डो० वी० डानिसन की अध्यक्षता मे नियुक्त पब्लिक स्कूल कमीशन के सुझावो को मानकर पब्लिक स्कूलो और

ग्रामर स्कूलो (ब्रिटेन मे ऐसे २०० स्कूल हैं) को प्रत्यक्ष अनुदान देना बन्द कर उन्हे 'काम्प्रिहेन्सिव' स्कूलो मे परिवर्तित कर देने का और दो प्रारम्भिक स्तर के बाद म ११ मे ग्रामर स्कूलो मे प्रवेश पाने के लिए जो चुनाव परीक्षाएँ होती थीं उन्हें समाप्त कर देने का, जिससे बच्चे काम्प्रिहेन्सिव' स्कूलो मे बिना किसी प्रकार के चुनाव के प्रवेश पा सक और विश्वविद्यालयो मे पढने का समान अवसर प्राप्त कर सक। जो ग्रामर स्कूल सरकार से अनुदान नही लेना चाह वे फीस और चन्दे के बल अपने स्कूलों को पूर्ववत् चला सकते हैं, परन्तु सरकार इन चन्दो को भी इनकम टैक्स से मुक्त नही करेगी।

अत शिक्षा मे समाजवादी मूल्यों को दाखिल करने के लिए जो काम ब्रिटेन की मजदूर सरकार कर रही है उतना तो इस देश की सरकार कर ही सकती है। स्कूल खोलने और चलाने की सवैधानिक स्वतत्रता सबको है और रहे, परन्तु सरकार तो इन विशिष्ट स्कूलो को चलाने म कोई मदद न करे। और सरकार, चाहे व्यवस्था के स्तर पर नोकरशाही हो चाहे, वैधानिक स्तर पर लोकसभा और विधान सभा, अगर इन पब्लिक स्कूलो को चलाने का मोह नही छोडेगी तो नक्सालवादी जैसा कोई उग्र आदोलन उसका मोह भग करेगा, ऐसी कल्पना आज दूरगामी कल्पना नही मालूम पडती।

देश मे शिक्षा की विषमता को दूर करने के लिए कोठारी-कमीशन ने दो सुझाव दिये हैं (१) एक स्तर के सभी स्कूलो के लिए समान पाठ्यक्रम लागू करना और (२) पडोसी स्कूलो की स्थापना।

एक बार आचार्य विनोबा ने कहा था कि मुझे पब्लिक स्कूलो से बिलकुल एतराज नही है बशर्ते कि वे खेती बागवानी की शिक्षा दें। यह पब्लिक स्कूलो मे बेसिक स्कूलो के समान पाठ्यक्रम दाखिल करने की ही बात थी। कोठारी कमीशन न प्रारम्भिक और माध्य-मिक, दोनो स्तरो के लिए पाठ्यक्रम बन ये हैं। उनसे पडोसी स्कूलो की स्थापना का भी सुझाव दिया है जिसका अर्थ है–एक ही पडोस के सभी विद्यार्थी एक स्कूल मे एकसाथ पढ। ये दोनो बातें चलेंगी तो पब्लिक स्कूल नही चलेंगे कम से कम उस रूप मे नही चलगे, जिस रूप मे आज चल रहे हैं और जिम रूप म डाक्टर राव उन्हें चलते देखना चाहते हैं। अत डा० राव की इस घोषणा से कि पब्लिक

स्कूल खत्म नही होंगे और उल्टे उनमे राष्ट्र से छात्रवृत्ति पाकर १० हजार छात्र प्रतिवर्ष प्रवेश लेंगे, कोठारी कमीशन के इन दोनो समाजवादी सुझावो पर कुठाराघात हुआ है और शिक्षा मे समानता लाने की बात योजनापूर्वक टाल दी गयी है। और डा० राव जब एक ओर शिक्षा मे गाधीवादी मूल्यो को दाखिल करने की बात कहते हैं और दूसरी ओर पब्लिक स्कूलो को खत्म न करने की घोषणा करते हैं, तो उनकी बात समझ मे नही आती। शिक्षा के गाधीवादी तत्त्व स्टेटस्को' के विरोधी तत्त्व है, उस 'स्टेटस्को' के जिसे बनाये रखने के सबसे दृढ गढ पब्लिक स्कूल है। शिक्षा मे यदि गाधीवादी मूल्यो को अथवा समाजवादी मूल्यो को दाखिल करना है तो पब्लिक स्कूलो का मोह छोडना पडेगा और साथ ही उस शिक्षा-प्रणाली का मोह भी छोडना पडेगा, जिसे डा० राव ने 'अच्छी शिक्षा' कहा है।

'अच्छी शिक्षा' क्या है यह तो शिक्षा की परिभाषा पर निर्भर है। क्या उस शिक्षा को आप 'अच्छी' कहेंगे जो देश मे एक ऐसा वर्ग तैयार करती है जो अपने सर्वसाधारण पडोसी की भाँति बोल-चाल नही सकता, उठ बैठ नही सकता, खा पी नही सकता, जो अपने परिवेश मे अपना समजन नही कर सकता और जो अपनी राष्ट्र की संस्कृति से सर्वथा विमुख हो जाता है। देश की सर्वसाधारण जनता से बिलकुल अलग एक अजनबी जाति बनानेवाली शिक्षा को क्या आप अच्छी शिक्षा कहेंगे—आप, जो अपने को एक समाजवादी देश का नागरिक कहते है?

अच्छी शिक्षा की सर्वमान्य परिभाषा है—स्वावलम्बी, समन्वित व्यक्तित्व विकसित करनेवाली शिक्षा। क्या पब्लिक स्कूल इस तरह के व्यक्तित्व का विकास कर पाते हैं? क्या भारत के इन स्कूलो मे एकागी बौद्धिक विकास मात्र शिक्षा का लक्ष्य नही है? क्या इन स्कूलो मे समुदायनिष्ठ समाज-सेवी व्यक्तित्व के स्थान पर परावलम्बी, परमुखापेक्षी शोषक व्यक्तित्व का विकास नही होता? तो फिर आप कैसे कहते है कि पब्लिक स्कूल 'अच्छी' शिक्षा देते है। सच्ची बात तो यह है कि राष्ट्र मे लोकतत्र और समाजवाद स्थापित करने के मार्ग की सबसे बडी बाधा ये स्कूल हैं और इन्हे शीघ्र बन्द कर देना चाहिए।

— वशीधर श्रीवास्तव

शिक्षा और पब्लिक स्कूल

के० एस० आचारलू

देशभर के विभिन्न पद्धति के विद्यालयों के वास्तविक अध्ययन करने के पश्चात् कोठारी शिक्षा-आयोग ने देखा कि शिक्षा के क्षेत्र में अलगाव है। एक ओर है मुट्ठी भर उत्तम वर्ग के लोगों की आवश्यकता की पूर्ति करनेवाला सामान्य विद्यालयों से अच्छा पब्लिक स्कूल जो 'प्राइवेट' लोगों से संचालित होता है और बच्चों से फीस लेता है और दूसरी ओर 'पब्लिक' द्वारा चलाये जानेवाले आम जनता की आवश्यकता की पूर्ति करनेवाले ये सारे गरीब स्कूल जिनमें बच्चों से पैसे नहीं लिये जाते हैं। यह खेद की बात है कि यह अलगाव बढ़ रहा है और इससे उत्तम वर्ग और आम जनता के बीच भेद बढ़ रहा है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से चाहे कोई किसी स्थान पर क्यों न हो, हर बच्चे के लिए उत्तम शिक्षण देने के बजाय 'हमने यह शिक्षण उनको प्राप्त कराया जिनके पास पैसे देने की क्षमता है। यह लोकतंत्र विरोधी है और हमारे सामाजिक एकता के ध्येय के प्रतिकूल है।

इसकी बुराइयाँ दूर करने के लिए शिक्षा आयोग ने 'पड़ोसी स्कूल को आखिरी मंजिल मानने को सुझाया है। इस पड़ोसी स्कूल में बिना जाति, धर्म, सामाजिक स्थिति के भेदभाव के पड़ोस के सभी बच्चे पढ़ सकेंगे। यह सुझाव सिर्फ इसलिए नहीं दिया गया कि यह बेहतर शिक्षण—जिसका प्रबन्ध उत्तम वर्ग के लोग अपने बच्चों के लिए स्वभावतः ही करेंगे—सभी बच्चों को प्राप्त होगा, बल्कि इसलिए कि इससे सामाजिक एकता का हमारा ध्येय सधेगा।

हमें लगता है कि आयोग ने इन विशेष सुविधाप्राप्त स्कूलों के बारे में जो चर्चा की है वह न गलत है और न अन्यायपूर्ण है। पब्लिक स्कूल-पद्धति अंग्रेजों की गुलामी की विरासत में मिली हुई एक पद्धति है। इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजों का चले जाना हमारे लिए एक राजनैतिक सफलता है लेकिन विद्या और संस्कृति के क्षेत्र में इस गुलामी का कब्जा पहले से अब कई गुना अधिक है। पब्लिक स्कूल और इस प्रकार की अभिजात्यपूर्ण (एरीस्टोक्रेटिक) संस्थाएँ भारतवर्ष की एक कुत्सित प्रतिवृद्धि हैं और इसको दूर करना आवश्यक है। इनसे एक ऐसी चित्त-वृत्ति का निर्माण होता है, जिससे आर्थिक और सामाजिक अन्तर को बढ़ावा मिलता है और ये हमारे समाजवादी लोकतांत्रिक विचारधारा की जड़ में कुठाराघात करते हैं। इसलिए पड़ोसी स्कूल का प्रस्ताव सही दिशा

में एक कदम है और बिना किसी मानसिक द्वन्द्व के शीघ्रातिशीघ्र इसको कार्यान्वित करना चाहिए। साथ ही साथ इसकी योग्यता बढ़ाने के लिए सब प्रकार की कोशिशें करनी चाहिए।

यह बताया जाता है कि पब्लिक स्कूलों में योग्यतापूर्ण शिक्षा दी जाती है और यहां की शिक्षा का स्तर सर्वोच्च है। लेकिन यह शिक्षा के अर्थ पर निर्भर करता है। हम शिक्षा का अर्थ क्या लगाते हैं? हो सकता है कि पब्लिक स्कूलों के बच्चों को उच्चस्तरीय बौद्धिक प्रतिभा मिल सकती है एक सुनियोजित परम्परा में व दीक्षित हो सकते हैं और यह सही है कि वे एक सर्वाङ्गपूर्ण तथा स्वास्थ्यपूर्ण वातावरण में परिपुष्ट किये जाते हैं। यह भी सही है कि इन बच्चों में कुछ नागरिक व्यवहार, कुछ अभ्यास संस्कार और कला-कौशल का विकास होता है। लेकिन यह सर्वविदित है कि पब्लिक स्कूल के बच्चे देश की प्राचीन धार्मिक तथा सांस्कृतिक परंपरा से अलग हो जाते हैं और व्यक्तिगत जीवन में अन्तरात्मा के विकास के बारे में उनका ध्यान आकर्षित नहीं हो पाता है। इससे एक तरह का अलगाव समाज में फैल रहा है--संपत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा और पद गौरव की अतिशयता से घनीभूत दंभ और आत्माभिमान से उत्पन्न यह एक नैतिक अलगाव है और इसके फलस्वरूप समाज में एक नया वर्ग बन गया है।

व्यक्ति को पूर्ण कैसे बनाया जाय यही शिक्षा की समस्या है। इससे एक ऐसे तंत्र का निर्माण होना चाहिए जिसमें सुरक्षित तथा ऐक्यबद्ध विश्व का निर्माण हो सके। मानव-समाज तभी स्वास्थ्यपूर्ण बन सकता है जब इसको मानव की अनिवार्य एकता की आवश्यकता महसूस होती है। जो भी संस्था मनुष्य के इस पुरुषार्थ के बाहर रह जाती है वह व्यक्तियों को विभाजित करती है और इसलिए वह आत्मभर्त्सना के योग्य होती है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय समन्वय तभी हो सकता है जब कि हर प्रकार के कार्य तथा विचार एकता तथा समन्वय में सहायक होते हैं।

वस्तुस्थिति को सामने रखकर सोचा जाय तो हम देखेंगे कि पब्लिक स्कूलों में सिखाया जानेवाला सामाजिक विचार इस तत्त्व पर आधारित है कि समाज में दो वर्ग हैं—एक शोषक और दूसरा शोषित, जब कि शिक्षण प्रक्रिया में व्यक्ति को एक ऐसी प्रक्रिया से प्रशिक्षित करना चाहते हैं जिसके फलस्वरूप वह समाज में वापस जाय तो अपने जीवन को आदर्श बनाकर समाज को ऊँचा उठाये। आज पब्लिक स्कूलों का शिक्षित वर्ग अपने समाज में अपने लोगों के बीच ही अपरिचित बन गया है। वह सामान्य लोगों के नहीं है, उनके जैसे रहना और

सोचना नही जानता और उनके हितो के साथ अपने को मिलाकर नही चल सकता।

शिक्षा केवल योग्यता के लिए ही नही, एकता के लिए भी होनी चाहिए। मान लिया कि पब्लिक स्कूल विद्यार्थियों को बौद्धिक श्रेष्ठता के लिए प्रशिक्षित करता है, जो व परीक्षाओ मे सफलतापूवक दिखाते है। लेकिन शिक्षा का सही अर्थ केवल बौद्धिक श्रेष्ठता ही नही है। दुनिया मे आज रटाई की कसरत दिखाकर बौद्धिकता से उबानेवाले ऐसे बहुत लोग हैं और उनकी कोई आवश्यकता नही है। लेकिन आवश्यकता है ऐसे लोगो की जिनके जीवन मे समन्वय आया है। शिक्षा के क्षेत्र मे सबसे जटिल प्रश्न जो है वह है पब्लिक स्कूलो से निकले हुए शिक्षित लोग समाज मे कौनसा आदर्शवाद उपस्थित करते हैं, या अब तक उन्होने क्या उपस्थित किया है ? शिक्षा की उत्तम पद्धति वही हो सकती है, जिसमे उत्तीर्ण होकर स्नातको को शासन मे सैनिक सस्थाओ और दूतावासो की सम्यतापूर्ण नौकरियो के पीछे दौडना न पडे, बल्कि वे अपने पैरो पर खडे हो सकते हैं। शिक्षा की असली पहचान यह है कि डिग्री और डिप्लोमा के बिना ही शिक्षित लोग जीवन मे प्रवश पा सकें।

राष्ट्र को दो विरोधी शिक्षण पद्धतियो को एक अमीरो के लिए और दूसरी गरीबो के लिए अनुमति देना समाजवादी लोकतत्र के विश्वासघात के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता है। यदि हम एक महत्तर विश्व का निर्माण करना चाहते हैं तो यह काम महत्तर व्यक्तियो के निर्माण से ही सफल हो सकता है। अगर हम सोचते हैं कि परिस्थितियो को तोडमोड करके व्यसनपूर्ण भौतिक सुविधाओ को प्राप्त कराकर महान व्यक्तियो का निर्माण कर सकते हैं तो हम अपने को धोखा देंगे। पब्लिक स्कूलों में इसकी अप्रासगिकता को छोडकर और कोई बडी चीज नही है।

कुछ शिक्षण शास्त्रियो का विचार है कि चूकि पब्लिक स्कूल योग्यतापूण शिक्षा प्रदान करते है अत इसको बुरा नही मानना चाहिए। अगर यह बनाये रखना है तो पब्लिक स्कूलो को सादगी के जीवन और महत चिन्तन के आदश पर चलाना होगा, समाज के सभी वर्गो के बच्चो के लिए उन्मुक्त होना पडेगा और किसीसे शुल्क नहीं लेना होगा। पब्लिक स्कूलो के अध्यापको और विद्यार्थियों को एक समूह म मिलकर अपने जीवन को आश्रम पद्धति की तरह स्वावलम्बी बनाना होगा। (मूल अंग्रेजी से) —अनु॰ शशिकान्त मिश्र

श्री के॰ एस आचारलू मत्री नयी तालीम समिति, न॰ ०, टॅपल रोड, बगलोर–३

इतिहास और संस्कृति की शिक्षा

विनोबा

[गत ३ दिसम्बर १९६९ को वर्धा मे महाराष्ट्र शासन के शिक्षामंत्री श्री मधुकरराव चौधरी ने श्री विनोबाजी से शिक्षा संस्थाओं मे नीति, धर्म और संस्कृति की शिक्षा के स्वरूप के सम्बंध मे जो चर्चा की, उसका कुछ अंश पिछले अंक मे दिया जा चुका है। शेष यहाँ देखिए। —स०]

मधुकरराव हमने इतिहास सम्बन्धी दृष्टिकोण बदला है। राजाओं की कहानी कहने के बदले तीसरी कक्षा से श्रेष्ठ महापुरुषों और राजाओं का इतिहास सिखाने की व्यवस्था की है। इसे हम इतिहास कहने के बदले सामाजिक जीवन का अध्ययन कहते हैं।

ऊपर कहे गये तरीके से इतिहास लिखने पर उसमे क्रमिकता नही आती और आलोचना होने लगती है। इसके सम्बन्ध मे आपकी सलाह चाहिए।

विनोबा ठीक है।

आपको एक मनोरंजक बात कहनी है। आपके ज्ञान जगत् म कुछ जोडने की दृष्टि से मैं इसकी चर्चा कर रहा हूँ। मराठों ने भारत मे साम्राज्य की स्थापना की यानी क्या किया ? उन्होंने झण्डा रोपा, पैसा बटोरा, लेकिन वे राज्य की व्यवस्था जमा नही सके। उडीसा मे मैंने उडिया भाषा का व्याकरण सीखा। उसमे मराठा-सरदारों द्वारा उडिया भाषा मे 'प्रचलित की गयी कहावतें' शीर्षक से एक स्वतंत्र परिच्छेद ही दिया गया है। उसमे एक कहावत है " रस मिले आदा प्रजा चेचले।" जिस तरह अदरक को कुचलने से रस मिलता है, उसी तरह प्रजा को कुचलने से रस प्राप्त होता है। उडीसा के व्याकरण मे आपके नाम पर यह बात सिखायी जाती है। आपकी कीर्ति इस तरह फैली है। वहाँवालों को ज्ञानदेव और तुकाराम का पता नहीं है। लेकिन बंगाल और उडीसा मे ताराबाई के पाठ पढाये जाते हैं। मैंने उनसे कहा कि ताराबाई तारक नहीं थी, फिर भी इतिहास के नाम पर उसके लिए दस-बारह पृष्ठ दिये गये हैं और ज्ञानदेव-तुकाराम को परिशिष्ट मे डाला है। हमारे इतिहास लेखन की ऐसी यह कहानी है।

मधुकरराव दूसरा एक और प्रश्न शिक्षा के क्षेत्र मे खडा होता है। जिन्हें हम भारतीय मूल्य कहते हैं उनमे कुछ विकृति उत्पन्न हुई है। आजकल विज्ञान बढा है। ऐसी स्थिति म विज्ञाननिष्ठ नैतिक मूल्यों का चिन्तन आवश्यक है। अनन्त काल तक चलनेवाले समाज की संस्कृति क्या हो सकती है ?

विनोबा प्रत्येक समाज म तीन बातें होती हैं—प्रकृति, विकृति और संस्कृति। भूख लगने पर भोजन करना प्रकृति है। भूख न होने पर खाना विकृति है। आज एकादशी है अथवा अतिथि को भरपेट भोजन कराना है, इसलिए स्वयं उपवास करना सस्कृति है।

वर्ण व्यवस्था को प्रकृति कहा जा सकता है। सब भूतो मे परमेश्वर को देखना सस्कृति है। अस्पृश्यता विकृति है।

यदि इस प्रकार का भेद न किया जाय, तो अच्छे के साथ बुरे का भी अभिमान होने लगता है। जबलपुर मे किसी एक लडके ने एक लडकी के साथ बलात्कार किया। सयोगवश, लडका मुसलमान था, लडकी हिदू थी। बलात्कार एक निषिद्ध काय ही है—करनेवाला हिदू हो, चाहे मुसलमान। इस कारण बलात्कार सबके लिए समान रूप से निषिद्ध है। लेकिन माना यह गया कि हिदू लडकी पर मुसलमान लडके ने बलात्कार किया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दू एक तरफ हो गये और मुसलमान दूसरी तरफ। असल मे होना यह चाहिए था कि सब मिलकर बलात्कार का निषेध करते और धम के साथ उसका सम्बाध न जोडते। उसे एक व्यक्तिगत अपराध माना जाना चाहिए था और यह घोषणा करनी चाहिए थी कि बलात्कार करनेवाला न हिन्दू होता है और न मुसलमान।

लेकिन लोग ऐसा मानते नहीं। इसलिए दुघटनाएँ घटती हैं। अहमदाबाद के शाकाहारी लोग खून की बूद देखकर काँप उठते हैं, लेकिन वहाँ उन्होने हत्याएँ कीं। पुराना इतिहास जो दिमाग में भरा था!

रवी द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय सस्कृति का विवेचन करते हुए कहा कि भारत महामानवता का सागर है। आप उसके तीर पर आइए, आप भी आइए। भारत समुद्र, बाकी सब नदियाँ। आस्ट्रिया, रूस सीरीन आदि देशो से लोग यहाँ आये, क्योकि उधर जगल और पहाड थे, जब कि भारत मे भरपूर जमीन थी और जनसख्या भी कम थी। लेकिन रीति रिवाज सबके अलग-अलग थे। अतएव व्यवस्था यह थी कि अलग-अलग रीति रिवाजवाले लोग एक गाव मे रह तो सकते हैं, किन्तु उन्हे अलग-अलग मुहल्ले बनाकर रहना होगा। इसीमे से जाति-व्यवस्था का ज म हुआ। यदि यह जाति-व्यवस्था खडी न होती, तो लोग एक-दूसरे का विरोध करके आपस मे कट मरते। जाति-व्यवस्था के कारण व एक ही गाँव मे अपने-अपने विचार के अनुसार जीवन जीने की सुविधा पा सके।

पारसी लोग भारत मे बसने के लिए आये। व अपने मुर्दों को जलाते नहीं, कुएँ मे टाँगते हैं। हिन्दू जलाते हैं। हिन्दू देवो की स्तुति और असुरों की निन्दा करते हैं, जब कि पारसी देवो की निन्दा और असुरो की स्तुति करते हैं। उनका

देव महादेव नहीं। वे 'अहुरमज्द' को अपना देव मानते हैं जिसका अर्थ होता है महा असुर। हमने उनसे कहा, आपको जो करना हो, अपनी बस्ती में कीजिए। इस तरह जातियों का निर्माण करने से लोग सुरक्षित रह सके। यह न होता, तो कत्लेआम होकर रहता।

लेकिन अब जाति-व्यवस्था कालबाह्य हो चुकी है। शुरू में छोटे पौधों की रक्षा के लिए बाड़ लगानी होती है, लेकिन बाद में उन्हींके विकास के लिए उसे हटाना पड़ता है। इतिहास लिखते समय इसका ध्यान रखना होता है। तात्पर्य यह है कि भारत की संस्कृति में दूसरों को आत्मसात करने का गुण है।

जोशी : क्या पाठशालाओं और विद्यालयों में प्रार्थना शुरू करना उचित न होगा? सर्व धर्म-प्रार्थना हो या मौन प्रार्थना?

विनोबा : अनुभव यह है कि ऐसी प्रार्थनाएँ यांत्रिक रीति से चलती हैं। इनसे संस्कार का निर्माण नहीं होता। यदि प्रार्थना का सम्बन्ध हाजिरी से जोड़ दिया जाय, तो बात और कठिन हो जाती है। प्रार्थना घर-घर में होनी चाहिए।

जोशी : अगर कुछ चीजें कण्ठाग्र करवायी जायँ तो? जैसे—'गीताई', 'मनाचे श्लोक' आदि। चित्त पर इनका संस्कार पड़ेगा।

विनोबा : आप जो कण्ठाग्र कराना चाहते हैं, सो मेरे पास भेजिए।

सरकार के हाथ में शिक्षा की व्यवस्था का रहना बहुत खतरनाक बात है। सरकार जिस छाप की होती है, वह उसी छाप का निर्माण करने की कोशिश करती है, और इतने पर भी इसे 'डिमॉक्रेसी' (लोकतंत्र कहा जाता है और विद्यार्थियों के मन को एक साँचे या ढाँचे में ढालने का प्रयत्न किया जाता है। इसकी टीका करते हुए मैंने लिखा और कहा है कि हमने जो अधिकार ज्ञानदेव और तुलसीदास को नहीं दिया, वह आज के शिक्षा-अधिकारियों को दे दिया है। और ऐसा करते हुए आपने उनमें कौनसी योग्यता और बुद्धि के दर्शन किये हैं?

मधुकरराव : आपकी बात सच है। जैसा कि आप कहते हैं, सरकार की भी यही इच्छा है कि गाँव की जनता अपनी पाठशालाएँ चलाये और शिक्षण-संस्थाएँ स्वयं अपना शिक्षा-क्रम तैयार करें। लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में आज यह हो नहीं रहा है।

विनोबा : लन्दन के एक ही व्यक्ति ने मुझे लिखा है कि आप गाँव को स्वतन्त्र रूप से अपने पैरों पर खड़ा होने की जो बात कह रहे हैं, वह मुझे पूरी तरह मंजूर है। लन्दन, न्यूयार्क को भी आपके इन विचारों की आवश्यकता है। यहाँ 'दे-इज्म' चल रहा है। 'दे विल डू फॉर अस'—अर्थात् विल्सन और जॉन्सन हमारे लिए कुछ करेंगे, ऐसी एक लोक-भावना बनी है। चाहे 'कम्युनिज्म' (साम्यवाद) हो,

गांधी-दर्शन और शिक्षा

जगतनारायण शर्मा

दर्शन और शिक्षा के घनिष्ठ सम्बन्ध को व्यक्त करते हुए शिक्षा शास्त्री जेम्स रास का कथन है कि ये दोनों एक सिक्के के दो पहलुओं की भांति हैं। दर्शन उसका विचारात्मक और शिक्षा उसका क्रियात्मक स्वरूप है। जान ड्यूई के मतानुसार दर्शन वह ज्ञान है जो जीवन के परिचालन को प्रभावित करता है। शिक्षा एक वांछित परिवर्तन है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य पर वह प्रभाव है जिसके द्वारा वह दूसरे मनुष्य को अपनी धारणा की ओर झुकाता है।

प्राच्य एवं पाश्चात्य दार्शनिकों की जीवनियों और उनके उपदेशों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि एक विचारक दार्शनिक ही एक क्रियात्मक शिक्षाशास्त्री होता रहा है। पेस्तालाजी, सार्क्रेटीज, अरस्तू, बर्नार्डशा कवीन्द्र रवीन्द्र ठाकुर आदि सभी ने पहले एक जीवन-दर्शन जीवन क्रम की शिक्षा दी और फिर शिक्षा का दर्शन शास्त्र। विभिन्न धर्मों एवं जातियोंवाले इस भारतवर्ष की आत्मा और आवश्यकता को सच्चे प्रकार से समझा पूज्य बापू—महात्मा गांधी—ने और उसके अनुरूप परिकल्पना की एक जीवन-दर्शन और शिक्षण-योजना बुनियादी तालीम की।

गांधी दर्शन जितना गहन है उतना ही सरल और सरस। गहन इसलिए है कि गांधी-दर्शन विशुद्ध अध्यात्म पर अधारित है, उसे सर्वसाधारण अपने जीवन और कृतित्व में आसानी से आत्मसात नहीं कर सकता है, और सरल इसलिए है कि इसमें मानव जीवन की दैनन्दिन कार्यकारिणी की समस्याओं और जीवन के लक्ष्य का निरूपण व्यावहारिक एवं प्रायोगिक दृष्टि से किया गया है, जो हर किसीकी समझ में सुगमता से आ सकता है। महात्मा गांधी ने अपनी आत्म-कथा की प्रस्तावना में लिखा है—

'मेरा कर्तव्य तो, जिसके लिए मैं तीस वर्ष से झीख रहा हूं, आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरी सारी क्रियाएं इसी दृष्टि से होती हैं। मेरा सारा लेखन इसी दृष्टि से है और मेरा राजनैतिक क्षेत्र में अन्त भी इसी वस्तु के आधीन है।

गांधीजी ने अपने जीवन-दर्शन के बारे में उपयुक्त जो कुछ कहा है उससे अधिक गांधी दर्शन का विवेचन महज बौद्धिक व्यायाम ही कहा जा सकता है।

स्पष्ट है कि धर्म और अध्यात्म ही उनके जीवन के मुख्य प्रयोजन थे। एक

राजनैतिक शिष्ट-मडल मे उन्हे देखकर तत्कालीन भारतमत्री मिस्टर माण्टेग्यू ने लन्दन मे कहा था—"मिस्टर गाधी आप एक समाज-सुधारक, इन राजनीतिज्ञों के साथ कैसे ?" उन्हें उत्तर देते हुए गाधीजी ने कहा था "सारी मानव जाति से अभिन्नता का भाव रखना मेरा धर्म है और मेरी राजनीतिक गतिविधि उस धर्म पर आचरण करने का तरीका है। मनुष्य की गतिविधियो के क्षेत्र को आज विभाजित नहीं किया जा सकता और न उसके सामाजिक, आर्थिक एव शुद्ध धार्मिक कार्यों को एक-दूसरे से भिन्न किया जा सकता है।"

महात्मा गाधी मानवीय क्रिया-कलापों के अतिरिक्त किसी और धर्म को जानते ही न थे। उनकी दृष्टि मे धर्म और अध्यात्म का कोई निराला क्षेत्र नही होता, जीवन के सामान्य क्षेत्र मे कार्यो के द्वारा ही उनकी निरन्तर अभिव्यक्ति होती रहती है। गाधी-दर्शन से हमे यही बोध प्राप्त होता है कि सच्चे धर्म के पालन करने के लिए किसीको न तो हिमालय मे जाने की जरूरत है, न सन्यास लेने की, न आश्रम मे रहने की और न किसी सम्प्रदाय-विशेष को अपनाने की। गाधी-दर्शन ने राजनीति, धर्म, सदाचार और नीति का इस तरह एकीकरण कर दिया है जो अधिकाश लोगो की दृष्टि मे समुचित नही माना जाता। लोगो की दृष्टि मे सत्य, दया और प्रेम आदि सद्गुण केवल पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्रो मे ही आचरण के उपयुक्त समझे जाते हैं। राजनीति मे केवल उपयुक्तता और वाछनीयता को ही प्रयोजनीय माना जाता है, किन्तु गाधीजी का सम्पूर्ण दर्शन, उनका समस्त कृतित्व इस द्वैध आचरण के प्रति जीवन्त विद्रोह था। गाधी-दर्शन धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष को कभी एक-दूसरे से विच्छिन्न नही करता। गाधीजी ने जीवन के उत्तर-काल मे राजनीति से इसीलिए अपने को पृथक् कर लिया था कि वे सत्याग्रह के द्वारा उसमे धर्म का समावेश, धर्म की प्राण प्रतिष्ठा करना चाहते थे।

गांधी-दर्शन का स्रोत

गाधीजी और उनका दर्शन सत्य का विनम्र शोधक कहा जा सकता है। गाधीजी के दर्शन मे हमे जीवन के शाश्वत सत्यो का प्रयोग मिलता है। गाधी-दर्शन हमे सिखाता है कि विनम्रता स्वाभाविक गुण है, इसे अगीकार करना चाहिए। आत्म-सयम मनुष्य की आत्मा का उन्नयन करता है। बाह्य-विरोध की अपेक्षा अपने अन्तर के विरोधो से संघर्ष करना बडा निर्मम और सख्त होता है।

चरखा और अस्पृश्यता गाधी-दर्शन के दो ऐसे पहलू हैं, जिन्हे समझना कठिन हो जाता है। हाथ से कते सूत को गाधीजी प्रारब्ध की डोर कहा करते थे।

उन्होंने कांग्रेस-सग्राम के लिए 'खादी मताधिकार' का सुझाव दिया था तथा 'सूत का मुद्रा की तरह उपयोग' करने की सलाह दी थी। गाधी दर्शन का प्रमुख विषय इतना विवादास्पद रहा और अब भी है कि इसे न तो अधिकाश भारतीय समझ पाये और न अग्रेज राजनीतिज्ञ एव दार्शनिक। गाधी-दर्शन के केन्द्र बिन्दु चरखा को समझने के लिए भारतीय ग्रामीणों की भयकर गरीबी का सही ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। जिसकी रुचि इस दिशा मे न होगी वह गाधी-दर्शन के शीर्ष बिन्दु चरखा विज्ञान को नही समझ सकता।

गाधीजी ने गाँव के गरीबो की गरीबी का चित्रण करते हुए लिखा है—"भूख से बिलबिलानेवाले इन स्त्री-पुरुषों के लिए स्वतत्रता और ईश्वर म न कोई भेद है और न इन शब्दो का उनके निकट कोई अर्थ ही। जो इन्हे रोटी का एक टुकड़ा देगा वही इन दुखियारों का ईश्वर और त्राता होगा।"

गाधी-दर्शन मे सत्य की सरलता है, युगदृष्टि को प्रकाश म लानेवाली शिक्षा-पद्धति की क्षमता है और मानव-कल्याण की भावुकता है।

गाधी-दर्शन मानव जीवन की वह त्रिवेणी है जिसम प्रेम की साध, ज्ञान की खोज और मानव जाति के दु ख-दर्द के लिए असीम करुणा का सवेग है। मिस्टर ई० एम० फास्टर का यह कथन कितना यथार्थ है, "सम्भव है गाधीजी हमारी सदी के महानतम व्यक्ति माने जायँ। कई बार उनका नाम लेनिन के साथ लिया जाता है। परन्तु लेनिन का राज्य इस दुनिया का था और हम नहीं जानते हैं कि दुनिया इस राज्य का क्या करेगी। गाधीजी का राज्य इस दुनिया का नही था। यद्यपि वे घटनाओ पर हावी हुए और उन्होने राजनीति को प्रभावित किया, पर उनकी जड़ें काल के परे थी और वही से उन्होने शक्ति पायी। उनका स्थान धर्म सस्थापको के बीच है, भले ही वे कोई धम स्थापित न करें। उनका स्थान महान कलाकारो के बीच है, हालाँकि कला उनकी माध्यम नहीं थी। उनका स्थान उन सब नर-नारियो के बीच है, जिन्होंने आन्तिवश परिग्रह को सुख और सबलता को विजय नहीं समझा और जिनकी प्रेम मे श्रद्धा रही है।'

गाधीजी की मानव निष्ठा

गाधीजी अद्वैतवादी थे। वे ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' सिद्धान्त के पोषक थे। उनका विचार था कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। ईश्वर ही एक ऐसा है, जिसका रूपान्तर नही होता। वही स्वय इस सृष्टि का उत्पत्ति, विनाश एव पोषणकर्ता है। वह अन्तिम सत्य है, अत सत्य ही ईश्वर है। इस सत्य या अनुभव करने का साधन अहिंसा है। सत्य साध्य है और

अहिंसा साधन है। अहिंसा की व्यापक परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा—"अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसीको न मारना इतना तो है ही—कुविचार मात्र हिंसा है, उतावला (जल्दबाजी) हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है। द्वेष हिंसा है, किसीका बुरा चाहना हिंसा है, जगत् के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।" वे अहिंसा को परमधर्म मानते हैं।

गांधीजी प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता के पक्षपाती थे। उनकी कल्पना स्वतंत्र व्यक्तियों के विश्वव्यापी समाज की थी, जिनके बीच रंग, जाति, धर्म, शक्ति और धन-दौलत की कृत्रिम दीवारें न हों। पूंजीवाद को पनपने से रोकने के लिए वे विकेन्द्रित खेती एवं उद्योगों के पक्ष में थे। इस दिशा में गृह-उद्योग और ग्राम-उद्योग उनके लक्ष्य थे।

सेवा भावना उनके मूल मंत्र का मुख्य अंग था। उनकी कल्पना के आध्यात्मिक समाज में मानव सेवा ही ईश्वर की पूजा है। ईश्वर को पाने का सुगम मार्ग उसकी सृष्टि में ही उसका दर्शन कर उसीके साथ एकाकार हो जाना है। वह सबकी सेवा से ही सम्भव है। ऐसे समाज में प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा, प्रेम, त्याग और सेवा का जीवन व्यतीत करेगा।

गांधीजी का शिक्षा-दर्शन भी उनके जीवन-दर्शन पर आधारित था। भारत संसार के निर्धनतम देशों में से एक है। हमारी आय के साधन अत्यन्त सीमित हैं, पर जन संख्या अत्यधिक है। इस समस्या के सुन्दर समाधान के रूप में उन्होंने जीवन के प्रत्येक पहलू को दृष्टि में रखकर अपने आदर्शों के अनुरूप एक शिक्षा-योजना बनायी, जो नयी तालीम के नाम से प्रसिद्ध है।

गांधीजी बालक के व्यक्तित्व के विकास को प्राथमिक महत्त्व देते थे। शिक्षा में उनका तात्पर्य शरीर, मन और आत्मा का सम्पूर्ण विकास था। केवल साक्षरता उनकी शिक्षा-योजना का न तो आदि था, न अन्त। वे हाथों के द्वारा हृदय व मस्तिष्क को शिक्षा देकर सम्पूर्ण मानवता का विकास करना चाहते थे। उनका विचार था कि शिक्षालय काम तथा अन्वेषण की प्रयोगशालाएँ हों, न कि ज्ञान को ठूंसने के कारखाने। इसीलिए उन्होंने अपनी शिक्षा-योजना में बालक की शिक्षा का आरम्भ एक उद्योग सिखाने के माध्यम से किया। उद्योग-शिक्षण द्वारा स्वावलम्बन, श्रम के गौरव, आत्मानुशासन तथा समाज-सेवा की कला में निपुण होने का अवसर विद्यालय में ही मिलेगा। उद्योग का चुनाव बालकों की क्षमता के अनुसार ऐसा हो, जिसमें उसके उत्पादन का आर्थिक मूल्य हो।

उद्योग मे स्वावलम्बन के दो पहलू हैं—एक तो शिक्षा की समाप्ति पर वह आजीविका एव स्वतत्र जीवन-यापन का साधन बन जाय और दूसरी ओर समाज-सेवा के रूप मे पाठशाला के खर्च मे कम-से-कम शिक्षण का वेतन निकाल सके।

गाधीजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को सफल नागरिक या समाज के योग्य बनाना है तो मनुष्य और समाज के बीच ताल-मेल बैठाना चाहिए। मनुष्य अपने विकास म समाज को बदलता है और बदला हुआ समाज मनुष्य का विकास करता है। व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति बनता है। अत मनुष्य समाज-सेवा द्वारा अपने गुणो का विकास कर समाजोपयोगी बने, यही उनका जीवन-दर्शन और शिक्षा का रहस्य था।

श्री जगतनारायण शर्मा, निदेशक, हिन्दी संस्थान, राजकीय सेण्ट्रल पेडागाजिकल इस्टीट्यूट, इलाहाबाद

स्वदेशी शिक्षा

डा० कंचनलता सब्बरवाल

शिक्षा की परिभाषा देते हुए सम्भवत: यह कहना उचित ही होगा कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना होता है। सर्वांगीण विकास मे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और चारित्रिक विकास स्वभावतः आ जाते हैं। वस्तुत. शिक्षा व्यक्ति के भीतर निहित गुणो के विकास मे सहायक वातावरण बनाने ही का नाम है। सभी बालको के भीतर कुछ-न-कुछ नैसर्गिक गुण निहित रहते हैं। यद्यपि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सर्वथा भिन्न भी नही होता, किन्तु सर्वथा एक-से गुणों का स्वामी भी नही होता। अतः जहाँ एक ओर शिक्षा व्यक्तिगत भिन्नताओ पर दृष्टि रखती है वही दूसरी ओर साधारणत सामान्य मानवीय गुणो को भी ध्यान मे रखती है। मानव की बुद्धि ने प्रकृति पर अपनी विजय बहुत हद तक सिद्ध कर ली है, किन्तु यह कहना कठिन है कि उसने मानव मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भी इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि वह दावे के साथ यह कह सके कि मैं मनुष्य बना सकता हूँ। इस प्रकार का मनुष्य बना पाना, जिसका व्यक्तित्व पूर्णतया सुगठित, मानसिक दृष्टि से सतुलित, बौद्धिक दृष्टि से पूर्णतया विकसित और चारित्रिक दृष्टि से आदर्श हो, कुछ सरल कार्य नहीं। विशेषतया जब कि इस युग मे जहाँ उसे एक ओर अपने देश का सुनागरिक, अपने समाज का एक सुसभ्य व्यक्ति और अपने समुदाय का एक उपयोगी सदस्य बनना है वही दूसरी ओर विश्व का एक उदारचित्त 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को मानकर चलनेवाला, मानव का मानव के प्रति प्रेम को स्वीकार करनेवाला और विश्व के विशाल जन समूह के विशाल समुदाय का एक सुखी-सम्पन्न सदस्य भी होना है।

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य

आज ससार ने वैज्ञानिक उन्नति के द्वारा अपनी सीमाओ को इतना सकुचित कर लिया है कि कोई भी एक समाज दूसरे से सर्वथा विलग होकर अपने अस्तित्व को एकाकी रूप मे बनाये नहीं रख सकता। ऐसी अवस्था म व्यक्ति को समाज के प्रति, देश और जाति के प्रति अपनी आस्था, विश्वास और स्नेह बनाये रखते हुए ही विश्व की सभ्यता एव सस्कृति के साथ समझौता करना पडता है और सभवतया ऐसा कर पाना ही उसकी उचित शिक्षा का द्योतक है। इसम कोई सन्देह नही कि शिक्षा, व्यक्ति के सभी अतर्निहित

नैसर्गिक गुणो को पूर्णतया विकसित करने म सहायता होती है, उसके व्यक्तित्व का सुव्यवस्थित एव सुगठित विकास करने का प्रयत्न करती है, किन्तु इन सबका उद्देश्य यही तो है कि व्यक्ति जीवन म पूर्ण सुख, ऐश्वर्य और सम्पन्नता को प्राप्त कर सके। यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति एक ओर तो अपने सिद्धान्तो, विश्वासो, आस्थाओ, पर दृढ रह सके और दूसरी ओर वाह्य परिस्थितियो को समझकर उनके साथ अपने अ तर के वैदवासिक आधारो को स्वीकृत कर सके। इस प्रकार का समीकरण करना व्यक्ति के मनोवल पर आधारित होता है। वाह्य परिस्थितियो पर सदासर्वदा व्यक्ति का अधिकार होता ही है, ऐसी वात नही। अत यह आवश्यक हो जाता है कि यदि वह उसकी शक्ति की सीमाओ के बाहर भी हो तो भी वह स्वय अपने आपको, अपने व्यक्तित्व को मानसिक दृष्टि से भी सतुलित रखते हुए, परिस्थितियो और वातावरण से भले ही वे विषम हो समझौता करके—समीकरण करके शनै-शनै उन्हे अपने मनोवल एव प्रभाव के द्वारा परिवर्तित, परिवर्धित और सशोधित करे तभी वह जीवन मे सुखी हो सकेगा। अत शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सुखी करना है और सुखी जीवन बना पाने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा और मानव का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो। वह शिक्षा, जो व्यक्ति को अक्षर-ज्ञान भले ही करा देती हो, किन्तु जीवन की रग शाला म अपना ठीक-ठीक स्थान प्राप्त करना नहीं सिखाती, अपना उद्देश्य किसी प्रकार भी पूरा नहीं कर पाती।

शिक्षा का आधार

वालक का जन्म एक समाज विशेष मे होता है। जाने या अनजाने उसके प्रारम्भिक जीवन के निर्माण मे उस समाज की मान्यताओ, परम्पराओ, आस्थाओ विश्वासो आदि का गहरा हाथ होता है। वालक के जीवन पर उसके परिवार, समाज, जाति, देश, समुदाय आदि के प्रभाव को स्वीकार करना ही चाहिए। ज्यो-ज्यो वालक वडा होता जाता है उसका कार्यक्षेत्र, अनुभव क्षत्र वढता ही जाता है। ऐसी अवस्था म यह सवथा सम्भव है स्वाभाविक है कि उसके जीवन और व्यक्तित्व के विकास को परिवार के अतिरिक्त बाहर का विश्व भी प्रभावित करता चले। किन्तु प्राय वाह्य प्रभाव भी उसके मानसिक वातावरण अथवा जीवन का धीरे धीरे अग ही बनते जाते हैं। जहाँ वे ऐसा नही कर पाते वहाँ व्यक्ति के मन मे सघष का जन्म होता है और इस प्रकार के सघष कभी-कभी व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास मे बाधक भी हो जाते हैं। वालक उसीके प्रति तो स्नेह और विश्वास अपने भीतर उत्पन्न कर पायेगा जो

उसका सर्वाधिक परिचित है। और यह स्वाभाविक ही है कि उसका सर्वप्रथम परिचय अपने परिवार और उसकी सभ्यता संस्कृति भाषा आदि से हो पाता है। यद्यपि वह, कुछ आगे बढ़कर अपने परिचय का दायरा बढ़ा लेता है और बढ़ाते बढ़ाते तभी तो वह अपने परिवार से समाज, अपने देश से विदेश, अपनी भाषा से दूसरों की भाषा तक भी पहुँच जाता है। किन्तु प्रारम्भिक परिचय की गहराइयाँ उसके भीतर व्याप्त रहती ही हैं। अतः शिक्षा-मनोविज्ञान की दृष्टि से बालक तभी जीवन में सर्वाधिक सफल और सुखी हो सकता है जब कि उसको शिक्षा स्वदेशी आधार लेकर दी गयी हो।

सुशिक्षा की कसौटी

सुशिक्षा की कसौटी मेरी दृष्टि में तीन हैं—सहज शिक्षा (कम समय और कम परिश्रम से दी गयी शिक्षा) व्यक्तित्व को पूर्ण रूपेण विकसित करनेवाली शिक्षा और मानव को सुखी और सम्पन्न बना सकनेवाली शिक्षा। व्यक्ति के लिए सहज शिक्षा वही हो सकती है जो कि अपनी भाषा अपनी संस्कृति अपनी सभ्यता आदि पर आधारित हो। बड़े परिश्रम से देश और जाति द्वारा अधिकाधिक व्यय करके भी विदेशी भाषा के माध्यम से दिया जानेवाला ज्ञान व्यक्ति को विदेशों में उन देशों के वासियों को आश्चर्य चकित कर देनेवाला भले ही बना दे किन्तु उसे न तो उस ज्ञान को उतनी गहराई से आत्मसात् करा पाता है और न उसे व्यक्ति के जीवन में पूर्णतः सम्मिश्रित करा पाता है। वह व्यक्ति जो अपने परिवार का एक अच्छा सदस्य नहीं है भला, समाज और फिर विश्व का अच्छा सदस्य कैसे हो पायेगा? बड़ा ही कठिन काम है शिक्षा और शिक्षक का। शिक्षक व्यक्ति का एकाकी रूप में अपने आपमें पूर्ण और सुन्दर व्यक्तित्व भी बनाना चाहता है और साथ ही उसे अपने समाज का एक अच्छा सदस्य भी बनाना चाहता है। ऐसा हुए बिना व्यक्ति का जीवन पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि जहाँ एक ओर वह व्यक्ति है वहाँ दूसरी ओर एक सामाजिक प्राणी और समाज का एक सदस्य भी है। विश्व का सदस्य होने की बारी तो कुछ बाद में आती है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा शिक्षा प्रणाली और शिक्षक एक ओर उस विशाल ज्ञान भण्डार को जो कि मानव की युग-युग की कठिन साधना और तपस्या के द्वारा प्राप्त की हुई पूंजी को सुरक्षित रखे तथा उसमें वृद्धि करे और दूसरी ओर उसे अधिकाधिक सुन्दर ढंग से भावी पीढ़ियों तक पहुँचाये, ताकि वह चिरन्तन सत्य और ज्ञान मानव के लिए शिव सिद्ध हो सके। सत्य की सतत खोज शिव की कामना और साधना तथा सुन्दर से तादात्म्य, यही

शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए और ऐसा कर पाने के लिए व्यक्ति को मातृभाषा, निजी सस्कृति, निजी सभ्यता का ज्ञान होना अनिवार्य है। शकराचार्य से प्रश्न किया गया—कस्त्वम्? 'कोऽहम्' उत्तर था। ठीक ही तो है आदि-गुरु शकराचार्य ने कितना सुन्दर शिक्षा का आधार इस छोटे से शब्द मे हमारे सम्मुख रख दिया। शिक्षा का अनादि आधार है 'कोऽहम'। व्यक्ति यदि स्वय को ही नही जानता तो उसको, सारे विश्व को जानने का ही क्या फल होगा? मूल प्रश्न तो फिर भी अधूरा ही रह जायेगा। ज्ञान का आलोक-स्तम्भ, सर्वोच्च शिखर तो वही पहुँचता है जहाँ 'कोऽहम्' का उत्तर खोजने की सतत चेष्टा मे व्यक्ति सलग्न रहता है और उसका आरम्भ होता है अपनी भाषा, अपना देश और अपनी सस्कृति के परिचय के साथ।

ज्ञान किसी एक देश, जाति अथवा मानव-समूह की बपौती नही है। वह आरम्भ माँ की गोद से ही होता है, सम्भवत उससे भी पहले। अत मेरा यह निश्चित मत है कि शिक्षा का स्वरूप, कलेवर स्वदेशी होना चाहिए। यद्यपि उसकी आत्मा और ज्ञान, विशाल, व्यापक और सार्वभौमिक है, और रहेगा।

डा० कचनलता सब्बरवाल, प्राचार्या, बालिका महाविद्यालय, लखनऊ

देश की परिस्थिति और बुनियादी शिक्षा

पूर्णचन्द्र जैन

भारत का एक जटिल और न सुलझनेवाला यक्ष-प्रश्न आज शिक्षा का है। देश की आजादी के पहले उसमे एक तरह की पेचीदगी और कठिनाई थी। अनेक दूसरी बुराइयों की तरह इसको दूर करने मे भी एक बडी बाधा बाहरी हुकूमत की थी। अब यह इतिहास-प्रमाणित है कि अंग्रेज शासको ने शिक्षा की वह पद्धति इस देश मे चारो तरफ फैलायी जिससे उनको दफ्तरो में कारिन्दे, प्रशासन मे अफसर और फौज मे रंगरूट, उनके ढंग के तथा उनके प्रति वफादार, मिल सकें। अपने राष्ट्र और समाज के प्रति हीन-भावना तथा अंग्रेजीयत के प्रति रुचि और श्रद्धा धीरे-धीरे उस समय के पढे-लिखे वर्ग की सामान्य स्थिति बन गयी। उस समय का बुद्धिवादी वर्ग अपनी इस स्थिति पर एक तरह का गर्व अनुभव करने लगा था। स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, तिलक, गाधी आदि का प्रभाव बढते जाने के साथ पढे-लिखे लोगों की मानसिक स्थिति बदलने लगी। शिक्षा को बदलने की आवाज उठी। गाधी ने विकल्प प्रस्तुत किये और प्रयोग भी जहाँ-तहाँ करे-कराये। प्रशासन ने शिक्षा-सुधार की आवश्यकता को मानते हुए उस दिशा मे कुछ करने का झूठा-सच्चा दिखावा भी किया। लेकिन साफ है कि कोई आधारभूत या बुनियादी परिवर्तन, बावजूद कई कमेटियो, कमीशनो वगैरह की रिपोर्ट व सुझावों के, हुआ नहीं, हो नहीं सका। दुर्भाग्य यह है कि स्वाधीनता के २०-२२ वर्ष बाद भी शिक्षा की स्थिति सबसे अधिक असतोषजनक और असमाधानकारी है। आजादी के पहले शिक्षा की बुरी हालत एक तरह के कारणों से थी। आज भी वह सुधरी नहीं और हालत बिगडी ही है, उसके दूसरे कारण बने हैं, जो कम गभीर नहीं हैं।

शिक्षा का खण्डित दृष्टिकोण

शिक्षा का क्रम और शिक्षा की पद्धति आज भी कई तरह से खण्डित है। व्यक्ति के भौतिक, नैतिक, आध्यात्मिक, समग्र-विकास, और राष्ट्र व समाज-जीवन के एक समन्वित निर्माण का पूरा सशक्त साधन तो शिक्षा आज है ही नहीं, एक सजग-सक्रिय माध्यम भी वह नहीं सिद्ध हो रही है। शिक्षण के माध्यमिक या उच्च स्तर के जहाँ केन्द्र हैं, वहां विद्यार्थी को विद्याध्ययन के साथ न स्वास्थ्य मिलता है, न आनन्द, न मनोरंजन और न जीवनयापन या जीविका-

प्राप्ति का कोई सीधा-साफ रास्ता। शाला की चहारदीवारिया और उसके कामकाज का स्वरूप सब कुछ ऐसा सकीण है कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अलग कही दौडना पडता है, तो कथित मानसिक स्वास्थ्य अर्थात् मनोरजन के लिए सिनेमा घरो व सास्कृतिक प्रवृत्तियो की ओर शिक्षार्थी भागता है तथा एक उम्र पर पहुँच जाने पर भी रोटी के प्रश्न को हल करने मे उसकी शिक्षा उसे कोई खास मदद नही देती। सबसे अजीब बात यह है कि शिक्षण-सस्थाओ मे सास्कृतिक कायक्रम कुछ अलग अलग ही रहता है, मानो शिक्षक और शिक्षार्थी का शिक्षण प्रशिक्षण-काय अपने आपमे सास्कृतिक नहीं, बल्कि असास्कृतिक है।

गनीमत यह है कि आज अभी तक ऐसी विचार धारा नही है जो 'कला कला के लिए' की तरह यह दावा करे कि शिक्षा शिक्षा के लिए है। उसका जीवन के सस्कार, उसकी सफलता असफलता, स्वस्थता, आनन्द वगैरह से कोई सम्बन्ध नहीं है।

गाधी का शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टिकोण

गाधी ने जीवन के प्रति एक समग्र और समन्वित दृष्टिकोण अपनाने पर जोर दिया था अपना और अपने निकट के परिजन व आश्रम के वासियो प्रते वासियो का वैसा जीवन बनाने का प्रयत्न किया था, तथा अपने जीवन-काल मे उसके छुटपुट प्रयोग भी कर दिखाये थे। आज जब विज्ञान-युग मे मनुष्य-समुदाय भौगोलिक व राष्ट्र राष्ट्र की सकुचित सीमाओ से ऊपर उठ परस्पर बहुत नजदीक हो गया है, तब बडी जरूरत है और उसीमे उसके रक्षित अस्तित्व की सम्भावनाएँ हैं कि हर मनुष्य दिल को बडा करे, एक-दूसरे को अभिन्न माने और दिमागी ताकत व चिन्तन को ऐसा व्यापक करे कि समन्वय तथा सह अस्तित्व की सम्भावनाएं बढ़ती जायें। गाधी के इस जीवन-दर्शन को ज्ञान और कर्म का समन्वय कहा जा सकता है। ज्ञान-सचय और उसकी समृद्धि ऐसी न हो कि जिसे मानव अस्तित्व और उसके हित के साधन के लिए सीधा कर्म का रूप न दिया जा सके। दूसरी ओर कम ऐसा न हो कि जो ज्ञान विज्ञान या विवेक से शून्य हो तथा मनुष्य जाति म अह, मनमुटाव, आपाधापी को बढ़ावा दे, उसे अजाने अपने हाथो अपने नाश के लिए तैयार करे।

इसीलिए गाधी उत्पादक-श्रम को केन्द्र-बिन्दु बनाकर उसके आधार पर, उसके माध्यम से और उसके इद गिर्द प्राथमिक से उच्च तक शिक्षा इस प्रकार देने के पक्ष म थे जिसम शिक्षार्थी को साक्षर होने व ज्ञान सचय करने के साथ-

साथ समाज के बीच व जीवन सघर्ष मे अपने पाँव पर खडा होने का आत्म-विश्वास मिले, उसका तन-मन मस्तिष्क विवेकपूर्ण कर्म म अधिकाधिक जागृत हो, साथ ही उसीमे उसे आनन्द-मनोरजन व स्वास्थ्य की प्राप्ति हो। कलात्मकता, वैज्ञानिकता और उपयोगिता का सुन्दर और व्यावहारिक समन्वय गाधी शिक्षण-क्षेत्र म स्थापित करना चाहते थे। स्पष्ट है कि ऐसी शिक्षा ही मानव की छिपी शक्तियो को विकसित और सक्रिय करने तथा उसके वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के सर्वांगीण, सर्वहितकारी, विकास का निमित्त और साधन बन सकती है। मनुष्य की उन्नति, सफलता और सुखी जीवन-साधना की बुनियाद उसका इस पद्धति का शिक्षण ही हो सकता है। भारत चूँकि ग्राम-प्रधान देश है, अधिकाश जनता गाँवो मे बसती है, बुनियादी तौर पर गाँवो की उन्नति पर समूचे राष्ट्र की आर्थिक-सामाजिक नैतिक-राजनैतिक प्रगति और सफलता पूर्णत निर्भर है, इसीलिए चरखा आदि ग्राम व घरेलू उद्योग ग्राम-जीवन और ग्राम सस्कृति को उन्होने बुनियादी शिक्षा या नयी तालीम मे सर्वोपरि स्थान दिया।

बुद्धिवादी वर्ग का अधूरा, अस्पष्ट दृष्टिकोण

खेद है कि गाधी के शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टिकोण के इस व्यापक आधार को देश का बुद्धिवादी वर्ग और तथाकथित पश्चिमानुरागी परम्परागत शिक्षा-शास्त्री पूरी तरह समझ नही सका, और अधूरे मन से ही उसने इसे अपनाया। इसी कारण उनकी शिक्षा-पद्धति को वह जहाँ तहाँ अमल मे लाने मे सफल भी नही हो सका। यद्यपि जो शिक्षा आयोग, कमेटियाँ, कमीशन वगैरह बने, उनमे से अधिकाश ने चालू शिक्षा-पद्धति को गये तीन-चार दशाब्द मे खूब कोसा, उसकी कडी आलोचना की और उसके परिवर्तन पर जोर देते हुए गाधी की बुनियादी तालीम पद्धति को न सिर्फ विचार व सिद्धान्त की दृष्टि से अच्छा बताया, बल्कि देश के लिए उपयोगी तथा कुछ सशोधन के साथ व्यवहार्य भी कहा, लेकिन उसका पूरी लगन व वैज्ञानिक आयोजना के साथ प्रयोग कही नही किया गया। फिर आजादी के बाद देश की अर्थनीति और राजनीति जिस प्रकार गाधी विचार व जीवन-दर्शन से भिन्न रास्ते पर चली, उसका भी असर गाधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति पर प्रतिकूल ही पडा और गाधी के ग्राम-स्वराज्य, विकेन्द्रित अर्थ-रचना, वगैरह विचारो के साथ बुनियादी शिक्षा का विचार भी विज्ञान युग की आधुनिकता, प्रगति व गतिशीलता के नाम पर बौद्धिक-कसरत और आलोचना का शिकार होता गया तथा पिछडा हुआ, दकियानूसी, व अव्यवहार्य करार दिया जाने लगा।

विषम स्थिति बदलने का मार्ग

देश में अस्थिरता, आर्थिक विषमता व बेरोजगारी में उत्तरोत्तर वृद्धि राजनैतिक पक्ष भेद और जाति धर्मगत संकीर्णता पदलोलुपता, स्वार्थपरता व आपाधापी, नैतिक गिरावट, वगैरह की जो परिस्थितियाँ बनी हैं उनमें फिर गांधी के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, नैतिक विचारों की तरफ झुकाव होने लगा है और देश की समस्याओं के हल के लिए आधारभूत रूप में उनके विचार व दर्शन को अपनाया जाना आवश्यक अनुभव किया जाने लगा है। ऐसा लगता है कि देश एक सुनिश्चित और सुनियोजित रास्ते को आज भी नहीं अपना सका है। अभी तक की पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी सही दिशा देश को नहीं दे पायी है और एक संधिकाल में से ही देश का निर्माण-युग आज भी गुजर रहा है। अर्थ रचना को मिश्रित (मिक्स्ड्) कहना व मानना उसका एक उदाहरण है। आर्थिक औद्योगिक की भांति राजनैतिक, शैक्षणिक, कला संस्कृति सम्बन्धी व अन्य क्षेत्रों में भी यह दुविधा भरा मिश्रितपन घुसा है। वस्तुतः आज के नेतृत्व की यह दयनीय स्थिति उसकी सत्ताभिमुख राजनीति पर भी आधारित होने और उस नेतृत्व में आत्म विश्वास तथा बुनियादी कुछ जीवन-मूल्यों सम्बन्धी आस्था व दृढ़ता की कमी के परिणामस्वरूप है। देश के नेतृत्व की दृष्टि जितनी जल्दी स्पष्ट होगी, मिश्रितपन की एवज एक स्पष्ट आर्थिक, सामाजिक रचना को जितना जल्दी यहाँ अपनाया जायगा उतना ही जल्दी देश के कल्याण और सही विकास का मार्ग खुलता जायगा। लोकतंत्र में नेतृत्व आखिरकार प्रबुद्ध जन शक्ति पर निर्भर करता है। देश के जन जन को प्रबुद्ध, कर्त्तव्यपरायण और क्रियाशील करने के लिए उसे सही तरीके से शिक्षित सुसंस्कृत, करना होगा। गांधी द्वारा बतायी गयी शिक्षा-पद्धति में उसके बीज हैं, यह प्रकट होने व विश्वास जगने की आज से अधिक आवश्यकता शायद कभी नहीं रही होगी।

श्री पूर्णचन्द्र जैन, टुकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू जयपुर–३

बुनियादी तालीम के सामाजिक मूल्य

वंशीधर श्रीवास्तव

अहिंसक क्रान्ति का अग्रदूत

बुनियादी तालीम एक मूक अहिंसक क्रान्ति का अग्रदूत होगी ऐसी आशा गांधीजी ने व्यक्त की थी। तालीम' तो एक सामाजिक प्रक्रिया है ही और अगर वह बुनियादी भी हो तो समाज की बुनियाद को भी प्रभावित करेगी, ऐसी आशा करना ठीक ही था। बुनियादी तालीम द्वारा गांधीजी समाज की बुनियाद को ही बदलना चाहते थे। अंग्रेजों ने जो शिक्षा-पद्धति चलायी थी वह केवल नौकरी के लिए थी और उस शिक्षा को पाकर लोग नौकरी करने के लिए गाँवों को छोड़कर नगरों में चले जा रहे थे। इससे भारत के गाँवों का विघटन हो रहा था। कहावत हो गयी थी—थोड़ा पढ़ा तो घर से गया और ज्यादा पढ़ा तो गाँव से गया। गाँव पढ़े लिखे लोगों से खाली हो रहे थे। गाँव टूट जायेंगे तो देश की संस्कृति नष्ट हो जायेगी और भारतीय संस्कृति में जो श्रेष्ठ और वरेण्य है, वह नष्ट हो जायेगा—ऐसा गांधीजी मानते थे। अतः वे एक ऐसी शिक्षा-पद्धति चलाना चाहते थे जो इस विघटन को रोक दे। इसीलिए उन्होंने बुनियादी तालीम की कल्पना की।

समाजवादी आधार

कैसी होगी यह तालीम ? ऐसी, जिसे पाकर गाँव के लोगों को गाँव में ही रहने की इच्छा हो। इसलिए उन्होंने कहा कि इस तालीम के मूल में गाँव के धंधे हों, खेती हो, बागवानी हो, कताई-बुनाई हो, बढ़ईगीरी हो, लोहारी हो, चर्मकारी हो, और दूसरे समाजोपयोगी उत्पादक धंधे हों। ऐसा होगा तो लोगों को इन धंधों से प्रेम होगा और वे अपने गाँवों में ही रहेंगे। इसीलिए उन्होंने कहा कि बुनियादी शिक्षा के मूल में उत्पादक-उद्योग रहेंगे और इन्हींके माध्यम से बालक के व्यक्तित्व का विकास होगा और इस विकास के लिए जिन शास्त्रीय विषयों के पढ़ाने की आवश्यकता होगी उन्हें इन्हीं उद्योगों के इर्दगिर्द पढ़ाया जायगा। इस प्रकार की शिक्षा होगी तो हाथ और मस्तिष्क का भी समन्वय बना रहेगा जो आज की शिक्षा में नहीं है और जिस सबब से हाथ से काम करनेवालों और दिमाग से काम करनेवालों के बीच एक खाई-सी पड़ गयी है और बढ़ती जा रही है—और जो बढ़ती गयी तो, एक ऐसे वर्ग-संघर्ष को जन्म देगी जिसकी विभीषिका में देश ही भस्म हो जायेगा। अतः अगर

यह तालीम चली तो इससे जहाँ एक ओर ग्राम-मूलक भारतीय समाज का विघटन रुकेगा वहाँ दूसरी ओर हाथ से काम करनेवालो और दिमाग से काम करनेवालो श्रमजीवियो और बुद्धिजीवियो के बीच की खाई भी पटेगी। यही दोनो इस पद्धति की सवश्रष्ठ सामाजिक उपलब्धियाँ होगी जिसकी राष्ट्र को सबसे बडी आवश्यकता है।

शोषण की समाप्ति

इस पद्धति की तीसरी सामाजिक उपलब्धि होगी समाज से शोषण को समाप्त करना। शोषण विहीन समाज ही हिंसा विहीन समाज हो सकता है और ऐसे ही समाज म प्रत्येक मनुष्य के लिए न्याय और समान सुख सुविधा के उपभोग की कल्पना की जा सकती है। इसीलिए पूना के दूसरे बुनियादी शिक्षा सम्मेलन म यह कहा गया कि बुनियादी तालीम सभी प्राणियो के लिए न्याय और समान अधिकारो की घोषणा करके विश्व म शान्ति स्थापित करने का सबसे बडा साधन होगी। शिक्षा की प्रक्रिया अहिंसक प्रक्रिया है, इसीलिए विनोबा बार-बार बुनियादी तालीम को अहिंसक सामाजिक क्रान्ति का वाहन कहते हैं। हिंसा के मूल म शोषण है। अत हिंसा को दूर करने के शोषण की प्रवृत्ति को ही मिटाना होगा। शोषण की प्रवृत्ति तब मिटेगी जब मनुष्य म स्वयं अपने हाथ स काम करके जीवन की आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन करने की क्षमता का विकास होगा। जीवन के लिए जो आवश्यक है, जब हम उसे स्वय नहीं पैदा कर सकते अथवा खुद उसका निर्माण नहीं कर सकते तब बाहुबल से अथवा बुद्धिबल से उसे दूसरो से लेने की चेष्टा करते हैं। यही चेष्टा शोषण है। अत हिंसा को समाप्त करने के लिए शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त करना होगा। जब प्रत्येक मनुष्य मे यह क्षमता उत्पन्न हो जायगी कि जीवन के लिए उसे जिन-जिन वस्तुओ की आवश्यकता पडती है उन्हे वहाँ स्वय पैदा कर ले तो उसम दूसरो क शोषण की प्रवृत्ति रुकेगी। इसीलिए गाधीजी ने एक ऐसी शिक्षा पद्धति का प्रवर्तन किया जिसमे प्रत्येक बालक प्रारम्भ से ही उत्पादक उद्योगो को करने का अभ्यास करे। सात आठ वष तक निरतर अभ्यास करने से जब उसम समाजोपयोगी उत्पादक-उद्योगो को करने की क्षमता आयगी तो दूसरो के उत्पादन पर फलने फूलने की प्रवृत्ति मिटेगी और इस प्रकार एक शोषण विहीन समाज की नीव पड़गी—ऐसा समाज जिसकी नींव न्याय, समता और प्रेम पर रहगी। इस प्रकार का अहिंसक शोषण-विहीन समाज बुनियादी तालीम की तीसरी सामाजिक उपलब्धि होगी।

बुनियादी तालीम चलेगी तो एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण होगा जिसमें

शोषण की प्रवृत्ति नहीं रहेगी। जीवन के प्रथम सात-आठ वर्षों तक उत्पादक-उद्योगों का निष्ठापूर्वक अभ्यास करते-करते व्यक्ति में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति का विकास हो जायेगा। यही प्रवृत्ति शोषण की प्रवृत्ति को रोकती है। इसीलिए गांधीजी ने स्वावलम्बन को बुनियादी तालीम की तेजाबी जाँच कहा था। बुनियादी तालीम का अर्थ है समाजोपयोगी उत्पादक-उद्योगों का निरन्तर सात-आठ-दस वर्षों तक निष्ठापूर्वक वैज्ञानिक ढंग से अभ्यास, जिसका परिणाम होगा शोषण की प्रवृत्ति का उन्मूलन और स्वावलम्बन की प्रवृत्ति का विकास, जिसका परिणाम होगा शोषण-हीन नये समाज की स्थापना और अन्ततोगत्वा जिसका परिणाम होगा विश्व-शान्ति और विश्व प्रेम। यही बुनियादी शिक्षा की सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि होगी।

विकेन्द्रित सत्ता की स्थापना

बुनियादी तालीम का एक और सामाजिक मूल्य है—समाज में विकेन्द्रित सत्ता की स्थापना। बुनियादी तालीम की परिभाषा देते हुए गांधीजी ने कहा था—नयी तालीम की लोग कुछ भी परिभाषा दें, मैं तो उसे ग्रामोद्योगमूलक शिक्षा पद्धति कहूँगा। ग्रामोद्योग बुनियादी तालीम के मूल में हैं—इसे भूलना नहीं चाहिए। ग्रामोद्योग यानी पिछड़ी हुई अवैज्ञानिक पद्धति से चलनेवाले उद्योग नहीं, ग्रामोद्योग यानी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वैज्ञानिक पद्धति से चलनेवाले, और वे शक्ति-सचालित (पावर ड्रिवेन) भी हो सकते हैं, वे उद्योग जो केन्द्रित न हों। ऐसा होगा तो पूँजी का यानी अर्थ का विकेन्द्रीकरण होगा—और अर्थ का विकेन्द्रीकरण होगा तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी होगा। यही विकेन्द्रीकरण बुनियादी तालीम की चौथी सामाजिक उपलब्धि होगी।

स्वतंत्र भारत में केन्द्रित उद्योगों की जो चलन बढ़ी उसका ही एक परिणाम हुआ कि बुनियादी तालीम की अवहेलना हुई। दोनों का साथ चल नहीं सकता। यह चीज अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अगर आज की केन्द्रित औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना है तो बुनियादी तालीम नहीं चलेगी। आज का भारत केन्द्रीकरण की ओर जा रहा है—वह ग्रामोद्योग को छोड़कर भारी केन्द्रित उद्योगों की ओर जा रहा है। आधुनिक टक्नोलॉजी के प्रयोग द्वारा भौतिक प्रगति की दुहाई देता हुआ वह भारत के साढ़े पाँच लाख गाँवों को भूल गया है और यही कारण है कि स्वराज्य के २० वर्ष के बाद भी देश की गरीबी और विपन्नता में कोई कमी नहीं आयी है और आज भी हम मुट्ठी भर अन्न के लिए दूसरे देशों के सामने झोली फैलाये खड़े हैं। वास्तविकता यह है कि केन्द्रित उद्योगों के द्वारा हम भारत की जन शक्ति

का उपयोग नही कर सकते । कोई भी योजना जो भारत के गाँवो मे बिखरी हुई जन शक्ति की अवहेलना करगी, जनहित म नही होगी । इसीलिए भारत की जन शक्ति के उपयोग के लिए गाधीजी ने विकेन्द्रीकरण की वकालत की थी और इस विकेन्द्रीकरण के प्रचार के लिए, और उसे शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व के सस्कार के मूल मे रखने के लिए, बुनियादी शिक्षा का प्रवतन किया था। बुनियादी शिक्षा चलेगी तो हम विकेन्द्रित समाज बना सकेंगे । सत्ता विकेन्द्रित, प्रभुता विकेन्द्रित शासन विकेन्द्रित—यही होगी बुनियादी {शिक्षा की अन्तिम सामाजिक उपलब्धि ।

समाजसेवी व्यक्तित्व का निर्माण

बुनियादी शिक्षा की एक और उपलब्धि है--समाजसेवी व्यक्तित्व का निर्माण। समाजसेवा और सामुदायिक काय बुनियादी शिक्षा के अभिन्न अग हैं। इस कायक्रम मे भाग लेने से विद्यार्थी दूसरो की सेवा करना और समुदाय के साथ अपने स्वार्थों को एक करके देखना सीखता है । आज के समाजवाद को अगर सफल होना है तो व्यक्ति को समाज के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग करना सीखना होगा । व्यक्ति और समाज का सघष मिटाकर सामाजिक व्यक्ति व का निर्माण जो इस समाजवादी राष्ट की सबसे बडी आवश्यकता है, बुनियादी शिक्षा की बहुत बडी उपलब्धि है ।●

स्वभाषा का सवाल

काका साहब कालेलकर

बडो की भाषा (राजभाषा), बडो का धर्म, बडो की संस्कृति यही श्रेष्ठ है, देशी भाषाएँ गँवारों की गामठी (देहाती) भाषा, उनमे उच्च साहित्य कहाँ से मिलेगा ? जो पाना है, राजभाषा के द्वारा ही पायेंगे । यह वृत्ति हमारे देश मे शुरू से आज तक चलती आयी है । संस्कृत के बाद मुगल काल मे पर्शियन भाषा की प्रतिष्ठा थी, अब अंग्रेजी की है । "जो कुछ भी हमने पाया अपनी जनता को पूरे वेग से लोकभाषा मे देंगे", ऐसा प्राणवान संकल्प अगर हमारे नेताओ ने किया होता तो देश की शक्ल ही बदल जाती । लेकिन 'बडो का अनुकरण' करनेवाली हमारी राष्ट्रीय संस्कृति ने अंग्रेजी भाषा की सेवा ली और पूरी निष्ठा से उस भाषा की सेवा की भी । हम लोगो ने अपनी संस्कृति का और अपने साहित्य का परिचय अंग्रेजी जाननेवाले स्वदेशी परदेशी लोगो को कराने के लिए अंग्रेजी भाषा मे सब तरह के अनुवाद और मौलिक ग्रन्थ तैयार किये हैं । हम लोगो ने अंग्रेजी भाषा की और साहित्य की जैसी और जितनी सेवा की है वैसी और किसी भी गैर-अंग्रेजी राष्ट्र ने शायद ही की होगी ।

हमारे राष्ट्रीय स्वभाव मे अपने लिए हीन भाव और राज्यकर्ताओ के लिए डर के कारण आदरभाव शुरू से लेकर आज तक लगातार चला है ।

स्वराज्य-साधना के लिए जब गाधीजी ने राष्ट्र का नेतृत्व हाथ मे लिया तब उन्होंने स्वदेशी संस्कृति की शक्ति और प्रतिष्ठा बढाने की प्राणपन से चेष्टा की । स्वभाव, स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेशी हुनर-उद्योग, स्वदेशी रस्म-रिवाज, स्वकीय संस्कृति, सब मिलकर ही हमारा स्वराज्य परिपूर्ण और समृद्ध हो सकता है, यह भाव गाधीजी ने जनता मे जोरो से फैलाया ।

नेता अंग्रेजो के हिमायती

लेकिन वेद-काल से लेकर आज तक की संस्कृति का स्वभाव ही कैसे जानेवाला था ? गाधीजी का सार्वभौम आदर्श हृदय से न अपनाया देश के नेताओं ने और न अपनाया भोली जनता ने । गाधीजी के आग्रह के कारण नेताओ ने गाधी-नीति को शाब्दिक सम्मति तो दी, लेकिन न तो काग्रेस का काम चला देशी भाषाओं म, न राज्य चला जनता की भाषा मे । शिक्षा के क्षेत्र मे काफी जोर करने पर भी गाधीजी अंग्रेजी का जोर कम न कर सके ।

जवाहरलालजी, राजाजी, बंगाल और मद्रास के नेता और पंजाब के राज्यकर्ता भी अंग्रेजी के ही पक्षपाती थे और हैं।

देश के नेताओं का आधार ही अंग्रेजी पर है। अंग्रेजी भाषा की मदद के बिना न तो वे राज्य चला सकते हैं, न प्रजा को सुशिक्षित, संस्कारी और स्वराज्य-समर्थ बना सकते हैं।

अंग्रेजी का महत्त्व और अंग्रेजी का राज्य कमजोर किये बिना देशी भाषाओं की जितनी भी सेवा हो सकती थी, नेहरूजी ने जरूर की।

अगर स्वराज्य सचमुच प्रजा-राज्य है तो उसका राजकाज प्रजा की भाषा में ही चलना चाहिए।

राष्ट्र की एक भाषा का आग्रह क्यों ?

राष्ट्रीय एकता मजबूत करने की समस्त देश की (हरएक नागरिक की) एक ही भाषा होनी चाहिए, यह आग्रह न शक्य है, न जरूरी। राष्ट्र का स्वरूप हम अपने कोई प्यारे सिद्धान्त को लेकर जबरदस्ती बना नहीं सकते। छोटा-सा स्वीट्जरलैण्ड को लीजिए। वह कब का एक राज्य, एक देश बन चुका है। लेकिन वहाँ की जनता तीन भाषाओं में बँटी हुई है। पश्चिम की ओर लोगों की स्वभाषा है फ्रेंच, उत्तर की ओर जर्मन और दक्षिण की ओर इटालियन। लोग तीनों में से एक ही भाषा का राज्य चलाने के लिए तैयार नहीं हैं। और इन तीनों को छोड़कर किसी बाहरी भाषा का राज्य तो हरगिज सहन नहीं करेंगे। ऐसी हालत में वहाँ का राज्य एकसाथ तीनों भाषाओं में चलता है। राज्य-कर्मचारी चुपचाप तीनों भाषा सीख लेते हैं। क्योंकि वे जानते हैं, राज्य और राज्य कर्मचारी जनता की सेवा के लिए हैं। (केवल भारत में ही राज्य चलता है राज्य कर्मचारी की सहूलियत के लिए और उनको सभालने के लिए, राष्ट्र-नेताओं के लिए। जनता तो प्राचीन काल से 'बड़ों की भाषा' के सामने दबकर चलने की आदी है ही। जनता की भाषा, राज्य भाषा बने, ऐसा आग्रह न कभी था, न आज भी है। जहाँ तक भाषा का सवाल है जनता—मूक भेड़ रही है और रहने को तैयार है।)

जन-स्तर पर अपनी भाषा की उपेक्षा

इस देश में जनता ने हिन्दी के खिलाफ न केवल आवाज उठायी, हाथ भी उठाये। लेकिन अपनी या जनता की भाषा के पक्ष में उसका आग्रह है ही नहीं। जनता को परदेशी भाषा, हमारी गुलामी की स्मारक भाषा अंग्रेजी का राज्य सर्वत्र मंजूर है—इतना ही नहीं, प्यारा भी है। ऐसा न होता तो जहाँ एक भी अंग्रेज आमंत्रित नहीं है ऐसी जगह विवाह शादी के आमंत्रण भी

लोग अंग्रेजी में न छापते और उसमें अपनी शान न मानते। बड़ों की भाषा, फिर वह अंग्रेजों की हो अथवा अंग्रेजी के भक्त नेहरूजी जैसे राष्ट्र के नेताओं की हो जनता को आदतन् शिरोधार्य है।

इसके मानी यह हुए कि जनता में स्वदेशी का आग्रह रखने जितना और स्वसंस्कृति की इज्जत करने जितना स्वाभिमान है ही नहीं। कोई भी कह सकता है कि भारत की जनता में केवल मानवता है स्वदेश-भक्ति नामक संकुचितता है ही नहीं।

कोई ऐसा न मान कि हम अंग्रेजी न सीखने के पक्ष में है। ऐसी हमारी मंशा न कभी थी, न आज ही है। जब देश के लाखो लोग अंग्रेजी सीख चुके हैं और लाखो लोगों को सिखा भी सकते हैं तो इस लाभ से वंचित रहने से राष्ट्र का नुकसान ही होगा।

अंग्रेजों के पुरुषार्थ के कारण अंग्रेजी का प्रचलन इंग्लण्ड और अमेरिका के बाहर भी काफी है। हर एक देश के महत्वाकांक्षी लोग अपना स्वार्थ और लाभ समझकर अंग्रेजी सीखते हैं। भारत को बहुत दिनों तक अंग्रेजी के द्वारा बहुत-कुछ ज्ञान हासिल करना है। बाहर की दुनिया के साथ सम्बन्ध बढ़ाना हो तो हमारे चन्द लोगों को उन-उन देशों की भाषाएँ सीखनी ही होंगी, जैसे सभी देशों के लोग करते हैं। वहाँ के लोगों को अपनी भाषा सिखाने की कोशिश भी हमें करनी होगी। (आज रूस में, चीन में और जापान में हिन्दी पढ़ाने का अच्छा प्रबन्ध है और हम एक देश में थोड़े उत्साही तरुण, लड़के और लड़कियाँ इससे लाभ उठाकर हिन्दी सीखते हैं—यह भी मैंने देखा है और वहाँ के विद्यार्थियों के सामने हिन्दी में बातचीत भी की है।)

लेकिन मान लिया कि और देश के लोग जितना पुरुषार्थ करते हैं, उतना हमसे नहीं होगा, हमारे युवक, बूढ़े होने के पहले ही थक जाते हैं और इसलिए केवल अंग्रेजी ही सीखेंगे, दूसरी भाषा नहीं—तो भी क्या यह जरूरी है कि देश का राज्य प्रजा की भाषा में नहीं, किंतु अंग्रेजी जाननेवाली मुट्ठी भर जाति के स्वदेशी लोगों की इच्छा के अनुसार और उनकी सहूलियत के लिए अंग्रेजी में ही चलना चाहिए।

भारत का अनोखापन

सारी दुनिया में एक भी देश और एक भी संस्कृति ऐसी नहीं है कि जिसमें लोग आग्रह करते हो कि जिस भाषा के साथ बच्चो का कम-से-कम परिचय है, उसी भाषा के द्वारा उनसे बातचीत की जाय। और ज्ञान के सब विषय भी उसी अपरिचित और कठिन भाषा के जरिये सिखाये जायें। बच्चो पर

इतना असह्य और अकल्प्य अत्याचार भारत मे ही हो सकता है। क्योकि हम सनातन काल से बडो की 'भाषा के दास' ही रहे। हमारे लिए कृत्रिमता स्वाभाविक बन गयी है और स्वभाषा की स्वाभाविकता विचित्र जिद जैसी मानी जाती है।

राष्ट्र के जीवन की चर्चा, जनता के सुख दुख की चर्चा अखबारो के द्वारा जनता की भाषा मे चलनी चाहिए, ऐसा स्वाभाविक नियम दुनिया के सब देशो मे पाया जाता है। लेकिन भारत तो 'तीन लोक से मथुरा न्यारी' वाला देश है। यहाँ देशी भाषा के अखबारो की न पूरी प्रतिष्ठा है, न उन्हे योग्यता के साथ चलाने का आग्रह। अगर आप चाहते हैं कि लोग आपके विचार ध्यान से सुनें और आपकी सूचनाओं की कदर करें तो आपको अग्रेजी मे ही लिखना होगा।

राज्य चलता अग्रेजी म—प्रशासन कानून और मुकद्दमा जब तक अग्रेजी म चलता है और रेलवे, डाकघर, तारघर और रोगी की चिकित्सा करनेवाला दवाखाना अग्रेजी के जरिए ही चलते हैं और सरकारी नौकरियाँ भी (फिर वह चपरासी की नौकरी ही क्यो न हो) अग्रेजी जाननेवाले को मिलती हैं तब तक बच्चो के माँ-बाप और नौकरी के उम्मीदवार अग्रेजी शिक्षा को लालायित रहेगे ही। और अब तो समाज सत्तावाद का आग्रह होने से जीवन के सब क्षेत्रो मे सरकार का ही दखल रहेगा। इसलिए राष्ट्र का एक भी आदमी अग्रेजी के बिना जी नही सकेगा। जब तक सरकार इस तरह से विदेशी है तब तक स्वदेशी का उद्घोष पनप नही सकेगा।

स्वभाषा-प्रेमी ही वोट का हकदार

तीन बातें जनता तक पहुँच गयी हैं—(१) जागृति, (२) असतोष और (३) मतदान का अधिकार।

इस इष्ट परिस्थिति से लाभ उठाकर हमे राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाना होगा और समस्त प्रजा के द्वारा जाहिर करना होगा कि स्वभाषा की प्रधानता को जो लोग पूर्णतया मान्यता देंगे उन्हींको हमारे वोट मिलनेवाले हैं। स्वभाषा के बारे मे जो विरोधी हैं, शिथिल हैं उनको, फिर वे किसी भी पक्ष के हों, हमारा वोट मिलनेवाला नहीं है। ऐसा आन्दोलन चुनाव के एक साल पहले से अगर शुरू किया जाय तो हम समझ जायेंगे कि प्रजा मे अब सच्ची जागृति आयी है। बडो की भाषा के सामने वह दबनेवाली नहीं। प्रजाकीय भाषा का अभिमान स्वय प्रजा को न हो तो उसे हम जाग्रत और स्वतत्र प्रजा कैसे कह सकते हैं?

श्री काका साहब कालेलकर, सन्निधि, राजघाट, नयी दिल्ली–१

विद्यालय-संकुल

गगामहेश मिश्र

['विद्यालय-सकुल' विषय पर नयी तालीम मे यह दूसरा लेख दिया जा रहा है। इस देश के स्कूलों के पास शिक्षा के साधन सीमित हैं। विद्यालय-सकुल द्वारा उनका अधिकाधिक उपयोग हो सकेगा। अत इस उपयोगी योजना का कार्यान्वियन होना चाहिए। स०]

विद्यालय सकुल क्यों ?

भारत सरकार के शिक्षा आयोग ने विद्यालय सकुल (स्कूल-काम्पलेक्स) की योजना देश के सामने पहली बार रखी है। इसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षा मे गुणात्मक सुधार है। आयोग के विचार से जब एक क्षेत्र के सभी विद्यालय अपना अपना निजी अस्तित्व कायम रख अपना अपना काय चलाते हैं तो उनमे कोई आपसी सम्बन्ध नही होता और न एक विद्यालय की अच्छाइयां ही दूसरे विद्यालयों तक पहुँच पाती हैं। अत आवश्यक है कि एक क्षेत्र के सभी विद्यालयो को एक तत्र मे बाँधकर उनके विकास की योजना बनायी जाय।

आज के युग मे शैक्षिक उन्नयन के माग मे निम्न तथ्य अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं —

(क) शिक्षा का प्रसार—स्वतत्रता के बाद से देश ने शिक्षा के क्षत्र मे अभूतपूर्व उन्नति की है। आज प्राय ऐसा कोई गाँव नही है जहाँ ज्ञान का दीपक न जगा हो। अस्तु आज की शिक्षा कुछ प्रबुद्ध वर्ग के व्यक्तियो तक ही सीमित नहीं रही है। उससे देश के प्राय सभी गाँव आलोकित हुए हैं। उदाहरण के लिए हम अपने प्रदेश को ही ले लें। सन् १९४५ ४६ मे यहाँ कुल प्रारम्भिक विद्यालयो की सख्या १९ हजार थी। वह १९६७ ६८ म बढकर ६०,९०० हो गयी है। इसके अतिरिक्त चतुर्थ पचवर्षीय योजना-काल म इन विद्यालयो की सख्या म ६ हजार की और वृद्धि होने की आयोजना है। सन् १९४५ ४६ मे प्रदेश के प्रारम्भिक विद्यालयो मे कुल ५०,००० अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ कार्य करती थी। उनकी सख्या सन १९६७ ६८ मे बढकर २ लाख २५ हजार हो गयी है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना में लगभग ५७ हजार अतिरिक्त अध्यापको को रखने की ओर योजना है। इसी प्रकार की वृद्धि उच्चतर माध्यमिक स्तर, विश्वविद्यालय-स्तर पर भी हुई है। सन १९४५ ४६ म

प्रारम्भिक शिक्षा पर पूर्ण शिक्षा के बजट का लगभग ३३% अश व्यय होता था, वह सन् १९६७ ६८ मे बढकर ४०% के लगभग हो गया है।

(ख) गुणात्मक सुधार की आवश्यकता—देश म शिक्षा के क्षेत्र म जहाँ सख्यात्मक वृद्धि हुई है वहाँ हम गुणात्मक दृष्टि स बडा ह्रास भी दखते हैं। इस ह्रास का प्रभाव आज नीचे से ऊपर तक सभी स्तरो पर दिखाई देता है। आज हम अनुभव करते हैं कि नागरिक का अधिकार केवल शिक्षा मात्र नहीं है वरन् शिक्षा का अच्छा होना भी आवश्यक है। इस कमी को आज सभी स्तरो पर दूर करने की आवश्यकता है। किन्तु प्रारम्भिक स्तर के लिए प्राथमिकता वाछनीय है। प्रारम्भिक शिक्षा पर सरकार का सीधा अधिकार न होने के कारण इसम अनेक कठिनाइयाँ हैं, फिर भी विद्यालय-सकुल के माध्यम से इस दिशा मे एक सफल प्रयास किया जा सकता है, ऐसा शिक्षाविदो का विश्वास है।

(ग) उपलब्ध साधनों का अधिकाधिक प्रयोग—राजकीय अनुदानो तथा स्थानीय निकायो के माध्यम से गुणात्मक सुधार करना शैक्षिक उन्नयन का एक पक्ष है और विद्यालयों के स्थानीय उन उपलब्ध साधनो क प्रयोग से गुणात्मक सुधार करना उसका दूसरा पक्ष है, जिनका अभी तक प्रयोग नही हो रहा है। हम यहाँ केवल दूसरे पक्ष पर ही विचार करना है। इसमे अध्यापको को स्थानीय सभी उपलब्ध साधनो को जुटाना होगा, चाहे उनका सम्बन्ध जनशक्ति से अथवा भौतिक साधनो से क्यो न हो।

विद्यालय-सकुल क्या है ?

विद्यालय सकुल गुणात्मक-सुधार की जीवित इकाई है।' शिक्षा आयोग ने विद्यालय-सकुल के लिए ३-४ जूनियर हाईस्कूलो तथा १०-२० प्राइमरी स्कूलो को एक माध्यमिक विद्यालय से सम्बद्ध करने की सस्तुति की है। आयोग की दृष्टि मे यह छोटे-से-छोटा ऐसा समूह है जिसकी व्यवस्था सुगमता से की जा सकती है। इस समूह मे ५ ७ प्रशिक्षित स्नातक सम्बद्ध होग। इसमे नियोजन तथा मार्गदर्शन की भरपूर क्षमता होगी।

विद्यालय सकुल-योजना

उक्त तथ्यो को दृष्टि मे रखकर प्रदेश के कुछ प्रारम्भिक विद्यालयो मे स्कूल-सकुल की योजना चलायी जा सकती है। इस कार्यक्रम के अन्तगत माध्यमिक तथा प्राथमिक विद्यालयों की शृङ्खला दो चरणो मे करना होगा। प्रथम चरण मे प्रत्येक जूनियर हाईस्कूल से ५ प्रारम्भिक विद्यालयो को सम्बद्ध किया जायगा। इसमे एक समिति का गठन किया जाय जिसमे प्रधानाध्यापक, जूनियर

हाइस्कूल अध्यक्ष हो और सम्बद्ध सभी प्रारम्भिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापक सदस्य के रूप म कार्य करें। दूसरे चरण में प्रत्येक इण्टर कालेज के साथ ३ जूनियर हाईस्कूलों तथा १५ प्रारम्भिक विद्यालयों को सम्बद्ध किया जाय। इनकी भी एक समिति हो, जिसमे इण्टर कालेज का प्रधानाचाय अध्यक्ष तथा जूनियर हाईस्कूल तथा प्राइमरी स्कूलो के प्रधानाध्यापक सदस्यो के रूप म कार्य करें। यह समिति अपने क्षेत्र के सभी जू० हाईस्कूलो तथा प्राइमरी स्कूलो के मार्ग निर्देशन तथा शैक्षिक उन्नयन सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रयास करें।

समिति को अधिक लोकतान्त्रिक बनाने के लिए उनम स्थानीय सुयोग्य व्यक्तियो को भी रखा जा सकता है।

इस प्रकार की शैक्षिक योजना को ही विद्यालय-सकुल की योजना कहते हैं। इसमे एक क्षेत्र के छोटे-बड़े सभी विद्यालय एक-दूसरे के सहयोग से सभी विद्यालयो की योजनाएं बनाते हैं तथा उनका कार्यान्वियन करते हैं।

विद्यालय-सकुल को काय रूप कैसे दिया जाय ?

विद्यालय-सकुल योजना को काय रूप देने मे पूव इस सम्बन्ध म अध्यापको का अभिनवीकरण तथा सम्बन्धित साहित्य की रचना आवश्यक है। योजना को एकसाथ पूरे प्रदेश म न चलाकर पहले कुछ चुने क्षेत्रो म ही चलाना उचित होगा। क्षेत्रो क चुनाव मे यदि प्रथम चरण मे सभी विकास क्षेत्रो मे एक-एक इण्टर कालेज तथा उसके इर्द गिर्द के विद्यालयो को लेकर प्रायोगिक परियोजनाओ के रूप मे इसे चलाया जा सके तो अधिक उत्तम होगा। कार्य की सफलता के लिए सम्बन्धित आवश्यक साहित्य का प्रादेशिक भाषाओ म होना वाछनीय है। किन्तु यदि हम आरम्भ मे कुछ प्रमुख कार्यों को लेकर ही चलना चाहते हो तो उसके लिए अधिक साहित्य की यथाशीघ्र आवश्यकता भी नही होगी। जिस समय इस योजना को पूरे प्रदेश मे एकसाथ प्रारम्भ किया जायगा उस समय जिले के सभी प्रधानाध्यापकों प्रधानाचार्यों को जिला-स्तरीय गोष्ठियो म बुलाकर योजना की कुछ प्रमुख बातो को बताना आवश्यक हो जायेगा।

हम यहाँ विद्यालय-सकुल मे केवल उन योजनाओं की ओर ही आपका ध्यान आकृष्ट करगे जिनके लिए अधिक प्रबन्ध तथा धन की आवश्यकता नहीं होगी। इसम भी यदि हम जू० हाईस्कूलो के इद गिद के प्रारम्भिक विद्यालयो को लेकर इस योजना का श्रीगणश करें तो प्रशासन की दृष्टि से अधिक योग्य होगा।

विद्यालय-सकुल के प्रमुख कार्य कलाप

(१) छात्रों की सख्या तथा उपस्थिति म उन्नति।

(२) बहुकक्षा शिक्षण के लिए समायोजन।

(३) विभिन्न विषयो के पढाने मे उन्नति

(४) श्यामपट्ट तथा चटी का सभी विद्यालयो मे प्रयोग ।

(५) प्रात प्रार्थना तथा उसके साथ कभी कभी शारीरिक व्यायाम ।

(६) शक्षणिक सामग्री की तैयारी तथा उसका उचित प्रयोग ।

(७) मूल्यांकन तथा कक्षोन्नति के नियमो मे एकता ।

(८) सम्बद्ध विद्यालयो की बौद्धिक तथा खेल प्रतियोगिताएँ ।

(९) केन्द्रीय विद्यालयो पर निर्देश पुस्तको तथा अन्य पठन-सामग्रियो की विशेष व्यवस्था जो समय-समय पर विद्यालयो को उपलब्ध हो सकें।

(१०) अप्रशिक्षित तथा अन्य अध्यापको का सेवाकालीन प्रशिक्षण ।

(११) अच्छे प्रवक्ताओ तथा विषय अध्यापको के भाषणो की व्यवस्था ।

(१२) विज्ञान प्रयोगशालाओ का दूसरे विद्यालयो के छात्रो के लिए समय समय पर प्रयोग जहाँ छात्र स्वय कुछ प्रयोग कर सकें।

(१३) केन्द्रीय विद्यालय सम्बन्धित सभी विद्यालयों से वार्षिक सस्थागत योजनाएं बनवायें और उनका कार्यान्वयन करायें ।

(१४) केन्द्रीय विद्यालयो मे जब प्रदर्शनी आदि की व्यवस्था हो तो सम्बन्धित विद्यालयों के छात्रो को भी बुलाकर दिखाया जाय ।

(१५) सहायक सामग्री, माडल उपकरण तथा पुस्तको का आदान-प्रदान।

(१६) अन्य स्थानीय परिस्थितियो की आवश्यकताओ के समाधान ।

निष्कर्ष —(१) विद्यालय-सकुल के माध्यम से विद्यालयो मे शैक्षिक उन्नयन की दिशा म कुछ सुधार हो सकता है। (२) ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि इससे विभागीय सभी अधिकारियो को अपने कार्यों को और अधिक अच्छी तरह सम्पादित करने की सुविधाएँ भी आगे चलकर मिल सकेगी। (३) इनस विभागीय तथा ऊपर की योजनाएँ विद्यालयो तक सुगमता से पहुँच सकेगी।

(४) साथ-साथ अध्यापको की कठिनाइयो को भी ऊपर तक पहुँचाने मे केन्द्रीय विद्यालय अपना दायित्व निभा सकेंगे ऐसी अपेक्षा की जाती है। (५) अध्यापको की व्यावसायिक योग्यता के विकास मे भी विद्यालय-सकुल प्रेरणा प्रदान करेगा। केन्द्रीय विद्यालयो की प्रयोगशालाओ पुस्तकालयो तथा सहायक सामग्रियो का अधिकाधिक उपयोग सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार विद्यालय सकुल की योजना शैक्षिक उन्नयन के सभी पहलुओ के लिए नि सन्देह उपयोगी सिद्ध होगी। विद्यालय-सकुल-योजना तमिलनाडु तथा प० बगाल म गत एक वर्ष से चल रही है और उनसे विद्यालयों के व्यक्तिगत विकास काफी सहयोग मिल रहा है।

श्री गंगामहेश मिश्र प्राध्यापक, राज्य शिक्षा संस्थान उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्राइमरी स्कूलों में गुणात्मक सुधार की योजना

[राज्य शिक्षा संस्थान उत्तरप्रदेश के तत्वावधान में प्रदेश के प्रारम्भिक स्कूलों में गुणात्मक सुधार के लिए मंडलीय गोष्ठियाँ आयोजित की गयी थीं। इन गोष्ठियों ने ठोस और व्यावहारिक सुझाव दिये हैं उनका लाभ अगर हमारे शैक्षिक कार्यकर्ता उठायेंगे, तो निश्चय प्रारम्भिक शिक्षा में सुधार होगा। —स०]

अल्पकालीन संस्तुतियाँ

प्राइमरी पाठशालाओं में गुणात्मक सुधार की योजना के अन्तर्गत पाँच विशिष्ट दिशाओं में कार्य किया जाना अपेक्षित है, जिनका उल्लेख हम पंचसूत्रों की संज्ञा देकर इस प्रकार कर सकते हैं

१. स्वच्छता
२. स्वास्थ्य
३ भाषा की शिक्षा
४. गणित की शिक्षा
५ सामाजिक विषय की शिक्षा

इन सूत्रों से सम्बन्धित निम्नलिखित संस्तुतियाँ दी जा रही हैं

१. स्वच्छता

व्यक्तिगत

(१) छात्रों की व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्वच्छता का निरीक्षण। आवश्यकतानुसार शैक्षिक सत्र के प्रारम्भ में सुनियोजित स्वच्छता अभियान का कार्यान्वयन। इसके लिए अधिकतम एक सप्ताह तक, छात्रों के वस्त्रों को धोना इत्यादि, सामूहिक क्रियात्मक कार्य आदर्श के रूप में किया जा सकता है।

(२) आँख, नाक, कान, नाखून की सफाई एवं नाखून काटना तथा बाल बनवाना (विशेषकर बालिकाओं के लिए)।

(३) विद्यालय में ही छोटी कक्षाओं के बालक तथा बालिकाओं के स्नान आदि की भी व्यवस्था करना।

(४) छात्रों को बस्ता, झोला, पुस्तक और कापियों को रखने का आदर्श बताना। इनकी सफाई, लाने और ले जाने का ढंग तथा उनका निरीक्षण करना।

(एक सप्ताह के पश्चात् उद्‌टंकित क्रियाएँ सप्ताह में केवल दो दिन रखी जायें। इसके लिए शनिवार स्थायी रूप से रखा जा सकता है तथा दूसरा दिन

बुधवार हो सकता है। यह क्रिया एक मास तक आवश्यकतानुसार चालू रखी जा सकती है, तदनन्तर केवल शनिवार को ही रखी जा सकती है। सफाई कराने के लिए साबुन, तौलिया आदि का प्रबन्ध 'जूनियर रेड क्रास फंड' से कराया जा सकता है।)

(५) कक्षा १ व २ के बच्चो के लिए काजल लगाने की व्यवस्था भी उत्साही अध्यापक कर सकते हैं।

(६) अभिभावको की गोष्ठियो मे अध्यापक इस कार्य की महत्ता पर अधिक बल दें, ताकि वे अपने बच्चों को सफाई के साथ स्कूल भेजें।

वातावरण सम्बन्धी

(१) जिन स्कूलो के निजी भवन है उनकी पुताई तथा सजावट वर्ष मे कम-से-कम एक बार होनी चाहिए।

(२) अध्यापक इस ओर विशेष ध्यान दें कि बच्चे कक्षा की दीवारो तथा फर्श को रोशनाई इत्यादि छिड़ककर गन्दा न करें। इसलिए ढक्कनदार दावात का प्रयोग कराने का प्रयास किया जाय।

(३) भवन विहीन स्कूलो मे, विशेषकर, प्रतिदिन झाड़ू लगवाकर और नियमानुसार फर्शों को बिछवाकर शिक्षण कार्य प्रारम्भ होना चाहिए।

(४) प्रत्येक शनिवार को विद्यालय के कच्चे फर्श की लिपाई बडी कक्षा के बालको द्वारा करायी जाय तथा मकडी के जाले साफ कराये जायें।

(५) कागज के टुकडे आदि डालने के लिए कूडेदान रखे जायें तथा बच्चे इनके उपयोग की विधि से अवगत कराये जायें। यदि कूडेदानो का रखना सम्भव न हो तो विद्यालय के पिछले हिस्से के एक कोने मे बडा गड्ढा खोदकर कूडा उसमे डालने की आदत बालको मे डाली जाय।

(६) कुम्हार के यहाँ से खप्पर मे राख या बालू भरकर थूकदान की व्यवस्था की जाय। ऐसे थूकदान ३ और ४ स्थानो मे खम्भे के पास या दीवार के कोने मे रखे जा सकते हैं।

(७) विद्यालय का कूडा फेंकने के लिए भवन से कुछ दूरी पर स्थान नियत किया जाय। एक बडा गड्ढा खुदवा लेना उपयुक्त होगा।

(८) मूत्रालय, यदि विद्यालय मे न हो, तो भवन से कुछ दूरी पर पी० आर० ए० आई० के नमूने पर खपडे अथवा टूटे घडे की सहायता से कृत्रिम रूप की एक लैट्रीन बनायी जा सकती है। पर ध्यान देने की यह बात है कि प्रत्येक बच्चा उसे ही इस्तेमाल करे और इधर-उधर बैठकर गन्दगी न फैलाये।

(९) विद्यालय प्रागण की स्वच्छता के लिए जगल-जलेबी, सदाबहार अथवा ढेंचा, वेहया लगवाकर स्कूल की हदबंदी भी करना आवश्यक होगा।

(१०) *स्वच्छता-सम्बन्धी मूल्यांकन प्रधानाध्यापक को रखना होगा।* प्रत्येक माह के अन्त मे प्रत्येक कक्षा से "सर्वाधिक स्वच्छ" निर्वाचित किया जाय और उसकी प्रशसा की जाय। सूची मे नामाकन करके विद्यालय के प्रमुख कक्ष मे तत्सम्बन्धी कार्ड-बोर्ड का पटल टाँगा जाय।

(११) विद्यालय-प्रागण मे सम्भावना के अनुसार फूल लगाय जायँ तथा जहाँ सम्भव हो पुष्टिकारक, साग-सब्जियो का उत्पादन किया जाय।

(१२) विद्यालय-भवन की भित्तियों पर कार्ड बोर्ड पर प्रेरणादायक आदर्श वाक्य एव सुभाषित लिखकर टागे जायें।

२. स्वास्थ्य

(१) स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यक नियम लिखकर विद्यालय मे टाँगे जायें।

(२) प्रतिदिन प्रत्येक कक्षा से, ग्रीष्म मे प्रात और जाडे मे शाम को, खेल तथा पी० टी० एक घण्टा अवश्य करायी जाय। खेल तथा पी० टी० बालकों के वय के अनुसार होनी चाहिए।

(३) खेल तथा पी० टी० के घण्टो मे समय समय पर बच्चों से आसन भी कराये जायें।

(४) सभी बालकों को सक्रामक रोगो से बचने के लिए टीके लगवाये जायें, विशेषकर चेचक के टीके। प्रधानाध्यापक आवश्यकतानुसार उप-विद्यालय निरीक्षक को लिखकर टीका लगानेवाले कर्मचारियो को तदर्थ भेजने के लिए प्रार्थना करें।

(५) अस्वस्थ एव दुर्बल छात्रों के अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उचित सलाह दी जाय।

(६) जिला स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा अथवा अन्य किसी चिकित्सक द्वारा बच्चों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी जाँच माह मे एक बार अवश्य करायी जाय और उनके द्वारा दिये गये निर्देश का पालन कराया जाय।

(७) विद्यालय मे क्रीडा-शुल्क से 'प्राथमिक चिकित्सा-पेटी' क्रय करके रखी जा सकती है। अमृतधारा, नैनोल एव कान बहने की दवा आदि रखना उपयोगी होगा।

(८) प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्र अथवा जिला-परिषद्-चिकित्सालय अथवा सरकारी अस्पताल से आवश्यकतानुसार 'मल्टी-विटेमिन-टेब्लेट्स'(मल्टी विटेमिन गोलियाँ) दिलवाकर छात्रो की सहायता की जा सकती है।

(९) जहाँ तक सम्भव हो मध्याहार की सामूहिक योजना आयोजित की जाय। विद्यालय वाटिका मे उत्पन्न खाद्यसामग्री व शाकसब्जी (यदि होती हो) का प्रयोग या बच्चे अपने अपने घरो से दोपहर को खाने हेतु नाश्ता लायें और सामूहिक रूप से सहभोज करें, यह प्रवृत्ति उत्पन्न करने की चेष्टा की जाय।

(१०) शुद्ध पीने के पानी की उचित व्यवस्था की जाय। जिन स्कूलो मे नल नही है वहाँ यदि सम्भव हो सके तो कुछ चन्दा बालको द्वारा, विद्यालय क्षेत्र के सम्पन्न व्यक्तियो द्वारा तथा कुछ रुपया क्रीडा शुल्क से लगाकर नल लगवाने की व्यवस्था की जाय।

(११) 'पौष्टिक आहार' के अन्तर्गत बच्चो को पत्तीदार शाक एव एकाधिक दिन तक भिगोकर अकुरित चने या अन्य दाने चबवाने की प्रेरणा देनी चाहिए। इस तत्त्व को अभिभावको को भी समवेत रूप से बुलाकर बताया जा सकता है।

(१२) विद्यालय भित्ति पर छात्रो की ऊँचाई नापने का पैमाना बनाकर उन्हे स्वय अपनी नाप लेकर रिकार्ड करने की प्रेरणा दी जा सकती है। इसी तरह उन्हे अपना भार लेने की भी प्रेरणा दी जा सकती है। यह भार वे गाव की चक्की पर ले सकते हैं।

(१३) अच्छे स्वास्थ्यवाले १ या २ छात्रो को पुरस्कार या प्रतिष्ठा-प्रमाणपत्र देने से बालको मे उत्साहवर्धन होगा। इस कार्य के व्यय-हेतु जूनियर रेडक्रास से चन्दा लिया जा सकता है।

३ भाषा शिक्षण

पाठ्यक्रम—(क) प्रत्येक स्कूल मे पाठ्यक्रम छपवाकर भिजवाया जाय और यदि सम्भव हो सके तो प्रत्येक उपविद्यालय-निरीक्षक पाठ्यक्रम अपने शिक्षको को नकल करा दें या डायरियों मे छपवाकर वितरित कर दें।

(ख) प्रत्येक विषय के पाठ्यक्रम का मासिक तथा साप्ताहिक विभाजन भी होना आवश्यक होगा। निरीक्षक-वर्ग देखे कि पाठ्यक्रम का पालन शुद्ध रूप से किया जाय तथा डायरियाँ भी नियमानुसार भरी जायँ।

(ग) कक्षा १ का शिक्षण यथासम्भव प्रशिक्षित अध्यापक द्वारा ही कराया जाय।

(१) पाठ्यक्रम म निर्धारित पद्य-पक्तियो को प्रत्येक कक्षा मे अनिवार्य रूप से कण्ठाग्र कराया जाय।

(२) मौलिक भाव प्रकाशन-सम्बन्धी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाय और कहानी-कथन, वार्तालाप, कथनोपकथन, चित्रो म अकित तथ्यो का अपनी वाणी

म प्रकाशन तथा उत्तरों के प्रश्न बनवाना, जैसे—मौखिक अभ्यास अपरिहार्य रूप म सम्पन्न कराये जायें।

(३) सुलेख की शिक्षा को प्रभावकारी बनाया जाय। अध्यापक नरकुल या मुरकवेद की लेखनी का अनिवार्य रूप से प्रयोग करायें। कलम बनाने के लिए अध्यापक चाकू रखें। वे समय पर छात्रों की कलम बना दें और नुक्ता काट दें। अच्छा हो कि अध्यापक प्रत्येक छात्र की अभ्यास पुस्तिका म अपनी कलम से सुलेख की आदर्श पंक्ति अंकित करें और सशोधन मे लाल स्याही का प्रयोग करते हुए छात्रों के वर्ण विन्यास को ठीक करें।

(४) बच्चोंको कलम पकडने का अभ्यास ठीक ढग से कराया जाय तथा लेख के समय बच्चो के आसन पर भी ध्यान देना आवश्यक है। लेख आरम्भ करने के पूर्व बालको को खडी तथा पडी (।—) लाईनो का अभ्यास कराया जाय। अच्छी लिखावट के लिए यह आवश्यक है कि कक्षा १ तथा २ के बालक विशेषकर तख्ती का ही प्रयोग करें। अन्य कक्षाओ मे भी भाषा के घण्टे मे यदि सम्भव हो तो तख्ती पर सप्ताह मे एक या दो बार सुलेख कराया जा सकता है।

(५) वर्तनी (स्पेलिंग) सम्बन्धी शिक्षा के लिए श्रुतलेख लिखाया जाय। उसका सशोधन नियमित रूप से सम्पन्न किया जाय। कृत सशोधन का पुनर्लेखन छात्रों से कराया जाय और उसका पुन निरीक्षण अध्यापक द्वारा हो।

(६) एक प्रकार की ध्वनिवाले शब्दो तथा अन्य शब्दो का छात्रों के द्वारा उच्चारणाभ्यास (प्रोन्यूनसिएशन ड्रील) कराया जाय और छात्रो की व्यक्तिगत कठिनाइयो का परिहार अध्यापक करे। एक प्रकार की ध्वनिवाले शब्द हैं, यथा—धर्म, चर्म, कर्म आदि।

(७) 'ब', 'भ', 'श', 'ष', 'स' का प्रभावोत्पादक रूप म ज्ञान कराया जाय, जिससे त्रुटि की सम्भावना न रहे।

(८) छात्रो की लेखन सम्बन्धी सामान्य त्रुटियो की सूची बनायी जाय और उनके सामूहिक परिहार का विधान किया जाय।

(९) शिक्षण सामग्री का प्रयोग यथासम्भव किया जाय, जैसे—कार्ड बोर्ड के अक्षर, वर्तनी चार्ट इत्यादि। इसके अतिरिक्त अध्यापक श्यामपट्ट पर स्वय रेखाचित्रो की सहायता से भी पढा सकता है।

(१०) अध्यापक पाठ्य पुस्तको मे उपलब्ध चित्रो का परिवर्धन करें और छात्रो से उन पर वार्तालाप करायें।

(११) कक्षा ४ व ५ मे मौलिक रचना (लेख, पत्रलेखन, कहानी लिखना)

विषयक प्रति सप्ताह एक अभ्यास अवश्य कराया जाय। इस कार्य की पृष्ठ-भूमि के रूप मे मौखिक कार्य अपरिहार्य है।

(१२) बाल सभा के अधिवेशनो मे अभिनय, सभाषण, कथनोपकथन, वाद-विवाद, सवाद आदि के अभ्यास कराये जायें।

(१३) छात्रो की अभ्यास-पुस्तिकाओ का मासिक ५% प्रधानाध्यापक देखें और २% उपविद्यालय निरीक्षक वर्ष मे दो बार देखें और निरीक्षण आख्या मे प्रतिवेदन अंकित करें।

४ गणित की शिक्षा

निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुपालन करते हुए निम्नांकित कार्य प्रणाली पर बल दिया जाय —

(१) कक्षा १ मे इकाई, दहाई व सैकडा का इस प्रकार अभ्यास कराया जाय कि कक्षा २ मे पहुँचते पहुँचते छात्र किसी भी सख्या की इकाई दहाई बिना किसी विशेष आयास प्रयास के बता सकें। १०० मे दहाई व सैकडा का ज्ञान कराना आवश्यक है। कक्षा १ मे इसके अतिरिक्त उनतीस, उन्तालिस, उन्चास, उन्सठ उन्हत्तर, उन्नासी सख्याओ का ज्ञान अगली दहाई मे से एक कम बताकर उच्चारण बताते हुए कराया जाय। पहाडे ८ तक समझाये व याद कराये जायें और कक्षा २ मे १५ तक। कक्षा ३ मे २० तक पहाडे बताने मे मौखिक अभ्यास पर बल दिया जाय, केवल रटाई ही न करायी जाय। यथा—
३ × ८ = २४, ८ × ३ = २४, ८ + ८ + ८ = २४।

(२) अंतिम दो घण्टों मे बारी बारी से सामूहिक रूप मे गिनती व पहाडो का मौखिक अभ्यास नित्य कराया जाय। नेतृत्व के लिए हर छात्र को अवसर देना होगा। गिनती व पहाडो के चार्ट बच्चो से बनवाये जायें।

(३) कक्षा ३ से ५ तक १ या २ सवाल घर से करके लाने को देने चाहिए। ये सवाल नित्य पठित अभ्यास से सम्बन्धित हो। वतमान गणित की पुस्तकों मे प्रश्नावली अल्प है। अध्यापक को स्वय प्रश्न देने होंगे, पर प्रश्नावली मे विविधता अनिवार्य है।

(४) मौखिक गणित पर विशेष बल दिया जाय। वतमान मीटरिक पद्धति व दशमलव के आधार पर प्रश्नो की रूपरेखा तैयार करना चाहिए।

(५) रगीन तीलियाँ गट्टियाँ, गोलियाँ, इमली के चिया व ककड तथा फलो की गुठलियो का शिक्षण सामग्री के रूप मे प्रयोग उपयोगी होगा।

(६) मीटरिक बाँट व पैमानो का निश्चित ज्ञान व अभ्यास कराया जाय। जैसे—ग्राम, किलोग्राम, लीटर, मीटर आदि के प्रयोग का अभ्यास भी कराया

जाय। विभिन्न बाँटो के भार के बराबर पत्थर के टुकडो का वास्तविक बाँटो के प्रभाव मे प्रयोग किया जा सकता है।

(७) सदा कदा दुकानदार व ग्राहक बनकर क्रय विक्रय, तौलने, जोडने व घटाने का अवसर दिया जाय। सिक्कों के प्रतिरूपो (कार्डबोर्ड के) का प्रयोग सुरुचिपूर्ण रहेगा।

(८) परिमापन का वास्तविक ज्ञान कराने के लिए खेत के मैदान की, स्कूल के कमरो की बालको से नाप करा दी जाय। अभ्यास इतना कराया जाय कि बालक दूरी, भार, ऊँचाई आदि को आँककर सही अनुमान लगाने म सक्षम हो सकें। सुतली या डोरी द्वारा मीटर क पमाने बनवाकर बच्चो को नाप का ज्ञान कराया जा सकता है।

५ सामाजिक विषय

इतिहास (१) स्थानीय इतिहास की मुख्य मुख्य बातो का ज्ञान कराया जाय जैसे-बुन्देलखण्ड मे आल्हा ऊदल, झाँसी की रानी, वाराणसी मे सारनाथ, महात्मा बुद्ध आदि। इसी परिप्रेक्ष्य म प्रत्येक जिले म ऐतिहासिक इतिवृत्ति की खोज की जानी चाहिए।

(२) पाठो का अभिनय। ऐतिहासिक घटनाओ के सम्बन्ध म रोचक कथाएँ सुनायी जायँ।

(३) ऐतिहासिक महापुरुषो के समयक्रम का बोध कराने के लिए उपयुक्त समय सारिणी बनायी जाय।

(४) चित्रो का परिवधन किया जाय। पाठो के विकास म छात्रो का सहयोग अपरिहार्य है। उन्हे मौखिक रूप म भाग लेने के निमित्त अधिकाधिक प्रबुद्ध किया जाय।

भूगोल (१) भूगोल के पाठ घर से प्रारम्भ किये जायँ। पास-पडोस की सैर मे कुओ, तालाब पोखर, नाले, नदी टीले आदि का अवलोकन कराया जाय।

(२) दिशाओ का ज्ञान सूय, चन्द्रमा, ध्रुवतारा, कुतुबनुमा की सहायता से कराया जाय।

(३) कक्षा ३ मे ग्लोब का परिचय कराया जाय। कक्षा ४ व ५ मे ग्लोब-सम्बन्धी बातें कुछ अधिक विस्तार के साथ बतायी जायँ। यह भी ज्ञान कराया जाय कि सम्पूर्ण पृथ्वी के अनुपात मे छात्रो के देश, प्रदेश, जनपद का कितना भाग आता है।

(४) कक्षा ४ व ५ म भू रचना वनस्पति पशु एव उपज आदि के अकन

करने की प्रेरणा दी जाय।

(५) मानचित्र के अनुमानित पैमाने का वास्तविक अभिप्राय छात्रों को बताया जाय।

(६) सम्बन्धित मानचित्रों में स्थान, नगर आदि की स्थिति समझने के निमित्त छात्रों की क्रियाशीलता को सचेष्ट किया जाय।

नागरिक शास्त्र (१) छात्रों को शिष्टाचार से सम्बन्धित निम्न बातों का क्रियात्मक ज्ञान कराना, जैसे

१–बड़ों को प्रणाम करना
२–धन्यवाद, कृपया, श्रीमान् शब्दों का प्रयोगात्मक ज्ञान कराना,
३–विद्यालय में बैठने का ढंग,
४–सम्बोधन की उचित रीतियाँ बताना,
५–अतिथि-सत्कार के मूलतत्त्व,

(२) मार्ग पर चलने का ढंग, सड़क पार करने के नियम।

(३) बालसभा एवं विद्यालय-व्यवस्था के माध्यम से ग्रामसभा, न्याय-पंचायत, जिला परिषद् एवं नगरपालिका की रचना का ज्ञान कराया जाय।

(४) मानीटर-पद के अतिरिक्त उत्सव-मंत्री, स्वास्थ्य-मंत्री, क्रीडा मंत्री आदि का भी चुनाव कराया जाय।

(५) राष्ट्रीय दिवस—१५ अगस्त, ५ सितम्बर, २ अक्तूबर, १४ नवम्बर तथा २६ जनवरी को मनाना। इसमें छात्रों का अधिक योगदान हो।

(६) जिले के अधिकारियों की सूची व उसका व्यावहारिक ज्ञान छात्रों को दिया जाय।

(७) स्थानीय मेलों में स्वयंसेवक टोलों व रेडक्रास दल भेजना।

(८) छात्रों की पंचायती अदालत की संरचना की जाय और उन्हें अपनी समस्याओं का निराकरण करने की प्रेरणा दी जाय। कार्यवाही-पंजिका मिनट-बुक रखी जाय।

(९) देश के नेताओं तथा राष्ट्रीय महापुरुषों के चित्रों की शृङ्खला विद्यालय में रखी जाय और उनका परिचय छात्रों को कराया जाय।

(१०) बालकों में यह भावना विकसित की जाय कि उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग उन्हें आपस में मिलजुलकर करना है तथा अपने से अधिक दूसरे की सुविधा का ध्यान रखना है।

परीक्षाएँ (१) पूरे सत्र में तीन परीक्षाएँ ली जायँ। त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाएँ क्रमानुसार २०, ३० तथा १०० पूर्णाङ्कों में ली जायँ।

(२) प्रत्येक परीक्षा के अंक जोड़े जायँ।

प्रपत्र 'अ'—ह्रास

कक्षा ....

क्रम संख्या	पंजीकृत संख्या	छात्र/छात्रा का नाम	अभिभावक का नाम	प्रवेश तिथि	कक्षोन्नति की तिथि					पाठशाला छोड़ने की तिथि	पाठशाला छोड़ने का कारण	पाठशाला में लाने का प्रयास			अन्य
					कक्षा १	कक्षा २	कक्षा ३	कक्षा ४	कक्षा ५			प्रधानाध्यापक द्वारा	अध्यापक द्वारा	निरीक्षक द्वारा	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

प्रपत्र 'ब'—अवरोध

कक्षा... . . ..

क्रम संख्या	पंजीकृत संख्या	छात्र/छात्रा का नाम	अभिभावक का नाम	प्रवेश तिथि	कक्षोन्नति की तिथि					फेल होने का कारण	अन्य
					१	२	३	४	५		
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

ह्रास एवं अवरोध

इसकी समस्या का समाधान उपर्युक्त सुझावों के क्रियान्वयन से प्राप्त होगा, फिर भी कक्षावार ह्रास और अवरोध की तालिकाएँ संलग्न प्रपत्र 'अ' और 'ब' पर रखी जायें। इन प्रपत्रों पर सूचियाँ प्रत्येक वर्ष ३१ जुलाई तक अवश्य बना ली जायें। प्रधानाध्यापक का यह कर्तव्य होगा कि वह व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक छात्र जो ह्रास तथा अवरोध के विषय बन गये हैं उनको देखें और सहायक अध्यापकों को उसके परिहार्य तथा निवारण के सम्बन्ध में उचित निर्देश दें और अपने व्यक्तिगत प्रयास भी करें, जिसका उल्लेख प्रपत्र 'अ' 'ब' पर करें। इस सम्बन्ध में वर्ष में दो बार इन प्रपत्रों का अवलोकन कर प्रति उप विद्यालय निरीक्षक अपने इन प्रयास से उप विद्यालय निरीक्षक को अवगत करायें।

दीर्घकालीन संस्तुतियाँ

(१) अध्यापक, प्रधानाध्यापक, निरीक्षक या अन्य शिक्षा विभागीय पदाधिकारी वर्गों की शिक्षा को विकसित करने के लिए उचित रूप में अधिकार सम्पन्न किया जाये। उन्हें विभागीय उच्चाधिकारियों द्वारा प्रोत्साहित एवं प्रशंसित किया जाय। यह प्रशंसा तथा पुरस्कार प्रमाण-पत्र या पदोन्नति के रूप में किया जाना चाहिए।

(२) विद्यालय-भवन एवं शिक्षोपकरणों के अनुदान आदि के उपयोग का भार अधिकारियों पर रहना चाहिए।

(३) प्राथमिक-शिक्षा, जिसका दायित्व स्थानीय निकायों पर है उनसे हटाकर शिक्षा विभाग की एक प्रथम इकाई के रूप में होना चाहिए।

(४) अध्यापकों पर जो राजनैतिक प्रभाव पड़ रहा है, उसे समाप्त करने की दिशा में प्रयास अपेक्षित है और यह तभी हो सकता है जब कि उसे विकास-खण्ड, जिला परिषद् और नगरपालिकाओं की छत्र छाया से हटा लिया जाय।

(५) प्रौढ़ शिक्षा को प्रतिस्थापित करने की दिशा में योजना बनानी चाहिए।

(६) प्रति उप विद्यालय निरीक्षक और दीक्षा-विद्यालयों के अध्यापकों के परस्पर स्थानान्तरण करने चाहिए जिससे कि शिक्षण तथा क्षेत्र के अनुभव सम्मिलित हो सकें और पारस्परिक सम्पर्क बना रहे। इसी प्रकार दीक्षा विद्यालय के प्रधानाध्यापक तथा उप विद्यालय निरीक्षक का भी पारस्परिक स्थानान्तरण होना चाहिए।

(७) प्राइमरी स्कूलो मे कम से-कम ५ अध्यापक तथा कक्षा १ मे प्रत्येक चालीस छात्रों पर एक अध्यापक दिया जाय।

(८) यथासम्भव सभी अध्यापक प्रशिक्षित हो।

(९) पाठ्यक्रम मे सुधार किया जाय :

अ–इतिहास के पाठ तिथि क्रम (क्रोनोलौजिकल आर्डर) के अनुसार रखे जायें।

ब–विज्ञान मे आधुनिक ज्ञान की सूक्ष्म बातें सरल व साधारण ढग से बालको को बतायी जायें।

(१०) स्कूल की स्थिति (साइट) प्रति उप विद्यालय निरीक्षक की सस्तुति के अनुसार हो।

(११) स्कूलो मे साज सज्जा एव शिक्षण-सामग्री उपलब्ध की जाय।

(१२) प्रत्येक विद्यालय मे अध्यापको तथा छात्रो के लिए उपयोगी पुस्तको से पूर्ण पुस्तकालय खोले जायें। इन पुस्तको का चयन उप-विद्यालय निरीक्षक तथा शिक्षा-अध्यक्ष द्वारा किया जाय।

(१३) दो पाली योजना असफल रही है अत समाप्त की जाय।

(१४) विभाग द्वारा ऐसा आदेश हो कि प्रवेश केवल जुलाई तथा जनवरी माह म ही किय जायें।

['शैक्षिक उन्नयन पर विचार-गोष्ठी की आख्या'' राज्य शिक्षा सस्थान, उत्तर-प्रदेश से साभार]

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १८
अंक : १०
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

मई, '७०

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

ग्राम-स्वराज्य कोष

सर्व सेवा संघ की १७, १८ और १९ मार्च का पूना में हुई बैठक में निश्चय किया गया था कि देशभर से एक करोड़ रुपये का कोष एकत्र कर भूदान-आन्दोलन के जनक आचार्य विनोबा भावे को ११ सितम्बर १९७० को समर्पित किया जाय। वह उस दिन ७५ वर्ष के हो रहे हैं।

उक्त निश्चय का अनुकरण कर ग्राम-स्वराज्य कोष की एक केन्द्रीय समिति का गठन किया गया जो कोष-संग्रह के सम्बन्ध में देश के भिन्न-भिन्न भागों में काम कर रहे सर्वोदय-कार्यकर्ताओं को दिशा-निर्देश देगा। इस समिति में निम्नलिखित व्यक्ति हैं :—

१-श्री जयप्रकाश नारायण अध्यक्ष २-श्री उ० न० ढेबर उपाध्यक्ष
३-श्री श्रीमन्नारायण उपाध्यक्ष ४-श्री एन० महालिंगम् उपाध्यक्ष
५-श्री रं० रा० दिवाकर सदस्य ६-श्री एस० जगन्नाथन् सदस्य
७-श्री ठाकुरदास बंग सदस्य ८-श्री रामेश्वर ठाकुर कोषाध्यक्ष
९-श्री सिद्धराज ढड्ढा महामंत्री १०-श्री राधाकृष्ण मंत्री
११-श्री देवेन्द्रकुमार गुप्ता मंत्री १२-श्री चंदनसिंह भरकतिया मंत्री

राष्ट्रपति श्री वराह गिरी वेंकट गिरी ने १८ अप्रैल को राष्ट्रपति भवन में आयोजित एक सादे, किन्तु प्रभावशाली समारोह में ग्राम-स्वराज्य कोष के लिए २५०० रुपये का प्रथम दान देकर कोष संग्रह का शुभारंभ किया। उक्त राशि ग्राम-स्वराज्य कोष की केन्द्रीय समिति के अध्यक्ष श्री जयप्रकाश नारायण ने ग्रहण की।

राष्ट्रपति ने ग्राम-स्वराज्य कोष की शुरुआत करते हुए निम्न वक्तव्य दिया : "आचार्य विनोबा भावे की ७५ वी जन्मतिथि के अवसर पर उन्हें समर्पण किये जानेवाले कोष में पहला दान देते हुए मुझे बड़े गौरव और सौभाग्य का अनुभव हो रहा है। सर्व सेवा संघ ने जो इस कोष का आयोजन कर रहा है, इसका नाम 'ग्राम-स्वराज्य कोष' उचित ही रखा है। इस कोष का उपयोग ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य के विनोबाजी के महान कार्य को आगे बढ़ाने के लिए होगा। १९ वर्ष पहले आज के ही दिन विनोबाजी के द्वारा तेलंगाना में भूदान आंदोलन का आरंभ हुआ था। आज यह आंदोलन सारे देश में फैल गया है और इसने दुनिया का ध्यान आकर्षित किया है। मुझे आशा है कि जिस कोष का अब प्रारंभ किया जा रहा है वह विनोबाजी के लक्ष्य की पूर्ति में मदद पहुँचायेगा। मैं श्री जयप्रकाश नारायण और उनके साथियों के प्रयत्नों की सफलता चाहता हूँ।"

नयी तालीम : मई '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य

गांधी जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर २ अक्तूबर से गांधीजी की वाणी घर घर पहुँचे, इस दृष्टि से गांधीजी का अमर जीवनी, कार्य तथा विचारों से सम्बन्धित लगभग १५०० पृष्ठों का अत्यन्त उपयोगी और चुना हुआ साहित्य सेट केवल रु० ७ ०० में दिया जा रहा है और लगभग १००० पृष्ठों का साहित्य रु० ५.०० में।

प्रत्येक संस्था तथा व्यक्ति को इस अल्पमोला और बहुगुणी साहित्य-सेट के प्रचार प्रसार में सहायक होना चाहिए, ऐसी आशा और अपेक्षा है।

पृष्ठ १५००, रु० ७–००

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१–आत्मकथा १८६६–१९१६	गांधीजी	१ ०६
२–बापू कथा १९२०–१९४८	हरिभाऊ उपाध्याय	२ ५०
३–तीसरी शक्ति १९४८–१९६६	विनोबा	२ ५०
४–गीता बोध व मंगल प्रभात	गांधीजी	१.००
५–मेरे सपनों का भारत संसक्षिप्त	गांधीजी	१ ५०
६–गीता प्रवचन	विनोबा	२ ००
७–संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		१ ००
		११ ५०

यह पूरा साहित्य-सेट केवल रु० ७ ०० में प्राप्त होगा। २८ सेट का एक बण्डल एक साथ लेने पर फ्री डिलीवरी मिलेगी। अन्य कोई कमीशन नहीं दिया जा सकेगा।

ऊपर की प्रथम पाँच किताबों का पृष्ठ १००० का साहित्य-सेट केवल रु० ५.०० में प्राप्त होगा। ४० सेट का एक बण्डल लेने पर फ्री डिलीवरी दिया जायगा। अन्य कोई कमीशन नहीं दिया जा सकेगा।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी १

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर वाराणसी

वर्ष : १८
अंक : ११

- जूनियर हाईस्कूलों के गुणात्मक सुधार की योजना
- शिक्षा-विभाग में दायित्व और अधिकार
- शिक्षा की पूर्वी व पश्चिमी प्रणालियाँ
- आचार्यकुल : क्यों और कैसे ?
- शिक्षण का वर्ष : १९७०

जून, १९७०

शिक्षकों प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

शिक्षण एक निहित स्वार्थ

वर्ष : १८
अंक : ११

यो तो जहाँ तक राष्ट्र निर्माण का सम्बन्ध है, स्वतन्त्रता के बाद का इतिहास हमारे नेताओ की विफलता का इतिहास है, किन्तु शिक्षण की स्थिति देखने से तो ऐसा लगता है जैसे देश के भविष्य के विरुद्ध कोई छिपा हुआ षडयंत्र काम कर रहा हो। क्या पढ़ाई क्या पुस्तक और क्या परीक्षा किसी भी चीज मे इतने वर्षों मे समझ मे आने लायक कोई भी परिवर्तन तो हुआ होता! गुलामी के दिनो से आज तक शायद ही कोई दीक्षान्त भाषण हुआ हो जिसमे राष्ट्रपति से लेकर नीचे तक के नेताओ ने गला फाडकर शिक्षण की प्रचलित पद्धति को न कोसा हो, और उन्हीं विद्यार्थियो के सामने न कोसा हो जो उस पद्धति के निरपराध शिकार हैं। लेकिन कोई भलमानुस यह तो बताता कि परिवर्तन होता क्यो नही! इस प्रश्न पर सबने समान रूप से चुप्पी साध रखी है। और इतने वर्षों मे स्वयं पार्लियामेण्ट ने भी शिक्षण के प्रश्न पर कितना समय दिया है? भाषा के प्रश्न पर चर्चाओ का कोई अन्त नही रहा है, लेकिन राष्ट्र के शिक्षण के प्रश्न पर क्या हुआ? क्या यह कहना गलत होगा कि शिक्षण बदलता है तो समाज बदलता है, और समाज बदलने के लिए हमारे समाज के कर्णधार तैयार हैं नही इसलिए शिक्षण पर पुस्तकें बनती हैं प्रवचन होते हैं शिक्षण मे परिवर्तन नही होता। शायद यह श्रेय विद्यार्थियो को—और अब नक्सालवादी विद्यार्थियो को—मिलनेवाला था, जिन्होंने यह कहकर ललकारा है सुधार नही कर

रहे हो तो प्रहार लो।' वे पूछ रहे हैं. 'क्या प्रयोग होंगे इन प्रयोगशालाओ मे? क्या होगी ये ढेर-की ढेर पुस्तकें जो पुस्तकालय मे भरी पडी हैं?' ठीक भी है, जहाँ विद्या का लोप होता हो, जहाँ थोथी डिग्रियो से प्रतिभा आँकी जाती हो, जहाँ सनद और सर्टिफिकेट से भविष्य का पासपोर्ट बनता हो, और जहाँ युवको और युवतियो की नैतिक और बौद्धिक 'हत्या' की जाती हो, वे फाँसी-घर है या ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र?

यह सन् १९७० यूनेस्को की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण-वर्ष मनाया जा रहा है। लगभग ५ महीने बीत गये। इस वर्ष मे भारत क्या करनेवाला है? बाकी दुनिया कही जाय, कुछ भी करे, हमारे लिए जैसा सन् १९६९, वैसा सन् १९७०, और वैसा ही १९७१। भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रीजी ने, जो स्वय किसी समय, जब वह नेता नही थे, अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे, एक बात कही है: 'हम लोग हवा विश्वविद्यालय (एयर यूनिवर्सिटी) कायम करने की योजना बना रहे हैं।' यह विश्वविद्यालय ऐसा होगा जिसमे विद्यार्थी घर बैठे अपने-अपने रेडियो पर विद्वानो के भाषण सुन लेंगे। मालूम नही हवा-विश्वविद्यालय की यह योजना और योजनाओ की तरह कितनी हवाई होगी और कितनी वास्तविक, लेकिन यदि नीचे से ऊपर तक की पूरी शिक्षा इस तरह 'हवाई' बना दी जाय तो कम से कम इतना लाभ तो होगा कि कुछ स्कूल और कालेज तोड-फोड से बच जायँगे।

दिल्ली हवा की बात सोच रही है लेकिन राज्य-सरकारें? और स्वय ये विश्वविद्यालय, जहाँ नामधारी विद्वान दिन रात 'प्रमोशन-पेंशन' की ही कतर ब्योत मे लगे हुए हैं? किसीको सोचने की फुर्सत नही हैं, शायद जरूरत भी नही है। राजनैतिक दलो के लिए यही सन्तोष काफी है कि विद्यालयो मे उनकी अपनी छात्र शाखाएँ सगठित हो जायँ, ताकि प्रदर्शनो और उपद्रवो के लिए तरुण मिलते रहे, और विद्यालय गृह युद्ध के अखाडे बने रहे। वास्तव मे हमारा शिक्षण प्रशासक-प्रबन्धक शिक्षक नेता का सम्मिलित निहित स्वार्थ (वेस्टेड इण्टरेस्ट) बन गया है। अब यह निश्चित है कि यह निहित स्वार्थ शिक्षण को समाज परिवर्तन का माध्यम

नहीं बनने देता। जब समाज बदलेगा तो शिक्षा भी बदलेगी। वह तब होगा जब नये हाथ पुरानी दीवारों को एक एक करके ढहाते चले जायँगे। सन् १९५३ में माओ ने कहा था कि विशेषज्ञों द्वारा शिक्षण पूँजीवादी धारणा है। आज लगता भी ऐसा ही है कि हमारा शिक्षण तब बदलेगा जब समाज 'विशिष्ट जन' के हाथों से निकलकर 'सर्वजन' के हाथों में जायगा। तब तक प्रतीक्षा ही करनी पड़ेगी।

सुनते हैं दिल्ली में परीक्षा प्रणाली में सुधार की चर्चा हो रही है। क्यों हो रही है? इसलिए नहीं कि परीक्षा प्रणाली निकम्मी है बल्कि इसलिए कि परीक्षार्थियों ने परीक्षा का जनाजा निकाल दिया है, और प्रहारों के डर के मारे अब निरीक्षक पनाह माँगने लगे हैं। मुरादाबाद में एक प्रिंसिपल साहब का जो स्वयं कानून की परीक्षा में परीक्षार्थी थे, नकल करते हुए पकड़ा जाना इस बात का प्रमाण है कि नकल इस दूषित परीक्षा पद्धति का अंग है, लड़कों की सिर्फ बदमाशी नहीं है। जब तक यह परीक्षा रहेगी तब तक नकल रहेगी।

क्या गाँव, क्या स्कूल, क्या दफ्तर और क्या कारखाना, हर जगह घर में आग घर के चिराग से लग रही है। श्रमिक, बाबू विद्यार्थी सब उठ बैठे हैं, भले ही उन्हें यह न मालूम हो कि खड़े होकर उन्हें जाना कहाँ है। इन सारी स्थितियों का हल गांधीजी की उस शिक्षण-योजना में था जो उन्होंने सन् १९३७-३८ में प्रस्तुत की थी। गर्भ से मृत्यु तक के शिक्षण की वह योजना थी, उत्पादन से जुड़ी हुई, वातावरण के प्रति संवेदनशील। उसे हमारे नेताओं विद्वानों और प्रशासकों ने मिलकर खत्म कर दिया, यद्यपि आज भी हजारों स्कूलों में 'बेसिक स्कूल' के झूठे साइनबोर्ड लटके हुए हैं। चालीस साल से अधिक हो गये। इस बीच कमीशन और कमेटियाँ कितनी ही बैठीं, किन्तु गांधीजी की उस योजना से अधिक सम्पूर्ण, समग्र योजना किसने बनायी? राष्ट्रीय शिक्षण के जो मुद्दे उन्होंने सामने रखे उनसे भिन्न और नये मुद्दे किसने रखे? हम जब भी भारत की शिक्षण समस्या का समाधान यहाँ की परिस्थिति, परम्परा, और प्रतिभा के अनुबंध में

ढूंढेंगे, तो हमें नयी बुनियादों की बुनियादी तालीम के सिवाय दूसरा कुछ मिलेगा नहीं। कम से कम अभी तो दूसरी कोई पूंजी हमारे पास नहीं है।

दुनिया बढ़ रही है, बदल रही है। हम बढ़ती बदलती दुनिया को विस्मयभरी आंखों से देख रहे हैं। और हमारे ये बच्चे? वे भी भरी आंखों से हमें देख रहे हैं।

I

साहसपूर्ण, मौलिक, कदम की आवश्यकता

विभिन्न देशों में प्रचलित शिक्षा-पद्धति को जो चुनौतियाँ मिल रही हैं उनमें पुनर्जागरण का संकेत है जिसकी आज बहुत जरूरत है।

विज्ञान के कारण आज की दुनिया रोज बदल रही है। अब शिक्षण का इतना ही प्रयोजन नहीं है कि हम आनेवाले समाज के लिए नेता पहले से तैयार किसी साँचे में ढालकर तैयार कर दें, या विद्यार्थियों को जिन्दगी भर के लिए किसी निर्धारित जीवन-पद्धति के लायक बना दें। शिक्षण अब चुने हुए विशिष्ट लोगों तक सीमित नहीं है। उसके दायरे में पूरा समाज, और हर व्यक्ति का गर्भ से मृत्यु तक पूरा जीवन आ गया है। इसलिए शिक्षण को ऐसा होना है जो हर एक को मिल सके, हर जगह मिल सके, हर वक्त मिल सके। अब शिक्षण जीवन के लिए मात्र तैयारी नहीं है, बल्कि स्वयं जीवन का आयाम (डाइमेंशन) है, जिसमें ज्ञान की सतत प्राप्ति है, और विचारों का सतत परीक्षण है।

जीवन और समाज से अलग रहनेवाला शिक्षण इन आवश्यक गुणों को कैसे विकसित कर सकेगा? अगर स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय समाज के सामान्य जीवन से कटकर अपनी अलग दुनिया में रहेंगे, और शिक्षण मनुष्य की दूसरी क्रियाओं से अलग रहेगा, तो वह क्या करेगा?

ये कुछ समस्याएँ हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान सन् १९७० में जाना चाहिए। 'जीवनभर के शिक्षण' के विचार को ग्रहण करना और उसके अनुसार व्यवस्था में परिवर्तन करना आसान काम नहीं है।

जब समाज में मूलगामी परिवर्तन होते हैं तो शिक्षण के लिए संकट पैदा होता है। पुराना शिक्षण नयी सामाजिक मान्यताओं में फिट नहीं होता। ऐसे संकट की घड़ी आज आ गयी है। अब समाज के लिए नये नमूने का मनुष्य चाहिए। सिवाय शिक्षण के दूसरा कौन नये नमूने का मनुष्य बनायेगा?

II

सन् १९५७ में यूनेस्को की ओर से एक सर्वेक्षण हुआ था। उसके अनुसार विकासशील देशों में ४४ प्रतिशत लोग बिलकुल निरक्षर हैं। इनमें से ६५ प्रतिशत के पास ऐसी कोई योग्यता या हुनर नहीं है जिससे वे समाज की दृष्टि

से उपयोगी जीवन बिता सकें। इन देशों में २८ करोड़ एस बच्चे हैं जो स्कूल जाते तक नही।

कई देशों का ध्यान इस दुखद स्थिति की ओर गया है, और सुधार का काफी काम भी हुआ है। प्रश्न उठता है कि जब हर जगह काम हो रहा है तो शिक्षण के नाम से एक विशेष वर्ष क्या? एक कारण यह है कि विकासशील देशों में आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए सुव्यवस्थित शिक्षण बुनियादी शर्त है। इसके लिए आवश्यक साधन कहाँ से आयेंगे? और, इस समस्या का क्या हल होगा कि बहुत बड़ी संख्या में बच्चे कोर्स पूरा करने के पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं?

नये स्वतंत्र देशों में शिक्षण समय से बरसों-बरसों पीछे है। प्रश्न के बाद काम का भी ठिकाना नहीं है। एक बहुत बड़ी समस्या यह है कि बच्चों को स्कूल में पढ़ाई जानेवाली बातों और समाज के आचरण में जो अन्तर है उसके कारण तरह-तरह के तनाव और विद्रोह पैदा हो रहे हैं।

तरुणों की संख्या भी बहुत बढ़ गयी है। २८ वर्ष से कम आयुवालों का बहुमत है। वे दुनिया की कुल जनसंख्या का ५४ प्रतिशत हैं। अफ्रीका, एशिया और दक्षिणी अमेरिका में उनकी संख्या ६० प्रतिशत है।

एक ओर तरुणों-तरुणियों की यह संख्या है, और दूसरी ओर नित्य नय-नये विचार हैं। हर साल डेढ़ करोड़ पन्ना की नयी पाठ्य-सामग्री तैयार होती है। अगर कोई विशेषज्ञ १२ घण्टे रोज अध्ययन करे तब कहीं अपने विषय में अप टू-डेट रह सकेगा। इस बढ़ते हुए ज्ञान का शिक्षण कैसे इस्तेमाल करेगा?

समाज में पिता या शिक्षक का आज वह स्थान नहीं रह गया है जो किसी समय था। कई विद्यार्थी शिक्षकों से अधिक जानते हैं और कम्प्यूटर के पेट में दोनों से अधिक तथ्य इकट्ठा है। स्वभावतः शिक्षकों की महिमा घटी है।

वास्तव में आज वेल्स की कही हुई बात की सचाई पहले से कहीं ज्यादा प्रकट हो रही है। उसने कहा था कि 'इतिहास क्या है, दौड़ है शिक्षण और सर्वनाश में।' इस दौड़ में शिक्षण की विजय हो सकती है, अगर साधन और शक्ति लगा दी जाय।

III

शिक्षण और आधुनिक आवश्यकताएँ

शिक्षण से आधुनिक समाज की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं?

(१) *शिक्षण हुनर का शिक्षण देकर आर्थिक विकास मे सहायक होता है।* श्रमिक की उत्पादनशीलता उसके शिक्षण पर निर्भर करती है।

(२) शिक्षण से लोगो की मूल प्रतिभा तथा उनके अभिक्रम का विकास होता है। उनके जीवन का तर्ज-तरीका बदलता है, और वे कई जगह जाकर कई तरह के काम कर लेते हैं। शिक्षण से समाज जान लेता है कि उसके किस सदस्य मे क्या प्रतिभा या कौशल है, और उसके अनुसार वह उससे काम लेता है।

पिछले दिनों में शिक्षण के आर्थिक पहलू पर बहुत ध्यान दिया गया है। अब शिक्षण को 'पूंजी' (इन्वेस्टमेंट) माना जाने लगा है। लेकिन शिक्षण के दूसरे पहलू भी हैं जिनकी ओर कम ध्यान गया है। पारिवारिक जीवन नागरिक जीवन, व्यक्ति का नैतिक और कलात्मक विकास, आदि कई पहलू हैं जिनमे शिक्षण उतना ही उपयोगी है। शिक्षण के इन तथा दूसरे क्षेत्रो मे, जैसे शिक्षक प्रशिक्षण, पाठ-पद्धति, विद्यार्थियो का चुनाव (विशेष रूप से ऊँची शिक्षा मे) भवन निर्माण, शिक्षा का खर्च प्रशासन आदि मे आज की अपेक्षा कहीं अधिक शोध की आवश्यकता है। उन्नत या उन्नतिशील सभी देशो मे शिक्षण मे सकट है। नया तरुण *प्रचलित शिक्षण को अस्वीकार कर रहा है। आर्थिक, सामाजिक, नैतिक या* साम्स्कृतिक विकास के लिए मात्र शिक्षण नही बल्कि विशेष गुणो का शिक्षण चाहिए।

ये गुण क्या हैं ? पाँच तरह की कमियां है जो शिक्षण द्वारा दूर की जानी चाहिए। (१) शिक्षण की मांग और पूर्ति मे अंतर (२) आर्थिक व्यवस्था के लिए प्रशिक्षित लोगो की आवश्यकता और शिक्षण द्वारा उसकी पूर्ति, (३) समाज और विद्यार्थियो की आवश्यकताएँ (४) शिक्षको और प्रबधको का सवाल और (५) साधन। इस वर्ष शिक्षण के सामने मुख्य रूप से १२ प्रश्न प्रस्तुत किये गय हैं, किन्तु उन सबमे सबसे अधिक महत्त्व *'जीवन-भर के शिक्षण'* का है। समाज मे कुछ ऐसे लोग हमेशा होते हैं जो जिन्दगी भर बौद्धिक और नतिक विकास करते रहते हैं लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं। नयी बात यह है कि अब यह माना जाने लगा है *कि जीवन भर शिक्षण की सुविधा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी चाहिए।* इस विचार के अनुसार शिक्षण ६ साल की आयु से शुरू होकर डिग्री मिलने तक ही नहीं है, बल्कि अतिम सांस तक है। शिक्षण समाज के जीवन का प्रवेश-द्वार नही है, उसके मध्य म है। *शिक्षण जीवन की तैयारी नहीं है स्वय जीवन का अंग है।*

अगर यह बात सही हो तो शिक्षण की सारी कल्पना और योजना म बुनियादी अंतर करने की जरूरत है। प्रचलित पद्धति का इस नये विचार से कहीं मेल नही है। शिक्षण को आमूल बदलना चाहिए।

नये शिक्षण मे स्कूल का क्या रोल होगा, यह नये सिरे से सोचना चाहिए।

स्कूल को अब वास्तविक शिक्षण का केन्द्र बनना पड़ेगा। कुछ विषयों में ज्ञान दे देना काफी नहीं है। विद्यार्थी में ऐसी योग्यता आनी चाहिए जिससे वह अपने को अच्छी तरह व्यक्त कर सके, और दूसरों से आदान-प्रदान कर सके। भाषा का ज्ञान, ध्यान केन्द्रित करने और पर्यवेक्षण का अभ्यास, ज्ञान के स्रोतों की जानकारी, दूसरों के साथ काम करने की क्षमता, आदि आवश्यक अभ्यास हैं। ये अभ्यास हो जायें तो विद्यार्थी सतत सीखता, जानता रहेगा।

चार बातें मुख्य रूप से ध्यान देने योग्य हैं :

(१) शिक्षण, व्यापक शिक्षण, में वे सब क्रियाएँ शामिल हैं जिनसे मनुष्य को शैक्षणिक अनुभव हो सकता है।

(२) शिक्षण केवल यूनेस्को नहीं, पूरे संयुक्त राष्ट्रसंघ और उसकी सब शाखाओं और एजेंसियों की जिम्मेदारी है।

(३) यह वर्ष मात्र प्रचार के लिए नहीं है, बल्कि अध्ययन और शोध, नये चिंतन और नये कामों के लिए है।

(४) चिंतन पूरे राष्ट्रीय शिक्षण का किया जाना चाहिए, थोड़े हिस्से का नहीं।•

आचार्यकुल : क्यों और कैसे ?

विनोबा

प्रश्न : कुछ शिक्षा-सस्थाएँ राजनैतिक दलों द्वारा ही चलायी जाती हैं। उनके राजनैतिक मतो का दबाव शिक्षको पर पडता है। नौकरी के लिए वैसा दबाव मान्य भी करना पडता है। ऐसी स्थिति मे क्या करें ?

उत्तर : कोई भी कार्यक्रम हो, शत-प्रतिशत पूर्ण होगा, यह एकदम माना नहीं जा सकता। ऐसी जो पाठशालाएँ और शिक्षक हो, उन्हे आप 'बायपास' कीजिए, बाजू मे रख दीजिए। आपकी योजना को व्यापक और भव्य रूप मानकर उसमें बहुत-से लोग आ मिलेंगे, तो उन पर भी इसका परिणाम होगा। फिर दलवालों को बताया जाय कि आप बिना कारण इसमे क्यों हस्तक्षेप करते हैं ? या उनकी अपनी कठिनाइयाँ हैं, इसलिए आप इनका अनुचित लाभ उठाते (एक्सप्लाइट) हैं ? इस तरह इनका कुछ भी कल्याण नहीं। इसलिए आप यह विचार त्याग दें। शिक्षको को बतायें कि आप पक्षमुक्त हो जायें। इस तरह समझा-बुझाकर बतायेंगे तो आपका उन पर प्रभाव पडेगा। आज आपका प्रभाव पड नहीं सकता।

विद्यार्थी और समाज-सेवा

प्रश्न विद्यार्थियों को समाज-सेवा की शिक्षा कैसे दी जाय ? इस युग मे उनके निर्वाह का दायित्व कौन उठाये ?

उत्तर : विद्यार्थी परीक्षा पास कर एम० ए० होकर नौकरी करने जाय, इसके पहले एक वर्ष तक वह समाज-सेवा करे। उसे जीवन-निर्वाह भर मदद देनी पडेगी। अर्थात् आज की स्थिति देखते मासिक १०० रुपये के आसपास देना पडेगा। मान लीजिए, वह विद्यार्थी नौकरी करने चला जाय तो १०० रुपये से अधिक वेतन मिलेगा। यदि ऐसा छात्र आपको मिले तो प्रतिमास १०० रु० के हिसाब से १२०० रु० वार्षिक की योजना करनी होगी। यह करने की आपमे शक्ति होनी चाहिए।

कुछ ऐसे सुखी छात्र भी होंगे, जो बिना वेतन के भी काम कर सकें। उनसे मदद ली जाय। उनसे स्वयसेवकी (वालेण्टरी) सेवा ली जाय। आप अपने पास से खायें और काम करें, ऐसे भी कुछ लोग मिल सकते हैं। क्या हमारी पाठशालाओ मे यह सभव है ? क्या छुट्टी के दिनों मे ऐसे विद्यार्थी तैयार हो सकेंगे ? वे उद्योग सीखने के लिए आयें और चार-पाँच घण्टे काम करें। शिक्षक उन्हें एक घण्टा

सिखायें। इस तरह तीन महीने में उन्हें एक उद्योग सिखाया जाय। इस तरह कुछ विद्यार्थी इस योजना के अनुकूल बनाये जा सकते हैं।

सिद्धान्त मान्य, पर

प्रश्न आचार्यकुल के सिद्धान्त मान्य हैं, पर वह कार्यक्रम कागज पर ही रह जाता है?

उत्तर पहले एक प्रतिशत रकम दीजिए। इस विषय में जो पुस्तकें, पत्रक प्रकाशित करेंगे, वे शिक्षकों के पास पहुँचाये जायेंगे। बीच-बीच में कुछ 'प्रोजेक्ट' लिये जायें और उन्हें पूरा करने के लिए शिक्षक बुलाये जायें। यदि ऐसी योजना कर सकें तो शिक्षकों में आस्था उत्पन्न होगी, जैसे—श्रमदान का प्रोजेक्ट। आपके यहाँ कोयना में भूकम्प आया, कुछ आपत्ति आयी, अकाल हुआ तो ऐसी आफत के समय कभी-कभी शिक्षकों की मदद ली जाय। इस तरह कुछ शिक्षक लिये जा सकें तो आपका काम सक्रिय शुरू हो गया, यह दीख पड़ेगा।

करने योग्य दूसरा काम है, शान्ति-सेना। मान लीजिए दंगा हो गया तो शिक्षक वहाँ जायँ और दंगे का निवारण कर सकें, इतनी तैयारी उनकी होनी चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि आपके शिक्षक-समाज में हरिजन कितने हैं, मुसलमान कितने हैं, ईसाई कितने हैं। भिन्न-भिन्न जाति और भिन्न भिन्न धर्मों के लोग आपके समाज में आने चाहिए। आपको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। आज इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। कारण, इधर हिन्दुस्तान में जातिभेद है। (वास्तव में जातिभेद कोई पसन्द नहीं करता। विचार करने लगते हैं तो कहते हैं, जातिभेद बहुत बुरा है। किन्तु चुनाव के कारण जातिभेद बढ़ गये हैं। अमुक जाति का व्यक्ति कांग्रेस खड़ा करती है तो दूसरा दल भी उसी जाति का उम्मीदवार चुनता है। कहते हैं, ऐसा न करें तो चुनाव में हमारी हार हो जायगी। इसीलिए जातिभेद पर ध्यान रखकर चुनाव में भाग लेते हैं।) जातिभेद और धर्मभेद का झगड़ा चल रहा है। इसलिए आचार्यकुल को इस भी हाथ में लेना पड़ेगा। मैं नहीं जानता कि आज जिन लोगों ने इस योजना पर हस्ताक्षर किये हैं, उनमें कोई मुसलमान हैं या नहीं। उन्हें समझा-बुझाकर अपने निकट लाइए। वे आते नहीं; यह कहकर उन्हें दोष देने से काम न चलेगा। वे उपस्थित नहीं रहते तो वह दोष हमारा है, यही मानना चाहिए। उन्हें अपने में दाखिल कर लीजिए और एक दूसरे के धर्म की जानकारी हासिल करिये। इस बारे में मैंने विभिन्न धर्मों के ग्रन्थों का सार निकाला है। उसे पढ़ लीजिए। ऐसा दृश्य दीख पड़ना चाहिए कि हिंदू कुरान जानता है और मुसलमान गीता समझता है। इसी तरह गीता आदि

समग्रयो पर प्रवचन किये जायें। आचार्य-कुल को ये सब उपाय इसके लिए अपनाने होंगे।

मतदाताओ की शिक्षा

प्रश्न मतदाताओं के शिक्षण के लिए हमे क्या करना चाहिए?

उत्तर आज आप यह कार्य हाथ म लेंगे तो शका होने लगेगी। मतदान सन् १९७२ म होगा। उसके पूव यानी आज सन् १९७० चालू है। एक वष तक तो सघटन तैयार करके विशिष्ट प्रकार की योजना करें जसा कि अभी बताया गया है। उसके कारण आपके काय की उपयोगिता और योग्यता सबके ध्यान म आ जायगी। उसके बाद आप प्रचार करें कि मतदाता योग्य उम्मीदवारो को ही अपने मत दें। इस विषय को ले जाने के लिए आपके हाथ मे ग्रामसभा होनी चाहिए। कारण शहर म २० प्रतिशत तो गाँवो मे ८० प्रतिशत मतदाता रहते हैं। हमारे लोकतत्र ने शिक्षित अशिक्षित का भेद किया ही नहीं इसलिए अशिक्षितो को भी मत देने का अधिकार है। ग्रामदान होने के बाद ग्रामसभा बनने के बाद, आप ग्रामसभा द्वारा आगे का काय कर सकते हैं। मतदाताओ को शिक्षित कर सकते हैं।

शिक्षा की प्रतिष्ठा

प्रश्न सत्ता और सम्पत्ति दोनो प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। ऐसी स्थिति मे शिक्षा को प्रतिष्ठा कसे प्राप्त होगी?

उत्तर आज सत्ता और सम्पत्ति का मूल्य है पर विद्या और श्रम को वह प्राप्त नही। दोनो बात बिना मूल्य की हैं। आज सत्ता और सम्पत्ति का तो मूल्य है पर बुद्धि को नहीं। कोई बडा विद्वान् और ज्ञानी है। होगा अपने घर में। पर उसके हाथ म सत्ता नही, सम्पत्ति नहीं तो उसका कोई मूल्य नही। इसी तरह किसी को श्रम-निष्ठा है और वह श्रम भी करता है, अन्न उत्पादन करता है, पर उसका मूल्य नहीं। इस तरह श्रम और ज्ञान, दोनो की आज प्रतिष्ठा नहीं। इसलिए एक ओर से श्रमिको की सघटना और दूसरी ओर से विद्वानो की सघटना, इस तरह दोनो सघटनाएँ सम्मिलित होगी, तभी समाज आपके हाथ लगेगा।

आखिर सत्ता और सम्पत्ति आपको कहाँ से मिलेगी? सरकार मे पहुँचेंगे तो सत्ता मिलेगी। पूछेंगे सत्ता मे पहुँचने के लिए क्या करना पडता है?' इसका अत्यन्त उत्तम अनुभव एस० एम० जोशी हैं। उन जैसा महान् नेता और एक पार्टी का प्रमुख खुले तौर पर घोषित करता है कि मैंने चुनाव मे खडा होना अस्वीकार कर दिया है। कारण, उसम मत मागने के लिए भटकना पडता है और पैसा भी

लगता है।' अर्थात् चुनाव की क्या गति है, इसका यह अत्यन्त उत्तम उदाहरण है। आपको श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिए, इसके लिए मैंने सप्ताह में एक घण्टा श्रम का सुझाव दिया है।

आत्मस्वरूप का भान कैसे हो?

प्रश्न समाज म आर्थिक और अय भी प्रकारो से उपेक्षित, किसी तरह सासारिक जीवन-यापन करनेवाले सर्वसाधारण शिक्षकों को आत्मस्वरूप का भान कैसे हो?

उत्तर इसका अच्छा उपाय है। असम मे शिक्षकों को वेतन कम दिया जाता है और साथ ही खेती करने का काम देते हैं। अधिकाश शिक्षक कृषक के साथ शिक्षक हुआ करते हैं। यही मानकर उन्हें पैसा देते हैं कि वे खेती करेंगे तभी उनका जीवन चल पायगा। खेती से होनेवाली आय उन्ह ३-४ महीने काम देगी। उन दिनो उन्ह अवकाश होगा और बाकी समय व सिखायें। इस प्रकार उन्होंने शिक्षको को समाज मे स्थान दिया है। वैसे देखें तो आज कितनी ही जगह शिक्षको को भगियो से भी कम वेतन मिलता है।

पाठशालाओ म जो सबसे बडा विद्वान् शिक्षक हो वह नीचे की कक्षा क्यो न ले? आजकल नीचे के वर्ग के मास्टर साहब एकदम मूढ होते हैं और हमारे छोटे-छोटे बालक उन्ही के हाथो सौंपे जाते हैं। यही क्यो, आज पहली तीन चार कक्षाओ के लिए केवल एक शिक्षकी पाठशाला हुआ करती है। सच पूछें तो ऐसी शालाएँ खोली ही न जायें तभी अच्छा होगा। कारण, नन्हें बच्चो को प्रत्येक बात नयी सिखानी पडती है। ऐसी स्थिति म उन्ह सिखलाना विशेष कठिन है। आगे की कक्षाओं म सिखाना अपेक्षाकृत सरल है। पर ये बड़े विद्वान् बनते हैं हेड मास्टर और हेड मास्टर हुआ तो वह सातवीं यानी आखिरी कक्षा का शिक्षक बनेगा। किन्तु मेरी स्पष्ट मान्यता है कि हेड मास्टर रहते हुए भी पहली कक्षा को पढ़ाया करें तो निश्चय ही शिक्षा का स्तर उन्नत होगा।

शिक्षकी का 'पेशा'

प्रश्न कई बहुधन्धी लोग साथ म शिक्षक का भी पेशा करते हैं। आचार्यकुल का काम उनके द्वारा कैसे हो पायेगा?

उत्तर दूसरी नौकरी न होने के कारण सहायक व्यवसाय के रूप मे शिक्षक बननेवालो को आचार्य-पद की नौकरी कैसे दी जाय? आजकल समाज मे प्रत्येक को साक्षर बनाने का आन्दोलन चलाया जाता है। वे घोषित किया करते हैं कि अमुक-अमुक ग्रामपचायत मे इतने लोग साक्षर बनें। इस तरह हम साक्षरता का

जो महत्त्व है उसे बढाते हैं। लेकिन मैं साक्षरता की अपेक्षा सार्थकता को विशेष महत्त्व देता हूँ । आज की साक्षरता प्रचार-योजना से इतना ही होता है कि वे (अपढ) अंगूठे की जगह अपना हस्ताक्षर मात्र कर लेते हैं। सच पूछें तो इससे क्या लाभ है ? इसलिए यह जो व्यर्थ का भ्रम फैला हुआ है, यानी इस तरह थोडा-बहुत पढकर कुछ अक्षर पढ लिए तो बन गया वह शिक्षित, वह सर्वथा गलत है ।

एक बहुत अच्छी कहानी है मुहम्मद पैगम्बर की। वह अशिक्षित था। जब कि दुनिया के ५० करोड लोग उसके नाम से प्रेरित हैं। उसने एक जगह कहा है "मैं जब समाधि लगाये बैठा था और भगवान् का ध्यान कर रहा था, तो वह गुप्त रूप से आ धमका मेरे सामने एक लिखित पत्र पढ़ने के लिए रखा और बोला कि पढ। मुझे आदेश देने के लिए उसने यह चिट्ठी भेजी थी। पर मैंने उससे कहा भगवन्, मुझे लिखने-पढ़ने नहीं आता इसलिए आपकी यह चिट्ठी मेरे कुछ काम न आयगी। फिर उसे मेरे साथ प्रत्यक्ष बातचीत करनी ही पडी।'

रामकृष्ण परमहंस की भी ऐसी ही कहानी है। उन्हें लिखना पढना नहीं आता था, पर बडे-से-बडे विद्वान् उनसे मिलने आया करते। रामकृष्ण देव कहते हैं कि 'ये विद्वान् मिलने के लिए आते तो मैं लोटा लेकर दौडता। वे देवी के भक्त थे। उन्होंने उससे कहा 'माँ मुझे विद्या दे।' रात में माँ उनके स्वप्न में आकर कहने लगी 'अरे रामकृष्ण ! क्या जग रहा है ?' उन्होंने कहा "हाँ !" देवी ने पूछा 'तुझे विद्या चाहिए न ?' रामकृष्ण देव ने कहा "अवश्य !" देवी बोली 'देख, सामने घूरे है न ? वही विद्या पडी हुई है।" रामकृष्ण ने कहा "माँ ! मुझे घूरे की विद्या नहीं चाहिए।'

ये अध्यापन के अविश्वासी

प्रश्न कितनों को केवल अध्ययन अध्यापन पर विश्वास नहीं होता। वेतन-वृद्धि, कम काम, बढोतरी, ये इनके प्रिय विषय हुआ करते हैं।

उत्तर यदि एक वर्ग के नाते शिक्षकों की तुलना करें तो इस शिक्षक-वर्ग में जितनी मात्रा में ऐसे लोग मिलेंगे अन्य वर्गों में उसके कहीं अधिक होंगे। मैंने देखा कि गाँवों में शिक्षक थोडा अधिक ज्ञानवान् हुआ करता है। वहाँ यदि किसी को अधिक ज्ञान है तो शिक्षक को ही है। आजकल जो विद्यार्थी पढते हैं, आखिर उनका भी ज्ञान पर कहाँ प्रेम है ? उनके लिए हिन्दी में अनेक उत्तम शब्द गढे गये हैं। आप जिन्हें 'विद्यार्थी' कहते हैं, उन्हें वे 'परीक्षार्थी' कहते हैं। फिर, वे सच्चे परीक्षार्थी भी तो नहीं होते। विद्या परीक्षा के लिए परीक्षा पदवी के लिए और पदवी नौकरी के लिए होती है। अतएव लाचारी से वे विद्या

सीखते हैं। यदि उन्हें बिना ज्ञान के नौकरी मिलने लग, तो कभी ज्ञान की कद्र न करेंगे। हम समझते हैं कि अंग्रेजों ने विद्या दी, पर वह इने गिने लोगों को ही दी। शेष अशिक्षित ही रह गये।

शिक्षा-संस्था कैसी हो ?

प्रश्न आज की शिक्षा-संस्था कैसी हो ? यानी शासकीय आर्थिक सहायता और संचालक अपने पाल्य को कौनसा पाठ्यक्रम सिखायें ? शिक्षा प्रणाली कैसी हो ?

उत्तर मान लीजिये, ऐसा बोर्ड लगायें कि 'जिन्हें सरकारी नौकरी चाहिए, वे इस पाठशाला में न आयें। जिन्हें सरकारी नौकरी की अपेक्षा नहीं, वे ही यहाँ पढ़ने आयें।' तो क्या कोई पढ़ने आयगा ? देश में ४६ करोड़ लोग हैं जिनमें ३ करोड़ शिक्षित हैं। ६६ लाख सरकारी नौकरियाँ हैं। प्रतिवर्ष २ लाख लोग सेवानिवृत्त (रिटायर्ड) होते हैं। इसलिए और भी नौकरियाँ बढ़ायें, तो प्रतिवर्ष ३ लाख लोगों से अधिक को सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। नौकरी मानो एक लाटरी ही है। लाटरी में किसी एक को इनाम मिलता है पर पैसा सभी लगाते हैं। कहा जाता है कि 'नौकरी लग गयी तो सब कुछ अच्छा ही होगा, तब तक आइये, हम लोग कुछ करें।'

वैसे सभी को नौकरी कभी नहीं मिला करती। असन्तुष्टा द्विजा नष्टा — कहा जाता है कि असन्तुष्ट ब्राह्मण नष्ट हो जाते हैं। इसीकी बराबरी की मैंने दूसरी कहावत तैयार की है असन्तुष्टा द्विजा कम्यूनिष्टा। अर्थात् पढ़ा लिखा, पर नौकरी नहीं मिली तो वह असन्तुष्ट होता है जिससे आगे कम्यूनिस्ट बन जाता है। आज हमारी कांग्रेस सरकार ने कम्यूनिस्ट बनाने के कारखाने खोले हैं। वर्तमान शिक्षा के विषय में किसे सन्तोष है, यह एक प्रश्न ही है। कोई इसका उत्तर 'हाँ' नहीं दे सकेगा। भारत में ऐसा कोई मानव नहीं, जिसे वर्तमान शिक्षा के विषय में असन्तोष न हो।

इन्दिरा गांधी शिकायत करती हैं कि हमने दो बड़ी भूलें कीं। भारत में सत्ता हाथ में लेने के बाद एक तो हमने पुराना चालू रखा, यह बहुत बड़ी भूल की। किन्तु उन्हें पूछना चाहिए कि आप यह शिकायत करती हैं तब इसे बदलना किसके हाथ में है ? वे कहती हैं प्रादेशिक सरकारों के हाथ में है। यही नहीं, शिक्षा-सुधार के लिए दो बड़ी-बड़ी रिपोर्टें भी आयी हैं। पहला आयोग डा० राधाकृष्णन् के नेतृत्व में संघटित किया गया। उसकी चार-पांच सौ पृष्ठों की रिपोर्ट प्रकाशित है। इसे ५ ७ वर्ष बीत गये, उस पर कोई अमल नहीं हुआ। उसके

बाद दूसरा कोठारी-आयोग बना और उसकी भी भारी-भरकम रिपोर्ट आ गयी जो सरकारी दरबार की शोभा बढ़ा रही है। दोनों रिपोर्ट पड़ी-पड़ी सड़ रही है। अब क्या किया जाय ?

विद्वान् और श्रमिक एक हों

प्रश्न : ऐसी स्थिति में शिक्षा-संस्था कैसी हो ?

उत्तर : एक ओर उत्पादन श्रमिक और बाजू में विद्वान् वर्ग, इनकी सम्मिलित लोकशक्ति निर्माण हो, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर चार घण्टे अध्ययन और चार घण्टे काम करनेवाली नयी तालीम शुरू हो। अभी तो हमने एक उपाय निकाला है कि गाँव-गाँव में इस तरह की एक शाला चलायी जाय। प्रातः बालकों का वर्ग लिया जाय और सायंकाल प्रौढ़ों का। वहाँ अखण्ड शिक्षण चलता रहे। लेकिन आज क्या हाल है ? आपके बच्चे ४ वर्षों में पढ़कर छुट्टी पा जाते हैं। कुछ लड़के ७ वर्षों में पढ़कर गुरुकुल से निकलते हैं। उनसे आगे जानेवाले लड़के और भी कम होते हैं। तो उन्हें अखण्ड शिक्षा दी जानी चाहिए। वे शेष समय में खेत पर काम करेंगे। प्रातःकाल के समय उन्हें घण्टे भर अच्छी तरह पढ़ाया जाय। मान लीजिये, इस प्रकार की योजना चलायी जाय तो प्रौढ़ लोग आज से अधिक सुशिक्षित होंगे। साल के ३६५ दिनों में आधी तो छुट्टियाँ हुआ करती हैं। पर इस शिक्षार्थी को छुट्टियाँ हो न होंगी। प्रतिदिन एक घण्टा उसे *शिक्षा दी जाय।* उसे १—*मातृभाषा उत्तम सिखायी जाय।* २—*गणित* उत्तम सिखाया जाय। यानी उच्चतर (हायर) गणित नहीं, गुणाकार, भाग का, जोड़ बाकी, जो कुछ व्यवहार में लगता है वह सारा गणित। ३—ज्ञानदेव, नामदेव आदि सन्तों के भजन भी सिखा दें। यदि हम इस तरह कार्यक्रम चलायें, तो वास्तव में शिक्षा बढ़ेगी। इस तरह आपके पास पढ़कर तैयार होने पर वह नौकरी करना चाहता हो, तो उसे हमारी कोई मनाही नहीं। यदि उसे परीक्षा देनी हो तो किसी पाठशाला में प्रविष्ट होकर परीक्षा देगा।

प्रौढ़ वर्ग में लिखना न सिखाया जाय। कारण शाम को लोगों को कष्ट देना ठीक नहीं है। इसलिए उन्हें श्रवण द्वारा ही ज्ञान सिखाया जाय। कुछ भाग रटवा लिया जाय और फिर यह सारी जानकारी दी जाय कि सरकार कैसी चलती है ? उसका सारा कारोबार कैसे चलता है ? खेती-बारी की व्यवस्था कैसे चलती है ? आदि। आजकल सीधी सीधी बातें भी मालूम नहीं रहतीं। जमशेदपुर में करीब डेढ़ महीने तक हड़ताल चली। उसमें कुल २५ करोड़

रुपये खर्च हुए। क्या इतने दुर्बल राष्ट्र में ये २५ करोड़ कम हैं। सरकार को उसमें से देना था केवल पाँच करोड़। ये सरकार के पाँच करोड़ कम हुए। कुल उत्पादन में २५ करोड़ की कमी हुई। यह जानकारी किसी को नहीं रहती। इस प्रकार तरह-तरह की सारी उपयुक्त जानकारी उन्हें दी जाय। इस तरह उन्हें श्रवण-सम्पन्न कराया जाय। हमारे यहाँ प्राचीनकाल में एक शब्द चलता था। कहते थे : 'अमुक-अमुक बहुश्रुत हैं।' बहुश्रुत का अर्थ है जिसने बहुत कुछ सुना है। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है। श्रवण ज्ञान का मुख्य साधन है। नेत्र तो गौण साधन है, इसलिए प्रौढ़ों को पढ़ाने में नहीं लगना चाहिए। वाचन तो प्रातःकाल जो लड़के आयें, उन्हीं को करवाया जाय।

× × × ×

विनोबा : आखिर यह बतायें कि मैं आप लोगों की इस परीक्षा में पास हुआ या नहीं ?

सभी : हम सबका समाधान हुआ।

विनोबा : आप सब जाकर काम करें तो मैं पास हो गया।•

[गोपुरी, वर्धा : अध्यापकों के बीच]

शिक्षा के बारे में साधु वासवानी के विचार

हर रोज सुबह मैं एक वैदिक मंत्र का उच्चारण करता हूँ–"तमसो मा ज्योतिर्गमय।" उस मंत्र में सच्ची शिक्षा का असली रहस्य है। यह अक्सर मानव जाति के सच्चे गुरुओं की प्रार्थना रही है।

× × ×

भारत मे बहुत सारी शिक्षा-सस्थाओ की एक बडी भूल यह है कि वे भेदो को बढाती है। सच्ची शिक्षा का प्रथम कर्तव्य समन्वय ही है। सर्वप्रथम बुद्धि और हाथ का समन्वय होना चाहिए। शिक्षा मे बुद्धि और हृदय का समन्वय होना जरूरी है। हमारे शिक्षको को और विद्यार्थियो को सेवा करने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। संस्कृति और सेवा का भी समन्वय होना चाहिए। विशेष करके शिक्षको द्वारा दरिद्रनारायण के लिए आदरभाव बढ़ना चाहिए। किसान और मजदूर का जीवन इतना व्यस्त और इतना वचित रहता है कि उन्हे शिक्षा के लिए, सस्कृति के लिए कोई समय नहीं मिलता है। हम शिक्षित लोगो को उनके साथ सम्पर्क रखकर उन्हें भारत की महान संस्कृति का सन्देश सुनाना चाहिए।

इस प्रकार जीवन के साथ शिक्षा का सम्पर्क सध सकता है। शिक्षा मे मुख्य जोर 'जीवन' पर ही होना चाहिए।

× × ×

आजकल पश्चिम में और पूर्व में हम सब लोग शान्ति की स्थापना के लिए प्रार्थना करते हैं। लेकिन मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि यत्रो के द्वारा हमे शान्ति नहीं मिल सकेगी। शान्ति पाने के लिए शान्ति का ही मार्ग अपनाना पड़ेगा। वह हमें भीड के हल्ले और यत्रों के गर्जने से नही मिलेगा, वह हमें समर्पित जीवन, नम्र जीवन, सेवा के जीवन, करुणा के जीवन, प्रेम के जीवन से ही मिल सकेगी।

× × ×

नव भारत का निर्माण विधानसभा मे नहीं, पाठशाला म ही हागा। जीवन के विकास के दिनों मे ही विद्यार्थियो पर भारतीय सस्कृति की छाया पडनी चाहिए। नयी शिक्षा के द्वारा एक नया भारत, एक नयी दुनिया, ।या इन्सान बन सकगा।

× × ×

सहानुभूति ही शिक्षा की कुंजी है। आजकल की शिक्षा से बुद्धि का विकास तो होता ही है, लेकिन वह आक्रमणकारी बुद्धि है। भारत में हृदय की शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। आज के बच्चे कल के भारत के निर्माता बनेंगे। इसलिए शिक्षा म उन्ह करुणा का आनन्द, सहानुभूति के सौन्दर्य का अनुभव मिलना चाहिए। तब उन्ह प्रेरणा मिलेगी और उनका विकास एक नयी सुन्दर दुनिया, न्याय और शान्ति की दुनिया बनाने की ओर हो जायगा। हमारी पाठशालाओ को, दैनिक जीवन के शोर और गड़बड़ी से अलग ऐसे आश्रय-स्थान बनाना चाहिए। जहाँ हमारे विद्यार्थी शान्तिपूर्वक जीवन के रहस्यो पर विचार कर सकें। इसमें अनुशासन, स्वानुशासन, और चरित्र-निर्माण पर जोर देना चाहिए।

× × ×

विद्यार्थियो को ज्ञान तथा भावना, दोनो मिलने चाहिए। भारतीय संस्कृति का ज्ञान भारत के लिए शक्ति, भारत की सेवा करने की आकाक्षा, उसके लिए दु ख सहन करने की शक्ति, यह सब हमारी शिक्षा-संस्थाओ मे मिलना चाहिए।

× × ×

हम ऐसी शिक्षा चाहिए, जिसम गाँव के विकास और किसान के सुख के बारे म सोचने की प्र रणा मिले। नित्य बदलती हुई राजनैतिक परिस्थितियो से दूर गाँव के जीवन की ओर बढने की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

× × ×

भारत म शिक्षा स्वावलम्बी तब बन सकेगी, भारत की गरीबी भी तब मिट सकेगी, जब हमारी शिक्षा में उद्योगो का समावेश होगा। इससे हाथ से काम करनेवाले किसान मजदूरो के लिए इज्जत बढेगी। दुर्भाग्यवश आजकल ऐसा समझा जाता है कि हाथ से काम करने से हमारी इज्जत घट जाती है।

सच्ची शिक्षा कलमशाही की शिक्षा नहीं है। शिक्षा एक वातावरण है। शिक्षा से सब धर्मों और सब मानव जातियो के लिए प्रेम, सहानुभूति और आदर-भाव पैदा होना चाहिए।

आजकल दुनिया मे हमे सब सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का ह्रास देखने मे आता है। इससे युद्ध, हिंसा और वैज्ञानिक बर्बरता उत्पन्न हुई है। चारो ओर खून, निराशा, संघर्ष फैल रहा है। आप वर्तमान युग को विज्ञान और लोकतन्त्र का युग कहते हैं, लेकिन मैं उसे यन्त्र और सामन्तशाही का युग कहता हूँ। ऐसा लगता है, मानो इन्सान अपना मार्ग खो बैठा हो। आधुनिक शिक्षा की जिम्मेदारी उसे सही मार्ग पर वापस लाना है।'

नयी शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी के जीवन में सृजनात्मक सिद्धान्तों का विकास करना है। उसके लिए सचेत करने की प्रक्रिया चलनी चाहिए। हम मानो दुनिया के मोह पाश में फँस गये हों। उसके आकर्षक रूपों तथा अहंभरे आवेगों में हम फँस गये हों। लगता है कि उस मोह में फँसने की वजह से हम अपने सही स्वरूप को भूल गये हैं। हमारा बाह्य व्यक्तित्व, हमारा असली व्यक्तित्व नहीं है। वह केवल मुखौटा ही है। हमारे सामने मुख्य समस्या है कि हम उस मुखौटे से कैसे अलग हो सकते हैं। हम किस प्रकार भारत के सृजनात्मक केन्द्र तक पहुँच सकते हैं।? इसके लिए सचेत होने की आवश्यकता।

अपने सच्चे कर्तव्य की पूर्ति के लिए हरएक पाठशाला को नवचेतना का केन्द्र बनाना चाहिए। हम उस हद तक सचेत हो जाते हैं जिस हद तक हमारे ज्ञान और हमारे अस्तित्व में समन्वय होता है एकता हो जाती है। वर्तमान शिक्षा सूचनात्मक है, सृजनात्मक नहीं है। हम स्वाध्याय करते हैं हम तथ्यों को याद करते हैं, लेकिन हमारा जीवन खोखला बनता जाता है। व्यर्थ ही रहता है। हम अभिमानी, स्वार्थी, धोखेबाज बनते जाते हैं।

हमारा ज्ञान हमारे 'होने' से आगे बढ़ गया है। इसलिए क्योंकि हमने बुद्धि पर सारा ध्यान केंद्रित करके, भावनाओं और संकल्पशक्ति की उपेक्षा की हमारी बुद्धि तेज हुई है, लेकिन बुद्धि दो धारवाले तलवार की तरह है। जीवन का आधार हृदय ही है। हृदय के केंद्र को खोजकर उसे पनपाने की आवश्यकता है संकल्प-शक्ति को बढ़ाने की आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश बहुत शिक्षित लोग बहुत आसानी से काम, लोभ तथा अन्य प्रलोभनों का शिकार बन जाते हैं।

ज्ञान और व्यक्तित्व में समन्वय लाने के लिए दो साधनों की आवश्यकता है सर्वप्रथम श्रम की साधना क्योंकि श्रम जीवन का पारस पत्थर है। दूसरे एक पहुँचे हुए आत्मा के साथ सम्पर्क की आवश्यकता है। नयी शिक्षा में विज्ञान और आत्मज्ञान का समन्वय होना आवश्यक है। प्रस्तुतकर्त्री सरलादेवी

शिक्षा-विभाग में दायित्व और अधिकार

सुधाकर शर्मा

"क्या साहब, आपने प्राथमिक विद्यालयों के निरीक्षकों के लिए एक लम्बा-चौड़ा निरीक्षण-प्रपत्र तो तैयार कर दिया, निरीक्षक-वर्ग को लेकर जगह-जगह आठ आठ, दस दस रोज के पुनर्बोधन शिविर भी कर डाले और लम्बी-चौड़ी आख्याएँ भी छपवाकर बँटवा दी, मगर कभी यह भी सोचा कि प्राथमिक शिक्षा (एलीमेण्टरी एजुकेशन) की वर्तमान व्यवस्था म आपकी कोशिशें कहाँ तक कारगर होंगी ?' प्रश्नकर्ता विभाग के ही एक वयोवृद्ध अनुभवी अधिकारी थे, और उस रोज प्राइमरी स्कूलों की दुर्दशा की बात करते-करते काफी ताव खाये हुए थे।

"'''व्यवस्था ? व्यवस्था से आपका मतलब ?' हमने जानते हुए भी अनजान बनने की कोशिश की।

"''''व्यवस्था का मतलब है आपका यह वर्तमान 'सेट अप', यानी कि यह तन्त्र जिसके हाथों म प्राथमिक शिक्षा की बागडोर शासन ने दी रखी है।" मित्र ने कहा।

'व्यवस्था म परिवर्तन की वाञ्छनीयता के बारे मे हमने चर्चा की तो है एक लेख मे।' हमने दबी जुबान से कहा।

सुनकर मित्र भड़क उठे, बोले, "चर्चा करने से क्या होगा, कोई ठोस कदम उठवाइए शासन से, वरना प्राथमिक शिक्षा मे सुधार की बात करना छोड़ दीजिए।"

"व्यवस्था म भी आवश्यक परिवर्तन होगा धीरे-धीरे, मगर तब तक हम और आप, जो कर सकते हैं, वह तो करें।" मैंने कहा।

"करें क्या, खाक ?" मित्र फिर गरमाये। बोले "आप यह क्यों नहीं समझते कि बालक, अध्यापक, निरीक्षक और सचालक, इन चार पहियों पर चलनेवाली गाड़ी मे अगर एक पहिया बेकार या अशक्त होगा तो शेष तीन पहियों को आप कितना ही मजबूत करें, गाड़ी चलेगी नहीं। या फिर गाड़ी का ढांचा ही बदल दें, उसे तीन पहियों की बना दें।"

मित्र की दलील सुनकर हमे हँसी आ गयी। हमे हँसता देखकर मित्र और उबले, कहने लगे, 'बात हँसने की नहीं, रोने की है। आप लोगों ने परिणाम सोचे समझे बिना और बिना कोई पूर्व उपाय किये छात्र-सख्या इतनी बढ़ा ली

कि उसको बैठाने के लिए एक झोपड़ी तक देना आपके लिए समस्या हो गयी। इतने स्कूल खोल दिये कि उनको साधारण योग्यतावाले दीक्षित अध्यापक तक मुहैया करना आपके लिए सरदर्द हो गया, और फिर आप इन सज्जाहीन और भवनहीन विद्यालयों मे एक या दो अर्द्ध-शिक्षित अध्यापक लगाकर, निरीक्षक-वर्ग से यह उम्मीद करते हैं कि रातो रात शैक्षिक उन्नयन हो जाय। स्कूलो मे ढग की पढ़ाई न हो तो निरीक्षक-वर्ग से जवाब तलब करते हैं, अध्यापको को समय पर वेतन न मिले तो जिला विद्यालय निरीक्षक से कैफियत मांगते है ?"

'भाई, उनसे न पूछें तो और किससे पूछें ?' हमने हँसते हुए कहा। "जिले की शिक्षा के मालिक तो जिला विद्यालय-निरीक्षक ही है।'

मित्र ने अपेक्षाकृत नरम स्वर म अपनी बात आगे बढायी "आखिर आप यह तो मानेंगे ही कि आज स्कूलों में निष्ठाहीनता ही आम फैशन है, तब आप कर्तव्यनिष्ठा का पाठ केवल उपदेश देकर ही तो नही पढा सकते अध्यापकों को ? उनसे कार्य लेने के लिए अन्य बहुत-सी बातो के अलावा उन पर थोडा बहुत नियन्त्रण भी तो जरूरी है। अब आप खुद बतायें कि क्या नियन्त्रण है निरीक्षक-वर्ग का प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापको पर। न तो अच्छा काम करनेवाले अध्यापक को वह कोई इनाम दे सकते हैं और न कर्तव्य विमुख अध्यापक को कोई दण्ड दे सकते हैं या दण्डित करा सकते हैं। यहाँ तक कि अच्छे अध्यापक का किसी सुविधाजनक स्थान पर और निकम्मे अध्यापक का, घर से दूर तबादला तक नही कर सकते। अखाडिया अध्यापक हो तो सबडिप्टी साहब या डिप्टी साहब का ही तबादला करवा दे किसी दूसरी जगह। जिन्हे आप जिले की शिक्षा का मालिक कहते हैं, वे ही कितने दण्डनीय अध्यापको को दण्ड दिलवा सके हैं, इसका कोई लेखा-जोखा है ?"

"तो क्या चाहते हैं आप ?' हमने बीच मे ही मित्र को टोका। 'क्या प्राथमिक शिक्षा को स्वायत्त सस्थाओं के हाथ में लेकर उल्टी गगा बहायी जाय, विकेन्द्रीकरण की जगह केन्द्रीकरण की नीति अपनायी जाय ?"

"मैं क्या चाहूँगा ?" मित्र फिर कुछ गरम हुए। मैं तो बस अच्छी शिक्षा चाहता हूँ और मैं समझता हूँ कि आप, आपका विभाग और शासन, सभी यही चाहते हैं। दूसरे शब्दो मे कहूँ तो मैं वे परिस्थितियाँ चाहता हूँ जिनमे 'अच्छी शिक्षा' पनप और फल फूल सके, जिनमे अच्छे अध्यापकों को निरन्तर प्रोत्साहन मिले और पहले से भी अच्छा कार्य करने की प्रेरणा मिले, जिनमे अपात्र अध्यापक तथा अन्य अपात्र शैक्षिक कार्यकर्ता या तो अपने आपको सुधारें या

फिर शिक्षा के क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र चल जायें। अब इसके लिए कौनसी नीति अपनायी जाय, केन्द्रीकरण की या विकेन्द्रीकरण की, यह ऊपरवाले जानें।"

'मगर हमारे इस लोकतंत्र में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण तो अपरिहार्य है।'

"तो मैं भी आपसे यह कब कह रहा हूं कि विकेन्द्रीकरण की नीति को तिलाञ्जलि दे दी जाय। मैं तो सिर्फ इतना चाहता हूं कि जिन अधिकारियों के कन्धों पर आप प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी डालें, उनके कन्धों को पहले आप काफी मजबूत कर दें जिससे कि वे उस जिम्मेदारी का समुचित रूप में निर्वाह कर सकें। स्वायत्त संस्थाएँ अपनी जगह पर रहें, मगर वह अपनी शक्ति को शिक्षा के लिए अपनी आय के स्रोत बढ़ाने में लगायें और अपने अधिकारों का सदुपयोग प्रशासनात्मक नीतियों के निर्धारण में तथा उन नीतियों का पक्षपातहीन अनुपालन कराने में करें। मेरे कहने का मतलब यह है कि स्वायत्त संस्थाओं से संलग्न शिक्षा विभागीय अधिकारी—उन्हें आप किसी भी नाम से क्यों न पुकारें—स्थानान्तरण, निलम्बन नियुक्ति तथा सेवा समाप्ति आदि के अधिकारों से सज्जित होकर स्वायत्त संस्थाओं द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रिया-वयन करें और वह उन नीतियों का सही सही अनुपालन कर रहे हैं या नहीं, इसके लिए स्वायत्त संस्थाओं के निर्वाचित पदाधिकारीगण उन पर सतर्क दृष्टि रखें। अगर ऐसा हो जाय तो दायित्व और अधिकार के बीच सन्तुलन रहे, शिकायतों के मौके कम आयें और प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक समझें कि निरीक्षक वर्ग द्वारा विद्यालयों का निरीक्षण महज एक औपचारिकता नहीं है, बल्कि उसका एक महत्त्व है।'

मैंने अपनी शंका व्यक्त करते हुए कहा, "मगर राजकीय दीक्षा विद्यालयों से संलग्न माडल स्कूल' तो पूरी तरह आपके ही नियंत्रण में हैं। यह क्या वास्तव में आदर्श विद्यालय हैं?'

सुनकर मित्र हँसे। हँसते हुए बोले नहीं आदर्श विद्यालय तो नहीं हैं ये भी जमाने की हवा उन्हें भी लग चुकी है, निष्ठाहीनता की बीमारी यहाँ भी आ गयी है यहाँ भी सिफारिशें और बाहरी दबाव कभी कभी मार्ग में आड़े आ जाते हैं। मगर फिर भी ये बहुत से प्राथमिक विद्यालयों से अच्छे हैं इसीलिए कि इन विद्यालयों में दायित्व और अधिकार की सन्तुलन शृङ्खला शिथिल भले ही हो गयी हो अभी एकदम टूटी नहीं है।"

श्री सुधाकर शर्मा, उपशिक्षा-निदेशक, आगरा

शिक्षा की पूर्वी व पश्चिमी प्रणालियाँ

स्व० प्रो० हुमायूँ कबीर

शिक्षा व्यक्ति को अपने तथा साथियो व वातावरण के विषय म ज्ञान कराती है। अत आन्तरिक व बाह्य ससार का ज्ञान कराना ही शिक्षा का कार्य है। मनुष्य एकाकी नही रह सकता, अत पूर्वी व पाश्चात्य सभी शिक्षा-प्रणालियो का ध्येय है—मनुष्य को समुदाय का उत्तम सदस्य बनाना। अतएव शिक्षा प्रणालियाँ समुदायो की विभिन्न सामाजिक व्यवस्था के अनुसार विभिन्न हो गयी। और यदि एक ने मानव-स्वभाव के किसी एक अंश पर महत्त्व दिया तो दूसरे ने अन्य पर।

पूर्वीय शिक्षा-प्रणाली और आध्यात्मिकता

आरम्भ मे केवल महत्त्व देने से जो अन्तर पड जाता है उसके कारण, समय बीतने पर, मानव-स्वभाव के किसी प्रधान अश की उपेक्षा हो जाती है। उदाहरण-स्वरूप, प्राचीन भारत मे शिक्षा के चार मुख्य उद्देश्य थे कर्म, अर्थ, धर्म, मोक्ष। जब तक भारतीय समाज स्वस्थ व सजीव था, चारो उद्देश्यो को यथोचित महत्त्व प्राप्त था। परन्तु देश के शक्तिहीन होने के साथ महत्त्व-विषय म भी परिवर्तन आ गया और धीरे-धीरे आध्यात्मिकता ने समाज म प्रधान स्थान ग्रहण कर लिया। सामाजिक दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ भारतीय शिक्षा विषय मे भी परिवर्तन आ गया। इससे भौतिक लाभो की अपेक्षा आध्यात्मिकता पर तथा सक्रियता की अपेक्षा ध्यान पर अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। बौद्धिक जिज्ञासा तथा स्वतत्र दृष्टिकोण की अपेक्षा परम्पराओं के पालन तथा सत्तारूढो के आदर को अधिक मूल्य दिया जाने लगा। सहिष्णुता और सतोष को आध्यात्मिकता का मूल्य दिया जाने लगा। उस समय वे इस तथ्य की उपेक्षा कर बैठे कि ये दोनो गुण कभी कभी निष्क्रियता व निश्चलता का रुप धारण कर लेते हैं। आध्यात्मिकता की एक विचित्र प्रवृत्ति यह होती है कि व्यक्ति आत्मलीन हो जाता है और बाह्य क्रियाओ को अभिव्यक्तियो से छुटकारा पा जाता है। परिणामस्वरूप, भारतीय शिक्षा बुद्धि के विकास पर अधिक महत्त्व देने लगी। शायद बुद्धि पर भी नही परन्तु स्मरण-शक्ति पर और उसने अन्य मानवीय शक्तियो को उपेक्षा कर दी। आध्यात्मिक पक्ष पर महत्त्व देने के कारण समस्त शारीरिक कार्यों को ओर यदि घृणा नहीं तो उपेक्षा तो उत्पन्न हो ही गयी।

पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली और भौतिकता

यूरोप से हमे इसके विपरीत अनुभव होता है कि किस प्रकार केवल एक पक्षीय

महत्त्व देने से शिक्षा मे विकार आ जाता है। प्लैटो का विश्वास था कि शिक्षा से शरीर व बुद्धि का सतुलित विकास होना चाहिए। तथा शैक्षणिक माध्यम के रूप मे गणित, सगीत व खेल-कूद पर समान महत्त्व दिया जाना चाहिए। इस आदर्श को प्रत्यक्ष रूप मे कभी भी चुनौती नही दी गयी पर समय बीतने पर महत्त्व बौद्धिक विकास पर ही दिया जाने लगा।

जागृति के आरम्भ से, विज्ञान की चमत्कारिक विजय ने यूरोप को मानवीय व्यक्तित्व की समस्याओ पर वैज्ञानिक अनुसधान की विधियो को लागू करने को प्रोत्साहित किया। उन्होने यह जानने का प्रयास नही किया कि इस प्रकार विधियाँ सदैव लागू की जा सकती हैं या नही। वैज्ञानिक विधि का सार है विशिष्ट मामलो से उदासीन रहना, व्यक्तित्व का सार है प्रत्येक व्यक्ति को आत्मचेतना का एक केन्द्र मानना।

शिक्षा की जिस प्रणाली को विज्ञान के अनुसार बना दिया गया, उसमे व्यक्ति को विधान का एक उदाहरण अथवा प्रामाणिक शृ खला का एकाश माना गया है। मानव समाज को ऐसे एकाशो का एक समुदाय माना गया है। सामाजिक सबध भौतिक के सिद्धान्तो पर ढाले गये हैं। यह भी माना गया था कि व्यक्ति विशेष तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध परमाणु तथा उनके आकर्षणीय सम्बन्धो के समान हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया था कि प्रतियोगिता ही सामाजिक उन्नति का सिद्धान्त है। यह माना गया था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य की साधना करे तो सामाजिक लक्ष्य स्वत ही प्रतिप्राप्त हो जायेंगे। सामाजिक हित को व्यक्ति द्वारा जागृत आत्महित की साधना का परिणाम माना है, जब कि विज्ञान का उद्देश्य विश्वव्यापक नियमो की स्थापना करना है। इन नियमो को वास्तविक अनुभवो पर आधारित माना गया है। यूरोप की शिक्षा विवेक तथा विज्ञान के प्रायोगिक आधार से प्रभावित थी। विवेक की अभिव्यक्ति अव्यावहारिक समझ पर महत्त्व देने से हुई। प्रायोगिक आधार जीवन की भौतिक स्थितियो के सुधार के लिए निरन्तर प्रयास म दृष्टिगोचर होता है। शिक्षा के इन पाश्चात्य विचारो म मानवीय अश की वृद्धि शरीर-विज्ञान के विकास के साथ साथ हुई। इन विकासो के फलस्वरूप सामाजिक सम्पर्क के सिद्धान्त का स्थान धीरे-धीरे व्यवस्थित सम्पूर्ण समाज के विचार ने ले लिया।

आदर्श शिक्षा

समाज की व्यवस्थित सम्पूर्णता के विचार ने शिक्षा प्रणाली तथा सिद्धान्तो को तत्काल प्रभावित नहीं किया। आज भी हम पूर्णत यह नहीं पहचानते कि मनुष्य

के जीवन में सहयोग उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितनी प्रतियोगिता। समाज की व्यवस्थित सम्पूर्णता के विचार ने व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध में बनी हुई धारणाओं में अन्तर ला दिया है। उसकी सहायता से हम उसकी अनन्त जटिलता को भी समझने लगे हैं। अतः यह अधिकाधिक माना जा रहा है कि व्यक्तित्व के विकास को लक्ष्य बनानेवाली शिक्षा को चाहिए कि वह न केवल बुद्धि के विकास के लिए प्रयास करे, परन्तु उसके विचारों तथा कल्पनाओं के लिए भी स्थान दे।

अतः हमें शिक्षा की पुनर्व्यवस्था की आवश्यकता है, जो कि मानव जाति की आवश्यकताओं की पूर्ति करे। इसका यह अर्थ नहीं कि शिक्षा-प्रणाली व स्तर उनके लिए समान हो। इसका केवल यह अर्थ है कि वे तुलनीय होने चाहिए। उत्पादन-क्षेत्र में विज्ञान के कार्य से यह सिद्ध हो गया है कि राष्ट्रों की उन्नति उनके ज्ञान पर निर्भर करती है। साथ ही इसने ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं जिसमें जीवन की उत्तम वस्तुएं सभी को उपलब्ध हो सकें। मशीनें जीवन की अनेक दैनिक कार्यों से मुक्ति दिला सकती हैं। आज का विश्व एसे समय की आशा कर सकता है जब कि उपभोग की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकती हैं। व्यक्तियों में, अमीर और गरीब में मित्रता नहीं हो पाती। यही राष्ट्रों के सम्बन्ध में भी सत्य है। अतः विभिन्न राष्ट्रों की तुलनीय उन्नति पर ही अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता सम्भव है। और ऐसी उन्नति की कुंजी तुलनीय शिक्षा-स्तर में है।

विज्ञान के परिणामस्वरूप संसार के सङ्कुचित हो जाने से आदर्शों तथा शिक्षा-प्रणालियों में समानता की आशा की जाती है। परन्तु इससे व्यक्तिगत विभिन्नताओं तथा आवश्यकताओं की अवहेलना नहीं कर देनी चाहिए। हमने अनुभव किया है कि राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में अधिक छात्र-विशेषों की आवश्यकता है। यह भी आवश्यक है कि विभिन्न राष्ट्रों में उनके अनुरूप ही प्रणालियाँ बनायी जायें। जब कि वैज्ञानिक प्रगति जनता के आर्थिक तथा राजनैतिक भेद-भावों को मिटाती है, यह अस्तित्व के लिए संघर्ष से छुटकारा दिलाकर, शक्ति की बचत करके, सांस्कृतिक क्षेत्र में अधिक विभिन्नता को प्रोत्साहन देती है। इच्छाओं के ऊपर जितनी ही अधिक ढील रहेगी, मनुष्यों की रुचियों व पसन्द में उतनी ही अधिक विभिन्नता आ जायेगी। अतः वैज्ञानिक प्रगति संस्कृति को न तो एक ही स्तर पर लाना चाहती है और न ही सांस्कृतिक साम्राज्यवाद लाना चाहती है।

हमें जिसकी आवश्यकता है और जिसकी इच्छा करनी चाहिए वह यह है, कि मनुष्य के दीर्घ इतिहास में प्राप्त मूल्य सभी के लिए उपलब्ध हों।

सम्पूर्ण मनुष्य के लिए शिक्षा

इतिहास से हमें शिक्षा मिलती है कि पूर्णतः प्रभावशील होने के लिए शिक्षा

सम्पूर्ण मनुष्य के लिए होनी चाहिए। इससे मनुष्य के शरीर तथा मस्तिष्क, उसकी बुद्धि व कल्पना के सन्तुलन व विकास मे सहायता मिलनी चाहिए। गत १०० या अधिक वर्षों से शिक्षा-सुधारक यही प्रयत्न करते आ रहे हैं। अनेक पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रीगण ने अल्पायु के प्रशिक्षण मे सक्रियता की महत्ता निर्दिष्ट की है। सूचना व शिक्षा मे अन्तर सिखानेवाले सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षा वह है जो व्यक्ति की सर्वोत्तम शक्तियों को उभारती है। लगभग ५० वर्ष पूर्व टैगोर ने कहा था कि सच्ची शिक्षा वह है जो बालक को प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क मे विकसित होने का अवसर प्रदान करे। गाधीजी ने बालक की क्रियाओ को सामाजिक रूप स उपयोगी लक्ष्य का साधन बताया। पाश्चात्य तथा पूर्वीय, ये सभी प्रयोग इस बात पर महत्त्व देते हैं कि शिक्षा को बौद्धिक नियत्रण नही मानना चाहिए, अपितु सम्पूर्ण मनुष्य का नियत्रण मानना चाहिए।

अतीत म, शिक्षा ने व्यक्ति-विशेष तथा समाज के सम्बन्धो की उपेक्षा की है। इससे शिक्षा खोखली हो गयी है और तुलना मे अव्यावहारिक। यह बच्चो मे रुचि जागृत करने मे असमर्थ रही। एक ठोस स्थिति बालक को अधिक सुगमता से समझ म आ जाती है और उसकी वेदना, कल्पना व विचार-शक्ति को उभारने मे सहायक होती है। अव्यावहारिक बातो को सीखते समय प्राय बालक को स्मरण-शक्ति धोखा दे जाती है। यही कारण है कि पश्चिम के शैक्षणिक प्रयोग, तथा भारत म गाधी तथा टैगोर के विचार क्रियात्मक शिक्षा पर इतना अधिक महत्त्व देते हैं। सक्रिय शिक्षा बालक मे रुचि जागृत करती है और साथ ही उसे उसकी क्रियाओं के परिणामों का अनुभव हो जाता है।

शिक्षा और समाज

समाज को अपने स्वभावानुसार विभिन्न योग्यताओ और विभिन्न कर्तव्योवाले व्यक्तियो की सेवाओं की आवश्यकता है। शिक्षा के सामाजिक लक्षणो पर महत्व देने से (क) सहयोग की भावना का विकास होता है, (ख) यह ज्ञात होता है कि कर्तव्यो के अन्तर, मूल्य व महत्ता के अन्तरो की समता नही कर सकते, तथा (ग) बौद्धिक व शारीरिक नियत्रण के भेद-भाव मिटते हैं। एक समय था जब कि प्राविधिक शिक्षा को शिल्प समझा जाता था और अधिक-से-अधिक उसका अर्थ किसी विशिष्ट व्यवसाय अथवा उद्योग म कौशल माना जाता था। यदि शिल्प का सामाजिक महत्त्व दृष्टि मे रखा जाय तो आजकल प्राविधिक शिक्षा का अर्थ अधिक व्यापक माना जाता है। भारत जैसे देश मे, शिक्षा का नवीन विचार परिश्रम की प्रतिष्ठा को नवीन मान्यता देता है।

नवीन शिक्षा को इस बात को भी महत्त्व देना चाहिए कि वैयक्तिक समाज तथा मानव जाति के अधिक विस्तृत समाज मे जितना घनिष्ट सम्बन्ध है उतना पहले कभी न था। इससे पूर्व कभी राष्ट्र इतने निकट सम्पर्क मे न आये। आज पृथ्वी के किसी भी भाग मे घटित घटना तत्काल सबको प्रभावित कर देती है। कोई राष्ट्र अपनी हानि करके ही अपनी सीमा के बाहर घटित घटनाओ की उपेक्षा कर सकता है। वे दिन गये जब कि एक समाज अथवा राष्ट्र अपनी सीमाओं के भीतर रहकर ही कम या अधिक सफलतापूर्वक अपने विकास की ओर उन्मुख होता था। अतएव, यह अनिवार्य है कि समूचे विश्व मे, शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीय मामलो पर अधिकाधिक ध्यान दे।

एकीकरण के लिए

वर्तमान युग मे, शिक्षा की समस्या है कि मनुष्यों मे किस प्रकार ऐसी भावना उत्पन्न करायी जाय कि वे सर्वकल्याण के कार्य करने मे प्रवृत्त हों। ऐसा वे तब तक नही करेंगे, और न हो कर सकते हैं, जब तक कि उन्हे आन्तरिक शान्ति प्राप्त न हो। *व्यक्तियों मे सम्पूर्णता आये बिना सामाजिक एकीकरण सम्भव नहीं है।* वैयक्तिक सामाजिक एकीकरण सामान्य आदर्श के निर्धारण पर निर्भर करते हैं। केवल शिक्षा के माध्यम से ही ये आदर्श समस्त मनुष्यो की मानसिक बनावट का अंग बन सकते हैं।

एक सुव्यवस्थित तथा मिश्रित समुदाय के व्यक्तियो मे भी गहन अन्तर होता है। फिर भी, ऐसे अन्तरो से कोई सघर्ष नही आता, कारण कि कुछ धारणाएँ ऐसी *हैं जो कि उस समुदाय म सभी सदस्यो के लिए सामान्य हैं। समाज को चाहिए* कि सामान्य आदर्शों के लिए भी कोई ऐसा ही आधार बनाये। य बहुत सामान्य रूप म निर्दिष्ट किये जा सकते हैं परन्तु औरो के साथ-साथ उसमे ये निम्नलिखित *मूल्य भी सम्मिलित हो जाने चाहिए. (क) सबके लिए शारीरिक कल्याण,* (ख) सबकी जीवन-स्थितियो के लिए आवश्यक आर्थिक पर्याप्ति, (ग) वित्तीय, राजनैतिक, सामाजिक अथवा सास्कृतिक मामलो मे स्वतन्त्रता, तथा (घ) प्रत्येक को, बिना किसी अन्य व्यक्ति के अधिकारो को चोट पहुँचाये, अपनी शक्तियो को पूर्ण रूप से विकसित करने की स्वतन्त्रता।

समावेश की शिक्षा

मानव शक्तियाँ और प्रवृत्तियाँ परिवर्तनीय और अस्थायी हैं, अत उन्हे उपयुक्त *शैक्षिक प्रक्रम द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।* इसलिए *शिक्षा विश्व मे प्रचलित संस्कृतियो मे,* सहयोग के माध्यम का कार्य कर सकती है और उसके लिए

समुचित स्थितियाँ भी उत्पन्न कर सकती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक विश्व में शिक्षा को हिंसा के बिना उन्नति करने का माध्यम बनाना चाहिए। ऐसा कोई समाज नहीं है जो निरन्तर परिवर्तन नहीं करता। बाह्य घटनाएँ और आन्तरिक प्रक्रम व्यक्ति विशेष तथा समाजो के लक्षण तथा उनकी व्यवस्था मे निरन्तर परिवर्तन ला रहे है। किसी व्यक्ति अथवा समाज को शक्ति को मापने का सर्वोत्तम ढंग यह है कि वह किस तीव्रता से आन्तरिक व बाह्य क्रियाओं का उत्तर दे सकता है। जीवित रहने का अर्थ है परिवर्तन, फिर भी आकस्मिक परिवर्तन शृङ्खला को भंग कर सकता है। ऐसी स्थिति म व्यक्ति और समाज मे परिवर्तन ही नही होता, परन्तु उनका खण्डन भी हो जाता है। यह शिक्षा का कार्य है कि हिंसात्मक उथल-पुथल अथवा आकस्मिक अनियमितता के बिना उन्नति को धारावाहिक बनाने की प्रवृत्ति का विकास करे। अतीत मे, मानव को केवल अपने ही पूर्वजो की सफलताएँ विरासत मे प्राप्त होती थीं। आज ससार के सगठन से मनुष्य को वह सभी कुछ प्राप्त है जो किसी भी काल मे, किसी भी स्थान मे मानव ने पाया था। वह अब सदियो से समाज के उत्पादन व पतन का सर्वेक्षण करने मे समर्थ है। और वह इतिहास से यह भी सीख सकता है कि परिवर्तन की सहर्ष स्वीकृति केवल उन्नति का ही कारण नही होती, अपितु जीने का भी कारण होती है। अत आधुनिक विश्व मे, शिक्षा को चाहिए कि मनुष्य मे सहनशीलता की भावना उत्पन्न करे। सहनशीलता, जो समस्त सस्कृतियो की उन्नतियो को मनुष्य के लिए एक सामान्य विरासत मे सगठित कर दे, और जो उस प्रत्येक नवीन स्थिति का नवीन तथा रचनात्मक प्रत्युत्तर देने मे सहायक हो। ('यूनेस्को' से साभार प्राप्त)

बालकों में स्वच्छंद पठन का विकास और पुस्तकालय

दामोदरलाल शर्मा

परम्परागत 'थ्री ग्रार्स' (रीडिंग, राइटिंग, अर्थमेटिक) मे 'रीडिंग' को प्रथम स्थान दिया गया है। अपने देश मे 'रीडिंग' की स्थिति शोचनीय है— इसका दायित्व पाठ्य-पुस्तक-केन्द्रित शिक्षा-प्रणाली का है। इस शिक्षा-प्रणाली मे बालक पूरे सत्र पाठ्य पुस्तको के इर्द गिर्द ही घूमता रहता है उसे पाठ्य-क्रमेतर पठन के लिए अवसर नही मिल पाता, यहाँ तक कि वह पाठ्यक्रम-सम्बन्धी पुस्तकें भी पूरी तरह नही पढ पाता है। इस अभाव की अनुभूति छात्र को स्वय भी नहीं हो पाती तथा अध्यापक महानुभाव भी इस दिशा म बिलकुल ध्यान नही देते। भाषण के या नोट्स के माध्यम से पाठ्यक्रम की पूर्ति के प्रयास मे ही वे उनके कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। गृह-कार्य तथा पर्यवेक्षित-अध्ययन-कक्षाओ के माध्यम से पठन को प्रोत्साहित करने की दिशा मे कुछ नहीं किया जाता। 'प्रोजेक्ट मेथड्,' 'एसाइनमेण्ट मेथड' इत्यादि शिक्षण की प्रणालियो का व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी स्थिति मे बालको मे पठन-विकास को दिशा-निर्देश मिलना सम्भव नहीं होता। पठन-विकास के अभाव मे बालक के मानसिक विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है जब कि बालक का मानसिक विकास शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है।

पुस्तकालय की आवश्यकता और उपयोग

पठन-विकास-कार्यक्रम की सफलता की प्रथम आवश्यकता है पुस्तकालय की स्थापना। पुस्तकालयों की स्थापना के बिना बालको मे पठन-विकास असम्भव प्रतीत होता है। शिकागो विश्वविद्यालय (अमेरिका) म हुए दो शोध अध्ययनो ने पुस्तकालय का पठन-कार्यक्रम से सम्बद्ध विषय पर अन्वेषण किया है।[१] शोध-निष्कर्षों के अनुसार विद्यालय मे पुस्तकालय की स्थापना से पूर्व उच्च बुद्धिवाले छात्र भी अपनी योग्यता से कम अध्ययन कर पा रहे थे जब कि पुस्तकालय की स्थापना के उपरात सामान्य बुद्धिवाले छात्र भी अपनी योग्यता

१ (अ) एन इवेल्यूएशन आफ दी स्कूल लाइब्रेरी इन रीडिंग प्रोग्राम आफ दी स्कूल—मास्टरटन एलिजाबथ, शिकागो विश्वविद्यालय, १९६३।
(ब) ए कम्पेरीजन आफ स्टूडेण्ट रीडिंग इन एलिमेण्ट्री स्कूल्स विद एण्ड विदाउट ए सेण्ट्रल लाइब्रेरी, शिकागो, १९५६।

से अधिक अध्ययन करने लगे। पठन-कार्यक्रम की आधार-शिला पुस्तकालय है, किन्तु दुःख का विषय है कि अपने देश में माध्यमिक स्तर तक ये नितान्त उपेक्षित हैं। इनकी उपेक्षा ही बालकों के मानसिक विकास में बाधक है। बालकों में सामान्य ज्ञान का अभाव रह जाता है। पठन-चातुर्य नहीं आ पाता। बालकों को सामान्य पुस्तकों तथा संदर्भ पुस्तकों के उपयोग के महत्त्व एवं विधि का ज्ञान नहीं हो पाता। यह बहुत बड़ा अभाव है।

जो राष्ट्र पढ़ता है, वह शक्तिशाली राष्ट्र होता है, इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमें इस प्रकार की शिक्षण-पद्धतियों को अपनाना चाहिए, जिनमें पुस्तकालय का उपयोग अनिवार्य हो जाय। सारे सत्र के पाठ्यक्रम का नियोजन इसी तथ्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। पुस्तकालय शिक्षण-संस्था का हृदय है, इस तथ्य को हृदयंगम कर साकार रूप प्रदान करने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिए और इसीमें बालकों की पठन-विकास की समस्या का हल निहित है।

पुस्तकालय का लाभ

स्वच्छंद-पठन में रुचि प्रधान होती है। रुचि व्यक्तिशः भिन्न होती है। उम्र, लिंग, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर रुचि-निर्माण के प्रमुख तत्त्व हैं। माता-पिता तथा परिवार का वातावरण बालक के रुचि-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। परिवार के उपरान्त यह दायित्व विद्यालय पर आता है, जहाँ अध्यापक तथा पुस्तकालय रुचि-निर्माण एवं रुचि-निर्देशन में अपना योगदान करते हैं।

देश तथा विदेश में हुई विभिन्न शोधों के आधार पर प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के बालकों की सामान्य रुचियों का पता लगाया गया है। पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक पुस्तकों से परिचय मात्र प्राप्त करते हैं, प्राथमिक स्तर के छात्र आनन्द के लिए पुस्तकों के पृष्ठ उलटते हैं, सचित्र पुस्तकों में चित्र-दर्शन में आनन्द लेते हैं। माध्यमिक स्तर के छात्र विनोदात्मक साहित्य में रुचि लेने लगते हैं। सामान्यतया माध्यमिक स्तर के छात्र कहानियाँ, (लघु-कथाएँ, लोककथाएँ, रहस्यमय एवं रोमांचकारी कहानियाँ, जासूसी कहानियाँ, आविष्कार, खोज की कहानियाँ) यात्रा-साहित्य, महान् पुरुषों एवं महिलाओं की जीवनियाँ, एकांकी नाटक, फिल्मी साहित्य, खेल-कूद सम्बन्धी समाचार एवं लेख, हास्य-व्यंग्य विनोद-साहित्य इत्यादि के पठन में रुचि रखते हैं। १४-१५ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर बालकों में गंभीर साहित्य के प्रति अभिरुचि पैदा की जा सकती है तथा इनको समुचित दिशा प्रदान करने एवं प्रोत्साहित करने-

की दिशा में पुस्तकालय अपने विभिन्न कार्यकलापों का उपयोग कर सकता है।

बालकों की रुचियों के उपर्युक्त सामान्य परिचय के अतिरिक्त अपनी शाला के बालकों की विशिष्ट रुचियों की जानकारी के लिए निम्न तरीके अपनाये जा सकते हैं। सबसे सुगम माध्यम प्रश्नावली[1] है। इसका उपयोग सत्र के प्रारम्भ में ही कर लेना उपयुक्त रहेगा। अन्य माध्यम इस प्रकार हैं -

(१) बालक के साथ अनौपचारिक वार्तालाप
(२) बालकों से दैनिक कार्यक्रम की डायरी
(३) माता पिता से बालक की दिनचर्या का परिचय
(४) व्यवस्थित साक्षात्कार
(५॰ बृहत् पुस्तक-प्रदर्शनी में से रुचि के साहित्य का बालकों द्वारा चयन
(६) पठन अभिरुचियों पर लेख।

रुचि-निर्धारण के बाद वांछित साहित्य की उपलब्धि मुख्य कार्य है। *बाल-साहित्य-प्रकाशक संस्थान[2] इसकी उपलब्धि में सहायक होंगे।*

पठन-अभिप्रेरण-हेतु पुस्तकालय-परिचय-कार्यक्रम का सत्रारम्भ में आयोजन आवश्यक है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न पर जोर दिया जाना चाहिए

(१) बाल रुचि-साहित्य-संग्रह परिचय। कुछ प्रमुख पुस्तकों का प्रत्यक्ष दर्शन तथा कुछ के रोचक प्रसंगों का पठन।

(२) सामान्य पुस्तक के विभिन्न भागों (शब्दानुक्रमणिका, विषय सूची, फुटनोट्स तथा सहायक ग्रंथ सूची) के उपयोग के महत्त्व एवं विधि का परिचय।

(३) सन्दर्भ-ग्रंथों (शब्दकोश, विश्वकोश, अब्दकोश निर्देशिकाएँ, नक्शा, गजेटियर, एटलस) के उपयोग के महत्त्व एवं विधि पर प्रकाश।

(४) (अ) बालोपयोगी पत्रिकाओं (सारिका, नन्दन, पराग, चन्दामामा) का प्रत्यक्ष दर्शन तथा उनमें प्रकाशित होनेवाली पाठ्य सामग्री का परिचय।

(ब) 'धर्मयुग,' साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' इत्यादि साप्ताहिक पत्रिकाओं

---

१ नमूना इस लेख के अन्त में दिया है।

२॰ चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, देहली, देहली पब्लिक लाइब्रेरी, देहली, राजकमल प्रकाशन, देहली, राजपाल एण्ड सन्स, देहली; सस्ता साहित्य मण्डल, देहली, भारतीय विद्या भवन बम्बई; अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा इत्यादि।

के स्थायी स्तम्भो (बाल-जगत, क्रीडा-जगत्, महिला-जगत, चिकित्सा व विज्ञान, हास्य, व्यग्य इत्यादि) का परिचय ।

(स) दैनिक समाचार पत्रो के रविवासरीय तथा सामान्य ग्रको के स्थायी स्तम्भो (बाल फुलवाडी, नया साहित्य, पुस्तक-समीक्षा साहित्य-परिक्रमा, क्या ग्राप जानते हैं, स्वास्थ्य प्रश्नोत्तर' यत्र-तत्र-सर्वत्र) की जानकारी ।

(द) सामान्य ज्ञानवर्द्धक पत्रिकाग्रो से परिचय, यथा-लोकविज्ञान, विज्ञान प्रगति, दिनमान, कम्पीटीशन मास्टर इत्यादि ।

शाला म होनवाली पाठ्यक्रमेतर प्रवृत्तियो का माध्यम बालको के पठन-विकास के तरीको म दिशा-निर्देशन एव ग्रभिप्रेरण की दृष्टि से एक सुलभ तरीका है। पाठ्क्रमेतर प्रवृत्तियो को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है

(१) सत्रान्तर्गत पढनेवाले विभिन्न उत्सव एव त्योहार-सम्बन्धी ।

(२) समय-समय पर होनेवाली वाद-विवाद प्रतियोगिताग्रो एव सभाषण-सम्बन्धी ।

(३) सत्र के बहुचर्चित राजनैतिक, ग्रार्थिक एव सामाजिक समस्याग्रो पर सभाषण सम्बन्धी ।

इन विषयक पठन के प्रोत्साहनार्थ निम्न कार्य पुस्तकालय ग्रपने हाथ मे ले सकता है :

(१) प्रवृत्ति से सम्बन्धित पाठ्यसामग्री (पुस्तक, पुस्तिकाएँ, पत्रिकाग्रो मे प्रकाशित लेख, चित्र इत्यादि) की ग्राकर्षक प्रदर्शनी का ग्रायोजन ।

(२) प्रवृत्ति के उपक्रम से पूर्व, प्रवृत्ति-सम्बन्धी पाठ्य-सामग्री की विस्तृत सूची तैयार कर इसके प्रकाशन एव प्रसार की व्यवस्था इस प्रकार की पाठ्य-सामग्री की प्राप्ति मे इन प्रवृत्तियो से सम्बन्धित साहित्य मे वैशिष्ट्य को प्राप्त ग्रभिकरणो की सहायता ली जानी चाहिए ।

उपर्युक्त प्रवृत्तियो-सम्बन्धी साहित्य को विभिन्न रूपो मे सामने लाकर बालक की पठन ग्रभिरुचियो को गम्भीर साहित्य की ग्रोर उन्मुख किये जाने-वाला कार्य सहज रूप मे सम्पन्न हो जायगा, साथ ही बालको के सामान्य ज्ञान की सीमाएँ भी बहुत विस्तृत हो जायेंगी ।

पुस्तकालय के सामान्य दैनिक कार्यक्रमो का नियोजन इस प्रकार किया जाय कि उसके हरेक कार्य का उद्देश्य बालको के पठन को प्रोत्साहन हो । कुछेक कार्यो का सक्षिप्त विवचन ही यहा सम्भव है ।

(१) पुस्तक प्रदर्शनियाँ :

विभिन्न आकर्षक शीर्षकों के तहत पुस्तकें तथा अन्य पाठ्य-सामग्री को प्रदर्शित किया जाय, यथा–

(अ) 'नवागत पुस्तकें'	(आ) 'अवश्य पठनीय पुस्तकें'
(इ) राष्ट्रीय उत्सव-साहित्य	(ई) सामयिक साहित्य
(उ) चरित्र-निर्माण-साहित्य	(ऊ) अनुपलब्ध साहित्य।

(२) अध्ययन गोष्ठी गठन

प्रमुख कार्य—(अ) साप्ताहिक पुस्तक-वार्ता
(आ) नवागत पुस्तक-समीक्षा
(इ) नवीन विषयों पर विचार-विमर्श
(ई) पठन-प्रतियोगिताएँ
(उ) पठन, प्रोत्साहन एवं मूल्यांकन
(ऊ) पुस्तक-चयन एव सुझाव

पुस्तकालय-कालांशों में यह कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए।

(३) पुस्तकालय सप्ताह-आयोजन (वार्षिक कार्यक्रम)

मुख्य गतिविधियाँ—

(अ) पठन प्रतियोगिताएँ विषय–प्रमुख लेखकों की जानकारी, प्रमुख पात्रों की जानकारी, पुस्तक मूल्यांकन, तीन मास में पढ़ी गयी पुस्तकों के विवरण की फाइल या डायरी और उसमें लिखित कार्य का मूल्यांकन इत्यादि।

(आ) निबन्ध प्रतियोगिताएँ—ज्यादा पढ़े गये साहित्य में से किसी एक विषय पर (विस्तृत पाठ्य-सामग्री सूची सहित।)

(इ) सर्वप्रिय पुस्तक-समीक्षा-प्रतियोगिताएँ

(ई) पुस्तकालय के विभिन्न कार्यों पर सम्भाषण

(उ) पुस्तक मेला-आयोजन (विशिष्ट अभिकरणों की सहायता से)

(ऊ) पुस्तकालय के विभिन्न पहलुओं पर अभिनय, फिल्म-प्रदर्शन

(ए) लोकप्रिय लेखक की अपनी पुस्तक की पृष्ठभूमि पर वार्ता

(ऐ) पुस्तकालय हस्तलिखित पत्रिका-प्रकाशन (मुख्य स्तम्भ)

१ पठन-विकास विषयक पुस्तकालय की गतिविधियाँ
२. पुस्तकालय क्या है ? (पुस्तकालय-संग्रह एव सेवाओं का उल्लेख)
३ नवागत पुस्तक-समीक्षा
४. पुस्तकालय के आगामी कार्यक्रम

(४) पुस्तकालय-डायरी

पुस्तकालय में किये गये पठन-कार्य के लेखेजोखे के लिए इसका रखवाया जाना आवश्यक है। यह सुन्दर मूल्यांकन माध्यम तथा बालकों की पठन-अभिरुचियों की द्योतक सिद्ध होगी। यह कई भागों में विभाजित की जा सकती है—यथा (अ) तथ्यान्वेषण खण्ड, (आ) सूचनात्मक साहित्य खण्ड, (इ) विनोदात्मक साहित्य खण्ड, (ई) गम्भीर साहित्य-खण्ड।

अन्य दैनिक कार्य

५—नवागत पुस्तकों तथा उनके कवर्स का नियत स्थान पर प्रदर्शन।

६—समाचार-पत्र कतरन सेवा कतरनों का विभिन्न शीर्षकों (राजनीति, अर्थनीति, साहित्य, कला, संगीत, बाल जगत, क्रीडा जगत, विज्ञान, चिकित्सा, शिक्षा इत्यादि) के तहत प्रदर्शन तथा उनका अनुरक्षण।

७—सामयिक विषयों पर पाठ्य-सामग्री सूची निर्माण, प्रकाशन एवं प्रसारण।

८—नवागत पुस्तकों की मासिक सूची का प्रकाशन एवं प्रसारण।

९—बालकों को रद्द की गयी पत्रिकाओं में से चित्र, लेख, इत्यादि के पत्रक एवं फाइल रखने को प्रोत्साहित करना।

१०—पुस्तकालय की बाहरी साजसज्जा बनाये रखना बालकों को आकृष्ट करने के लिए परमावश्यक है।

उपर्युक्त पंक्तियों में बालकों के स्वच्छंद पठन को अभिप्रेरित एवं विकसित करने हेतु कुछ संकेत है। स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप इनमें परिवर्तन संभव है। यह निर्विवाद है कि इन संकेतों का अनुसरण किसी भी शाला के पठन-कार्यक्रम को सफलता की ओर अग्रसर करेगा। समय-समय पर मूल्यांकन कर आवश्यक कदम उठाये जा सकते हैं।

स्वच्छंद पठन अभिरुचि प्रश्नावली

१—निम्नलिखित में आपको जो प्रिय हो उसके सामने कोष्ठक में सही (✓) का चिह्न लगा दीजिए—

(अ) लघुकथाएँ	( )	(ख) यात्रा-साहित्य	( )
(ब) लोककथाएँ	( )	(ग) जीवनियाँ	( )
(स) जासूसी एवं रोमांस की कहानियाँ	( )	(घ) लघु उपन्यास, उपन्यास	( )
(द) साहस एवं खोज की कहानियाँ	( )	(ङ) हास्य-व्यंग्य की कहानी अथवा नाटक	( )
(क) सामाजिक कहानियाँ	( )	(च) फिल्म साहित्य	( )

२—क्या आप समाचारपत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते या पढ़ती हैं? यदि हाँ, तो इनमें कौनसे स्थायी स्तंभ आपको अच्छे लगते हैं? निम्नलिखित में जो आपको प्रिय लगते हों उनके सामने सही (✓) का चिह्न लगा दीजिए—

(१) बाल जगत्	(८) यत्र तत्र-सर्वत्र
(२) क्रीडा-जगत्	(९) हलकियाँ
(३) विज्ञान	(१०) विश्व राजनीति
(४) चिकित्सा (स्वास्थ्य प्रश्नोत्तर)	(११) विद्रोह हड़ताल इत्यादि सम्बन्धी समाचार
(५) हास्य, व्यग्य, विनोद	(१२) चलचित्र-जगत्
(६) महिला जगत्	(१३) धर्म
(७) राष्ट्रीय रंगमंच	(१४) कृषि

३—आपने इस मास में जो पुस्तकें पढ़ी हों उनमें सबसे प्रिय पाँच पुस्तकों के नाम लिखिए। ये पुस्तकें आपको क्या अच्छी लगीं?

१— ४—

२— ५—

३—

४—अपनी सामान्य दिनचर्या लिखिए। आप प्रतिदिन औसतन कितने घंटे पढ़ते या पढ़ती हैं?

हस्ताक्षर छात्र या छात्रा

कक्षा—

श्री दामोदरलाल शर्मा, प्रवक्ता, पुस्तकालय विज्ञान तथा पुस्तकालयाध्यक्ष, बु० शि० प्र० महाविद्यालय, मा०वि० म०, सरदारशहर (राजस्थान)

भाषा-समस्या और गांधीजी का हल

रा० शंकरन्

महात्मा गाधी सच्चे शिक्षक थे। उन्होने भारत के द्वारा दुनिया को कई पुरानी बातो को नये ढग से सिखाया। हमको आजाद बनाने की कोशिश करते हुए उन्होने बहुत ही नाजुक तरीके से हम सिखाया कि सब तरह के बधनो से छुटकारा पाना ही सच्ची और असली आजादी है। यहाँ मेरा उद्देश्य यह समझना है कि उन्होने किस प्रकार हमे अपनी भाषाओ के मामले मे भी आजाद होना सिखाया।

जब वे सन् १९१५ मे बबई बदरगाह मे जहाज से उतरे तो एक गुजराती सवाददाता ने उनसे अग्रेजी मे प्रश्न करना शुरू किया। बैरिस्टर गाधी ने उस सवाददाता को बडी शान्ति से समझाया कि चूँकि दोनो ही गुजराती जानते हैं, अत· दोनो को केवल गुजराती का ही व्यवहार करना चाहिए। बाद मे सन् १९१६ मे जब वायसराय ने युद्ध सम्बन्धी तैयारी के बारे मे एक अखिल भारतीय सभा बुलायी और गाधीजी से बोलने की प्रार्थना की तब गाधीजी ने उस सभा मे हिन्दुस्तानी म बोलने की अनुमति मांगी, जो उनको मिल भी गयी। तब राष्ट्रीय भारत सचमुच फूला न समाया और गाधी की इस सफलता के लिए उनका अभिनन्दन भी किया। इन सब चीजो के बावजूद भी गाधीजी ने अग्रेजी का भी खूब उपयोग किया। इस प्रकार गाधीजी जानते थे कि कब किस भाषा का उपयोग करना चाहिए और यही उनका भाषा सम्बन्धी समस्याओ के सुलझाने का प्रत्यक्ष अमली पाठ है।

गांधीजी के तरीके

अब हम यह देखें कि गाधीजी ने भाषा के प्रयोग मे किस प्रकार व्यावहारिक सबक सिखाये हैं। साबरमती आश्रम मे आश्रम के करीब सारे आश्रमवासी गुजराती जानने लग थ। सन् १९१८ मे जब मौका मिला तो इलाहाबाद के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मार्फत हिन्दी प्रचार का आन्दोलन उन्होने प्रारभ कर दिया। उसके बाद जब कभी उन्होने यह समझाया कि आजाद भारत म अग्रेजी का महत्त्व बहुत घटेगा तो किसीने भी उनकी इस बात से घोर विरोध प्रकट नहीं किया। क्योकि उस समय आजादी का अर्थ अग्रेजी भाषा के बधन से छुटकारा पाना भी था। अगर हम सावधानी और बुद्धिपूर्वक अग्रेजी के प्रयोग को जिस हद तक कम कर सकेंगे उस हद तक ही हम सच्चे आजाद होगे।

इस चीज को अपने जीवन म महसूस करके अमल म लाना चाहिए। आजादी के सघप के दिनों उन्होंने भारत के उज्ज्वल और आकषक चित्र के दशन कराये जिसम लोगो की भाषाओ का प्रमुख स्थान था। इसका अथ यह है कि शिक्षण और शासन प्रादेशिक भाषाओ म होग। सन् १९४७ से ही अगर हमारे नेताओ ने इस मकसद के लिए कोशिश की होती और लोगो ने फिर इमानदारी से ऐसी माँग की होती तो बहुत सारी परेशानियाँ जो हम आज देख रहे हैं उत्पन्न ही नहीं हुई होतीं। एक बार अगर हम व्यक्तिगत तौर पर अग्रजी के उपयोग पर रोक लगाना प्रारभ कर देंगे तो भाषा की समस्या, जिसका सुलझाव आज कठिन दीखता है, आसान हो जायगी और इस समस्या को सुलझाने का अहिंसात्मक तरीका पाने म हम समर्थ हो सकेंगे।

यहाँ मैं यह बताऊँ कि गाधीजी ने भाषा सीखने के बारे मे अपने अहिंसात्मक तरीको पर किस प्रकार अमल किया। सन् १८९७ म दक्षिण अफ्रीका म उन्होंने पप्स के 'पूवल' के सहारे तमिल भाषा सीखी। बापू ने उस समय तमिल क्यो सीखी? क्योकि वहाँ अनेक तमिल कुटुम्बों ने बापू के आन्दोलन म हिस्सा लिया था। उन तमिल कुटम्बो के साथ अपने आपको एकाकार करने के लिए और अधिक अच्छी तरह उनकी सेवा करने के लिए उन्होंने उनकी भाषा सीखी।

भारत म जब अखिल भारतीय काग्रस ने अपने एक प्रस्ताव के द्वारा अपना सारा काम हिन्दी म ही चलाने का निणय किया तब गाधीजी ने बडी तत्परता के साथ हिन्दी सीखी और जब वे जेल से बाहर आये तब उन्होंने काग्रस के निणय का पालन करने की पूरी तयारी रखी थी। लेकिन जब वे हिन्दी मे लिखने लगे और जब उनको अन्य बुजुग सदस्यो से सहयोग नही मिला तब गाधीजी को समझ मे यह बात आयी कि उनके साथी उतने सच्चे नही हैं। लेकिन उन्होंने आशा नही खोयी।

उन्होंने भारत के सभी भागो मे राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए बजोड काम किया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को राष्ट्र भाषा हिन्दी की इस परिभाषा को स्वीकार कराया कि राष्ट्र भाषा हिन्दी नागरी और उदू दोनो लिपियों म लिखी जा सकती है। हिन्दी और नागरी के हिमायतियो को धीरे से दृढता से और मजबूत तर्क से इस मामले म गाधीजी ने किस प्रकार सहमत कर लिया इसका साक्षी इस पक्तियो का लेखक स्वय रहा। यह घटना सन् १९३५ म इन्दौर मे घटी।

तमिल में पत्र

सन् १९४४ मे लम्बे अर्से तक आगाखाँ महल मे रहने के बाद जब बापू सेवाग्राम लौटे तो उन्होने नया प्रयोग प्रारभ किया। उन्होंने देखा कि लोग अग्रजी के मोह से छुटकारा पा नही सके हैं। इसलिए जब वह मद्रास के प्रमुख लोगो से अग्रजी मे चिट्ठियाँ पाते थे तब हिन्दी मे उनका उत्तर लिख देना उनके लिए आसान था। लेकिन वह सच्ची अहिंसा नहीं हो सकती थी। इसलिए बापू ने उनको तमिल मे पत्र लिखना प्रारभ कर दिया। वह इन पक्तियो के लेखक से तमिल पत्र लिखवाते थे और स्वय तमिल मे अपने हस्ताक्षर कर देते थे। इसका अथ स्पष्ट है कि अगर कोई हिन्दी मे नही लिख सकता हो तो, इसको समझाया जा सकता। लेकिन अगर इतने लम्बे अर्से तक हिन्दी प्रचार के बावजूद अगर कोई अग्रजी मे उनको लिखे तो इसमे कहीं गहरा दोष और भ्रम है। तमिल में उत्तर लिखते हुए गाधीजी ने उन्हे भाषाओ के प्रति अपने राष्ट्रीय कतव्य की याद मीठे ढग से करायी है। यह एक सर्वविदित बात है कि उन्होने जिन्ना को उर्दू मे पत्र लिखे। इस प्रकार गाधीजी चाहते थे कि इस राष्ट्र मे हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओ को सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए। जब तक इस देश के बुद्धिमान लोग उस कठिन सत्य को महसूस नहीं करते और आचरण नहीं करते तब तक यह देश सचमुच स्वतत्र नहीं माना जा सकता। दूसरो के प्रति और अपने आचरण मे दृढता के कारण गाधीजी के उदाहरण की अवहेलना करते हुए अगर हर कोई अपना भाषा के हक के बारे मे आग्रह करता रहे तो समस्या का कोई शान्तिपूवक हल निकल नहीं सकेगा। अपने हक के बारे मे ही जोर देना गाधीजी का तरीका नही है। उनके अपने शब्दो मे 'कर्तव्य की सच्ची पूर्ति म ही हक निहित है।

इस नतिक कतव्य की भावना से ही गाधीजी ने नोआखाली की यात्रा म बगला सीखी और विनोबाजी जब तमिलनाडु की वेलूर जेल मे पहुँचे तो उन्होने दक्षिण की सभी भाषाएँ सीखी।

श्री रा० शकरन् सेवाग्राम वर्धा (महाराष्ट्र)

स्थितप्रज्ञता का शिक्षण

बच्चो के शिक्षण मे, लोकशिक्षण और समाजशास्त्र के चिन्तन मे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि हम मन से ऊपर उठें। इस युग मे जो मन की भूमिका पर रहकर काम करेंगे वे सब प्रकार से हतबल होगे। अत हम मन से ऊपर की अवस्था मे जाना चाहिए।

आज शिक्षा स्वतत्र नही है। हर देश मे शिक्षा का यत्रीकरण हो रहा है। शिक्षा को अपने हाथ मे लेकर उस पर अधिकार कर लेना और बच्चो के मन पर सत्ता चलाना आज के राजनीतिज्ञो का एक कार्यक्रम ही बन गया है। इसलिए यह बहुत आवश्यक हो गया है कि जगह जगह स्वयप्रज्ञ मनुष्य पदा हो।

आज का प्रतिनिधि-शासन भेडो द्वारा गडेरिये का चुनाव सा हो गया है। आज की चुनाव-पद्धति भी ऐसी है कि उसमे औसत अक्लवाले ही चुने जाते हैं। चाहे कोई भी पार्टी आये वहाँ चुने जानेवाला की योग्यता औसत दर्जे की ही होगी। इन दिनो तो कल्याणकारी राज्य के नाम पर उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने की भी बात चल रही है ? यानी जिस सरकार के हाथ मे पहले से ही भारी सत्ता है, उसके हाथ मे और व्यापार उद्योग आदि की सत्ता सौंपने की बात है। इस पर सोचें तो पता चलेगा कि यह व्यवस्था सुरक्षित नही है इसलिए आज जगह-जगह स्वयंप्रज्ञ मनुष्यो की विशेष आवश्यकता है।

इसलिए आप सदा-सवदा स्थितप्रज्ञ और उसके लक्षणो को स्मरण करें कि समाज मे ऐसे स्थितप्रज्ञ हो हमारे बच्चे स्थितप्रज्ञ बनें। इसके लिए प्रत्येक बच्चे को यह शिक्षण देने की व्यवस्था करें कि वे अपनी इद्रियो पर काबू रख। चारो ओर से संकटो के हमले हो मान अपमान राग-द्वेष आदि पदा करनेवाले मौके आयें तो भी वे अपने चित्त पर उनका असर न होने दें मान-अपमान निन्दा स्तुति की परवाह न कर और आस पास की हवा से चित्त को अलग रख सक। तभी आज की स्थिति मे उबार का कोई रास्ता निकल सकता है।

(रत्नागिरि १० ४ ५८) —विनोबा

जूनियर हाईस्कूलों के गुणात्मक सुधार की योजना

[राज्य शिक्षा संस्थान उत्तर प्रदेश के तत्वावधान में प्रदेश के स्कूलों में गुणात्मक सुधार के लिए मण्डलीय गोष्ठियाँ आयोजित की गयी थीं। इन गोष्ठियों ने ठोस और व्यावहारिक सुझाव दिये हैं उनका लाभ अगर हमारे शैक्षिक कार्यकर्ता उठायेंगे, तो निश्चय ही शिक्षा में सुधार होगा। पिछले अंक में प्राइमरी स्कूलों में गुणात्मक सुधार की योजना दी गयी थी। अब यहाँ जूनियर हाईस्कूलों में गुणात्मक सुधार की योजना दे रहे हैं।—सं०]

अल्पकालीन संस्तुतियाँ

(क) व्यक्तिगत स्वच्छता

१—सामूहिक प्रार्थना के समय सभी बालकों के नाखून, बाल, दाँत तथा कपड़ों की स्वच्छता प्रतिदिन कक्षाध्यापक निरीक्षण करें तथा उन्हें अगले दिन के लिए उचित निर्देश दें, जिससे बच्चों में साफ सुथरा रहने की आदत पड़ जाय। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी प्रधानाध्यापक तथा उनके सहयोगी-अध्यापक, बालकों को स्वच्छ एवं स्वस्थ रहने के उपायों तथा एक या दो उपदेशप्रद और चरित्र-निर्माण में सहायक बातें बतायें।

२—छात्रों के गन्दे कपड़ों की सफाई विद्यालय में ही करायी जाय। विद्यालय की ओर से साबुन और तौलिये की व्यवस्था होनी चाहिए। इसी प्रकार नीम या बबूल की दातून मँगाकर जिन बालकों के दाँत गन्दे पाये जायँ, उनके दाँत विद्यालय में ही साफ कराये जायँ। नाखून बढ़े हों तो कटवा दिये जायँ।

३—साफ-सुथरे रहनेवाले बालकों की प्रशंसा प्रार्थना सभा में की जाय। वार्षिक दिवसों पर उन्हें समस्त बालकों के समक्ष पुरस्कार दिये जायँ।

(ख) स्वास्थ्य

१—शारीरिक व्यायाम नियमित रूप से कराया जाय। योग्य एवं कुशल छात्रों को पी० टी० कराने का अवसर भी दिया जाय।

२—स्पोर्ट्स (खेल-कूद) एवं बाल मेला की व्यवस्था हो, जिसमें अभिभावकों को भी आमंत्रित किया जाय।

३—छात्रों के शारीरिक विकास का विवरण रखा जाय। मास के अन्त में उसे भरा जाय। इसमें निम्नलिखित बातें लिखी जायँ—

विद्यार्थी का नाम, आयु, लम्बाई, सीने की चौड़ाई, वजन।

छात्रों की लम्बाई नापने के लिए दीवाल पर चिह्न बना दिये जायँ।

४—बच्चों के स्वास्थ्य की परीक्षा जहाँ तक सम्भव हो, स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा करायी जाय। अस्वस्थ छात्रों की सूचना एवं उचित परामर्श उनके अभिभावकों को दिये जायँ।

५—महामारी आदि रोगों के फैलने पर *आवश्यक टीके बालकों को लगवा दिये जायँ।*

६—मध्याह्न अल्पाहार योजना पर अधिक बल दिया जाय। विद्यालय प्रांगण में सामयिक कुछ फसलें, जैसे-टमाटर, गाजर, मूली एवं ककड़ी आदि, फलों के पेड़, जैसे-केला, अमरूद, पपीता, शरीफा आदि उगाये जायँ। समुदाय से भी इस दिशा में सहायता ली जाय।

७—बालकों के लिखते-पढ़ते समय बैठने के ठीक ढंग पर विशेष ध्यान *रखना चाहिए।*

८—स्वस्थ कैसे रहा जाय, इस सम्बन्ध में आकर्षक पोस्टर विद्यालय-भवन की दीवालों में उचित स्थानों पर लगाये जायँ। स्वास्थ्य या भोजन-सम्बन्धी आदर्श वाक्य विद्यालय की दीवालों पर या कार्ड-बोर्ड पर लिखकर लटकाये जायँ।

९—प्रत्येक विद्यालय में जूनियर रेडक्रास टोलियाँ बना लेनी चाहिए। इससे बच्चों में सेवा एवं स्वच्छता की टेव पड़ती है।

(ग) विद्यालय-भवन एवं कक्षों की स्वच्छता तथा सजावट

(१) प्रत्येक विद्यालय में एक कूड़ादान रखा जाय। छात्रों में आदत डाली जाय कि सदैव उसका उपयोग करें और कूड़ा, रद्दी कागज आदि उसीमें फेंकें। इस प्रकार *एकत्र कूड़े का उपयोग प्रांगण में बने कम्पोस्ट खाद के गड्ढे को भरने में* किया जाय।

(२) प्रत्येक कक्षा को सुविधानुसार टोलियों में बाँट दिया जाय। प्रत्येक टोली का एक नायक होगा। टोलियों के कार्य के आधार पर मूल्यांकन किया जाय। जिन टोलियों का कार्य उत्तम हो उन्हें सत्र के अंत में पुरस्कृत किया जाय। टोली के कार्यों का कार्यक्रम निम्नांकित प्रकार से हो सकता है—

दैनिक सफाई	साप्ताहिक	मासिक
१—बरामदा	१—*दीवाल की सफाई*	१—*प्रांगण की स्वच्छता*
२—कमरा	२—आलमारियों एवं	
३—साजसज्जा (टाट-पट्टी आदि)	३—दरवाजों की सफाई	

(३) विद्यालयों में सस्ते, स्थानीय साधनों से सोख्ता पेशाब-घरों का निर्माण

कराया जाय। पशाब घरो एव शौचालयो की उचित सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय।

(४) स्वच्छ पेय जल की समुचित व्यवस्था हो। जहाँ पर कुएँ हो, पोटेशियम परमगनेट समय-समय पर कुएँ म छोडते रहना चाहिए।

(५) वर्षा-ऋतु मे विद्यालय के प्रागण मे उपलब्ध भूमि की चारो ओर खाई का निर्माण करके इसम वहुया, जगल जलेबी, सउडा एव करोंदा इत्यादि लगाये जायें।

(६) प्रागण मे कलात्मक क्यारियाँ बनाकर उनमे स्थायी एव मौसमी फूल लगाय जायँ।

(७) विद्यालय कक्षो की दीवालो को स्टेसिल द्वारा बनाय हुए चित्रो एव प्रेरणादायक वाक्यो स सजाया जाय।

(८) उपलब्ध चार्टों एव चित्रो को दीवालो पर व्यवस्थित ढग से सजाया जाय।

९) विभिन्न विषयो के कक्षा को विषय से सम्बन्धित चित्रों, माडलो और मानचित्रो से सजाया जाय।

शैक्षिक उन्नयन

भाषा

१—सामान्य अशुद्ध उच्चारणवाले शब्दा की कक्षावार सूची तैयार की जाय तथा सही उच्चारण का अभ्यास कराया जाय। ऐसे शब्दो की तालिका शुद्ध रूप मे कक्षा म टाँगी जाय। वतनी सम्बन्धी भूलो पर भी ध्यान दिया जाय। इस प्रकार की अशुद्धियो का सुधार अभ्यास-पुस्तिका पर पाँच बार अवश्य कराया जाय।

२—प्रत्येक कक्षा की पाठ्यपुस्तको म दी गयी प्राथना, वीरता तथा राष्ट्रीयता-सम्बन्धी छोटी छोटी एव सुन्दर गद्य-खण्डो को कठाग्र कराया जाय। लय एव भाव पर विशेष बल दिया जाय।

३—पाठ्य पुस्तक के पाठो के अन्त म दिये गये कुछ प्रश्नो के उत्तर घर से लिखवाये जायँ।

४—प्रति सप्ताह एक दिन बाल सभा के लिए निर्धारित किया जाय जिसके अतिम दो या तीन घण्टो म अन्त्याक्षरी, वाद विवाद, भाषण कहानी, कठाग्र की गयी कविताओ तथा गद्याशो का पाठ कराया जाय। प्रतियोगिताएँ की जायँ तथा सफल छात्रो को पुरस्कार दिये जायँ।

५—सुलेख पर विशेष बल दिया जाय। छात्रो से पाठ्य पुस्तक के कुछ अशो की नकल करायी जाय। सुलेख प्रतियोगिता का आयोजन किया जाय। अच्छे छात्रा को पुरस्कृत किया जाय। छात्रो द्वारा केवल सरकडे की लेखनी के प्रयोग पर बल दिया जाय। अच्छे सुलेख दीवाल पर टाँगे जायँ।

६—लिखित कार्य का संशोधन सतर्कता से किया जाय। छात्रों की अशुद्धियों को शुद्ध करवाकर पुनः देखा जाय।

७—छात्रों से पूरे वाक्यों में उत्तर लिये जायें। क्षेत्रीय बोली के प्रयोग के स्थान पर खड़ी बोली के प्रयोग के लिए उत्साहित किया जाय।

८—छात्रों से आस-पास की वस्तुओं एवं दृश्यों, जैसे—गाँव, हाट, विद्यालय आदि विषयों पर कतिपय पंक्तियाँ लिखवायी जायें। उनके स्वतंत्र भाव-प्रकाशन को प्रोत्साहित किया जाय।

९—बोल-चाल में सरल, साहित्यिक भाषा का ही प्रयोग किया जाय। शिष्टाचार की भाषा पर बल दिया जाय।

गणित

(क) अङ्कगणित

१—प्रत्येक बालक को पाठ्यक्रम-सम्बन्धी सभी सूत्र कंठस्थ कराये जायँ।

२—मौखिक गणित के प्रश्नों पर विशेष बल दिया जाय। पहाड़ों का अभ्यास एवं पुनरावृत्ति कराते रहना चाहिए।

३—निर्देश-पुस्तिका के आधार पर दशमलव पर पाठ-संकेत तैयार करके उन्हें कक्षा ६ में विशेष परिश्रम से पढ़ाया जाय।

४—प्रत्येक बालक को इस बात का अवसर दिया जाय कि वह स्वयं श्यामपट पर आकर प्रश्न हल करे तथा एक-दूसरे की भूलों का संशोधन करे।

५—लिखित कार्य एवं गृह-कार्य का अभ्यास अधिक कराया जाय। सामान्य त्रुटियों को श्यामपट पर हल करके समझा दिया जाय।

६—छात्र कक्ष, दरवाजे, खेल के मैदान, एवं क्यारियों आदि को स्वयं नापकर नये पैमाने का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करें तथा पुराने पैमाने का तुलनात्मक अध्ययन करें। यही प्रणाली, भार एवं धारिता का ज्ञान देने में अपनायी जाय।

७—क्षेत्रफल के प्रश्नों का व्यावहारिक ज्ञान देने के लिए स्कूल, कक्ष, दालान एवं प्रांगण आदि को नपवा करके क्षेत्रफल निकलवाया जाय। छात्र परिणामों का ज्ञान स्वयं करें।

(ख) रेखागणित

१—अध्यापक द्वारा उपकरणों का ठीक ढंग से प्रयोग करके श्यामपट पर सही चित्र बनाये जायें। छात्रों द्वारा भी उनका सही ढंग से अभ्यास कराया जाय।

३—रेखागणित-सम्बन्धी आकृतियों की पहचान के लिए उनके चित्र एवं वास्तविक नमूनों (मॉडल) का कक्षा मे प्रदर्शन किया जाय। इन ज्यामितियों को छात्रों द्वारा मिट्टी अथवा कार्ड बोर्ड की सहायता से बनवाया भी जाय।

३—प्रमेय का अध्ययन अनिवार्य रूप से विश्लेषणात्मक विधि से किया जाय। अधिक-से-अधिक अभ्यास कराये जायँ, जिससे बालक स्वयं निष्कर्ष निकालने मे समर्थ हो।

(ग) बीजगणित

१—गणित की मूल क्रियाओ मे चिह्नो के परिवर्तन का अधिक से अधिक अभ्यास द्वारा समुचित ज्ञान कराया जाय।

२—घातो के गुणा, भाग सम्बन्धी अभ्यासो पर अधिक बल दिया जाय।

३—बीजगणित का अंकगणित एवं रेखागणित से समन्वय करके अध्यापन किया जाय।

सामाजिक विषय

(क) इतिहास

१—प्रत्येक कक्षा मे ऐतिहासिक मानचित्रों का अध्ययन भली-भाँति कराकर छात्रों से ऐतिहासिक मानचित्र बनवाये जायँ।

२—प्राचीन ऐतिहासिक नगरों के नाम बताते समय उनके आधुनिक नाम भी बताये जायँ और मानचित्र मे उन नगरों के स्थान दिखलाये जायँ।

३—छात्रों को समीपवर्ती ऐतिहासिक स्थानों का पर्यटन कराया जाय।

४—विद्यालय के किसी एक कक्ष म ऐतिहासिक मानचित्र, समय रेखा-चार्ट, ऐतिहासिक व्यक्तियों के चित्र उनकी संक्षिप्त जीवनी सहित, आवश्यक ढंग से सजाये जायें।

५—यदाकदा ऐतिहासिक घटनाएँ एकांकी नाटक के रूप म बालकों से प्रदर्शित करायी जायँ। इन घटनाओं को छोटी-छोटी कहानियों के रूप म समझाना अधिक प्रभावपूर्ण होगा।

६—उचित सहायक सामग्री द्वारा इतिहास के पाठ को रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाया जाय।

(ख) भूगोल

१—विद्यालय के किसी कक्षा म सभी महाद्वीपों के मानचित्र, जिनम प्राकृतिक, राजनैतिक मुख्य रेलवे मार्ग, हवाई समुद्री मार्ग, औद्योगिक स्थानों एवं प्रमुख बाँधों आदि का चित्रण हो, दीवालो पर लगाये जायँ।

२—स्लाईड पर स्टेन्सिल काटकर भारत के सभी राज्यो को विभाजित किया जाय। छात्र उसे जोड-जोडकर पूरा करें।

३—जहाँ तक सम्भव हो सके, दृश्य-श्रव्य यत्रो द्वारा 'ओरिजिन आफ लैंएड' आदि जैसे चित्र दिखाये जायें। विभिन्न प्रकार की पत्रिकाओ मे प्रकाशित चित्रो, जैसे-भूमि, चन्द्रमा एव सूर्य आदि से सम्बन्धित नये शोध के चित्र, यदि उपलब्ध हो, तो दिखाये जायें।

४—पर्यटन की योजना बनायी जाय, जिससे छात्रो द्वारा विभिन्न प्रकार की मिट्टियो एव पत्थरो आदि का सग्रह कराया जाय।

५—नक्शो की छपी हुई अभ्यास-पुस्तिका उपयोग न की जाय, बल्कि खाको पर नक्शे भरवाये जायें। छात्रो के पास एटलस हो और उसके अध्ययन पर विशेष बल दिया जाय।

६—भौगोलिक मॉडल, चार्ट्‌स अधिक बालको द्वारा तैयार कराये जायें।

(ग) नागरिक शास्त्र

१—छात्रों के अपने देश, विद्यालय एवं राष्ट्रीय सपत्ति के प्रति प्रेम जागृत किया जाय तथा सुरक्षा के प्रति उन्हे जागरूक बनाया जाय। उन्हे इस सम्बन्ध मे यथासम्भव फिल्मे दिखलायी जायें।

२—छात्रो को उनके कर्तव्यो का ज्ञान, समाज मे उनका स्थान एव सामाजिक प्राणियो से सम्बन्ध भली-भाँति समझाया जाय।

३—सडक पर चलने के नियमो का ज्ञान कराया जाय।

४—बाल-सभा मे बाल-पंचायतें संगठित की जायें।

५—पंचायत, जिला परिषद् एव नगरपालिकाओ की चुनाव-विधि एव सगठन के वास्तविक कार्यक्रमो का आयोजन किया जाय एवं उनका व्यावहारिक ज्ञान कराया जाय। कक्षा ७ व ८ मे विधान-सभा, विधान-परिषद, लोक-सभा व राज्य-सभा के कार्यक्रमो को आयोजित किया जाय।

६—आधुनिक शासन-पद्धति का प्राचीन भारतीय एवं मुगलकालीन प्रणालियो से तुलनात्मक अध्ययन कराया जाय।

७—नागरिकशास्त्र, भूगोल एव इतिहास के पाठो को यथासम्भव समन्वित करने का प्रयास किया जाय।

८—छात्रों को न्यायालय, जिला परिषद्, नगरपालिका कार्यालय आदि को जाकर दिखलाया जाय।

९—यदा-कदा सामूहिक-प्रार्थना के समय समाचार सुनाये जायें एव ससार की प्रमुख घटनाओ का ज्ञान कराया जाय।

१०—बच्चों को राष्ट्रीय गीत कण्ठाग्र कराया जाय तथा उचित रूप से निर्धारित समय के भीतर (५८ सेकण्ड) गाने का अभ्यास कराया जाय।

११—छात्रों को राष्ट्रीय ध्वज का महत्त्व उसका सम्मान, फहराना तथा उतारना आदि भली भाँति समझाया जाय।

अन्य सुझाव

१—प्रधानाध्यापक तथा सहायक अध्यापकों को सत्र के आरम्भ में ही पाठ्यक्रम को देखकर कार्य-प्रणाली का नियोजन कर लेना चाहिए जिससे पाठ्यक्रम का विभाजन प्रत्येक त्रैमास के लिए निर्धारित कर दिया जाय।

२—निर्देश-पुस्तक के आधार पर कुछ पाठ-संकेत तैयार करके आदर्श पाठ दिये जायँ।

३—प्रधानाध्यापक को एक सुझाव-पुस्तिका रखनी चाहिए जिसमें वे विभिन्न कक्षाओं के निरीक्षण के समय अपने सुझाव अंकित करें और इस पुस्तिका को अध्यापकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत करें।

४—माह में एक बार प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता में संस्था के सभी अध्यापकों की गोष्ठी का आयोजन किया जाय, जिसमें प्रधानाध्यापक अध्यापकों के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए उसकी सराहना करें तथा उनके दोषों को अंकित करते हुए उनके निराकरण के उपाय बतायें।

५—प्रधानाध्यापक विभिन्न कक्षाओं के लिखित कार्य की एक योजना बनाकर निरीक्षण करें और इस सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश देते रहें।

६—विभिन्न विषयों में मासिक परीक्षा की योजना कार्यान्वित की जाय।

७—कक्षा के एक कक्ष में छोटे छोटे डिब्बों, शीशियों, अलबमों में बीज, पत्तों, फूल के विभिन्न नमूने रखवाकर तथा शिक्षा-सम्बन्धी उपयोगी वस्तुएँ, जैसे—तीली, गोली, चिर्या, कंकड़, सीप, घोंघे आदि को एकत्र करके एक छोटा-सा संग्रहालय बनाया जाय।

दीर्घकालीन संस्तुतियाँ

(क) मान्यता

१—विद्यालय सर्वे द्वारा प्रस्तावित क्षेत्र में ही खोले जायँ।

२—प्राभृत सम्पत्ति पाँच हजार हो रहे किन्तु उससे पाँच प्रतिशत आय अवश्य हो।

३—विज्ञान के उपकरण पाठ्यक्रमानुसार विभाग से निर्धारित किये जायँ, जिन्हें प्रत्येक विद्यालय अनिवार्य रूप से उपलब्ध करे।

४—पुस्तकालय की पुस्तकों के लिए विषयानुसार धन-राशि निश्चित की जाय, जिनका मूल्य प्रारम्भ में ५०० रु० अवश्य हो।

५—प्रशिक्षित अध्यापकों की पूर्ति पर विशेष ध्यान दिया जाय।

(ख) अध्यापक

१—जूनियर हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक प्रशिक्षित स्नातक तथा सहायक अध्यापक प्रशिक्षित अविस्नातक (अण्डरग्रेजुएट) होने चाहिए। तदनुसार ही उनको वेतन-क्रम दिया जाय।

२—विज्ञान-अध्यापक विज्ञान के साथ इण्टरमीडिएट पास हो।

३—समय समय पर प्रत्येक प्रशिक्षित अध्यापक का सेवारत-प्रशिक्षण-कोर्स हो।

(ग) निःशुल्क शिक्षा

जू० हाईस्कूल स्तर पर कक्षा ७, ८ में निःशुल्क शिक्षा दी जाय।

(घ) मूल्यांकन

समस्त विद्यालयों के कक्षा ८ के छात्र जू० हाईस्कूल स्तर पर विभागीय परीक्षा में सम्मिलित हों।●

वर्ष : १८
अंक : ११
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

जून, '७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : जून '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य

गांधी जन्म शताब्दी के सुअवसर पर २ अक्तूबर से गांधीजी की वाणी घर घर पहुँचे, इस दृष्टि से गांधीजी का अमर जीवनी, कार्य तथा विचारों से सम्बन्धित लगभग १५०० पृष्ठों का अत्यन्त उपयोगी और चुना हुआ साहित्य सेट केवल रु० ७ ०० में दिया जा रहा है और लगभग १००० पृष्ठों का साहित्य रु० ५ ०० में।

प्रत्येक संस्था तथा व्यक्ति को इस अल्पमोला और बहुगुणी साहित्य-सेट के प्रचार प्रसार में सहायक होना चाहिए, ऐसी आशा और अपेक्षा है।

पृष्ठ १५००, रु० ७-००

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१–आत्मकथा १८६९–१९१९	गांधीजी	१ ००
२–बापू कथा १९२०–१९४८	हरिभाऊ उपाध्याय	२ ५०
३–तीसरी शक्ति १९४८–१९६९	विनोबा	२ ५०
४–गीता बोध व मंगल प्रभात	गांधीजी	१.००
५–मेरे सपनों का भारत संक्षिप्त	गांधीजी	१ ५०
६–गीता प्रवचन	विनोबा	२ ००
७–संघ प्रकाशन की एक पुस्तक	–	१ ००
		११ ५०

यह पूरा साहित्य-सेट केवल रु० ७ ०० में प्राप्त होगा। २८ सेट का एक बण्डल एक साथ लेने पर फ्री डिलीवरी मिलेगी। अन्य कोई कमीशन नहीं दिया जा सकेगा।

ऊपर की प्रथम पाँच किताबों का पृष्ठ १००० का साहित्य-सेट केवल रु० ५ ०० में प्राप्त होगा। ४० सेट का एक बण्डल लेने पर फ्री डिलीवरी दिया जायगा। अन्य कोई कमीशन नहीं दिया जा सकेगा।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी १

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमंदिर वाराणसी

वर्ष : १८
अंक : १२

स्व० आशादेवी आर्यनायकम्

जुलाई, १९७०

नयी तालीम
शिक्षकों प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम्

नयी तालीम परिवार की माँ श्रीमती आशा-देवी आर्यनायकम् अब हमारे बीच नहीं रही। जाकिर साहब और आर्यनायकम्जी पहले ही चले गये थे। आज आशादेवी भी गयी। और इस प्रकार 'नयी तालीम' की त्रिमूर्तियों में से अन्तिम मूर्ति का भी काल-स्रोत में विसर्जन हुआ।

सन् १९३८ में हरीपुरा-कांग्रेस के अधिवेशन में बुनियादी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना हुई और कांग्रेस ने डाक्टर जाकिर हुसेन और आर्यनायकम्जी को अधिकार दिया कि वे गांधीजी की देख रेख में यह 'संघ' खड़ा करें और सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षा संचालकों से बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम स्वीकार करने को कहें। फलतः हिन्दुस्तानी तालीम संघ की स्थापना हुई और डाक्टर जाकिर हुसेन उसके सभापति, आर्यनायकम्जी सेक्रेटरी तथा श्रीमती आशादेवी असिस्टेंट सेक्रेटरी नियुक्त हुईं। बाद को जब संघ' ने बुनियादी शिक्षा के मुखपत्र के रूप में 'नयी तालीम' पत्रिका निकाली तो आर्यनायकम्जी के साथ वह 'नयी तालीम' की सम्पादिका बनी और सितम्बर १९५९ तक वह इस पत्रिका की सम्पादिका रही।

वर्ष : १८
अंक : १२

सन् १९४५-४६ में बुनियादी शिक्षा के प्रारम्भ करने के छह वर्ष बाद जब इन छह वर्षों में प्राप्त अनुभव के आधार पर बुनियादी शिक्षा के पाठ्य क्रम को संशोधित करने की आवश्यकता महसूस हुई तो उस समय तक आशादेवीजी का बुनियादी

शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग पर इतना अधिकार हो गया था कि उन्हे पाठ्यक्रम समिति की सयोजिका नियुक्त किया गया और उनकी देख रेख मे जो पाठ्यक्रम तैयार हुआ वही पूरे देश मे नयी तालीम के प्रचार-प्रसार का आधार बना। इस प्रकार सन् १९३८ से जून १९४९ तक, *यानी जब हिन्दुस्तानी* तालीमी सघ का सर्व सेवा सघ मे विलय हुआ उस दिन तक, आर्यनायकमृजी के साथ देश भर मे घूम घूमकर उन्होने नयी तालीम का अलख जगाया और नयी तालीम की गतिविधि का निर्देशन किया। देश मे जो बुनियादी शिक्षा को व्यावहारिक रूप मिला वह इस दम्पति का ही दिया हुआ था।

नयी तालीम के काम के लिए आशादेवीजी ने अपने को आर्यनायकम्जी के साथ पूर्णतः समर्पित कर दिया था। किसी प्रसग मे एक बार आर्यनायकम्जी ने गाधीजी से कहा था—'बापू, किसी दिन आप चाहे नयी तालीम को छोड द—परन्तु मै नही छोडूंगा।' इतनी निष्ठा उनकी नयी तालीम मे थी और सारा देश जानता है कि नयी *तालीम का यह पुरोधा जब यह सकल्प कर रहा था तो उसका हाथ* उसकी सहधर्मिणी के हाथ मे था और जीवन के अन्तिम दिन तक आशादेवीजी ने इस सकल्प को निबाहा और सेवाग्राम की कुटिया मे बैठी हुई वह नयी तालीम की प्रवृत्तियो का सचालन करती रही। किसी भी व्रत के लिए अपने पति के साथ इस प्रकार समर्पित होने के उदाहरण ससार मे कम ही मिलते हैं।

आशादेवीजी महान विदुषी थी। सस्कृत की प्रकाण्ड पडिता थी, अनेक विषयो पर उनका अधिकार था। हमने नयी तालीम के सम्मेलनो मे उन्हे कुशलतापूर्वक सभा का सचालन करते हुए ही नही देखा है, बल्कि नयी तालीम के प्रयोग की प्रभावपूर्ण व्याख्या करते भी सुना है। वह थोडा बोलती थी, परन्तु जो बोलती थी वह सारमय और स्पष्ट होता था। वह नयी तालीम की तत्त्व प्रचारिका थी। नयी तालीम के प्रयोगो की सफल व्याख्याकार थी, परन्तु सबसे पहले वह शिक्षिका थी—जन्मजात शिक्षिका। अध्यापन का प्रेम उन्हे विरासत मे मिला था। सेवाग्राम मे बैठकर वहाँ के बुनियादी स्कूल को सभालना-चलाना उनका सबसे प्रिय काम था। अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वह

सेवाग्राम की समस्त शैक्षिक प्रवृत्तियों का सचालन करती रही। उनका मन शिक्षा मे ही रमता था।

बुनियादी शिक्षा के क्रान्तिकारी पहलू को स्पष्ट करने के लिए और आज के युग के सन्दर्भ मे उसकी प्रासगिकता की ओर ध्यान दिलाने के लिए, सितम्बर-अक्तूबर, १९६० मे जब 'नयी तालीम' का 'नयी तालीम समस्या विशेषाक" निकाला गया और उस अक मे बुनियादी तालीम के अधिकारी विद्वानो ने बेसिक शिक्षा के विभिन्न पहलुओ पर लेख लिखे तब आशादेवी ने 'शिक्षक कैसा हो' ही विषय पर लिखना आवश्यक समझा। इस लेख मे इग्लैण्ड के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, ए० एस० नील के विचारो का हवाला देते हुए उन्होने शिक्षक के गुणो पर तफसील से प्रकाश डाला है। नील का उद्धृत करते हुए वह लिखती है—"सच्चा शिक्षक सच्चा दानी होता है। वह अपने को निरन्तर देता है। वह जो कुछ देता है, उसका स्वरूप है प्रेम। प्रेम यानी दोस्ती। प्रेम वह प्रकाश है, जिसे पाकर बच्चा पनपता है। इसीलिए शिक्षक के लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि वह बच्चो का सच्चा प्रेमी हो, सुहृद हो और यह प्रेम उसमे सहजात हो। लेकिन सिर्फ बच्चो के प्रेम से ही वह सच्चा शिक्षक नही बन सकता। सभी बडे कामो के लिए जिस तरह साधना की आवश्यकता होती है, वैसे ही सच्चा शिक्षक बनने के लिए साधना और तपस्या की जरूरत है।" और आशादेवीजी के विषय मे बेझिझक कहा जा सकता है कि वह सच्ची शिक्षिका थी, सच्ची दानी थी, और वह अपने विद्यार्थियो को निरन्तर अपने को देती रही। उनके उन्मुक्त स्नेह का सदाव्रत उनके विद्यार्थियो के लिए सहज सुलभ रहा और वह उन सबकी 'माँ' बन गयी—नयी तालीम परिवार की माँ। इस स्नेह-दान के लिए उन्होने एकनिष्ठ होकर साधना और तपस्या की—ऐसी साधना जिसने उन्हे सदा के लिए अमर कर दिया है।

शिक्षक का दूसरा गुण वह मानती थी निर्भयता। शिक्षक के व्यक्तित्व के विकास के सम्बन्ध मे पुनः नील महोदय को उद्धृत करते हुए वह लिखती हैं—'शिक्षक का अपना व्यक्तित्व जब तक विकसित नही होता तब तक वह कभी बच्चो के विकास मे सहायक नहीं हो सकता। इस विकास के लिए सबसे पहले उसे बडप्पन का झूठा मोह

छोड़ना होगा। विद्यार्थी के सामने अपने को बड़ा दिखाने का मोह शिक्षको के लिए बड़ा भयंकर मोह है। इस मोह से बचने के लिए उन्हे सदा सतर्क रहना चाहिए और जहाँ अपनी कमजोरियाँ है, उन्हे उन्हे अपने विद्यार्थियो के सामने प्रकट करने मे उन्हे सकोच नही करना चाहिए।' इसीलिए वह शिक्षको से कहती हैं—सच्चे बनो, निडर बनो। जिस शिक्षक के अन्दर भय छिपा है, समाज का भय परिवार का भय, हेडमास्टर का भय, इन्स्पेक्टर का भय, वह सच्ची निडर पीढी तैयार नही कर सकता। अत सच्चा शिक्षक वही हो सकता है जो निडर होने की निरन्तर साधना करे। जिसके हृदय म विद्यार्थियो के लिए ज्ञानयुक्त प्रेम हो और जो निडर हो वही सच्चा शिक्षक बन सकता है। अर्थात् गाधीजी की भाषा मे वही सच्चा शिक्षक हो सकता है, जो सत्य और अहिंसा का सच्चा पुजारी हो। और आशादेवीजी के विद्यार्थी, जिनकी सख्या हजारो मे है और जो इस देश मे ही नही विश्व भर मे फैले है, जानते है कि वह सत्य और अहिंसा की निडर किन्तु विनम्र पुजारिन थी। गाधीजी की कसौटी पर खरा उतरने के लिए उन्होने जीवन भर तप और साधना की, और सेवाग्राम की एकान्त कुटिया म अकेली बैठी हुई यह साधना करती हुई ही वह इस ससार से विदा हुई।

आशादेवीजी शिक्षक का तीसरा आवश्यक गुण मानती थी—नये अहिंसक समाज की रचना मे हाथ बँटाना। सबसे पहले शिक्षक समझ लें कि आज की समाज और राष्ट्र व्यवस्था किस तरह असत्य और अन्याय पर प्रतिष्ठित है और आज की सारी शिक्षा व्यवस्था किस तरह इसी समाज व्यवस्था और राष्ट्र-व्यवस्था का एक अग है—उसीको बनाये रखने के लिए है। इसीलिए जो शिक्षक इस मौजूदा शिक्षा पद्धति का अग होकर शिक्षा का काम कर रहे हैं वे इस सामाजिक अन्याय को कायम रखने मे मदद कर रहे हैं। इस असत्य और अन्याय की इमारत को तोड़कर उसकी जगह नयी इमारत उठाना शिक्षको का सच्चा काम है। इसीलिए नील महोदय के शब्दो को दोहराते हुए वह कहती है—"दोस्तो, अपना वक्त दशमलव, भिन्न और ऐसी दूसरी फिजूल बातो में मत जाया करो। बच्चो को यह बतलाओ कि समाज क्या है और जो कुछ देख रहे हैं उसके पीछे

क्या है। तुम्हारी शिक्षा-प्रणाली जमाने से बहुत पीछे हैं उसका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। अत अगर सच्चाई मे तुम्हारा विश्वास है तो तुम्हे एकसाथ मिलकर समाज और राष्ट्र-व्यवस्था को इस मौजूदा इमारत को तोड देना चाहिए।" हम जानते है कि आशादेवीजी अपने जीवन भर यही कोशिश करती रही कि शिक्षक असत्य और अन्याय पर प्रतिष्ठित समाज-व्यवस्था की इमारत को तोडकर उसकी जगह नयी इमारत उठाये। और हम यह भी जानते हैं कि असत्य को यह इमारत आज भी टूटी नहीं है। परन्तु वह टूटेगी। लेकिन टूटेगी तब जब शिक्षा बदलेगी। यह शिक्षा कैसे बदलेगी उसका क्या रूप होगा—यही आशादेवी सारी जिन्दगी भर बताती रही। और नयी तालीम परिवार को इसमे तनिक भी सदेह भर नहीं है कि अगर विश्व का सम्पूर्ण सहार नही होना है तो अहिंसा और सत्य पर आधारित इस व्यवस्था को कायम करना होगा और इसे कायम करने मे शिक्षण के उन सारे तत्वो का उपयोग करना होगा, जिनकी शोध इस महान शिक्षिका ने अपनी हड्डी गला कर की है। इस नये समाज को कायम करने मे नयी तालीम का परिवार मदद करे, यही स्वर्गीया आशा देवी को उसकी सबसे उपयुक्त श्रद्धाजलि होगी।

—वशीधर श्रीवास्तव

नयी तालीम-परिवार की 'माँ'

नारायण देसाई

गाधी के जिन साथियो ने अपने जीवन की पूँजी मानव बैंक मे लगाने का काम किया था, स्वर्गीया आशादेवी आर्यनायकम् उन्हीम से एक थी। तैंतीस साल तक उन्होंने अपने सहधर्मचारी श्री आयनायकमजी के साथ यही काम किया। परिणामत उनकी मानवीय सुवास आज देश के कोने-कोने म और जगत् के कई राष्ट्रो म फैल चुकी है।

मिजो जिले का एक छोटा-सा देहाती होटल। मेरे साथ बाँस के मच के बने टेबुल पर खानेवाले एक सज्जन ने पूछा 'आप वर्धा गये हैं कभी?' मैंने जब बताया कि मैं वहाँ बारह वर्ष रहा हूँ, तो वह कहने लगा, 'वहाँ सेवाग्राम म मेरी माँ है।

नागालैण्ड के अत्याचार के समाचार सर्व सेवा सघ की प्रबन्ध समिति को आयनायकम् दम्पति से ही सवप्रथम मिले थे। घाना के एक छोटे से ग्राम विनेवा म एक नीग्रो लडकी ने आकर पूछा, तुम भारत से आये हो, तो वहाँ आशादेवी को जानते हो?

सेवाग्राम के नयी तालीम परिवार मे उनका नाम था माँ। और यह परिवार सेवाग्राम के नयी तालीम क्षेत्र तक ही सीमित नही रहा, क्षितिज-व्यापी हो चुका था।

संस्कृत की प्रकाण्ड पडिता आशादेवी के दिलचस्पी के विषय थोडे नही थे। जब कभी उनके पास जाओ, सबसे ताजा किताब उनके हाथ मे या दराज मे मिल जाती थी। इतिहास, दर्शन, सस्कृत, सस्कृति इत्यादि उनके प्रिय विषय थे। लेकिन उन्होंने तय किया था, उस सारी विद्वत्ता को सेवाग्राम की शाला मे समपण करने का। आधी जिन्दगी उसीम डाल दी। दोनो की आधी जिन्दगी यानी एक पूरी जिन्दगी ही समझिए। एक जगह पल्थी लगाकर साधना करनेवाले इस प्रकार के दम्पति इस देश म तो क्या, दुनिया भर मे कम ही मिलेंगे। और इस साधना म विद्वत्ता के विषयों से कम दिलचस्पी पाठशाला की समस्याओ म, खेती के प्रयोगों मे, छात्रो की बीमारियो म, और परिवार म बच्चो की शादियो मे नही थी।

आशादेवी की आरम्भ की साधना शान्तिनिकेतन म हुई थी। उसका नतीजा यह हुआ कि वे गाधी के सादगी भरे आश्रम म रवीन्द्रनाथ की कलाप्रियता ले आयी। सेवाग्राम के विद्यालय म आपको उत्तमोत्तम सगीत ही सुनने को मिलेगा,

वहाँ नाटक और हुए होंगे तो उसकी पसन्दगी में रविभंग होना सम्भव नहीं था। आज जब राष्ट्र में मनोरंजन और सस्कारिता का मानो दवाक-सा हो गया दीखता है, तब आशादेवी के द्वारा प्रेरित सांस्कृतिक कार्यक्रम विशेष तौर पर याद आते हैं।

अपनी प्रतिभा के कारण अगर वह चाहती तो स्वराज्य के बाद उन्हें अनेक प्रकार के जगमगाते काम मिल सकते थे। लेकिन उनके व्यक्तित्व में तो एक सौम्य प्रतिभा थी। उसी प्रतिभा के कारण जब राष्ट्रपति की ओर से उन्हें कोई पदक दिया जा रहा था तब उन्होंने उसे नम्रता से अस्वीकार किया था। इस प्रकार के इलकाब देने की परम्परा छोड देनी चाहिए, यह सलाह देनेवाले तो कई लोग होते हैं लेकिन मिला हुआ इलकाब छोडनेवाली शायद आशादेवी अकेली ही थीं।

सर्वधर्म-समभाव आशादेवी को सहज सधा था। स्वयं हिन्दू संस्कार की, सहधर्मचारी ईसाई संस्कार के, और जिसकी अध्यक्षता में काम किया वे मुसलमान थे। *शान्तिसेना-मण्डल* की संयोजिका कई वर्षों तक रहीं। इस बीच साम्प्रदायिक दंगे ज्यादा तो नहीं हुए, लेकिन अलीगढ के दंगे के समाचार सुनते ही पहुँच गयी वहाँ। वहाँ से तार आया 'शान्ति विद्यालय से कुछ विद्यार्थी शीघ्र भेजो।'

जूझती रहीं प्राय अकेले ही। घायलों के घर घर जाकर मिलीं। जिन्होंने हिंसा की थी *उनको भी खोजकर मिलीं। प्रेम से पूछती रहीं भाई तुम्हें जरा भी पछ*तावा नहीं होता?' वे खोज रही थीं पश्चात्ताप के लुप्तप्राय स्रोत को जिस स्रोत से, उन्हें विश्वास था कि भयंकर-से भयंकर हिंसा का पाप भी धुल सकता था।

चंबल की घाटी के बागियों की समस्या में उनको दिलचस्पी थी, क्योंकि हर प्रकार की मानवीय समस्या में उन्हें दिलचस्पी थी। आरम्भ में आर्यनायकम्‌जी, और उनकी मृत्यु के बाद आशादेवी सर्वोदय आन्दोलन की चंबल समिति की अध्यक्षता करती रहीं।

युनेस्को में भारतीय प्रतिनिधि के नाते वे कई बार विदेश गयी थीं और जहाँ गयीं अपने जीवन से भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रचार किया था।

सभी भाषाओं के भजनों को इकट्ठा करने का उन्हें शौक था। सेवाग्राम में दजनों ऐसे प्रसंग घटे होंगे जब देश की चौदह भाषाओं के सन्तों के उत्तम भजनों से वहाँ का वातावरण गूँज उठा होगा। हर भजन के चुनाव के पीछे, हर भजन के गाने के तर्ज के पीछे आशादेवी की सस्कारिता छिपी रहती थी।

इतनी विद्वत्ता और इतनी कमठता के बावजूद भी आशादेवी का मुख्य गुण तो उनकी भक्ति ही थी। वह भक्ति बच्चों के प्रति उनके प्यार के रूप में प्रकट हुई। पति के साथ अनेक विषयों पर मतभेद होने के बावजूद भी उनकी अनुव्रता बनी रहने में वे कृतकृत्यता अनुभव करती थीं। रवीन्द्रनाथ के प्रति उनकी भक्ति

तो शान्तिनिकेतन के उनके साथियों मे सुविदित थी। एक बार रवीन्द्रनाथ पास स गुजरे। आशादेवी वहीं खडी हुई, बस उसी स्थान को काफी समय तक देखती रही। सहाध्यायिनी मालती देवी ने झकझोरकर उनसे पूछा 'दीदी क्या देखती हो?' उत्तर मिला, 'तुम क्या समझ सकोगी? हम यहाँ जी रहे हैं, यह हमारा कैसा भाग्य है? वे हमारे बीच ही आना-जाना कर रहे हैं, यही मैं देखती थी।' गाधी के प्रति भक्ति तो उनकी जीवन-साधना के रूप मे ही प्रकट हुई। और विनोबा के प्रति जो भक्ति थी उनसे उनको बहुत हद तक रुत्या की आसक्ति से भी छुडाया था।

मैसूर क 'निवेदक' सम्मेलन मे मैंने विनोबा को शान्तिसना मण्डल के सुप्रीम कमाण्डर' न बनने को जब कहा, तो आशादेवी को उसस धक्का लगा। उन्होने मुझस सिर्फ इतना ही कहा 'नारायण, बोलने मे शालीनता चाहिए।' इस एक वाक्य म विनोबा के प्रति उनकी जो भक्ति थी वह प्रकट हुई। किन्तु वास्तव म उनकी भक्ति परमेश्वर के लिए थी, जो प्रकट होती थी उनके भजनो म। भजनो का एक सग्रह भी वे करना चाहती थीं। अपनी अन्तिम बीमारी में भी उन्होंने इस भजन-संग्रह को पूरा करने क लिए कुछ मित्रो से आग्रह किया था।

आशादेवी ने अपने पुत्र बबुनी को सेवाग्राम मे ही खोया था। श्री आर्यनाय-कमजी की समाधि भी उसी टेकडी पर हुई, जहाँ बबुनी की समाधि थी। अब उनकी खुद की समाधि भी उसी स्थान पर बनेगी। वैसे आशादेवी के परिवार क हम सभी समान सदस्य हैं फिर भी उनकी पुत्री उपना (मित्तू) और दामाद सुव्रत क साथ हमारी हार्दिक प्रार्थना है।●

श्रद्धांजलि

श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम् का जन्म सन् १९०२ में सम्भ्रान्त बंगाली परिवार में हुआ था। उनके पिता प्रोफेसर अधिकारी पंजाब में शिक्षा विभाग में काम करते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० करने के बाद वह शान्तिनिकेतन चली गयी, जहाँ वह अध्यापन का कार्य करती थी। वहीं उनका परिचय आर्यनायकम्‌जी से हुआ, जो गुरुदेव के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करते थे। आर्यनायकम्‌जी लंका के रहनेवाले ईसाई थे। सबसे ऊपर मानव-धर्म को माननेवाली आशादेवीजी के मार्ग में जाति और धर्म की संकीर्ण दीवारें बाधा न बन सकी और वहीं शान्तिनिकेतन में ही वह आर्यनायकम्‌जी के साथ दाम्पत्य-सूत्र में बँध गयी। कुछ दिनों शान्तिनिकेतन में रहने के बाद ये दोनों पति-पत्नी गांधीजी के आश्रम में चले आये। फिर आजीवन वहीं रहे।

सन् १९३७-३८ में जब गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया तो इसका भार उन्होंने आर्यनायकम् दम्पति को सौंपा। सन् १९३८ में हरीपुरा कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार जब बुनियादी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना हुई तो डाक्टर जाकिर हुसैन संघ के अध्यक्ष, आर्यनायकम्‌जी मंत्री और आशादेवीजी सहमंत्री बनाये गये। सन् १९५९ तक, हिन्दुस्तानी तालीम संघ के सर्व सेवा संघ में विलय होने के समय तक, इस दम्पति ने तालीमी संघ के काम को सम्भाला। जब संघ ने 'नयी तालीम' को बुनियादी शिक्षा के मुखपत्र के रूप में निकाला तो आशादेवी इस पत्रिका की सम्पादिका बनी और सितम्बर १९५९ तक इस काम को योग्यतापूर्वक किया। सन् १९४५ में कक्षा ५ तक का बुनियादी शिक्षा का जो संशोधित पाठ्यक्रम तैयार किया गया और जिस आधार पर बुनियादी शिक्षा का ढाँचा देश में खड़ा किया गया, आशादेवीजी उस पाठ्यक्रम तैयार करनेवाली समिति की संयोजिका बनायी गयी। सन् १९४२ के भारत-छोड़ो आन्दोलन के समय ३ वर्ष तक जेल की सजा भी भुगतीं।

कुछ दिन पहले अचानक वह बीमार पड़ीं और डाक्टरों ने उनके फेफड़े में कैन्सर का रोग बताया। १४ जून को उनको नागपुर के अस्पताल में दाखिल किया गया। जहाँ उनकी ३० जून को मृत्यु हो गयी। उनकी आयु ६७ वर्ष की थी। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे। नयी तालीम-परिवार की ओर से हम उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।●

रोजगारमूलक शिक्षा

गांधीजी ने सन् १९३७ मे बुनियादी शिक्षा की योजना देश के समक्ष प्रस्तुत की थी। यह योजना उनके ३० वर्ष के उन व्यावहारिक अनुभवो पर आधारित थी जो उन्होने दक्षिणी अफ्रीका के टाल्स्टाय फार्म तथा भारत के कार्यकर्ताओं के आश्रमो मे अपने तथा कार्यकर्ताओं की शिक्षा के दौरान प्राप्त की थी।

अंग्रजो ने भारत म जिस शुद्ध साक्षरता की शिक्षा की शुरुआत की उस शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा थी। उस शिक्षा का उद्देश्य था सरकार के लिए किरानी तैयार करना। उसके समक्ष उत्पादन की प्रेरणा देना या दक्षता पैदा करने का उद्देश्य नही था। ऐसी शिक्षा ने शिक्षित लोगो को न केवल साधारण लोगो से अलग थलग कर दिया, बल्कि उन्हे अपने आपके लिए निकम्मा बना दिया। "अंग्रजों द्वारा भारत के पुराने ग्राम सगठन के विनाश और विदेशी सामान से बाजार पाट देने के कार्य द्वारा गाँव के लोगो की अपनी जडे उखड गयी। उनके रोजगार छिन गये। उन्होने अपने को बेसहारा अनुभव किया और धीरे-धीरे वे गरीबी, बरोजगारी और निरक्षरता के सागर मे डूबते चले गये। शिक्षित लोग अपनी शिक्षा को गरीब और कमजोर लोगो का शोषण करने के साधन के रूप मे देखते थे।" गांधीजी ने सोचा कि राष्ट्र को बचाने का एकमात्र रास्ता यह रह गया है कि गाव के आर्थिक जीवन को पुनर्जीवित किया जाय और उसका सम्बन्ध शिक्षा से जोडा जाय। गांधीजी के अनुसार शिक्षा को गाँव मे प्रचलित धन्धो पर आधारित होना था और शिक्षा प्राप्त करनेवाले बच्चे को अपने दैनिक उपयोग की चीजें पैदा करने के काम मे प्रशिक्षित होना था। यह होते हुए भी बालक को आर्थिक लक्ष्य तक पहुचाने के औजार के रूप मे इस्तेमाल नही करना था। अत यद्यपि शिक्षा हस्त-उद्योग पर आधारित रहनेवाली थी फिर भी बालक के हृदय और बुद्धि को भी उतना ही प्रशिक्षित होना था जितना कि उसके हाथ को। शिक्षा को एकदम शास्त्रीय विदेशी भाषावाली और जीवन से असम्बद्ध होने के बदले उद्देश्यपूर्ण मातृभाषा के माध्यम से दी जानेवाली और बालक के सामाजिक और सास्कृतिक वातावरण से मूलत सम्बन्धित रहना था।

विकेन्द्रित उद्योग शिक्षा के माध्यम

गांधीजी जो इस प्रकार हमारे आर्थिक और सास्कृतिक जीवन को पुनर्जीवित करना चाहते थे, एक और भी पहलू था जिसने उन्हें हस्त उद्योगो के माध्यम से दी जानेवाली शिक्षा के प्रचार के लिए प्रेरित किया। उन्हे इस बात का पूरा

विश्वास हो गया था कि मशीनो पर आधारित सभ्यता राष्ट्र के बडे हिस्से को शोषित और गुलाम बनाती है। मशीनी सभ्यता, स्वतत्रता और आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के बदले लोगो को उन थोडे से लोगो की गुलामी और निर्भरता के लिए विवश करती है जो उद्योग और राज्य का सचालन करते हैं। इसके साथ-साथ उसने लोगो के भीतर स्थायी प्रतिद्वन्द्विता के बीज बो दिये और एक दूसरे को आपसी विनाश म लगा दिया। इसलिए गाधीजी ने अनुभव किया कि इस देश की जनता के सामने आशा का एकमात्र उपाय यह रह गया है कि वह कारखानो पर *आधारित बडे पैमाने पर चलनेवाले उद्योगो से अपना पिंड छुडाने का प्रयास करे* और अपने अथशास्त्र को ग्रामीण उत्पादन पर आधारित करे। जो शिक्षा बालक को ऐसे भविष्य के लिए तैयार करेगी वह निश्चित रूप से किसी हस्तोद्योग पर आधारित होगी। गाधीजी की शिक्षा की योजना ऐसी अहिंसा और स्वतत्रता की भावना से उद्‌भूत हुई है जिसमे समाज के नीचे-से-नीचे और दबे-से दबे व्यक्ति का उत्थान निहित है। उस शिक्षा की यह दार्शनिक पृष्ठभूमि तो है ही, इसके साथ ही उद्योग के माध्यम से सिखाने के पीछे कुछ ठोस शैक्षिक सिद्धात भी मौजूद हैं। "पहला सिद्धान्त तो यह है कि किसी व्यक्ति को सच्ची शिक्षा सबसे अच्छी तरह किसी क्रिया द्वारा ही प्राप्त होती है। किसी काम के करते समय जो समस्याएँ उपस्थित होती हैं उन्ही से जुडकर उस विषय की समझदारी और ज्ञान का अर्जन होता चलता है—यह एक पक्का मनोवैज्ञानिक तथ्य है और गाधीजी की शिक्षा-*पद्धति इसी पर आधारित है। दूसरा शैक्षिक सिद्धान्त यह है कि बच्चे मे जो कुछ* सर्वोत्तम निहित है उसे उजागर करना शिक्षा का दायित्व है तो उसकी अभिव्यक्ति किसी उद्योग के माध्यम से ही हो सकती है, क्योकि उद्योग ही बालक के समक्ष *ऐसी समस्याएँ उपस्थित करता है जिसके सन्दर्भ मे उसे अपने विचार, चारित्र्य* और कलात्मक अभिरुचि का विनियोग करना पडता है।' इस युग ने हर क्षेत्र मे विशेष योग्यता और आशिक दक्षता की आवश्यकता पैदा कर दी है। ऐसे युग मे गाधीजी की यह बात अत्यन्त सामयिक और महत्त्वपूर्ण है। उन्हींके शब्द हैं "शरीर की विभिन्न इन्द्रियो यानी हाथ पाँव, आँख, नाक, कान आदि के ठीक ठीक उपयोग और अभ्यास द्वारा ही बालक की बुद्धि का सच्चा शिक्षण होता है। लेकिन जबतक बौद्धिक और शारीरिक विकास साथ-साथ नहीं होते चलते और इसके साथ ही उसकी आत्मा का भी जागरण नहीं होता तो केवल बौद्धिक विकास एक अधूरी और एकागी बात होगी। अत बालक की बुद्धि का सही और सर्वांगीण विकास उसी समय हो सकता है जबकि वह उसकी शारीरिक और आत्मिक विशेषताओ के साथ विकसित होती जाय।"

यदि बालक को शिक्षा के दौरान कताई, बढईगीरी, खेती जैसे उपयोगी उद्योग मे लगाया जाय और उस सिलसिले मे उसे जो कुछ काम करने पडते हैं और जिन औजारो का उपयोग करना पडता है उनका सैद्धान्तिक पहलू उसे अच्छी तरह समझाया जाय तो न केवल उसका शरीर स्वस्थ और सुगठित होगा वल्कि उसकी वुद्धि भी सबल होगी। ऐसी वुद्धि केवल शास्त्रीय ज्ञान पर आधारित न होगा, वल्कि उसका आधार दिन-प्रतिदिन के अनुभव मे होगा। बालक की बौद्धिक शिक्षा मे गणित और विभिन्न विज्ञान का समावेश होगा। यदि उसम साहित्य का ज्ञान भी जोड दिया जायेगा तो इसके द्वारा उसे सुसतुलित, परिपूर्ण और सर्वागपूण शिक्षा प्राप्त होगी। ऐसी शिक्षा म बालक की वुद्धि, उसके शरीर, और भावना का पूरा उपयोग होगा और इस प्रकार सहज रूप मे उसके समग्र व्यक्तित्व का सुसतुलित स्वरूप निखरेगा। आदमी सिफ वुद्धि का प्राणी नही है और न तो वह सिफ देह, या हृदय या आत्मा है। गाधीजी ने कहा है कि वुद्धि देह और हृदय इन तीनो का समुचित मेल होने पर ही पूण मनुष्य का उद्भव होता है और वही शिक्षा का सच्चा अथशास्त्र है।

शिक्षा की इस योजना के अन्तगत देह, दिमाग और आत्मा का उच्चतम विकास सम्भव है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हरेक उद्योग मे बिना सोचे समझे यात्रिक ढग से सिखाने के बदले वैज्ञानिक रीति से सिखाया जाय अर्थात बालक को प्रत्येक प्रक्रिया के बारे मे बताया जाय कि वह क्यो और कैसे की जाय। रोजगार से सम्बन्धित उद्योग बालक के बहुमुखी विकास के सबसे उत्तम माध्यम हैं अत शिक्षा के सभी पाठ्यक्रम रोजगार देनेवाले उद्योग के आधार पर बनने चाहिए। रोजगार देनेवाले उद्योग का अभ्यास बालक की वुद्धि को ताजगी और सजगता प्रदान करेगा और उसी के जरिये उसकी वुद्धि भी बढेगी। किसी उद्योग को सिखाकर उसके साथ तथाकथित विषयों की पढाई सिखा दी जाय तो वह यही शिक्षा नही होगी। जब उद्योग के माध्यम से सम्पूण शिक्षा दी जाय तभी वह उपरोक्त शिक्षा होगी। बालक जिस समय उद्योग सीखेगा उसी दौरान वह गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और भाषाएँ भी सीख जायेगा। इस नयी शिक्षा-पद्धति की यही नवीनता है और इसी से यह परम्परागत शिक्षा प्रणाली से एकदम भिन्न है।

शिक्षा म इस प्रकार के व्यावहारिक तथा उत्पादक काय के समावेश का जिसमे देश के सभी बालक शरीक होगे, एक सामाजिक प्रभाव यह होगा कि आज बौद्धिक और शारीरिक मेहनत करनेवाले लोगो के बीच अलगाव की जो दीवार खडी हो गयी है वह टूटने लगेगी। आज के समाज मे शारीरिक श्रम करनेवाले

लोग नीचे दर्जे के माने जाते हैं इसीलिए कताई करनेवाले, जुलाहे बढ़ई, और मोची को हम निचली जाति का मानते हैं।

उद्योगों से वंचित करनेवाली शिक्षा अपराध

हरेक को उद्योग की शिक्षा दी जायेगी तो उससे सबम श्रम के प्रति सच्ची प्रतिष्ठा और मानवीय एकबद्धता की भावना विकसित होगी। नैतिक दृष्टि से यह एक उपलब्धि होगी, जिसका वेद मे भी उल्लेख है। गाधीजी ने कहा है— 'हमे श्रम का महत्त्व अभी समझना बाकी है। यदि कोई नाई या मोची महाविद्यालय म पढने जाता है तो उसे नाई या मोची के धधे को त्यागना नहीं चाहिए। और देश क लिए चाहे जो बात सही हो, लेकिन भारत के लिए, जहाँ की ८० प्रतिशत जनता खेती के धधे मे लगी है और १० प्रतिशत लोग उद्योगों म लगे हैं, शिक्षा को सिर्फ पुस्तका तक सीमित रखना, जिसके कारण बालक शारीरिक कार्य के लिए अयोग्य हो जाते हैं एक अपराध है। हमारे बच्चों को बचपन से ही श्रम की प्रतिष्ठा का सस्कार मिलना चाहिए। एक किसान का लडका स्कूल मे पढने के बाद किसानों के कार्य के लिए निकम्मा हो जाय, इसका कोई कारण नही है।"

गाधीजी भारत के गाँवो का नव-निर्माण करना चाहते थे और नगर-नगर मे रहनेवाले बालकों को इस महान कार्य के माध्यम से अपनी शिक्षा प्राप्त करनी थी तो उन्हें जिन उद्योगो के माध्यम से अपनी शिक्षा प्राप्त करनी थी उनका सम्बन्ध गाँव स होना आवश्यक था। गाँव मे चलनेवाले उद्योग जैसे कताई के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की गाधीजी की योजना एक एसी योजना थी जिसके द्वारा बिना होहल्ला के एक दूरगामी सामाजिक क्रान्ति होने लगती। उस योजना के द्वारा नगर और गाँव के लोगों म एक स्वस्थ और नैतिक सम्बन्ध कायम होने का आधार बनता। आज समाज के विभिन्न वर्गों मे असुरक्षा की जो जहरीली भावना भरी हुई है और जिसके चलते उनके आपसी सम्बन्ध भी जहरीले हो गये हैं वे गाधीजी की शिक्षा-योजना के प्रभाव स्वरूप धीरे धीरे स्वस्थ हो गये होते। यह शिक्षा-योजना इसीलिए थी ही कि गावो का जो निरन्तर ह्रास होता जा रहा है वह रुके और एक ऐसे समाज की नीव पड़े जिसमे गरीब और अमीर की बनावटी दीवार न हो, और सबको निश्चित रूप से रोजगार मिलने का आश्वासन मिले अर्थात् जो आज से अधिक न्यायपूर्ण हो। यह सब एस ढग म करना था कि देश खून खराबीवाल वर्ग-युद्ध या भारी पूंजी के खर्च की प्रक्रिया स बच जाय। भारत-जैसे बड़े देश मे यान्त्रिक उद्योगो का विस्तार करने में भारी पूंजीगत खर्च होगा ही। देश के औद्योगिक विकास मे अत्यन्त

विशिष्ट योग्यतावाले लोगो की आवश्यकता को टालकर जनता का भविष्य उसी के हाथ मे सुरक्षित रखा जा सकेगा।

नयी शिक्षा, नया संस्कार, नया समाज

गाधीजी की शिक्षा-पद्धति मे नागरिक का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वतत्र भारत का नागरिक देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक जीवन मे अधिकाधिक लोकतान्त्रिक भूमिका निभा सके यह आवश्यक है। नागरिक के जो अधिकार और कर्तव्य हैं उनका वे बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग कर सकें इसके लिए एकदम नये ढग की शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि समाज का प्रबुद्ध नागरिक समाज का एक सक्रिय सदस्य हो और एक सगठित समुदाय के सदस्य के नाते उसे समाज से जो सुविधाएँ प्राप्त हैं उन्हे वह किसी उपयोगी समाजसेवा के रूप मे समाज को लौटा सके। "जो शिक्षा भिखारियो, परापरजीवियो को जन्म देती है वह भर्त्सना-योग्य ही है। ऐसी शिक्षा द्वारा समाज की न केवल उत्पादक-क्षमता और दक्षता घटती है बल्कि इसके कारण खतरनाक और अनैतिक मनोवृत्ति बढती है। गाधीजी की शिक्षा-पद्धति एसे कार्यकर्ताओ का निर्माण करने के लिए बनी है जो हर प्रकार के काम करें, यहाँ तक कि झाड़ू लगाने के काम को भी प्रतिष्ठित काम मानेंगे। इसीलिए उनकी शिक्षा-पद्धति मे उद्योग सिखाने का प्राविधान है। अन्तत इस शिक्षा-पद्धति मे एक ऐसे सहकारी समुदाय की कल्पना निहित है जिसमे बालक के प्रारम्भिक तथा युवावस्था के वर्षों मे समाज सेवा की भावना सर्वोपरि होगी। अपने कालीन शिक्षण मे बालक यह अनुभव करेंगे कि वे राष्ट्र के महान शिक्षण मे वे सीधे और व्यक्तिगत ढग से अपना सहयोग दे रहे हैं।"

गाधीजी ने कहा—"भारत को ऐसे युवक चाहिए जो श्रमिक हो, ऐसे श्रमिक जिनका चरित्र कर्मभय व्यावहारिक और सेवापरायण हो। जब एक बार भारत के युवक ऐसे चरित्र के हो जायेंगे तो कुछ करने की कामना उन्हें आत्मनिर्भरता और त्याग की दिशा की ओर ले जायेगी। अपनी सात साल की शिक्षा के बाद युवक नागरिक समाज मे एक कमाऊ इकाई के रूप मे प्रवेश करेगा। उसके भीतर निर्माण करने और कुछ करने की शक्ति होगी और यदि उसमे यह शक्ति नही आ पायी है तो उसकी शिक्षा का उपयोग ही क्या रह जायेगा?" गाधीजी आगे कहते हैं—"*आदमी के हाथ मे उतनी ही बुद्धि है जितनी उसके सिर मे। सिर मे जो* बुद्धि है वह एक अरसे से हमारे लिए परमेश्वर बनी हुई है। अब हाथमे बसनेवाली बुद्धि की प्रधानता मिले और सिर मे रहनेवाली बुद्धि उसकी अनुचर बने।" गाधीजी

का यह कथन उनकी शिक्षा-पद्धति मे निहित उद्योग के आर्थिक पहलू की ओर संकेत करता है। उन्होने कहा है—"यदि हमारे बच्चो को स्वयपूर्ण और आत्म-निर्भर बनना है तो उन्हे उद्योगो का कुशल शिक्षण मिलना चाहिए। जो बालक इस प्रकार की शिक्षा से सुसज्जित होगा वह जीवन सघर्ष मे कभी अपने को असहाय नहीं अनुभव करेगा और न कभी बेरोजगार होगा।"

स्वावलबी शिक्षा

देश के लिए यह भारी अपमान की बात है कि उसके बालको की शिक्षा के खर्च की पूर्ति शराब के टैक्स से होती हो। और अब अधिक कर का बोझ देश बरदाश्त नही कर सकेगा। शिक्षा म कताई बुनाई कृषि इत्यादि के समावेश स शिक्षा की समस्या जिस प्रकार हल होगी वैसे किसी अन्य उपाय से नही होगी। यदि प्रत्येक विद्यालय अपने यहाँ कताई की शुरुआत कर दे तो उसक द्वारा शिक्षा का खर्च जुटाने को हमारी विचारधारा म क्राति हो जायेगी। कोई विद्यालय ६ घंटे तक चले तो वह अपने छात्रो को नि शुल्क शिक्षा दे सकता है। मानलीजिए कि एक छात्र चरखे पर ४ घंटा कताई करता है तो वह १० तोला सूत कात लेगा और उस १ आना प्रति दिन की मजदूरी प्राप्त होगी। इस प्रकार महीने म वह कम-स-कम १ रुपया ६० पैसा कमा लेगा। यदि कक्षा म ३० छात्र हो तो प्रतिमास ४८८० ७५ पैसे की आय होगी। इस प्रकार बिना किसी विशेष प्रयत्न के विद्यालय स्वयपूर्ण हो सकता है। (गाधीजी का यह दृष्टात आज भी मौजूद है। बढी हुई मँहगाई के कारण कताई द्वारा होनेवाली आय पहले के अनुपात मे कही अधिक होगी—सं०)

यदि हम यह अपेक्षा रखते हैं कि वे सब बालक-बालिका जिनकी उम्र स्कूल मे भर्ती होने योग्य है, तथा वचित स्कूलो म पढने लग जायें तो न तो हमारे पास इतना धन है कि इतने पब्लिक स्कूल खोले जा सकें और न तो लाखों करोडो अभिभावक अपने बच्चो की उतनी फीस चुका सकते हैं जो पब्लिक स्कूलो मे लगती है। अत यदि शिक्षा सबके लिए उपलब्ध करनी है तो उसे नि शुल्क बनाना होगा। लेकिन एक आदर्श सरकार भी नि शुल्क शिक्षा के लिए करोडो रुपयो का प्रबन्ध नहीं कर पायेगी। अत बालकों की शिक्षा पर जो खर्च होता है उसके कुछ अश या पूरे अश की पूर्ति बालको को अपने परिश्रम से करनी होगी। भारत जैस निर्धन देश की शिक्षा म शारीरिक श्रम के समावेश से दुहरे उद्देश्य की पूर्ति होगी, एक तो यह कि उससे शिक्षा पर होनेवाले खर्च की पूर्ति होगी दूसरे वे एक ऐसा उद्योग सीख लेंगे जो विद्यालय से निकलने के बाद उन्हे जीविका दिलाने मे सहायक होगा।

नगर के प्राथमिक विद्यालयो की शिक्षा को भी किसी रोजगार पर आधारित

रखने की सिफारिश करने मे गाधीजी को तनिक भी हिचकिचाहट नही थी। उस समय बम्बई का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा था—"बम्बई के सभी बालको को नि शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने मे २२ लाख ४० हजार रुपयो की जरूरत होगी और इतनी बडी रकम का प्रबन्ध बम्बई कयामत तक नहीं कर सकेगा।' लेकिन यदि बालको के विद्यालय मे ऐसे उपयोगी रोजगार की शिक्षा दाखिल कर दी जाय जिससे आमदनी हो तो यह काम आसानी से हो जायेगा। यदि राज्य सरकार ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बच्चो की शिक्षा का भार अपने ऊपर लेती है और उत्पादक श्रम द्वारा उनके शारीरिक और मानसिक विकास का प्रबन्ध करती है तो आज के जो पब्लिक स्कूल आत्म-निर्भर न होंगे वे धोखाधडी बनेंगे और उनमे पढानेवाले अध्यापक मूर्ख माने जायेंगे। "अगर हम एक साल के अभ्यास के बाद बालको को इस योग्य नही बना सकते कि वे १ घटे की मेहनत से १ आना की आमदनी दे सकें तो हम बौद्धिक दिवालिया प्रमाणित होंगे।' यह गाधीजी के शब्द हैं।

हमने देखा कि गाधीजी की बुनियादी शिक्षा की प्रणाली मे रोजगार सिखाने का जो प्रावधान है वह ठोस दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धान्तो पर आधारित है। इतना होते हुए भी कुछ ऐसे लोग हैं जिनको बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता के बारे मे सशय बना हुआ है।

कतिपय आलोचनाएँ

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि गाधीजी की शिक्षा-पद्धति तो आज भी प्रचलित है क्योकि विद्यालयो मे हस्तोद्योग सिखाये ही जाते हैं। यह एक भ्रान्त धारणा है क्योकि वे हस्तोद्योग बौद्धिक शिक्षण के साधन नही हैं। वे बौद्धिक शिक्षण के पूरक मात्र हैं। आज के प्रचलित शिक्षण को बुनियादी शिक्षा-पद्धति मे बदलने के लिए उसमे उत्पादक श्रम के कार्यक्रम का समावेश करना होगा, हस्तोद्योग के जरिये बौद्धिक जिज्ञासा बढानी होगी और उद्योग के समवाय मे विभिन्न विषयो का शिक्षण देना होगा। जहाँ तक हस्तोद्योग की बात है, गाधीजी की बुनियादी शिक्षा मे कोई नयी बात नही है क्योकि यह काम करते-करते सीखने के अलावा कुछ नहीं है। बालक चीजो को तोड फोडकर या मरम्मत करके सीखता है और हस्तोद्योग मे यही निहित है। अमेरिका की 'प्रोजेक्ट' अथवा रूस की 'कम्प्लेक्स पद्धति' मे यही होता है।

हस्तोद्योग द्वारा शिक्षा देने की पद्धति मे आत्मनिर्भरता वाला जो पहलू है उसके बारे मे अनेक भ्रम हैं। उन भ्रमों का निवारण दो तरीके से हो सकता है—एक तो यह कि यह पद्धति बालक और बालिकाओ को कोई-न-कोई रोजगार देकर

आत्मनिर्भर होने की योग्यता प्रदान करती है। यह एक प्रकार से बेरोजगारी के विरुद्ध बीमा योजना जैसी चीज है, क्योंकि १४ वर्ष का होते होते बालक या बालिका कमाने योग्य होकर विद्यालय से बाहर निकलेगा। आत्मनिर्भर होने का दूसरा और वास्तविक अर्थ है कि बालक के उत्पादक श्रम से शिक्षक के वेतन की रकम की पूर्ति हो। गांधीजी ने स्वयं जो हिसाब लगाया था उसके अनुसार बालक विद्यालय में जो श्रम करेंगे उसकी आमदनी से शिक्षकों के सालभर के वेतन की पूर्ति होगी। विद्यालय के लिए भूमि-भवन और साधन आदि मद में जो खर्च आयेगा उसकी पूर्ति बालकों के श्रमकार्य से होगी यह नहीं माना गया है।

"बालकों के तैयार किये हुए सामान को कौन खरीदेगा? यह भी आलोचना की जाती है। आलोचक यह भूल जाते हैं कि जिन लोगों में राष्ट्रीय भावना है वे अपने विद्यार्थियों का बनाया हुआ सामान खरीद लेंगे और राज्य सरकार भी अपने विद्यालयों के छात्रों का बनाया हुआ सामान खरीदने में गौरव का अनुभव करेगी।

"शिक्षा पर होनेवाला खर्च निकालने के लिए विद्यालयों को कारखाने में बदल दिया गया है, यह भी इस उद्योगमूलक पद्धति के विरुद्ध आरोप है। विद्यालय को कारखाना कहना अनेक तथ्यों की वास्तविकता के प्रति आंख मूंद लेने जैसी बात है। यह वैसी ही बात हुई जैसे कोई आदमी को बन्दर कह दे क्योंकि दोनों में कुछ साम्य दीखता है।' उद्योग सिखाते-सिखाते बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। यह तथ्य विद्यालय को कारखाने से भिन्न बना देता है।

एक और महत्त्वपूर्ण आरोप यह है कि इस शिक्षा पद्धति से निकले हुए लोग जुलाहे और बढ़ई होंगे न कि सांस्कृतिक दृष्टि से ऊंचे लोग। इस शिक्षा-पद्धति को "इस दृष्टि से देखना कि यह सिर्फ जुलाहे और बढ़ई तैयार करनेवाली पद्धति है, न्याय-संगत नहीं है। क्योंकि इस नयी शिक्षा का लक्ष्य केवल कारीगर तैयार करना नहीं है बल्कि कारीगरों के काम में जो साधन इस्तेमाल किये जाते हैं उनका शैक्षिक सदुपयोग करना है। इसके द्वारा बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का शिक्षण होगा। "इस पद्धति द्वारा गांवों को ऐसे शिक्षित जुलाहे और बढ़ई उपलब्ध होंगे जो गांव के नागरिक शासन में जिम्मेदारियों के पद संभाल सकेंगे। 'पेरिक्लीज' के जमाने में एथेंस में ऐसे ही कारीगर मौजूद थे। यह शिक्षा-पद्धति हमारे देश को वास्तविक संस्कृति और सच्ची राष्ट्रीयता के मूर्तमान नागरिक प्रदान करेगी।" युग-युग से भारत में जो गुलामी की भावना, पिछड़ापन, अज्ञान और काहिली चली आ रही है, उसे यह शिक्षा-पद्धति दूर करके स्वतंत्रता का साक्षात्कार करायेगी।

अंग्रेजी से भाषान्तर—रुद्रभान

बुनियादी शिक्षा का लक्ष्य : ग्रामश्री की संतुलित वृद्धि

रमेशचन्द्र पन्त

बापू के उद्भव-युग मे भारत में परस्पर-प्रतिरोधी सास्कृतिक खेमे सक्रिय हो रहे थे। देश का पौराणिक समाज, जिसे शेष ससार हिन्दू भारत के नाम से जानता है, स्वामी विवेकानन्द व स्वामी दयानन्द सरस्वती के आह्वान पर उद्वेलित हो रहा था। बर्तानी शासक देश की ग्राम-सस्था को जातीय, धार्मिक एवं आर्थिक आधार पर ध्वस्त करके पश्चिमी जीवन दर्शन के प्रति अनुरक्त करने में बहुत कुछ हद तक सफलता प्राप्त कर चुके थे और नगरो के बहु व विजातीय अस्तित्व एक अनियन्त्रित भीड के रूप मे अपना मानक कायम करने की आपाधापी मे व्यस्त थे। भारतीय नगरो का विनिमय-व्यापार व हस्तकलाओ का स्थान उत्पादन के केन्द्रित उपकरण लेते जा रहे थे। महानगर, नगर, कस्बे तथा मडियाँ इस युग में एक सास्कृतिक व सामाजिक सक्रमण से गुजर रही थी। गांवो की दशा दिन-प्रति-दिन खस्ता होती जा रही थी। तात्पर्य यह कि गावों के पौरुष युग मे भारतीय गांव कायाकल्प के आधारिक दौर की प्रतीक्षा मे था। पारम्परिक शिक्षा की व्यवस्थाएँ मृतप्राय थी, परन्तु पाश्चात्य पद्धति की शिक्षा-व्यवस्था देश में अपनी जडें व्यापक तौर पर नहीं जमा सकी थी। पूर्व या पश्चिम कौनसी शिक्षा विधि उपादेय थी यह तो भविष्य ही बतायेगा और भारतीय इतिहास के निरपेक्ष व्याख्याता भारत में अंग्रेजीराज के समस्त सन्दर्भों का समीचीन पर्यालोचन 'सभवतः सही-सही परिप्रेक्ष्य मे आजाद भारत की पहली शताब्दी तक आंकने मे सफल हो सकेंगे।

बर्तानी राज्य मे भारतीय समाज

भारतीय गांव-समाज, शिक्षा व जीविका के इन अचीन्हे परिवर्तनो से शनैः शनैः इस प्रकार प्रभावित हो रहे थे कि देखने मे तो गाँव व ग्राम-समाज स्वस्थ लगता था, परन्तु भीतर-ही-भीतर उस भीषण घुन खाये जा रहा था। गांव की श्री व समृद्धि उजाड व बियाबान रास्ते पर थी, सामाजिक सुधार के आयोजन समग्रता के परिप्रेक्ष्य मे न होकर वर्ग व जातिगत आधार पर हो रहे थे। गाँव की एकता, बधुता व सद्भाव बर्तानी शासन व देश की कसबाई बिचौलिया राजनीतिक चेतनता के कारण प्रत्यक्षतः दो खेमों म विभक्त हो चुका था। और गांव-गांव तक जहाँ हिन्दू-मुसलमान रहते थे; द्विराष्ट्र का नारा बुलद हो चुका था। हिन्दू भारत को एक राष्ट्र मानकर चलनेवाले राष्ट्रीय नेतृत्व के समर्थक थे और मुख्य अल्प-सख्यक समाज को सामाजिक, सास्कृतिक साझेदारी मे यथोचित हिस्सा देने की तैयारी मे थे, परन्तु

अल्पसंख्यक बुद्धिजीवी समाज कुछेक अपवादों को छोड़कर पृथक् राष्ट्र की कल्पना में तल्लीन था। यह ऐसी घड़ी थी जो देश को साघातिक रोग से पीड़ित करा रही थी। निरक्षरता व भड़कीले धार्मिक नारों से समाज जर्जरित हो चुका था, वास्तव में वह *एसा युग था जब कि संस्कृति के समन्वय व साम्य के स्थान पर विभेद व* भजन की प्रक्रिया जोर पर थी। खंडन की उस विभीषिका में अंग्रेजी शासन की 'फूट डालो व राज करो' की नीति अशिक्षा व अंध-विश्वास के दावानल में घी का काम कर रही थी। पर अभी गाँव पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट नहीं हुए थे। विग्रह का दावानल प्रचार-साधनों के साथ मुख्यतः केवल कसबों तक ही पहुंच पाया था, जहाँ रेल व मोटर-पथ नहीं जा पाये थे वे स्थान विग्रह की प्रक्रिया से मुक्त थे। पारस्परिक मान्यताएँ यद्यपि ध्वसावशेषों के रूप में थीं, परन्तु पूर्णतया लुप्त नहीं हो पायी थी। भारतीय गाँव मुस्लिम राज के पाँच सौ वर्षों में जो हानि न उठा पाया वह सांस्कृतिक हानि बर्तानी राज के केवल प्रारम्भिक एक सौ पचास वर्षों में ही व्यापक पैमाने पर फैलनी शुरू हो गयी। बर्तानी कूटनीति को सही परिप्रेक्ष्य में समझनेवाला भारतीय नेतृत्व केवल गांधी के रूप में ही उदय हुआ था। यह नेतृत्व ग्रामश्री व उसके ह्रास का आभास पा चुका था इसलिए उसकी सर्वाधिक तड़पन ही ग्रामश्री के पुनर्स्थापन की थी।

गाँव का उद्भव मानव-सभ्यता का मूल संगठन

भारत के गाँव प्रागैतिहासिक काल से सामूहिक व नियोजित बस्ती के स्वरूप में मानव-सभ्यता की दूसरी संस्था के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं। परिवार व्यक्तित्व के विकास के लिए वैसे ही उपयोगी है जैसे वनस्पतियों के सुनियोजित विकास में नरसरी। परिवार पारस्परिक सहयोग, आस्था व श्रद्धा पर आधारित संगठन है; वह एक आर्थिक व सामाजिक इकाई है जिसमें समय-परिवर्तन के साथ मौलिक परिवर्तन नहीं के बराबर आये हैं। परिवार में सम्पन्नता-विपन्नता, रोग-शोक, भय-विषाद, आह्लाद-आनन्द का सामूहिक महत्त्व है। भोजन-वसन, निवास, शिक्षा व सामाजिकता के सभी क्षेत्रों में परिवार एक सूत्र में बँधा हुआ मानव-संगठन है। मनुष्य जाति को क्रमबद्ध इतिहास व वंशावली देने में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान इसी संस्था द्वारा *दिया गया है। जहाँ एक ओर यह संगठन क्रमागत परम्पराएँ देता है वहीं एक-* दूसरे के प्रति संवेदना, सौहार्द व मैत्री का अनवरत प्रवाह भी करता है। मानव-एकता की यह प्रारम्भिक इकाई जब कभी कायम हुई होगी, जनसंख्या के क्रमिक विकास के साथ भोजन आदि की खोज ने पारिवारिक संस्था के पूरक के रूप में गाँव को प्रतिष्ठित किया। ग्राम शब्द के तात्पर्य ही समूहवाची है, परिवार के पश्चात् मनुष्य को यदि सर्वाधिक प्रेरणा मिली है तो इस द्वितीय संगठन के माध्यम से ही।

ग्राम वह स्थान है [जिसमे एक से अधिक परिवार आजीविका के यापन के लिए नियमित प्रयास करते हैं। इसलिए यह कहना अनुपयुक्त नही होगा कि मानव-सभ्यता मे सामूहिक जीवन व्यतीत करने और परिवार के अतिरिक्त व्यक्ति को विकास देनेवाला दूसरा आधारिक सगठन गाँव ही है। गाँव ने ही समय के परिवर्तन व सभ्यता के क्रमबद्ध इतिहास के समानान्तर मडी, कस्बा, पुर, नगर महानगर व विश्व नगर का रूप लिया है और मानव की सामूहिक शक्ति ग्राम के अनन्त रूपो मे आज जीवन के विविध क्षेत्रो मे अनुप्राणित है। मूल गाँव आज के युग मे खेतीबाडी, छोटे-मोटे धधो के केन्द्र व सामूहिक चर्चा का स्थान माना जाता है। मानव-सभ्यता के इस मूल सगठन रूपी वट-वृक्ष मे विविध कमियो के कोटर हो गये हैं जो आज उसे जर्जरित करने म मददगार हुए हैं। परन्तु, विश्व के हर कोने म यह सस्था कमोबेश समानताओ के घेरे मे विद्यमान है। युगपुरुष महात्मा की पहली नजर व्यक्तित्व के चारित्रिक रुपुट के उपरान्त इसी प्राचीन मनुष्य-सगठन पर पडी। उन्होंने भारतीय गाँव का तात्त्विक अनुशीलन किया और ग्रामात्मा के लिए चुम्बकीय आकर्षण का निर्माण अपने आध्यात्मिक व नैतिक चरित्र मे किया। विश्व के प्रत्येक समाज-सुधारक ने उपदेशात्मक वृत्त का निरूपण किया, पर महात्मा ने आचरण-प्रधान वृत्त ग्रामात्मा से तादात्म्य बैठाने के लिए किया। उन्होंने अपने आश्रम कुलो की स्थापना ही ग्राम परिपाटी पर की। साबरमती व सेवाग्राम के गाधीजी के आश्रम इसी ग्रामश्री के प्रतीक थे।

ग्रामश्री के लिए महात्मा की योजना बुनियादी शिक्षा

महात्मा ने स्वावलम्बन का जो मानदड कायम किया वह ग्राम जीवन के लिए चतुर्मुखी समृद्धि की दिशा मे बढने का एक प्रेरक केन्द्र था। मनुष्य स्वयं अन्याश्रित प्राणी है। उसकी सामाजिकता ही उसे एक-दूसरे पर अवलंबित होने का मार्ग देती है। महात्मा की व्यक्ति व ग्राम स्वावलम्बन की एक बुनियादी सीढी मात्र था, भारत के दूसरे राजनयिक व अर्धांगी विचारको ने महात्मा प्रणीत स्वावलम्बन को एकागी दृष्टि स देखा। गाँव का स्वावलम्बी होना गाधीजी क जीवन-दर्शन के अनुसार ज्यादा-से-ज्यादा विषयो म ग्राम की आवश्यकताएँ गाँव म ही पूरी हो जान स था। दूसरे शब्दो म यह स्वावलबिता यह भी बोध कराती है कि आवश्यकता स अधिक उत्पादन का निर्यात और कच्चे माल का स्थानीय प्रयोजन हो। इस प्रकार महात्मा गाँव को बुनियादी तालीम, बुनियादी ग्रामीण धधे व कृषि का ऐसा ताल्मेल बैठाना चाहते थ कि गाँवो से व्यापक स्तर का प्रव्रजन न होने पाये और गाँव की शक्ति व सामर्थ्य का प्रयोजन गाँव में ही हो जाया करे। *यह स्वावलंबन खेतीबाडी, पशुपालन, वन-विकास व वनाद्योग, खेती*

के उत्तम-आधारित देहाती उद्योग और घरेलू उद्योगों पर आधार रखते हुए वे खड़ी करना चाहते थे। इस सारे आयोजन की बुनियाद में वे बुनियादी *तालीम को स्थान देते थे। यह बुनियादी तालीम साक्षरता, सामान्य ज्ञान और* आधुनिक विश्व के लिए नागरिक तैयार करने और नागरिक जीवन के शिक्षण के *साथ-साथ आधारिक उद्योग-मूलक थी।* जिन्हें विषय-विशेष का विशेषज्ञ या समीक्षक न बनकर जीवनयापन के योग्य पात्रता प्राप्त करनी और जिनका उद्देश्य जीवन में प्रव्रजित-प्रवासी जीवन व्यतीत करना न होकर जन्म-स्थान या उसके आस पास ही जीविका यापन करना अभीष्ट है, उनके लिए यह आयोजन मददगार था। जहाँ एक ओर राष्ट्रजनों का आव्रजन-प्रव्रजन निश्चित सीमा तक लाभदायक है वहीं केवल प्रव्रजन हानिकर भी। इसलिए महात्मा चाहते थे कि ग्रामश्री के समुचित उत्थान के लिए एकांगी प्रव्रजन अवरुद्ध किया जाय। यदि प्रव्रजन के साथ-साथ आव्रजन भी होता रहे तो राष्ट्र-तुला समन्वित रहती है। समाज में इस समन्वय के आधार बिन्दु की खोज महात्मा ने गाँवों की आधारिक स्वावलंबन में की, और आवाहन किया कि चरखा व घरेलू उद्योगों के माध्यम से गाँव की 'श्री' को गाँव से बाहर जाने के लिए नियमित नियंत्रण में रखा जाय।

साक्षरता

महात्मा की बुनियादी तालीम का दूसरा अहम पहलू आधारिक साक्षरता था। चूंकि देश में शिक्षा के क्षेत्र में मध्य-युग में भयंकर रिक्ति आयी थी, गुरुकुल-श्रेणी के शिक्षा-केन्द्र शनैः शनैः ध्वस्त होते गये थे। उनके स्थान पर एक सीमा तक मुल्ला मौलवियों के मदर्से चलते थे परन्तु वे, मदर्से धार्मिक होने के कारण ग्राम-समाज को समग्रता नहीं दे सके थे उनका स्वरूप एकांगी व भेदपूर्ण था। पारंपरिक *समाज में शिक्षा के गिने-चुने केन्द्र रह गये थे। शासन-सज्जा में निरन्तर बदलाव* होने और शासकों की भाषा में आये दिन होनेवाले परिवर्तनों के कारण देश की पारम्परिक शिक्षा-पद्धति के प्रति अर्थार्जन का सम्बन्ध न रहने से लोग सामान्यतः उस ओर प्रेरित नहीं हो पाते थे। बर्तानी राज द्वारा चालू शिक्षा-योजना आम भारतीय की पहुँच व क्षमता से बाहर थी व उसे इस शिक्षण-विषयक ज्ञान से कोई साधारिक लगाव भी नहीं होने पाया था। ये कारण थे जो देश में व्यापक तौर पर निरक्षरता के हेतु थे। महात्मा की कल्पना की ग्रामश्री का पुनर्स्थापन आधारिक साक्षरता के माध्यम से ही हो सकता था। महात्मा इस साक्षरता के अभियान को लोक-वाणियों के माध्यम से संचालित करने के पक्षधर थे। यही कारण था कि वे ग्रामश्री की परिकल्पना के विकसित रूप में राष्ट्रश्री के विराट् दर्शन करते थे। बिना आधारिक साक्षरता व बुनियादी

तालीम के भारतीय राष्ट्र की कल्पना बिखराव को खुला निमंत्रण देना था। गांव की शिक्षापरक स्वावलबन के दो सूत्र साधारिक साक्षरता व बुनियादी तालीम का प्रणयन वे उद्योग-धधे प्रसूत करते हुए राष्ट्र की मनुष्य-शक्ति को सुविचार व सुतर्क के धायत मे घेरने के समर्थक थे। यही वह हेतु था कि उन्होंने आजादी के सघर्ष-युग मे देश से राष्ट्रीय शालाएँ व राष्ट्रीय-गुरुकुलो की स्थापना का समर्थन व स्थापन मे योगदान किया था। यदि प्रवुद्ध लोकमानस मे यह धारणा हो कि महात्मा की यह कल्पना देश को पीछे ढकेलनेवाली थी तो वह पूर्णत. बेबुनियादी है, क्योंकि विज्ञान व तकनालाजी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धिया को भारत के जन-जन तक पहुँचाने म जो भूमिका साधारिक साक्षरता अदा कर सकती थी और जो परिप्रेक्ष्य उसे बुनियादी तालीम दे सकती थी वह वर्तानी शिक्षा-विधि के दश का नही था, क्योंकि वर्तानी शिक्षा-विधि औपनिवेशिक राजतत्र के पुर्जों का निर्माण करने के लिए स्थापित की गयी थी, न कि ज्ञानवर्द्धक शिक्षण के प्रेरक उद्देश्य से। यद्यपि इस शिक्षण-पद्धति ने भारत को राष्ट्रीय नेतृत्व दिया था परन्तु वह केवल अपवादस्वरूप था। आम तौर पर यह शिक्षा केवल उपनिवेशी कारिन्दो की निर्माणार्थ ही थी।

भारत के लाखो गाँवो को साधारिक साक्षरता, किशोरो के लिए बुनियादी तालीम, दो ऐसे गुर थे जो गाँवो को सापेक्ष स्वावलम्बिता दिलाने मे सामर्थ्य रखते थे। महात्मा का मन्तव्य यह नही था कि वे ग्राम-समाज व ग्रामश्री को निरपेक्ष्य स्वावलम्बन के बाडे मे घेर लें। वे तो चाहते थे कि विश्व का विज्ञानपरक उन्नयन भारत• के गाँवो व उसके वासियो को साधारिक मद्धिम तकनालाजी के द्वारा पहुँचे। मशीन व टूल अभियन्ता ऐसे छोटे छोटे औजारो का अन्वेषण करें, विशिष्ट वैज्ञानिक उपलब्धियो का सरल व सुभाष्य स्वरूप लोक-वाणियो के माध्यम से ग्रामश्री को विकरित करने मे योगदान देवे। बुनियादी तालीम की व्याख्या तो समय समय पर की गयी है, परन्तु उसके सापक्ष्य-स्वरूप साधारिक साक्षरता के सवाल पर यह प्रश्न हो सकता है कि यह कौनसा ज्ञान था। इस पर तो इतना ही कहना समीचीन होगा कि देश के प्रौढ अशिक्षित या अद्धशिक्षित को साक्षरता व नया ज्ञान देने की दिशा का सतुलित सास्कृतिक शिक्षण ही साधारिक साक्षरता है। महात्मा इसी सतुलन से ग्रामश्री की श्रीवृद्धि का स्वप्न देखते थ और ग्रामश्री से राष्ट्रश्री ही उनके स्वप्नो का विशाल भारत था।•

शिक्षा की प्रगति का सामान्य पर्यवेक्षण

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे उत्तरप्रदेश की शिक्षा के विकास का महत्त्वपूर्ण अध्याय प्रारम्भ हुआ है। इसमे अध्यापको तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियो के वेतनमान तथा महँगाई की दरो का पुनरीक्षण किया गया है। अपनी योग्यता बढ़ाने के लिए अध्यापको को पुरस्कार तथा विविध प्रकार के प्रोत्साहन की व्यवस्था की गयी है। *प्रारम्भिक शिक्षा के लिए शिक्षा पर कुल व्यय का ६६ प्रतिशत निर्धारित* किया गया है। इस प्रकार भारतीय सविधान मे घोषित अनिवार्य और नि शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा के लक्ष्य हेतु इस योजना मे प्रभावकारी पग उठाये गये हैं। विगत तीन योजनाओ मे बालिका-शिक्षा की प्रगति म कतिपय कठिनाइयों का अनुभव किया गया था। इस योजना मे बालिका शिक्षा की बाधाओ के निवारण-हेतु पर्याप्त प्राविधान किये गये हैं। विश्वविद्यालयो के लिए हिन्दी मे पुस्तको की रचना के निमित्त स्वायत्त निगम स्थापित किया गया है। इतना ही नहीं समाज के पिछड़े वर्ग को शिक्षा का समान अवसर देने के लिए छात्रवृत्ति-हेतु विपुल धनराशि भी निर्धारित की गयी है। इस प्रकार शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र - प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालीय शिक्षा—मे चतुर्थ योजना मे प्रदेश की शिक्षा म नवीन युग का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

प्राथमिक स्तर

स्वतत्रता के उपरान्त इस प्रदेश मे प्राथमिक शिक्षा की पिछडी दशा को दूर करने तथा उसमे गुणात्मक सुधार-हेतु विशेष और अभूतपूर्व प्रयास आरम्भ किये गये। *सविधान म से १४ वर्ष की वय तक नि शुल्क सार्वभौम शिक्षा का उद्देश्य* सामने रखा गया है। इस दिशा म पचवर्षीय योजनाओ मे बडे पैमाने पर स्कूल खोलने की योजनाएँ ली गयी। शिक्षा के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए तृतीय पचवर्षीय योजना मे बालिकाओ को शिक्षा के लिए विशेष प्रयत्न किय गये हैं।

वर्ष १९६८ ६९ के अन्त मे कुल ६१,०६५ जूनियर बेसिक स्कूल थे, जिनम बालकों के ४९,९७८ तथा बालिकाओ के ११,११७ विद्यालय थे। तृतीय योजना-काल मे कुल १८,७३० जूनियर बेसिक स्कूल खोले गये हैं। वर्ष १९६६-६७ स वर्ष १९६८ ६९ तक तीन वार्षिक योजना-काल म २९४ स्कूल खोले गय। स्थानीय निकायो के प्रारम्भिक विद्यालयो के वेतनमान एव महँगाई भत्ते की दरो म तदर्थ वृद्धि की गयी है। अपनी योग्यता बढ़ाने पर अध्यापकों को पुरस्कार देने की योजना

अपनायी गयी है। स्थानीय निकायो मे उन प्राथमिक विद्यालयो मे जहाँ उर्दू पढनेवाले छात्रो की सख्या अधिक है, उर्दू अध्यापको को व्यवस्था-हेतु अनुदान स्वीकृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार के लिए भी विशेष उपाय किये गय हैं। घर से दूर ग्रामीण क्षेत्रो मे नियुक्त अध्यापिकाओ को ग्रामीण भत्ता दिया जाता है। ग्रामणी क्षत्रो म अध्यापिकाओ के लिए आवास-गृह तथा विद्यालयो मे शौचालय बनवाये गय हैं।

वर्ष १९६६ ६७ मे राजकीय शिक्षा सस्थान मे एक ऐसे केन्द्र की स्थापना की गयी, जो प्राथमिक स्कूलो के सेवारत अप्रशिक्षित अध्यापको को पत्र-व्यवहार पद्धति द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है। वप १९६६ ६७ से एच० टी० सी० के पाठ्यक्रम में आमूल परिवर्तन करके एच० टी० सी० तथा जे० टी० सी० कोर्स के स्थान पर एक नवीन एक वर्षीय बी० टी० सी० कोर्स आरम्भ किया गया है, जिसमे प्रवेश के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता हाईस्कूल उत्तीर्ण निश्चित की गयी है। किन्तु अब महिला छात्राध्यापिकाओ तथा स्थानीय निकायो मे सेवारत अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए प्रवेश की न्यूनतम योग्यता जूनियर हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर दी गयी है और बी० टी० सी० का पाठ्यक्रम ऐसी छात्राध्यापिकाओ/छात्राध्यापको के लिए दो वर्ष का कर दिया गया है। प्राथमिक शिक्षा के बजट मे निरन्तर वृद्धि भी प्राथमिक शिक्षा के विकास का परिचायक है। वर्ष १९४६ ४७ म प्राथमिक शिक्षा का कुल बजट १२१ लाख रुपये था। १९५५ ५६ मे ४२५ लाख हो गया। वर्ष १९६९-७० मे प्राथमिक शिक्षा का बजट बढकर ३९ करोड ३ लाख हो गया है।

पूर्व माध्यमिक शिक्षा

वप १९६८ ६९ के अन्त तक प्रदेश म सीनियर बेसिक स्कूलो की सख्या ७ ३७८ थी। इनमे से ५ ९०१ बालको के और १,४७७ बालिकाओ के सीनियर बेसिक स्कूल हैं। इनके अतिरिक्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के साथ भी पूर्व माध्यमिक कक्षाएँ सम्बद्ध हैं। इस स्तर पर गैर-सरकारी स्कूलो को अनुदान देने की नीति पर बल दिया जा रहा है। तृतीय योजना-काल मे ८०० सीनियर बसिक स्कूलो को विज्ञान शिक्षण की सुविधा दी गयी। वर्ष १९६६ ६७ से १९६८ ६९ तक तीन वार्षिक योजना-काल मे ४०७ स्कूलो को विज्ञान-शिक्षण की सुविधा दी गयी।

स्कूलों को पुस्तकालय, फर्नीचर और भवन का अनुदान देकर सुदृढ किया जा रहा है। पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रो म छात्रावास तथा अध्यापिकाओ के क्वार्टर बनवाये जा रहे हैं। छात्राओ की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए पुस्तक, लेसन-

सामग्री तथा पारितोषिक दिये जाते हैं। जहाँ बालिकाओं के जूनियर हाईस्कूल खोलना सम्भव न हो सका है वहाँ कन्टीन्युएशन कक्षाएं खोली जा रही हैं।

सीनियर बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम को सुधारकर यह व्यवस्था की गयी कि उनमें कृषि या शिल्प की अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाय। कृषि के लिए स्कूलों के साथ १० एकड़ भूमि के होने का विधान था और इसके लिए २१ हजार एकड़ से अधिक भूमि प्राप्त की गयी। परन्तु इसमें से काफी भूमि उपजाऊ न थी। १५ हजार एकड़ भूमि को ही कृषियोग्य बनाया जा सका और उसमें कृषि की जा रही है। वर्ष १९६९-७० में छात्रों द्वारा की गयी कृषि की उपज का अनुमानित मूल्य लगभग ३१ लाख रुपये था। पुनर्व्यवस्था-योजना के अन्तर्गत शिल्प की शिक्षा दी जा रही है। कताई, बुनाई, काष्ठ-कला, धातु-कला, चर्म-कला, सिलाई, गृहशिल्प (बालिकाओं के लिए) का विधान है। पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक स्कूलों को सामुदायिक केन्द्र बनाया जा रहा है। इन विद्यालयों से संलग्न २१०० युवक मंगल दलों का भी संचालन किया जा रहा है।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा को सुसंगठित करने और शिक्षा के स्तर को उन्नत बनाने की नीति अपनायी गयी। १९६८-६९ के अन्त तक प्रदेश में २,९६३ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय थे जिनमें से २,४३९ बालकों के और ५२४ बालिकाओं के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय संचालित रहे। १९६९-७० में इनकी संख्या बढ़ी है।

इस प्रदेश में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर जनता का सहयोग बहुत अधिक रहा है। शासन ने यह नीति अपनायी है कि गैर सरकारी स्कूलों को विविध प्रकार के अनुदान देकर उनकी शैक्षिक स्थिति को सुदृढ़ किया जाय। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ३१० गैर सरकारी स्कूल और तृतीय योजना में ६३७ गैर-सरकारी स्कूल अनुदान सूची पर लाये गये हैं। वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक तीन वार्षिक योजना काल में ३३३ स्कूल अनुदान-सूची पर लाये गये हैं। प्रशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के वेतनमानों और महँगाई-भत्ते की दरों में वृद्धि की गयी है। निर्धन छात्रों को पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध होती रहें इस दृष्टि से उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकालयों की स्थापना की जा रही है। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्रोत्साहन तथा विकास हेतु विभिन्न प्रकार के आवर्तक एवं अनावर्तक अनुदान स्वीकृत किये गये हैं।

स्नातकोत्तर विज्ञान अध्यापकों के अभाव में अनेक सहायता-प्राप्त स्कूलों में

इन्टर कक्षाओं में ग्रेजुएट अध्यापक शिक्षण-कार्य के लिए नियुक्त किये गये थे। उनको उचित शास्त्रीय योग्यता प्रदान करने के लिए एक ९ माह का पोस्ट ग्रेजुएट कन्डेंस्ट डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ किया गया। तृतीय योजना-काल के अन्त तक भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव-विज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञान विषयों के कोर्स की १२ इकाइयाँ स्थापित की गयी, जिनमें से प्रत्येक में ३० अभ्यर्थियों के प्रवेश की सुविधाएँ उपलब्ध है। इस आयोजना से अध्यापकों का इन्टर कक्षा पढन के लिए उचित शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव मे अनेक सहायता प्राप्त हाईस्कूलों में अप्रशिक्षित ग्रेजुएट अध्यापक विज्ञान का विषय पढ़ा रहे थे। इन अध्यापकों को प्रशिक्षित करना जरूरी था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लखनऊ मे एक-वर्षीय प्रशिक्षण कोर्स प्रारम्भ किया गया। विज्ञान के प्रशिक्षित अध्यापकों को नवीनतम शिक्षण-विधियों का परिचय कराने के लिए ६ सप्ताह का एक पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण कोर्स सचालित है। विज्ञान के अध्यापकों को शैक्षिक व्यवसाय की ओर आकृष्ट करने तथा उनको उसमे बनाये रखने के लिए सहायता-प्राप्त स्कूलों मे ८ अग्रिम वेतन-वृद्धि भी देने की स्वीकृति दे दी गयी है। साहयता-प्राप्त स्कूलो मे विज्ञान-अध्यापकों के अवकाश-प्राप्त करने के वय को बढ़ा दिया गया है और इन स्कूलो मे अवकाश-प्राप्त विज्ञान-शिक्षकों की पुनर्नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। सेवापूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करनेवाले विज्ञान स्नातकों के लिए राजकीय और गैर सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों में निर्धारित सख्या म शुल्क से मुक्ति की स्वीकृति भी दी गयी है।

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा को सुदृढ और सगठित करने तथा विज्ञान-शिक्षण को समुन्नत करने की नीति अपनायी गयी है। प्रदेश मे इस समय ११ विश्वविद्यालय और २१६ डिग्री कालेज हैं। स्तर को उन्नत करने के लिए डिग्री कालेजो और विश्वविद्यालयों को अनुदान दिया गया। तृतीय योजना के अन्त तक ६१ ऐसे डिग्री कालेजों को अनुदान सूची पर लाया जा चुका है। वर्ष १९६६-६७ से १९६८ ६९ तक तीन वार्षिक योजना-काल मे इस तरह के २३ डिग्री कालेजों को अनुदान-सूची पर लाया गया है तथा इस वर्ष १० और डिग्री कालेजो को अनुदान सूची पर लाने हेतु व्यवस्था की गयी।

संस्कृत शिक्षा

सस्कृत की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए वाराणसेय सस्कृत विश्व-

विद्यालय वाराणसी से सम्बद्ध पाठशालाओं को विशेष अनुदान दिया गया। इनके अध्यापकों के लिए विशेष वेतन क्रम लागू किये गये।

सैनिक शिक्षा तथा अनुशासन-सम्बन्धी आयोजन

संकटकालीन स्थिति के दृष्टिकोण से शिक्षा में विविध आयोजन किये गये। प्रदेशीय शिक्षा-दल तथा भारत स्काउट्स और गाइड्स का विस्तार किया गया। सभी पूर्व स्नातक (अन्डर-ग्रेजुएट) पुरुष परीक्षार्थियों के लिए एन० सी० सी० निदेशालय की ओर से इमरजेंसी कमीशन खोले गये जो कार्यरत हैं, इस योजना के अन्तर्गत ८७४ राष्ट्रीय अनुशासन के दीक्षक उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में नियुक्त किये गये हैं तथा १,०६१ शारीरिक व्यायाम शिक्षक तीन माह का पुनर्व्यवस्था-प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। स्कूलों में चारित्रिक संगठन, विभाग शिक्षण, तथ्यात्मक ज्ञान का प्रचार और रचनात्मक कार्य को प्रोत्साहन दिया गया है। स्काउटिंग के कार्यक्रमों को विशद बनाया गया है। उसमें फर्स्ट एड, ट्रैफिक मैन, एम्बुलेन्स मैन, मास्टर एट आर्म्स, आग बुझाने की कला, सन्देश-वाहक, यातायात-नियन्त्रण का कार्य, पुल तथा मकान का निर्माण, हवाई हमले से बचाव, तैराकी तथा नागरिक सुरक्षा-सम्बन्धी अन्य दक्षता कार्यक्रम जारी किये गये हैं।

विविध

छात्रों के लिए विविध स्तरों पर छात्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय ऋण छात्रवृत्तियाँ पुस्तक सहायता, अध्यापकों के लिए लाभत्रयी योजना, राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता के लिए दक्षिणी भाषाओं के शिक्षण की योजना, श्रव्य-दृश्य शिक्षा, पुस्तकालय सेवा का सुधार और प्रसार आदि अनेक आयोजनों को संचालित किया जा रहा है। शासन द्वारा अनुदान देने के लिए विकेन्द्रीकरण की नीति स्वीकृत की गयी है, जिसके अनुसार ५,००० रु० से कम के अनुदान एवं कुछ विशिष्ट अनुदानों की स्वीकृति अब मंडलीय उप शिक्षा निदेशक द्वारा दी जाती है। अध्यापकों को पुरस्कृत करने के लिए केन्द्रीय शासन की राष्ट्रीय पुरस्कार योजना के आधार पर प्रदेशीय सरकार द्वारा भी पुरस्कार योजना प्रारम्भ की गयी है। आशा है कि इन उपायों से प्रदेश में शिक्षा का संतुलित और द्रुत विकास हो सकेगा।•

आचार्यकुल परिगोष्ठी

१० जून को प्रात ८ बजे डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलो—आजमगढ, बलिया, देवरिया, गोरखपुर और वाराणसी नगर के आचायकुल के सयोजको एव सदस्यो की परिगोष्ठी का साधना केन्द्र, राजघाट, वाराणसी मे उद्घाटन किया। सभा की अध्यक्षता श्री केशवचन्द्र मिश्र, प्राचार्य मदनमोहन मालवीय डिग्री कालेज और सयोजक आचार्यकुल देवरिया ने की। सर्वप्रथम केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव ने देश के आचार्यकुल की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बताया कि देश के पाँच प्रदेशो मे बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश महाराष्ट्र और राजस्थान मे आचार्यकुल का काम हो रहा है और प्रगति सतोषजनक है। सबसे प्रेरणादायक समाचार यह है कि आगरा विश्वविद्यालय से सलग्न सभी डिग्री कालेजों के प्रिंसिपलो ने यह प्रस्ताव किया है कि वे अगले सत्र से अपनी सस्थाओ मे आचार्यकुल की स्थापना करेंगे। उन्होने कहा कि गोरखपुर मण्डल के चारो जिलो, देवरिया, बस्ती, गोरखपुर और आजमगढ मे जिला स्तर पर आचार्यकुल की स्थापना हुई है और वहाँ की कई शिक्षण-सस्थाओ म आचार्यकुल बने हैं। फैजाबाद, बलिया, फर्रुखाबाद और गाजीपुर मे भी आचार्यकुल स्थापित हुए हैं। इन जिलो के आचार्यकुल क्या कार्यक्रम उठावें इस विषय पर विचार करने के लिए यह परिगोष्ठी बुलायी गयी थी।

आचार्यकुल की इस परिगोष्ठी मे उत्तरप्रदेश के पूर्वी अंचल के (गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ और बलिया) जिलो के लगभग २५ सदस्यो को बुलाया गया था, जिनमे २२ सदस्य आये थे।

अपने भाषण का शुभारम्भ करते हुए आचार्य हजारी प्रसादजी द्विवेदी ने कहा कि इस समय शिक्षा की परिस्थिति अत्यन्त विषम है। इस विषम परिस्थिति मे से मार्ग निकालने का उपाय ही आचार्यकुल है। आज की शिक्षा-व्यवस्था के केन्द्र म गुरु नहीं है आचार्य नही है, कानून है। छात्रो के प्रवेश के लिए, अध्यापक की नियुक्ति के लिए परीक्षा और परीक्षक के लिए, सारी व्यवस्था के लिए, कानून बने हैं। इस शिक्षा-व्यवस्था को आप 'कानूनकुल' कह सकते हैं। यह सारी व्यवस्था अविश्वास पर आधारित है। आचार्य अपने आचरण से इस अविश्वास के वातावरण को दूर करके विश्वास का वातावरण उत्पन्न करें, तो आचार्यकुल सफल

हुआ, ऐसा मानना चाहिए। किसी काम की प्रगति के लिए संगठन आवश्यक है। परन्तु आचार्यकुल में संगठन से अधिक महत्व आचार्य के चरित्र का है।

उन्होंने कहा कि आज शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है कि वह जड़ यंत्र बनती जा रही है। छः वर्ष की अवस्था में विद्यार्थी इस कोल्हू में डाला जाता है और २५ वर्ष की अवस्था में निकलता है, तो केवल खली बच जाती है, स्नेह-रहित खली। यही कारण है कि विश्वविद्यालय से निकले हुए छात्र में नयी बात सोचने की शक्ति और रचनात्मक प्रतिभा (क्रिएटिव जीनियस) नहीं रह जाती। भले ही वह आलोचक बन जाय।

विश्वविद्यालयों में अच्छे विद्यार्थियों का ही प्रवेश हो पाता है। १९२२ ई० में ५२ में से १ छात्र विश्वविद्यालय में पहुँचता था—अब ३२ में से १ पहुँचता है। अत्यन्त सावधानी से पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। चोटी के विद्वान इस काम को करते हैं। अध्यापकों का चयन भी ठोक बजाकर किया जाता है। परीक्षक भी उच्चकोटि के विद्वान् होते हैं। फिर भी प्रत्येक कान्वोकेशन में कहा जाता है कि शिक्षा का स्तर गिर रहा है। शिक्षा पद्धति त्रुटिपूर्ण है। बात यह है कि यह शिक्षा वातावरण से विच्छिन्न है और इसमें प्राण-शक्ति का अभाव है और छात्र का स्वच्छन्द विकास इसमें नहीं हो पाता। स्वच्छन्द विकास के लिए आकाशधर्मा गुरु चाहिए। आकाश की छाया में पीपल और दूब दोनों अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार विकसित होते हैं। आचार्यकुल में ऐसे आकाशधर्मा गुरु होंगे, तो आचार्यकुल सफल होगा। मेरा विश्वास है कि आचार्यकुल की इस सकल्पना में बाबा ने इस आकाशधर्मा गुरु की कामना की है। आचार्यकुल अभी शैशवावस्था में है। अभी मूर्ति बनी है, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करनी है। इस परिगोष्ठी के विचार-मंथन से यह प्राण-प्रतिष्ठा होगी, इस आशा के साथ मैं गोष्ठी का उद्घाटन करता हूँ।

पहली बैठक—आचार्यकुल का संगठन

परिगोष्ठी की इस बैठक में संगठन के मुद्दे पर विचार हुआ। गोष्ठी की अध्यक्षता आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, प्रधानाचार्य, मदन मोहन मालवीय डिग्री कालेज, भाटपार रानी एवं संयोजक आचार्यकुल, देवरिया ने की। केन्द्रीय आचार्यकुल के सदस्य श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने परिगोष्ठी में भाग लेनेवाले सदस्यों का स्वागत करते हुए आचार्यकुल के संगठन का विषय प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि अभी संगठन की दृष्टि से आचार्यकुल शैशवावस्था में है। संस्था की सदस्यता के विषय में तो यह निश्चय हो चुका है कि प्रारम्भिक विद्यालयों से विश्वविद्यालय स्तर के सभी आचार्यों के अलावा साहित्यिक, चिंतक, समाज-

सेवक, पत्रकार आदि सभी आचार्यकुल के सदस्य बन सकते हैं। परन्तु संस्थागत जनपदीय, प्रादेशिक और केन्द्रीय आचार्यकुल का परस्पर क्या सम्बन्ध रहे, इस पर इस गोष्ठी मे विचार किया जाय। वैचारिक दृष्टि से आचार्यकुल इस समय सर्व सेवा सघ की एक प्रवृत्ति है, जैसे नयी तालीम है, क्योकि सर्वोदय-समाज की स्थापना के लिए, जो सर्व सेवा संघ का प्रमुख लक्ष्य है, संघ मे जो अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उन्ही मे आचार्यकुल की प्रवृत्ति भी एक है और उसकी आर्थिक सहायता से आचार्यकुल का सयोजन और विचार-प्रचार सम्बन्धी काम हो रहा है। गत माच मे पूना की प्रबन्ध समिति की बैठक मे इस काम के लिए एक छोटा-सा बजट भी स्वीकार किया गया है। यह उसकी सक्रमण-कालीन भूमिका है। परन्तु सगठन की दृष्टि से सर्व सेवा सघ का आचार्यकुल से क्या सम्बन्ध रहे, इस बात पर भी विचार करना बाकी है। सदस्यता-शुल्क के विषय म भी निश्चय करना है। लोग आसानी से विनोबाजी द्वारा निर्णीत एक प्रतिशत अथवा आधा प्रतिशत भी देने को तैयार नही हैं। फिर इस सदस्यता-शुल्क का विनियोग कैसे हो—यह भी विचारणीय है। संस्थागत, जनपदीय, प्रादेशिक और केन्द्रीय सगठनो का कार्यक्रम भी निश्चित करना है।

सर्व सेवा सघ का आचार्यकुल से सम्बन्ध

परिगोष्ठी मे चर्चा करते हुए भागलपुर विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के आचार्य डा० रामजी सिंह ने कहा कि आचार्यकुल का जन्म न तो सर्व सेवा सघ की कोख से हुआ है और न वह किसी दूसरे सघ अथवा सगठन से जन्मा है। वह तो एक स्वय-भू सस्था है और उसका निर्णय अपना और कार्यान्वयन अपना होना चाहिए। आचार्यकुल के नाम म बहुत जटिल सगठन बनाने की आवश्यकता नही है। क्योकि सगठन मे हिंसा है। आचार्यकुल तो एक परिवार है, जहाँ प्रेम ही सर्वोपरि होना चाहिए। प्रेम-पूर्वक अध्ययन-अध्यापन आचार्य का स्वधर्म है। परन्तु शिक्षा का सर्वोत्तम तत्त्व भी नष्ट हो जायगा यदि समाज उसे ग्रहण नही करे, अत आचार्यकुल को शिक्षण के सामाजिक पहलू को नही भूलना है और अगर ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य के आन्दोलन म क्रान्ति के तत्त्व हैं, तो उनके प्रचार और प्रसार मे आचार्यकुल को सहयोग करना चाहिए। बाबा की अपेक्षा भी आचार्यकुल से लोकनीति के निर्देशन की है।

आचार्यकुल और दूसरे शिक्षक सगठन

व्रजबिहारी राय ने कहा कि आचार्यकुल के सगठन के मार्ग मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि इसे लोग प्रारम्भिक अथवा माध्यमिक शिक्षक सघ की विरोधी प्रवृत्ति मानते हैं। श्री बशीधरजी ने कहा कि आचार्यकुल का मच भले ही दूसरा

हो – जिस मच पर अधिकार को नही, कर्त्तव्य की प्रमुखता है और जिसका लक्ष्य करुणा-मूलक सेवा है—परन्तु वह किसी दूसरे सगठन का विरोधी नहीं है। पथिकजी ने कहा—विरोधी नही, पूरक है।

चर्चा के बाद यह निश्चय हुआ कि आचार्यकुल शिक्षक सघों का अविरोधी और हितो का पूरक सगठन है और एक व्यक्ति दोनो सगठनो का सदस्य हो सकता है।

इसके बाद प्रश्न उठा कि अगर एक व्यक्ति माध्यमिक शिक्षक सघ और आचार्यकुल दोनों का सदस्य है और शिक्षक सघ किसी कारण हडताल करने का निश्चय करता है तो व्यक्ति का क्या कर्त्तव्य होगा ? वंशीधरजी ने कहा कि यह आव-श्यक नही है कि आचार्यकुल हडताल का विरोध ही करे, यदि हडताल न्यायपूर्ण माँगो के लिए और मार्ग अहिंसा का है तो आचार्यकुल की हडताल से सहमति हो सकती है, परन्तु अगर विरोध है और आचार्यकुल हडताल मे भाग न लेने का निर्णय देता है, तो सदस्य को या तो आचार्यकुल की बात माननी चाहिए या सदस्यता छोड देनी चाहिए।

इस पर प्रश्न यह उठा कि यह निर्णय कौन लेगा। अवसर सस्थागत आचार्य-कुल का निर्णय दूषित भी हो सकता है।

निश्चय किया गया कि चूंकि इस प्रकार की हडताल आदि का सम्बन्ध पूरे जनपद अथवा प्रदेश के शिक्षकों से होता है, अत भाग लेने न लेने का निर्णय जनपदीय अथवा प्रादेशिक आचार्यकुल पर छोडा जाय।

इकाई की स्थापना

श्री ब्रजबिहारी राय ने प्रश्न किया कि किसी सस्था मे कितनी सख्या होने पर आचार्यकुल की इकाई स्थापित की जाय ? उनकी राय थी कि कम-से-कम ७५ प्रतिशत शिक्षक जब सदस्य बन जायँ तो आचार्यकुल की इकाई स्थापित की जाय। पथिकजी ने कहा कि सख्या पर जोर नही देना चाहिए। चन्द्रप्रकाशजी ने कहा कि सख्या बहुत कम भी नही होनी चाहिए। वंशीधरजी ने कहा—सस्था मे निष्ठावान कार्यशील सदस्य दो भी हो तो आचार्यकुल बनना चाहिए।

निश्चय हुआ कि इकाई की स्थापना मे सख्या पर जोर नहीं देना चाहिए।

सदस्यता को लेकर प्रश्न किया गया है कि अगर साहित्यिक, चिन्तक, पत्रकार *या समाजसेवक आचार्यकुल का सदस्य होता है तो वह किस इकाई मे शामिल होगा।* **निश्चय हुआ कि जिस स्तर का व्यक्ति है, उस स्तर की इकाई का सदस्य हो सकता है। गाँव का लोक-सेवक गाँव के किसी आचार्यकुल का सदस्य**

और जनपदीय, प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय स्तर का लोकसेवक और चिन्तक इन स्तरों के आचार्यकुलों का सदस्य होगा।

संस्थागत, जनपदीय, प्रादेशिक और केन्द्रीय आचार्यकुल का परस्पर-सम्बन्ध

इसके बाद संस्थागत, जनपदीय, प्रादेशिक और केन्द्रीय आचार्यकुल का परस्पर सम्बन्ध क्या हो, इस बात पर चर्चा हुई। चर्चा के बाद यह निश्चय हुआ कि प्राइमरी, जूनियर हाई स्कूल, इंटर कालेज और डिग्री कालेज में प्रत्येक में अपनी-अपनी अलग इकाई होगी। प्रारम्भिक इकाई का क्षेत्र ब्लाक होगा और प्रत्येक ब्लाक से जनपद आचार्यकुल में दो प्रतिनिधि आयेंगे। ब्लाक के इन्हीं प्रतिनिधियों से जनपद का आचार्यकुल बनेगा। इस प्रकार के प्रतिनिधियों का आचार्यकुल जिले के अध्यक्ष एवं संयोजक और अधिक से अधिक ११ सदस्यों की कार्यकारिणी सर्व-सम्मति से निर्वाचित करेगा। प्रत्येक जिले के अध्यक्ष एवं संयोजक अथवा कार्य-कारिणी का एक सदस्य प्रादेशिक आचार्यकुल का निर्माण करेगा। प्रादेशिक आचार्यकुल की कार्यकारिणी समिति अध्यक्ष और संयोजक के अतिरिक्त अधिक-से-अधिक २१ सदस्यों की होगी। इस प्रादेशिक संगठन के अध्यक्ष और संयोजक अथवा कार्यकारिणी का कोई एक सदस्य मिलकर केन्द्रीय आचार्यकुल समिति बनायेंगे। प्रत्येक स्तर की कार्यकारिणी को अपनी संख्या का एक चौथाई सदस्य मनोनीत करने का अधिकार रहेगा। विशेष आमंत्रित व्यक्ति भी शामिल किये जा सकते हैं।

आचार्यकुल के सदस्यता-शुल्क और उसके विनियोग पर चर्चा होकर यह निश्चय हुआ कि डिग्री कालेज के सदस्यों को कम-से कम १ रु० प्रति मास और प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्तर के सदस्य कम-से-कम १ पैसा प्रति दिन सदस्यता-शुल्क के रूप में दें। इस प्रकार संस्थाओं से जो शुल्क एकत्र हो, उसका ५ प्रतिशत केन्द्रीय आचार्य-कुल के लिए, ५ प्रतिशत प्रादेशिक आचार्यकुल के लिए और १० प्रतिशत जिला आचार्यकुल के लिए भेजा जाय और शेष ८० प्रतिशत संस्थागत आचार्यकुल के लिए रखा जाय। इसका ५० प्रतिशत आचार्यकुल विचार-प्रचार और संगठनात्मक कार्यों में लगाया जाय अथवा उत्पादक उद्योग में और जहाँ इसकी सुविधा न हो, वहाँ सर्वोदय-साहित्य के प्रचार में। पथिकजी ने यह भी सुझाव दिया कि जिन आचार्यकुलों में उद्योग प्रारम्भ हो, वहाँ बैंकों और स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज से सम्पर्क स्थापित करके आर्थिक सहायता ली जाय। यह भी सुझाया गया कि इस धन का विनियोग सहज प्राकृतिक चिकित्सा आदि में भी किया जा सकता है।

आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना की अन्योन्याश्रयिता

दूसरे दिन की चर्चा के विषय थे—आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना की अन्योन्याश्रयिता और लोकतात्रिक मूल्यो की रक्षा के लिए आचार्यकुल का कार्यक्रम। दोनो विषयो की प्रस्थापना थी नारायण देसाई ने की। पहले विषय की स्थापना करते हुए उन्होने कहा—"यह युग क्रान्तिकारी युग है। पिछले २००० वर्षों मे जितनी क्रान्ति नही हुई थी, उतनी पिछले २०० वर्षों मे हुई और उससे भी अधिक २० वर्षो मे हुई है। विज्ञान व यात्रिकी की प्रगति ने समाज का ढाँचा ही बदल दिया है और समाज के मूल्य अत्यन्त त्वरित गति से बदल रहे हैं। उत्पादन के साधन अब त्वरित गति से बदलते हैं तो समाज परिवर्तन की प्रक्रिया भी त्वरित होती है। पहले राजा ही क्रान्ति का अग्रदूत होता था। रूस व फ्रेंच-क्रान्ति से यह विश्वास हुआ कि जनता भी क्रान्ति कर सकती है। सर्वहारा का प्रतिनिधि मजदूर क्रान्ति का अग्रदूत बना। चीन की क्रान्ति से बहुत पहले एशियाई समाजवादियों के सम्मेलन मे श्री जयप्रकाशजी ने कहा था कि क्रान्ति का अगुवा किसान होगा। चीन की क्रान्ति मे यह कदम उठा। विश्वास उत्पन्न हुआ कि मजदूर ही नहीं, किसान भी क्रान्ति कर सकता है।

पर आज के इस अणुयुग मे क्रान्ति के अग्रदूत युवान् और विद्वान होंगे। तरुण शान्तिसेना युवान् का और आचार्यकुल विद्वान का प्रतिनिधि है। युगोस्लाविया मे क्रान्ति लानेवाले विद्वान चिन्तक थे। हाल मे फ्रास की जिस क्रान्ति ने दगाल का आसन हिला दिया, उसके नेता युवा-छात्र थे।

आचार्यकुल की योजना इसलिए नहीं है कि छात्रो के उपद्रव से बचा जाय। यदि यही योजना है तो हम आचार्यकुल को छोड देना चाहिए। एक नये समाज के निर्माण मे इन दोनो अग्रदूतो का क्या सहयोग होगा, यह सोचना है। 'ला एण्ड आर्डर' की दृष्टि से इसे नही सोचना चाहिए।

सक्रिय आचार्यकुल की पहचान

दोनों मे वर्ग विग्रह नही है। दोनो वर्ग क्रान्तिकारी हैं। दोनो को साथ मिलकर समाज बदलनेवालो का समान मच बनाना चाहिए। आचार्यकुल का लक्ष्य तरुण-विक्षोभ को रचनात्मक मोड देना है। राष्ट्रीय एकता, सर्वधर्म समभाव, लोकतात्रिक पद्धति के लिए आदर, रचनात्मक राष्ट्रीय कार्य और विश्व शान्ति तरुण शान्तिसेना के लक्ष्य हैं। इन लक्ष्यो की प्राप्ति मे आचार्यकुल तरुणो की सहायता करेगा तो एक समानधर्मी मच बनेगा और आचार्य छात्र विग्रह भी समाप्त होगा। अत. सक्रिय आचार्यकुल का लक्षण यह होना चाहिए कि जहाँ आचार्यकुल हो, वहाँ तरुण शान्तिसेना भी हो।"

चर्चा मे भाग लेते हुए गोरखपुर डी० ए० वी० कालेज के प्रवक्ता श्री चन्द्रप्रकाशजी ने कहा —' एन० सी० सी० अनिवार्य है ! सरकार इसके लिए पैसा देती है फिर भी छात्र कार्यक्रम मे रुचि नही लेते। शान्तिसेना के प्रति उनका क्या आकर्षण होगा ?' श्री नारायण देसाई ने कहा —"शान्तिसेना को आवश्यक बनाना है तो इसे अनिवार्य न बनाया जाय। सरकारी सुविधाओ से योजनाओ का आकर्षण समाप्त हो जाता है। मैं न तो योजना को अनिवार्य बनाने के पक्ष मे ही हूँ और न सरकारी आर्थिक सहायता के पक्ष मे ही हूँ"। इस पर कहा गया कि ऐसी सूचना है कि यह प्रयास हो रहा है कि जहा तरुण शान्तिसेना बने, वहाँ २० रु० प्रति छात्र सरकारी सहायता मिले।" यह निश्चय हुआ कि—अगर ऐसी सहायता मिलती है तो उसका प्रयोग व्यक्तिगत सुविधा के स्थान पर कार्यक्रम के सचालन और व्यवस्था पर किया जाय जिससे छात्र व्यक्तिगत प्रलोभन से बचे।

शान्तिसेना मे शामिल होनेवालो को प्रमाण-पत्र दिया जाय या नही—इस पर भी चर्चा हुई और यह निश्चय हुआ कि अभी इस मुद्दा पर कोई निर्णय न लिया जाय।

श्री वशीधरजी ने कहा कि माध्यमिक शिक्षक सस्थाओ मे विभिन्न राजनैतिक दलो से सम्बद्ध, विद्यार्थी परिषद जो जनसघ की विद्यार्थी-शाखा है, भी शामिल हो तो उन्हे शामिल किया जाय या नहीं। श्री नारायण भाई ने कहा कि शान्तिसेना के जो पाँच लक्ष्य हैं, उन सभी को सभी राजनैतिक पक्ष स्वीकार नही करेंगे। किसी को एक से आपत्ति होगी तो किसी को दूसरे से। अत जो पाँचो लक्ष्यो को स्वीकार नहीं करता, वह शान्तिसेना का सदस्य नही बन सकता।*

लोकतान्त्रिक मूल्यो की रक्षा के लिए आचार्यकुल क्या कदम उठावे, इस विषय पर चर्चा करते हुए नारायण देसाई ने कहा कि स्वेज नहर के मामले को लेकर जब मिस्र पर आक्रमण हुआ तब इग्लैण्ड की जनता ने अपनी सरकार के खिलाफ आवाज उठायी और इग्लैण्ड को अपना कदम रोकना पडा। वियतनाम के खिलाफ अमेरिका मे अपनी ही सरकार के खिलाफ प्रदर्शन हुआ। कम्बोडिया के विषय मे निक्सन को पूरा अधिकार नही दिया गया। अमेरिका मे वियतनाम के विषय मे जो लाखो प्रदर्शन हुए हैं, उनसे भी स्पष्ट होता है कि गणतन्त्र टिकाने का उत्तर-

* तरुण शान्तिसेना की स्थापना के लिए सर्व-सम्मति से यह निर्णय हुआ कि जहाँ आचार्यकुल स्थापित हो, वहाँ तरुण शान्तिसेना अवश्य बनायी जाय जिससे दोनों के पराक्रम का उपयोग नये-समाज के निर्माण-कार्य मे हो सके।

दायित्व तो जनता का ही है। जनता का शिक्षण इस विषय में प्रभावपूर्ण हो, यह आचार्यकुल का काम होना चाहिए।

गांधीजी की भाषा में सत्य और अहिंसा गणतंत्र के मूल्य हैं। गणतंत्र में सत्य और अहिंसा के मूल्यों की रक्षा होनी चाहिए। सत्य किसी व्यक्ति, वर्ग जाति, या कुल की संपत्ति नहीं है, वह किसी के मुख से भी प्रकट हो सकता है। अतः प्रत्येक को सत्य को प्रकट करने का अधिकार होना चाहिए। यह लोकतंत्र की सत्यनिष्ठा है। दूसरा लोकतांत्रिक मूल्य है परिवर्तन का तरीका बलात्कार का नहीं, विचार-परिवर्तन का है। यह लोकतंत्र की अहिंसा निष्ठा है।

इन मूल्यों की रक्षा के लिए आचार्यकुल निम्नांकित कार्यक्रम उठावे

(१) व्यक्तिगत जीवन में इन मूल्यों में निष्ठा होनी चाहिए। कई जगह विद्वान वर्ग लोकतंत्र में निष्ठा खोता जा रहा है। आचार्यकुल को इस प्रवृत्ति के विरुद्ध काम करना चाहिए।

(२) आपसी व्यवहार में भी लोकतांत्रिक सम्बन्ध रखना चाहिए। शिक्षा-संस्थाओं में विद्यार्थियों के साथ बैठकर चर्चा करनी चाहिए। उन्हें भी हम जिम्मेदारी दें। पिताभाव छोड़कर सखाभाव लाना चाहिए।

(३) लोकतंत्र के मूल्यों के विरुद्ध आचरण करने के खिलाफ आवाज उठायी जाय। अखबारों में पत्र लिखे जायें। जनता को प्रश्न करने का अधिकार हो और अधिकारियों का उत्तरदायित्व हो उनके प्रश्नों का उत्तर देने का।

(४) आज चुनाव के समय व्यापक भ्रष्टाचार देखा जाता है। आचार्यकुल को आयोजनाबद्ध होकर इस भ्रष्टाचार को रोकना चाहिए। मतदाता शिक्षण का कार्यक्रम आचार्यकुल का प्रमुख कार्यक्रम होना चाहिए। यदि सम्भव हो तो काशी हिंदू विश्वविद्यालय के इस सत्र के दीक्षान्त भाषण की प्रतियाँ परिगोष्ठी के सदस्यों के पास भेजी जायँ।

शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता के लिए प्रयास

उपरोक्त विषय की स्थापना काशी विद्यापीठ के आचार्यकुल के संयोजक श्री दूधनाथ चतुर्वेदी करनेवाले थे। किसी कारणवश वह लखनऊ चले गये, अतः उनकी अनुपस्थिति में विषय की स्थापना श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने की। आपने कहा कि सर्वोदय-दर्शन का विश्वास विकेन्द्रित शिक्षा नीति में है। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण और केन्द्रीकरण दोनों ही ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जो शिक्षा की स्वायत्तता की शत्रु हैं। अतः अगर सही माने में शिक्षा की स्वायत्तता प्राप्त करनी है तो यह प्रयास करना होगा कि शिक्षा के संचालन का केन्द्र स्कूल हो। यह केन्द्र कहीं बाहर नहीं हो

सकता। सारी व्यवस्था का सचालन आचार्य का ही होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो रजिस्टेशन का भारी खतरा है। इसलिए आचार्यकुल को शिक्षा को बाह्य नियन्त्रण से मुक्त करने का प्रयास करना है। स्वायत्तता की समस्या मुख्यत मुक्ति का प्रयास है। प्रारम्भिक स्तर पर जिला परिषदा और नगरपालिकाओं से मुक्ति, माध्यमिक स्तर पर मैनेजरो से और विश्वविद्यालय स्तर पर शासन से मुक्ति।

चर्चा के बाद निम्नांकित निर्णय लिये गये

(क) प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर पर अभिभावक, आचार्य वर्ग और शिक्षा-विभाग के अधिकारियो की संयुक्त स्वायत्त समितियाँ बनें। समितियो के त्रिविध कार्यक्रम हो।

(१) प्रशासन नियुक्ति पदोन्नति और स्थानान्तरण।

(२) पाठ्यक्रम शिक्षा-विधि और परीक्षा प्रणाली का निर्माण और संचालन।

(३) विद्यालय-कोष का विनियोग।

(ख) विश्वविद्यालय स्तर पर—उपर्युक्त तीनो कार्यक्रमो के लिए आचार्यों और छात्रो की समितियाँ बनायी जायँ।

(ग) विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों को भी स्वायत्तता दी जाय। विश्वविद्यालय से सलग्न डिग्री कालेजो को भी उतनी ही स्वायत्तता दी जाय, जितनी विश्व विद्यालयो को है।

(घ) राज्य और केन्द्र दानो स्तरों पर शिक्षा-शास्त्रियो के एक ऐसे गैर सरकारी सगठन की स्थापना की जाय—शिक्षा-नीति के विषय मे जिसकी सलाह लेना अनिवार्य हो।

चर्चा मे कहा गया कि आर्थिक स्वायत्तता के बिना किसी प्रकार की स्वायत्तता सभव नहीं होगी। श्री कामेश्वर बहुगुणा ने कहा—' सरकार का पैसा तो अपना ही पैसा है, अत हमारा ऐसा स्लोगन होना चाहिए कि पूरा पैसा सरकार का और पूरी स्वायत्तता आचार्य की।'

ग्राम स्वराज्य की प्रक्रिया मे आचार्यकुल की भूमिका

लोकनीति के निर्माण और ग्राम-स्वराज्य की प्रक्रिया म आचार्यकुल का 'इन्वाल्वमेंट' कितना हो इस विषय का प्रस्थापन गाधी विद्या-सस्थान के प्रोफेसर नागेश्वर प्रसाद ने किया। लोकनीति और राजनीति का अतर स्पष्ट करते हुए आपने कहा कि—वास्तव मे पक्ष रहित लोकसेवोमुख राजनीति ही लोकनीति है। राजनीति मे सत्ता प्राप्ति की भावना अन्तर्निहित है। उस के सचालन के लिए जनता की राय भले ही ली जाती हो, लेकिन सचालन विशिष्ट वर्ग का (भले ही वह जनता द्वारा चुना हुआ हो) होता है। दूसरे शब्दो मे कुछ लोग सत्ता या शक्ति

प्राप्त करने के लिए जनता का सहयोग लेते हैं। लेकिन जहाँ तंत्र के संचालन में जनता से सहकार किया जाता है, वहाँ लोकनीति है। तंत्र संचालन के लिए सत्ता-निरपेक्ष नीति ही लोकनीति है।"

ग्राम स्वराज्य की प्रक्रिया में अध्यापकों का कितना 'इन्वाल्वमेंट' हो, इस विषय की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि—ग्राम-स्वराज्य समाज में मूलभूत परिवर्तन करना चाहता है। मूलभूत परिवर्तन तभी होता है जब कि सामाजिक ढाँचे और व्यक्ति दोनों में ही परिवर्तन हो। अतः ग्राम-स्वराज्य की भूमिका में इस प्रकार का परिवर्तन लाने के लिए आचार्यकुल को प्रमुखतः दो काम करने चाहिए। (१) ग्रामदान-प्राप्ति के पूर्व उसे ग्राम-स्वराज्य के सामाजिक दर्शन से व्यक्ति को पूर्णतः परिचित कराना चाहिए। आचार्य यह काम करेगा तो ग्राम-स्वराज्य का विचार अधिक स्पष्ट होगा। इससे बीघा-कट्ठा बाँटने गाँवसभा के निर्माण करने, ग्राम-कोष निकालने और मिल्कियत के विसर्जन का काम अधिक सरल होगा। यानी तंत्र समाज-परिवर्तन की क्रिया अधिक सरल और अहिंसक बन सकेगी। अतः आचार्यकुल का प्रमुख कार्य है ग्रामदान के पीछे जो दर्शन है उसको समझना और समझाना, उसे आत्मसात करना और गाँववालों को आत्मसात कराना। आचार्यकुल को ग्राम स्वराज्य के निर्माण में सक्रिय सहकार करना चाहिए, क्योंकि आचार्यकुल (विद्वत वर्ग) जब तक ग्राम स्वराज्य की निर्माण प्रक्रिया का माध्यम नहीं बन जाता तब तक वह लोकशक्ति के निर्देशन के लिए सक्षम नहीं हो सकता।

आचार्यकुल के सामने सबसे अधिक कठिनाई तब आयेगी जब गाँवसभा का निर्माण होगा और उसे अपनी शक्ति का भान होगा। तब नाना धर्मों, जातियों और सम्प्रदायोंवाले इस देश में गुटबंदी बढ़गी। इस गुटबंदी से कैसे बचा जाय, यह इस परिगोष्ठी को सोचना है।

चर्चा के बाद परिगोष्ठी ने निम्न निर्णय लिये

(१) आचार्यकुल को ग्रामदान-प्राप्ति के पहले और पीछे ग्रामदान के दर्शन को समझने-समझाने में और ग्रामसभा-निर्माण आदि की प्रक्रिया में पूर्ण सहकार करना चाहिए।

(२) ग्रामसभा को गुटबंदी से बचाने के लिए सर्व-सम्मति की चुनाव-पद्धति का अनुसरण करना चाहिए।

(३) गाँव वालों में यह भाव भरना चाहिए कि अपने परिवार और जाति या मुहल्ले के हित के ऊपर उठकर वे गाँव के हित के साथ तादात्म्य स्थापित करना सीखें।

दलगत राजनीति और गुटबन्दी से मुक्ति

उपरोक्त मुद्दे को स्थापना करते हुए श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने कहा कि आज शिक्षा जगत् की अशांति के दो ही सबसे बड़े कारण हैं---एक है शिक्षा-संस्थाओं में पक्ष-ग्रस्त राजनीति की घुसपैठ और दूसरी है अध्यापकों की आपस की गुटबन्दी। वास्तव में इन दोनों का परिहार आचार्यकुल की स्थापना से ही होगा। विभिन्न शिक्षक-संगठन इन दोषो का परिहार करने में विफल हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आचार्य स्वयं संकल्प करें कि वे दलगत राजनीति और गुटबन्दी से मुक्त रहेंगे।

आचार्यकुल का विचार अच्छा है, लक्ष्य पवित्र है, परन्तु उसके प्रसार के लिए क्या कार्यक्रम अपनाया जाय, इस बात का विचार करना है।

चर्चा में भाग लेते हुए श्री कामेश्वर बहुगुणा ने कहा कि वर्तमान दलगत-मूलक लोकतंत्र को बदलना है। आवश्यक हो, तो संविधान भी बदला जाय। यह मोह दूर होगा तो दलमुक्त आचार्यकुल बनने में आसानी होगी। आचार्य पयरदेवा ने कहा कि शिक्षा-संस्थाओं की अशांति के लिए राजनीति और नौकरशाही, दोनों ही बाधाएँ हैं। दोनों मिलकर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करती हैं, जिससे शिक्षक गुटबन्दी में पड़ता है। पथिकजी ने कहा कि दीपक जलेगा, तो अंधकार आप दूर हो जायेगा, परिस्थितियों पर रोना व्यर्थ है। आचार्य और छात्र दोनों दलगत राजनीति और गुटबन्दी से दूर रहने का संकल्प करें। विचार का प्रचार और प्रसार किया जायेगा तो काम आगे बढ़ेगा। श्री चन्द्रप्रकाशजी ने कहा कि ९५ प्रतिशत अध्यापक और छात्र किसी पक्ष के सदस्य नहीं हैं। उन्हें राजनीति में घसीटा जाता है। इससे कैसे बचा जाय? शिवकुमार मिश्र ने कहा कि अगर संस्था में आदर्श आचार्यकुल बनेगा तो इन ९५ प्रतिशत अध्यापकों और छात्रों को बल मिलेगा। इसलिए आचार्यकुल का व्यापक प्रचार होना चाहिए। चर्चा के बाद निर्णय हुआ कि आचार्यकुल के व्यापक प्रसार के लिए गोष्ठी और सभाएँ की जायें, संस्था, क्षेत्र और जिला-स्तर के शिविर किये जायें, साल में १ बार प्रादेशिक स्तर की परिषद भी हो, अखबारों में लेख दिये जायें। और जब तक आचार्यकुल का कोई अलग मुखपत्र नहीं होता, 'नयी तालीम', और 'भूदान-यज्ञ' आदि में नियमित लेख दिये जायें।

यह भी निर्णय हुआ कि आचार्यकुल समान मंच के निर्माण का प्रयास करे, जिससे हर दल के लोग देश की ज्वलंत समस्याओं पर अपने विचार प्रकट कर सकें।

१२ जून को प्रात ८ बजे ६ जून से चलती हुई आचार्यकुल परिगोष्ठी का समापन प्रो० राजाराम शास्त्री उपकुलपति, काशी विद्यापीठ द्वारा सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता श्री शालीग्राम पथिक ने की।

परिगोष्ठी के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने शास्त्रीजी का स्वागत किया और परिगोष्ठी की विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस परिगोष्ठी ने शिक्षा और परीक्षा-पद्धति के सम्बन्ध म कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिये हैं। परिगोष्ठी ने निश्चय किया है कि आचार्यकुल शिक्षा की स्वायत्तता के लिए प्रयास करेगा, लोकसेवा और लोक-निर्माण का कार्य उठायेगा और इन कामो को करने के लिए स्वयं दलगत राजनीति और गुटबन्दी से दूर रहेगा।

परिगोष्ठी के सदस्यो का उद्बोधन करते हुए शास्त्रीजी ने कहा—"मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि इतने जिलो मे आचार्यकुल अब बन गया है और उसने अपना कार्य उठा लिया है। आप लोग काफी तफसील म गये हैं। आपने जो विचार लिये हैं और जो फैसले लिये हैं उनका व्यापक प्रचार हो, जिससे शिक्षा और परीक्षा का नीति निर्धारण करनेवाले जो अधिकारी हैं, वे भी इन पर अपने विचार व्यक्त करें।

छात्र असन्तोष के मूलभूत कारण शिक्षा मे

विद्यार्थियो के असतोष व विद्रोह की समस्या के मूल कारण शिक्षा मे निहित हैं। शिक्षा मे परिवर्तन करके कुछ ठीक हो तो हो सकता है। वे छात्र विधायक कार्यों मे लगे हो तो उनको विध्वंसात्मक कार्यों से विरत किया जा सकता है। तरुण शातिसेना के विधायक कार्यों मे आचार्यकुल उन्ह लगाये तो अच्छा प्रभाव पडेगा। इसी तरह परीक्षा एक बार न हो, नित्य परीक्षा हो, छात्र वर्ष भर पढ़े, यह तभी हो सकता है जब परीक्षा को भी वर्ष भर मे वितरित कर दिया जाय। परीक्षा के दिन विद्यार्थी बीमार पड जाय तो उसका पूरा वर्ष नष्ट हो जाय, यह तो ठीक नही।

हमारे गुरुकुलो मे वार्षिक परीक्षा नही थी। आज भी अमेरिका मे छात्र का नित्य मूल्याकन होता है। अमेरिका मे श्रेणी वगैरह भी नहीं है। जब भी यह सवाल होता है कि इन बातों को यहाँ भी लागू किया जाय, तब कहा जाता है कि हमारे शिक्षक ही इस योग्य नही हैं। भय और लोभ से नकल कराने और अंक बढाकर उच्च श्रेणी देने वाले शिक्षकों से नये समाज की कैसे स्थापना की जा सकती है। केवल नैतिकता ही नही, ज्ञान के मामले म भी हम कमजोर हैं। इस प्रश्न का उत्तर हमारा आचार्यकुल दे। वह कहे कि हम कुछ ऐसे आचार्य हैं,

जिन पर भरोसा किया जा सकता है। वह परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की मांग करें। वह साफ कहे कि हम बाहर परीक्षा लेने नहीं जायेंगे और बाहर से भी हमारे यहां कोई नहीं आये। इतना नैतिक बल आपमें हो। मैं आपसे कहूंगा कि आप अपने सकल्प मे एक संकल्प और जोड लें — हम बिना किसी भय या प्रलोभन के अपना कर्तव्य करेंगे।

छात्र-समस्या का हल सख्य भाव

आपने अपनी परिगोष्ठी म चर्चा की है कि आज आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थियों से सखा की भांति व्यवहार किया जाय। छात्र और अध्यापक जब साथ साथ समाज-सेवा का काम करेंगे, तभी इस प्रकार का सख्य भाव उत्पन्न होगा। समानधर्मा होने से सखा-भाव स्वय आ जाता है। स्वराज्य के पहले जब विद्यापीठ के विद्यार्थी और अध्यापक स्वराज्य की लडाई का काम करते थे, तब उनमें इस प्रकार का भाव सहज आता था। आप लोग विद्यार्थियों के साथ समाज-सेवा और समाज-निर्माण का कुछ-न-कुछ काम अवश्य करें, तो छात्र-समस्या हल होगी।

आचार्यकुल क्या करे ?

समस्याओं की बौद्धिक व्याख्या का कार्य तो आचार्यकुल का स्वधर्म है। आज हालत यह है कि शिक्षक अपनी समस्या पर भी नहीं बोलता। आचार्यकुल को शिक्षा अथवा दूसरी समस्याओं पर सोचना चाहिए और निर्भय होकर बोलना चाहिए। अधिकार-कर्तव्य से ही मिलता है। कर्तव्य और अधिकार म भेद नहीं है। आचार्यकुल की निष्ठा कर्तव्य मे हो, तो अधिकार स्वय प्राप्त होगा। मुझे आपसे केवल इतना ही कहना है कि आचार्यकुल के सदस्य नैतिक गुणों का अर्जन करें, अपना ज्ञान बढायें जिससे विश्वासपूर्वक उन्हें शिक्षा और परीक्षा का काम सुपुर्द किया जा सके। अगर आचार्यकुल इस प्रकार का वातावरण बना सके, तो बहुत बडा काम होगा। परिगोष्ठी म जो निर्णय आपने लिये हैं, अगर उनका कार्यान्वयन हुआ तो आपमें यह क्षमता आयेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

गोष्ठी के निर्णय

सगठन—

- आचार्यकुल शिक्षक सघो का अविरोधी और हितो का पूरक सगठन है, अत एक व्यक्ति दोनो सगठनो का सदस्य हो सकता है।
- यदि कोई हड़ताल न्यायपूर्ण मांगो के लिए हो और उसका मार्ग अहिंसा का हो, तो आचार्यकुल की हड़ताल से सहमति हो सकती है। परन्तु अगर आचार्यकुल हड़ताल म भाग न लेने का निर्णय देता है, तो सदस्य

को या तो आचार्यकुल की बात माननी चाहिए या सदस्यता छोड़ देनी चाहिए।

- हड़ताल में भाग लेने या न लेने का निर्णय जनपदीय अथवा प्रादेशिक आचार्यकुल करेगा।
- आचार्यकुल की इकाई की स्थापना में संख्या पर जोर नहीं दिया जायेगा।
- आचार्यों के अलावा साहित्यिक, चिंतक, पत्रकार या समाज-सेवक भी आचार्यकुल का सदस्य हो सकेगा। जिस स्तर का व्यक्ति होगा, उस स्तर की इकाई का वह सदस्य माना जायगा।
- प्राइमरी, जूनियर हाईस्कूल, इण्टर कालेज और डिग्री कालेज में प्रत्येक में अपनी अलग-अलग इकाई होगी। प्रारम्भिक इकाई का क्षेत्र ब्लाक होगा और प्रत्येक ब्लाक से जनपद आचार्यकुल में दो प्रतिनिधि जायेंगे। ब्लाक के इन्हीं प्रतिनिधियों से जनपद का आचार्यकुल बनेगा। चुनाव सर्व-सम्मति से होगा।
- इस प्रकार के प्रतिनिधियों का आचार्यकुल जिले के अध्यक्ष, संयोजक सहित अधिक से-अधिक ११ सदस्यों की कार्यकारिणी का सर्व सम्मति से निर्वाचन करेगा।
- प्रत्येक जिले के अध्यक्ष एवं संयोजक अथवा कार्यकारिणी का एक सदस्य प्रादेशिक आचार्यकुल का निर्माण करेगा।
- प्रादेशिक आचार्यकुल की कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष एवं संयोजक सहित अधिक-से अधिक २१ सदस्यों की होगी।
- प्रादेशिक संगठन के अध्यक्ष और संयोजक अथवा कार्यकारिणी का कोई एक सदस्य मिलकर केन्द्रीय आचार्यकुल बनायेंगे, जो अपना अध्यक्ष और संयोजक चुनेगा।
- प्रत्येक स्तर की कार्यकारिणी को अपनी संख्या का एक चौथाई सदस्य मनोनीत करने का अधिकार रहेगा। विशेष आमंत्रित व्यक्ति भी शामिल किये जा सकते हैं।

सदस्यता और उसका विनियोग

- डिग्री कालेज के सदस्य कम-से-कम १ रु० प्रति मास और प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर के सदस्य कम-से-कम १ पैसा प्रतिदिन सदस्यता-शुल्क के रूप में दें।

* इस प्रकार जो शुल्क एकत्र होगा, उसका ५ प्रतिशत केन्द्रीय आचार्यकुल के लिए, ५ प्रतिशत प्रादेशिक आचार्यकुल के लिए, १० प्रतिशत जिला आचार्यकुल के लिए भेजा जायेगा और शेष ८० प्रतिशत संस्थागत आचार्यकुल के लिए रहेगा।
* आचार्यकुल की इकाइयाँ अपने शुल्क के ८० प्रतिशत कोष का जिस प्रकार विनियोग करें, उसकी जानकारी 'नयी तालीम' पत्रिका में सूचनार्थ प्रकाशित कराती रहें।
* संस्थागत आचार्यकुल अपने अंश का ५० प्रतिशत आचार्यकुल विचार-प्रचार और संगठनात्मक कार्यों में लगायेगा और ५० प्रतिशत को पूंजी के रूप में उत्पादक उद्योगों में लगायेगा, जहाँ उत्पादक उद्योग की सुविधा न हो, वहाँ सर्वोदय साहित्य के काम में। प्राकृतिक चिकित्सा आदि में भी यह रकम खर्च की जा सकती है।
* आचार्यकुल के व्यापक प्रसार के लिए गोष्ठी और सभाएँ की जायँ। संस्था, क्षेत्र और जिला-स्तर के शिविर किये जायँ। साल में एक बार प्रादेशिक स्तर की परिषद भी हो। अखबारों में लेख दिये जायँ और जब तक आचार्यकुल का कोई अलग मुखपत्र नहीं होता, नयी तालीम' और 'भूदान-यज्ञ' आदि में नियमित लेख दिये जायँ।
* आचार्यकुल समान मंच के निर्माण का प्रयास करे, जिससे हर दल के लोग देश की ज्वलन्त समस्याओं पर अपने विचार प्रकट कर सकें।

आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना

* जहाँ आचार्यकुल स्थापित हों, वहाँ तरुण शान्तिसेना अवश्य बनायी जाय, जिससे दोनों के पराक्रम का प्रयोग नये समाज के निर्माण-कार्य में हो सके।
* सरकार से तरुण शान्तिसेना के लिए आर्थिक सहायता मिलती है, तो उसका उपयोग व्यक्तिगत सुविधा के स्थान पर कार्यक्रम के संचालन और व्यवस्था पर किया जाय, जिससे छात्र व्यक्तिगत प्रलोभन से बचें।
* आचार्यकुल का विश्व की परिस्थितियों का मूकदर्शक नहीं रहना है। उसे कुछ निषेधात्मक और कुछ विधायक कार्य अवश्य करते रहना चाहिए अर्थात् अप्रासंगिक कार्यों की भर्त्सना और प्रासंगिक कार्यों की सराहना करना आचार्यकुल का दायित्व है।
* आचार्य अपने विवेक के अनुसार परिस्थिति के शमन का प्रयास करें, लेकिन

कानून और व्यवस्था की दृष्टि से विषम परिस्थिति हो जाती है, तो पुलिस और कानूनी व्यवस्था की सहायता ली जा सकती है।

दलगत राजनीति और गुटबन्दी

- संस्थाओं में पक्ष-मुक्त आचार्यकुल की स्थापना की जाय।
- संस्थागत गुटबन्दी से बचने के लिए आचार्यों के वेतन में साम्य हो और आचार्यकुल उसके लिए प्रयास करे।

शिक्षा की स्वायत्तता

- पूरा पैसा सरकार का और पूरी स्वायत्तता आचार्य की—यह होना चाहिए।
- प्राथमिक स्तर पर जिला बोर्डों से, माध्यमिक-स्तर पर मैनेजरों से और विश्व-विद्यालय-स्तर पर शासन से मुक्ति का प्रयास हो।
- प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर विविध कार्यों का संचालन स्थानीय अध्यापक अभिभावक और छात्र की समितियाँ करें। आचार्य अपने क्षेत्र में ऐसी स्वायत्त समितियों की स्थापना का प्रयास करें।

ग्राम-स्वराज्य और लोकनीति

- आचार्यकुल को ग्रामदान-प्राप्ति के पहले और पीछे ग्रामदान के दर्शन को समझने-समझाने में और ग्रामसभा निर्माण आदि की प्रक्रिया में पूर्ण सहकार करना चाहिए।
- ग्रामसभा को गुटबन्दी से बचाने के लिए आचार्यकुल उसे सर्व-सम्मति की चुनाव पद्धति का अनुसरण करने में मार्ग-दर्शन दे, क्योंकि जब तक आचार्यकुल ग्राम-स्वराज्य के निर्माण का साधन नहीं बनता, तब तक वह लोकशक्ति का निर्देश नहीं कर पायेगा।

लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा

- लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति व्यक्तिगत जीवन में निष्ठा और आपसी व्यवहार में लोकतांत्रिक सम्बन्ध रखना चाहिए।
- विद्यार्थियों को उत्तरदायित्व दिया जाय और पिता के भाव के स्थान पर सखाभाव का प्रयास किया जाय।
- लोकतंत्र के मूल्यों के विरुद्ध आचरण करनेवालों के खिलाफ आवाज उठायी जाय।
- चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचार को रोकने के लिए मतदाता का शिक्षण किया जाय। •

शिक्षा में बहकते मूल्य : कुछ इधर की, कुछ उधर की

डा० आत्मानन्द मिश्र

शिक्षा दो अक्षरों का शब्द है जिसका प्रत्येक वर्ण बड़ा सार्थक है। पहले वर्ण का सम्बन्ध 'शिनुते' से है जिसका अर्थ तीक्ष्ण करना, तेज करना है, दूसरे का अर्थ नाश करना हानि पहुँचाना है। अतएव शिक्षा का समवेत अभिप्राय बुद्धि तीक्ष्ण करके विनाशकारी शक्ति देना है। अथवा ज्ञानार्जन में क्रुद्ध होकर स्वयं के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाना है। प्राचीन काल मे शिक्षा के इस दूसरे अर्थ को स्वीकार किया गया था। शिक्षार्थी किताब का कीड़ा बनकर अपना रस ऐसा चुसवाता था कि कृशता हाथ लगती थी। वर्तमान में शिक्षा के दूसरे अर्थ पर जोर दिया जा रहा है। शिक्षार्थी को इतना तर्रातर्रार बनाया जाता है कि वह ध्वंसात्मक निपुणता प्राप्त कर ले।

शिक्षा का उद्देश्य बालक को वातावरण के अनुकूल बनाना है। यदि वातावरण में व्याप्त मापदण्ड गिरें और कीर्तिमान घटें तो उसको भी गिरना और घटना चाहिए।

शिक्षा एक त्रिकोणी प्रक्रिया है जो बालक को चौकोर बनाने में प्रयत्नशील होती है। इस त्रिकोण के शीर्षबिन्दु पर शिक्षार्थी बैठाया जाता है और आधार के कोनों पर शिक्षक तथा पाठ्यक्रम विराजमान होते हैं। शिक्षक पाठ्यक्रम की सहायता से शिक्षार्थी को शीर्ष पर त्रिशंकु सा टाँगे रहता है। किन्तु आसन्न भुजाओं की खिसलपट्टियों से वह निरन्तर भूमितल की ओर फिसलता रहता है।

उसकी इस हरकत से तंग आकर शिक्षा प्रक्रिया को बालकेन्द्रित करना आवश्यक हो गया है। उसके फलस्वरूप बालक को अब केन्द्र में बैठा कर लक्ष्मण रेखा खींच दी जाती है और उस वृत्त के आसपास बाहर ही बाहर शिक्षक और पाठ्यक्रम चक्कर काटा करते हैं। बालक की इच्छा और इशारे पर ही सारी शिक्षा-व्यवस्था सचालित हुआ करती है।

पाठ्यक्रम अनुभवों का पिटारा है। अनुभव भव के पीछे चलनेवाली वस्तु है और भव का जंजाल विकराल है। अतएव पाठ्यक्रम भानमती का पिटारा बन गया है जिसमें पाठ्य का अपाठ्य और क्रम का व्यतिक्रम हो जाना मामूली बात है। आदम से आज तक के अनुभवों का जमघट होने के कारण पाठ्यक्रम में ऐसा भीड़ भड़क्का है कि वह बालक के लिए हौवा हो गया है और शिक्षक के लिए काकातुआ। पुस्तकों के गदभीम बोझ से बेचारे बालक की सिट्टी पिट्टी

गुम है। इस मुसीबत से निजात पाने के लिए सह सम्बन्ध, विपयानुबन्ध, मरकजी-मजमून जैसे अनेक गठबन्धन गढे गये हैं लेकिन मर्ज बढता ही गया ज्यों ज्यों दवा की।

नौकरी के अनेक बन्द दरवाजो पर माथा मारने के बाद जो व्यक्ति स्कूल म पिल पडता है उसे शिक्षक कहते हैं। यदि वह कुछ कर सकता है तो अन्यत्र करता है, यदि कुछ नहीं कर सकता तो स्कूल म पढ़ाता है। जो स्वय पढ कढ नही पाया, वह दूसरो को पढ़ाने-काढ़ने का काम करता है। गोया जो खुद गुमराह है, वह दूसरो की रहबरी करने की जुर्रत करता है। अध्यापक बनने के पूर्व जो व्यक्ति फ़ाकामस्ती करता था, वह बनने के बाद अध्यापकी और फाका-मस्ती, दोनो करने लगता है। लोग शिक्षक को भिक्खु बना देना चाहते हैं। उसे सुदामा की सीख दी जाती है—औरन को धन चाहिए बावरे, शिक्षक को धन केवल भिक्षा। कैसी विडम्बना है कि राष्ट्र निर्माता कहलानेवाला स्वय अपना और अपनो का निर्माण नही कर पाता! समाज सेवक होने के नाते नसबन्दी-नशाबन्दी, लोक निर्वाचन, बाढ निवारण आदि अभियानो मे वह आये दिन जोता जाता है, किन्तु उसके कष्ट निवारण की कोई चिन्ता नहीं करता।

कहा गया है कि सभी जीवधारियो म जिन्दा रहन की सहज आकाक्षा होती है। किन्तु इस प्राकृतिक आकाक्षा को भी अरई लगानी पडती है। शिक्षक का कार्य बालक को जीवनकला सिखाना है। गाय अपने नवजात बछड़े को चलना सिखाती है। चिडिया अपने चिरकुट को उडना सिखाती है। जहां तक मुझे ज्ञात है गाय और चिडिया के पास किसी प्रशिक्षण महाविद्यालय की डिग्री डिप्लोमा नहीं होता। फिर भी बडी निपुणता, लगन और सहानुभूति के साथ वे अपने शावको को सिखाते हैं। उनका अध्यापन किसी तरह घटिया नहीं होता। मगर प्रशिक्षित शिक्षक जीवनकला सिखाने मे प्राय असमर्थ रहता है। जीवनकला जीवन द्वारा सिखायी जाती है, न कि पुस्तको के अम्बार से या पाठ्यक्रम के पठार से।

अध्यापक का एक काका होता है जिसे प्राध्यापक या प्रोफ़ेसर कहते हैं। वह अपने विषय मे धुरन्धर, पारगत समझा जाता है। या यो कहिए कि सम्पूर्ण ज्ञान की गठरी खोपडी मे रखने का सार्वजनिक ऐलान कराता है। या फिर विद्वान होन की स्वय ढोंग मारता है। अपने मुख ते आपन करनी, भाँति अनेक बार बहु बरनी। यदि विषयोश, जिसे वह थोडा-बहुत समझता है, बहुत छोटा हुआ तो वह प्रोफ़ेसर से विशेषज्ञ बन जाता है। कम से कम बातों के बारे

मे ज्यादा से ज्यादा जानने का उसका दावा रहता है। वह सुन्दर परिधान ओढ़ गम्भीर मुखाकृति बनाये सरल बातो को क्लिष्ट से क्लिष्टतर बनाने म बडा प्रवीण होता है। वह बिना किंचित शका लज्जा दर्शाये भारी त्रुटियो के कीचड को मथाते चला जाता है। जरा सी बात को लेकर तूल देना, तिल का ताड खडा करना उसे बाएँ हाथ का खेल है।

आयरलैण्ड की एक पुरानी दन्त कथा मे एक इतने ऊचे टावर का वर्णन आता है जिसकी चोटी को अकेला एक व्यक्ति नही देख सकता था। दो व्यक्ति मिलकर उसे देखते थ। एक नीव से ऊपर कटिपर्यन्त देखता था और दूसरा कटि से चोटीपर्यन्त। आधुनिक काल मे नालिज का टावर चन्द्रमा को छू रहा है। उसे सम्पूर्ण देखने के लिए भूतल पर ही नही, स्पेस स्टशनो पर भी अनेक विशेषज्ञो की आवश्यकता पडेगी। ऐसे अनेक विशेषज्ञो की जमात को फैक्टरी या सकाय कहते है। उसमे स जिसको इतना अधिक नही आता कि वह प्राध्यापक बन सके और इतना कम भी नही आता कि विशेषज्ञ का बाना बनाये वह उस सकाय का अधिष्ठाता बन जाता है, फैक्टरी का डीन कहलाता है। उसका काम औरो पर कोरा रोब गालिब करना और ठाट से घूम-फिरकर अपनी हीनता, दीनता नही, प्रदर्शित करता रहता है। गाडी धकानेवाले और होते हैं नाम इनका होता है। जो रहीम डीनहि लखै, दीन रहत नहि सोय।

यह कहना तो जरा कठिन है कि प्राध्यापक या विशेषज्ञ अच्छे शिक्षक नही होते किन्तु यह बात निर्विवाद है कि उन्हे अच्छे शिक्षक होना लाजमी नही है। अध्यापन के लिए उन्हे किसी प्रकार के प्रशिक्षण की जरूरत नही, अनुभव की आवश्यकता नही। यह इसलिए कि उन्हे ज्ञान सचारण करना तो रहता नही। विश्वविद्यालय या कालेज भी उन्हे विद्यार्थियो तक ज्ञान स्थानान्तरण के लिए नौकर नही रखता। अलबत्ता प्राध्यापक पी-एच० डी० का कन्टोप लगाये रहता है। यह उसकी अध्यापन क्षमता का प्रतीक नही, वरन् ज्ञान की हौदी भरी होने का प्रमाण है। अनुसन्धान या शोध के विषय म उनका कहना है कि दुनिया म अब कोई ऐसी चीज नही बची जिसकी खोज की जाय। सब बातें सबको देखी सुनी हैं, उनके सम्बन्ध मे केवल निर्विधक विवेचन और अक जादूकरण ऐसा किया जा सकता है, जैसा किसीन कभी न किया हो। और ऐसा आदमी उनके बाद शायद दूसरा अभी पैदा नहीं हुआ है।

प्राफसर जब कभी पढ़ाता है तब एक ही पद्धति अपनाता है जिसे व्याख्यान या लेक्चर कहते है। लेक्चर एक ऐसी विचित्र प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रोफे-सर के नोटस विद्यार्थी के नोट्स बन जाते हैं बिना दोनो म से किसीके

दिमाग मे घुसे। इस पद्धति में शब्द मुखकुहर से निकल निभरणी की राह प्रवाहित हो विद्यार्थियो की कापी पर अंकित हो जाते हैं। प्रोफेसर जिस एक पुस्तक का ध्वनि रिकार्ड बजाता है उसे विद्यार्थी के लिए सर्वथा अनुपयुक्त घोषित करता है और ग्रन्थालय मे उसकी एक प्रति भी रखना वर्जित कर देता है। भले ही वह अपने पास पुट्ठा चढाकर एक प्रति सुरक्षित रखता हो जिससे किसी प्रकार की ताक झांक से भी राज न खुल पाये। मस्तिष्क की निष्क्रियता से छात्र तद्रित निद्रित होने लगते हैं जिसका लाभ उठाकर प्राध्यापक उनकी सोने की आदतों का भी अध्ययन करता चलता है। इन अवसरो पर प्रोफेसर के हाथ जेबों मे होते हैं जीभ मुँह मे चलती है और विश्वास छात्रो के धीरज पर रहता है।

छलकते ज्ञानथाल प्रोफसरो के अतिरिक्त अर्ध जल-गगरीवाले इन्स्ट्रक्टर और डिमान्स्ट्रटर भी रखे जाते हैं। उनका काम छोटे पैमाने पर पढाना और प्रदर्शन करना रहता है। प्रोफसर के ज्ञानयोग की अन्तिम अवस्था मे होने के कारण उन पर पढाने का सारा भार आ पडता है। 'मौन ज्ञान लक्षणम्'।

इन सबके परे शिक्षाशास्त्र पारंगत एक शिक्षाविद् होते हैं जो शिक्षा-जगत मे पोप या पण्डा का स्थान लिये रहते हैं। इनका गुरुतम व्यवसाय शिक्षा योजनाओ को बनाना बिगाडना और अच्छा खासा वितण्डावाद खडा कर देना होता है। इससे शिक्षा के पुरोहित और यजमान दोनो ही विस्मित भ्रमित तथा चकित वंचित हो जाते हैं।

परीक्षा का अर्थ है पर इच्छा। इसीलिए परीक्षा मे विद्यार्थियो की इच्छा सर्वोपरि मानी जाती है। यह एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा पुस्तक रूप ज्ञान को उदरस्थ करके घण्टिकात्रय की अवधि मे वमन किया जाता है। अथवा यह ऐसी कला है जिसका अवलम्बन करके निरीक्षको की प्रत्यक्ष उपस्थिति मे मुद्रित ज्ञान को पुस्तक से उत्तर पुस्तिका मे सीधे स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इसका लक्ष्य ज्ञान की जाँच नहीं हस्तलाघव की परख है।

छात्रवृत्ति वितरण की एक तान्त्रिक विधि है जिससे शिक्षा प्रजातान्त्रिक बनायी जाती है। इसे बाँटने मे सम्पन्नता और दरिद्रता दोनो ही आँकी जाती है। परन्तु यह पात्र का गुण नही मुँह देखकर वितरित की जाती है। छात्रवृत्ति छात्र के लिए कम और परिवार के लिए अधिक उपादेय सिद्ध होती है। यदि छात्र के कल्याणार्थ उसका उपयोग हो सका तो उसका साफल्य गाफल्य मे पड जाता है। उसका प्रयोजन ना-पढन्तो को लाँघ देकर, मुष्टिका उष्ण कर पठनो-न्मुख करना है। — 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से साभार

वर्ष : १८
अंक : १२
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

जुलाई, '७०

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : जुलाई, '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

दैनंदनी १९७१

प्रतिवर्ष की भांति सन् १९७१ की दैनंदिनी १५ अगस्त के आसपास प्रकाशित हो रही है।

क्राउन छोटी ५" × ७" साइज का मूल्य रु० ३ ००
डिमाइ बड़ी ५॥" × ९" साइज का मूल्य रु० ३ ७५
प्लास्टिक का सुन्दर आवरण।

खादी-विचार

लेखक : विनोबा

खादी सिर्फ वस्त्र नहीं, वह अहिंसक समाज रचना का प्रतीक है। गांधीजी ने चरखे को भारत की गरीब जनता का सबसे बड़ा आधार माना था और यह ऐसा साधन है, जिसे हर व्यक्ति अपना सकता है।

पिछले ४ वर्षों में खादी विचार किस तरह विकसित होता गया, उसका सम्पूर्ण चित्र विनोबाजी के शब्दों में संकलित है।

संशोधित दूसरा संस्करण मूल्य ४ ००

सब जन एक समान (रेडियो रूपक संग्रह)

लेखक यशपाल जैन

इस संकलन में गांधी, विनोबा, बुद्ध, ईसा, महावीर, सर्वोदय आदि एवं और गांधी विचार के मूलभूत विषयों पर रेडियो रूपक दिये गये हैं। बहुजनहिताय, अस्पृश्यता निवारण, विश्वबन्धुत्व, कर्मयोग आदि की नैतिक शिक्षाओं का सार सबके लिए पठनीय।

सरल सुबोध भाषा। मूल्य २ ००

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

मावरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमंदिर वाराणसी